प्रीतिरसावतार महाभावनिमग्न
श्रीराधा बाबा

प्रीतिरसावतार महाभावनिमग्न श्रीराधा बाबा

वंश परिचय

जैसे आमका मधुर फल आमके सुन्दर वृक्षमें लगता है, वैसे ही किसी महान संतका आविर्भाव महान संत-परिवारमें होता है। संत-जीवन की महान गरिमाकी अभिव्यक्तिके लिये परिवारका संतोचित वातावरण आवश्यक पृष्ठभूमिका कार्य करता है। प्रीतिरसावतार महाभावनिमग्न श्रीराधाबाबाका आविर्भाव बिहार प्रदेशके मिश्र जातीय ब्राह्मण परिवारमें हुआ था। बिहार प्रदेशके गया जिलामें एक फखरपुर ग्राम है, जो सोनभद्रके तटके समीप अरवल ग्रामसे तीन मील पूर्वकी ओर स्थित है। इस ग्रामका यह मिश्र कुल, अपने संतत्व एवं श्रेष्ठत्वके लिये आस-पासके अनेक ग्रामोंमें बड़ा विख्यात रहा है। इस संत-परिवारके आस्तिक-सात्त्विक वातावरणमें श्रीराधाबाबाका आविर्भाव होनेसे यह परिवार और यह ग्राम सभीके लिये वन्दनीय बन गया।

यह मिश्र परिवार पहले 'विश्वनाथ बिगहा' में बसा हुआ था। फिर परिवारके लोग 'विश्वनाथ बिगहा' से आकर फखरपुर ग्राममें बस गये। श्रीराधा बाबाके दादाजीका नाम था पं. श्रीअम्बिकादत्तजी मिश्र। भगवत्कृपासे पं. श्रीअम्बिकादत्तजीको पाँच पुत्र प्राप्त हुए— श्रीजयपाल, श्रीभूपाल, श्रीश्रीपाल, श्रीमहीपाल और श्रीदेवशरण। इन पाँचों भाइयोंके वंश-विस्तारकी संक्षिप्त जानकारीके लिये 'मिश्र वंश बेलि' को आगामी पृष्ठ पर देखना चाहिये।

पं. श्रीआम्बिकादत्तजीने श्रीभूपालजीको बड़े चावसे पढ़ाया और

उन्होंने बड़ी योग्यता प्राप्त कर ली। विधिका विधान बड़ा विचित्र है, विवाह होनेके थोड़े दिन बाद ही सर्पदंशसे श्रीभूपालजीका देहान्त हो गया। अपने सुपठित-सुयोग्य पुत्रकी असामयिक मृत्युसे पं.श्रीअम्बिकादत्तजीको अत्यधिक शोक हुआ। शोकाकुल पण्डितजीने निश्चय कर लिया कि अब किसी पुत्रको पढ़ाना ही नहीं है।

श्रीमहीपालजीके हृदयमें बचपनसे ही वैराग्यके भाव तो उठा ही करते थे, इसीके साथ-साथ विद्यार्जनके लिये भी बड़ी लालसा थी, परंतु उन्हें पिताजीकी ओरसे कुछ भी प्रोत्साहन नहीं मिल रहा था। एक दिन वे चुपचाप अपने घरसे ऐसे स्थानपर चले गये, जहाँ पठन-पाठनकी सुविधा थी। वहाँ पहुँच कर उन्होंने संस्कृत विद्यालयमें पढ़ना आरम्भ कर दिया और फिर गाँवपर पिताजीके पास पठन-पाठन सम्बन्धी सूचना भेज दी। अध्ययनके प्रति उनकी उत्कट रुचि देखकर इस बार पिताजीने विरोध नहीं किया। पं.श्रीअम्बिकादत्तजीको कुछ दिनों बाद ज्ञात हुआ कि मेरे अध्ययनशील पुत्रका वैराग्य-भाव उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। इससे वे चिन्तित हो उठे और उन्होंने शीघ्र ही श्रीमहीपालजीका विवाह कर दिया। श्रीमहीपालजी मिश्रने इच्छा न होते हुए भी गृहस्थ जीवन स्वीकार किया मात्र गुरुजन-आदेश-पालनके रूपमें।

पं.श्रीमहीपालजी मिश्रको जीवनसंगिनी भी प्रभु-कृपासे अपने स्वभावके अनुरूप ही मिली थी। जिस प्रकार पं.श्रीमहीपालजी अपने सात्त्विक विचार, आस्तिक मति, निर्दोष व्यवहार, अकलुष आचरण और निस्स्पृह जीवनके कारण सभीके लिये श्रद्धेय बन गये थे, उसी प्रकार आपकी जीवनसंगिनी भी धर्म-निष्ठा, साधु-सेवा, सर्व-हितैषिता, परदुखकातरता, जन-वत्सलता और हित-परायणताके कारण सदैव समादृत रही।

संत-सेवाके समान ही, श्रीमिश्रजीकी जीवनसंगिनीको अति प्रिय थी भगवदुपासना। पुरोहिती वृत्तिके कारण घरमें पूजा-पाठका वातावरण था ही। श्रीमिश्रजीकी सहधर्मिणी पढ़ी-लिखी नहीं थी। अक्षर ज्ञान नहीं होनेके बाद भी उसे रुक्मिणीमंगल, सीतास्वयंवरके प्रसंग याद थे। वह इन प्रसंगोंको बड़े प्रेमसे गुनगुनाया करती थी। श्रीजयदेवकृत 'गीतगोविन्द' उसे कण्ठस्थ था। वह प्रतिदिन सम्पूर्ण गीतगोविन्दका पाठ कर जाया करती थी। वह शुद्ध

उच्चारण नहीं कर सकती थी। वह यह भी नहीं जानती थी कि वह जिसका पाठ कर रही है, उसके श्लोकोंका अर्थ क्या है, परंतु श्रद्धा-पूरित हृदयसे वह सम्पूर्ण गीतगोविन्दका पाठ अवश्य करती थी। प्रत्येक पूर्णिमाको वह भगवान श्रीसत्यनारायणजीकी कथा अवश्य करवाती थी। कथाके समय भगवान श्रीशालिग्रामजीका सविधि पूजन एवं उसके बाद प्रसाद-वितरणमें उसका बड़ा उल्लास रहा करता था।

पं.श्रीमहीपालजी मिश्र अपने भालपर ऊर्ध्व-पुण्ड्र तिलक लगाया करते थे। इस तिलकके आधारपर यह अनुमान किया जा सकता है कि श्रीरामानुज सम्प्रदायमें उनकी दीक्षा हुई होगी। श्रीपण्डितजीका जीवन बड़ा ही तितिक्षापूर्ण, तपपरायण, कर्तव्यनिष्ठ, धर्मभीरु तथा सत्यप्रेमी था। श्रीपण्डितजीका जीवन इतना अधिक उज्ज्वल था कि स्त्री-वर्गमें भी उनकी निर्बाध गति थी। वे सभीके लिये अति विश्वसनीय थे। यही कारण है कि संभ्रान्त परिवारकी कुल-वधुओंको भी अपना दुःख-दर्द निवेदन करनेमें संकोच नहीं होता था। श्रीपण्डितजीका द्वार सभी स्तरके स्त्री-पुरुषोंके लिये सदा खुला रहता था।

श्रीपण्डितजीकी निस्स्पृहता अद्‌भुत थी। उन्होंने कभी किसीसे कुछ माँगा ही नहीं। वे पूजा-पाठके लिये दक्षिणा कभी ठहराते ही नहीं थे। उनकी अयाचकताका व्रत एक बारके लिये भी कभी खण्डित नहीं हुआ। गाँवके वृद्ध लोग उनकी निरीह एवं निर्लोभी वृत्तिके अनेक प्रसंग सुनाया करते हैं। अयाचकताका कठोर व्रत होते हुए भी उनके गृहस्थ जीवनमें कभी अभाव नहीं रहा। सात्त्विक एवं साधारण जीवन व्यतीत करनेके लिये यजमान लोग स्वतः ही पर्याप्त अन्न-वस्त्र दे दिया करते थे।

पण्डितजीकी संतोंमें बड़ी निष्ठा थी। यही कारण है कि उन सरल श्रद्धालु पण्डितजीके द्वारपर साधु-संतोंका स्वागत-सत्कार प्रायः होता ही रहता था। इसके अतिरिक्त तीर्थ-यात्रामें भी उनकी बड़ी रुचि थी। एक बार उन्होंने पैदल ही श्रीजगन्नाथ धामकी यात्रा की। रेलगाड़ीकी सुविधा थी, इसके बाद भी श्रद्धावशात् पैदल ही गये और पैदल ही वापस आये। यात्रामें उनके साथ उनका एक भतीजा था। गाँवसे पैदल पहले तारकेश्वरनाथ गये और वहाँसे श्रीजगन्नाथ धाम गये। इस पैदल यात्रामें तीन मास लगे।

एक बार अपनी धर्मपत्नीके साथ पण्डितजीने व्रजधामकी यात्रा की। दोनों साथ-साथ श्रीगोवर्धनगिरिकी परिक्रमा लगा रहे थे। परिक्रमा लगाते-लगाते संध्या हो गयी। शरीर भी बहुत श्रान्त हो रहा था। अपनी धर्मपत्नीको सम्बोधित करनेकी उनकी रीति भी अपने ही ढंगकी निराली थी। पण्डितजी 'श्रीराम' कहकर ही अपनी धर्मपत्नीको बुलाया करते थे। पण्डितजीने कहा— श्रीराम! क्यों नहीं यहीं विश्राम किया जाये? सूर्यास्त होनेवाला है और यहाँ पासमें यह छोटी-सी बस्ती है। रातको यहीं विश्राम करके फिर कल प्रातः काल यहाँसे चला जाये।

उनकी धर्मपत्नी अपनी स्वीकृति प्रदान करनेवाली ही थीं, तभी उनको श्रीगोवर्धनगिरिके शिखरपर आकाशमें खड़े हुए भगवान श्रीराधाकृष्ण दिखलायी दिये और वे मधुर स्वरमें कह रहे थे— यहाँ मत रुको, यहाँ मत रुको।

इस संकेतको पाते ही उन्होंने अति विनम्र स्वरमें उनसे कहा— यहाँ रुकना उचित नहीं लग रहा है। आगे बढ़ा जाय। ठहरनेके लिये कोई-न-कोई उपयुक्त स्थान आगे मिलेगा ही।

इस सुझावको पण्डितजीने सहज प्रकारसे स्वीकार कर लिया। श्रीगोवर्धन ग्राम पहुँचनेपर ज्ञात हुआ कि उस बस्तीमें ठहरना वस्तुतः उचित नहीं था। यदा-कदा वहाँ दुर्घटना होती रहती है और वह स्थान निरापद नहीं है।

वृद्धावस्थामें श्रीपण्डितजीकी नेत्र-ज्योति मन्द पड़ गयी थी, अतः पञ्चांगमें तिथि-वार आदि देख पाना सम्भव नहीं था, परंतु उनकी स्मरण-शक्ति बड़ी प्रबल थी। किसी आत्मीयसे वे पञ्चांगके एक मासके वार-तिथि-नक्षत्र आदि सुन लिया करते थे। एक बार सुन लेना ही पर्याप्त था। सुने हुए विवरणके आधारपर श्रीपण्डितजी आये हुए लोगोंको मुहूर्त आदि बतला दिया करते थे।

* * * * *

संक्षिप्त मिश्र वंश वेलि
पूज्य श्रीअम्बिकादत्तजी मिश्र
जयपाल मिश्र
भूपाल मिश्र
श्रीपाल मिश्र (अमोला देवी)
महिपाल मिश्र (अधिकारिणी देवी)
देवशरण मिश्र
रामा मिश्र
ईश्वरप्रसाद मिश्र
देवदत्त मिश्र
भवदत्त मिश्र
गिरिजाशंकर मिश्र
उमाशंकर मिश्र
लक्ष्मीकान्त मिश्र
शशिभूषण मिश्र
फणिभूषण मिश्र
तपस्वी मिश्र
वासुदेव मिश्र
सोहागमणि देवी
जगत्तारिणी देवी
तारादत्त मिश्र
लालमणि मिश्र चक्रधर मिश्र (महाभाव निमग्न श्रीराधा बाबा)
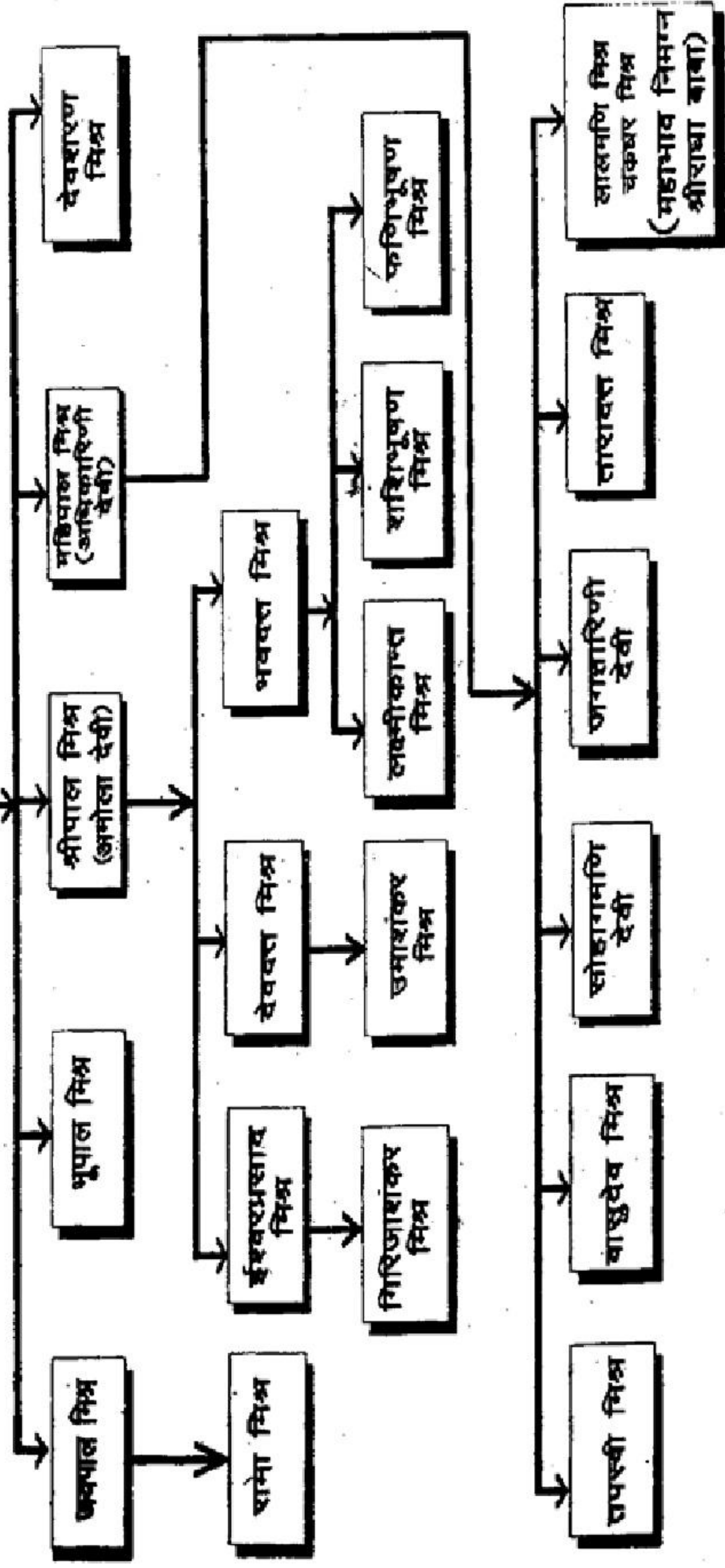
गाँवके राजपरिवारसे घनिष्ठ सम्बन्ध

फखरपुरके मिश्र परिवारका गाँवके जमींदारसे बड़ा घनिष्ठ सम्पर्क रहा था। जमींदार सम्मान्य श्रीगोकुलानन्दजी सिन्हाका उस क्षेत्रमें राजाके जैसा सम्मान था और उनके परिवारको राजपरिवार ही कहा जाता था। इस राजपरिवारमें पं.श्रीमहीपालजी मिश्र पुरोहितके समान समादृत थे। इस राजपरिवारके प्रधान सदस्य सम्मान्य श्रीअविमुक्तेश्वरजी बहादुरसे पं.श्रीमहीपालजी मिश्रके सुपुत्र पं.श्रीतारादत्तजी मिश्रका बड़ा निकटका सम्बन्ध था। पं.श्रीतारादत्तजी मिश्रके सहोदर भाई चक्रधर मिश्रका (जो सिद्धावस्थाको प्राप्त करके श्रीराधा बाबा कहलाये) राजपरिवारमें आना-जाना होने लगा और उन्हें पूर्ण सम्मान दिया जाने लगा। चक्रधर मिश्रका इस राजपरिवारसे बड़ा निकट सम्पर्क रहा और श्रीअविमुक्तेश्वर बहादुर, श्रीरणजीत बहादुर, श्रीरवणेश्वर बहादुर आदिसे बड़ा लगाव था। जमींदारी प्रथाके उन्मूलनसे इस राजपरिवारके वैभवको बड़ा आघात पहुँचा।

* * * * *

आविर्भाव

इन्हीं पं.श्रीमहीपालजी मिश्रकी परम पुण्यमयी सौभाग्यशालिनी धर्मपत्नी पूज्या अधिकारिणी देवीकी कोखसे पौष शुक्ल नवमी सं.१९६९ वि.पौष शुक्ल ९ गुरुवार (१६ जनवरी १९१३) के दिन एक शिशुका फखरपुर ग्राममें जन्म हुआ, वही भविष्यमें श्रीराधा बाबाके नामसे विख्यात हुआ। आश्चर्य और आनन्दकी बात यह कि जन्मके समय माँको प्रसव वेदना नगण्य रूपमें हुई। मेष राशिमें जन्म होनेके कारण नवजात शिशुका नाम रखा गया लालमणि, किन्तु प्रचलित नाम हुआ चक्रधर मिश्र। चक्रधर कुल चार भाई थे। चारोंमें सबसे छोटे चक्रधर ही। अन्य भाइयोंके नाम हैं श्रीतपस्वी मिश्र, श्रीवासुदेव मिश्र और श्रीतारादत्त मिश्र। चक्रधरके दो सहोदरा बहिनें भी थीं।

जन्म-पत्रिका

चक्रधर (बाबा)ने संन्यास लेनेके बाद अपनी जन्मपत्री फाड़कर फेंक दी थी। जन्मपत्रीके अभावमें जन्म-तिथिको निर्धारित करनेमें गोरखपुर विश्वविद्यालयके विद्वान आदरणीय श्रीविश्वम्भरशरणजी पाठकको बड़ा परिश्रम करना पड़ा। चक्रधर (बाबा) के बड़े भाईसे, फखरपुर ग्रामके लोगोंसे तथा अनेक विशिष्ट व्यक्तियोंसे मिलकर बात करनेके बाद जो तथ्य प्राप्त हुए, उन तथ्योंका ज्योतिष शास्त्रकी दृष्टिसे विवेचन एवं गणना करनेपर श्रीपाठकजीने यही निश्चित किया कि सं. १९६९ वि. पौष शुक्ल नौमी गुरुवार तदनुसार १६ जनवरी १९१३ ई. चक्रधर (बाबा)की जन्मतिथि है।

फिर देखनेको मिल गया हस्तलिखित 'यति-शतकम्' संस्कृत काव्य, जो बाबाके बड़े चचेरे भाई पं.श्रीदेवदत्तजी मिश्र द्वारा बहुत वर्ष पहले लिखा गया था। यह सारा काव्य बाबापर ही रचित है। इस काव्यमें भी वही जन्मतिथि दी हुई है, जो श्रीपाठकजीने विवेचनोपरान्त निर्धारित किया है। इसके बाद भी यहाँ-वहाँसे जितने भी विविध प्रकारके संकेत-सूत्र मिल पाये, उन्हींको आधार मानकर उनपर कई वर्षोंतक परस्परमें गम्भीर चिन्तन और मनन होता रहा। सुदीर्घ कालतक विचार एवं विवेचनके उपरान्त सम्मान्य भाई श्रीरामगोपालजी पालड़ीवाल बाबाके जन्मसे सम्बन्धित जिन तथ्योंकी स्थापना कर पाये, उसीको संक्षिप्त रूपमें नीचे दिया जा रहा है।

१— प्रचलित नाम	चक्रधर मिश्र
२— पिताका नाम	पं.श्रीमहीपाल मिश्र
३— लिंग	पुरुष
४— जन्मराशिका नाम	लालमणि मिश्र (काशी पञ्चांगानुसार)
५— लहरीके अनुसार	'चो' अक्षरपर अश्विनी तृतीय चरण
६— जन्म स्थान	ग्राम फखरपुर (अरवल), जिला गया, बिहार। अरवलसे ३-३.३० किलोमीटर पूरब दिशामें फखरपुर
७— अरवल	क- अक्षांश २५°-१६' उत्तर ख- देशान्तर ८४°-४१' पूर्व
८— समयका अन्तर	+८' ४४'', S.D.(-) 02''
९— सूर्योदय	६-४७'-३६'' (स्थानीय समयके अनुसार)
१०— सूर्यास्त	१७-३२'-१२'' (स्थानीय समयके अनुसार)

११—	दिनमान	१०-४४'-३६''
१२—	गर्भ कुण्डलीसे संशोधित जन्म समय	क- भारतीय स्टैण्डर्ड समयके अनुसार १०-५४'-२२''
		ख- स्थानीय समयके अनुसार ११-३'-०६''
१३—	जन्मतिथि	सं. १९६९ वि., पौष शुक्ल ९, गुरुवार तदनुसार १६ जनवरी १९१३

जन्मांग चक्र
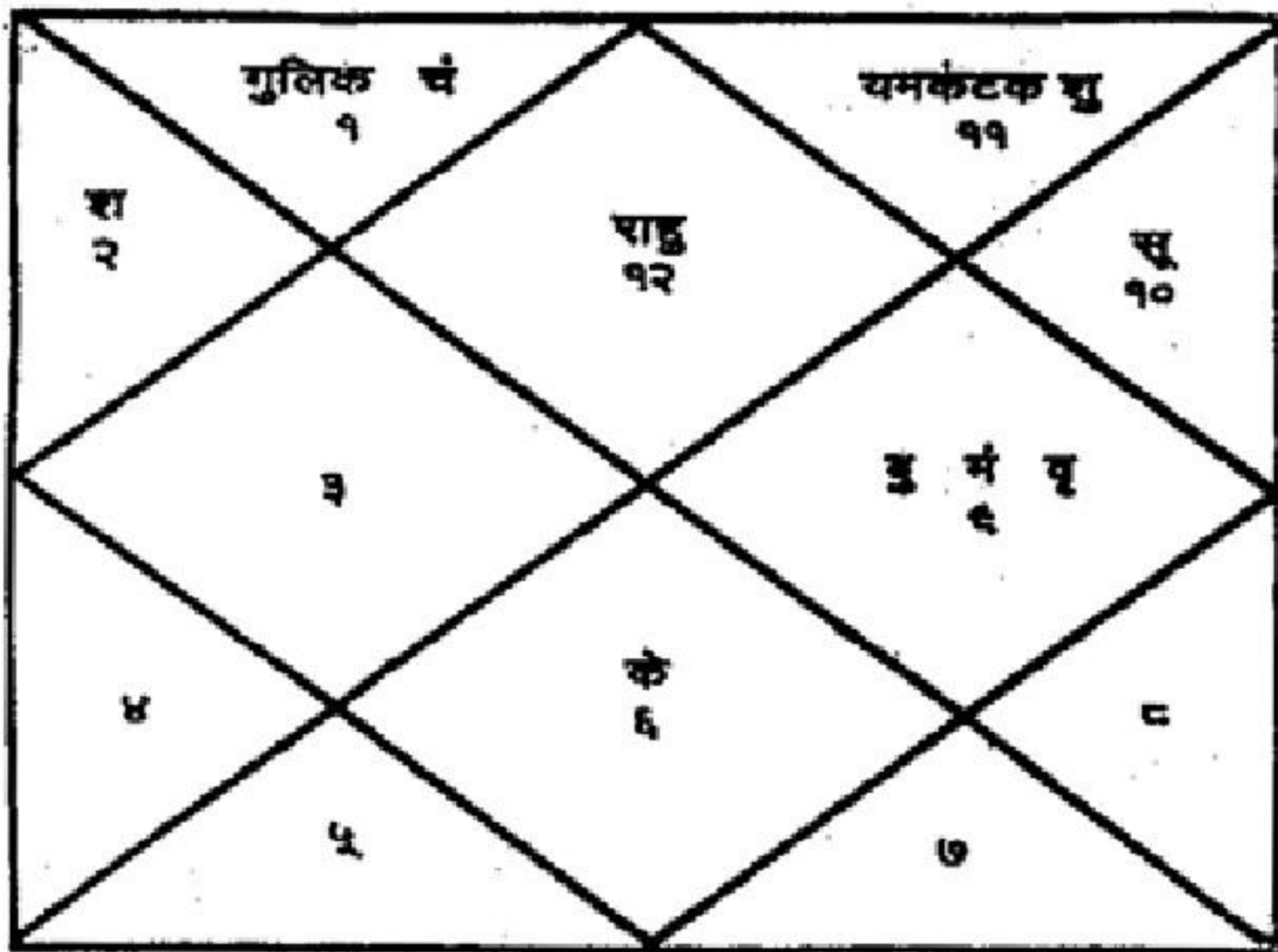
१— आयु एवं स्वास्थ्य विचार

आयुका विचार करते समय जैमिनीय मतसे आयु-कक्षाका विचार होता है और पराशर मतसे मारक और मारकेशका विचार किया जाता है। कुण्डलीमें बुध, शनि और शुक्र अनिष्ट ग्रह होनेके कारण मारक हैं। शुक्रपर शनिकी दृष्टि है, इसलिये पाराशर मतके अनुसार शुक्रकी मारकता-शक्ति शनिमें संक्रमित हो जाती है।

मारकैः सह सम्बन्धान्निहन्ता पापकृच्छनिः।
अतिक्रम्येतरान् सर्वान् भवत्येव न संशयः॥

पराशर-उडुदाय प्रदीप

कुण्डलीके अनुसार शनिकी मारकता सर्वाधिक प्रबल है। दीर्घायु होते हुए भी शनिकी दशामें मारक योग होनेसे लगभग अस्सी वर्षकी अवस्थामें आयुके पूर्ण हो जानेकी सम्भावना है। लग्नेश बृहस्पति अपने घरमें है, अतः स्वास्थ्यकी शिथिलताके पर्याप्त संकेतोंके होते हुए भी आयुर्बल विशद है।

२- विवाह एवं सन्तान योग

पुरुषकी कुण्डलीमें शुक्र स्त्रीकारक ग्रह होता है, अतः शुक्रकी महादशामें विवाह हो जानेकी पूर्ण सम्भावना है। सन्तान भावपर शनि, सूर्य और मंगलकी पूर्ण दृष्टि है। पञ्चममें वरुणकी स्थिति है और पञ्चमेश तृतीयमें है। यह स्थिति सन्तान हीनताको द्योतित करती है।

३- विद्या एवं सद्गुण विचार

मंगल, बुध और बृहस्पति एक राशिमें स्थित हैं और इनमें बृहस्पति स्वगृही है। यह प्रबल राजयोग है।

क्षमापालकः स्वीयकुले नरः स्यात्
कवित्वसंगीत कलाप्रवीणः।
परार्थ संसाधकतैक चित्तो
वाचस्पतिज्ञाबनिसूनुयोगे ।।

जातकाभरणम्

कुण्डलीके अनुसार उदारता, मानवीयता, सच्चरित्रता, काव्यपटुता संगीतकला प्रवीणता, सुकीर्ति आदिका स्पृहणीय योग है।

४- कीर्ति विचार

पाराशरके अनुसार लग्नेश दशमेश, गुरु दशमस्थ हो तो वह प्रचुर कीर्ति प्रदान करता है और यह योग कुण्डलीमें है।

'लग्नेशे केन्द्रभावस्थे सत्कीर्तिसहितो भवेत्।'
'लग्नस्थानाधिपे भाग्ये लग्नेशे कर्मसंयुते।'

५- राजदण्ड विचार

लग्नसे द्वितीय और द्वादश भावमें लगभग समान बलशाली एक-एक ग्रह है और यह योग राजदण्ड-भोगकी ओर संकेत करता है।

६- धर्म भाव विचार

धर्म-भावका स्वामी मंगल ग्रह वृहस्पतिके साथ दशम भावमें है। यद्यपि धर्म भावपर शनिकी दृष्टि है, किन्तु उच्चाभिलाषी भाग्येशपर वृहस्पतिका पूर्ण प्रभाव है और एक अन्य शुभ ग्रह बुधके साथ होनेसे उसमें और अधिक विशिष्टता आ गयी है। बुध और वृहस्पति दोनों क्रमशः विद्या और बुद्धिका विधान करनेवाले ग्रह हैं और ये सदा शुभ कर्मोंमें प्रवृत्त करते रहते हैं। निश्चय ही कुण्डलीका स्वामी प्रखर धार्मिक होगा और अपनी साधनाके मार्गपर अबाध रूपसे प्रगति करते हुए उच्च-से-उच्च सोपानोंको पार करनेमें समर्थ रहेगा।

७- प्रव्रज्या एवं हंस योग

चलित चक्रके अनुसार सूर्य, मंगल, बुध और वृहस्पति, इन चार ग्रहोंका दशम भावमें योग होना संन्यासका सूचक है।

ग्रहैश्चतुर्भिर्यदि पञ्चभिर्वा
षड्भिस्तथैकालयसंस्थितैश्च।
नश्यन्ति सर्वे खलु राजयोगाः
प्राव्राजिको योग इति प्रदिष्टः॥

— ढुण्ढिराज-जातकाभरणम्

चतुरादिभिरेकस्थैः प्रव्रज्या बलिभिः समाः।
रव्यादिभिस्तपस्वी च कपाली रक्तवस्त्रभृत्॥

— वृहत्पाराशर होरा शास्त्र

मंत्रेश्वरने अपनी प्रौढ़ रचना फल दीपिकामें लिखा है कि चार ग्रह, जिनमें दशमेश भी हो, केन्द्र या त्रिकोणमें स्थित हों तो व्यक्ति संन्यासी होता है। ज्योतिषके अध्येता जानते हैं कि केन्द्रादि संख्या भावोंकी होती है।

धनुष राशिका वृहस्पति केन्द्र (दशम भाव) में स्थित होकर हंसयोग बना रहा है। ज्योतिषके पंच-महापुरुष-योगोंमें एक योग हंस-योग भी है। यह हंस-योग साधनामें महान सिद्धि प्रदान करनेवाला है।

* * * * *

शैशव

शिशु अवस्थामें चक्रधर बहुत ही खूबसूरत और स्वस्थ था। उसके अंगका सुन्दर गौर वर्ण सबको लुभा लेता था। रोनी प्रकृतिका नहीं होनेके कारण उसकी शिशु-सुलभ चेष्टाएँ सभीको बड़ी प्यारी लगती थी। कुछ बड़ा होनेपर चक्रधर घरमें और घरके बाहर प्रायः खेलता रहता था।

जब उसकी आयु एक सालकी हुई तो कभी-कभी हाथमें एक छोटी-सी छड़ी लिये हुए वह आता और घरकी बड़ी महिलाओं या बहिनको खेल-खेलमें मार दिया करता था। वह सम वयस्क बच्चोंसे झगड़ा भी कर लिया करता था।

पण्डितजीके घरपर गाय थी और घरकी महिलाएँ ही दुह लेती थी। जब घरकी महिलाएँ गाय दुहती थी तो चक्रधर लाड़-लाड़में उनकी पीठपर चढ़ जाया करता था। उसको पीठपर लिये-लिये महिलाएँ दूध दुहती रहती थी। दही मथते समय तो चक्रधर माखनके लिये मचल जाया करता था। कई बार वह मथानी पकड़कर लटक जाता था। जब माखन दे दिया जाता, तब उसकी मचलन शान्त होती। उसकी यह मचलन भी सबको प्यारी लगती।

* * *

चक्रधर जब चार वर्षका था, तब उनकी जन्मदात्री माँने चक्रधरको नारी- आकृतिवाला एक धातु-खण्ड दिया था। यह आरतीका खण्डित हत्था था। उस हत्थेकी आकृति नारीके समान थी। उस धातु-खण्डको देकर माँने चक्रधरसे कहा था कि यह गोपी है, तुम इसकी पूजा किया करो। माँके कथनानुसार चक्रधर उस धातु-मूर्तिकी पूजा करने लगा। जो नये-पुराने कपड़े घरमें मिल जाते, उन्हें ही चक्रधर उस मूर्तिपर लपेट देता और घरमें जो खाने-पीनेको मिलता, उसीका भोग लगाता।

वह पूजा थी अपनी बाल-मतिके अनुसार और वह भी घरवालोंके कार्योंकी नकल करते हुए। अब कहनेके लिये यह कह दिया जा सकता है कि गोपी-भावकी साधनाका आरम्भ चक्रधरका चार वर्षकी आयुमें हो गया था, पर बाल्यकालकी वह साधना किसी रसोपासना-परक- प्रबोधपर आधारित थी ही नहीं। बचपनमें चक्रधर घरवालोंकी देखा-देखी पूजा किया करता था। पूजा करते समय चक्रधर स्वयंको पाञ्चभौतिक स्थूल-देहमें

अध्यस्त बालक ही मानता था, गोपी-स्वरूपा बालिका नहीं।

जब चक्रधरकी आयु आयु चार-पाँच वर्षकी रही होगी, तब वह भाई-बहिनोंके साथ तथा गाँवके बच्चोंके साथ अपने घरके आँगनमें खेल रहा था। उसी समय एक साधु घरके द्वारपर भिक्षा माँगनेके लिये आये। जन्मदात्री माँको साधु-सेवामें बड़ा उत्साह रहा करता था। गाँवमें उसकी साधु-सेवा-परायणताकी बात विख्यात थी और गाँवमें यदि कोई साधु-संत आते तो लोग उनको प्रायः पण्डितजीके घरपर भेज दिया करते थे।

बच्चोंके खेलते समय जो साधु द्वारपर भिक्षा माँगने आये थे, वे बड़े तेजस्वी थे। उनके मुख-मण्डलपर बड़ी कान्ति थी। वे द्वारपर खड़े होकर एकटक चक्रधरकी ओर देखने लगे। थोड़ी देर बाद भिक्षा मिल जानेपर वे चले गये। उनके उस दृष्टि-पातका चक्रधरपर विलक्षण प्रभाव पड़ा। यही कहना चाहिये कि दृष्टि-पातके माध्यमसे उन्होंने शक्ति-पात ही किया। उन तेजस्वी साधुके चले जानेके बाद चक्रधर खेलना छोड़ करके बाहर आकर घरके द्वारपर आसन लगाकर बैठ गया तथा अपनी आँखें बन्द करके लगातार 'राम-राम- राम-राम' बोल-बोलकर जपने लगा। आँखें तो बन्द थीं ही, आँसूकी धारा कपोलोंपर अविरल बह रही थी। घरवाले घबराये कि इस बालकको क्या हो गया है? घरवालोंका चिन्तित होना स्वाभाविक था, पर चक्रधर अपनी सुध-बुध खोये हुए निरन्तर जप कर रहा था। थोड़ी देर बाद भावके शमित होनेपर वह प्रकृतिस्थ हुआ। उन महासिद्ध साधुने अपना पावन दर्शन देकर तथा कोमल-हृदय बालकपर अमोघ दृष्टि डालकर उसके जीवनमें आध्यात्मिकताके बीजका वपन कर दिया, जिसके शुभ परिणाम भविष्यमें देखनेको मिले।

* * *

चक्रधरको बचपनमें पाठशाला जाना अच्छा नहीं लगता था। वह पाठशाला जानेसे बचना चाहता था, पर बच नहीं पाता था। घरवाले ज्यों-त्यों करके उसे भेज ही देते थे। चक्रधरको एक उपाय सूझा कि यदि भूत-ग्रस्त होनेका स्वाँग रचा जाय तो शायद पाठशाला जानेसे बचाव हो जाय। चक्रधरने कई बार देखा था कि भूत-ग्रस्त व्यक्ति किस प्रकारसे चेष्टा किया करता है। पाठशालामें प्रतिदिन प्रार्थना होती थी। ज्यों ही यह प्रार्थना समाप्त हुई कि चक्रधरने वैसी ही चेष्टाएँ करनी आरम्भ कर दी।

स्वाँग सही उतरा। लोग और लड़के चक्रधरको घर ले आये। उसने अपने मुँहसे बनावटी फेन निकालना आरम्भ कर दिया। माँ घबरा गयी। कुछ उपचार किया गया और चक्रधर स्वस्थ हो गया। माँने कहा कि लड़का पाठशाला नहीं जायेगा। पाठशाला जाना बन्द हो गया, पर यह ढंग थोड़े दिन ही रहा। पुनः पाठशाला जाना आरम्भ करना पड़ा।

* * *

चक्रधरके मनमें श्रीरामलीला देखनेका बड़ा चाव रहा करता था। आश्विन मासके शुक्ल पक्षमें श्रीविजयादशमी पर्व आया करता है। इस अवसरपर गाँवके बाहर श्रीरामलीला हुआ करती थी। बाल-आग्रहको देखकर बड़े भाई श्रीतारादत्तजी चक्रधरको श्रीरामलीला दिखलानेके लिये ले जाया करते थे। देखते-देखते बालक चक्रधर कभी-कभी सो जाया करता था। तब श्रीतारादत्तजी श्रीरामलीलाके मेलेसे अपने कन्धेपर उठाकर उसे घर लाया करते थे।

* * *

एक बार चक्रधर घरकी महिलाओं और अपनी माताजीके साथ श्रीरामलीला देखनेके लिये गया। लीला देखकर वह लौट रहा था।

मेलेकी ओर जानेवाले रास्तेके दोनों तरफ मिठाई, फल, खिलौनें और अन्य उपयोगी चीजोंकी दुकानें लगी हुई थी। एक व्यक्ति रास्तेके किनारे जमीनपर कपड़ा फैलाकर और उस कपड़ेपर कापी, किताब, रबड़, पेन्सिल रखकर बेच रहा था। चक्रधरको रबड़-पेन्सिलकी जरूरत थी। उसने बेचनेके लिये कपड़ेपर रखी हुई रबड़-पेन्सिल देख ली थी, पर उसके मनमें यह भी बात थी कि मैं अपने मुँहसे इसके लिये नहीं कहूँगा। मैं भगवानसे प्रार्थना करूँगा और वे जरूर मुझे किसी प्रकार दिलवा देंगे।

चक्रधरने मन-ही-मन भगवानसे प्रार्थना करनी आरम्भ कर दी कि मुझे एक रबड़ और एक पेन्सिल चाहिये। उसी समय पूज्या माँने अपने पुत्र चक्रधरसे कहा— अरे! देख! यह आदमी रबड़-पेन्सिल बेच रहा है। तुम लोगे?

चक्रधरके चेहरेपर प्रसन्नताके भावको देखकर माँने उसे रबड़-पेन्सिल खरीदकर दे दिया।

बाल-मानसकी भगवदास्था, प्रभु-प्रार्थना एवं भगवदाश्रयका यह एक स्मरणीय प्रसंग है।

बाल्य-काल में श्रीशिव-भक्ति

सन् १९२० ई. की बात है। तब चक्रधरकी आयु सात वर्षकी थी। वह सरकारी पाठशालामें पढ़ने जाया करता था। पाठशालामें एक पीरियड (घंटा) ड्रिल (शारीरिक व्यायाम) का हुआ करता था। पीरियडमें पाठशालाके विद्यार्थी एक पंक्तिमें खड़े करवाये जाते थे। पंक्तिबद्ध विद्यार्थियोंसे मार्च (प्रचलन) भी करवाया जाता था। बहुत बड़ी-बड़ी आयुके विद्यार्थी पंक्तिमें खड़े होते थे। ऊँचाईकी दृष्टिसे चक्रधर लगभग सबसे छोटा था और प्रायः पंक्तिके अन्तिम छोरपर उसको खड़ा होना पड़ता था। उस समय वह धोती पहना करता था। उसकी धोती ढीली-ढाली रहा करती थी। मार्च करते समय धोतीकी सँभाल ठीकसे रह नहीं पाती थी। ड्रिल-मास्टर साहब प्रायः कहा करते थे– अरे हे पण्डित! अपनी धोती सँभालो।

ड्रिल-मास्टर साहबके कहनेपर वह कुछ तो अपनी धोती सँभालता था और कुछ अपने हाथसे धोतीको पकड़े-पकड़े ड्रिल करते रहता था।

एक बार पाठशालामें खेल-प्रतियोगिता हुई। ऊँची कूद (High Jump) लम्बी कूद (Long-Jump) दौड़ (Race) आदि-आदि अनेक प्रतियोगिताओंमें चक्रधरने अपना नाम लिखवाया, परंतु प्रत्येक बार उसे असफलता मिली। पाठशालामें बड़ी-बड़ी आयुके विद्यार्थी थे, जिनके शरीरकी ऊँचाई और शरिरिकी शक्ति चक्रधरसे बहुत अधिक थी। उन लम्बे-तगड़े विद्यार्थियोंके समक्ष वह भला कैसे सफल हो सकता था? उन सफल विद्यार्थियोंकी छातीपर जब तगमा (Medal) बाँधा जाता था तो उसे देखकर चक्रधरके मनमें यह बात बार-बार उठा करती थी कि क्या एक तगमा मुझे नहीं मिल सकता। सोनेका पानी चढ़ा हुआ तगमा नीले-नींले फीतेके ऊपर बड़ा चमकता। चमकते तगमेको देखकर चक्रधरका मन बड़ा प्रलुब्ध और आकृष्ट होता था, किन्तु मात्र चाहनेसे तो बात बननेवाली नहीं थी। यह तगमा तो तभी मिल सकता था, जब वे किसी प्रतियोगितामें सफल हों।

बाल्यावस्था होते हुए भी चक्रधरकी भगवान श्रीशिवजीमें बड़ी आस्था थी। वह बहुत देरतक भगवान श्रीशिवजीसे विनती करता रहा। यों ही नहीं, बड़े करुणार्द्र मनसे विनती हो रही थी। उसका सहज विश्वास था कि

भगवान शिव मेरी विनती अवश्य सुनेंगे और मेरी मनोकामना अवश्य पूर्ण होगी। विनती करते-करते उसके मनमें एक आवाज उठी— तुम गीत सुनावो, तुम गीत सुनावो।

चक्रधरको भगवान शिव दिखलायी नहीं दिये, पर उसे यह जँचने लगा कि भगवान शिव ही गीत सुनानेके लिये आदेश दे रहे हैं। वह अपनी बड़ी भाभीजीके पास गया और कहने लगा— ऐ भाभी! ऐ भाभी!! तू मुझे एक गीत सिखा दे।

भाभीजीने कहा— गीत तो स्त्रियाँ गाया करती हैं, तुम्हें गीतसे क्या मतलब? तुम गीत सीखकर क्या करोगे?

उसने कहा— यह सब तू मत पूछ। बस, तू मुझे एक गीत सिखा दे।

चक्रधरके आग्रहको देखकर भाभीजीने कहा— उस 'स्त्री-धर्म-शिक्षा' पत्रिकामें दो गीत हैं, उनको याद कर लो।

भाभीजी 'स्त्री-धर्म-शिक्षा' नामक पत्रिका मँगवाया करती थीं। भाभीजीने पत्रिकाका वह अंक दे दिया, जिसमें वे दो गीत थे। उसने इन दोनों गीतोंको कण्ठस्थ कर लिया।

अगले दिन पाठशालामें विद्यार्थियोंकी सभा होनेवाली थी। इसी सभामें प्रतियोगितामें सफल विद्यार्थियोंको पारितोषिक मिलनेवाला था। चक्रधरने सोचा था कि जब विद्यार्थियोंकी सभा होगी, तब गीत सुनाऊँगा। वह बहुत पीछे बैठा था। उसके मनमें गीत सुनानेकी भावना बार-बार उठ रही थी, पर वह अपनी भावनाको व्यक्त करनेके लिये साहस नहीं कर पा रहा था। पाठशालाके प्रधानाचार्य श्रीविद्यानन्द सिंहजी सभाका संचालन कर रहे थे। वे सेना-विभागसे आये हुए व्यक्ति थे। सभाके सामने टेबुलपर अँगरेज सम्राट जार्ज पंचमका एक बड़ा चित्र रखा हुआ था। चक्रधरने खड़े होकर और बड़ा साहस बटोरकर धीरेसे कहा— महाशय! मैं एक गीत सुनाना चाहता हूँ।

सभाके एक दम आगे श्रीप्रधानाचार्य और सभाके एकदम पीछे चक्रधर। श्रीप्रधानाचार्यजी और चक्रधरके बीचमें जितनी दूरी थी और चक्रधरने जितने धीरेसे कहा था, उसे देखते हुए उनकी मन्द आवाज दूर-स्थित श्रीप्रधानाचार्यजीतक पहुँचनी ही नहीं चाहिये थी, पर सच्ची बात

सफलता और प्रसन्नतासे माँके हृदयके आनन्दकी सीमा नहीं थी।

* * *

एक अन्य प्रसंग छात्र-वृत्तिको लेकर है। सरकारकी ओरसे श्रेष्ठ विद्यार्थीको छात्र-वृत्ति मिलनेवाली थी। श्रेष्ठ विद्यार्थी वही कहलाता था, जो परीक्षामें सर्वाधिक अंक प्राप्त करे। चक्रधर छात्र-वृत्ति पाना चाहता था, पर उनके लिये समस्या यह थी कि गणितमें किस प्रकार बात बन पायेगी। गणित उसका अत्यधिक कमजोर विषय था। उसने फिर भगवान शिवसे प्रार्थना करनी आरम्भ कर दी। प्रार्थना करते-करते उसके मनमें एक बात स्फुरित हुई— अपने बड़े भाईसे गणितके दस-बारह प्रश्न मैं पूछ लूँ। वे जिन प्रश्नोंको उत्तर सहित बता देंगे, उनको मैं रट लूँगा। यदि वे ही प्रश्न परीक्षामें आ गये, फिर तो कहना ही क्या है?

चक्रधरने अपने बड़े भाईसे कहा। उन्होंने नौ-दस सालके प्रश्न-पत्र अपने हाथमें लिये। सभी प्रश्नपत्रोंको देखकर और अपने अनुभवके आधारपर उन्होंने बारह प्रश्नोंको चुन लिया और उन प्रश्नोंको हल करके चक्रधरको दे दिया। वे बारहों प्रश्न उत्तर सहित उसने रट लिये। अब क्या ही आश्चर्यकी बात! जो-जो प्रश्न उसने रटे थे, वे सब-के-सब ज्यों-के-त्यों प्रश्न-पत्रमें थे। उसके हर्षकी सीमा नहीं थी। उसने सारे प्रश्न हल कर दिये। परीक्षामें चक्रधर पूर्ण सफल रहा और सरकारकी ओरसे उसे छात्र-वृत्ति मिली। इस घटनाने उसकी शिव-भक्तिको और भी परिपुष्ट कर दिया।

* * *

पहले पाठशालामें कक्षाएँ 'ए', 'बी', 'सी', के नामसे हुआ करती थीं। कक्षा 'सी' में उत्तीर्ण होकर कक्षा 'बी' में जाना होता था और फिर कक्षा 'बी' से कक्षा 'ए' में। गणित छोड़कर अन्य सभी विषयोंमें चक्रधर बड़ा अच्छा था। सभी विषयोंमें वह बड़े अच्छे अंक लाता था। बस, गणितमें अत्यधिक कमजोर होनेके कारण अनुत्तीर्ण रहता था। भले गणितमें अनुत्तीर्ण होता, पर अन्य विषयोंमें अच्छे अंकोंसे उत्तीर्ण होनेके कारण पाठशालाके प्रधानाध्यापक चक्रधरको प्रोन्नति देकर अगली कक्षामें चढ़ा देते थे। अब पाठशालाकी अन्तिम कक्षामें उत्तीर्ण होनेके लिये सभी विषयोंमें

यह है कि इस सारे खेलका संचालन तो भगवान शिव कर रहे थे। प्रकृत धरातलपर जो सम्भव नहीं था, वह सम्भव हुआ और उसकी आवाज श्रीप्रधानाचार्यजीने सुन ली। तुरंत उन्होंने पूछा— क्या तुम गीत गाना चाहते हो?

चक्रधरने अपना हाथ उठाकर कहा— हाँ।

श्रीप्रधानाचार्यजीने चक्रधरको आगे बुलाया। ज्यों ही चक्रधर आगे गया, त्यों ही उन्होंने उन्हें उठाकर उसी टेबुलपर खड़ा कर दिया, जिसपर सम्राट जार्ज पंचमका चित्र था। चक्रधर एक छोटी कदका विद्यार्थी था, वह सभीको अच्छी प्रकारसे दिखलायी दे सके, इसीलिये उसको टेबुलपर खड़ा किया गया था। टेबुलपर खड़े-खड़े चक्रधरने गाना आरम्भ किया—

'सुधि लीजै प्रभु, क्यों बिसारा हमें।'

उस गीतकी प्रथम पंक्ति यही थी। चक्रधरने दादरा तालमें यह सारा गीत गाया। इस समय गीत चक्रधर नहीं गा रहा था, अपितु चक्रधरके कण्ठके माध्यमसे भगवान शिव गा रहे थे। सभाका सारा वातावरण गीतकी स्वर लहरीसे गुञ्जित हो उठा। सारे विद्यार्थियों-अध्यापकोंका मन स्वर-लहरीमें लहरा रहा था। गीत सुनकर श्रीप्रधानाचार्यजीका हृदय भर आया। गीतके समाप्त होते ही उन्होंने खड़े होकर तुरन्त घोषणा कर दी— पारितोषिक-वितरणका कार्यक्रम आरम्भ होनेके पहले ही मैं इस बालकको संगीत-पुरस्कार प्रदान कर रहा हूँ।

यह घोषणा करके उन्होंने तत्क्षण एक सुन्दर तगमा चक्रधरकी कमीजपर लगा दिया। अपनी कमीजसे लटकते तगमेको देखकर बालक चक्रधरकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं थी। चक्रधरका मन कृतज्ञतासे भर आया तथा वह मन-ही-मन भगवान शिवसे कहने लगा— आपने मेरी विनती सुन ली और मेरा मनोरथ पूर्ण कर दिया।

संगीतका पुरस्कार दे चुकनेके बाद श्रीप्रधानाचार्यजीने पूछा— क्या और भी कोई गीत आता है?

चक्रधरने कहा— एक और आता है।

फिर उसने वह दूसरा गीत भी सुनाया, जो उसने याद किया था। सभाके बाद सहपाठियोंसे चक्रधरको बहुत सराहना मिली, बहुत साधुवाद मिला। घरपर आकर चक्रधरने वह तगमा अपनी माँको दिखलाया। पुत्रकी

कम-से-कम ३३ प्रतिशत अंक लाना आवश्यक था। चक्रधरको लगा कि मैं अब अवश्य ही अनुत्तीर्ण कर दिया जाऊँगा। उस भगवान शिवसे प्रार्थना करनी आरम्भ कर दी कि गणितमें मेरे कम-से-कम ३३ प्रतिशत अंक अवश्य आ जायें। भगवान शिवने उसकी प्रार्थना सुन ली। यह तो पता नहीं कि बात कैसे बनी, पर परीक्षामें गणितके अन्दर ३३ प्रतिशत अंक मिल गये और चक्रधरको उत्तीर्ण घोषित कर दिया गया। इससे चक्रधरका भगवान शिवपर विश्वास और भी अधिक बढ़ गया।

* * *

सन् १९२४ की बात है। गाँवमें एक कथावाचकजी आये। कथाके प्रवाहमें 'सादर सिव कहुँ सीस चढ़ाए। एक एक के कोटिन्ह पाए॥' चौपाईका विस्तार करते हुए श्रीकथावाचकजीने बड़े रोचक ढंगसे लंकाधिपति रावणकी शिवोपासनाका वर्णन किया। इस कथाको बालक चक्रधर भी सुन रहा था। कथासे उसको भगवान शिवकी अर्चना करनेकी प्रेरणा मिली और उसने भगवान शिवकी उपासना करनेका संकल्प किया। कथामें उसने सुना था कि रावणने अपने शीश काटकर भगवान शिवपर चढ़ाये थे, उसीके आधारपर वह मन-ही-मन विचार करने लगा— रावणके समान मैं अपना मस्तक काटकर भगवान शिवपर चढ़ाऊँ, यह मेरे द्वारा सम्भव है नहीं, फिर क्या किया जाये? मैं अपना मस्तक तो नहीं चढ़ा सकता, पर प्रतिदिन एक बूँद रक्त तो चढ़ा ही सकता हूँ। मस्तक चढ़ानेमें तो जीवनके अस्तित्वका प्रश्न है, पर यह समस्या रक्तार्पण करनेमें नहीं है।

अब वह सोचने लगा कि प्रतिदिन एक बूँद रक्तको चढ़ानेके लिये क्या प्रक्रिया अपनायी जाये। घरके आँगनमें एक शिवलिंग प्रतिष्ठित है ही, इन्हीं शिवलिंगपर रक्त-बिन्दु चढ़ानेके लिये चक्रधर अपने गाँवके राजा साहबके घरके एक व्यक्तिसे नया ब्लेड माँगकर ले आया। ब्लेडसे अपनी अँगुलीका अग्रभाग तनिक-सा चीरकर उसने रक्तकी एक-दो बूँदको उस शिवलिंगके मस्तकपर अर्पित कर दिया।

दूसरे दिन नित्य नियमके अनुसार जब चक्रधरके बड़े भाई शिवार्चन करने लगे तो देखा कि भगवान शिवके मस्तकपर एक लाल धब्बा है। जब वह सहज ही दूर नहीं हुआ तो उन्होंने यह अनुमान लगा लिया कि यह

तो रक्त-बिन्दु है। रक्त-बिन्दुका निश्चय होते ही उनका मन अत्यधिक खिन्न हो गया। उनका मन अनेक प्रकारके अशुभ भावोंसे भर गया। इस रक्तबिन्दुको वे अशुभका सूचक मानने लगे। ब्राह्मण-परिवार, फिर वैष्णवी निष्ठा और फिर पुरोहिती वृत्ति, सारा कुछ सात्त्विक, परम सात्त्विक, फिर इस असात्त्विकताने घरमें कैसे प्रवेश पा लिया। यह किसकी करतूत है, जिसने भगवान शिवके मस्तकपर रक्त चढ़ाया? बड़े भाईने उस लाल धब्बेको अच्छी प्रकार स्वच्छ करके भगवान शिवसे क्षमा-याचना करते हुए सविधि पूजा की।

अगले दिन फिर चक्रधरने चोरीसे चुपचाप भगवान शिवके मस्तकपर रक्त-बिन्दु चढ़ाया। उसे तो शिवभक्त रावणके अनुकरणपर शिवोपासनाका बड़ा चाव उमड़ा हुआ था और अपने निश्चयानुसार कार्य करके वह मन-ही-मन बड़ा प्रसन्न हो रहा था। फिर अगले दिन परम वन्दनीय नित्याराध्य शिवलिंगपर रक्त-बिन्दुको देखकर बड़े भाईको बड़ा दुःख हुआ। वे समझ नहीं पा रहे थे कि वह कौन व्यक्ति है, जो ऐसा दुस्साहस कर जाता है। वे कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि इसको करनेवाला मेरा छोटा भाई चक्रधर ही है। बड़े भाईने बड़े दुखित मनसे उस रक्त-बिन्दुको पुनः स्वच्छ करके क्षमा-याचना करते हुए भगवान शिवकी पूजा की।

यही बात फिर तीसरे दिन हुई। अब तो बड़े भाईके क्षोभकी सीमा नहीं थी। बड़े भाई बहुत झल्लाये तथा क्षुब्ध वाणीमें घरके लोगोंके सामने अपनी कष्टप्रद खिन्नता व्यक्त करने लगे। किसी अनिष्टकी आशंकासे घरके सभी लोग बड़े विषण्ण थे। किसी भावी अमंगलकी आशंकासे सभीका मन आक्रान्त हो गया।

बड़े भाई किसी कामसे राजा साहबके घर गये थे और वहाँ भी इस रक्त-बिन्दुकी चर्चा करने लगे। वहाँपर वह व्यक्ति भी बैठा था, जिसने चक्रधरको नया ब्लेड दिया था। ब्लेड देनेकी बात याद आते ही उसने बड़े भाईसे कहा— आजसे तीन-चार दिन पहले आपका छोटा भाई चक्रधर मुझसे नया ब्लेड ले गया था, कहीं ऐसा नहीं कि उसीने यह सब किया हो।

घरपर आकर बड़े भाईने चक्रधरसे पूछा— तुम राजा साहबके घरसे

ब्लेड ले आये थे क्या?

उनके द्वारा 'हाँ' कहे जानेपर बड़े भाई उनकी अँगुलियाँ देखने लगे। अँगुलियोंमें चीरे जानेका चिह्न था ही। बड़े भाईका अनुमान सही निकला और वे बहुत फटकारते हुए चक्रधरको धमकाने लगे। बालक तो था ही, अतः डाँट-फटकारसे चक्रधर बहुत अधिक भयभीत हो उठा। बड़े भाईके तीव्र स्वरको सुनकर माँ तत्काल वहाँ आ गयी। आते ही माँने कहा— इसे क्यों तंग करते हो?

बड़े भाई बहुत मातृ-भक्त थे। माँके ऐसा कहते ही वे चुप हो गये और सारी बात शान्त हो गयी, परंतु चक्रधरके मनमें तो शिव-भक्ति बहुत उमड़ रही थी। बात खुल चुकी थी, अतः अब भगवान शिवके मस्तकपर रक्त-बिन्दु चढ़ाया जा सकना सम्भव नहीं था। चक्रधरने सुन रखा था कि भगवान शिवको श्मशान- भूमिकी चिता-भस्म बड़ी प्रिय है, फिर क्यों न चिता-भस्म ही चढ़ायी जाये। सबसे बड़ी समस्या यह थी कि यह चिता-भस्म कैसे प्राप्त हो? चक्रधरका मन अब चिता-भस्मकी प्राप्तिका उपाय सोचने लगा।

एक दिन उन्होंने देखा कि कुछ लोग शवको अर्थीपर ले जा रहे हैं। पाठशालाकी छुट्टी होनेवाली थी। चक्रधर अर्थीको ले जानेवालोंके साथ हो लिया। साथ जानेका प्रयोजन मात्र इतना ही था कि वह स्थान देख लिया जाये, जहाँ शवको जलाया जायेगा। उस स्थानको देखकर ये भागते हुए घर आ गया, जिससे घरपर पहुँचनेमें देरी न हो। आनेमें बड़ी शीघ्रता की, फिर भी देरी हो ही गयी। माँने विलम्बका कारण पूछा तो चक्रधरने इधर-उधरकी कुछ बातें बनाकर माँको भुलावा दे दिया।

दूसरे दिन वे अकेले ही उस स्थानकी ओर चल दिया, जहाँ शव-दाह हुआ था। चक्रधरका मन बहुत अधिक डरा हुआ था। वे यही सोच रहे था— श्मशानभूमिमें तो भूत-प्रेतका वास रहता है। मैं जा तो रहा हूँ, पर कोई भूत-प्रेत मेरा पीछा तो नहीं कर रहा है? वहाँ पहुँचनेपर यदि किसी भूत या प्रेतने मुझपर आक्रमण कर दिया तो क्या होगा? मैं तो भगवान शिवकी उपासनाके लिये चिता-भस्म लाने जा रहा हूँ तो क्या भगवान शिव

मेरी रक्षा नहीं करेंगे?

भूतके भयसे मन बड़ा आतंकित था, पर शिवोपासनाकी भावना भी बड़ी प्रबल थी। बहुत डरते-डरते चक्रधरने चिताकी ओर भस्म उठानेके लिये हाथ बढ़ाया, परंतु प्रतिक्षण यह भयावनी चिन्ता सता रही थी कि भस्मके उठाते ही यदि भूतने मेरा हाथ पकड़ लिया, तब तो जीवनसे हाथ धोना पड़ेगा।

मुट्ठीमें चिताकी भस्म लेते ही चक्रधर अपने घरकी ओर भागा, भागा भूतके भयके मारे कि वह कहीं पकड़ न ले। श्रीहनुमान-चालीसाकी चौपाई 'भूत पिसाच निकट नहीं आवे। महाबीर जब नाम सुनावे॥', 'जै जै जै हनुमान गोसाईं। कृपा करहु गुरुदेव की नाईं॥' का निरन्तर जप हो रहा था और वह भाग रहा था भरपूर अपनी शक्ति भर। भागते समय चक्रधरने पीछेकी ओर भी देखा नहीं। पीछे देखना भी खतरेसे खाली नहीं था। बस, भागते-भागते जब वह अपने गाँवपर आया, तब उनकी जानमें जान आयी। घर पहुँचकर चक्रधरने साँसमें साँस ली।

दूसरे दिन प्रातः काल चक्रधरने भगवान शिवके मस्तकपर चिता-भस्म चढ़ाई। बड़े भाईने देखा कि आज श्रीशिवलिंगपर राख चढ़ायी हुई है। उन्होंने तुरन्त अनुमान लगा लिया कि यह भी करतूत चक्रधरकी ही होगी। पूछताछ करनेके लिये उन्होंने चक्रधरको बुलाया और डाँटते हुए पूछा— भगवान शिवपर यह राख तुमने चढ़ायी क्या?

चक्रधरने तुरन्त रोनेका नाटक किया और रोते-रोते कहने लगे— घरमें जो गड़बड़ी होती है, वह सब मैं ही करता हूँ क्या?

इतना कहकर वह और भी अधिक रोने लग गया। रोना सुनकर माँ भागी-भागी आयी तथा चक्रधरका पक्ष लेकर बड़े भाईसे कहने लगी— तुम लोग क्यों इसको बार-बार परेशान करते हो?

माँके कारण एक बार फिर चक्रधरका बचाव हो गया। चक्रधरके द्वारा की गयी शिवोपासना पारिवारिक परम्पराके अनुसार विधि-विहित नहीं थी, परंतु इतना तो सत्य ही था कि इस शिवोपासनामें श्रद्धाका भाव बहुत अधिक था। उन्होंने भगवान शिवकी जो अर्चना की, वह सब बाल-बुद्धिके अनुसार की थी।

रूठना छूट गया

बचपनमें चक्रधर बहुत रूठा करता था। जिद्दीपनेके कारण यदि मनकी चाहके अनुसार कोई काम नहीं होता था तो चटसे रूठ जाया करता था। यदि मनमें कोई बात ठान ली है तो वह होनी ही चाहिये। जो ठान लिया, वह ठान लिया। जब चक्रधर लगभग बारह वर्षका था, तब अपने घरपर किसी बातपर रूठ गया। मनानेके अनेक प्रयत्न हुए, पर सब विफल हुए। रोषमें भोजन भी नहीं किया। माँने मनाया, पर चक्रधर न माना। परिवारके और पड़ोसके लोगोंने बड़ी मनुहार की, पर सफलता नहीं मिली। रूठनेके कारण घरका वातावरण बड़ा क्लेशपूर्ण हो गया।

यह नहीं कहा जा सकता कि किसकी कौन-सी बात कब दिलको छू जाती है और दिल-दिमागपर असर कर जाती है। चक्रधरके भाई श्रीदेवदत्तजी अपने कमरेसे निकले। उनके चेहरेपर बड़ी गम्भीरता थी। वे कमरेसे बाहर आकर बड़ी गम्भीरता पूर्वक चक्रधरसे कहने लगे— चक्रधर! क्या तुम मेरी एक बात मानोगे?

चक्रधरने कहा— कहिये, क्यों नहीं मानूँगा?

बड़े भाईने कहा— तुम रूठनेकी आदत छोड़ दो। इस आदतको छोड़ देनेसे जीवनमें तुम्हारा अशेष मंगल होगा।

न जाने उन्होंने यह बात हृदयकी किस गहराईसे कही कि चक्रधरके हृदयमें उनकी बात लग गयी। तुरन्त चक्रधरने उत्तर दिया— आजसे मैं रूठना छोड़ देता हूँ।*

---

*बचपनकी इस घटनाको अनेक बार सुनाकर बाबा कहा करते थे— रूठनेसे कोई लाभ नहीं होता। इससे तो अपने जीवनमें और अपने आत्मीय जनोंमें अपार अशान्ति उत्पन्न हो जाती है। मेरे बड़े भाईने जो कहा, उस कथनका प्रभाव आजतक मेरे ऊपर है। रूठना तभी होता है, जब मनके अनुसार कार्य नहीं होता। यहींपर आस्तिकताकी पहचान होती है। उद्वेगरहितता-चिन्तारहितता ही सच्ची आस्तिकताकी कसौटी है। सच्चे आस्तिकमें न तो उद्वेग होता है और न कभी चिन्ता रहती है। सच्चे आस्तिकका सहज विश्वास होता है कि मंगलमय प्रभु मेरे लिये वही कर रहे हैं, जिसमें मेरा हित है।

परिस्थिति जब शान्त हो गयी तो अवसर पाकर बड़े भाईने चक्रधरको प्यारपूर्वक समझाया और बतलाया कि किस प्रकार सात्त्विक रीतिसे भगवान शिवकी पूजा करनी चाहिये। फिर तो चक्रधर जलाभिषेक, पुष्पार्पण, स्तुति-वन्दनादिसे भगवान शिवकी अर्चना करने लगा। चक्रधरके हृदयमें जैसी आस्था और भक्ति-भावना थी, उससे उसे भगवान शिवकी कृपा भी प्राप्त हुई। भगवान श्रीशिवके प्रति यह निष्ठा चक्रधरके जीवनमें अन्ततक बनी रही।

* * * * *

घरपर श्रीसत्यनारायण व्रत-कथा

गाँवोंके हिन्दू घरोंमें भगवान श्रीसत्यनारायणकी कथा कहने-सुननेकी प्रथा है। श्रद्धालु लोग प्रत्येक पूर्णिमाको यह कथा सुना करते हैं और इस दिन पूर्णिमाका व्रत भी रखते हैं। यदि परिवारके सब लोग व्रत नहीं रख सकते तो परिवारका कोई एक व्यक्ति सभीके प्रतिनिधिके रूपमें विधिवत् व्रत रखता है। पण्डित श्रीमहीपालजी मिश्रके घरपर भी पूर्णिमाको भगवान श्रीसत्यनारायणजीकी कथा हुआ करती थी। अनेक बार परिवारके प्रतिनिधिके रूपमें किशोर चक्रधरको पूर्णिमाका व्रत रखना पड़ता था। सारे दिन उपवास तो करना ही पड़ता था, पर यदि जल बिना काम नहीं चलता हो तो दिनमें एक बार जल लिया जा सकता है। चक्रधर मध्याह्न कालमें एक बार शक्करका शर्बत ले लिया करता था। संध्याके समय कथा होती थी। भगवान श्रीसीतारामजीकी आरती होती थी। भगवान श्रीशालिग्रामजीका सविधि पूजन होता था। नैवेद्यके रूपमें पंचामृत, फल आदि श्रीठाकुरजीको अर्पित किया जाता था। उपवास करनेके कारण चक्रधरको ही अर्चना करनेके लिये आगे बैठना पड़ता था। उस समय श्रीशालिग्राम-शिला चक्रधरके लिये शिला नहीं रह जाती थी। उस समय श्रीशालिग्राम-शिलामें उसे भगवान श्रीसीतारामजीकी स्फूर्ति होने लगती थी। आरती करते समय मन दिव्य भावोंसे आपूरित रहता था। पूजाके बाद चक्रधरके उपवासका विसर्जन होता था। पूर्णिमाका व्रत तथा भगवानका अर्चन उससे हृदयको सात्त्विक भावोंसे भर दिया करता था।

हेडमास्टर साहब का वात्सल्य

जिस विद्यालयमें चक्रधर पढ़ता था, उसके हेडमास्टर साहबका नाम था आदरणीय श्रीबलदेवप्रसादजी। हेडमास्टर साहबके जीवनमें कर्त्तव्यनिष्ठा और कार्यतत्परता कूट-कूट करके भरी हुई थी। उनका अनुशासन बड़ा कड़ा था। एक बार चक्रधरको किसी एक बाल सुलभ चपलता एवं चञ्चलताके कारण पाँच बेंतकी सजा भुगतनी पड़ी, पर वह सजा भी हेडमास्टर साहबने किस प्रकार दी? माँकी ममता भरे हृदयसे, मुखपर कठोरता तथा वाणीमें शासन लिये हुए उन्होंने बेंत मँगवाई और चक्रधरसे कहा— हाथ फैलाओ।

चक्रधरने अपनी हथेली फैला दी। बहुत हल्का स्पर्श कराते हुए हेडमास्टर साहबने हथेलीपर धीरे-धीरे पाँच बेंत मारे और इसके बाद धमकाते हुए कहा— आगेसे ऐसी धृष्टता करोगे तो विद्यालयसे नाम काट दिया जायेगा।

वे ही हेडमास्टर साहब एक बार छात्रावासके द्वारपर खड़े थे। वे क्यों खड़े थे, पता नहीं। उसी समय चक्रधर उनके पास आया। उन्होंने चक्रधरसे पूछा— क्या तुम मेरे साथ चल सकते हो?

चक्रधरने तुरन्त 'हाँ' कहा और उनके साथ चल दिया वे रूपकला संकीर्त्तन मण्डलमें गये। वहाँ साप्ताहिक संकीर्तन हुआ करता था। इनके पहुँचनेपर जिसने कीर्तन कराया, वह बहुत जमा नहीं। हेडमास्टर साहबने चक्रधरसे पूछा— क्या तुम हरिनाम संकीर्तन करवा सकते हो?

चक्रधरने विनम्र शब्दोंमें कहा— थोड़ा बहुत तो करा ही सकता हूँ।

चक्रधरसे अनुकूल उत्तर पाकर हेडमास्टर साहबने सबके समक्ष कहा— अब मेरे विद्यालयका एक छात्र कीर्तन करायेगा।

कीर्तन करानेके लिये चक्रधर सामने आया और उसने सभी उपस्थित लोगोंसे निवेदन किया— मैं जैसे-जैसे कहूँ, वैसे-वैसे आपको बोलना चाहिये। मैं जितना-जितना कहूँ, उतना-उतना ही आपको बोलना चाहिये। जो लोग स्वरमें स्वर नहीं मिला सकें, उनसे प्रार्थना है कि वे मन-ही-मन भगवानके नामका कीर्तन करें। ऐसे लोग यदि मौन रहकर मन-ही-मन कीर्तन करेंगे तो कीर्तन अधिक सुन्दर और

प्रभावोत्पादक होगा।

इतना कहकर चक्रधरने 'रघुपति राघव राजाराम, पतित पावन सीताराम' कीर्तन करवाना आरम्भ किया। लगभग बीस-पच्चीस मिनट कीर्तन करवाया होगा। एक विचित्र समा बँध गया। चक्रधरने देखा कि हेडमास्टर साहबके कपोलोंपर अश्रुकी धारा बह रही है। हेडमास्टर साहबका यह भक्त स्वरूप देखकर चक्रधरको बड़ा आश्चर्य हुआ। कहाँ तो विद्यालयके वातावरणमें वाणीकी कठोरता और कहाँ संकीर्तनके इस प्रवाहमें हृदयकी कोमलता!

संकीर्तनके बाद हेडमास्टर साहबने चक्रधरसे पूछा— चक्रधर! क्या तुम प्रति सप्ताह थोड़ी देरके लिये आ सकते हो?

चक्रधरने सहर्ष स्वीकृति प्रदान कर दी। फिर तो प्रति सप्ताह रूपकला संकीर्तन मण्डलमें हेडमास्टर साहबके साथ चक्रधर जाने लगा। इतना ही नहीं चक्रधरके प्रति हेडमास्टर साहबका वात्सल्य बहुत बढ़ गया।

* * * * *

जिला-स्तरीय संगीत प्रतियोगिता

एक बारकी बात है। विद्यार्थियोंकी जिला-स्तरीय संगीत प्रतियोगितामें चक्रधरने भाग लिया। उस संगीत प्रतियोगितामें जिला भरके स्कूलोंके विद्यार्थी भाग लेने आये थे। चक्रधरका कण्ठ बड़ा सुरीला और बड़ा सुमधुर होनेसे उसे अपने स्कूलकी ओरसे हेडमास्टर साहबने चुन लिया था। चक्रधरसे बिना पूछे ही हेडमास्टर साहबने प्रतियोगितामें नाम भेज दिया। जब चक्रधर संगीत प्रतियोगितामें भाग लेने पहुँचा तो गानेवाले विद्यार्थियोंके गायन-स्तर तथा वादन-कौशलको देखकर वह चकित हो गया। जो विद्यार्थी अन्य स्कूलोंसे आये थे, उनमें कई बड़े अच्छे गायक थे तथा कई शास्त्रीय संगीतमें भी बड़े प्रवीण थे। उनकी आलापचारी तथा स्वर-संधानको देखकर चक्रधरको ऐसा लगने लगा कि इस संगीत प्रतियोगितामें सफलता पाना टेढ़ी खीर है। चक्रधरको राग-रागिनीकी जानकारी नहीं थी। सफलताकी सम्भावना न्यूनातिन्यून होनेके बाद भी चक्रधरकी प्रयत्नशीलतामेंतनिक भी न्यूनता नहीं आयी। चक्रधर इस

तथ्यका पता लगानेमें संलग्न हो गया कि उसका नाम गायकोंकी नामावलीमें किस स्थानपर रखा गया है। चक्रधर उन अध्यापक महोदयसे मिला, जिनपर प्रतियोगिताके संयोजनका उत्तरदायित्व था। पूछनेपर पता चला कि नामावलीमें तीसरा नाम उसीका है। चक्रधरको ऐसा लगा कि यह तो ठीक नहीं और नामावलीमें तीसरे क्रमांकपर नाम रहनेसे तो सफलता कभी मिल ही नहीं सकती। चक्रधरने उन संयोजक अध्यापकजीसे कहा— आपने मेरा नाम आरम्भमें क्यों रखा? आधेके बाद रखिये।

इसके लिये वे संयोजक अध्यापकजी तैयार नहीं हुए। चक्रधरने पुनः प्रार्थना की। इसपर भी वे नहीं माने। तब चक्रधर कुछ उत्तेजित स्वरमें कहने लगा— आप अपने विद्यार्थियोंके साथ पक्षपात करते हैं। मैं अभी जाकर प्रधानाध्यापकजीसे यह बात कहूँगा।

एक बार तो उन्होंने आवेशपूर्ण स्वरमें कह ही दिया— जाओ, कह दो।

चक्रधर जब वस्तुतः प्रधानाध्यापकजीके पास जाने लगा तो उन संयोजक अध्यापकजीने चक्रधरको बुलाया और पूछा— तुम अपना नाम कहाँ रखना चाहते हो?

चक्रधरको ऐसा लगा कि ये एकदम ढीले पड़ गये हैं। चक्रधरने उनसे कहा— मेरा नाम आधे कार्यक्रमके बाद रखें।

उन्होंने वैसा ही कर दिया। जब संगीत प्रतियोगिता आरम्भ हुई तो विभिन्न विद्यालयोंके छात्र मंचपर आकर श्रोताओंके समक्ष अपने गायन-वादनका कौशल प्रस्तुत करने लगे। उनके कौशलकी सराहना जब श्रोतागण करते तो वायुमण्डल गूँज उठता। राग-रागिनीका लालित्य वहाँके वातावरणपर छाया हुआ था। राग-रागिनीके माधुर्यमें जब एक-एक श्रोता पगा हुआ था, तभी अपना कौशल प्रस्तुत करनेके लिये चक्रधरको मंचपर बुलाया गया।

चक्रधर मंचपर आया। गानेसे पहले उसने एक छोटा-सा देश-भक्तिपूर्ण भाषण देते हुए कहा— आज अपना देश परतन्त्र है। पराधीनताकी बेड़ियोंसे जकड़ा हुआ है। आज अपने देशके भाई-बहिनोंको खानेके लिये अन्न, पहननेके लिये वस्त्र और चिकित्साके लिये औषधि

भी भली प्रकारसे नहीं मिल पाती। अपने देशमें जहाँ ऐसी दरिद्रता और रुग्णताका नग्न नृत्य हो रहा है, वहाँ यह राग और रंग, यह सितार और झंकार क्या शोभा देता है? देश और समाजकी विषम परिस्थितिमें इस गीतोल्लासका, इस वाद्य-वादनका, इस राग-रागिनीका, इस मनोरञ्जनका औचित्य कहाँतक सिद्ध किया जा सकता है? एक ओर सिसकते-कलपते माँ-बहिनोंकी अजस्र अश्रुधारा और दूसरी ओर हम लोगोंका यह आमोद-प्रमोद? मैं नहीं जानता कि मेरी इन भावनाओंका समादर आपके द्वारा होगा या नहीं। मेरा हृदय व्यथित है। मैं तो यही निवेदन करूँगा कि मेरे गायनके समय न हारमोनियम, न तबला, न तानपूरा, न वायलिन, यह सब कुछ नहीं बजेगा। मैं तो केवल अपनी मातृभूमिकी वन्दना ही भेंट रूपमें प्रस्तुत करूँगा।

यह वक्तव्य बड़ा ही प्रभावपूर्ण था। इस प्रभावशाली वक्तृत्वसे सारे वातावरणका रंग बदल गया। एक घोर निस्तब्धता छा गयी। उस नितान्त नीरव वातावरणमें चक्रधरने गाया 'वन्दे मातरम्' , जो आजकल अपने देशका राष्ट्रगीत है। एकदम समा बँध गया।

गीतमें जब आया— 'के बोले माँ तुमि अबले', उस समय इतनी ताली बजी कि सारा पंडाल गूँज उठा। अबतक किसीके गायनपर इतनी ताली नहीं बजी थी। चक्रधरका कण्ठ तो मधुर था ही, हाथोंकी भावपूर्ण चेष्टाओंसे वह गायन और भी प्रभावोत्पादक बन गया था। सारा वातावरण गीतके भावसे भावित हो रहा था। मातृवन्दनाकी पंक्तियोंने सब श्रोताओंको आकृष्ट कर लिया था। गीतके समाप्त होते ही प्रतियोगिता सभाके सभापतिने अपनी कुर्सीसे उठकर तुरन्त विशेष पारितोषिक प्रदान किये जानेकी घोषणा कर दी। घोषणाके होते ही एक बार फिर सारा पंडाल तालियोंकी गड़गड़ाहटसे गूँज उठा। कार्यक्रमके बाद सहपाठियोंने चक्रधरको अत्यधिक साधुवाद दिया ही, स्कूलके हेडमास्टर साहबका भी प्यार बहुत अधिक उमड़ पड़ा।

* * * * *

नोट की चोरी और प्राप्ति

चक्रधर जब मिडिल स्कूलमें पढ़ता था, उस समयकी बात है। सरकारी शिक्षा विभागकी ओरसे गया जिलेके छात्रोंकी योग्यताकी परीक्षा होनेवाली थी। इस परीक्षामें जो सर्वप्रथम होगा, उसको सरकारकी ओरसे प्रतिमास पाँच रुपया छात्रवृत्ति मिलेगी। उस समयका पाँच रुपया आजके सौ गुना रुपयेसे अधिक समझना चाहिये। छात्रवृत्तिके साथ-साथ सरकारी स्कूलके छात्रावासमें रहनेकी सुविधा मिलेगी तथा शिक्षा-शुल्क (Fees for Schooling)से विमुक्ति रहेगी।

इस योग्यता परीक्षामें चक्रधरने भी बैठनेका विचार किया। उसने अपनी माँसे पाँच रुपया माँगा। माँसे रुपया लेकर वह परीक्षा देनेके लिये गया नगरको गया। इस योग्यता परीक्षामें भाग लेनेके लिये सारे गया जिलेसे लगभग पाँच हजार छात्र आये थे। चक्रधर बड़ा सशंक था कि इस भीड़-भाड़में कोई मेरा रुपया चुरा न ले। सावधानी रखनेकी दृष्टिसे बालक चक्रधरने पाँच रुपयेकी नोटका नम्बर एक कागजपर नोट कर लिया तथा उस नम्बरको याद भी कर लिया।

बहुत सावधानी रखनेके बाद भी जिस बातकी आशंका चक्रधरको थी, वह घटित हो गयी। किसीने उसका रुपया चुरा लिया। चक्रधरने मन-ही-मन तय किया कि उस चोर छात्रका पता लगाकर गायब हुए नोटको प्राप्त करना चाहिये।

डिप्टी इंस्पेक्टर-आफ-स्कूल्स ही इस योग्यता परीक्षाके सुप्रिंटेंडेंट थे। चक्रधर परीक्षा-सुप्रिंटेंडेंट महोदयके पास गया और सारी बात सुना दी। पाँच रुपयेके चोरी हो जानेका पूरा वृत्त सुनकर सुप्रिंटेंडेंट महोदयने कहा— इस विषयमें भला मैं क्या कर सकता हूँ? परीक्षा देनेके लिये सारे जिलेसे लगभग पाँच हजार छात्र आये हैं। इनमेंसे किसको चोर ठहराया जा सकता है? इस बारेमें कोई कार्यवाही किया जा सकना सम्भव नहीं है।

सुप्रिंटेंडेंट महोदयके उत्तरसे चक्रधर बड़ी निराशा हुई। उसने तो ऐसा सोचा था कि सुप्रिंटेंडेंट महोदयके सक्रिय होनेसे मेरा काम बन जायेगा, पर सुप्रिंटेंडेंट महोदयके द्वारसे खाली हाथ लौटना पड़ा। चक्रधर

इसपर भी अपने प्रयाससे विरत नहीं हुआ। जिस धर्मशालामें चक्रधर ठहरा था, वहाँ बहुतसे छात्र थे और उनकी सँभाल तथा व्यवस्थाका उत्तरदायित्व एक अध्यापक महोदयको सौंपा गया था। उन अध्यापक महोदयका नाम शायद श्रीदामोदरप्रसादजी था। चक्रधर श्रीदामोदरप्रसादजीके पास गया। उसने अध्यापक महोदयसे नोटके चोरी होनेकी बात बताकर यह अनुरोध किया— इस धर्मशालामें जितने छात्र हैं, उनको आप एक पंक्तिमें खड़े कर दीजिये। पंक्तिमें खड़े हुए छात्र आपकी उपस्थितिमें एक-एक करके मेरे सामने आयें और कुछ क्षणके लिये खड़े रहें। मैं बता दूँगा कि किसने मेरा नोट लिया है। मेरी नोटका नम्बर यह है। इस नम्बरका नोट अगर उसके पास हो तो आप उससे मुझे दिलवा दें।

श्रीदामोदरप्रसादजीने कहा— यह कौन-सी बड़ी बात है? यह कार्य तो इसी समय करवाया जा सकता है।

अध्यापक श्रीदामोदरजीके आदेशपर सभी छात्र एक पंक्तिमें खड़े हो गये। जैसा चक्रधरने कहा था, बारी-बारीसे एक-एक छात्र चक्रधरके सामने आता। कई छात्रोंके बाद एक छोटा-सा छात्र आया और वह चक्रधरके सामने कुछ क्षण खड़ा रहा। वह छात्र चक्रधरके लिये सर्वथा अपरिचित था। चक्रधरने उसके खड़े होनेके कुछ क्षण बाद अध्यापक श्रीदामोदरप्रसादजीसे कहा— इसीने मेरा नोट चुराया है।

अध्यापक श्रीदामोदरप्रसादजी उस छात्रको एक किनारे ले जाकर पूछने लगे तो उसने साफ इंकार कर दिया कि मैंने रुपया नहीं लिया है। तब अध्यापक महोदय उस छात्रको पुनपुन नदीके तटपर ले गये और उससे कहा— देखो, उसने अपने नोटका नम्बर बता रखा है। मैं तुम्हारी तलाशी लूँगा। यदि वह नोट तुम्हारे पास मिल गया तो मैं तुमको इतनी मार मारूँगा कि तुम्हारी पीठसे रक्त बह निकलेगा। मेरे हाथमें यह बेंत देख रहे हो न! इसी बेंतसे तुम्हें पीटूँगा। यदि तुम अपने आप दे दोगे तो मैं तुम्हें कुछ नहीं कहूँगा।

मारके भयसे वह काँप उठा और अपने पाससे नोट निकालकर उसने दे दिया। उस नोटका नम्बर वही था, जो बतलाया गया था। इस घटनासे अध्यापक श्रीदामोदरप्रसादजीपर तथा अन्य छात्रोंपर बालक

चक्रधरका बड़ा प्रभाव पड़ा। उन सभीके मध्य यह बात चल पड़ी कि यह चक्रधर कोई सिद्धि जानता है, तभी तो इसने चोरको एकदम सही पकड़ लिया।

अध्यापक श्रीदामोदरप्रसादजी चक्रधरसे कौतूहलवशात् पूछ बैठे— क्या तुम कोई सिद्धि जानते हो?

चक्रधर अध्यापक श्रीदामोदरप्रसादजीको बताने लगा— मैं भगवान शंकरकी उपासना किया करता हूँ। मेरे हृदयस्थ भगवान शंकरका जो विग्रह है, उनसे मैंने कातर प्रार्थना की कि आप मुझे सही-सही उत्तर दीजियेगा। मेरे सामने ज्यों ही एक छात्र खड़ा होगा, मैं आपसे उस छात्रके बारेमें पूछूँगा। यदि वह नहीं लिया हो तो आप गर्दन हिलाकर 'ना' कर दीजियेगा। यदि वह लिया हो तो तदनुसार संकेत कर दीजियेगा। ज्यों ही मेरे सामने छात्र आकर खड़ा होता तो पहले मैं अपने हृदयमें भगवान शंकरका ध्यान करता, फिर उस समक्ष स्थित छात्रके हृदयमें भगवान शंकरका ध्यान करता, तदुपरान्त मैं पूछता अपने हृदयस्थ भगवान शंकरजीसे। मेरे हृदयमें विराजित भगवान शंकर ज्यों हि 'ना' का संकेत करते, मैं यही कह देता कि इसने नहीं लिया है। इस प्रकार लगभग पच्चीस छात्रोंको मैंने निर्दोष बता दिया। ज्यों ही वह छोटा-सा छात्र आया, भगवान शंकरकी ओरसे 'हाँ' का संकेत मिलते ही मैंने कह दिया कि इसने चोरी की है। सच्ची बात यह है कि मैं कोई सिद्धि नहीं जानता। मैंने भगवान शंकरसे ईमानदारीपूर्वक सच्चे मनसे प्रार्थना की थी कि जो सही बात हो, वही ही सामने आनी चाहिये। प्रार्थनाकी सच्चाईके कारण ही हृदयस्थ श्रीविग्रहसे सही उत्तर मिला। यह मेरी कोई सिद्धि नहीं है। मात्र सच्ची और गहरी प्रार्थनाका एक परिणाम था।

अध्यापक श्रीदामोदरप्रसादजीने चक्रधरको बड़ा प्यार और आदर दिया।

* * * * *

खेत से ऊख और चने की चोरी

एक प्रसंग चक्रधरके बचपनका है। उस समय चक्रधरकी आयु सात या आठ वर्षकी रही होगी। एक बार एक खेतके बगलसे निकलते समय चक्रधरने उस खेतसे एक ऊख तोड़ ली। ऊँख ले तो ली, पर मनमें विचार आया कि यह ठीक नहीं हुआ। जगा हुआ यह विवेक फिर सो गया। यह विचार हल्का था।

फिर किसी दिन चक्रधर एक चनेके खेतके पाससे गुजर रहा था। वे खेतमेंसे चना उखाड़ करके खाने लगा। चक्रधरने मन-ही-मन पूछा– क्या यह चीज तुम्हारी है?

मनने जबाब दिया– नहीं।

फिर प्रश्न हुआ– जिसकी यह वस्तु है, क्या उससे पूछ करके लिया है?

उत्तर मिला– नहीं।

मनने पुनः पूछा– जिसकी वस्तु है, उसके बिना पूछे उसकी वस्तु ले लेना, यह क्रिया कैसी है? यह काम किस रूपमें गिना जायेगा?

मनने कहा– चोरी।

बस, इस प्रकारका विचार आते ही चक्रधरने निश्चय कर लिया– अब कभी कोई वस्तु बिना पूछे नहीं लेनी है।*

* * * * *

---

*बाबाने बतलाया– संन्यासके बाद तो (बिना पूछे कोई वस्तु) लेनेका प्रश्न ही नहीं है, संन्यासके पहले भी वैसा निश्चय हो जानेके बाद फिर कभी ऐसा प्रसंग आया ही नहीं।

चक्रधरके कहनेका उमाशंकरके मनपर बड़ा असर पड़ा और सचमुच उसके बड़ा सुधार आया। चक्रधरसे उपदेश सुननेका उमाशंकरके जीवनमें यह प्रथम अवसर था। चक्रधरके जीवनमें जो सत्य निष्ठा थी, उसकी छाप उमाशंकरके मनपर आज भी है।

* * * * *

चञ्चलता की निवृत्ति

चक्रधर जब हाई स्कूलमें पढ़ता था, तब विज्ञानके अध्यापककी धर्मपत्नीका देहान्त हो गया। वह राजयक्ष्माकी बीमारीसे मरी थी, अतः गाँवका कोई भी व्यक्ति शवको ले जानेके लिये तैयार नहीं था। स्कूलके प्रधानाचार्यने किशोर चक्रधरको बुलाया, क्यों कि यही सबका नेता था। उस समय छात्रावासमें लगभग तीस-बत्तीस छात्र थे। प्रधानाचार्यने इस कार्यके लिये उत्साहित करते हुए सेवा-परायण चक्रधरको तैयार किया। चक्रधरके तैयार होते ही कई छात्र तैयार हो गये। प्रधानाचार्यने अपने चपरासी दिये। अर्थी तैयार की गयी तथा शवको श्मशान घाटपर ले गये। चिता सजायी गयी तथा शवको रखकर चितामें आग लगा दी गयी। सभी छात्र उस रेतीली जमीनपर बैठ गये। तबतक एक साधु आया। वह साधु तो नाम मात्रका था। उसने कहा– यहाँ शव जलाया जा रहा है, अतः मुझे पाँच रुपया दो।

चक्रधरने कहा कि हम लोग विद्यार्थी हैं, हमारे पास कुछ है नहीं, जो आपको दें, पर वह साधु तो जिद्द पकड़े हुए था। चक्रधरने उसे बहुत ही समझाया, पर वह माना नहीं। चक्रधरके एक साथीका नाम था बदरीप्रसाद। बदरीप्रसादने भी उस साधुको बहुत समभ्कानेका प्रयत्न किया, पर वह तो अपने हठपर अड़ा हुआ था। जब वह साधु किसी प्रकार नहीं माना तो फिर उस साधुको सब विद्यार्थी तंग करने लगे। अब वह साधु परेशान होकर गाली देता हुआ चला गया।

किशोरावस्थामें ऐसी चञ्चलता युवक किया ही करते हैं और यही चाञ्चल्य श्मशान घाटपर हम विद्यार्थियों द्वारा हुई। घाटसे वापस आनेके बाद चक्रधरके चिन्तनमें बड़ा परिवर्तन आया। अन्तरकी सात्त्विकता जाग उठी और इस अभद्रताके लिये उसकी सात्त्विकता उसे

सत्य-निष्ठा

चक्रधरके ताऊजी श्रीश्रीपालजीके सुपुत्रका नाम है श्रीदेवदत्तजी मिश्र और श्रीदेवदत्तजी मिश्रके सुपुत्रका नाम है उमाशंकर मिश्र। चक्रधर उमाशंकर मिश्रको चाचाजी कहा करता था। चक्रधर गया शहरमें जिला स्कूलके एक छात्र था। उमाशंकर गाँवके मिडिल स्कूलका एक साधारण विद्यार्थी था।

चक्रधरका ध्यान अपने मिश्र परिवारके बालकोंकी पढ़ाईपर भी रहा करता था। जब वह गयासे गाँवपर घर आया करता था तो समय-समयपर घरके बालकोंसे किसी विषयमें प्रश्न कर लिया करता था, जिससे उसे उनकी योग्यता और कमजोरीका अन्दाजा मिल सके। उमाशंकरसे प्रश्न करनेपर चक्रधरको यह समझनेमें देर नहीं लगी कि वह गणितके विषयमें कच्चा है। चक्रधरने उमाशंकरके गणितके अध्यापकसे सम्पर्क करके उसके विषयमें जानना चाहा। उमाशंकरके अध्यापकने उसकी कमजोरीके बारेमें बतलाया ही, इसी बातचीतके बीचमें यह भी उन्होंने बतला दिया कि यह उमाशंकर दूसरे लड़कोंकी कापियोंसे नकल करके प्रश्नोंको हल कर लिया करता है। इतना ही नहीं, सजा न पानेके लिये यह झूठ भी बोला करता है और इस प्रकार इसमें मिथ्या भाषणकी गलत आदत पड़ रही है। यदि यह हमेशा नकलबाजी करता रहेगा तो यह लड़का सदाके लिये कमजोर रह जायेगा और गणित सीख ही नहीं सकेगा।

उमाशंकरके अध्यापकने उसके बारेमें बातें यथार्थ ही कही थी, पर शिक्षककी छड़ीसे बचनेके लिये उसके पास कोई दूसरा उपाय भी नहीं था। अध्यापकके द्वारा सच्चा चिट्ठा पाकर चक्रधरने उसे एक दिन बहुत डाँटा और लगभग एक घंटेतक वे सत्य-पालनके महत्त्वको समझाता रहा। चक्रधरने फिर प्यार करते हुए कहा कि यदि सत्य-पालनके कारण शिक्षकसे मार भी खानी पड़े तो उस मारमें भी कल्याण ही है। जब शिक्षक विषयगत कमजोरी जानेंगे तो वे स्वयं बार-बार समझायेंगे-बतलायेंगे-पढ़ायेंगे और धीरे-धीरे वह कमजोरी दूर हो जायेगी।

धिक्कारने लगी। वह स्वयं ही स्वयंसे प्रश्न करने लगा कि क्या यह उचित है? क्या यही सही जीवन है? उसे तंग तो किया चञ्चलताकी पराकाष्ठापर जाकर, किन्तु फिर उस वृत्तिकी ही निवृत्ति हो गयी।

* * * * *

स्वप्न में संत-दर्शन

गाँवमें एक जगह एक नाटक-मण्डली आयी और मण्डलीके लोग अभिनय-गायन-वादन कर रहे थे। उस कार्यक्रममें एक महिलाने भी भाग लिया। उसका सौन्दर्य तो साधारण स्तरका था, परन्तु कण्ठ बड़ा मधुर था तथा अभिनय भी बड़ा स्वाभाविक था। चक्रधरकी सेवा-भावना उस महिलाकी ओर आकृष्ट हुई। वह आकृष्ट हुआ उसकी कलाके कारण। उस महिलाके गायनकी सुन्दरता और अभिनयकी स्वाभाविकता सराहनीय थी। कार्यक्रमके बाद चक्रधरने उसके बारेमें जानकारी प्राप्त करनी चाही, यह जानकारी इसलिये कि जो इतनी गुणी है, उस गुणका सम्मान करनेके लिये यदि उसकी कोई सेवा उसके द्वारा बन जाये तो उत्तम ही है। पूछताछ करनेपर पता चला कि उसके जीवनका स्तर निम्न ही है। थियेटर कम्पनी या नाटक मण्डलीमें जो काम करते हैं, उनके शील और चरित्रके आगे प्रायः प्रश्नवाचक चिह्न बना रहता है। चक्रधरके मनमें आया कि वह ऐसा निन्दनीय जीवन भला क्यों व्यतीत कर रही है। यदि उसका जीवन सात्त्विक और संयमित हो तो कितना अच्छा होता। चक्रधरने मन-ही-मन सोचा कि उस महिलाके कल्याणके लिये मेरे द्वारा कुछ किया जाना चाहिये।

जिस दिन चक्रधरने ऐसा सोचा, उसी दिन रात्रिमें उन्होंने एक स्वप्न देखा। उन्होंने स्वप्नमें देखा कि उसके सामने एक अति वृद्ध संत आकर खड़े हो गये हैं। उनकी दाढ़ी बहुत लम्बी है। शीशके समस्त केश पूर्णतः श्वेत हैं। मुखमण्डलपर दिव्य कान्ति है। उन तेजोमय संतने चक्रधरसे कहा— बेटा! महिलाके उद्धारकी बात मनसे निकाल दो। तुम्हारे लिये अभी यही उचित है कि तुम अपने पथपर चलते रहो। सुधारादिका कार्य शुभ है, पर अभी तुम इधर-उधर मत देखो! यह कार्य उनका है, जो मंजिलपर पहुँच चुके हैं। अभी तो तुम

अपनी दृष्टि अपने लक्ष्यपर टिकाये रखो। इधर-उधर देखनेसे अटकने-भटकनेका भय है।

इतना कहकर वे संत अदृश्य हो गये। उसी समय चक्रधरकी नींद खुल गयी। अब प्रभात होनेवाला था। प्रातःकालीन स्वप्नमें उन तेजोमय संतने जो निर्देश दिया, उसको चक्रधरने अपने लिये परम कल्याणमय माना और इसके बाद वह सेवा-भावनासे विरत हो गया।

* * * * *

बिचारों पर राजनैतिक रंग

उन दिनों सारे देशमें राजनैतिक आन्दोलन और समाज-सुधारकी लहर प्रबल रूपसे व्याप्त थी। राजनैतिक गतिविधियोंमें सदा निमग्न और समाज-सुधारकी दिशामें सतत प्रयत्नशील प्रबुद्ध लोगोंकी जो विचार-धारा थी, उसका प्रभाव चक्रधरके किशोर मानस-पटलपर भी था। इसीका परिणाम यह था कि वह चक्रधर साधुओं-संन्यासियोंको परजीवी मानता था और मानता था उनको समाजजीवनपर एक निन्दनीय भार। समाज-सुधारकोंके प्रभावमें वह 'प्रबुद्ध' किशोर साधु-संतोंपर व्यंग करनेसे बाज नहीं आता था। वह नहीं चाहता था कि हमारे घरपर साधु-संत आवें, परन्तु पण्डितजीका द्वार तो संत-सेवाके रूपमें विख्यात था और वे पण्डितजीके घरपर आया ही करते थे।

जब साधु-संन्यासियोंको माँ भिक्षा करवाया करती थी, तब उसे अपने पुत्र चक्रधरकी उपस्थिति अभीष्ट नहीं रहती थी। अँग्रेजी स्कूलके वातावरण तथा राजनैतिक साथियोंके संगसे प्रभावित-विभावित चक्रधर साधु-संन्यासियोंके प्रति अभद्र व्यवहार कर बैठता था। 'अहं च त्वं च' को विकृत करके 'हंच तंच' बोलकर उनका मजाक उड़ाया करता था। उन दिनोंके किशोरावस्थावाले चक्रधरने यह कभी सोचा भी नहीं था कि एक दिन उसे भी गैरिक वस्त्र धारण करके संन्यासी बन जाना होगा। जो भी हो, संतोंकी सेवामें सतत उत्साही माँ यही चाहती थी कि उनकी भिक्षाके समय उसका पुत्र चक्रधर कहीं अन्यत्र अपने मित्रोंके पास रहे और किसी-न-किस बहानेसे उसे भेज ही दिया करती थी।

क्षणिक कुसंग

पण्डित श्रीमहीपालजी मिश्रने एक बार किसी यजमानके यहाँ श्रीदुर्गासप्तशतीके पाठ करनेका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। यजमानके घर पाठके संकल्पका विधान भी विधिवत् सम्पन्न हो गया तथा पण्डितजीने श्रीदुर्गापाठका अनुष्ठान आरम्भ कर दिया। अनुष्ठानकी अवधिमें एक बार वे अस्वस्थ हो गये और यजमानके घर उनका जा सकना सम्भव नहीं था। पिताजीने अपने किशोर पुत्र चक्रधरसे पूछा— क्या तुम जाकर पाठ कर दोगे? मैं तो जानेमें विवश हूँ। जब श्रीदुर्गापाठका संकल्प ले लिया गया है तो पाठ करनेके लिये जाना ही चाहिये।

चक्रधर सदा ही माता-पिताका आज्ञाकारी रहा। पिताजीके कहनेके बाद न जानेका प्रश्न ही नहीं था। उसने कहा— मैं चला जाऊँगा।

जिस यजमानके यहाँ पाठ करना था, वह दूसरे गाँवका था। प्रातःकाल ही स्नानादिसे निवृत्त होकर चक्रधरने श्रीदुर्गासप्तशतीकी पोथी सँभाली और यजमानके गाँवकी ओर चल दिया। यजमानके घर जाकर उसने पाठ तो किया, पर पाठ पूर्ण करनेमें बहुत अधिक समय लग गया। अभ्यासके अभावमें संस्कृत श्लोकोंका धारा-प्रवाह पाठ सम्भव नहीं हो सका, पर पाठको शुद्ध एवं पूर्ण करना ही था। साढ़े तीन घंटेमें पाठको पूरा करके वह अपने गाँव वापस आ रहा था। दोपहरका समय था। मुखपर थकावटके चिह्न थे। राहमें मामाजी मिल गये। उसने चरण छूकर मामाजीको प्रणाम किया। मामाजीने पूछा— इतने थके-थके कैसे लग रहे हो? कहाँसे आ रहे हो?

चक्रधरने उत्तर दिया— यजमानके यहाँ श्रीदुर्गा-पाठ करने गया था। सारा पाठ साढ़े तीन घंटेमें पूरा कर पाया। इतनी देरतक एक आसनपर लगातार बैठे रहनेसे बड़ी थकावट आ गयी है।

मामाजीने उसको मूर्ख बताते हुए कहा— कहीं इस तरह पाठ किया जाता है? जबतक यजमान सामने रहे, तबतक तो पाठ ठीकसे करना चाहिये और ज्यों ही यजमान सामनेसे हट जाये, त्यों ही

नौ-दस पृष्ठ बिना पाठ किये हुए ही उलटकर आगे बढ़ जाना चाहिये। यजमान लोग दक्षिणा ही कितनी देते ही हैं? यदि पाठ विधिवत् किया जाये तो जीवनका निर्वाह कठिन हो जायेगा।

चक्रधरने अपने मामाकी बात मान ली। क्षणभरके कुसंगका यह प्रभाव था कि ज़ीवनकी रेलगाड़ी पटरीपरसे उतर गयी। 'को न कुसंगति पाइ नसाई।' दूसरे दिन उसने श्रीदुर्गा-पाठ वैसे ही किया, जैसे मामाजीने बतलाया था। पाठ करके जब वह अपने गाँवकी ओर वापस चला तो उसका मन उसीकी भर्त्सना करने लगा— आज तुमने ठीक नहीं किया। आज यह गलती कैसे कर दी?

घरपर आकर चक्रधरने अपनी सारी आत्म-ग्लानि पूर्ण विवरणके साथ अपने पिताजीको सुना दी। यह सब सुनकर पण्डित श्रीमहीपालजी मिश्रको बड़ा कष्ट हुआ। अपने पुत्रको प्यारसे समझाते हुए पण्डितजीने कहा— बेटा! ऐसी वञ्चना अपनेको शोभा नहीं देता। आगेसे ऐसा कार्य कभी मत करना। अपने लिये यही उचित है कि दक्षिणा-निरपेक्ष होकर यजमानके हितके लिये पूजन- अर्चनका कार्य विधिपूर्वक सम्पन्न करना चाहिये। जीवनका निर्वाह न तो यजमान करता है और न यजमानकी दक्षिणासे होता है। यह सब तो भगवानकी अहैतुकी कृपासे होता है। यदि यजमान दक्षिणा कम देता है तो उसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। अनुष्ठान करनेके उपरान्त दक्षिणा मिले, अथवा न मिले, अथवा कम मिले, पर अपनेको कम-से-कम उन देवी-देवताओंकी प्रसन्नता तो मिलेगी ही।

इतना कहनेके बाद पण्डितजी अपने बिस्तरसे उठे। बिस्तरके पास भूमिपर ही पूजावाला आसन बिछाया। आसनपर बैठकर आचमन किया, जल छिड़ककर आसन-शुद्धि तथा आत्म-शुद्धि की और फिर पण्तिजीने यजमानके निमित्त सम्पूर्ण श्रीदुर्गा-पाठ किया। इसके बाद जब चक्रधर यजमानके यहाँ पाठ करने गया तो उसने सम्पूर्ण पाठ सविधि ही किया। क्षणिक कुसंगके प्रभावको पिताजीकी सत्य-निष्ठा एवं कर्तव्य-परायणताने प्रक्षालित कर दिया।

* * * * *

अभिनय कौशल

अभिनय करनेमें चक्रधर बड़ा कुशल था। अभिनय-पटुताको देखकर उसकी बड़ी सराहना होती थी। चक्रधरके पिताजी जिस राजवंशके पुरोहित थे, उस राजकुलके राजकुमारोंने एक अभिनय समिति (DRAMATIC CLUB) की स्थापना कर रखी थी। उस राजघरानेमें चक्रधरका बड़ा सम्मान था तथा वे लोग हमेशा चक्रधरको अपने पास रखना चाहते थे। उस अभिनय समितिमें यदा-कदा नाटक अभिनीत होता ही रहता था। इसे एक अद्भुत संयोग ही कहना चाहिये कि इने-गिने अवसरोंको छोड़कर चक्रधरको प्रायः साधु-संन्यासीका पार्ट अथवा पागलका पार्ट दिया जाता था। इस बातकी किसे कल्पना थी कि इस पार्टका अभिनय करनेवाला चक्रधर मिश्र ही एक दिन भविष्यमें संन्यासी वेषको धारण करके प्रेम-पथका पागल पथिक बन जायेगा।

एक बार चक्रधरको पागलका पार्ट दिया गया। चक्रधरने कहा— मंचपरके पर्देके पीछेसे जैसे अन्य पात्र आते हैं, मैं वैसे नहीं आऊँगा। मेरी योजना दूसरी है। पागलका वेष बना लेनेके बाद मैं नाटक-घरकी दीवालको फाँद करके आऊँगा, जहाँ दर्शक लोग बैठ करके नाटक देखते हैं।

सहयोगी लोगोंने चक्रधरके विचारका विरोध नहीं किया, अपितु समर्थन ही किया। चक्रधरने पागलका वेष बनाया। सिरसे पैरतक आधे अंगको काले रंगसे और शेष आधे अंगको सफेद रंगसे रंग लिया। इसके बाद हाथमें छोटे-छोटे कंकड़ ले लिये। किसी भी दर्शकको कल्पना नहीं थी कि कोई अभिनेता दीवाल फाँद करके आ सकता है। चक्रधरका वेष तो विचित्र था ही, उनका शरीर भी फटे चिथड़ोंसे ढका हुआ था। इस रूपमें चक्रधर चीखते-चिल्लाते, ही-ही हो-हो करते, पागलोंकी-सी बोली बोलते हुए, कंकड़ कभी इधर कभी उधर मारते हुए दीवाल फाँद करके आया। लोगोंको ऐसा लगा मानो सचमुच ही कोई पागल आ गया है।

जिस कुर्सीपर राजा साहब बैठे हुए थे, उधरकी ओर मुँह करके एक कंकड़ राजा साहबकी ओर भी चक्रधरने मारा। जन-साधारणकी यह

हलवाईकी दूकानपर ले गया और उनको भर पेट भोजन करवाया। वे साधु भी चक्रधरपर बड़े प्रसन्न हुए। चक्रधरने उनसे पूछा— आप और भी कोई विद्या जानते हैं?

साधु बोले— हाँ, रमल विद्या जानता हूँ। उसके अनुसार गणना करके जो बतलाता हूँ, वह प्रायः सही निकलता है।

चक्रधरने कहा— आप मेरे भविष्यके बारेमें कुछ बतलाइये।

चक्रधरने उनको एक आसन दिया। वे उस आसनपर स्थिर चित्तसे बैठ गये और रमलके पाशे फेंकते रहे। पाशेमें जो आता, वे कागजपर लिख लेते थे। लगभग आधा घंटा उनको गणना करनेमें लगा होगा। इसके बाद उन्होंने कहा इतने वर्ष, इतने मास और इतने दिनके बाद तुम्हारा सर्वोच्च भाग्योदय होना चाहिये। यदि मेरी गणनामें कुछ त्रुटि रही होगी तो इसमें एक-दो दिनका अन्तर पड़ सकता है, अधिकका नहीं।*

* * * * *

माँ का आज्ञाकारी पुत्र

बचपनमें चक्रधर अपनी माँका बड़ा आज्ञाकारी था। गाँवसे थोड़ी दूरपर चचेरी बहिनका विवाह हुआ था। माँ अपने पुत्र चक्रधरको उसकी चचेरी बहिनके ससुराल भेजना चाहती थी। चक्रधरने जाना स्वीकार भी कर लिया। चक्रधरको भेजनेके लिये तैयारी की जाने लगी। द्वारपर पालकी आ गयी। इसी समय माँने अपने पुत्र चक्रधरसे कहा— क्या तुम मेरी एक बात मानोगे? मानो तो कहूँ?

माँकी समझमें ऐसा था कि पता नहीं मेरी बात यह मानेगा या नहीं। अब यह अँगरेजी स्कूलकी दसवीं कक्षामें पढ़ता है, न जाने कैसे-कैसे लड़कोंकी संगतिमें रहता है, अतः पता नहीं कि यह अपनी कुल-परम्पराका निर्वाह करेगा या नहीं। मनमें ऐसी दुविधा होनेके कारण माँने अपने पुत्रसे वैसा कहा था, परंतु वह तो मातृ-भक्त था ही। माँने

---

* उन साधुने जो कहा था, वह सही निकला और लगभग उतने दिन बाद ही चक्रधरने संन्यास लिया था।

सामान्य धारणा रहती है कि नाटकमें अभिनय करनेवाला व्यक्ति भले ही किसी अन्य व्यक्तिको हँसी-मजाकका विषय बना ले और हँसी-हँसीमें उपहास कर ले, किंतु वह अपने अभिनय-कालमें भी ऐसा व्यवहार और ऐसा आचरण राजा साहबके प्रति नहीं करेगा, परंतु यहाँ तो बात ही दूसरी थी। जब चक्रधर राजा साहबपर अपने कंकड़का दूसरा निशाना साध रहा था और उनकी ओर लपक करके बढ़ रहा था, तब चक्रधरकी इस चेष्टासे सबके मनमें यह बात जँच गयी कि सचमुच ही कोई पागल आ गया है। राजा साहब वस्तुतः डर गये और अपनी कुर्सी छोड़ करके एक किनारे होने लग गये।

बादमें जब उनको यह ज्ञात हुआ कि यह पागल नहीं है, अपितु पागलका पार्ट करनेवाला चक्रधर मिश्र है, तब सबका बड़ा मनोरंजन हुआ। राजा साहबको अपने उठकर हटनेपर बड़ी शर्म आयी। सभी चक्रधरके अभिनय-कौशलपर आश्चर्य करने लगे।

'कबहुँक बिसमय कबहुँ अनंदा'।

* * * * *

रमल-विद्याविद् साधु

चक्रधर गया जिला-स्कूलमें पढ़ता था और छात्रावासमें रहता था। उस छात्रावासका फाटक लोहेकी छड़ोंसे बना हुआ था। उस फाटकपर चढ़कर चक्रधर झूल रहा था। फाटकपर चढ़े-चढ़े उसे कभी खोलना और कभी बन्द करना, तभी एक साधु सामने आया। उनके शरीरपर धोती-कुर्ता-साफा, सभी कुछ गेरुए रंगका था। उन्होंने चक्रधरसे कहा— बेटा! मुझे भूख लगी है, कुछ खानेको दो।

चक्रधरने कहा— मेरी पाकेटमें क्या है, यदि आप बता देंगे तो जो कुछ पाकेटमें है, वह सब मैं आपको दे दूँगा।

वे कुछ देरतक विचार करते रहे और फिर बोले— पाँच आना तीन पैसे।

उनके कहनेके बाद चक्रधरने अपनी पाकेट देखी। पाकेटसे ठीक इतने ही पैसे निकले। इससे चक्रधर बड़ा प्रभावित हुआ। चक्रधर उनको

ज्यों ही पूछा, त्यों ही चक्रधरने तत्काल कहा— मैं जरूर मानूँगा।

तब माँने कहा— अपनी बहिनके घरपर जा रहा है। तुम उस गाँवका पानी मत पीना। जब पानी ही नहीं पीना है, तब भोजन करनेकी बात ही कहाँ रह जाती है? जब तुम अपनी बहिनके घरपर पहुँचोगे तो तुम्हारे सामने जल-पात्र रखा जायेगा। तुम झुक करके और हाथ जोड़ करके उसको प्रणाम कर लेना। मैंने तुम्हारे लिये पूड़ी-साग बना दिया है। यह भोजन मैं तुम्हारे साथ पालकीमें रखवा दूँगी। उससे मिल लेनेके बाद गाँवकी सीमाके बाहर आकर जो कुआँ हो, उस कुएँपर बैठकर, अपना हाथ-पैर धोकर भोजन कर लेना, परंतु अपनी बहिनके घरकी तो बात ही क्या, उसके गाँवका न तो पानी ही पीना और न कोई वस्तु ही खाना। तुम पालकीमें जाओगे। पालकी ढोनेवाले चार कहाँर रहेंगे। वे चारों कहार तो तुम्हारी बहिनके घरपर ही खायेंगे। उन कहाँरोंको तुम वहाँ भोजन करवा देना, पर तुम अपने बारेमें तनिक भी ढीले मत पड़ना। कोई कितना भी अनुरोध करे, पर करना वैसे ही, जैसे मैंने कहा है।

चक्रधरने अपनी माँकी बात ज्यों-की-त्यों मान ली। गाँवसे चलनेके पूर्व घरका महरा आया। घरमें बर्तन माँजनेवालीको महरी और पानी भरनेवालेको महरा कहते हैं। वह घरका महरा कहने लगा— भइया! जिस गाँवको आप जा रहे हैं, उसी रास्तेमें उससे पहले जो गाँव पड़ता है, वहाँ मेरी बेटी ब्याही है। बाबू! जरा उससे भी मिल लेना तथा उसका भी हाल-चाल पूछ लेना।

महरेको भी चक्रधरने मिल लेनेका आश्वासन दिया। पालकीपर चढ़कर चक्रधर अपनी चचेरी बहिनके यहाँ चल दिया। बहिनके घर पहुँचनेपर बड़ा स्वागत-सत्कार हुआ। बहिनके घरपर खाने-पीनेके लिये बड़ा आग्रह किया गया, परंतु उस आग्रहको स्वीकार करनेकी बात ही समाप्त थी। जल-पात्र आया तो चक्रधरने हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए उसका सम्मान किया। चारों कहारोंको बहिनके घरवालोंने भोजन करा दिया।

चक्रधरके साथ भोजनका सामान था ही। वह यही सोच रहा था कि यहाँ बहिनके घरसे विदा होनेके बाद पासवाले गाँवमें जाना ही है,

जहाँ महरेकी बेटी है। उस गाँवमें जाकर भोजन कर लूँगा, जल पी लूँगा और महरेकी बेटीसे भी मिल लूँगा। अब चचेरी बहिनसे विदा होनेका समय आया। जिसे देखकर बहिन बड़ी प्रसन्न हुई थी और जिससे मिलकर हृदयमें बड़ा प्यार उमड़ा था, उसी भाई चक्रधरको बहिनने बड़े भारी मनसे विदाई दी।

पालकीमें बैठकर चक्रधर उस गाँवमें आया, जहाँ महरेकी बेटी थी। महरेने नाम और पता ठीक प्रकारसे बता दिया था। वह गाँव बहुत छोटा था, अतः पता लगानेमें देर नहीं लगी। चक्रधरने महरेकी बेटीको बुलवाया। वह लड़की दौड़ी-दौड़ी आयी। उसने चक्रधरको प्रणाम किया। चक्रधरने उसके हाथपर पाँच रुपये रख दिये। उस समयके पाँच रुपये आजके कई सौ रुपयेसे भी अधिक हैं। इसकी तो वह कल्पना भी नहीं कर सकती थी। उसकी आँखोंसे झर-झर आँसू बह चले।

अब उस गाँवमें खाने-पीनेका प्रश्न आया। पहले तो चक्रधरने सोचा ही था कि महरेकी बेटीवाले गाँवमें भोजन कर लूँगा, पर अब मन बदल गया। जिसे बहिन मानकर पाँच रुपया दे दिया, उसके गाँवके बारेमें भी वही नियम है, जो नियम अपनी चचेरी बहिनके गाँवके लिये है। मनमें इतना आते ही चक्रधरने कहारोंसे पालकी उठानेके लिये कहा। लोगोंने बहुत कहा कि यहाँ खा-पीकर आगे जाना चाहिये तो चक्रधरका यही उत्तर था— बहिनके गाँवका मैं अन्न-जल कैसे ग्रहण कर सकता हूँ?

कुछ लोगोंने समझाना चाहा— यह न तो आपकी सगी बहिन है, न कुलकी बहिन है, न आपके कुटुम्बकी है, न आपके जातिकी है, मात्र महरेकी बेटी है, अतः यहाँ भोजन करनेमें एवं विश्राम करनेमें आपत्ति नहीं होनी चाहिये।

चक्रधरने कहा— आपका कहना ठीक है, पर जिसे बहिन मान लिया, उसके गाँवमें खाना-पीना कैसे हो सकता है? बहिनका नाता चाहे रक्त-सम्बन्धसे हो अथवा धर्म-सम्बन्धसे हो, पर जब बहिन कह दिया तो फिर उसके गाँवमें अन्न-जल ग्रहण करना उचित नहीं।

लोगोंने देखा कि चक्रधर अपना आग्रह छोड़नेके लिये प्रस्तुत नहीं है। तब फिर एक और निकट गाँवके ब्राह्मण-गृहमें चक्रधरके

खाने-पीनेका प्रबन्ध किया गया। भोजनके आसनपर बैठनेके पहले उसने अपने कपड़े निकाले, हाथ-पैर धोये और फिर भोजनके लिये बैठा।

उपस्थित लोगोंको उसकी इस सारी क्रियामें दम्भ एवं आडम्बर दिखलायी देने लगा। प्रखर शैक्षणिक प्रतिभा, उत्कट देशभक्ति तथा साहसिक राजनैतिक कार्योंके लिये चक्रधर आस-पासके कई गाँवोंमें विख्यात था। जब वह भोजन करने लगा तो उपस्थित लोगोंमेंसे एकने आड़े हाथ लेनेकी भावनासे प्रश्न किया— हमने सुना है कि आप तो मुसलमानका छुआ भी खाते हैं। एक ओर तो ऐसी सुनी हुई बात है और दूसरी ओर यहाँ आचार-विचारका पालन करते हुए आप शौचाचारका इतना अधिक प्रदर्शन कर रहे हैं कि उसकी सीमा नहीं। अब आप ही बतलायें कि सत्य क्या है?

चक्रधरने कहा— मैंने मुसलमानका छुआ हुआ तो नहीं खाया है, परंतु राजनैतिक सम्मेलनोंमें मुसलमानके साथ बैठकर एक टेबुलपर अवश्य खाया है।

उस व्यक्तिने पुनः प्रश्न किया— आज आप वस्त्र उतार करके और हाथ-पैर धो करके आसनपर बैठे हैं, क्या आप सदा ही इसी प्रकार भोजन करनेके पूर्व करते हैं?

चक्रधरने स्पष्ट कहा— नहीं, मैं ऐसा नहीं करता। सत्य तो यह है कि मैं ऐसा आज पहली बार ही कर रहा हूँ। इसके साथ-साथ यह भी सत्य है कि यहाँसे जानेके बाद वही पुराना ढंग व्यवहारमें आ जायेगा। फिर आपके मनमें यह बात उठ सकती है कि मैं बड़ा ढोंगी हूँ और अपने सम्बन्धियोंके सामने शौचाचारका स्वांग रचता हूँ। वास्तविकता यह नहीं है। सच्ची बात यह कि मैं अपनी माँकी आज्ञाका पालन करनेके लिये ऐसा कर रहा हूँ। इस प्रकारके आचार-विचार-व्यवहारके पीछे एक मात्र कारण है मेरी माँकी आज्ञा। घरसे चलनेके पूर्व माँने जो कहा था और जो मैंने वचन दिया था, उसीका पालन कर रहा हूँ। यदि मेरी माँने कुछ न कहा होता तो मैं अपनी चचेरी बहिनके घरपर ही खा-पी लिया होता, किंतु माँके द्वारा मना कर दिये जानेके बाद मैं विवश था। आप विश्वास करें, माँकी आज्ञा-पालनके रूपमें मैं यह कर रहा हूँ। अब आप इसे दम्भ कहें

अथवा प्रदर्शन।

चक्रधरकी इस मातृ-परायणता और सत्य-वादिताका सभी उपस्थित लोगोंपर बड़ा प्रभाव पड़ा।

* * * * *

नारी-मात्र में मातृ-भाव

प्रसंग फखरपुर ग्रामका है। गाँवके राजासाहबके छोटे भाईका विवाह था। छोटा भाई चक्रधरका मित्र था। राजा साहबने कहा कि मिश्रजी, आपको भी बरातमें चलना है। उनका इतना स्नेह था कि उस आग्रहको टालना सम्भव नहीं था। बरात दरभंगाकी ओर गयी थी। रातको मजलिस बैठी। उस मजलिसमें गानेके लिये श्रीदुर्गेशनन्दिनी वाराणसीसे आयी थी। उसे लोग वेश्या कहते तो थे, पर वस्तुतः वह गायनका ही कार्य करती थी। वह गाती बहुत ही उत्तम थी। रातको जब मजलिस बैठी तो मजलिसमें चक्रधर नहीं थे। तब दुल्हाने अपना एक व्यक्ति भेजा और कहा कि मिश्रजीको ले आवो। यदि सीधे न आयें तो चार व्यक्तियोंसे हाथ-पैर पकड़ कर ले आवो। दुल्हेके व्यक्ति चक्रधरके पास पहुँचे। उन्होंने सब बातें चक्रधरको बतलायीं। सब बातें सुनकर चक्रधरने मन-ही-मन सोचा कि जब दुल्हेने ऐसे कहा है तो समझदारी इसीमें है कि स्वतः चल चला जाये। चक्रधर मजलिसमें गया और दुल्हेने उनको अपने बगलमें बैठनेके लिये स्थान दिया। पान खाते हुए चक्रधर वहाँ बैठ गये।

जब दुल्हेने अपने बगलमें चक्रधरको स्थान दिया तो गायकोंने समझा कि यह कोई महत्त्वपूर्ण व्यक्ति है। श्रीदुर्गेशनन्दिनीने दुल्हेको सलाम किया और फिर चक्रधरको सलाम किया तथा चक्रधरसे पूछा— कहिये, खिदमतमें क्या पेश करूँ?

उस गायिकाके ऐसा कहनेपर चक्रधरने कहा— माँ! मुझे तो संगीत आता नहीं। मैं क्या कहूँ कि क्या गावो। यहाँ तो संगीतके कई मर्मज्ञ बैठे हैं। इस बारेमें तो उनसे पूछना चाहिये।

चक्रधरके मुखसे 'माँ' शब्दको सुनकर वह विस्मित हो उठी। जिसे सदा हेय शब्दोंसे सम्बोधित किया गया हो, उसे कोई माँ कह

सकता है, वह भी एक भरी सभामें कोई माँ कहकर सम्बोधित कर सकता है, इस भावने उसके मनको झकझोर दिया। जबतक वह उस सभामें रही, सारे समय चक्रधरकी ओर विस्मय, पवित्रता और वात्सल्यके भावोंसे समन्वित होकर देखती रही। फिर उससे विलासतोड़ी राग सुनानेको कहा गया। उसने लगभग चालीस मिनटतक गाया होगा। ऐसा लगता था मानो राग-रागिनी उसके अधरोंपर खेलती रहती हैं। उस सस्तीके जमानेमें भी एक रातके लिये चार सौ रुपयेपर वह आयी थी।

* * * * *

वैवाहिक बन्धन

होनहार व्यक्तित्वकी कान्ति अलग ही होती है। जिस प्रकार पूर्व दिशामें फैलनेवाली अरुणाभा सूर्योदयकी पूर्व-सूचिका है, इसी प्रकार बाल्यकाल एवं किशोरावस्थामें सहज रूपसे दिखलायी दे जानेवाले विशिष्ट आचार-विचार-व्यवहार भावी जीवनकी महत्ता-दिव्यता-विशिष्टता आदिका पूर्व-संकेत देते हैं। चक्रधरकी जैसी प्रतिभा-बुद्धिमत्ता-वाक्पटुता-सेवातत्परता थी, उससे सहज ही घरवालोंको अनुमान हो गया कि भविष्यमें यह महान पुरुष होगा। महान होकर भी यह महान व्यक्ति पारिवारिक जीवनमें सहयोगी बना रहे, ऐसी चाह पारिवारिक जनोंमें रहती ही है और इस चाहकी पूर्तिके लिये एक ही उपाय है कि उसका विवाह करवा दिया जाय। वैवाहिक जीवनका मनोहर पाश उसे पारिवारिक जनोंसे छिटकने नहीं देगा।

ऐसी ही कुछ विचार-धारासे प्रेरित होकर किशोर चक्रधरका विवाह चौदह वर्षकी आयुमें कर दिया गया। उन दिनों बालविवाह एक सामान्य परम्परा थी। विवाहित होकर सौभाग्यवती श्रीजगाधरी देवीको ही किशोर चक्रधरकी धर्मपत्नी कहलानेका सुयश प्राप्त हुआ। विवाहके समय सौ. श्रीजगाधरी देवीकी आयु मात्र नौ वर्ष थी। भविष्यमें एक बालकका जन्म भी हुआ, पर वह मृत था। पारिवारिक जनोंने विवाह तो करवा दिया, परन्तु यह मनोहर पाश उस महान व्यक्तित्वको अपने बन्धनमें रख नहीं पाया। सच्चिदानन्दमय दिव्य आध्यात्मिक लक्ष्यकी

प्राप्तिके लिये प्रयत्नशील एवं जागरूक 'पथिक' के लिये इस बन्धनका अतिक्रमण आवश्यक हो गया।

* * * * *

सिद्ध अवधूत-संत का अनुग्रह

चक्रधरकी आयु पन्द्रह वर्षकी थी और वह गया शहरमें नवीं कक्षाका छात्र था।

वह छात्रालयमें रहता था। गयाकी कलक्टरी कचहरीके बाहरी द्वारपर एक नंग-धड़ंग साधु अवधूत स्थितिमें पड़े रहा करते थे। लोग कहा करते थे कि वे सिद्ध कोटिके महात्मा हैं, पर चक्रधर तो उन दिनों महात्माओंकी जीवन-शैलीका बड़ा निन्दक था। वह आलोचनाके स्वरमें कहा करता था कि ये हट्टे-कट्टे मोटे-ताजे साधु समाजके लिये भार हैं, जो कमाते नहीं; बस, पड़े रहते हैं। उसे क्या पता था कि एक दिन उसी प्रकारका साधु-जीवन वह भी अंगीकार करेगा।

उन अवधूत साधुकी सिद्धिके बारेमें उसने एक प्रसंग सुना था। उन दिनों अँगरेजोंका राज्य था। गया जिलेका कलक्टर अँगरेज था। वह घोड़ेपर चढ़कर अपने आफिस जाया करता था। वह कलक्टर अच्छे स्वभावका था। पहली-पहली बार जब वह घोड़ेपर चढ़कर आफिस जा रहा था तो द्वारपर वह साधु पड़ा हुआ दिखायी दिया। सिपाही लोग उस साधुको हाथ-पैर पकड़कर हटाने लगे तो उसने टूटी-फूटी हिन्दीमें कहा कि छोड़ दो, इसे छोड़ दो। अब जब भी वह आफिस जाता तो कलक्टरी कचहरीके द्वारपर यह साधु मिलता। साधुके सामने आते ही वह अपना घोड़ा रोक देता, अपने हैटको सिरपरसे उतारकर तथा ऊँचा करके साधुका अभिवन्दन करता और फिर हैट सिरपर रखकर अपने आफिस चला जाता। ऐसा वह कलक्टर रोज करता। इस तरह कुछ दिन निकल गये। एक दिन जब वह ऐसा कर रहा था, तब उन अवधूत साधुने गुनगुनाते हुए कुछ कहा। उनके कहनेका भाव यह था कि तेरी उन्नति हो जाये। इस आशीर्वादके मिलनेके थोड़े दिनोंके बाद ही, शायद चौदह-पन्द्रह दिनोंके बाद ही कमिश्नरके रूपमें उसकी पदोन्नति हो गयी।

छात्रालयके सहपाठियों और साथियोंपर चक्रधरका रोब था। जो लड़का पढ़नेमें-बोलनेमें जरा तेज होता है, उसका प्रभाव अन्य छात्रोंपर पड़ता ही है। उसने अपने कुछ साथियोंसे कहा कि चलो, आज उस साधुको तंग किया जाये। उन लोगोंमें श्रद्धा-बुद्धि तो थी नहीं। वे तीन-चार साथी कचहरीके द्वारपर जा पहुँचे। उनमेंसे किसीने किसी प्रकारसे, किसीने किसी प्रकारसे उनको परेशान किया। वे सब उनको तंग करनेकी नीयतसे ही आये थे। अन्तमें चक्रधरकी बारी आयी। वह उनको गुदगुदाने लगा। वे खिलखिलाकर हँसने लगे। वे खूब हँसे; बस, हँसते ही रहे तथा बार-बार कहते रहे—'लरिकाईकी बान तोरी ना छूटी कन्हैया', 'लरिकाईकी बान तोरी ना छूटी कन्हैया'। वे रह-रहकर खिलखिलाकर हँसते जायें तथा यह वाक्य दोहराते जायें। वे इतने हृष्ट-पुष्ट थे, इतने ताकतवर थे कि यदि कहीं उन्होंने चक्रधरका हाथ पकड़ लिया होता तो छुड़ाना सम्भव ही नहीं था, पर उन्होंने न उसे पकड़ा, न उसे डाँटा और न गुदगुदानेसे ही मना किया। हँसते रहनेसे उनका स्थूल शरीर खूब हिल रहा था। अन्तमें चक्रधर ही थक गया और थककर गुदगुदाना छोड़ दिया।

वे सभी साथी लोग वापस आ गये, पर उन संतकी संनिधिका प्रभाव अद्भुत था। भले चक्रधर उन्हें तंग करनेके लिये गया था, पर उनके अल्पकालिक सम्पर्कका प्रभाव ऐसा था कि इस घटनाके तीन-चार दिन बादसे उसकी वृत्तियोंमें क्रमशः स्वतः परिवर्तन होने लग गया। चित्तकी चञ्चलता मिटने लग गयी थी। वृत्तियाँ शान्त हो गयीं। उसका व्यवहार पहलेकी अपेक्षा बहुत सौम्य हो गया। वस्तुतः संतका सम्पर्क अमोघ होता है।*

* * * * *

*बाबा बतलाया करते थे— मुझे मेरे जीवनमें आठ महासिद्ध संतोंके दर्शन हुए हैं और मुझे उनका कृपा-पात्र बननेका सौभाग्य मिला है। मैं तो सदा ही साधुओं-संतोंका कृपा-पात्र रहा हूँ।

देशभक्ति और धर्मानुराग

चक्रधर जिन दिनों विद्यालयमें पढ़ता था, उन दिनों अँगरेजोंको भारतदेशकी सीमासे बाहर निकालनेके लिये भारतीय युवकोंने जो-जो किया, वह सब सदैव ही भारतीय इतिहासका स्वर्णिम एवं स्मरणीय वृत्त रहेगा। चक्रधर अपने विद्यार्थी-जीवनमें अखिल भारतीय कॉंग्रेस कमेटीका सदस्य था और उसने राजनैतिक आन्दोलनोंमें खुलकर भाग लिया। एक बार बिहारप्रदेशके किसी नगरमें कॉंग्रेसकी वर्किंग कमेटीकी बैठक थी। उस अधिवेशनमें चक्रधर भी गया था। उस बैठकमें मंचपर बैठनेके लिये आनेवाले प्रतिनिधियोंमें एक प्रकारकी प्रतिस्पर्धा थी। भले कार्यक्षेत्रमें सक्रिय न हों, पर कौन नहीं चाहता कि मैं सबके दृष्टि-पथपर आ जाऊँ और मेरा नाम समाचारपत्रोंमें छप जाये? किस-किसको मना किया जाये, अतः बैठनेवाले मंचपर बैठे ही। प्रतिस्पर्धाकी इस वृत्तिके प्रति बड़ी हेय भावना होनेके कारण चक्रधर मंचपर नहीं बैठा, कहीं दूर बैठा था। इस बैठकमें एक प्रस्ताव कमेटीके सामने आया। उसका पारित होना जनहितकी दृष्टिसे वस्तुतः आवश्यक था, परंतु जितने भी वक्ता खड़े हुए, वे सब उस प्रस्तावके विरुद्ध ही बोलते चले गये। जनताकी मतिके सम्बन्धमें क्या कहा जाये? जिधर कोई बहा ले जाये, उधर ही बह जाती है। उन दिनों हाथ उठाकर प्रस्तावके पक्षमें सम्मति देनेकी प्रथा थी। जिन सदस्योंने उस प्रस्तावको सामने रखा था, उन लोगोंको ऐसा लगा कि प्रस्ताव गिर जायेगा। उन्होंने विचार किया कि यदि मिश्रजी (चक्रधर) होते तो बात बन जाती। दूर कोनेमें बैठे हुए मिश्रजी दिखलायी दे गये। फिर उनको भाषण देनेके लिये मंचपर बुलाया गया। अंतमें चक्रधरका भाषण हुआ। भाषणमें चक्रधरने यही कहा कि मंचपर बात बनाना आसान है परंतु उन भाइयोंके भीषण कष्टोंकी कुछ कल्पना करें, जो जेलमें यातना भोग रहे हैं और उन बहिनोंकी विकट परिस्थितिका कुछ विचार करें, जिनके सिरका सिन्दूर बन्दूककी गोलियोंने पोंछ दिया है। सभाका सारा वातावरण ऐसा बदला कि प्रस्ताव सर्वसम्मतिसे पारित हुआ।

* * *

डाक्टर श्रीराजेन्द्रप्रसादजी थे तो अखिल भारतीय स्तरके नेता, परंतु बिहारके राजनैतिक आन्दोलनके संचालनका भार मुख्यतः इन्हीं श्रीराजेन्द्रबाबूपर था। इन आन्दोलनोंमें भाग लेनेके कारण चक्रधरका श्रीराजेन्द्रबाबूसे निकट सम्पर्क था। भविष्यमें ये श्रीराजेन्द्रबाबू भारतके प्रथम राष्ट्रपति बने।

* * *

चक्रधर गया जिला-स्कूलमें पढ़ता था और उसका एक मित्र मदनमोहन सिंह टिकारीराज स्कूलमें पढ़ता था। वे दोनों एक साथ ही स्कूलकी पढ़ाईको छोड़कर महात्मा गाँधी द्वारा छेड़े गये सविनय अवज्ञा आन्दोलनमें सम्मिलित हुए थे। गया कँग्रेस कमेटीमें वे लोग एक साथ काम करने लगे। विभिन्न स्थानोंपर घूम-घूमकर प्रचार किया करते थे। उस समय ज्यादातर गाँधी विचारधाराकी पुस्तकें पढ़ते थे। 'नवजीवन' पत्रिकामें गाँधीजीके जो विचार छपते थे, उसका उन लोगोंपर काफी असर था।

* * *

सन् १९२८ में चक्रधर गया नगरके सरकारी जिला स्कूलकी कक्षा नौ में पढ़ता था। उस समय चक्रधरकी आयु १५ वर्षकी थी। उस जिला स्कूलमें एक मुसलमान मास्टर साहब थे। उनका नाम था जनाब खालिक साहब। वे कक्षामें पढ़ाते समय हिन्दू धर्मकी बड़ी निन्दा किया करते थे। धर्म-निन्दा सभी हिन्दू विद्यार्थियोंको बड़ी चुभती थी। चक्रधर कक्षाके सारे विद्यार्थियोंमें अग्रगण्य था। सहपाठियोंने चक्रधरसे कहा कि कभी अवसर देखकर मास्टर साहबसे धर्म-निन्दा नहीं करनेके लिये प्रार्थना करनी चाहिये। एक दिन कक्षामें बड़ी ही शिष्टतापूर्वक चक्रधरने मास्टर साहबसे कहा— आप हिन्दू धर्मकी निन्दा करते हैं, यह हम सभी हिन्दू विद्यार्थियोंको अप्रिय लगती है। हमारा तो आपसे यही अनुरोध है कि आप हिन्दू धर्मकी निन्दा न किया करें।

चक्रधरके द्वारा इतना कहा जाना था कि वे बहुत क्रोधित हो उठे। उनका क्रोध भभक उठा। उन्होंने अभद्र रीतिसे चक्रधरको डाँटा। चक्रधर अपनी कुर्सीपर चुपचाप बैठ गया। मास्टर साहब हिन्दू धर्मकी

आलोचना बन्द करनेके स्थानपर और भी अधिक करने लग गये। एक बार फिर चक्रधरने मास्टर साहबसे हिन्दू धर्मकी निन्दा न करनेके लिये प्रार्थना की, पर फल उल्टा निकला। मास्टर साहब और कटु निन्दा करने लग गये। चक्रधर भी अपनी धुनका पक्का था। उस समय गया नगरमें वे हिन्दू लोग, जो अरबी-फारसीके विद्वान थे तथा जिन्हें कुरानकी आयतों और हदीसका अध्ययन था, उनसे चक्रधरने अपना सम्पर्क बढ़ाया। चक्रधर उनसे वे-वे स्थल तथा प्रसंग पूछता, जिनके आधारपर इस्लाम धर्मकी न्यूनताएँ बतलायी जा सकें। उन्होंने ये सब प्रसंग चक्रधरको बताये। इसके अतिरिक्त चक्रधर पुस्तकालयोंमें भी जाता तथा पुस्तकोंसे न्यूनता बतलाने वाले अनेक प्रसंगोंको भली प्रकारसे लिख लेता। क्रमशः चक्रधरने पर्याप्त सामग्री इकट्ठी कर ली, जिससे इस्लाम धर्मकी न्यूनताओंकी ओर संकेत किया जा सके।

एक दिन कक्षामें पढ़ाते समय जब मास्टर साहब अपनी आदतके अनुसार हिन्दू धर्मकी निन्दा कर रहे थे, तब चक्रधर अपनी कुर्सीपरसे उठा और कहने लगा— यदि आज्ञा हो तो मैं भी कुछ निवेदन करूँ।
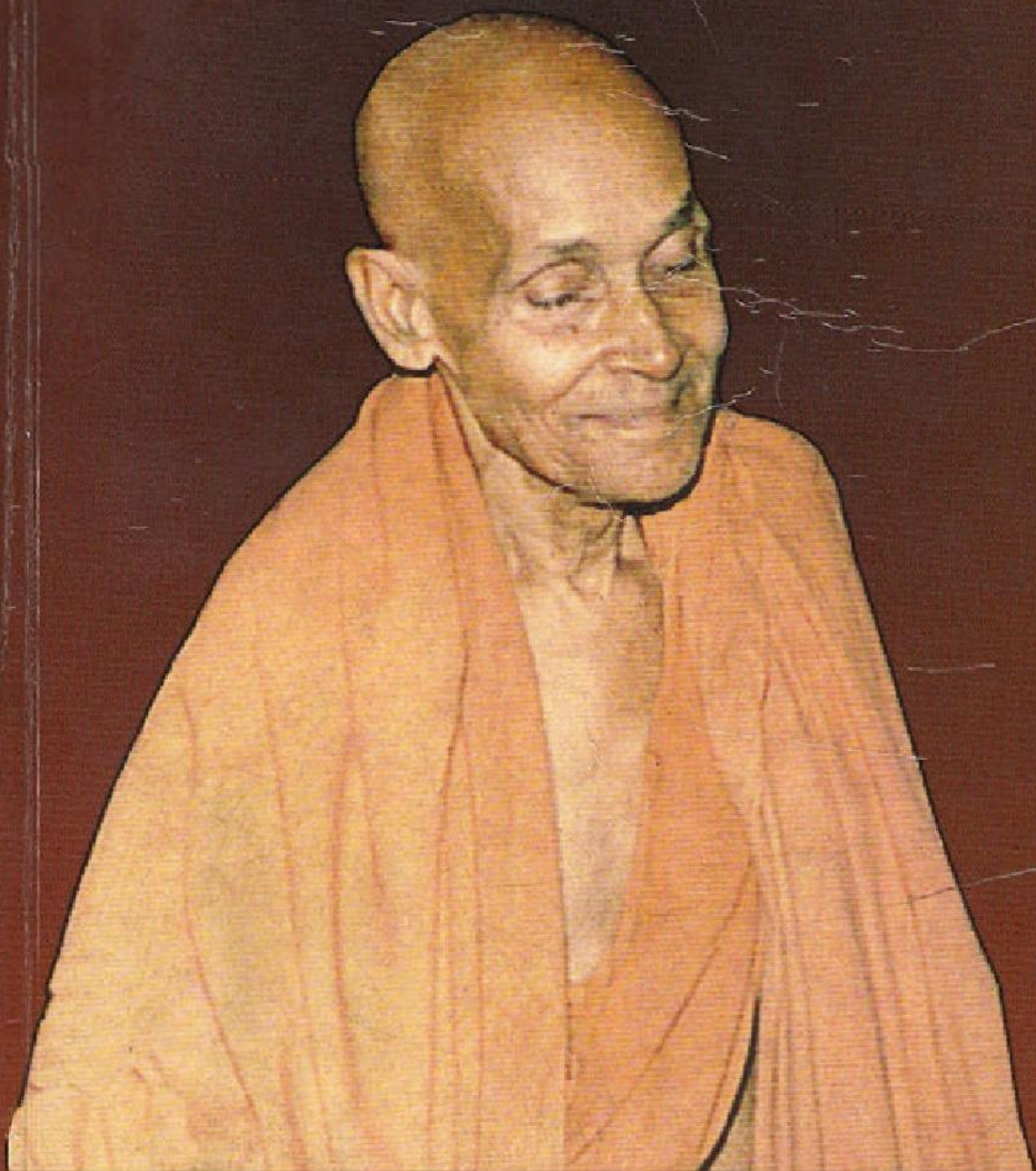
उनसे अनुमति मिलनेपर कक्षामें सभी विद्यार्थियोंके सामने चक्रधर कहने लगा— हर धर्ममें भली और बुरी बातें रहा करती हैं। जिस तरह आप हिन्दू धर्मकी निन्दा करते हैं, उसी प्रकार इस्लाम धर्मके भी कुछ पक्ष आलोचना योग्य हैं।

इतना कहकर चक्रधरने जो-जो सामग्री इकट्ठी की थी, उनको कहने लगा। मास्टर साहब तो पहलेसे ही चक्रधरसे चिढ़े हुए थे, अब चक्रधरके द्वारा इन सब बातोंका कहा जाना ऐसा ही था मानो क्रोधाग्निमें घी पड़ गया हो। क्रोधावतार बनकर मास्टर श्रीखालिक साहब कहने लगे— तुम अपनेको बहुत बड़ा समझते हो क्या? तुम बहुत बढ़-बढ़ करके बोल रहे हो। बहुत जल्द ही तुमको इसका मजा चखाऊँगा।

मास्टर साहब चक्रधरका अनिष्ट करनेके लिये उतारू हो गये और वे ऐसे अवसरकी ताकमें थे, जिससे चक्रधरको कड़ा दण्ड दिया जा सके। इन दिनों महात्मा गाँधीके नेतृत्वमें काँग्रेसने स्वदेशी आन्दोलन

प्रीतिरसावतार महाभावनिमग्न
श्रीराधा बाबा

छेड़ रखा था। लोगोंमें अँगरेजी सरकारके विरुद्ध जोश फैला हुआ था और चारों ओर विदेशी वस्तुओंका बहिष्कार किया जा रहा था। सरकार स्थान-स्थानपर काँग्रेसियोंको गिरफ्तार कर रही थी। जब गया काँग्रेस कमेटीके सहायक मन्त्री गिरफ्तार कर लिये गये तो लोगोंने चक्रधरको उस छोटी आयुमें ही सहायक मन्त्री बना दिया। उन दिनों राष्ट्रीय आन्दोलनमें विद्यालयके छात्र भी भाग लेते थे। एक दिन कुछ छात्रोंने गया जिला-स्कूलपर जो अँगरेजी झण्डा यूनियन जैक फहर रहा था, उसको उतार दिया और उसके स्थानपर काँग्रेसी तिरंगा झण्डा फहरा दिया। झण्डा फहराने वालोंमें चक्रधर नहीं था, परंतु मास्टर श्रीखालिक साहबको बदला लेनेका मौका मिल गया। उन्होंने झूठी शिकायत कर दी कि यह झण्डा चक्रधर मिश्रने फहराया है, जिसे सरकारी वजीफा भी मिलता है। अँगरेज कलक्टरको बड़ा रोष हुआ कि सरकारी वजीफा पानेवाला विद्यार्थी सरकारके विरुद्ध कार्य कर रहा है। चक्रधरका नाम सरकारकी ब्लैक लिस्ट (अँगरेज-विरोधी व्यक्तियोंकी तालिका)में चढ़ गया।

शिकायत कर चुकनेके बाद मास्टर साहबने कहा— अच्छा बच्चा! अब तुम्हें मेरा विरोध करनेका मजा मिलेगा। देखें, अब तुम आगे कैसे पढ़ते हो? मैं तुम्हारा वजीफा बन्द करवा दूँगा और तुम्हें स्कूलसे निकलवा दूँगा।

चक्रधरने कहा—मास्टर साहब! आप मेरी पढ़ाई क्या छुड़वायेंगे, मैं स्वयं ही पढ़ाई छोड़नेवाला हूँ। मुझे तो देशका स्वदेशी आन्दोलन पुकार रहा है।

चक्रधर स्वदेशी आन्दोलनमें अति सक्रिय रूपमें भाग लेने लगा। चक्रधरने देशकी आजादी के लिये क्या-क्या नहीं किया? उसकी देश-भक्ति पूर्ण गतिविधियोंको देखकर अँगरेजी सरकार उसे गिरफ्तार करना चाहती थी, परन्तु वह पुलिसके हाथ लग नहीं पाता था। चक्रधर काँग्रेसका एक सक्रिय कार्यकर्ता था। पुलिस उसे पकड़नेके लिये बैचेन थी, किन्तु चक्रधर चकमा देकर निकल भागता था।

गया शहरकी बात है। चक्रधर गयामें फखरपुरके राजपरिवारके श्रीलल्लनजीके साथ रह रहा था। पुलिसको इसकी सूचना मिल गयी।

सूचना मिलते ही पुलिस अचानक पहुँच गयी और उसने श्रीलल्लनजीके घरपर घेरा डाल दिया। चक्रधर घेरेमें फँस चुका था। यह बड़ी कठिनाईका क्षण था, परन्तु उसने अपना धैर्य नहीं खोया। सच्ची सेवा-भावनाको भगवानकी ओरसे सहायता मिलती ही है। किसी अचिन्त्य विधानके अनुसार भाग निकलनेके लिये एक अनुकूलता सामने आ गयी। श्रीलल्लनजीकी सुपुत्री स्कूलमें पढ़ा करती थी। उसे स्कूल ले जानेके लिये बन्द दरवाजेवाली एक फिटिन गाड़ी आ गयी। चक्रधरने अवसरका लाभ उठाया। उसने लड़कीका वेष बनाया और अपने कन्धेपर किताबोंका थैला लटका करके वह घरसे बाहर निकला। चक्रधर इस प्रकार पुलिसके घेरेसे बाहर निकल करके अपने गाँव फखरपुर चला आया। पुलिसको श्रीलल्लनजीके घरसे निराश लौटना पड़ा।

जब चक्रधर अपने गाँव फखरपुर था, तब पुलिसके अफसरोंने उसे पकड़नेके लिये वारण्ट जारी कर दिया और वह वारण्ट अरवल थानेपर भेज दिया। अरवल थानेके दारोगाजी गिरफ्तार करनेके लिये फखरपुर आये। फखरपुर गाँवमें आकर दारोगाजी चक्रधरकी खोज करने लगे। उस समय गाँवके कई लड़के घरके सामने खेल रहे थे। उन लड़कोंने ज्यों ही पुलिसकी लाल पगड़ी देखी, वे सब खेलना-हँसना भूल गये और चट इधर-उधर तितर-बितर हो गये। अन्य लड़के तो भाग गये, परन्तु चक्रधर अपने घरके बाहर निर्भीक बैठा रहा और हारमोनियम बजाकर मस्तीके साथ देश-भक्तिके गीत गाता रहा। दारोगाजी उसके पास गये और उससे सवाल किया— चक्रधर मिश्रका घर यही है क्या?

चक्रधरने बतलाया— जी, हाँ।

उसके उत्तरमें लेश मात्र भी न भय था और न हिचक थी। दारोगाजीने फिर पूछा— वह इस समय यहाँ है क्या?

सहज स्वरके साथ चक्रधरने उत्तर दिया— जी! अभी वे यहींपर थे। हो सकता है वे घरके भीतर गये हों। उन्हें बुला लाऊँ क्या?

दारोगाजीने कहा— हाँ, जरा बुला लाओ।

चक्रधर हारमोनियमको वहीं छोड़कर घरके भीतर गया। उसने धीरेसे अपने कपड़े बदले और माथेपर गमछा बाँध लिया, जिससे निपट गँवार

देहाती लगने लगा। फिर घरके पीछेके दरवाजेसे निकलकर उसने सीधे गयाका रास्ता पकड़ लिया। थोड़ी देरतक दारोगाजी घरके भीतर गये हुए लड़केके लौटनेकी प्रतीक्षा करते रहे, परन्तु वह लड़का लौटता तब, जब वह वहाँ होता। वह तो दारोगाजीको चकमा देकर फरार हो चुका था और अपना वेष बदलते हुए गया शहरकी ओर चला जा रहा था। जब वे दारोगाजी प्रतीक्षा करते हुए थक गये तो उन्होंने गाँवके कुछ लोगोंकी सहायतासे घरकी तलाशी ली, किन्तु पूर्णतः निराश होना पड़ा।

* * * * *

प्रथम जेल-यात्रा

चक्रधर मिश्र पुलिसकी आँखोंमें धूल झोंककर गया पहुँच गया। वहाँ पहुँचनेके दूसरे या तीसरे दिन आजाद पार्कमें सार्वजनिक सभा थी। सभामें चक्रधरका भाषण होनेवाला था और उसके भाषणकी सूचना दूर-दूरतक प्रचारित भी कर दी गयी थी। पुलिस चाहती थी कि भाषण देनेके पहले ही चक्रधरको गिरफ्तार कर लिया जाय। पुलिसने आजाद पार्कको चारों ओरसे घेर लिया, घेर लिया इसलिये कि ज्यों ही चक्रधर सभामें भाषण देनेके लिये जायेगा, पार्कमें घुसनेसे पहले ही उसे हिरासतमें ले लिया जायेगा। पार्कमें चक्रधरका जोशीला भाषण सुननेके लिये भीड़ इकट्ठी हो गयी। सभाका कार्यक्रम शुरू हो गया, परन्तु चक्रधर कहीं भी दिखलायी नहीं दिया। जनताके दिलमें उत्सुकता थी कि चक्रधर कब बोलनेवाला है और पुलिसकी आँखोंमें तलाश थी कि वह चक्रधर मिश्र किधरसे घुसनेवाला है। चक्रधरको गिरफ्तार करनेके लिये स्वयं कलक्टर साहब उपस्थित थे। कुछ लोगोंके भाषणके उपरान्त सभा-संयोजकने सूचना देते हुए बतलाया कि अब श्रीचक्रधर मिश्रका भाषण होगा। जनताके उत्सुक दोनों कान और पुलिसकी बेचैन दोनों आँखें उसी चक्रधर मिश्रको खोज रही थीं। इस सूचनाको देनेके कुछ क्षण बाद चक्रधर टेबुलका पर्दा हटाकर बाहर निकला। मंचके ऊपर टेबुल थी और उस टेबुलको एक बहुत बड़ी चादरसे ढक दिया गया था। वह बड़ी चादर टेबुल-क्लाथका काम कर रही थी। उस बहुत बड़ी चादरसे ढकी हुई टेबुलके नीचे चक्रधर छिपकर बैठा हुआ था। जनता मन-ही-मन कह रही थी कि इस चतुर युवकने पुलिसको

अच्छा चकमा दिया और पुलिस मन-ही-मन कह रही थी कि इस चालबाज युवकने अच्छा धोखा दिया। जो हो चक्रधर मिश्रका बड़ा प्रभावशाली भाषण हुआ। भाषणके पूर्ण होते ही कलक्टर साहबने स्वयं आगे बढ़कर चक्रधर मिश्रको बन्दी बनाया। फिर तो उसे जेल जाना ही था। चक्रधर भी जानता था कि आज मुझे गिरफ्तार होना ही है। सार्वजनिक सभामें चक्रधरने भाषण अँगरेजी सरकारके विरुद्ध दिया था, इस राजद्रोहके अपराधमें चक्रधरको छः मासकी सजा सुना दी गयी। यह प्रसंग सन् १९२८ या १९२९ ई. का है।

चक्रधर जब जेलमें था तो घरके लोग उनसे मिलने जेलमें गये। घरवालोंको बड़ा दुःख हो रहा था कि जेलमें उसे बहुत कष्ट भोगना पड़ेगा। जेली पोशाकमें खड़े हुए चक्रधरसे बड़े भाईने कहा कि तुम क्षमा माँग लो, पर इसके लिये चक्रधर तैयार नहीं हुआ। फिर छः मासकी सजा भोगनेके लिये चक्रधरको गया जेलमें रहना पड़ा।

जेलमें चक्रधरको यातना कम नहीं भोगनी पड़ी। गया जेलका सुप्रिंटेंडेंट प्रौढ़ावस्थावाला विशालकाय एक आयरिश अँगरेज था। वह लँगड़ा करके चला करता था, इसीलिये लोग उन्हें लँगड़ा साहब कहते थे। जेलका निरीक्षण करते समय जब वह कैदियोंके पास जाया करता था तो वह उनसे कहा करता था— बोलो, साहब सलाम, बोलो।

जो कैदी सलाम कर लेते थे, उन्हें तो वह लँगड़ा साहब कुछ नहीं कहता था, पर जो नहीं करते थे अथवा आनाकानी करते थे, उनके लिये तो वह खूँखार बन जाया करता था। चक्रधर काँग्रेस कमेटीमें मन्त्री था, अतः चक्रधरपर बड़ी कड़ी नजर रखी जाती थी। जब कैदियोंको देखनेके लिये लँगड़ा साहब आया तो उसने चक्रधरसे कहा— बोलो, साहब सलाम, बोलो।

चक्रधर सुनकर भी चुपचाप खड़ा रहा। उसने दुबारा कहा, इसके बाद भी चक्रधर स्थिर खड़ा रहा। तिबारा कहे जानेपर भी चक्रधरने वैसा नहीं किया तो उसका क्रोध भड़क उठा। उसने चक्रधरकी नाकपर जोरसे घूँसा मारा। नाकके साथ-साथ चोट आँखपर भी आयी। ऐसा लगा कि आँख सदाके लिये चली जायेगी। उसी समय नाकसे खूनकी धारा बह चली और चक्रधर मूर्च्छित हो करके जमीनपर गिर पड़ा।

चक्रधरको जेलके अस्पतालमें भर्ती करा दिया गया। लगभग १५, २० दिनतक अस्पतालमें रहना पड़ा। जबतक अस्पतालमें रहा, बार-बार चक्रधरको यही दीख रहा था कि अस्पतालसे निकलनेके बाद फिर वही मार भोगनी पड़ेगी। इन विपत्तियोंके क्षणोंमें चक्रधरको अपने गाँवके एक कुम्हारकी याद आयी। उस कुम्हारका घर चक्रधरके घरके पास था। बहुत भोरमें ही उठ करके वह मिट्टीके बर्तन बनाना आरम्भ कर देता था। उसका स्वभाव था काम करते जाना और भक्ति-भावके पद गाते जाना। एक पद वह प्रायः गाया करता था, उसकी पहली पंक्ति थी, 'तेरे मालिक हैं दीनानाथ, सोच मन कँाहे को करे'? उसके गानेसे चक्रधरकी नींद टूट जाया करती थी। चक्रधरने चिढ़कर उससे कहा— क्या बेकारकी बात सबेरे-सबेरे गाने लगते हो?

उस कुम्हारने स्थानीय देहाती भाषामें कहा— बच्चा! जब जीवनमें संकट आयेगा और जब कोई भी साथ या सहारा देनेवाला नहीं होगा, तब तुम भगवानको याद करना। उस समय इस पंक्तिका अर्थ समझमें आयेगा। सच्ची बात यही है कि दीनोंके नाथ भगवान हैं और वे ही संकटोंसे उबारते हैं।

उस कुम्हारकी बात अब रह-रह करके चक्रधरको याद आ रही थी। चक्रधर मन-ही-मन भगवानसे प्रार्थना कर रहा था कि इस संकटसे बचाइये। चक्रधर अस्पतालसे जेलमें आ गया। वह लँगड़ा साहब जेलका निरीक्षण करने कई बार आया। उसका व्यवहार अन्य कैदियोंके साथ तो वैसा ही क्रूर था, पर चक्रधरके साथ उसने क्रूरता नहीं दिखलायी। ऐसा कैसे हो गया, कारण कुछ पता नहीं, पर चक्रधर यही बात सोचा करता था कि भगवानने मेरी प्रार्थना सुन ली और मेरा बचाव हो गया।

जेलके अन्दर कोल्हूमें तेल पेरना, चक्कीमें आटा पीसना, खेतमें पानी सींचना आदि-आदि कठिन परिश्रमके काम करने पड़ते थे। छः मासकी सजा भोगनेके बाद चक्रधर जेलसे बाहर आया, पर अब उनके मनका झुकाव क्रान्तिकारी गतिविधियोंकी ओर हो गया था। जेलसे बाहर आनेके बाद घरवालोंने कहा भी कि इन राजनैतिक कार्योंमें भाग मत लो, पर चक्रधरने उसपर ध्यान नहीं दिया।

राजनैतिक कार्यकर्ताके रूपमें चक्रधर इधर-उधर भागता और छिपता रहता। कई बार रातके दस-ग्यारह बजे घर आता तथा अपनी पैनालवाली बहिनको और मातृस्थानीया भाभीजी (पं. श्रीदेवदत्तजीकी धर्मपत्नी)को जगाकर रोटी बनवाता और खाता। उनकी पैनालवाली बहिन भाभीजीको सखी कहा करती थी। जब वह आकर अपनी बहिनको जगाता था तो वे बहिन आकर भाभीजीसे कहती थी— चल सखी, टूना (चक्रधर) आयल हथू।

कभी वह खुद आता और कहता— अहो नायको! चल, हम अइली।

तब भाभीजी और उनकी बहिन दोनों मिलकर रोटी बनातीं और वह प्रेमपूर्वक खाता। फिर सुबह होनेसे पहले ही पता नहीं वह कहाँ चला जाता।

एक बार उसने भाभीजीसे कहा था— जेलमें उन्हें अरहर दलनेके लिये मिलता था, जिसे वह फाँकते भी था।

* * * * *

विप्लववादी सक्रियता

बिहारके राजनैतिक आन्दोलनोंमें भाग लेते समय चक्रधरको एक बातका बड़ा कटु अनुभव हुआ। चक्रधरको कई बार ऐसा देखनेको मिला कि कुछ-एक व्यक्तियोंको छोड़कर प्रायः लोगोंमें सेवाकी भावना न्यून और आत्म-ख्यापनकी भावना अधिक है। इससे चक्रधरका मन राजनैतिक आन्दोलनोंसे हटकर क्रान्तिकारी गतिविधियोंकी ओर झुकने लगा, जहाँ पद-पदपर मूक आत्मबलिदान था। चक्रधरके मनमें क्रान्तिकारियोंकी जीवन-गाथा एवं आत्मोत्सर्ग-प्रसंगोंको पढ़नेका चाव बढ़ चला। उसके प्रभावमें क्रान्तिकारियों द्वारा अपनाये गये रास्तेपर चलनेकी प्रवृत्ति जाग पड़ी। भारतमें अँगरेजी राज्यको उखाड़ फेंकनेके लिये कृत-संकल्प क्रान्तिकारियोंका महात्मा गाँधीजीके सत्य-अहिंसा-शान्तिमय प्रयासमें विश्वास नहीं था। सभाओंमें प्रस्ताव पारित करनेसे तथा अँगरेजी शासकोंके सामने हाथ पसारनेसे काम बननेवाला नहीं है, अपितु आवश्यकता इस बातकी है कि लाठीका जबाव लाठीसे दिया जाये। चक्रधरका सम्पर्क विप्लववादियोंसे बहुत अधिक हो गया। लोगोंको इस बातकी जानकारी नहीं थी कि चक्रधरका सम्बन्ध विप्लववादी गतिविधियोंसे भी है। विप्लववादी कार्योंमें सफलता पानेके लिये इस सम्बन्धको सुगुप्त रखना आवश्यक भी था। यह सुगुप्तता ही तो विप्लववादी

गतिविधियोंकी रक्षा-कवच थी। सर्तकता इतनी अधिक रखी जाती थी कि विप्लववादी योजनाओंकी पूर्ण जानकारी तो केवल सर्वोच्च स्तरके कतिपय कार्यकर्ताओंको रहा करती थी, शेष सदस्योंको तो केवल उतना ही ज्ञात रहता था, जितना कार्य उनके द्वारा होना था।

चक्रधर और उनके मित्र मदनमोहन सिंह क्रान्तिकारियोंके सम्पर्कमें थे। वे उनसे बम आदि बनानेकी शिक्षा लेते थे। कलकत्तेका एक बंगाली उन लोगोंको हथियार दिया करता था। कुछ दिनों बाद उस बंगालीने सामान देना बन्द कर दिया। उसकी इस वंचनासे चक्रधर मिश्रकी भावनाको बड़ा धक्का लगा।*

चक्रधरकी क्रान्तिकारी गतिविधियाँ केवल गया नगरतक ही सीमित नहीं थी, अपितु इनका कार्यक्षेत्र सम्पूर्ण बिहार प्रान्त था। एक बार क्रान्तिदलके सदस्योंने ऐसी योजना बनायी कि बिहार और उड़िसा प्रान्तोंमें जितने भी पुलिसके थाने हैं, उन सब थानोंपर एक निश्चित दिन और एक निश्चित समयपर बम गिराया जाये और बम-विस्फोटके द्वारा उन सभी थानोंको एकदम उड़ा दिया जाये। यह योजना आगे नहीं बढ़ पायी, पर पुलिसका दल सदा ही इन क्रान्तिकारियोंके पीछे पड़ा रहता था। वेष बदलनेमें चक्रधर बड़े कुशल थे। कभी लाठी पकड़कर कूबड़ निकले हुए एक वृद्धकी भाँति चलते और कभी तुर्की टोपी लगाकर चुस्त पायजामा पहने हुए एक मुसलमानकी भाँति सड़कपर निकल जाते। परिवर्तित वेष होनेके कारण पुलिस चकमा खा जाती। वेष-परिवर्तन तथा अन्यान्य प्रकारकी

---

*यहींपर एक बात और उल्लेखनीय है। सन् १९७५ ई.में वृन्दावनमें पूज्य श्रीकरुणासिन्धुजी महाराजने महाप्रयाण किया। आप होमियोपैथिक चिकित्साके बड़े जानकार थे तथा रुग्ण लोगोंको औषधिका नाम लिखकर दे दिया करते थे। किंतु वे अपने नियमोंके प्रति इतने अधिक निष्ठावान थे कि रुग्णावस्थामें औषधिके नामपर उन्होंने स्वयं कभी गर्म पानी भी स्वीकार नहीं किया। यह रुग्णता विघातक ही सिद्ध हुई।

श्रीकरुणासिन्धुजी महाराजके महाप्रयाणके शोक समाचारको सुनकर बाबा बड़े व्यथित हुए और पुरातन जीवनके प्रसंगोंको स्मरण करके आर्द्र मनसे बाबा कहने लगे— क्रान्तिदलके सदस्यके नाते मेरी उनसे बड़ी आत्मीयता थी। उनके पूर्वाश्रमका नाम था श्रीकेशवप्रसादजी। वे बड़े ही साहसी क्रान्तिकारी थे। हमारे दलमें उन जैसा सच्चा, साहसी और ईमानदार व्यक्ति कोई दूसरा नहीं था। उनकी सूझ-बूझकी सदा ही सराहना होती थी।

सर्तकताओंके कारण पुलिस पकड़ नहीं पाती थी।

एक बार पुलिसको अपने प्रयासमें कुछ सफलता मिल गयी। पुलिसने बिहार प्रान्तके क्रान्तिकारी दलके कई सदस्य गिरफ्तार कर लिये। उन गिरफ्तार सदस्योंको यह भी पता चल गया कि चक्रधरका कोई एक पत्र पुलिसके हाथ लग गया है और उस पत्रके आधारपर पुलिस चक्रधरको गिरफ्तार करना चाह रही है। उन सदस्योंने इस बातकी सूचना देनेके लिये एक व्यक्तिको चक्रधरके पास गाँवपर भेजा। वह व्यक्ति चक्रधरके घरपर आया। चक्रधरको यह पता तो था नहीं कि यह मेरे क्रान्तिकारी दलका है अथवा मेरे दलके सदस्योंका सही संदेशवाहक है। इस बातकी सही जानकारी प्राप्त करनेके लिये कुछ पूर्व-निर्धारित संकेत रहा करते थे। उदाहरणके लिये, उस व्यक्तिने आकर कहा—

उमा कहउँ मैं अनुभव अपना। सत हरि भजनु जगत सब सपना॥

उसके कहनेपर चक्रधरने कहा—

रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि। संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि॥

इस प्रकार दो-तीन चौपाई वह व्यक्ति कहता और उसके उत्तरमें दो-तीन चौपाई चक्रधर कहते। किस चौपाईके बाद कौन-सी चौपाई कहनी है, यह क्रम पहलेसे ही निर्धारित रहता। यदि सारी बात पूर्व-निर्धारित क्रमके अनुसार मिल जाती तो यह मान लिया जाता कि यह व्यक्ति अपना ही है।

उस व्यक्तिने आकर संदेश दिया— यदि तुम अभीतक गिरफ्तार नहीं हुए हो तो तुरंत फरार हो जाओ। तुम्हारा एक पत्र पकड़ा गया है। उस पत्रके आधारपर पुलिस तुमको गिरफ्तार करनेके लिये अत्यधिक सक्रिय है। हमलोग तो गिरफ्तार हो ही चुके हैं। जेलमें जो दुर्दशा होगी, वह तो भोगनी ही है। अब तुम क्यों जान-बूझकर स्वयंको कालके मुँहमें झोंको? अतः इस संदेशके पाते ही अपने बचावका उपाय कर लेना।

इस संदेशके मिलते ही चक्रधरको परिस्थितिकी गम्भीरताका अनुमान हो गया। चक्रधरने उस व्यक्तिसे पूछा— तुम्हारी मैं क्या सेवा करूँ?

वह व्यक्ति अड़तालीस मील पैदल चलकर लोगोंकी दृष्टिसे स्वयंको बचाते हुए चक्रधरके पास आया था। उसने कहा— हो सके तो मुझे दो रुपया दे दो, जिससे मैं वापस जा सकूँ।

चक्रधर तुरंत घरमें गये और अपनी मौंसे कहा– माँ! तू मुझे तीन-चार रुपये दे दे। किसी आवश्यक कार्यसे मुझे गया अभी जाना है।

उन दिनोंके चार रुपये आजके कई सौ रुपयोंके बराबर समझना चाहिये।

मौंने कहा– भोजन कर ले, तब गया जाना। भोजन बन चुका है।

चक्रधरने कहा– भोजन करनेके लिये समय नहीं है। तू देर मत कर। रुपया दे दे।

मौंने रुपया दे दिया। चक्रधरने दो रुपये उस व्यक्तिको दिये और शेष अपने पास रख लिये। रुपये मिलनेके बाद वह व्यक्ति वापस चला गया। चक्रधर भी वेष बदलनेका सामान अपने थैलेमें लेकर घरसे निकल पड़े। जो रास्ता गाँवसे सीधे गया नगरको जाता था, वह रास्ता चक्रधरने छोड़ दिया। खेतोंके टेढ़े-मेढ़े रास्तेसे होकर अरहरके खेतोंको पार करते हुए चक्रधर चलने लगे। एक-दो मील चल लेनेपर जहाँ सुनसान स्थान मिलता, वहीं चक्रधर अपना वेष बदल लेते। अरहरके बड़े-बड़े पौधोंके बीच कोई देख नहीं सकता था, अतः चक्रधर प्रायः ऐसे ही स्थानपर वेष बदलते। वेष बदलते हुए, रास्ता बदलते हुए, कभी पैदल और कभी सवारीका उपयोग करते हुए चक्रधर रातके समय गया पहुँचे।

चक्रधर रातको ही सीधे राजासाहबके घरपर गये। श्रीराजासाहबका नाम था श्रीअविमुक्तेश्वर बहादुर सिन्हा। चक्रधरके पिताजी इन्हींके राजकुल-पुरोहित थे। राजासाहब चक्रधरको बहुत प्यार करते थे, बहुत सम्मान देते थे। इस असमयमें चक्रधरको देखकर वे थोड़ा चौंके तथा कहने लगे– इस समय यहाँ कैसे?

चक्रधरने कहा– मैं इसी समय गाँवसे यहाँ गया पहुँचा हूँ।

राजासाहबने कहा– मैंने सुना है कि तुम्हारे नाम वारंट है और पुलिस तुम्हें गिरफ्तार करनेके लिये दौड़-धूप कर रही है। ऐसी परिस्थितिमें तुम गयामें घूम रहे हो।

चक्रधरने कहा– वारंट है, इसीलिये मैं रातभरके लिये आपके यहाँ आया हूँ। यदि आपके मनमें तनिक भी भय हो तो मैं अभी चला जा सकता हूँ।

राजासाहबने कहा— भयका प्रश्न नहीं। यहाँ संदेहरहित मनसे रहो, पर तुम्हारे लिये मनमें चिंता तो उत्पन्न होती ही है।

चक्रधरने आश्वस्त करते हुए कहा— मैं तो रात बीतते-बीतते सूर्योदय होनेके पहले ही इस स्थानसे चला जाऊँगा।

राजासाहबने तुरंत भोजन बनवाया। चक्रधर थके-माँदे तो थे ही। भोजन करके गहरी नींदमें सो गये। प्रभात होते ही शौचादिसे निवृत्त होनेके बहानेसे चक्रधर फल्गु नदीके पार निकल गये तथा पुलिसकी गतिविधियोंकी जानकारी प्राप्त करने लगे। चक्रधर चाहते थे कि मुझे एक चिकित्सा-प्रमाण-पत्र (MEDICAL CERTIFICATE) मिल जाये, जिसके आधारपर राजासाहबके यहाँ रहा जा सके। फिर पुलिसद्वारा होनेवाली खोजमें पकड़ लिये जानेपर भी राजासाहबपर कोई आँच नहीं आयेगी। राजासाहबके एक परिचित डाक्टर साहबके पास चक्रधर गये। उन्हें एक प्रकारसे पारिवारिक चिकित्सक ही कहना चाहिये। कुशल चिकित्सकके रूपमें उनकी बड़ी ख्याति थी। उन डाक्टर साहबसे चक्रधरने कहा— आप मुझे एक चिकित्सा-प्रमाण-पत्र दे दें।

डाक्टर साहबने कहा— जब तुम बीमार हो ही नहीं, तब तुमको चिकित्सा-प्रमाण-पत्र कैसे दे दूँ?

चक्रधरने बताया— मुझे चिकित्सा-प्रमाण-पत्रकी बड़ी आवश्यकता है। आप अपने रजिस्टरमें मेरा नाम चढ़ाकर तथा दवा देकर मुझे प्रमाण-पत्र दे दीजिये।

सारी परिस्थिति समझनेके बाद उन्होंने चक्रधरको चिकित्सा-प्रमाण-पत्र दे दिया। उन्होंने प्रमाण-पत्रमें लिखा— I have suspicion that he has stone in his kidney (अर्थात् मुझे संदेह है कि इसके मूत्राशयमें पथरी है).

चिकित्सा-प्रमाण-पत्र पानेके बाद चक्रधर भय-रहित होकर राजासाहबके यहाँ रहने लगे।

इन्हीं दिनों उत्तर प्रदेशके बाँदा नगरमें क्रान्तिकारियोंने तीन पुलिस- इंस्पेक्टरोंकी हत्या कर दी थी। इस हत्याके बाद क्रान्तिकारियोंकी और उनके समर्थकोंकी एवं सहयोगियोंकी धर-पकड़ पुलिसने आरम्भ कर दी थी। संदेहके नामपर ही अनेक लोग गिरफ्तार कर लिये गये थे।

चक्रधरद्वारा लिखा गया जो एक पत्र पुलिसके हाथमें पड़ गया था, उस पत्रमें चक्रधरने अपने मित्रको लिखा था कि ''मैं बन्दा परसों आऊँगा''। पत्रमें जो 'बन्दा' शब्द लिखा गया था, उस शब्दकी 'बाँदा'से बेतुकी तुक बैठाकर पुलिस चक्रधरके पीछे पड़ गयी थी। Conspiracy against the Crown (अर्थात् अँगरेजी शासनके विरुद्ध षडयन्त्र) के अपराधमें पुलिस चक्रधरको फँसाना चाहती थी। उधर पुलिसवाले पत्रके आधारपर चक्रधरको अपराधी सिद्ध करनेके लिये प्रयत्नशील थे और इधर चक्रधरके मनकी भावनाएँ कुछ और ही थीं। जब चक्रधरको पता चला कि मेरा जो एक पत्र पकड़ा गया है, उस पत्रमेंके एक शब्द 'बन्दा' की 'बाँदा'से तुक मिलाकर मुझको गिरफ्तार करनेकी और न्यायालयसे दण्ड दिलवानेकी योजना पुलिस बना रही है, तब चक्रधरने भगवानसे अपनी पूरी ईमानदारीके साथ प्रार्थना की— आप सर्वज्ञ हैं, आप सब जानते हैं। सत्य और वास्तविकता आपसे छिपी नहीं है। यदि बाँदामें मारे गये पुलिस-इंस्पेक्टरोंकी हत्यामें अथवा हत्या-योजनामें किसी भी स्तरपर किसी भी प्रकारसे मेरा तनिक भी हाथ हो तो मुझे अवश्य जेल-यातना मिले, पर यदि मेरा तनिक भी हाथ न हो तो पुलिसके कोटि-कोटि प्रयत्नोंके बाद भी मैं साफ-साफ बच जाऊँ।

पुलिसका डी.आई.जी. (Deputy Inspector General) एक अँगरेज था। उस प्रधान अँगरेज अधिकारीका एक और सहयोगी उप-अधिकारी था। इसके अतिरिक्त, गुप्तचर विभागके प्रधानका नाम था श्रीप्रदीपबाबू। ये तीनों वरिष्ठ अधिकारी पुलिस कार्यालयमें बैठकर चक्रधरके उस पत्रपर विचार-विनिमय कर रहे थे। 'बन्दा' शब्दके आधारपर चक्रधरको षडयन्त्रकारी घोषित करनेकी बात चल रही थी। सहयोगी-उपाधिकारीने चक्रधरवाला पत्र पढ़ा। पत्रके अन्तमें चक्रधरका नाम 'चक्रधर मिश्र' पढ़कर उनका माथा ठनका। वे उपाधिकारी राजासाहबके यहाँ बहुत आया-जाया करते थे। उनका राजासाहबसे बड़ा स्नेह था और उन्होंने राजासाहबके यहाँ चक्रधरको बहुत बार देखा था। अब उस पत्रके अन्तमें चक्रधरका नाम पढ़कर वे उपाधिकारी सोचने लगे कि यदि चक्रधर मिश्र पकड़ा जाता है तो इसका अर्थ है जेलकी क्रूरताका शिकार बनकर मृत्युके गालमें चले जाना। बाहरसे कुछ भी अभिव्यक्त न होने देते हुए वे उपाधिकारी चक्रधरके बचावका उपाय सोचने लगे, पर कोई उपाय सूझ

नहीं रहा था। यह बात स्पष्ट थी कि इस पत्रका लिखनेवाला चक्रधर मिश्र है और पुलिसने 'बन्दा' और 'बाँदा'की तुक ऐसी मिला दी थी कि उससे षड्यन्त्रका संदेह होना शत-प्रति-शत सही बन रहा था। उन उपाधिकारी महोदयने उस पत्रको एक बार दो बार तीन बार ध्यानपूर्वक आँखें गड़ाते हुए पढ़ा तथा साथ-ही-साथ वे बचावका उपाय भी सोचते जा रहे थे। पत्र पढ़ चुकनेके बाद उन उपाधिकारी महोदयने अपने प्रधानसे कहा— 'बन्दा' शब्दके आधारपर चक्रधर मिश्रके षड्यन्त्रकारी होनेका संदेह करना सही है, पर क्या इस पत्रका लिखनेवाला वस्तुतः चक्रधर मिश्र ही है?

प्रधान अँगरेज अधिकारीने पूछा— आपका क्या मतलब है?

उपाधिकारी महोदयने कहा— यह लिखावट (Hand-Writing) सम्भवतः चक्रधर मिश्रके हाथकी नहीं है। यदि यह लिखावट चक्रधर मिश्रके हाथकी नहीं हुई और हमलोगोंने उसे गिरफ्तार कर लिया तो उसके विरुद्ध कार्यवाही करनेमें बड़ी परेशानी आयेगी। फिर हमलोगोंके पास कोई प्रमाण नहीं रहेगा, जिसके आधारपर उसे दण्डित करके जेल भेजा जा सके।

गुप्तचर विभागके प्रधान श्रीप्रदीपबाबूने तुरंत प्रतिवाद किया और पूर्ण दृढ़ स्वरमें कहा— यह पत्र चक्रधर मिश्रके हाथका है और यह लिखावट उसीकी है।

उपाधिकारी महोदयने पुनः श्रीप्रदीपबाबूकी बात काट दी। अपनी बातका गिर जाना प्रदीपबाबूको अच्छा नहीं लगा। वे अपने अँगरेज अफसरोंकी खुशी और खुशामदको ही सब कुछ मानते थे। उनके लिये देश और धर्म, गाय और गीता, हिन्दुत्व और देवत्व महत्त्वपूर्ण नहीं थे। प्रदीपबाबूकी मान्यता थी कि चाहे सिरपर चोटी और शरीरपर जनेऊ रहे या न रहे, चाहे भारतका गौरव और भारतीयोंका जीवन बचे या न बचे, पर मेरी सरकारी कुर्सी और मेरे अँगरेज अफसर बने रहें, जिससे बनी रहे मेरी रोटीकी चिकनाई और कपड़ोंकी सफेदी। नमकहलालीके नामपर अँगरेज शासकोंके प्रति वफादारी दिखलानेके लिये और उनकी वाहवाही प्राप्त करनेके लिये श्रीप्रदीपबाबू बड़े विख्यात थे। श्रीप्रदीपबाबूने बड़ी चेष्टा की कि मेरे गुप्तचर विभागद्वारा लगाया गया आरोप पूर्णतः स्थापित

हो जाये, पर उस अँगरेज अधिकारीने श्रीप्रदीपबाबूकी बात नहीं मानी। उस पुलिस कार्यालयमें उन तीन वरिष्ठ अधिकारियोंके मध्य जो विचार-विनिमय हो रहा था, उसके अन्तमें यही निश्चित हुआ कि चक्रधरका पत्र लिखावट-विशेषज्ञ (Hand-writing expert) के पास भेजा जाये और उसकी रिपोर्टके आधारपर ही आगेकी कार्यवाही की जायेगी।

अब पुलिस विभागको आवश्यकता थी चक्रधरके हाथसे लिखे गये कुछ अंशोंकी, जिसकी लिखावटसे पत्रके लिखावटकी तुलना लिखावट-विशेषज्ञ कर सके और अपना निर्णय दे सके। पुलिसने दौड़-धूप करके पता लगा लिया कि चक्रधर रुग्णावस्थामें आजकल राजासाहबके मकानपर हैं और अपनी चिकित्सा करवा रहे हैं। कई सिपाहियोंके साथ पुलिस-अधिकारी राजासाहबके यहाँ आये। अपने घरपर राजासाहबने उनका स्वागत किया। पुलिस अधिकारीने कहा— ऐसी जानकारी मिली है कि चक्रधर मिश्र आपके यहाँ हैं। आप विश्वास करें कि हमलोग उसे गिरफ्तार करनेके लिये नहीं आये हैं। केवल उनसे कुछ लिखवाना है। हम बोलते जायेंगे कि क्या लिखना है। जो हम बोलें, उसे वह लिख दे।

राजासाहबने यह बात चक्रधरके पास कहलवा दी। चक्रधर घरके भीतर थे। बात सुनकर चक्रधर अपने शरीरपर कम्बल लपेटे हुए, रोगीका-सा चेहरा बनाये हुए और रोगीकी तरह चलते हुए पुलिस-अधिकारीके सामने आये। चक्रधरको बैठनेके लिये कुर्सी दी गयी। पुलिस-अधिकारीने कहा— मुझे आपके हाथकी लिखावट (Hand-writing) चाहिये। मैं जो-जो कहूँ, वह-वह आप लिखते जायें।

चक्रधरको सारी बात ज्ञात थी ही। चक्रधर लिखकर दे देनेके लिये तैयार हो गये। पुलिस-अधिकारीने जो-जो कहा, चक्रधर वह सब लिखते गये। कई बातें कई तरहसे लिखवायी गयीं। चक्रधरका असली पत्र तो पुलिस-कार्यालयमें था, पर उस पत्रकी नकल इस पुलिस-अधिकारीके पास थी। वह नकल पुलिस-अधिकारी बोलता चला गया और चक्रधर लिखते गये। कभी तेज गतिसे, कभी धीमी गतिसे, कभी और भी धीमी गतिसे, कभी मध्यम गतिसे, कभी मिश्रित गतिसे, कभी अति मन्द गतिसे, इस प्रकार वही पत्र तथा और भी गद्यांश चक्रधरसे कई बार लिखवाया गया। सम्भवतः ग्यारह-बारह बार लिखवाया गया। चक्रधरने यह सब अपनी

असली स्वाभाविक लिखावटमें लिख दिया। लिखते समय चक्रधर भगवानसे मन-ही-मन ऐसा कह भी रहे थे– हे नाथ! मैं अपनी लिखावटमें कोई बनावट नहीं लाऊँगा। इस समय बनावटका समावेश करना कोई बड़ी बात नहीं है, बनावटका समावेश लिखावटमें सरलतापूर्वक हो सकता है, पर इस समय मैं वैसे ही लिखूँगा, जैसे मैं सहज लिखा करता हूँ, पर आप तो जानते हैं कि बाँदा नगरमें मारे गये पुलिस-इंस्पेक्टरोंकी हत्यामें मेरा तनिक भी हाथ नहीं है। यह बात सर्वथा सत्य है और इसी सत्यके आधारपर मैं आपसे प्रार्थना कर रहा हूँ कि मुझपर जो आरोप मढ़ा जा रहा है, उससे मैं पूर्णतः निर्दोष सिद्ध कर दिया जाऊँ।

चक्रधरने अपनी लिखावटको बिगाड़नेका प्रयास किया नहीं। चक्रधर सत्यको पकड़े रहे और सत्यका आश्रय लिये हुए भगवानकी कृपाकी प्रतीक्षा करते रहे। अपना मनचाहा लिखवा करके पुलिसके लोग चले गये। ये सब लिखे गये अंश और वह असली पत्र पुलिसने लिखावट-विशेषज्ञके पास भेज दिया। श्रीप्रदीपबाबूको पूर्ण विश्वास था कि मेरी बात ऊँची रहेगी। बातके कट जानेका कोई प्रश्न ही नहीं, क्योंकि यह असली पत्र है ही चक्रधर मिश्रके हाथका। इस प्रकार उनका सोचना उचित था, वस्तुतः सर्वथा ही उचित था, पर महान आश्चर्य यह हुआ कि लिखावट-विशेषज्ञने अपनी रिपोर्टमें लिख दिया कि यह असली पत्र चक्रधर मिश्रके हाथका नहीं है।

इस रिपोर्टको पढ़कर श्रीप्रदीपबाबू बड़े झुँझलाये, बड़े झल्लाये और लिखावट-विशेषज्ञकी 'अयोग्यता और अन्धेपन' पर टीका-टिप्पणी करने लगे। श्रीप्रदीपबाबू इतनेसे ही सन्तोष करनेवाले नहीं थे। वह सारी सामग्री फिर एक दूसरे लिखावट-विशेषज्ञके पास भेजी गयी। क्या ही आश्चर्य है कि दूसरे लिखावट-विशेषज्ञने भी यही निर्णय दिया कि असली पत्र चक्रधर मिश्रके हाथका नहीं है। इसके बाद वह सारी सामग्री फिर तीसरे लिखावट-विशेषज्ञके पास भिजवायी गयी। तीसरेने भी वही निर्णय दिया, जो पहले दो दे चुके थे।

चक्रधर साफ-साफ बच गये। षडयन्त्रकारी होनेका आरोप चक्रधरपर स्थापित नहीं किया जा सका, अतः चक्रधर गिरफ्तारीसे बच

गये, परंतु पुलिसकी आँखोंमें चक्रधर सदा चुभते रहे। पुलिस चक्रधरको फँसा नहीं सकी।*

* * * * *

द्वितीय जेल-यात्रा

चक्रधर क्रान्तिकारी दलके सक्रिय कार्यकर्ता थे। इन क्रान्तिकारियोंकी आस्था विप्लवमें थी और यही कारण है कि अपनी विप्लवकारिणी कार्य-योजनाओंको सफल बनानेके लिये तथा विदेशी शासनके राक्षसी शिकंज़ेसे स्वयंको सुरक्षित रखनेके लिये ये क्रान्तिकारी लोग पद-पदपर बड़े सावधान रहा करते थे। गया नगरमें क्रान्तिकारी दलके जो कतिपय सदस्य थे, उन्होंने नगरमें तीन-चार मकान किरायेपर ले रखे थे। एक मकानमें कार्य करते-करते जब इन लोगोंको कुछ आभास मिल जाता था कि पुलिस इस मकानको घेरनेवाली है, तभी ये लोग इस मकानसे दूसरे मकानमें सामानके सहित चले जाया करते थे। इसके फलस्वरूप पुलिस इनको पकड़ नहीं पाती थी।

एक दिनकी बात है। एक बहुत बड़े मकानमें इन लोगोंने आधी राततक काम किया। यह मकान राजा साहबका था और था बहुत बड़ा। यह नगरमें भुतहा मकानके रूपमें बदनाम था, अर्थात् इस मकानमें भूत-प्रेत रहते हैं। ऐसा कुचर्चित मकान ही इन लोगोंको अपनी क्रान्तिकारी गतिविधियोंके लिये उपयोगी रहा करता था। भुतहा मकानके पास भला लोग क्यों आने लगे? ये क्रान्तिकारी लोग आधी राततक साइक्लोस्टाइल मशीनसे पन्द्रह-बीस हजार पर्चे छाप लिया करते थे। इन पर्चोंमें अँगरेजी शासनके काले कारनामोंका कच्चा चिट्ठा रहा करता था। ये कारनामें चाहे भूतकालके हों अथवा वर्तमानकालके हों,

---

*बाबा कई बार कहा करते थे— यह बताना सर्वथा कठिन है कि वस्तुतः क्या बात हुई? मेरे पत्रकी लिखावट बदल गयी अथवा पुलिसद्वारा लिखवाये गये अंशोंकी लिखावट बदल गयी अथवा उन लिखावट-विशेषज्ञोंकी आँखें बदल गयीं, जो भी हो, इसके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं बतलाया जा सकता, परंतु इतना स्वतः सिद्ध है कि सत्यका आश्रय और भगवानकी कृपा, इन दोनोंने सचमुच ही असम्भवको सम्भव कर दिया।

उनको संक्षिप्त और उबलती भाषामें लिखा जाता था। प्रातःकाल होते-होते ये पर्चे नगरमें जगह-जगह चिपका दिये जाते थे तथा बाँट दिये जाते थे। कुछ पर्चे अन्य नगरोंके लिये भी भेज दिये जाते थे। पुलिसकी आँख बचा करके ही यह सारा कार्य होता था। पुलिस इन लोगोंके पीछे पड़ी हुई थी, पर वह इन लोगोंका पता नहीं लगा पा रही थी।

दुर्भाग्यसे इनका एक साथी फूट गया और उसने इन लोगोंके कार्य-स्थलोंकी जानकारी पुलिसको दे दी। भुतहा मकानमें इन लोगोंने आधी राततक अपना काम किया। साइक्लोस्टाइल मशीनसे कई हजार पर्चे छापे और पर्चे छापकर चक्रधर मकानकी छतपर गये। छतपर जाकर वे चौकन्नी दृष्टिसे चारों ओर देखने लगे। चक्रधर छतपर लगी रेलिंगके एक झरोखेमेंसे झाँककर देख रहे थे। इस भुतहा मकानके चारों ओर चहारदीवारी है। यह चहारदीवारी लगभग चार-पाँच फीट ऊँची रही होगी। चक्रधरने देखा कि चहारदीवारीके बाहर, पर चहारदीवारीसे सटे हुए एक व्यक्ति खड़ा होता है, खड़ा होनेपर उसका सिर दिखलायी देता है और फिर वह गप्पसे बैठ जाता है। चक्रधरको संदेह हो गया कि यह पुलिसका इंफार्मर (INFORMER) अर्थात् पुलिसको सूचना देनेवाला व्यक्ति है। चक्रधर और अधिक ध्यानपूर्वक देखने लगे तो उस व्यक्तिकी खाकी कमीज दिखलायी दी। इतना दिखलायी देते ही चक्रधरका संदेह दृढ़ हो गया। चक्रधरके ध्यानमें यह बात आ गयी कि हमलोग पुलिसद्वारा घेर लिये गये हैं। यह सिपाही पुलिस अधिकारीकी ओरसे चौकसी रखने तथा सूचना देने (TO WATCH AND TO INFORM) के उद्देश्यसे नियुक्त किया गया है। यही कारण है कि वह थोड़ी-थोड़ी देरमें उठ-उठ करके देखता रहता है।

चक्रधर तुरंत छतसे नीचे आये। इस समय उस भुतहा मकानमें कुल तीन व्यक्ति थे। एक चक्रधर खुद दूसरे चक्रधरका सहयोगी और तीसरे भोजन बनानेवाला रसोइया। रसोइया बुड्ढा था। चक्रधर तथा उनके मित्र, दोनोंने मिलकर वह साइक्लोस्टाइल मशीन, वे छापे गये पर्चे और अन्य सामग्री, वह सब एक बड़े बोरेमें रखकर बाँध दिया। फिर चक्रधरने उस बुड्ढे रसोइयेसे कहा— हमलोग तो पुलिसद्वारा घेर लिये गये हैं, पर तुम निकलकर भाग जाओ तथा सामानसे भरा यह बोरा लेते जाओ। मैं इस लम्बी रस्सीको छतपरसे मकानके बाहर फेंकता हूँ। यह रस्सी मोटी और मजबूत है, टूटेगी नहीं। इस रस्सीको मैं भीतरसे पकड़े रहूँगा। तुम इस रस्सीके सहारेसे मकानके पीछे उतर जाओ। साथ ही यह बोरा भी

सावधानीपूर्वक उतार लो। मकानके पीछे गड्ढा है। उसमें यह बोरा दबा देना तथा बालू-मिट्टीसे ढक देना। एक सावधानी और रखना। अपने पैरके निशान अपने हाथसे मिटा देना। इधर अब पुलिस आनेवाली है। तुम यह सब करके दूरसे हमलोगोंके सामनेसे निकल जाना। तुमको देख लेनेपर हमलोग समझ लेंगे कि तुम सुरक्षित निकल गये हो और बोरा भी सुरक्षित रख दिया गया है।

उस बुड्ढे रसोइयेको जैसे-जैसे समझाया गया था, उसने वैसे-वैसे ही सारा काम किया। वह बुड्ढा बोरा लेकर मकानके पीछे उतरा ही था कि मकानके दरवाजेको खटखटाया जाने लगा। यह बड़े सन्तोषकी बात थी कि उस बुड्ढेके उतरनेतक कोई बाधा सामने नहीं आयी। खटखटानेकी आवाजसे चक्रधरको अनुमान हो गया कि पुलिस आ गयी है। पुलिसके एक व्यक्तिने दरवाजेपर थाप देते हुए कहा— दरवाजा खोलो।

मकानके भीतरसे चक्रधरने कहा— क्यों, क्या बात है?

त्वरा दिखलाते हुए पुलिसने कहा— जल्दी खोलो, दरवाजा जल्दी खोलो।

चक्रधरने कड़कती आवाजमें कहा— आप कौन हैं?

पुलिसके सिपाहीने भी कड़कती आवाजमें कहा— पहले दरवाजा खोलो तुम!

चक्रधर तो जान रहे थे कि पुलिस आयी है और दरवाजा खुलवाना चाह रही है, पर चक्रधर तो जान-बूझ करके देर कर रहे थे और पुलिसको बातचीतमें अटकाये रखना चाहते थे, जिससे उस बुड्ढेको योजनानुसार कार्य करनेके लिये तथा निकल भागनेके लिये पर्याप्त समय मिल जाये। बातचीतमें अटकाये रखनेके उद्देश्यसे चक्रधरने जब दरवाजा नहीं खोला तो पुलिसने दरवाजा तोड़नेकी धमकी दी। इसे सुनकर चक्रधरने रोबदार भाषामें कहा— इस प्रकारकी धमकी देना कौन-सा शराफतका काम है?

जबतक सम्भव हो सका, पुलिसको बातचीतमें उलझाये रखा गया। अन्तमें दरवाजा खोलना तो था ही और वह खोल दिया गया। दरवाजेको खोलते ही पुलिसने चक्रधरको और उनके मित्रको हिरासतमें ले लिया। पुलिसकी हिरासतमें ये दोनों मकानके बाहर खड़े थे और पुलिसके सिपाही मकानकी तलाशी ले रहे थे। इस बीच चक्रधरके साथीने चक्रधरसे कहा— एक भूल हो गयी। दानदाताओंके नामकी तालिकावाला कागज मेरे पाकेटमें ही है। वह भूलसे

मेरे पाकेटमें रह गया। यदि यह कागज पुलिसके हाथमें पड़ गया तो पुलिस उनको तंग करेगी।

चक्रधरने कहा, कहा संकेतपूर्वक ही— अपने हाथको पाकेटमें ले जाकर अँगुली और अँगूठेके नखोंसे उस कागजके टुकड़े-टुकड़े कर दो, इतने महीन टुकड़े कर दो कि उनको जोड़ा न जा सके।

उस साथीने वैसा ही किया। मकानमें तलाशी चलती रही। इस समय चक्रधरने देखा कि वह बुड्ढा रसोइया काफी दूरीपर निकलकर चला जा रहा है। रातके अँधेरेमें भी चक्रधरने उसकी चाल आदिसे उसको पहचान लिया। उसको देखकर चक्रधरका मन आश्वस्त हो गया कि वे पर्चे तथा वह साइक्लोस्टाइल मशीन सुरक्षित है। मकानकी तलाशीमें पुलिसको कुछ मिला नहीं। मकानके अन्दर राजा साहबके हाथीका झूल पड़ा हुआ था। उस झूलका मूल्य उस सस्तीके समयमें भी लगभग तीन हजार रुपयोंका होना चाहिये। वह झूल ही पुलिसके हाथ लगा और पुलिस उसे लेती गयी।

गुप्तचर विभागके प्रमुख अधिकारी प्रदीप बाबू भी मकानके बाहर चक्रधरके साथ खड़े थे। ये प्रदीप बाबू वे ही हैं, जिन्होंने चक्रधरको बाँदाके तीन पुलिस अधिकारियोंकी हत्याके काण्डमें फँसाना चाहा था। पुलिस परेशान थी कि मकानके अन्दर कुछ मिला नहीं। चक्रधरने प्रदीप बाबूसे कहा— जब कुछ होगा, तभी तो आपको कोई चीज मिलेगी। हमारे पास दानदाताओंकी तालिका थी, वह हमलोगोंने नष्ट कर दी है। वह विनष्ट सूची आप चाहें तो ले सकते हैं।

चक्रधरके ऐसा कहे जानेपर चक्रधरके साथीने तालिकाके अति महीन टुकड़े प्रदीप बाबूके हाथमें दे दिये। पुलिसको इस बातका बड़ा खेद था कि कोई चीज उनके हाथ नहीं लगी। पुलिसने चक्रधरको गिरफ्तार कर ही लिया था। पुलिसने चक्रधरपर मुकदमा चलाया। इस मुकदमेका नाम था 'गया षडयन्त्र काण्ड' (GAYA CONSPIRACY CASE)। फैसला देते समय न्यायालयने चक्रधरको छः मासकी सजा सुना दी। राजनैतिक बन्दीके रूपमें चक्रधरको गया जेलमें डाल दिया गया।

चक्रधर गया जेलमें सूर्यास्त होनेके समय आये। अन्य कैदियोंको अपने-अपने वार्डमें बन्द कर दिया जा चुका था। गया जेलमें पहलेसे

अनेक राजनैतिक बन्दी थे। महात्मा गाँधीने अँगरेजी सत्ताके विरुद्ध असहयोग आन्दोलन छेड़ रखा था और जो व्यक्ति राजनैतिक आन्दोलनमें भाग लेता, अँगरेजी सरकार उसे जेलमें बन्द कर देती थी। लोगोंमें देशके लिये प्राणोत्सर्गकी भावना इतनी अधिक जाग उठी थी कि जेलकी यातनाओंका वर्णन सुनकर भी लोग जेल जानेमें हिचकते नहीं थे। गयाके एक स्थानके महन्त पूज्य श्रीभागवतदासजी महाराज भी उस समय गया जेलमें थे। महन्त होकर भी वे राजनैतिक आन्दोलनमें खुलकर प्रमुख रूपसे भाग लेते थे। उनको अपने वार्डमें यह सूचना मिली कि आज राजनैतिक बन्दीके रूपमें एक किशोर बालक आया है और इतनी छोटी आयुका और कोई भी बन्दी नहीं है।

इतना सुनते ही महन्त श्रीभागवतदासजीके मनमें उस किशोर बालकको देखनेकी उत्सुकता जाग उठी, पर यह तो प्रातःकाल वार्ड खुलनेपर ही हो सकता था। सबेरे वार्ड खुलते ही महन्तजी उससे मिले और परिचय पूछा। तब चक्रधरने कहा— मैं एक ब्राह्मण बालक हूँ। गया जिलामें अरवलके पास फखरपुर ग्रामका रहनेवाला हूँ। क्रान्तिकारी गतिविधियोंके कारण मुझको पकड़ा गया और छः मासकी सजा भुगतनेके लिये मुझे जेल भेज दिया गया है।

चक्रधरके गौर वर्णवाले छरहरे शरीरमें व्याप्त ओजस्विता-तेजस्विता-निर्भयता-सुदृढ़ताको देखकर केवल महन्तजी ही नहीं, सारे राजनैतिक बन्दी बड़े विस्मित हो रहे थे। गया जेलके जीवनका वर्णन करते हुए महन्त श्रीभागवतदासजीने बतलाया— एक दिन वह बच्चा चक्रधर मेरे पास सुबह आया और सुबहवाली प्रार्थनामें शामिल हुआ। उसकी सुरीली आवाजमें मधुरता कूट-कूट कर भरी हुई थी। उस दिनसे वह सामूहिक प्रार्थना कराने लगा। कुछ दिन बाद जेलमें रामायण कथा शुरू हुई। बन्दियोंमें जो विद्वान थे, वे भाषण दे रहे थे। बच्चा चक्रधर भी बालकाण्डकी कथाको ध्यान पूर्वक सुन रहा था। इतनेमें मेरे प्रिय मित्र श्रीयोगेश्वरप्रसादजीकी नजर चक्रधरपर पड़ी। उन्होंने देखा कि चक्रधरकी आँखें बिलकुल बन्द हैं। श्रीयोगेश्वरप्रसादजीने समझा कि यह बच्चा सो रहा है, अतः उससे पूछा गया कि क्या तुम सो रहे हो? इसपर चक्रधरने कहा कि मैं सो नहीं रहा हूँ, बल्कि भगवान्

श्रीरामचन्द्रजीकी बाल्यावस्थाकी कल्पना कर रहा हूँ। उसके ये विचार सुनकर हमारे सभी साथी मुग्ध हो गये। तब मैंने उससे पूछा कि क्या तुम रामायण पढ़ सकते हो? उसने कहा कि यदि आपकी आज्ञा हो तो पढ़कर सुनाऊँ। दूसरे दिनसे ही चक्रधर रामायण पढ़कर सबको सुनाने लगा। उसके पढ़नेकी शैली और स्वरकी मिठासपर सभी रीझ गये। सभी लोग कहने लगे कि यह एक होनहार बालक है। युवक चक्रधर जबतक रामायण पढ़ता था, तबतक सभा एकदम शान्त रहती थी। उसके रामायण-पाठकी चर्चा जेलमें बढ़ती चली गयी। लोग उसके पाठको सुननेके लिये उतावले नजर आने लगे। एक दिन शामको चार बजे वार्ड बन्द होनेके पहले युवक चक्रधर रामायण सुना रहा था। उसी समय प्रधान जेलर आया। यह अँगरेज था और राजनैतिक कैदियोंको बराबर पीटते रहता था। उसने आते ही चक्रधरके सिरपरकी लम्बी शिखा पकड़कर उसको झकझोर दिया और अपने जूतेकी ठोकरसे मारा। उसने रामायण छीनना चाहा, लेकिन चक्रधर रामायणका पाठ करता ही रहा। अंतमें उसने चक्रधरको उठाकर पटक दिया और फिर वार्डमें बन्द करवा दिया। इस घटनासे युवक चक्रधरकी ख्याति जेलमें और भी बढ़ गयी।

गया जेलके इस सुप्रिंटेंडेंटका नाम था मेजर वर्क। यह वही जेल सुप्रिंटेंडेंट है, जिसका वर्णन पहले आ चुका है और जो लँगड़ा साहबके नामसे पुकारा जाता था। इन लँगड़े साहबका 'विशेष परिचय' देना जरूरी लग रहा है। आयरलैंडका रहनेवाला यह आयरिश मेजर वर्क सेना-विभागसे जेलरके पदपर कार्य करनेके लिये आया था। स्वभावसे वह अत्यन्त क्रूर था। वह इतना क्रूर था कि दया-सुहृदता-सज्जनताके कणांश भी उसके व्यक्तित्वमें नहीं थे। मेजर वर्कको यदि यह ज्ञात हो जाये कि अमुक राजनैतिक बन्दी अँगरेजी शासनके विरुद्ध बहुत सक्रिय रहा है और देशभक्तिके कार्योंमें अधिक भाग लेता रहा है तो उस राजनैतिक कैदीके बन्दी-विवरण-पत्र (PRISONER RECORD CARD) पर वह NOTORIOUS (अर्थात कुख्यात) लिख दिया करता था। जिस बन्दीके बन्दी-विवरण-पत्रपर 'कुख्यात' लिख दिया गया हो, उसे वह बहुत तंग करता और बड़ा कष्ट देता था। इससे भी जब उसको

सन्तोष नहीं होता तो एक वाक्य और लिख दिया करता था— I will take care of him अर्थात् मैं इसकी सँभाल कर लूँगा। 'सँभाल'के नामपर वह राजनैतिक कैदियोंके दिमागको ठौर-ठिकाने लगा देनेका हौसला रखता था। भीषण यातनाओंके द्वारा देशभक्तोंके दिमागपरसे देश-भक्तिकी भावनाके भूतको भगा देनेमें वह अपनेको माहिर समझता था। भीषण यातनाके बाद भी यह भूत यदि नहीं उतर पाता था तो उसके लिये सँभालनेका अर्थ होता था मौतके घाट ठीक तरहसे उतार देना। वह ऐसी सँभाल करता था कि उस राजनैतिक कैदीको यमराजके दूतोंके हाथ सँभला देता। वह नर-पिशाच अपना भारी-भरकम मिलिट्री बूट पहनकर कैदीकी छातीपर चढ़ जाता और चढ़कर इतनी जोरसे हुमचता कि छातीकी हड्डियाँ तभी तड़-तड़-तड़ करती हुई टूट जातीं और वह कैदी अपने मुँहसे बलबला करके खूनकी उल्टी करते हुए अपनी जीवन-लीला तत्क्षण समाप्त कर देता। जेलके रजिस्टरमें तो यही लिखा जाता कि वह कैदी बीमारीसे ग्रस्त होकर मृत्युको प्राप्त हो गया। अँगरेजी जमाना था, किसमें साहस था, जो इस गलत रिपोर्टका विरोध करे। वह मेजर वर्क अपनी राक्षसी प्रवृत्तिके कारण बहुत 'यश' कमा चुका था। उसके नामसे कैदी थर-थर काँपते थे। न जाने कितने राजनैतिक कैदी मेजर वर्ककी राक्षसी प्रवृत्तिके शिकार होकर कालके गालमें जा चुके थे।

जिस प्रकार महा क्रूर-कर्मा अति क्रूरात्मा मेजर वर्क अपने आसुरी स्वभावके कारण विख्यात था, उसी प्रकार चक्रधर भी अपनी हठवादिता, अपनी ऐंठ, अपनी अकड़, अपनी निष्ठा, अपनी देश-भक्तिके लिये विख्यात हो चुके थे। चक्रधरके मनमें स्वातन्त्र्य-प्रेम अपनी सीमापर था। यह मान लिया कि भारतपर अँगरेजोंका शासन है, अँगरेजोंके हाथमें राज-दण्ड है, अँगरेजोंकी सैन्य-शक्तिके समक्ष भारत विवश है और भारतीय जनता पराधीन है, पर आत्मा तो पराधीन है नहीं। आत्मा स्वतन्त्र है और चिन्तन स्वतन्त्र है। जेलका बन्दी हो जाना एक विवशता है, इसके बाद भी मस्तिष्क मुक्त है और मस्तिष्कके विचार मुक्त हैं, हृदय मुक्त है और हृदयकी भावनाएँ मुक्त हैं। भविष्यमें एक दिन ऐसा अवश्य आयेगा, जब अँगरेजोंकी पाशविक

सैन्य-शक्तिको हिन्दू-भूमिकी सच्ची दिव्य सत्त्व-शक्तिके समक्ष झुकना ही पड़ेगा। अपने इस स्वातन्त्र्य-प्रेमके कारण चक्रधरको जेलमें न जाने कितनी विकट विपरीतताओंका सामना करना ही पड़ा, परंतु वे अपनी टेकपर टिके रहे, एकदम अड़े रहे। चक्रधरकी दृढ़ताको देखकर मेजर वर्कने उन्हें जनरल-वार्ड, जहाँ सारे साधारण कैदी रखे जाते हैं, वहाँसे अलग करके तनहाई (CELL, जहाँ फाँसी-सजा-प्राप्त कैदी अकेले रखे जाते हैं, उस छोटी-सी कोठरी) में बन्द कर दिया।

मेजर वर्कने जेलके कैदियोंपर एक नियम लाद दिया था। जब वह जनरल-वार्ड और तनहाईके कैदियोंके पास निरीक्षणार्थ जाया करता था तो सारे कैदियोंको वार्डके बाहर एक पंक्तिमें खड़ा हो जाना पड़ता था। जेलके वार्डर लोगोंकी यह जिम्मेदारी थी कि वे मेजर वर्कके आनेके पूर्व ही सभी कैदियोंको एक पंक्तिमें खड़ा कर दिया करें। खड़े किये गये कैदियोंमेंसे जिस कैदीके सामने वह मेजर वर्क आता था, उस हर कैदीके लिये नियमतः यह जरूरी था कि वह कैदी अपने दोनों हाथ ऊपर कर ले। हथेली खोलकर दाहिने हाथकी हथेली दाहिने कंधेके पास और बाँये हाथकी हथेली बाँये कंधेके पास कर ले। प्रायः सभी कैदी भयाक्रान्त होकर अपना-अपना हाथ उठा ही लिया करते थे। जो कैदी ऐसा नहीं करता था, वह मेजर वर्ककी राक्षसी क्रूरताका शिकार बनता था। जेलके वार्डरोंद्वारा उस कैदीपर डंडोंकी वर्षा करवाना तो साधारण बात थी।*

यही विषम परिस्थिति चक्रधरके भी सामने आयी। उस जेलके प्रधान चिकित्सक एक बंगाली बाबू थे। वे बंगाली बाबू चक्रधरकी अँगरेजी भाषापर मुग्ध थे। केवल उच्चारणकी सुन्दरतासे ही नहीं, अपितु शब्दावलीकी श्रेष्ठता और अभिव्यक्तिकी कुशलतासे वे बंगाली

---

*मेजर वर्क अपने देशको वापस नहीं लौट पाया। उसकी क्रूरता ही उसकी मौतका कारण बन गयी। क्षुब्ध क्रान्तिकारियोंने एक गुप्त योजना रची और वह योजना क्रियान्वित हुई। एक बार जब वह जेलके कार्यालयमें बैठा हुआ कार्य कर रहा था, उसी समय एक क्रान्तिकारीने कार्यालयके रोशनदानसे उसे अपनी पिस्तौलका निशाना बनाया और वह वहीं ढेर हो गया।

बाबू बड़े प्रभावित थे। उनको आश्चर्य होता था कि यह चक्रधर मिश्र अभी मात्र युवक ही है और इतनी छोटी आयुमें यह इतनी उत्तम अँगरेजी कैसे बोल लेता है। चक्रधरके इस गुणके कारण उन प्रधान चिकित्सक बंगाली बाबूके मनमें कुछ सहानुभूति जग गयी थी। इन बंगाली बाबूने बड़े प्यारपूर्वक समझाते हुए चक्रधरसे कहा— जेलरके आनेपर हाथ उठा देनेमें क्या हर्ज है? यदि हाथ नहीं उठाते हो तो जानका खतरा है। यह मेजर वर्क कई कैदियोंकी जान ले चुका है। तुम्हारी भी जान ले लेगा।

उन बंगाली बाबूसे चक्रधरने यही कहा— Death is horror to you but play for me. (मृत्यु आपके लिये भयावह हो सकती है, पर मेरे लिये खेल है।) अब रही बात ऊपर हाथ उठानेकी। बस, बातकी ही तो बात है। यदि हाथ ऊपर उठा दिया तो फिर टेक क्या रही? फिर तो मैं अपनी टेकसे गिर गया।

स्वतन्त्र-मति चक्रधर इस बातके लिये तनिक भी तैयार नहीं थे कि मेजर वर्कके आनेपर मैं अपने हाथको उठाऊँ। चक्रधरको स्पष्ट लग रहा था कि हाथ नहीं उठानेका अर्थ है मृत्युकी ओर पैर बढ़ाना। इस विकट परिस्थितिमें चक्रधरने भगवानसे कातर प्रार्थना मन-ही-मन करनी आरम्भ कर दी—मेरे प्राण भी बचें और मेरी प्रतिष्ठा भी बचे। न तो मेरी जीवन-लीलाकी समाप्ति हो और न मुझे हाथ उठाना पड़े। इस असम्भवको आप ही सम्भव कर सकते हैं। आप सर्व-समर्थ हैं। आपके लिये कौन-सी वस्तु असम्भव है? मेरे प्राणोंकी और मेरी प्रतिष्ठाकी, दोनोंकी रक्षा आपके हाथमें है।

मेजर वर्क जब निरीक्षण करनेके लिये आया तो सारे कैदियोंको एक पंक्तिमें खड़ा किया गया। उस पंक्तिमें चक्रधर भी खड़े थे। जिस कैदीके सामने मेजर वर्क गया, उन सभीने अपने हाथ उठाये। मेजर वर्क जब पंक्तिमें खड़े चक्रधरके सामने आया तो चक्रधरने अपने हाथ नहीं उठाये। मेजर वर्कके साथ पाँच वार्डर चला करते थे। उन्हीं वार्डरोंको आदेश देकर वह कैदियोंको डंडोंसे पिटवाया करता था। जब चक्रधरने हाथ नहीं उठाया तो जेलरके साथवाले वार्डर सोचने लगे— यह कैसा मूर्ख लड़का है, जो जानबूझ करके अपनी जानसे हाथ धोना

चाहता है। यह लड़का अपना हाथ उठाता नहीं और जेलर तुरंत मृत्युके हवाले कर देगा। यह नादान तो अपनी मौतको जबरदस्ती बुलावा दे रहा है।

वे वार्डर तो विगत अनुभवोंके आधारपर यही सोच रहे थे कि अब इस लड़केके सिरपर मौत नाच रही है। जिस तनहाईमें यह लड़का रखा गया है, उससे अगली तनहाईवाली जो दो कोठरियाँ हैं, उनके दोनों कैदियोंको यह जेलर कुछ दिन पहले ही अपनी जिद्दके कारण मौतके घाट उतार चुका है।

चक्रधरके द्वारा हाथ न उठाये जानेके कारण हर क्षण काली भयावनी आशंका गहरी होती चली जा रही थी। वह मेजर वर्क चक्रधरके सामने लगभग पाँच मिनटतक खड़ा रहा। चक्रधरने अपने हाथ नहीं उठाये। वे पीठकी ओर हथेलीमें हथेली दिये खड़े रहे। मेजर वर्क सामने खड़ा-खड़ा सीटी बजाता रहा। भगवानने उसकी आँखोंपर क्या जादू कर दिया, यह तो भगवान ही जाने। मेजर वर्कको चक्रधर दिखलायी नहीं दे रहे थे, अथवा मेजर वर्कको चक्रधरके स्थानपर कुछ और दिखलायी दे रहा था, अथवा मेजर वर्कको अपने नियमकी अब विस्मृति हो गयी थी, उस समय क्या हुआ, यह तो भगवान ही जाने, परंतु इतना तो सबने देखा कि बिना-हाथ-उठाये, पीठकी ओर दोनों हाथ एक-दूसरेसे पकड़े हुए चक्रधर खड़े रहे और वह मेजर वर्क चार-पाँच मिनटतक सीटी बजाते हुए खड़ा रहा। इसके बाद वह आगे बढ़ गया।

ज्यों ही मेजर वर्क आगे बढ़ा, उस समय भगवानके प्रति चक्रधरके मनकी भावनाओंका वेग कितनी प्रबल गतिसे बह चला, वह तो केवल अनुभवकी वस्तु है। 'भगवानने मेरी टेक रख दी। भगवान हैं, वे प्रार्थना सुनते हैं, वे आर्तकी रक्षा करते हैं, वे असम्भवको सम्भव बना देते हैं, उनकी दया असीम है, उनकी करुणा अपार है', इस प्रकारके भावोंसे उसका हृदय अत्यधिक भरा हुआ था। इसी क्षण उसके मनमें यह विचार उठा कि जो भगवान ऐसे परम सुहृद हैं और इतने अकारण कृपालु हैं, उन सर्वसमर्थ भगवानकी आराधनामें ही जीवनके शेष दिन व्यतीत करना है।

चक्रधरके मनमें ऐसा विचार उठा, परंतु आगे आनेवाली

घटनाओंको देखकर ऐसा अनुमान होता है कि भगवानने चक्रधरको अधिकाधिक विषम परिस्थितियोंमें पुनः-पुनः डाला, जिससे चक्रधरके मनका यह विचार और भी परिपक्व हो जाये। तपकर ही सोना चमकता है। किसी विचित्र अचिन्त्य ईश्वरीय विधानके फलस्वरूप चक्रधर इस बार बच गये और यही क्या कम बात है कि इस समय चक्रधर मेजर वर्कके पैरोंके भारी-भरकम प्राणलेवा मिलिट्री बूटके नीचे नहीं आ पाये। यही बहुत है कि जेलकी नारकीय यन्त्रणाओंके बीच चक्रधरका जीवन बच गया, पर अगली बार निरीक्षणके समय चक्रधरको मेजर वर्ककी क्रूरताका शिकार होना पड़ा। फिर मेजर वर्क कैदियोंके निरीक्षणार्थ आया। सारे कैदी पंक्ति-बद्ध खड़े कर दिये गये और चक्रधर भी पंक्तिमें खड़े थे। मेजर वर्क चक्रधरके सामने आया और अपने सामने मेजर वर्कको देखकर भी चक्रधरने अपने हाथ नहीं उठाये। मेजर वर्कवी क्रूर आँखोंमें विकराली वक्रता छा गयी। क्रोधके मारे उसका चेहरा लाल हो उठा और उसने उन पाँच वार्डरोंको आदेश दिया—पीटो इस लड़केको।

वे पाँचों वार्डर आगे बढ़े। पीटनेके स्थानपर वे चक्रधरका हाथ पकड़कर जबरदस्ती उठाने लगे। वे वार्डर जबरदस्ती उठा भी नहीं रहे थे, अपितु जबरदस्ती उठानेका नाटक कर रहे थे। उनको आदेश तो पीटनेका था, किंतु वे पीटने-मारने और डंडा लगानेके स्थानपर जबरदस्ती करनेका नाटक करने लगे।

इस नाटकका रहस्य तो बादमें खुला। उन पाँचों वार्डरोंको यह पता चला कि यह युवक चक्रधर मिश्र हमारे गाँवके पासवाले गाँवका है। ऐसी जानकारी मिलनेके बाद उनके अन्तरमें एक प्रकारका सद्भाव जाग उठा और इसीलिये वे चक्रधरका कुछ-न-कुछ बचाव करते ही रहते थे। इस किंचित् अनुकूलताके पीछे भी तो वही विचित्र अचिन्त्य ईश्वरीय विधान सक्रिय था। वार्डरोंके प्रयास करनेके बाद भी जब चक्रधरने हाथ नहीं उठाया तो मेजर वर्क क्रोधसे तिलमिला उठा और वह स्वयं ही घूँसोंसे चक्रधरको मारने लगा। चक्रधर तो उसी समय चक्कर खाकर अर्ध-मूर्च्छितावस्थामें वहीं जमीनपर गिर पड़े।

चक्रधरके कार्ड (बन्दी-विवरण-पत्र) पर NOTORIOUS (अर्थात्

कुख्यात) पहले ही लिख दिया गया था, अब एक शब्द PUNISHMENT (सजा, अर्थात् यह कैदी विशेष प्रकारसे दण्डनीय है, ऐसा संकेत) और लिख दिया गया। इसके बाद मेजर वर्कने आदेश जारी किया— चक्रधर मिश्रको पहननेके लिये 'टाट' दिया जाये।

'टाट' देनेके लिये चक्रधरको जेलके स्टोर (वस्तु-भण्डार) में ले जाया गया। ले गया जेलका एक वार्डर। उस वार्डरने चक्रधरसे कहा— मैं आपको जानता हूँ। आपके पिताजी मेरे पुरोहित हैं। मैं आपका यजमान हूँ। मैं इस जेलरके काले कारनामोंसे परिचित हूँ। इसने कई कैदियोंको मारते-मारते जान ले ली है। इसके चाल-ढालसे अब ऐसा लगता है कि यह आपकी भी जान लेनेके लिये उतारू हो गया है। मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप हाथ उठा दें।

चक्रधरने उस वार्डरसे उसके गाँवका नाम तथा उसके परिवारका परिचय पूछा। वह चक्रधरके गाँवसे सटे गाँवका रहनेवाला था। उस वार्डरके मनमें चक्रधरके प्रति वात्सल्य उमड़ रहा था, किंतु चक्रधर भी अपनी आदर्शवादिताको छोड़नेके लिये तैयार नहीं थे। किसी प्रकारसे चक्रधरने उस वार्डरको समझा-बुझा दिया।

विपत्ति अकेले नहीं आती। 'टाट'के नामपर चक्रधरको पहननेके लिये दिया गया नारियलकी जटासे बना टाट। कपासके धागेसे बने हुए कपड़ेका तो सवाल ही नहीं। नियमतः दिया जाना चाहिये था पटसन (जूट, JUTE) से बना टाट, पर दिया गया नारियलकी जटासे बना टाट। शरीरकी लज्जाके निवारणके लिये यही 'वस्त्र' मिला। इस समय चक्रधर तनहाईके अन्दर बीमार पड़ गये। शरीरपर खूब मार पड़ी ही थी। मारके कारण शरीरमें सूजन हो आयी और बड़ी वेदना हो रही थी। चक्रधरको ज्वर भी हो आया। केवल ज्वर ही नहीं, चक्रधरके शरीरपर छोटी चेचक भी निकल आयी। ये जाड़ेके दिन थे। घोर जाड़ा, ज्वरका प्रकोप, चेचककी बीमारी और नारियलका टाट, वह भी मात्र निम्नांग ढकनेके लिये। चक्रधरको लगभग नग्न रहना पड़ता था और जितना अंग ढका था, उसमें वह बड़ी ही चुभती थी। कष्टकी सीमा नहीं थी।

एक दिन जेलका सहायक जेलर चक्रधरके पास आया। वह मुसलमान था। उस मुसलमान जेलरके सामने चक्रधर अपने कष्टको

सुनाकर कहने लगे— इस नारियलकी टाटके स्थानपर कोई दूसरा वस्त्र मुझ चेचकके रोगीको देना चाहिये।

चक्रधरके इस निवेदनको सुनकर चक्रधरके कष्टको समझना और चक्रधरके प्रति सहानुभूति रखना तो दूर रहा, उस जेलरने अपने मुँहके पानकी पीकको चक्रधरके मुँहपर थूक दिया।*

उस तनहाईकी कोठरीमें चक्रधर अकेले अपने कष्टोंसे जूझ रहे थे। चक्रधर ब्राह्मण परिवारके थे, परिवारके वैष्णव वातावरणका संस्कार चक्रधरके मनपर था ही। इसके अतिरिक्त गाँवके कुम्हारद्वारा गाये जानेवाले पदकी पंक्ति भी रह-रह करके याद आ रही थी 'तेरे मालिक हैं दीनानाथ, सोच मन काँहे को करे'। जिस दिन मेजर बर्कने चक्रधरको घुस्सेसे मारा था और गहरी चोट आयी थी, उसी दिनसे चक्रधर मन-ही-मन जप रहे थे 'शंकर श्याम राधेश्याम सीताराम'। यही चक्रधरका मन्त्र था, जिसे वे जप रहे थे। उस संकटमें इस छोटे-से मन्त्रका निरन्तर जप हो रहा था और निरन्तर हो रही थी प्रार्थना भगवान शंकरसे कि प्राण भी बचे और प्रतिष्ठा भी बचे।

चक्रधर तनहाईवाली कोठरीमें पड़े हुए थे। उसी दिन चक्रधरको एक

---

*इन दिनोंकी याद आनेपर बाबा कई बार कहा करते थे— राजनैतिक क्षेत्रके आधुनिक नेतागण इस बातकी कल्पना भी नहीं कर सकते कि उस अँगरेजी शासनमें देश-सेवकोंको किस-किस प्रकारकी भीषण यातनाएँ और कठोर यन्त्रणाएँ सहनी पड़ती थीं। मैं उस तनहाईकी कोठरीमें नग्न शरीर, ज्वर-पीड़ित, चेचक-ग्रस्त नारियलकी टाटमें किस प्रकार जाड़ेकी रात काटता था, वह तो मैं भुक्त-भोगी ही जानता हूँ।

जेलमें बाबाको हलका विष भी दिया गया। बाबाको पता ही नहीं लगा कि विष दिया जा रहा है। विषकी प्रतिक्रियास्वरूप मुखके भीतर घाव हो गये। जेलसे बाहर आनेके बाद बाबाने कलकत्तेके एक वैद्यराजको ये घाव दिखलाये। बाबाने उस वैद्यराजको यह भी बतलाया कि जेलके भीतर मेरे कई एक साथियोंको इस प्रकारके घाव हो गये थे। उस घावको देखकर उन वैद्यराजने बतलाया कि यह तो विष-जनित-व्रण (POISON CASE) है। बाबाने भावी जीवनमें पुस्तकोंके आधारपर अपनी प्राकृतिक चिकित्सा स्वयं ही की। उससे कुछ लाभ अवश्य हुआ, परंतु शरीरका पाचन-संस्थान तो उस विषसे कुप्रभावित हो ही चुका था और इस विषका कुपरिणाम चक्रधरके शरीरसे अन्ततक चिपका रहा

दिव्यानुभव हुआ। यह दिव्यानुभव संध्याके समय हुआ। उस कोठरीसे गयाका एक दूर-स्थित पर्वत दिखलायी देता था। इसका नाम है ब्रह्मयोनि पर्वत। इस पर्वतके शिखरपर एक वृक्ष है। यह विशाल वृक्ष लताओंसे आच्छादित है। लताओंकी छायामें भगवान शंकर खड़े हुए हैं। वहाँसे भगवान शंकरने चक्रधरको दर्शन दिया। उनका हाथ अभय-दानकी मुद्रामें उठा हुआ था और वे चक्रधरसे कह रहे थे— तुम निश्चिन्त रहो, तुम्हारा कुछ नहीं बिगड़ेगा। मैं तुम्हारी रक्षा कर रहा हूँ।

इससे चक्रधरको बड़ी सान्त्वना मिली। तभी चक्रधरके मनमें एक विचार स्फुरित हुआ कि यदि मेरा तबादला किसी दूसरे जेलमें हो जाये तो मेरे प्राणोंकी रक्षा हो सकती है। उस गया जेलमें एक और सहायक जेलर था। उसका नाम था श्रीहरिपद बाबू। श्रीहरिपद बाबूकी चक्रधरके प्रति थोड़ी सहानुभूति थी। चक्रधरने श्रीहरिपद बाबूसे दो-तीन दिनके अन्तरसे दो बातें कहीं। पहली बात चक्रधरने यह कही— आप यह नारियलका टाट बदलवा दें। चेचक-ग्रस्त होनेसे शरीरको इससे बड़ा कष्ट होता है।

श्रीहरिपद बाबूने कहा— किसी बड़े अधिकारीकी आज्ञाके बिना ऐसा करना सम्भव नहीं है। इसके लिये मैं कोशिश करूँगा।

अगले ही दिन जेलका कोई बड़ा अधिकारी जेलमें निरीक्षणार्थ घूम रहा था। उसके साथ श्रीहरिपद बाबू भी थे। उस अधिकारीसे चक्रधरने कहा— यह नारियलका टाट बदलवा देना चाहिये।

आशा तो नहीं थी, इसके बाद भी चक्रधरने कहा। चक्रधरके ऐसा कहते ही श्रीहरिपद बाबूने सहारा लगाया तथा उस अधिकारीसे निवेदन किया— यह लड़का चेचकसे बीमार है। बीमारीके कारण कुछ रियायत इस लड़केको मिलनी चाहिये।

चक्रधरके अनुरोधका श्रीहरिपद बाबूने अनुमोदन किया और उस अधिकारीको बात जँच गयी। उस अधिकारीने नारियलके टाटको बदल देनेकी स्वीकृति प्रदान कर दी। इस स्वीकृतिकी ओटमें श्रीहरिपद बाबूने चक्रधरको पर्याप्त सुविधा प्रदान की।

दो-तीन दिनके अन्तरपर चक्रधरने दूसरा अनुरोध श्रीहरिपद बाबूसे किया— आप कैम्प जेलमें मेरा तबादला करवा दीजिये।

कैम्प-जेलमें केवल राजनैतिक बन्दी ही रहा करते थे। सन् १९३०

ई. में महात्मा गाँधीने पूर्ण स्वराज्यकी प्राप्तिके लिये सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ किया था। दाण्डी नामक स्थानके पास समुद्रतटपर समुद्र-जलसे नमक बना करके उन्होंने अँगरेजी सरकारको चुनौती दी थी, जिसे नमक-आन्दोलन कहा जाता है। देश-भक्तिकी भावना जन-मानसमें इतनी अधिक उमड़ पड़ी कि सारे देशमें अँगरेजी सरकारके विरुद्ध प्रदर्शन होने लग गये। गाँधीजी सहित प्रमुख नेता जेलमें बन्द कर दिये गये। इतना ही नहीं, स्थान-स्थानपर अनेक लोग बन्दी बना लिये गये। इन राजनैतिक बन्दियोंकी संख्या इतनी अधिक थी कि इनके लिये कैम्प-जेल खोलने पड़ गये। कैम्प-जेलमें राजनैतिक बन्दियोंके साथ वैसा दुर्व्यवहार नहीं होता था, जैसा कि इस गया जेलमें। तबादलेकी बात सुनते ही श्रीहरिपद बाबूने कहा— यह भला कैसे सम्भव है? तुम्हारे कार्ड (बन्दी-विवरण-पत्र) पर एक नहीं, दो-दो बातें लिखी हुई हैं। जिनके कार्डपर NOTORIOUS (कुख्यात) और PUNISHMENT (दण्ड), ये दो शब्द विशेष रूपसे लिखे हुए होते हैं, उनका तो तबादला यह मेजर वर्क होने ही नहीं देता। जब-जब ऐसे कैदियोंके तबादलेकी बात आती है तो मेजर वर्क तुरंत कहता है कि इस कैदीके सिरपर तो देश-भक्तिका भूत सवार है और इसको मैं यहाँसे कैसे जाने दे सकता हूँ। जबतक मेजर वर्कका हस्ताक्षर नहीं होगा, तबतक तबादला हो ही नहीं सकता। हस्ताक्षरके बाद तीन बार जाँच होती है। पहली बार स्वयं मेजर वर्क उन कैदियोंको एक पंक्तिमें खड़े करके देखता है, जिनका तबादला होना है। इसके बाद ये कैदी एक बैरकमें अलग रखे जाते हैं और फिर सहायक जेलर दूसरी बार जाँच करने आता है। इसके बाद प्रातःकाल जालीदार लारीमें कैदियोंको बैठानेके पहले जेलका वार्डर जाँच करता है। पहले तो मेजर वर्कसे स्वीकृति मिलनी ही अति कठिन है, यदि किसी विचित्र संयोगसे स्वीकृति मिल भी जाये तो इन तीन सीढ़ियोंको पार कर सकनां महा-महा कठिन है।

चक्रधरने विनयपूर्वक श्रीहरिपद बाबूसे कहा— यह तो मैं भी समझ रहा हूँ कि जिस प्रकारकी कड़ी दृष्टि मेरे प्रति है, उसको देखते हुए तबादलेकी कोई सम्भावना नजर आ ही नहीं रही है, पर फिर भी क्या कोई ढंग बन सकता है? यह सर्वथा असम्भव ही लग रहा है, परंतु एक बार मेरा कार्ड जेलर साहबके सामने रखिये तो सही।

श्रीहरिपद बाबूने कहा— कुछ कैदियोंका कैम्प जेलमें तबादला होनेवाला है। उनके साथ मैं तुम्हारा कार्ड रख दूँगा। यदि अपनी धुनमें मेजर वर्कने स्वीकृतिका हस्ताक्षर कर दिया तो ठीक है और यदि वह पूछ बैठा कि चक्रधर मिश्रका यह कार्ड यहाँ कैसे आ गया तो मैं यह कह दूँगा कि भूलसे ऐसा हो गया (Sir, it is by mistake)।

श्रीहरिपद बाबूने वह कार्ड मेजर वर्कके सामने रखा और उसने तबादलेकी स्वीकृतिका हस्ताक्षर उस कार्डपर कर दिया। यह जानकर चक्रधरको बड़ा आश्चर्य हुआ। मेजर वर्कने कामकी झोंकमें तबादलेके लिये स्वीकृतिका हस्ताक्षर कर दिया, पर इससे ही तो सारी बात बन नहीं गयी, अभी तीन सीढ़ियाँ पार करनी शेष थीं। इस हर एक सीढ़ीको गहरी खाई कहना चाहिये, जिनके पार जा सकना महा-महा कठिन था। जिन-जिन कैदियोंका कैम्प जेलमें तबादला होना था, वे सारे कैदी एक पंक्तिमें खड़े किये गये। पंक्तिके हर कैदीका निरीक्षण करनेके लिये स्वयं मेजर वर्क आया। मेजर वर्कके साथ-साथ श्रीहरिपद बाबू भी थे। श्रीहरिपद बाबूने देखा कि पंक्तिके अन्तिम छोरपर चक्रधर खड़े हैं और वे मन-ही-मन सोचने लगे कि चक्रधरकी छँटनी अवश्य हो जायेगी। यह इसीलिये कि मेजर वर्क चक्रधरको अच्छी तरह पहचानता था। केवल छँटनी नहीं, चक्रधरको देखते ही वर्क साहबकी क्रोधाग्नि भभक उठेगी और खून पी लेनेके लिये उतारू होकर अपने प्राणलेवा मिलिट्री बूटके नीचे चक्रधरको जरूर रौंद डालेगा, जिसका अर्थ है घोर कष्टपूर्ण यातना और फिर तड़पते-तड़पते जीवनका अन्त। मेजर वर्क एक-एक कैदीकी जाँच करते-करते ज्यों-ज्यों चक्रधरकी ओर सरक रहा था, त्यों-त्यों चक्रधरका मन भी निराशासे भरता चला जा रहा था। इतना ही नहीं, चक्रधर यहाँतक सोच रहे थे कि मुझपर जो बीतेगी, वह तो बीतेगी ही, पर मेरे कारण कहीं श्रीहरिपद बाबूकी नौकरीपर आँच न आ जाये। अन्य राजनैतिक बन्दियोंको तथा वार्डरोंको भला क्या पता कि चक्रधर तथा श्रीहरिपद बाबूके भीतर विचारोंका कैसा भीषण तूफान उठा हुआ है। अब चक्रधरके बगलमें दो-तीन कैदियोंकी जाँच बाकी रह गयी थी। मेजर वर्कके हर बढ़ते कदमके साथ-साथ चक्रधरके दिलकी धड़कन भी बढ़ती चली जा रही थी। चक्रधरके बगलवाले कैदीके सामने ज्यों ही मेजर वर्क खड़ा हुआ, उस समय चक्रधरके दिलकी धड़कन

अपनी सीमापर थी और उसी समय एक बहुत बड़े जोरका धमाका हुआ। यह चौंका देनेवाला धमाका हुआ जेलके कार्यालयके पास। धमाका इतने जोरसे हुआ था मानो बमका विस्फोट हुआ हो। सबके कान खड़े हो गये। मेजर वर्ककी आँखें चौकन्नी हो गयीं और उसका मन अनेक प्रकारकी आशंकाओंसे भर गया। मेजर वर्क तुरंत कार्यालयकी ओर तेज गतिसे बढ़ चला। जानेपर पता चला कि किसी चीजका बहुत भारी बण्डल बहुत ऊँचेसे जमीनपर गिर गया है। इसे जानकर मेजर वर्ककी अन्यथा आशंकाएँ दूर हो गयीं। वह अपने कार्यालयमें चला गया, पर इस आकस्मिक धमाकेका सबसे अधिक लाभ चक्रधरको मिला कि चक्रधर जाँचकी इस पहली सीढ़ीको बिना किसी प्रकारकी कठिनाईके ही पार कर गये। मेजर वर्क फिर जाँच करनेके लिये नहीं आया।

चक्रधर और चक्रधरके साथ ही श्रीहरिपद बाबूने भीतर-ही-भीतर ठण्डी साँस ली, पर अभी तो दो सीढ़ियाँ और पार करनी शेष थीं। तबादलेवाले सारे कैदियोंको एक अलग बैरकमें भेज दिया गया। इस बैरकके इन कैदियोंकी जाँचका कार्य एक सहायक जेलरको सौंपा गया था। यह जाँच सूर्यास्तके बाद रातको होनेवाली थी। जाँचके कुछ पूर्व उस सहायक जेलरके पित्ताशयमें अचानक भीषण शूल (COLIC PAIN) उभर आया। ऐसी विवशताकी स्थितिमें उस सहायक जेलरने जाँचका कार्य श्रीहरिपद बाबूके जिम्मे लगा दिया। श्रीहरिपद बाबूके आनेसे चक्रधर जाँचकी दूसरी सीढ़ी भी सहज ही पार कर गये। शेष बची थी तीसरी सीढ़ी। तीसरी जाँच करनेवाले थे जेलके वार्डर। यह तीसरी जाँच होती तब, जब सूर्योदयके पहले इन कैदियोंको जेलसे निकालकर जालीदार गाड़ीमें चढ़ाया जाता था। यह गाड़ी पुलिसकी होती है तथा विशेष प्रकारसे बनवायी जाती है। पुलिसके कड़े पहरेके अन्दर कैदियोंको एक स्थानसे दूसरे स्थानपर ले जाया जाता है। इस तीसरी जाँचके समय खड़ा था वह वार्डर, जो चक्रधरके पिताजीका यजमान था। उसने रोषका नाटक करते हुए चक्रधरको गाड़ीकी ओर धक्का दिया। चक्रधर जालीदार गाड़ीमें चढ़ गये। भगवान शंकरकी कृपासे चक्रधर जाँचकी इन तीनों कठिन सीढ़ियोंको सरलतापूर्वक पार कर गये। पार करनेमें पद-पदपर शंका होती थी, पर

जिनकी कृपासे 'पंगु चढ़ई गिरिबर गहन', उनकी कृपासे क्या असम्भव है?

गया जेलमें तीन मास रहनेके बाद चक्रधर पटनाके फुलवाड़ी शरीफ कैम्प-जेलमें आ गये। यह कैम्प-जेल दो मीलकी भूमिपर फैला हुआ था। इस कैम्प-जेलमें लगभग चार-पाँच हजार कैदी थे। ये सारे राजनैतिक कैदी थे। यह कैम्प-जेल लोगोंकी बस्तीसे बहुत दूर था। इस कैम्प-जेलके चारों ओर अँगरेज घुड़सवार चक्कर लगाते हुए चौबीसों घंटा पहरा देते थे। इस कैम्प-जेलका प्रधान तो था एक अँगरेज, पर कैम्प-जेलकी व्यवस्थाके लिये तथा सँभालके लिये इस अँगरेजके नीचे बीस-पच्चीस सहायक एवं उप-सहायक जेलर कार्य कर रहे थे।

कैम्प-जेलमें आनेपर चक्रधरको पुराने राजनैतिक साथी मिले। उनसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। सबको आश्चर्य हो रहा था कि तुमको न्यायालयसे कड़ी सजा सुनायी गयी थी, फिर इस कैम्प-जेलमें हम राजनैतिक कैदियोंके बीच कैसे आ गये। जो कुछ भी हो, कैम्प-जेलमें उन साथियोंके बीच चक्रधरका जीवन गया जेलकी अपेक्षा अधिक सुखमय व्यतीत होने लग गया। इस कैम्प-जेलमें सीमान्त प्रान्तके काजी अत्ताउल्ला खाँ भी थे। उनकी तर्क-शक्ति एवं वक्तृत्व-शक्ति बड़ी समृद्ध थी और वे विख्यात नेता थे। ये चक्रधरसे मिलकर अत्यधिक प्रभावित हुए। ये यहाँतक प्रसन्न हुए कि अपने आहारके लिये उपलब्ध पौष्टिक वस्तुएँ चक्रधरको दे दिया करते थे। कैम्प-जेलमें अपने कई साथियोंके साथ चक्रधरकी विभिन्न विषयोंपर चर्चा होती थी। यह चर्चा राजनैतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक आदि कई प्रकारकी होती। समय-समयपर परस्परमें विचार-गोष्ठीका आयोजन होता। ये गोष्ठियाँ शास्त्रीय सिद्धान्तोंके विचार-विनिमयका माध्यम बन गयीं। एक दिन गोष्ठी तन्त्र साधनापर हुई। उस दिन विचार-गोष्ठीके सभापति थे पं. श्रीतारादत्तजी भट्ट। पं. श्रीभट्टजी वृद्ध थे एवं अनुभवी व्यक्ति थे। उस गोष्ठीमें 'वाम मार्गीय तन्त्र साधना' पर चक्रधर लगभग आधा घंटा बोले। गोष्ठीकी समाप्तिपर पं. श्रीभट्टजीने चक्रधरको अकेलेमें बुलाया और पूछा— तुम जो बोले हो, वह बहुत सुन्दर बोले। अब यह बतलाओ कि जितना तुम बोले, वह तुम क्रियात्मक अनुभवके आधारपर बोले अथवा ग्रन्थोंके अध्ययनके आधारपर।

चक्रधरने विनम्र शब्दोंमें पं. श्रीभट्टजीसे कहा— मेरे बड़े भाईका तन्त्र साधनामें अच्छा प्रवेश है। कुछ बातें तो मैंने अपने बड़े भाईके मुखसे सुनी हैं और कुछ इस विषयमें मेरा पर्याप्त अध्ययन भी है। मेरा क्रियात्मक अनुभव कुछ नहीं है। बस, श्रुत एवं पठित ज्ञानके आधारपर ही मैं आज गोष्ठीमें बोला।

तब पं. श्रीभट्टजीने वात्सल्यमें भरकर चक्रधरसे कहा— बेटे! देखो, तुम कभी वाम मार्गका अनुसरण मत करना। वाम मार्गकी पद्धति अपनानेसे मेरा बड़ा पतन हुआ। ऐसा पतन तुम्हारा नहीं हो, इसीलिये यह बात मैं तुमसे कह रहा हूँ।

चक्रधरने पं. श्रीभट्टजीको आश्वासन देते हुए कहा— आपके निर्देशके अनुसार मैं कभी भी वाम मार्गका अवलम्बन नहीं करूँगा।

चक्रधरने इस आश्वासनको निभाया। परवर्ती जीवनमें जब चक्रधरने शक्तिकी उपासना की, तब भी चक्रधर द्वारा की जानेवाली वह मातृ-उपासना आद्यन्त सात्त्विक ही रही।

इस प्रकार कैम्प-जेलमें जीवनका समय अच्छी प्रकारसे बीत रहा था कि एक दिन बड़ा भीषण दृश्य उपस्थित हो गया। कैम्प-जेलके चार-पाँच हजार राजनैतिक कैदियोंमेंसे अधिकांश समाजके उच्च स्तरीय लोग थे। समाजके पढ़े-लिखे बुद्धिवादी लोग ही आगे बढ़कर अँगरेजी शासनके विरुद्ध आवाज उठा रहे थे और ऐसे गणमान्य लोगोंको ही अँगरेजी सरकारने जेलमें डाल दिया था। इन कैदियोंके भोजन बनानेके लिये तथा स्थानको स्वच्छ करनेके लिये जेलर उन राजनैतिक कैदियोंको भेजा करता था, जो किसी भीषण अपराधमें न्यायालयोंसे दण्डित हुए थे। इन अपराधी कैदियों (CRIMINAL PRISONERS) का व्यवहार बड़ा अभद्र हुआ करता था। पहले तो काम ठीकसे नहीं करना, फिर ऊपरसे हलके स्तरका व्यवहार करना। राजनैतिक कैदियोंने कई बार जेलरसे प्रार्थना की कि हमलोगोंके पास काम करनेके लिये ऐसे कैदी भेजे जायें, जिनका व्यवहार ठीक हो। इन अपराधी कैदियोंसे प्रायः झगड़ा-झंझट हो ही जाया करता था, इसीसे तंग आकर राजनैतिक कैदियोंने जेलरसे प्रार्थना की थी। बार-बार प्रार्थना करनेपर भी जेलके अधिकारियोंने इसपर ध्यान दिया ही नहीं। जेलके अधिकारियोंने जो उपेक्षा की, उसीके विरोधमें प्रदर्शन करनेका निश्चय

राजनैतिक कैदियोंने किया और सभी चार-पाँच हजार राजनैतिक कैदी बैरकके बाहर पंक्ति बनाकर बैठ गये। चक्रधर तो ग्यारहवीं पंक्तिमें थे। चक्रधरके सामने दस पंक्तियाँ थीं।

उस समय इन राजनैतिक कैदियोंकी सँभालका दायित्व जेलर मेजर परेरा पर था। मेजर परेरा मद्रासी था और इसके नीचे चार-पाँच सहायक जेलर थे। जेलके अधिकारियोंको भला कैसे सहन हो सकता था कि ये कैदी जेलकी व्यवस्थाके विरुद्ध प्रदर्शन करें। पंक्तिमें बैठे हुए राजनैतिक कैदियोंके सामने मेजर परेरा आया। उसके साथ उसके सहायक जेलर भी थे और थे लगभग दो सौ वार्डर। सभी वार्डरोंके हाथमें लाठी थी। राजनैतिक कैदियोंके सामने खड़े होकर मेजर परेराने कहा– सभी कैदी तुरंत बैरकमें चले जायें।

मेजर परेराके ऐसा कहनेके बाद भी उन चार-पाँच हजार राजनैतिक कैदियोंमेंसे कोई भी उठा नहीं। उठनेकी कौन कहे, कोई हिलातक नहीं। सभी पंक्तिमें बैठे रहे। दिये हुए आदेशको नहीं माननेसे मेजर परेरा चिढ़ गया और उसने रोष भरे शब्दोंमें सावधान करते हुए कहा– मैं फिरसे कह रहा हूँ कि आप सभी लोग बैरकमें चले जायें। मैं पाँच मिनटका समय देता हूँ। यदि आप लोग पाँच मिनटके भीतर बैरकके अन्दर नहीं जाते हैं तो आपपर लाठी चार्ज होगा।

पाँच मिनट बीत गया, पर कोई भी राजनैतिक कैदी अपने स्थानसे रंच मात्र टस-से-मस नहीं हुआ। मेजर परेराके दिमागका पारा चढ़ गया और उसने दो सौ वार्डरोंको आदेश दिया– चार्ज (CHARGE, अर्थात् लाठीसे मारो)।

आदेशके मिलते ही वे दो सौ वार्डर आगे बढ़े। इनमें आधे हिन्दू थे। इन हिन्दू सिपाहियोंने थोड़ी सभ्यता दिखलायी। वे अपने हाथकी लाठी आकाशमें घुमाते थे और ऐसा दिखलाते थे कि मानो तुरंत मार देंगे, परंतु उन्होंने प्रहार नहीं किया। यदि इन हिन्दू सिपाहियोंने मारा भी तो हलके-से मारा। इन वार्डरोंमें जो मुसलमान सिपाही थे, वे सब बलूचिस्तानके थे। उन मुसलमान सिपाहियोंने लाठीसे निर्मम प्रहार करना आरम्भ कर दिया। आगेकी पंक्तियोंमें बैठे हुए कैदियोंके सिर उस प्रहारसे फूट-फूट करके दो-दो फाँक होने लग गये। उन कैदियोंके सिर इस प्रकार फूट रहे थे मानो खरबूजा फूट रहा हो। रक्तसे भूमि सन गयी। वस्तुतः रक्तका प्रवाह बह

चला। वह प्रहार ऐसा भीषण और इतना क्रूर होता था कि आहत कैदी आह भी नहीं भर पाता था। प्रलयका विकराल दृश्य सामने था। वह प्रहार नहीं था, मृत्युका नग्न नृत्य था। चक्रधरके बगलमें बैठे एक कैदी गीताजीके श्लोकका पाठ करने लगे—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

(श्रीमद्गीता— २/२२)

जो कैदी भूमिपर धराशायी हो जाता, उसको स्ट्रेचरपर डालकर उसी समय अस्पताल भेज दिया जाता। मेजर परेराने देखा कि इस लाठी चार्जसे भी कैदी अपने स्थानसे उठनेका नाम नहीं लेते। सारे कैदी अपने-अपने स्थानपर जमकर बैठे हुए हैं। मेजर परेराने आदेश देकर सभी वार्डरोंको पीछे हटाया तथा सैनिकोंको बुलवाया। सैनिकोंके हाथमें राइफल थी। ये सैनिक चार सौ थे। इतना ही नहीं, मेजर परेराने और भी कई सौ अँगरेज सैनिक बुलवानेके लिये संदेश भिजवा दिया। ये अँगरेज सैनिक तो मार्गमें ही होंगे। मेजर परेराके आदेशपर ये चार सौ सैनिक घुटनेके बल बैठ गये। इनकी राइफलोंमें गोली भरी हुई थी। इन राइफलोंके मुँह कैदियोंकी ओर थे और सैनिकोंकी अँगुलियाँ राइफलके घोड़ोंपर लगी हुई थीं। बस, 'फायर' के आदेशकी देरी थी। आदेशके मिलते ही अँगुलियोंसे राइफलके घोड़े दब जाते और गोलियाँ चलने लग जातीं। इन चार सौ सैनिकोंके फायरिंग करनेके लिये बैठ जानेके बाद मेजर परेराने कैदियोंसे कहा— बस. पाँच मिनटका समय दे रहा हूँ। यदि आप लोग पाँच मिनटके भीतर बैरकमें नहीं जाते तो गोली चल जायेगी।

यमराजके चार सौ दूत सामने थे। मृत्यु साक्षात् रूपसे सामने थी। कोई भी कैदी मेजर परेराके आदेशको माननेके लिये तैयार नहीं था। सभी कैदियोंको मरणोन्माद हो आया था। लाठी-चार्जका भीषण स्वरूप देख करके भी सभी कैदी अपनी प्राणाहुति दे देनेके लिये तुले बैठे थे। प्रति मिनट कौन कहे, प्रति सेकेंड, अपितु प्रति क्षण वातावरण संगीन होता चला जा रहा था। उस कैम्प-जेलके कण-कणमें हर ओर भयावनी सनसनी छायी हुई थी। सभी कैदी मान बैठे थे कि हमारे

जीवनकी अवधिके अब केवल चार-पाँच मिनट शेष रह गये हैं। यह इसलिये कि मेजर परेराकी आँख अपनी घड़ीपर टिकी हुई थी। ज्यों ही पाँच मिनट पूरे होंगे, त्यों ही मेजर परेरा फायरके लिये आदेश दे देगा और इस आदेशके होते ही जमीन लाशसे पट जायेगी। पल-प्रति-पल परिस्थिति गम्भीरसे महागम्भीर और महागम्भीरसे महागम्भीरतर होती चली जा रही थी।

इस महा भयावनी विकराली विकट परिस्थितिमें एक मुसलमान सहायक जेलर आगे बढ़ा। मेजर परेराके नीचे जो चार-पाँच सहायक जेलर थे, उनमेंसे यह एक था। यह था बड़ा साहसी और बहुत सहृदय। उस सहायक जेलरने आगे आकर बैठे हुए कैदियोंके सामने मेजर परेरासे कहा— इस फायरिंगके जो भीषण कुपरिणाम होंगे, उसकी सारी जिम्मेदारी आपपर होगी। मैं इसका तनिक भी जिम्मेदार नहीं होऊँगा। इस नर-संहारके कारण सारे देशमें जो प्रतिक्रिया होगी, स्थान-स्थानपर जो प्रदर्शन और उपद्रव होंगे, उसकी सारी जबाव देही आपपर होगी।

सहायक जेलरके उस साहसको देखकर सभी राजनैतिक कैदी आश्चर्यचकित हो गये। इस सहायक जेलरके द्वारा ऐसा कहा जाते ही मेजर परेरा ढीला पड़ गया। मेजर परेराने उस सहायक जेलरसे कहा— आपका कहना ठीक है, पर ये कैदी बैरकके भीतर क्यों नहीं जाते?

यह सुनकर उस सहायक जेलरने कहा—आप सारी बात मुझपर छोड़ दें। मैं सँभाल लूँगा।

सहायक जेलरके इतना कहते ही मेजर परेरा वहाँसे हट गया और जेलके कार्यालयमें चला गया। इसके बाद उस सहायक जेलरने राजनैतिक कैदियोंके सम्मानमें अपने सिरपरसे अपना हैट उतारा, हैटको उल्टा कर लिया तथा उल्टे हैटको दोनों हाथोंसे पकड़ करके उन कैदियोंके सामने ऐसे कर दिया मानो याचना कर रहा हो। फिर अत्यन्त विनम्र शब्दोंमें उस सहायक जेलरने कहा— मैं आप लोगोंसे प्रार्थना करता हूँ कि आप लोग बैरकमें चले जायें। मैं भीख माँगता हूँ कि आप लोग बैरकमें चले जायें। आप लोगोंकी जो शिकायत होगी, मैं उसे अवश्य सुनूँगा और जहाँतक बनेगा, उसे दूर करनेकी कोशिश

करूँगा, पर आप लोग मेरी प्रार्थना मान लें। यदि मेरे द्वारा आपके प्रति कभी कोई गलत व्यवहार हुआ हो तो आप लोग मेरी प्रार्थना मत मानें, पर आप यदि यह समझते हों कि मैंने आपके साथ हमेशा अच्छा सलूक किया है तो मेरी इज्जत रखनेके लिये आप सभी लोग अभी बैरकमें चले जायें।

सहायक जेलरकी याचनापूर्ण विनीत भाषाने और उनके सौहार्दपूर्ण व्यवहारने सभी राजनैतिक कैदियोंके हृदयको पानी-पानी कर दिया। सभी कैदी बैरकमें जानेके लिये तैयार हो गये। तभी एक प्रौढ़ उम्रके राजनैतिक कैदीने उठकर कहा— हम सभी बैरकमें जानेके लिये तैयार हैं, पर सबसे पहले ये चार सौ सैनिक तुरंत जेलके बाहर चले जायें।

सहायक जेलरने तुरंत उन सारे सैनिकोंको चले जानेका आदेश दे दिया। उन सैनिकोंके चले जाते ही सारे राजनैतिक कैदी कैम्प-जेलके बैरकमें चले गये। सारे कैदियोंके मुखपर एक ही बात थी कि इस सहायक जेलरने हमलोगोंको मृत्युके मुँहमेंसे निकाल लिया। सारे कैदी इस सहायक जेलरके प्रत्युत्पन्नमतित्व, उसके साहस, उसके सौहार्द, उसकी विनम्रताकी सराहना कर रहे थे।

अपने दिये हुए वचनके अनुसार वह सहायक जेलर कैम्प-जेलके कैदियोंसे मिला, जिससे उनकी कठिनाइयोंकी जानकारी हो सके और फिर उन कठिनाइयोंको दूर करनेकी दृष्टिसे उपाय सोचा जा सके। राजनैतिक कैदियोंसे मिलने और बात करनेमें कुछ दिन तो निकल ही गये। कैम्प-जेलके राजनैतिक कैदी तो यह सोच रहे थे कि हमलोगोंकी शिकायतकी सुनवायी हो रही है, तभी उन सब कैदियोंकी रिहाईका आदेश ऊपरसे आ गया।

महात्मा गाँधीने जो सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन आरम्भ किया था, उसका वाइसराय इरविनने कठोरतापूर्वक दमन किया, पर वह यह भी भली भाँति जानता था कि नेताओंको तथा अन्य लोगोंको अनिश्चित समयतकके लिये जेलोंमें नहीं रखा जा सकता। शासन सम्बन्धी सुधारोंकी रूपरेखा निश्चित करनेके लिये नेताओंसे विचार करना आवश्यक था और यह विचार शान्त वातावरणमें ही हो सकता था।

विचारार्थ अनुकूल परिस्थितिका निर्माण करनेके लिये ५ मई १९३१ को वाइसराय इरविनसे समझौता हो गया। इस समझौतेके अनुसार इधर गाँधीजीने अपना सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन स्थगित कर दिया, उधर इरविन सरकारने नेताओं सहित सभी राजनैतिक कैदियोंको बिना शर्त रिहा कर देनेका आदेश दे दिया।

इस आदेशके मिलते ही देशके जिस-जिस जेलमें जो राजनैतिक कैदी थे, वे विमुक्त किये जाने लगे। पटनाके फुलवाड़ी शरीफ कैम्प-जेलके जिस भागमें चक्रधर कैद थे, उस भागमें लगभग सात-आठ सौ कैदी रहे होंगे। ये सारे सात-आठ सौ कैदी विमुक्त कर दिये गये, केवल एक चक्रधरको छोड़कर। चक्रधरका कार्ड (PRISONER RECORD CARD अर्थात् बन्दी-विवरण-पत्र) जेल-कार्यालयमें खो गया था। इस कार्डके अभावमें चक्रधर कैम्प-जेलसे विमुक्त नहीं किये गये। अन्य कैदियोंकी विमुक्तिमें कोई अड़चन नहीं आयी, बस, एक चक्रधर कैम्प-जेलमें रोक लिये गये।

कैम्प-जेलमें केवल चक्रधर रह गये थे और केवल चक्रधरके लिये तो कैम्प जेल रहेगा नहीं। राजनैतिक कैदी लोग बहुत बड़ी संख्यामें थे, अतः इनको कैद करनेके लिये यह एक अस्थायी व्यवस्था कैम्प-जेलके रूपमें की गयी थी। इन राजनैतिक कैदियोंके विमुक्त होते ही यह कैम्प-जेल उठा दिया जाता। कैम्प जेलके उठा दिये जाते ही चक्रधरको पुनः गया जेलमें भेज दिया जाता। वापस गया जेल जाना पड़ेगा, यह विचार आते ही चक्रधरका तन-मन सिहर उठा। गया जेलकी नृशंस यातनाएँ, पैशाचिक व्यवहार, राक्षसी वातावरण, यह सब चक्रधरकी आँखके सामने नाचने लगे, पर अब कोई उपाय भी नहीं था। कैम्प-जेलमें अकेले पड़े चक्रधर इन विचारोंमें बहते हुए भाग्यकी क्रूर रेखाओंको देख-देख करके बहुत व्याकुल हो रहे थे। उस व्याकुलतामें एक मात्र सहायक थे भगवान ही, उन्हीं भगवानसे रक्षाके लिये चक्रधर मूक प्रार्थना करने लगे।

कैम्प-जेलके राजनैतिक कैदी लोग जेलसे बाहर आकर बड़े प्रसन्न हो रहे थे, उनके आनन्दकी सीमा नहीं थी। बस, उस उल्लासमें एक बात बार-बार चुभ रही थी कि हमारा एक युवक साथी

चक्रधर मिश्र विमुक्त नहीं हो सका। श्रीगुप्तेश्वर प्रसादजी मिश्र बिहारके प्रमुख राजनैतिक कार्यकर्ता थे। श्रीगुप्तेश्वरजी स्वयं कैम्प-जेलमें थे। सब विमुक्त कैदियोंसे उनका हाल-चाल पूछते हुए जब श्रीगुप्तेश्वरजीको यह पता चला कि चक्रधर मिश्रकी विमुक्ति, कार्ड खो जानेके कारण नहीं हो पायी है तो वे बड़े चिन्तित हुए। श्रीगुप्तेश्वरजी स्वयं समझ रहे थे कि विमुक्ति नहीं होनेसे उसे वापस गया जेलमें जाना पड़ेगा और वहाँ तो जानका ही खतरा है। श्रीगुप्तेश्वरजी तुरंत सहायक जेलरके पास गये और उनसे कहा— आप चक्रधर मिश्रको रिहा कर दें। वह राजनैतिक बन्दी है। उसका कार्ड उसके द्वारा नहीं, बल्कि आपके जेल-कार्यालयके कर्मचारी द्वारा खो गया है। बस, इसी कारण उसको रोक लिया गया है।

उन सहायक जेलरने कहा— अब तो सूर्यास्त एकदम समीप है। इस समय कुछ भी नहीं किया जा सकता। जो कुछ भी होगा, वह अब कल ही हो पायेगा।

सारी बात कलके लिये स्थगित हो गयी। श्रीगुप्तेश्वरजी चक्रधरको अच्छी तरह जानते थे। वे कैम्प-जेलमें चक्रधरके पास आये। उन्होंने चक्रधरको बड़ी सान्त्वना दी और कहा— तुम किसी प्रकारकी चिन्ता मत करना। मुझे पूरी आशा है कि कल तुम्हारी विमुक्ति हो जायेगी। अब सूर्यास्त होनेवाला है, अतः जेलके नियमके अनुसार अब कुछ कर सकना सम्भव था ही नहीं।

श्रीगुप्तेश्वरजी सान्त्वना देकर चले गये, पर कैम्प-जेलकी वह काली रात चक्रधरके लिये बड़ी त्रासदायक सिद्ध हुई। भावी विपत्तियोंकी सम्भावनाके भयप्रद चित्रोंसे चक्रधरका मन रातभर बड़ा संत्रस्त रहा। चक्रधर कल्पना भी नहीं कर पा रहे थे कि कार्डके अभावमें श्रीगुप्तेश्वरजी किस प्रकारसे विमुक्ति दिला देंगे।

दूसरे दिनका सूर्योदय हुआ। कार्यालयके खुलनेका समय होते ही श्रीगुप्तेश्वरजी कैम्प-जेलमें चक्रधरके पास आये। वे चक्रधरको साथ लेकर कार्यालयमें गये। कार्यालयके सभी कर्मचारी श्रीगुप्तेश्वरजीके सम्मानमें खड़े हो गये। सभी जानते थे कि जेलर साहबसे इनकी खूब पटती है, ये जेलर साहबके साथी हैं और ये प्रमुख राजनैतिक कार्यकर्ता हैं।

कार्यालयमें पहुँचते ही जेलर साहबने श्रीगुप्तेश्वरजीको बैठनेके लिये कुर्सी दी, इसके साथ ही चक्रधरको भी। चक्रधरकी सब बात श्रीगुप्तेश्वरजीने उन जेलर साहबको समझायी। सारी बात सुनकर जेलर साहब कोई रास्ता सोचने लगे। जेलर साहबने चक्रधरसे पूछा— क्या तुमको अपने कार्डका लगभग क्रमांक (APPROXIMATE NUMBER) याद है।

चक्रधरने तुरंत कहा— लगभग क्रमांक नहीं, बल्कि एकदम सही-सही क्रमांक याद है।

चक्रधरने अपने कार्डका क्रमांक बता दिया। अब उन जेलर साहबने अपना अभिमत (REMARK) व्यक्त करते हुए लिखा— जेलके कार्यालयमें चक्रधर मिश्रका कार्ड खोजनेपर नहीं मिला। ऐसा लगता है कि वह कार्ड किन्हीं कागजोंमें अथवा किसी फाइलमें दब गया है। कार्डके नहीं मिलनेमें हमारे कार्यालयकी गलती है। कार्डके अभावमें कैदीको विमुक्त करना उचित नहीं, पर विमुक्त नहीं करनेसे ऐसे जनक्षोभकी आशंका है, जिससे उस उद्देश्यकी हानि हो सकती है, जिस उद्देश्यको लेकर सारे राजनैतिक कैदी विमुक्त किये जा रहे हैं। चक्रधर मिश्र एक राजनैतिक कैदी है। इसका कार्ड नम्बर इतना है। पर इसका कार्ड खो गया है। कार्डके न होनेके बाद भी शासनके हितमें चक्रधर मिश्रको विमुक्त किया जाता है।

उन सहायक जेलरने चक्रधरकी विमुक्तिका आदेश दे दिया। चक्रधरको साथ लेकर श्रीगुप्तेश्वरजी कैम्प-जेलसे बाहर आये। बाहर कुछ साथी लोग उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर ही रहे थे। चक्रधरकी विमुक्तिसे सभीको बड़ी प्रसन्नता हुई।

इस जेल-जीवनमें चक्रधरको पद-पदपर प्रभुकृपाकी दिव्यानुभूति हुई। प्रभुकी अपार और अहैतुकी कृपाको देखकर चक्रधरकी विचारधारा बहुत बदल चुकी थी। जेलमें ही चक्रधर सोचने लगे थे कि जेलसे बाहर जानेके बाद जीवनको साधनामय बना देना है। जेलके विचित्र और विविध अनुभव ही चक्रधरके भावी आध्यात्मिक जीवनके अनुप्रेरक हैं।*

* * *

---

*जेल-यात्राके विवरणको विराम देनेके पूर्व एक बातका निवेदन करना आवश्यक लग रहा है। बाबाको दो बार जेल जाना पड़ा और पहली बार छः मासकी तथा दूसरी बार पाँच

जेल-जीवनकी बातें बतलाते हुए परमादरणीय श्रीरामाश्रयरायजी वकीलने बतलाया था— जेलमें सर्वप्रथम मुझे श्रीचक्रधर मिश्रसे परिचय हुआ था। यह बात सन् १९३० की है। साधारण पहनावावाले चक्रधर मिश्र जिला-स्कूलके विद्यार्थी थे। उनकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण थी और स्मरणशक्ति अनोखी। वे स्वभावसे बहुत सरल थे। साहित्यके प्रति उनकी रुचि अच्छी थी। मैं ग्रेजुएट था और जेलमें मैं श्रीचक्रधर मिश्र, श्रीमदनमोहन सिंह तथा श्रीगुप्तेश्वर सिंहको पढ़ाता भी था। उनकी हैण्डराइटिंग बहुत सुन्दर थी। धार्मिक तथा साहित्यिक पुस्तकें पढ़नेका शौक था। जेलमें हमलोग एक ही हालके अन्दर रहते थे। बिछावनमें एक कम्बल मिला था। खानेके लिये सबेरे ग्यारह बजे दाल-भात-सब्जी और शामको पाँच बजे रोटी और सब्जी मिलती थी।

* * *

चक्रधरके मित्र श्रीमदनमोहन सिंहजीके भाव-भरे उद्गार हैं— वे हिन्दी और अँग्रेजी धारा-प्रवाह बोलते थे। व्यक्तिगत सुख-साधनकी ओर उनका ध्यान बहुत कम रहता था। वे प्रायः देशसेवा-समाजसेवाके कार्यको ईमानदारी पूर्वक करनेके लिये कहा करते थे। राँचीके श्रीरामरक्षाजी ब्रह्मचारी जेलमें गीताका क्लास लिया करते थे। उस क्लासमें श्रीचक्रधर मिश्रके साथ मैं भी जाया करता था। गीतादर्शनपर प्रायः हम दोनोंके बीच वाद-विवाद होता रहता था। लोकमान्य तिलकका 'गीता-रहस्य' उन्होंने जेलमें ही पढ़ लिया था। व्यंग्यचित्रकार

मासकी सजा भोगनी पड़ी। बाबा अपने जेल-जीवनका कभी कोई अंश, कभी कोई अंश यदा-कदा सुनाया करते थे। बाबाके बड़े भाई पूज्य श्रीतारादत्तजी मिश्रसे भी कुछ-कुछ बातें दो बार सुननेको मिली हैं। बाबाके जेलके साथियोंसे भी जेल-जीवनका विवरण एक-आध बार सुननेको मिला है। जब-जब जो-जो थोड़ा-थोड़ा सुननेको मिला है, उसीको स्मरण करके यह विवरण लिखा गया है। लिखते समय दो-तीन स्थलोंपर तथ्योंके क्रमको निर्धारित करनेमें बड़ी कठिनाई उत्पन्न हुई। यह निश्चित करना कठिन हो गया कि अमुक प्रसंग प्रथम जेल-यात्राका है अथवा द्वितीयका। जो भी हो, लिखते समय यह प्रयास भरपूर रहा है कि तथ्यों एवं प्रसंगोंका वर्णन पूर्णतः सही हो। इसके बाद भी यदि विसंगति अथवा चूक रह गयी हो तो उसके लिये विनम्र क्षमा-प्रार्थना है।

(Caricaturist) के रूपमें इनकी अच्छी ख्याति थी। ये जानवरोंकी बोलियाँ भी बोलते थे, जिसे सुनकर हमलोग हँस पड़ते थे। वे प्रायः राष्ट्रीय गीत गाया करते थे।

* * * * *

पुनः विद्यार्थी-जीवन

५ मई १९३१ का गाँधी इरविन समझौता हुआ था और इस समझौतेके फलस्वरूप चक्रधर जेलसे बाहर आ गये। अब प्रश्न चक्रधरके सामने था कि भावी जीवनका स्वरूप क्या हो। जेलके भीतर अतिक्रूर एवं कष्टपूर्ण परिस्थितियोंमें चक्रधरको पद-पदपर भगवत्कृपाके अनेक अद्भुत दिव्यानुभव हुए थे। इन चिरस्मरणीय दिव्यानुभवोंके कारण जेलमें चक्रधरके मनमें इस प्रकारके विचार आने लग गये थे कि भविष्यमें अध्यात्मपूर्ण जीवन व्यतीत करना है। जेलसे बाहर आनेके बाद बड़े भाइयोंका दबावभरा आग्रह था कि तुम विद्यालयमें नाम लिखवाकर विद्यार्जन करो। चक्रधर इस आग्रहके समक्ष नतमस्तक थे। नतमस्तक थे इसलिये कि गुरुजनोंकी आज्ञा माननी चाहिये और नतमस्तक थे इसलिये भी कि विद्यार्जन एवं अध्ययन आध्यात्मिक जीवनमें सहायक होगा।

उनके बड़े भाई लोग उन्हें कलकत्ते ले गये और वहाँ सन् १९३२ में उनका नाम सोहरावर्दी बेगम मेमोरियल स्कूलकी नवीं कक्षामें लिखा दिया।

सन् १९३४ में चक्रधरने मैट्रिक परीक्षा प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण की। इसके बाद घरवालोंने उनका नाम रिपन कालेज (अब सुरेन्द्रनाथ महाविद्यालय) के इण्टरमीडियेट कला (ARTS) में लिखवा दिया। सन् १९३५ में चक्रधरने प्रथम वर्षकी कक्षा उत्तीर्ण कर ली। अब चक्रधर कालेजमें कला विभागके द्वितीय वर्षके छात्र थे। चक्रधर कालेजके छात्र तो थे, परन्तु घरपर अपने परिवारके बच्चोंको भिन्न-भिन्न विषय कभी-कभी पढ़ाया भी करते थे। चक्रधरने अपनी पाठ्य पुस्तकें नहीं खरीदीं। उनको पाठ्य पुस्तकोंकी जरूरत भी नहीं थी। उनके पास एक मोटी कापी थी। क्लासमें पढ़ते समय उसी कापीपर नोट लिख लिया करते थे और वह नोट उनके लिये पर्याप्त होता था।

कालेजसे आनेपर वे कापीको लापरवाहीके साथ एक किनारे रख दिया करते थे और फिर श्रीमद्भगवद्गीता पढ़नेके लिये बैठ जाते थे। श्रीमद्भगवद्गीताकी इस पोथीमें डा.एनी वेसेन्ट द्वारा किया गया अँगरेजी अनुवाद भी था। वे घरके दरवाजेपर बैठकर अपनी गीताकी पुस्तक खोल लेते और तबतक पढ़ते रहते, जबतक अन्धकारमें पढ़ना असम्भव नहीं हो जाता। चक्रधर अपने पूज्य भाई पं.श्रीदेवदत्तजी मिश्रसे सांख्य और वेदान्त भी पढ़ा करते थे।

एकान्तमें चक्रधर श्रीमद्भगवद्गीताके श्लोकोंपर गम्भीरतापूर्वक मनन करते रहते। प्राणीमात्रमें भगवद्दर्शन करनेकी साधनाका आरम्भ विद्यार्थी-जीवनमें ही हो गया था। श्रीगीताजीका एक श्लोक मन-मस्तिष्कपर छाया रहता।

मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनंजय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव।।

(श्रीगीता– ७/७)

(हे धनंजय! मेरे सिवाय किञ्चित् मात्र भी दूसरी वस्तु नहीं है। यह सम्पूर्ण जगत सूत्रमें सूत्रकी मणियोंके सदृश मेरेमें गुँथा हुआ है।)

श्रीगीताजीके इस श्लोकके आधारपर चक्रधरकी यह आस्था थी कि जिस प्रकारसे सूतकी माला देखनेमें वह एक माला है, पर उसके भीतर-बाहर सूत- ही-सूत है, उसी प्रकार चाहे स्त्री हो या पुरुष हो, चाहे बालक हो या वृद्ध हो, चाहे चर हो या अचर, सभीमें एकमात्र भगवान ही हैं। उनके विद्यार्थी जीवनमें यह विश्वास गहरा होता चला जा रहा था कि सबमें सर्वत्र भगवानके अतिरिक्त कुछ है ही नहीं। यह विश्वास बहुत अधिक मूर्त और सक्रिय हो उठता था ट्रेनसे यात्रा करते समय। प्रायः ऐसा होता है कि जब रेलगाड़ी किसी स्टेशनके प्लेटफार्मपर पहुँचती है तो ट्रेनके भीतर बैठे हुए यात्री डिब्बेके दरवाजे तथा खिड़की बन्द कर लेते हैं, जिससे बाहरके लोग डिब्बेके अन्दर न आ सकें तथा भीतरके यात्री सुविधा तथा आराम पूर्वक बैठकर यात्रा कर सकें। अधिकांश यात्रियोंकी मनोवृत्ति ऐसी ही होती है, पर विद्यार्थी जीवनमें चक्रधरका ढंग अलग ही था। ट्रेनसे यात्रा करते समय प्लेटफार्मके आनेपर चक्रधर डिब्बेके दरवाजेको खोल दिया करते थे, जिससे जिसको चढ़ना हो, वह चढ़ जाय। यह चीज उनके विद्यार्थी जीवनमें इतनी अधिक घर कर गयी थी कि वे यात्रा करते समय हर स्टेशनके प्लेटफार्मपर दरवाजा खोल दिया करते थे।

इसके फलस्वरूप डिब्बेमें लोगोंकी भीड़ हो जाया करती थी। फाटकके खोल देते ही डिब्बेके भीतर बैठे हुए यात्रीगण बहुत नाराज होते थे और बड़े ही किचकिचाते थे, पर चक्रधर हँसते रहते थे। चक्रधरको यह अच्छा नहीं लगता था कि प्लेटफार्मपर खड़े यात्री अपनी यात्रासे वंचित रहें। डिब्बेके यात्री कुछ कष्ट सह लेंगे, पर जो बाहर खड़े हैं, उनको भी डिब्बेके भीतर कुछ जगह, कम-से-कम खड़े रहनेके लिये स्थान मिल ही जायेगा। भले ही डिब्बेके यात्री बहुत नाराज होते, पर चक्रधर चुपचाप सह लेते।

सन् १९३२ से कलकत्तेमें पुनः चक्रधरके विद्यार्थी जीवनका आरम्भ हुआ और वहाँके जीवनने भी चक्रधरको उपरामताका ही पाठ पढ़ाया। कलकत्ता आनेके पूर्व राजनैतिक और सामाजिक कार्य करते समय कार्यकर्ताओंके मध्य स्पर्धा-वैमनस्य-आपाधापी-स्वार्थसिद्धि-आत्मश्लाघा आदि देखकर चक्रधरको निराशा ही मिली थी, कलकत्ते आनेके बाद आत्मीय कहलानेवाले स्वजनोंके मध्य भी वही सब बातें मिलीं। इतना ही नहीं, स्वजनवर्गसे प्रवंचना एवं प्रतिकूलता और अधिक मिली। चक्रधर बतलाया करते थे कि उन्होंने जिन-जिनको अपना निकट-से-निकट अभिन्नहृदय माना, उनमेंसे चार व्यक्तियोंको छोड़कर अन्य सभीने उनके विश्वासको आघात ही पहुँचाया। इन चार व्यक्तियोंमें दो तो उनके बड़े भाई हैं, जिनके साथ वे कलकत्तेमें रहते थे तथा दो अन्य जन हैं। इन चार व्यक्तियोंके अतिरिक्त अन्य सभी लोगोंसे मिलनेवाली प्रवंचना एवं प्रतिकूलताने चक्रधरके मनको विरक्तिके भावोंसे भर दिया और यह विरक्तभावना अधिकाधिक बढ़ती ही चली गयी।

एक और घटना है, जिससे चक्रधरका हृदय काँप उठा। एक विधवा स्त्रीने पर-पुरुषकी अभिलाषाको पूर्ण करनेके लिये अपने वयस्क पुत्रको विष दे दिया। हाय, इतना घोर अधःपतन, ऐसा कठिन कलिकाल! अपने चारों ओर स्वार्थपरायणता और अनैतिकताकी प्रबलताको देखकर चक्रधरका मन जगतसे उचट गया।

जगतके इन कटु प्रसंगोंने ऐसी पृष्ठ-भूमिका निर्माण कर दिया, जहाँ चक्रधरके पूर्व जन्मकी आध्यात्मिक निधि और इस जन्मके आध्यात्मिक संस्कार स्वतः ही प्रस्फुटित एवं पल्लवित होने लग गये। कुछ तो सत्त्व-निधि मिली थी चक्रधरको माता-पितासे। सत्य तो यह है कि चक्रधरके पिताश्री भी संत ही थे। उनको तो गृहस्थ जीवन गुरुजनोंकी आज्ञा-पालनके रूपमें विवशतः अंगीकार

करना पड़ा था, अन्यथा विरक्त वेषमें भक्त-जीवन ही उन्हें अभीष्ट रहा। चक्रधरकी माताजी भी थीं संत-स्वभावा एवं भक्त-हृदया। पूर्व जन्मकी आध्यात्मिक निधिके अतिरिक्त इस जन्ममें संत-भाव-निधि तो चक्रधरको माता-पितासे सहज ही प्राप्त हो गयी थी। इसे विकासोन्मुख बनाया दो सिद्ध संतोंके दरस-परसने। इन संतोंसे चक्रधरकी भेंट हुई थी बाल्यावस्थामें और किशोरावस्थामें। चार वर्षकी आयुमें द्वारपर आये हुए एक संतके दृष्टिपातसे चक्रधरमें ऐसा परिवर्तन अकस्मात् हो गया कि वे अन्य बालकोंके साथ खेलना छोड़कर स्थिर आसनसे आँख मूँदे हुए बैठ गये और उनके बहुत देरतक होता रहा अविरल अश्रु-प्रवाह एवं अनवरत नाम-जप। पन्द्रह वर्षकी आयुमें गयाके दिगम्बर अवधूत साधुके स्पर्श मात्रसे चक्रधरमें ऐसा परिवर्तन स्वाभाविक हो गया कि उनके चित्तकी चञ्चलता प्रशमित हो गयी और वे क्रमशः बन गये संत-जीवनके प्रशंसक। जेल-जीवनके अद्भुत दिव्यानुभवोंने भी संत-जीवनको स्वीकार करनेकी प्रबल प्रेरणा प्रदान की थी।

* * * * *

भगवान के नाम पत्र लिखना

चक्रधरकी एक व्यक्तिगत डायरी थी। यह डायरी वे किसीको दिखलाते नहीं थे। उस डायरीके ऊपर श्रीमद्भगवद्गीताका श्लोक लिखा था—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥

(श्रीगीता— ९/२७)

(हे अर्जुन! तू जो कुछ कर्म करता है, जो कुछ खाता है, जो कुछ हवन करता है, जो कुछ दान देता है, जो कुछ धर्माचरण रूप तप करता है, वह सब मेरे अर्पण कर!)

चक्रधर मध्य रात्रिके समय भगवानके नाम पत्र लिखा करते थे। कलकत्ते आनेके बाद ही इस प्रकारके पत्रोंको लिखना चक्रधरने आरम्भ कर दिया था। पत्र लिख चुकनेके बाद चक्रधर स्थिर बैठ जाते तथा आँखें मूँदकर भगवानका ध्यान करते थे। उस ध्यानमें ही वे पत्र भगवानको अर्पित कर दिया करते थे। चक्रधर यह भावना किया करते थे कि भगवान मेरे पत्रको पढ़ रहे हैं। इन पत्रोंका लेखन १ जनवरी १९३४ से आरम्भ हुआ और १४ अक्टूबर १९३५ तक

पत्रोंका लेखन-कार्य चलता रहा।

उन पत्रोंमें रहते थे मनके परम ऐकान्तिक उद्‌गार। गुरुजनोंके सम्पर्कसे तथा ग्रन्थोंके अध्ययनसे हृदयमें जो आदर्श स्थिर थे, माता-पिता-पत्नी-भाई-बहिन-मित्र-देश-धर्म-समाज आदिको लेकर मस्तिष्कमें जो विचार उठते थे, लक्ष्य-सिद्धि हेतु प्रयत्न करते समय पद-पदपर जो बाधाएँ आती थीं, परिस्थितियोंकी प्रतिकूलताके कारण मनमें जो झंझावात उभरते थे, नैतिकता-मानवताके ह्रास और हानिको देखकर जो खिन्नता होती थी, उन सबका ही भगवानके नाम लिखे गये पत्रमें वर्णन होता था। पत्रमें यह सारा निवेदन करके चक्रधर भगवानसे यही प्रार्थना करते थे कि मेरे जीवनमें सत्यकी प्रतिष्ठा करो, मेरे भीतर और बाहर सत्य-ही-सत्य हो, मेरे जीवनको सात्त्विक बना दो, मेरे जीवनको अमृतमय बना दो, मेरे जीवनको सुन्दर बना दो, मेरा जीवन आदर्शोंसे एकाकार हो जाये, मुझे प्रकाश दो, मुझे सच्ची राह बताओ, मुझे सच्ची शान्ति प्रदान करो! ये पत्र ऐसे थे, जिनमें था चक्रधरके आर्त मनमें उठनेवाले भावों एवं विचारोंका यथार्थ चित्रण, अशान्ति और निराशासे परिपूर्ण हृदयकी व्यथाभरी गाथा, आकुल अन्तरके अश्रु-विमोचनकी संतप्त आर्द्रता, सत्य जीवनकी प्राप्तिके लिये उत्कट लालसा, बाधाओंको दूर करनेके लिये कातर प्रार्थना और ईश्वरीय प्रकाशकी प्राप्तिके लिये प्रतिक्षण प्रतीक्षा।

(चक्रधर द्वारा लिखे गये इन पत्रोंका संग्रह 'अन्तर्वेदना' *नामक पुस्तकके रूपमें प्रकाशित हो चुका है। इस पुस्तकमें कुल २०४ पृष्ठ हैं।)

नीचे पाँच पत्र उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

(१)

दिनांक १.१.३४

अनन्त प्रेमार्णव!

लगा दो पार नाथ! नाव पुरानी है, केवट नादान है, पाल टूट गये हैं और आ पड़ा हूँ मझधारमें। किनारा नहीं सूझता विभो! दयामय! तुम्हारी एक नजर पार लगा देगी। आओ, आओ, करुणामय!

तुम्हारा ही

---

*श्रीचक्रधर मिश्र (राधाबाबा) द्वारा लिखे गये इन पत्रोंका संग्रह 'अन्तर्वेदना' नामक पुस्तकके रूपमें हनुमानप्रसाद पोद्दार स्मारक समिति, पो. गीतावाटिका, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित हो चुका है।

(२)

दिनांक ३.१.३४

भावनामय !

भवसागरकी तरल तरंगोंने मुझे मृतप्राय बना डाला है। इसकी उद्दण्ड हिलोरोंसे मैं तंग आ गया हूँ। जीवन ज्योति लुप्त हो गयी है। सहारेके लिये हाथ पसारनेपर लोग ठुकरा देते हैं। हृदय खीरा नहीं है, जिसे दयामय! उन्हें मैं फाड़कर दिखा सकूँ। संसार मुझसे घृणा करता है, पर तुम तो अनाथोंके नाथ हो। विभो! सर्वेश! मेरी रत्ती-रत्तीका तुम्हें ज्ञान है। बिखेर दे भक्तभयहारी! ऐसी चाँदनी, जिसमें मैं देख सकूँ अपना पथ। अन्तर्दाहकी शांति तुम्हारे सिवा और कौन दे सकता है ? हृदय जल रहा है, अस्थिमात्र अवशेष है, कुछ दिनोंके बाद यह अस्थि-पिंजर भी, हृदयकी उस विषम ज्वालाकी लपटमें पड़कर भस्मसात हो जायगा। हो जाय, इसका भय नहीं। केवल विनय है नाथ! मुझे अपने चरणोंसे विलग न करना। मेरे एक मात्र आधारको हमसे न छीनना। न छीनना दयामय! न छीनना। भिक्षास्वरूप अपना चरण मुझे दे दो। अपनी टेक मत छोड़ो करुणानिधि! और एक बारके लिए ही चमका दो अपनी दिव्य ज्योति।

(३)

दिनांक २०.१.३४

अनन्त !

तुममें लीन हो जाना ही पूर्ण आनन्दका अनुभव करना है। संसार असार है। सब कुछ अनिश्चित है। तुम केवल निश्चित हो। विभो ! ले लो मुझे चरणोंमें।

(४)

दिनांक २२.१.३४

दयामय !

जो कुछ भी कर रहा हूँ उसे तुम्हें नाथ ! अर्पण करता हूँ। तुम मेरी इस क्षुद्र भेंटको स्वीकार करना। नाथ ! क्षुद्र भावनाओंको लेकर आया हूँ। उसे तुम्हींपर चढ़ा दे रहा हूँ। इसे न ठुकराना।

प्रेमार्णव! तुम्हीं एक सार हो और सब कुछ असार है। तुम्हारी मधुर मुस्कानकी आभा प्रत्येक कणमें है विश्वेश! उद्धार करो।

(५)

दिनांक २३.१.३४

नटवर!

बिनय मेरी तुमने सुनी है। नाथ! तुम्हारी पवित्र मुस्कानका आभास मुझे मिल रहा है। नाथ! सब कुछ तुममें अर्पण करता हुआ तुम्हारी शरणमें आया हूँ। शरणसे बिलग न करना।

शरणागतपाल!

दुःखसे जर्जर जीवनकी शांति तुम्हारे पास है। नाथ! माँगता हूँ एक चीज। नाथ! दुःख-सुखमें मेरे भाव एक हो जायँ, पूर्णतया कर्मफलका त्याग कर सकूँ और समझ सकूँ सर्वदा ही कि जो कुछ मैं करता हूँ, वह तुम्हारा है— मैं साधन मात्र हूँ। विशेष विनय!

* * * * *

संन्यास ग्रहण

पत्रोंको लिखनेका क्रम निरन्तर चलता रहा। एक बार ध्यान करके जब चक्रधरने पत्र अर्पित किया तो बहुत मधुर स्वरमें किसीकी वाणी सुनायी पड़ी— तुम संन्यास ले लो। तुम्हारे सम्पूर्ण दुःखों एवं अशान्तिका सदाके लिये नितान्त अभाव हो जायेगा।

चक्रधरको किसीकी आकृति दिखलायी नहीं दी, परंतु इतना तो इन्हें स्पष्ट अनुभव हुआ कि वह वाणी लौकिक नहीं थी। चक्रधरने इसे ईश्वरीय आदेश माना और उन्होंने संन्यास लेनेका संकल्प कर लिया।

चक्रधरने बड़े भाईको सन् १९३५ के सितम्बर मासमें सूचना दे दी कि मैं एक मास बाद संन्यास ले लूँगा। चक्रधरके स्वभावको देखते हुए ऐसा लगता है कि संन्यास लेनेका ईश्वरीय संकेत बड़े भाईको सूचना देनेसे दो-तीन मास पूर्व चक्रधरको मिला होगा। ईश्वरीय संकेत मिलनेके बाद चक्रधरने अवश्य ही संन्यासकी प्रक्रिया एवं संन्यासी जीवनचर्यासे सम्बन्धित तथ्योंको भली-भाँति

जान लेनेका प्रयास किया होगा। तथ्योंकी पर्याप्त जानकारी हो जानेके बाद ही चक्रधरने अपने निश्चयकी सूचना बड़े भाईको दी होगी।

घरमें सभीकी सुख-सुविधाका ध्यान रखना, बालकोंकी शिक्षाका प्रबन्ध करना, आयके साधनोंको जुटाना, परिवारके प्रश्नोंको सुलझाना आदि सब कार्य मुख्यतः परमादरणीय पण्डित श्रीदेवदत्तजी मिश्र करते थे, जो चक्रधरके बड़े चचेरे भाई थे। कलकत्तेमें पण्डित श्रीदेवदत्त मिश्रके साथ ही पं. श्रीतारादत्तजी तथा चक्रधर रहा करते थे। एक दिन अकस्मात् चक्रधरने संन्यासकी सर्वप्रथम सूचना श्रीदेवदत्तजीको देते हुए कहा— भैया! प्रभुकी इच्छा है कि मैं गृहस्थ-जीवनका, संसारका परित्याग करके संन्यास ले लूँ।

वहींपर इस सूचनाको सुना सहोदर बड़े भाई श्रीतारादत्तजीने भी। संन्यासकी सूचना भाइयोंके लिये एक वज्रपात ही था। भाई लोग यह तो देखते थे कि आजकल चक्रधर अनमना-सा रहता है, प्रायः श्रीमद्भगवद्गीताका स्वाध्याय करता रहता है, आध्यात्मिक ग्रन्थोंमें इसकी रुचि रहती है, अपने विचारोंमें निमग्न रहता है, उसकी मननशीलता बहुत बढ़ गयी है, मित्रोंके साथ बड़ा विनम्र रहता है, पहलेकी अपेक्षा उसके आचार-विचार-व्यवहारमें परिवर्तन आ गया है, पर वे लोग इस बातकी कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि वह संन्यास लेनेवाला है। यदि भाई लोग उसके गम्भीर स्वभावके बारेमें उससे कुछ पूछते थे तो चक्रधर केवल मुस्करा देते थे, पर वे मनकी बात नहीं बताते थे। संन्यासकी सूचनाके मिलते ही दोनों भाई अवाक् रह गये। श्रीतारादत्तजी तो बहुत उद्विग्न हो उठे। कुछ देरतक दोनों भाई तथा चक्रधर, तीनों ही चुप रहे। थोड़ी देर बाद परिवारके एक वरिष्ठ व्यक्तिके रूपमें श्रीदेवदत्तजीने चक्रधरसे कहा— चक्रधर! यह तुम क्या पागलकी तरह बात कर रहे हो? क्या ऐसा सोचना और कहना उचित है? चित्तको स्थिर और शान्त करो। अभी तुम निरे अबोध बालक हो। तुम्हारी अवस्था संन्यास-धर्मके योग्य नहीं है।

यह सुनकर चक्रधरने कहा— संन्यास लेनेका मैंने अन्तिम निर्णय कर लिया है।

चक्रधरकी बात सुनकर भाइयोंके हृदय आशंकासे भर गये। उन लोगोंको ज्ञात था कि चक्रधर कभी अनर्गल बात अपने मुँहसे नहीं निकालता और जो वह कहता है, करके ही रहता है। छोटे भाई चक्रधरके निर्णयकी

प्रीतिरसावतार महाभावनिमग्न
श्रीराधा बाबा

जानकारी होते ही बड़े भाई सोचने लगे कि इस समय इसकी आयु मात्र २२ वर्ष है। ऐसी कच्ची आयुमें इसका संन्यास-व्रत कैसे निभ पायेगा? इसको कैसे समझाया जाये कि मनकी वासनाओंका वेग कितना विकट हुआ करता है। गाँवमें घरपर इसकी पत्नी है, माताजी हैं, पिताजी हैं। इस समाचारसे उन सभीपर क्या बीतेगी? अभी तो इसने अपनी पढ़ाई भी पूरी नहीं की है। संन्यासका निर्णय लेकर चक्रधरने तो बड़ा ही अविवेकपूर्ण कार्य किया है।

चचेरे बड़े भाई श्रीदेवदत्तजीने पुनः बड़े प्यारसे समझाते हुए चक्रधरसे कहा— तुम्हारे लिये संन्यास-धर्म कठिन पड़ेगा। संसारके भोगोंकी क्षणभंगुरता एवं निरर्थकताका सच्चा अनुभव एक भुक्त-भोगीको ही हो पाता है। जिसे ऐसा अनुभव नहीं होता, उनका वैराग्य क्षणिक हुआ करता है। जिसने आवेशमें आकर संन्यास ले लिया है, वह भविष्यमें काम-क्रोधादि विकारोंके वशीभूत होकर यदि अपने पथसे च्युत होता है तो ऐसे पथ-भ्रष्ट संन्यासीका परमार्थ तो सिद्ध होता ही नहीं है, उसके लोक और परलोक भी बिगड़ जाते हैं। इसीलिये अपने ऋषियोंने यह मर्यादा निर्धारित की है कि मनुष्यको तीन आश्रमोंके सोपानोंको पार करनेके बाद ही संन्यासी जीवन स्वीकार करना चाहिये। इतना ही नहीं, महज्जनोंका यह भी कथन है कि घरपर जबतक माता-पिता हों, तबतक पुत्रको संन्यास नहीं लेना चाहिये।

सभीने बड़ा प्रयास किया कि चक्रधर संन्यासके विचारका परित्याग कर दे, किन्तु सारे प्रयास व्यर्थ गये। चक्रधरका निश्चय था अडिग शिला-खण्ड। स्वजन या स्नेही या मित्रोंकी ओरसे जब-जब ममत्व, भय, प्रलोभन, दबाव अथवा सुझावके रूपमें जो-जो भाव-लहरियाँ आती थीं, उस शिला-खण्डसे टकराकर बिखर जाती थीं और इन व्यक्तियोंको क्या पता कि चक्रधर तो ईश्वरीय आदेशका पालन मात्र कर रहा है। जब सारे प्रयत्न असफल हो गये और बड़े भाई श्रीतारादत्तजीने देखा कि चक्रधर अपने निश्चयपर अटल है, तो उन्होंने घरपर माता-पिताजीको उनके संन्यास लेनेके निर्णयकी सूचना भेज दी। गाँवपर माताजी-पिताजी तथा परिवारके अन्य लोग बड़े व्यथित हो उठे। सूचना मिलते ही माता-पिता कलकत्ते आनेके लिये तैयार हो गये, जिससे वे अपने पुत्र चक्रधरको समझा-बुझा सकें। माता-पिता कलकत्ते आनेवाले हैं, यह जानकारी होते ही चक्रधरने अपने बड़े भाईसे कहा— आप माताजी-पिताजीको आनेसे मना कर दें। यदि माता-पिताजी आ

गये तो मैं लापता हो जाऊँगा। आपलोग मुझे समझाने-बुझानेके लिये उन्हें बुलवा रहे हैं और वे लोग यहाँ आनेवाले हैं। इससे कोई लाभ नहीं होगा। यों तो आपलोग जो चाहें सो करें, परंतु यह भी ध्यानमें रखना चाहिये कि चार पैरवाले पशुको बाँधकर भले ही कोई घरपर रख सकता है, पर दो पैरवाले मनुष्यको बाँधना सहज नहीं। मैं आप लोगोंसे अनुरोध करता हूँ कि आपलोग घरवालोंमेंसे किसीको भी यहाँ आनेके लिये सर्वथा मना कर दें। यदि आप लोगोंके द्वारा कुछ भी प्रतिकूल आचरण होगा तो यह निश्चय है कि मैं ऐसा लापता हो जाऊँगा कि भविष्यमें आपलोगोंको मेरे बारेमें कुछ भी जानकारी नहीं मिल पायेगी। इसके विपरीत, यदि आपलोग मेरे कार्यमें बाधा नहीं पहुँचायेंगे तो मैं आपको वचन देता हूँ कि संन्यासी रहते हुए भी मुझसे सम्बन्धित जानकारी आपको समय-समयपर मिलती रहेगी कि मैं कब, कहाँ और कैसे हूँ। अब आप ही लोग निर्णय लें कि क्या करना है। मुझे तो इतना ही निवेदन करना था।

चक्रधरकी बात सुनकर बड़े भाई श्रीतारादत्तजी बड़े ही चिन्तित हो उठे। 'अरध तजहिं बुध सरबस जाता' की नीतिका अनुसरण करते हुए बड़े भाईने गाँवपर पत्र लिख दिया कि माता-पिता कलकत्ता न आयें। पत्र मिलनेपर माता-पिताको अपना हृदय वज्रकी भाँति कठोर बनाना पड़ा। उनके हृदयकी सारी कोमलता कराह रही थी, पर वे निरुपाय थे। विवश होकर उन्होंने कलकत्ते जानेका विचार विसर्जित कर दिया।

सं. १९९२ वि. आश्विन शु. १५ शनिवार (१२ अक्टूबर १९३५) के दिन शारदीय पूर्णिमा थी। इसी पूर्णिमाके दिन अरुणोदयसे पूर्व ही चक्रधर बड़े भाईके पाससे चले गये। वे कहाँ गये, इसकी जानकारी बड़े भाईको नहीं थी। बड़े भाईका अनुमान था कि वह अपने दीक्षा-गुरुके पास गया होगा। वस्तुतः वे गये थे संन्यास ग्रहण करनेकी प्रक्रियाको सम्पन्न करनेके लिये भगवती गंगाके तटपर। संन्यास ग्रहणका मुहूर्त स्वयं चक्रधरने ही निकाला था, परंतु संन्यासकी प्रक्रियासे सम्बन्धित तथ्योंको चक्रधरने स्पष्ट रूपसे किसीके सामने व्यक्त नहीं किया और अभीतक यह एक रहस्य ही है। चक्रधरने इतना तो अवश्य ही कहा है कि उन्होंने संन्यासकी जो दीक्षा ली, उसके साक्षी भगवान शंकर हैं।

इसी पूर्णिमाके प्रातःकाल सूर्योदयके बाद चक्रधर अपने बड़े भाईके

पास बास-स्थानपर लौट आये। केश-मुण्डनके लिये वहींपर नापितको बुलवाया गया। उससे केश-मुण्डनके लिये कहा गया। घरमें कोई शोक-प्रसंग तो था नहीं, अतः वह नापित समझ नहीं पा रहा था कि इन सुन्दर-सुन्दर काले-काले कोमल-कोमल केशोंको उतारनेके लिये क्यों कहा जा रहा है। पहले तो उसने आनाकानी की, पर जब उसे दृढ़ स्वरमें कहा गया तो उसे केश-मुण्डन करना ही पड़ा। वहींपर खड़े-खड़े बड़े भाई शीश-मुण्डन देख रहे थे और उन्होंने बलपूर्वक अपने आँसुओंको रोक रखा था। उनके अन्तरमें व्यथाकी सीमा नहीं थी।

केशोंका मुण्डन होते ही चक्रधर वहीं ध्यानस्थ हो गये। अभी स्नान शेष था, परंतु बाह्य सुधि होनेपर ही तो वह सम्भव हो पाता। बड़े भाईके मनकी दशा विचित्र थी। छोटा भाई अब संन्यासी बनने जा रहा है, यह सोचकर विकलता कम नहीं थी, परंतु ध्यानकी गहरी स्थिति देखकर विस्मयान्विति एवं सुखानुभूति भी कम नहीं थी। सुखानुभूति चाहे जितनी हो, विकलताका वेग बड़ा प्रबल था।

थोड़ी देर बाद चक्रधरको बाह्य ज्ञान हुआ। यज्ञोपवीत-सूत्रका परित्याग तो संन्यासकी प्रक्रियाके समय ही हो गया था, शीश-मुण्डनके समय शिखाका भी परित्याग हो गया। भाईको शिखा-सूत्रसे रहित देखकर बड़े भाइयोंके अनुराग भरे नेत्र बार-बार आर्द्र हो रहे थे। इसके बाद चक्रधरने स्नान किया। बड़े भाईने अपने हाथसे गैरिक वस्त्र दिये। चक्रधरके कहनेपर बड़े भाई ही बाजारसे वस्त्र दो-तीन दिन पहले ले आये थे और उन वस्त्रोंको एक दिन पहले स्वयं चक्रधरने अपने हाथसे गैरिक रंगमें रँगा था। जब बड़े भाई द्वारा प्रदत्त गैरिक वस्त्र चक्रधर धारण कर रहे थे, उस समय बड़े भाई, चचेरे भाई तथा अन्य उपस्थित जनोंका हृदय फटा जा रहा था। उनके नेत्र विकल हो रहे थे और स्वर रुद्ध हो रहा था। सभी विवश थे और इस करुण दृश्यके, करुण कहा जाये अथवा अरुण, इस अरुण दृश्यके सभी मूक दर्शक बने हुए थे।

संन्यास ले लेनेके बाद चक्रधरका नाम हुआ स्वामी श्रीमधुसूदनानन्द, किन्तु यह नाम प्रचलित नहीं हो पाया। लोग उन्हें स्वामी श्रीचक्रधर महाराज ही कहते रहे और भविष्यमें वे श्रीराधाबाबाके नामसे विख्यात हुए।

संन्यास लेते ही चक्रधरने एक बड़ा ही कठोर व्रत यह ले लिया कि अब जीवनमें स्त्री-स्पर्श एवं द्रव्य-स्पर्श होगा ही नहीं। अवश्य ही जन्म-दात्री माँ इस व्रतमें एक अपवाद रही।

संन्यास लेते ही चक्रधरकी जीवन-शैलीमें बड़ा परिवर्तन आया। संन्यासके पूर्व चक्रधर परिवारके बच्चोंके साथ हिल-मिल जाया करते थे और छेड़छाड़ करके हँसते हुए हँसाया करते थे। वे बालकोंके साथ बालक बनकर खेलते-खिलाते थे, परन्तु अब बहुत कम बोलते थे। वे प्रायः विशेष गम्भीर और चिन्तनशील रहा करते थे।

गेरुआ वस्त्र पहनकर चक्रधर जब कालेज गये, तब संगी-साथी लोगोंको चक्रधरकी वेषभूषापर बड़ा आश्चर्य हुआ। प्रोफेसर भी कम चकित नहीं थे यह देखकर कि कालेजके इस प्रतिभासम्पन्न छात्रने यह क्या रूप बना लिया। वे चकित थे और इसीके साथ वे व्यथित भी थे यह सोचकर कि इस मेधावी छात्रने अपना भविष्य बिगाड़ लिया। कुछ चकित थे, कुछ व्यथित थे और कुछ क्षुभित थे कच्ची आयुमें नादानी पूर्ण परिवर्तन देखकर। एक प्रोफेसर महोदयने क्षोभके आधिक्यमें इनको कक्षासे बाहर निकाल दिया। चक्रधर क्लासके बाहर खड़े-खड़े प्रोफेसर साहबका लेक्चर सुनते रहे। जब पीरियड समाप्त हो गया, तब वे प्रोफेसर साहब क्लासके बाहर आये और चक्रधरको अपने साथ ले जाकर कालेजके प्रिंसिपल साहबके सामने खड़ा कर दिया। उन प्रोफेसर साहबको यह विश्वास था कि प्रिंसिपल साहब इस गैरिक वस्त्रधारी छात्रको खूब डाँटेंगे-फटकारेंगे और इस डाँट-फटकारके परिणाम स्वरूप यह छात्र अपने पूर्व रूपमें सहज ही आ जायेगा, परन्तु ऐसा हुआ नहीं। यह संन्यास कोई थोथी भावुकताके आधारपर लिया नहीं गया था। प्रिंसिपल साहबके साथ दो दिनोंतक तर्कपूर्ण विवाद चलता रहा और यह तीव्र विवाद क्रमशः मधुर संवादके रूपमें बदल गया। चक्रधरके तर्क-सम्मत उत्तरोंको स्वीकार करनेके लिये प्रिंसिपल साहब विवश हो गये और फिर प्रिंसिपल साहबकी ओरसे क्लासमें जाने और बैठनेके लिये लिखित अनुमति मिल गयी। अब चक्रधर पूर्ववत् कालेज जाते रहे।

चक्रधरको कालेजमें जाने और क्लासमें बैठनेके लिये प्रिंसिपल साहबने अनुमति प्रदान कर दी है, यह जानकर उन प्रोफेसर साहबको बड़ा

आश्चर्य हुआ। चक्रधरको अनुमति दे दिये जानेसे उन प्रोफेसर साहबने अपनी मानहानि समझी। अपमान-बोधकी भावनाने उनको चैनसे बैठने नहीं दिया। उनके मनमें जिज्ञासाका उद्भव हुआ कि इस छात्रके जीवनके बारेमें कुछ जानकारी प्राप्त करनी चाहिये। चक्रधर कालेजसे अब घर पैदल ही आते थे। वे प्रोफेसर साहब चक्रधरके साथ पैदल चलते हुए घरपर आये और पं.श्रीदेवदत्तजीसे मिले। पण्डितजीसे चक्रधरके पूर्व जीवनकी कुछ झलक पाकर उन प्रोफेसर साहबको बड़ा सन्तोष हुआ, केवल सन्तोष ही नहीं, मनमें खेद भी हुआ कि अनजानेमें इस सुयोग्य भविष्णु छात्रके प्रति अभद्र व्यवहार मेरे द्वारा हो गया। एक ओर उन्होंने पं.श्रीदेवदत्तजीको परम सान्त्वना प्रदान की तो दूसरी ओर गैरिक वस्त्रधारी अपने छात्रको विपुल आशीर्वाद दिया। अपने छात्रके प्रति मंगल कामना व्यक्त करते हुए उन्होंने पण्डितजीसे कहा– यह होनहार बालक संन्यासी होकर भी कुलका गौरव होगा और आपके वंशकी कीर्तिको बढ़ायेगा।

प्रोफेसर साहबके इस भावभरे उद्‌गारको सुनकर पं.श्रीदेवदत्तजी मिश्रको बड़ा सन्तोष हुआ।

* * * * *

संन्यासी वेष में गाँव पर

(अब यहाँसे आगे श्रीचक्रधर मिश्रको 'बाबा'के नामसे सम्बोधित किया जायेगा)

संन्यास-धर्मके अनुसार संन्यासीको एक बार अपने माता-पिताके पास जाना चाहिये, अतः संन्यास लेनेके बाद तथा इण्टरमीडियेटकी परीक्षा देनेके पूर्व बाबा अपने गाँव गये। माँ तो अपने बेटेको देखनेके लिये अत्यधिक अकुला रही थी। अपने पुत्रके लिये माँके हृदयमें कितनी तड़फन थी, यह तो केवल कोई वत्सला माँ ही जान सकती है। 'घायल की गति घायल जाने, और न जाने कोय'।। बाबाके माता-पिता तो उसी समय फखरपुर गाँवसे कलकत्ते जानेके लिये प्रस्तुत थे, जब उन लोगोंको पुत्रके संन्यास लेनेके निश्चयकी सूचना मिली थी। परिस्थितियोंने विवश कर दिया, इसलिये वे लोग जा नहीं पाये। भले ही वे लोग नहीं गये और भले

ही माँका शरीर गाँव फखरपुरमें था, परंतु वह तो मनसे प्रतिक्षण अपने पुत्र चक्रधरके पास कलकत्ते थी। उसने न केवल नौ मासतक उसे अपने गर्भमें धारण किया था, अपितु नौ वर्षोंतक उसको अपने स्तनका दूध पिलाया था। अपने पुत्रकी सुन्दरता, सुशीलता, बुद्धिमत्ता, योग्यता आदिको देखकर उसे मन-ही-मन गर्व-बोध होता था। उसे क्या पता था कि यह महान गर्व-बोध ही एक दिन विशाल व्यथा-कोषमें परिणत हो जायेगा। परिवारके अथवा गाँवके लोग जब उसके पुत्रकी सराहना करते थे तो वह आनन्द-सिन्धुमें डूब जाया करती थी, पर अब वही अपार सिन्धु बन गया वेदनाका अथाह सागर, जहाँ न जीवन था और न थी मृत्यु। माँको नितान्त खिन्नता थी वंश-परम्पराकी समाप्तिको देखकर। माँके चार पुत्र थे, प्रथम तीनके कोई पुत्र-रत्न था ही नहीं। माँने वंश-वेलिके विस्तारकी आशा अपने चक्रधरपर टिका रखी थी, पर अब तो उस आशाका आधार ही समाप्त हो गया चक्रधर यह क्या कर बैठा? इससे तो कुलोच्छेदन ही हो गया। माँने न जाने कितने सुनहले-रुपहले सपने बना रखे थे, अब वे सब सपने उसके हृदयको साल रहे थे। और ऐसी ही व्यथापूर्ण दशा थी पिताजीकी। माँ तो आँसू बहाकर कभी-कभी स्वयंको हलका कर लेती थी, पर पिताजीकी स्थिति और गम्भीर थी। उनके आँसू घुन बनकर भीतर-ही-भीतर जीवनको खोखला बना रहे थे।

माता-पिताको सबसे अधिक कष्ट दे रही थी पुत्र-वधूकी चिन्ता। वह तो अभी निरी अबोध ग्रामीण बालिका ही है। यौवनकी देहरीपर अभी उसके चरण पड़े ही नहीं हैं और अब उसे असमयमें ही क्या विरक्ति एवं विवेककी, तप और त्यागकी शिक्षा देनी पड़ेगी? हाय विधाता! तूने यह क्या कर दिया? न जाने कैसे उस हठीलेका संन्यास-धर्म निभ पायेगा और न जाने कैसे इस सरलाकी लम्बी आयु कट पायेगी? माँका हृदय व्यथासे इतना अधिक अवसन्न था कि दुःखके तीव्रावेगमें उसका पूजा-पाठ ही छूट गया।

और सबसे अधिक करुण स्थिति थी फखरपुर ग्रामकी उस तपस्विनीकी, जिसे अनुरागके आरम्भमें ही वैराग्य अंगीकार करना पड़ा। पतिने जब संन्यास ले लिया तो अब शृंगारसे, सुवाससे, स्वादसे क्या प्रयोजन रह गया? यशोधरा और विष्णुप्रियाके दर्दभरे अश्रु एक बार फिर

फखरपुर ग्राममें अवतरित हो उठे रोने और रुलानेके लिये। पति-वियुक्ता उस तपस्विनीके जीवनमें अब यशोधरा और विष्णुप्रियाकी अश्रु-गाथा ही तो रह गयी थी। पहले वह मन-ही-मन अपने सुहागके गीत गाया करती थी। जिसका पति सुन्दर हो, स्वस्थ हो, सुशील हो, सुकण्ठ हो, सुविज्ञ हो, वह अपने सिन्दूरके गीत क्यों नहीं गाये? उसकी मान्यता थी कि न जाने कितने जन्मोंके संचित पुण्योंकी राशि एक साथ उदित हो उठी थी, जो ऐसे पतिकी जीवन-संगिनी बननेका सौभाग्य मिला। उसका सौभाग्य अवश्य ही अन्योंके लिये प्रशंसनीय बन गया था। पर अब? अब उसकी स्थिति थी 'जथा पंख बिनु खग अति दीना।' अब वह पंख-कटे-पक्षीकी भाँति स्वयंको अति असहाय अनुभव कर रही थी। जो कलतक उसके सौभाग्यकी सराहना करती थीं, अब वे सहानुभूति प्रदर्शित करती हैं, उसे सान्त्वना देनेका प्रयास करती हैं। कोई कितना ही कहे और समझाये, अब आँसूकी धारा ही उसके एकान्तकी सहेली थी। ऐसा लगता है मानो नवद्वीपकी उस विष्णुप्रियाका रोदन ही इस तपस्विनीके प्रकोष्ठमें उतर आया हो। रोदनका सागर केवल उतर ही नहीं आया था, वह रह-रह करके उभर रहा था, उमड़ रहा था।

क्या माँ, क्या पिता, क्या यह तपस्विनी और क्या अन्य जन, सभी लोग बाबाके दर्शनके लिये, एक बार दर्शनके लिये तरस रहे थे और बाबा अपने ग्राम आये। जिस समय बाबा अपने गाँव फखरपुर पहुँचे, उस समय थोड़ी रात बीत चुकी थी। वे माता-पिताके दर्शनोंके लिये मकानके भीतर गये और जाकर आँगनमें खड़े हो गये। उनके आनेका समाचार सुनते ही माँ दौड़ी हुई आयी और अपने युवक संन्यासी पुत्रको हृदयसे लगाकर रोने लगी। अपनी अजस्र अश्रुधारासे वह उनके गेरुवे कपड़ोंको भिगो रही थी। संन्यासी पुत्र और विह्वला माताके भावार्द्र मिलनका वह दृश्य कैसा था, इसका वर्णन कर सकना कठिन है।

अति अनुराग अंब उर लाये। नयन सनेह सलिल अन्हवाए।।
तेहि अवसर कर हरष विषादू। किमि कवि कहै मूक जिमि स्वादू।।

माँका रुदन कम हो ही नहीं रहा था। बाबाने अपने वचनामृतसे माँको शान्त करनेकी चेष्टा की, पर वह रुदन तो उत्तरोत्तर बढ़ता ही जा रहा था। बहुत सान्त्वना देनेपर रुदन तो थोड़ा कम हो गया, परंतु

हिचकियाँ एवं सिसकियाँ पूर्ववत् थीं। माँ कुछ बोलना चाह रही थी, पर बोल नहीं पा रही थी। रह-रह करके अपने संन्यासी पुत्रके मुण्डित शीशपर हाथ फेर रही थी। हाथ कभी सिरपर और कभी पीठपर फिरता ही रहा। माँने बोलनेकी चेष्टा की, पर फिर वाणी अवरुद्ध हो गयी। रुक-रुक करके माँ कहने लगी— बेटा! तुमने यह क्या किया? तुम्हारा यह वेष? क्या सचमुच तुमने मुझको छोड़ दिया?

इतना कहते-कहते फिर रुदनका प्रवाह बह पड़ा, नहीं-नहीं, फट पड़ा। अपनी माँके चरणोंमें, सिर रखकर बाबाने सान्त्वना दी और बोले— माँ! तुम इतनी अधीर, इतना विकल क्यों हो रही हो? तुम घबड़ाओ नहीं। मैं तो तुम्हारा बेटा था, अभी भी ज्यों-का-त्यों हूँ। संन्यासीका बाना लेनेसे मैं तुम्हारे लिये बदल गया क्या? सर्वथा नहीं। मैं तो सदा तुम्हारा ऋणी था, हूँ और रहूँगा। तुम्हारे ऋणसे मुक्त होना मेरे लिये सम्भव नहीं मैं तुम्हारे लिये वही हूँ, जो पहले था। तुम मेरे लिये तनिक भी चिन्ता मत करो। तुम विश्वास करो, मुझे किसी प्रकारका भी कष्ट नहीं होगा। मैं वचन देता हूँ कि मैं जहाँ भी रहूँगा, तुम्हें पता रहेगा और तुम्हारी मृत्युके समय मैं तुम्हारे पास रहूँगा। तुम मुझे आशीर्वाद दो कि जिस महान उद्देश्यके लिये मैंने यह वेष लिया है, वह सफल हो।

इस प्रकार बाबा बहुत देरतक माँको सान्त्वना दे-दे करके धीरज बँधाते रहे। पुत्रके आनेका समाचार सुनकर पिताजीके भी धैर्यका बाँध टूट गया था और अपने कमरेमें बैठे-बैठे अश्रु मोचन कर रहे थे। उनका रुदन सुनकर बाबा तुरंत पिताजीके पास गये और उनके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रणाम किया। पिताजीके नेत्रोंकी दृष्टि क्षीण हो गयी थी। उन्होंने अपने संन्यासी पुत्रको उठाकर गलेसे लगा लिया और माँकी भाँति सिसकते हुए बोलने लगे— बेटा! तुमने यह किया! अपने बूढ़े पिताको क्यों छोड़ दिया? प्रभुने तुम जैसा सुयोग्य पुत्र मुझको दिया। तुमको देख-देखकर मुझे विचित्र सुखका अनुभव हुआ करता था। तुम्हारे बारेमें मैंने न जाने क्या-क्या सोच रखा था, पर आज वह सब सदाके लिये अँधेरेमें छिप गया। तुमने संन्यास क्या लिया, मेरा सहारा छूट गया, टूट गया।

बाबाने पिताजीको सान्त्वना दी— आप इतने कातर क्यों हो रहे

हैं? क्या मैं आपका पुत्र नहीं रहा? मैं कहीं भी रहूँ, आपका पुत्र ही कहलाऊँगा और मेरी सफलता आपके सुयशको ही बढ़ायेगी। आपके वात्सल्यने ही मुझे पाल-पोसकर इतना बड़ा किया है और आपका आशीर्वाद ही सारे विघ्नोंका निवारण करके मुझे सफलता प्रदान करेगा। आप आशीर्वाद दें, जिससे उस महान उद्देश्यकी सिद्धि हो।

पिताजीको सान्त्वना देकर बाबा पुनः मकानके आँगनमें आ गये और आ गया ध्यान उस तपस्विनीका भी। वह तो दूसरे कमरेमें बैठी अपने अश्रुओंसे आँचलको भिगो रही थी। वह दुखिया अब केवल अश्रुओंसे ही अपने कपोलोंको, अपने आँचलको भिगो सकती थी। व्यथाके अभिव्यक्त हो जानेका एक मात्र यही माध्यम रह गया था। अधरोंसे बोलकर कुछ व्यक्त करनेका अधिकार अब उसके पास कहाँ रहा? माता और पिताने बोलकर अपने दुःखोद्गार संन्यासी पुत्रके सामने व्यक्त कर दिये, भले यह अभिव्यक्ति स्खलित वाणीमें हुई हो, परंतु उन दुःखोद्गारोंकी येन-केन-प्रकारेण अभिव्यक्ति तो हो ही गयी थी। माता-पिताको कुछ कहनेका अवसर मिल गया था, परंतु नियतिकी वक्रताने भावोंकी अभिव्यक्तिका सारा अधिकार अब उससे छीन लिया था। इस तपस्विनीके भाग्यकी काली रेखाएँ बड़ी क्रूर थीं। पहले जो अपने जीवनधनके समक्ष मनका सब कुछ रख सकती थी, कह सकती थी, अब उसीके अधर सर्वथा विजड़ित हो चुके थे। वाम विधाताने दृश्य ऐसा परिवर्तित कर दिया कि संभाषण तो दूर रहा, वह अब सामने भी नहीं आ सकती थी। आँगनमें खड़े-खड़े बाबाने उस तपस्विनीके लिये संदेश कहलवाया— अब उनके साथ भाई-बहिनका ही सम्बन्ध रहेगा। पूर्वाश्रमकी बात बदल गयी। रात बीत गयी। अरुणोदयकी नवीन वेलामें सम्बन्धके नवीन स्वरूपको सहर्ष स्वीकार कर लेना चाहिये। यदि उन्हें वाञ्छित हो तो उनके पढ़ने-लिखनेकी व्यवस्था किसीके द्वारा करवायी जा सकती है, जिससे भविष्यमें जीवन भार स्वरूप न अपने लिये रहे और न दूसरोंको लगे।

उस तपस्विनीने संदेश सुन लिया। जब संन्यासका समाचार मिला था, तब भी मौन थी, संन्यासी वेषमें देखकर भी मौन रही और संदेशको सुन लेनेके बाद भी मौन ही रहना था। उसके दोनों अधर ऐसे बन्द हुए

कि फिर खुले ही नहीं। श्रीमैथिलीशरणजी गुप्तके शब्दोंमें उस तपस्विनीके मनकी स्थिति थी—

हा, स्वामी! कहना था कितना, कह न सकी, कर्मोंका दोष।
पर जिसमें सन्तोष तुम्हें है, मुझे उसीमें है सन्तोष॥

उस तपस्विनीके मनमें बार-बार यही भाव उठ रहे थे— आपके पावन चरणोंकी सतत स्मृति ही मेरे जीवनका आधार है और उन युगल चरणोंपर सतत अश्रु-अर्पण ही मेरे अर्चनका स्वरूप है।*

बाबा थोड़ी देर बाद आँगनसे मकानके बाहर आ गये। बाबा गाँवमें दो-तीन दिन रहे, पर घरमें नहीं ठहरे। घरके बाहर ही उनका निवास रहा। बाबा जितने दिन गाँवपर रहे, माँ अपने संन्यासी पुत्रके पास ही रहीं। बस, शौच-स्नानके लिये विलग होना पड़ता था। अपने पुत्रके स्नानके लिये जल भी स्वयं ही रखती थी। प्रातःकाल शौचसे निवृत्त होकर बाबा स्नान करनेवाले थे। उसी समय माँने बाबाके शरीरपर ढेर सारा कड़ुआ तेल (सरसोंका तेल) लगा दिया। बचपनमें बाबा स्नानके पहले अपने सिरपर कड़ुआ तेल लगाया करते थे। संन्यासीके लिये तेल

---

*पूज्या तपस्विनी मैयासे सम्बन्धित एक प्रसंग है, जिससे उनके समर्पण-भावकी झीनी-सी, मीठी-सी झलक देखनेको मिलती है। बाबा ७ दिसम्बर १९७८ को मौन व्रत धारण करेंगे, इसका परिज्ञान होते ही देशके कोने-कोनेसे लोग गीतावाटिका आने लग गये। आनेवाले लोगोंसे मिलकर बाबा उन्हें विदाई दे देते थे। आनेवाले यदि ७ दिसम्बरतक रहते तो गीतावाटिकामें न जाने कितनी भीड़ हो जाती। अनेक स्वजन बाबासे मिलकर चले गये, इसके बाद भी दिसम्बरके प्रथम सप्ताहमें पर्याप्त भीड़ रही। अधिकांश लोग कार्यालयके सभाकक्षमें ठहरे थे। सभी लोग साथ-साथ रहते और साथ-साथ भोजन करते।

भोजनके समय एक पंक्तिमें पुरुष बैठते थे और दूसरी ओर महिलाएँ बैठकर भोजन करती थीं। पुरुषोंकी ओर पुरुष तथा स्त्रियोंकी ओर स्त्रियाँ परोसती थीं। इन परोसनेवाली स्त्रियोंमें विमला बहिन भी थीं, जो बाबाकी भिक्षा भी बनाया करती थीं भोजन करनेके लिये जो स्त्रियाँ बैठी थीं, उनमेंसे एक बहिनकी ओर विमलाका मन बड़ा खिंचता चला जा रहा था। विमलाको बार-बार ऐसा लग रहा था कि वह कोई अपनी-से-अपनी है, सगी है, परम सगी है, पर उससे बात कैसे करें। यह तो पहले

लगाना उचित नहीं, पर बाबा उस समय कुछ बोले नहीं। माँने बस, एक बार ही तेल लगाया। बाबाके मौनसे वह समझ गयी कि जिस प्रकार संन्यासीके लिये घरमें प्रवेश उचित नहीं, उसी प्रकार तेलका प्रयोग भी उचित नहीं। माँने वह तेल तो वात्सल्यवशात् लगाया था।

माँ अपने हाथसे बाबाको भोजन कराती थी। एक बार पास बैठी हुई माँसे बाबाने पूछा— मैंने ऐसा सुना है कि तुमने पूजा-पाठ ही छोड़ दिया है।

भोली तथा वत्सला माँने सहज रीतिसे कहा— वह भगवान भी भला कैसा है, जो मेरे होनहार बेटेको मुझसे अलग कर दे। मेरा तो उस भगवानपरसे विश्वास ही उठ गया है।

कभी गीतावाटिका आयी नहीं। भले पहले कभी न आयी हो, पर मन बार-बार कह रहा था कि परम आत्मीय है। बात किये बिना मन भी नहीं मान रहा था और बात करनेका साहस भी नहीं हो रहा था। एक दिन बीता, दो दिन बीता, तीसरे दिन तो विमलाके मनमें बेकली हो उठी। दोपहरको भोजन करते समय विमलाने उस नवागन्तुकासे पूछ लिया— आप कहाँसे आयीं हैं?

उन बहिनने कहा— पटनासे।

विमलाने उलटकर कहा— लगता है, आप कुछ छिपाकर बोल रही हैं।

उसने फिर कहा— इसमें भला छिपानेकी कौन-सी बात है?

विमलाने तुरन्त कहा— आप जो भी कहें, पर मेरा मन कुछ और ही कह रहा है।

उसने फिर कहा— आप ऐसा क्यों सोच रही हैं?

विमलाने कहा— हो सकता है, मेरा सोचना गलत हो, पर मन बार-बार कह रहा है कि आप बाबाके गाँव फखरपुरसे आयी हैं। आप विश्वास करें, मैं किसीसे कुछ कहूँगी नहीं। विमला बहिनका अनुमान सर्वथा सही था। फखरपुरवाली पूज्या तपस्विनी मैयाने ही इसे भेजा था। इसका नाम था बहिन सुशीला। तपस्विनी मैया अपने जीवनधनको साधुजी ही कहा करती थीं। साधुजीके समाचार जाननेकी बड़ी चाह थी और उनकी कोई निजी वस्तु मिल जाये, जिसे वे अपने पूजाघरमें रख सकें। तपस्विनी मैयाने ही दो-तीन व्यक्तियोंके साथ सुशीला बहिनको गोरखपुर भेजा था और अत्यधिक सावधान कर दिया था परिचय बतानेके सम्बन्धमें। यदि लोग जानना ही चाहें तो यही उत्तर देना चाहिये कि पटनासे आये हैं। तपस्विनी मैयाको रंचमात्र भी अभीष्ट नहीं था कि इन लोगोंके वहाँ होनेसे किसी प्रकारकी

बाबाने फिर पूछा— तुम तो पहले बहुत पूजा-पाठ करती थी। पूजा-पाठ किये बिना कुछ खाती नहीं थी। तेरे नियम बड़े कठोर थे। क्या सचमुच तुमने छोड़ दिया?

माँने बताया— बस, केवल दो माला जप करती हूँ।

तब बाबाने पूछा— जब तेरा विश्वास उस भगवानपर रहा ही नहीं, तब तू फिर दो मालाका जप क्यों करती है?

माँने उसी सरल रीतिसे उत्तर दिया— एक माला तो इसलिये कि शायद भगवान हों। यदि वे हों तो एक माला उनके लिये जपती हूँ और दूसरी

प्रतिकूल परिस्थिति उत्पन्न हो। जिस रूपमें सावधान किया गया था, बहिन सुशीला तदनुरूप ही कार्य कर रही थी, पर बहिन विमलाने तो सारी पोल ही खोल दी। बहिन सुशीलाको बड़ा आश्चर्य हो रहा था विमलाके अनुमानपर। वह कहाँतक छिपाती? भय-संकोच-लज्जा आदि अनेक प्रकारके भाव बहिन सुशीलाके नेत्रोंमें उतर आये।

सुशीला बहिनके मौनने स्वतः ही विमलाके अनुमानपर सहीकी छाप लगा दी। विमलाने पुनः आश्वस्त करते हुए उसे धीरे-धीरे कहा— तनिक भी घबराना नहीं। मैं किसीसे कुछ नहीं बताऊँगी। तुम आयी, बड़ा अच्छा किया। आना ही चाहिये था। और कौन-कौन आया है?

भोजनके बाद विमलाने बातें करके पूरा पता लगा लिया कि कौन-कौन आया है और कहाँ ठहरे हैं। अब विमला सभाकक्षमें जाती, उन लोगोंसे मिलती तथा उन लोगोंके सुख-सुविधाका अधिक-से-अधिक ध्यान रखती।

सुशीला बहिनको भी तो एक ऐसे आत्मीयकी आवश्यकता थी ही, जो तपस्विनी मैयाके मनोरथको पूर्ण कर सके। ज्यों ही विमलाको पता चला कि उन मैयाने बाबाके निजी उपयोगकी कोई वस्तु मँगवायी है, विमला उसकी व्यवस्थामें संलग्न हो गयी। बहुत प्रयास करनेके बाद पुरानी कुटियाके स्नानघरमें पड़ी हुई बाबाकी पुरानी चरण-पादुका प्राप्त हो गयी। जब यह चरण-पादुका विमलाने सुशीला बहिनको दी, तो उसके आनन्दकी सीमा नहीं थी। गोरखपुरसे वापस लौटकर सुशीला बहिनने वह चरण-पादुका तपस्विनी मैयाको दी। चरण-पादुकाके मिलते ही तपस्विनी मैयाने उसे प्रणाम किया, फिर अपने मस्तकपर रखा और तदुपरान्त उन्होंने उसे पधरा दिया अपने पूजागृहमें, बाबाके चित्रात्मक श्रीविग्रहके समक्ष। वस्तुतः बाबाकी स्मृति ही और उस पावन स्मृतिका परिपोषण-परिवर्धन करनेवाली वस्तुओंका संग्रह ही उन तपस्विनी मैयाके जीवनका आधार था।

माला तुम्हारे लिये। तुमने बड़ी कच्ची आयुमें संन्यास ले लिया। भगवानसे प्रार्थना करती हूँ कि मेरे बेटेका धर्म निभा देना। कहीं मेरी कोखमें कलंक न लग जाय।

माँके मुखसे इतना सुनना था कि बाबाके नेत्रोंसे अश्रुकी धारा बह चली। बाबाने तुरंत अपनी माँसे कहा— तू विश्वास रख। तेरी कोखको कभी कलंक नहीं लगेगा। यह मैं किसी ऐसी अचिन्त्य शक्तिके बलपर कह रहा हूँ, जो मेरे जीवनका संचालन कर रही है। इसके अतिरिक्त तेरा वात्सल्य भी तो मेरे लिये रक्षा-कवचका कार्य करेगा। तू सच मान, तेरी कोख कलंकित नहीं, अपितु उसकी कीर्ति अधिकाधिक उज्ज्वल ही होगी।

अत्यधिक छलछलाते प्यारमें भरकर माँ अपने संन्यासी बेटेके सिरपर हाथ फेरने लगी। दो-तीन दिन बाद बाबाने अपने गाँवसे विदाई ली। घरवालोंकी तो बात ही क्या, आस-पासके गाँवके लोग भी जुट आये। सबका मन व्यथाके भारसे बोझिल था। सबकी आँखोंमें आँसू थे। कई तो सिसक रहे थे। चलते-चलते भरी भीड़में माँने अपने बेटेको खिलाया। गाँवसे विदा होकर बाबा कलकत्ते आ गये इण्टरमीडिएटकी शिक्षाको पूर्ण करनेके लिये।

* * * * *

संन्यासोपरान्त इन्टरमीडिएट की पढ़ाई पूरी करना

फखरपुर ग्राममें बाबा अपने माता-पिता तथा पारिवारिक जनोंसे मिलकर कलकत्ता वापस आ गये और नियमित रूपसे कालेज जाने लग गये। इस समय बाबा कलकत्तेमें इंटरमीडिएटके द्वितीय वर्षमें पढ़ते थे। काषाय वस्त्र धारण करनेके उपरान्त बाबाने अपने बड़े भाइयोंसे कहा था— इंटरमीडिएटकी शिक्षामें डेढ़ वर्षतक आपने मुझपर बहुत व्यय किया है। इस व्ययको निरर्थक करना उचित नहीं लगता, अतः मैं इंटरमीडिएटकी पढ़ाईको पूरा करके परीक्षा दूँगा, जिससे आप लोगोंके मनकी सन्तुष्टि हो सके। इस छः-सात मासकी पढ़ाईके बाद जागतिक विषयोंसे सम्बन्धित मेरा अध्ययन समाप्त हो जायेगा। आप सभी लोग मुझे आशीर्वाद दीजिये कि जिस आध्यात्मिक विद्यार्जनके लिये इस

संन्यासी वेषको धारण किया है, वह मुझे प्राप्त हो।

गाँवसे वापस आनेके बाद बाबा अपनी साधना और स्वाध्यायमें तल्लीन हो गये। आध्यात्मिक ग्रन्थोंके स्वाध्यायमें ही उनकी रुचि रहा करती थी। बाबा पाठ्यक्रमकी पुस्तकें बहुत कम पढ़ते थे। परीक्षाके जब एक-दो मास रह गये, तब उन्होंने परीक्षा देनेकी दृष्टिसे उन पुस्तकोंको पढ़ना आरम्भ किया था। इस थोड़े-से पठन-पाठनके द्वारा ही उन्हें पूर्ण सफलता मिली। उन्होंने इंटरमीडिएटकी परीक्षा प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण की। यह पठन-पाठन तो बाबाने किया था केवल अपने बड़े भाइयोंकी प्रसन्नताके लिये। इस पठन-पाठनकी अवधिमें समय- समयपर बड़े भाइयोंने कई बार बाबासे कहा कि तुम आगे भी पढ़ो और अधिक योग्यताका सम्पादन करो, किन्तु इसके लिये बाबा कभी भी राजी नहीं हुए। बाबाकी प्रतिभासे महाविद्यालयके अध्यापकगण भी बहुत प्रभावित थे। उनमेंसे कई अध्यापकोंने ऊँची पढ़ाई करनेके लिये सुझाव दिया और व्यय-भार-वहनका आश्वासन दिया, पर यह भी सुझाव बाबाको स्वीकार नहीं था। जब-जब ऐसा सुझाव आता, बाबा यही कहते– अब तो दूसरी ही पढ़ाई पढ़नी है।

इंटरमीडिएटकी परीक्षा देनेतक बाबा अपने बड़े भाइयोंके साथ रहे। वे कक्षामें पढ़नेके लिये उस संन्यासी वेषमें ही जाते। उनके संन्यासी वेषको देखकर सहपाठी चुटकी लेते, किन्तु अब तो वेष-परिवर्तनके साथ-साथ बाबाके बोलने-मिलने-रहने-चलनेका सारा ढंग ही बदल चुका था। बाबा सबको संयमित वाणीमें उत्तर देते हुए सबका समाधान करते अथवा मौन रहते।

बाबाका संन्यास लोगोंके लिये आश्चर्य और चर्चाका विषय बना हुआ था। एक बार बाबा कलकत्ते शहरमें सड़कसे जा रहे थे। बाबाको पता नहीं कि उनके पीछे-पीछे कलकत्ता विश्वविद्यालयके एक प्राध्यापक चले आ रहे हैं। उन प्राध्यापक महोदयने गैरिक वस्त्रोंमें भी अनुमान लगा लिया कि यह सम्भवतः वही चक्रधर मिश्र नामका छात्र है, जिसकी छाप कालेजके विद्यार्थियोंपर है। वे चाह रहे थे कि इससे दो बात करूँ। बाबा कालेज- स्क्वायर नामक स्थानपर आकर एक बेंचपर बैठ गये। बाबा बैठे ही थे कि वे प्राध्यापक महोदय सामने आकर खड़े हो गये। बाबाने

पहचान लिया कि ये अर्थशास्त्र विभागके अध्यक्ष हैं। उन्हें सामने देखकर बाबा तुरन्त खड़े हो गये तथा उनसे बेंचपर बैठनेके लिये अनुरोध करने लगे। प्राध्यापक महोदयने कहा— आप ही बैठें।

बाबाने कहा— यह कैसे हो सकता है कि मैं बैठा रहूँ और आप खड़े रहें?

प्राध्यापक महोदयने कहा— आपने गैरिक वस्त्र धारण कर लिया है, अतः धर्म-मर्यादाके अनुसार मेरा खड़ा रहना ही उचित है।

इतना कहकर उन्होंने फिर पूछा— मेरा अनुमान सही है क्या कि आप वे ही चक्रधर मिश्र नामक विद्यार्थी हैं?

बाबाने उनके कथनका अनुमोदन किया। वात्सल्यकी अधिकतामें उनके नेत्र सजल हो उठे। फिर स्नेहभरी वाणीमें उन्होंने कहा— मैं लगभग एक मीलसे आपके पीछे-पीछे चला आ रहा हूँ। आपको संन्यासी वेषमें देखकर मेरे मनमें एक जिज्ञासा उत्पन्न हो गयी। इतनी छोटी उम्रमें आपने संन्यास क्यों ले लिया?

उनके प्रश्नका उत्तर तुरन्त दे सकना बाबाके लिये कठिन हो गया। यह सम्भव नहीं था कि जीवनके सारे चढ़ाव-उतारका वर्णन संकेत रूपमें भी कुछ क्षणोंके भीतर प्रस्तुत कर दिया जा सके। उस असमंजसकी स्थितिमें बाबाने केवल इतना ही कहा— जगतमें कुछ सार दिखलायी नहीं दिया, अतः जगतसे अतीत परम तत्त्वकी प्राप्तिके लिये संन्यास ले लिया।

इस संक्षिप्त उत्तरसे प्राध्यापक महोदयको बड़ा सन्तोष हुआ और उनके नेत्रोंसे कुछ स्नेह-बिन्दु कपोलोंपर ढुलक आये। वत्सलतापूर्ण विभोर वाणीमें वे बाबाको आशीर्वाद देने लगे— मेरे वत्स! तेरा मंगल हो और तुम्हारे उद्देश्यकी सिद्धि हो।

इस प्रकारका हार्दिक सद्भाव एवं सहज आशीर्वाद बाबाको समय-समयपर महज्जनोंसे मिलता रहा और गुरुजनोंका यह आशीर्वाद बाबाके जीवनमें सदैव मंगलका विधान करता रहा।

एक दिन बाबाके बड़े भाई पण्डित श्रीतारादत्तजी मिश्रने पूछा— भविष्यमें तुम्हारे भोजनकी क्या व्यवस्था रहेगी?

बाबाने कहा— भिक्षा द्वारा जो मिल जायेगा, उसीसे शरीरका निर्वाह होगा। यदि कभी भिक्षा नहीं मिली तो कलकत्तेमें श्रीमल्लिकजीके यहाँ कँगलोंको भात दिया जाता है, उसी भातसे भूखका निवारण करूँगा।

यह सुनकर बड़े भाई श्रीतारादत्तजीकी आँखें भर आयीं तथा कहने लगे— ऐसा करनेकी बात तुम क्यों सोचते हो? घरपर खेत है, जमीन है। यदि तुम स्वीकार करो तो तुम्हारे नाम कर दें, इससे शरीर-निर्वाहकी समस्या ही नहीं रहेगी।

बाबाने कहा— यदि यही करना होता तो फिर यह काषाय वस्त्र क्यों धारण करता?

इस उत्तरसे बड़े भाई श्रीतारादत्तजीको बड़ी विह्वलता हुई।

संन्यास ले लेनेके बाद बाबाको एक दिन एक पुराना प्रसंग स्मरण हो आया। तब बाबा गया जिला स्कूलमें पढ़ते थे। तभी एक रमल विद्या जानने वाले साधुसे भेंट हुई थी। उस साधुने कहा था कि इतने वर्ष, इतने मास और इतने दिनके बाद तुम्हारा सर्वोच्च भाग्योदय होगा। बाबाने जब दिनोंको जोड़ा तो पता चला कि उस रमल विद्यावाले साधुने जो कहा था, वह पूर्णतः सही कहा था। बाबाने बतलाया कि संन्यास लेते ही उन्हें जो परम शान्ति मिली, उसकी अनुभूति तो केवल उन्हें ही है।

* * * * *

अज्ञातवास, साधना और सिद्धि

इंटरमीडिएटकी परीक्षा देनेतक बाबा अपने बड़े भाइयोंके पास रहे। परीक्षाफल क्या होगा, इससे बाबाके मनको कोई लगाव नहीं था। परिवारके लोगोंकी प्रसन्नताके लिये परीक्षातक पढ़ना था और परीक्षा देनी थी, वह सब हो चुका। परीक्षा दे चुकनेके बाद बाबाने अपने बड़े भाईसे कहा— आप मुझे हरिद्वारतककी रेल टिकट कटवा कर दे दें।

बड़े भाईने बड़े भारी मनसे टिकट कटवा दी। टिकट ले लेनेके बाद बाबाने अपने बड़े भाइयोंके श्रीचरणोंमें भावपूर्ण हृदयसे प्रणाम किया और सबसे विदाई ली। साश्रु भाइयोंने बड़े भारी मनसे विदाई दी। इसके बाद बाबा कहीं गये, इसका बड़े भाइयोंको कुछ पता नहीं।

हरिद्वार गये या नहीं गये, यह भी निश्चयात्मक रूपसे नहीं कहा जा सकता। यहींसे बाबाका अज्ञातवास आरम्भ होता है। लक्ष्यकी सिद्धि हेतु बाबाके मनमें बड़ी त्वरा थी। त्वरा इतनी अधिक थी कि वे अपने सम्बन्धमें कुछ समयतक किसीको तनिक भी जानकारी नहीं देना चाहते थे। बाबाका हृदय नितान्त एकान्तके लिये ललक रहा था। बाबाने अपने भाइयोंको वचन दे रखा था कि समय-समयपर मेरे बारेमें आप लोगोंको सूचना मिलती रहेगी, पर इस वचनके पालनका कार्य होगा भविष्यमें। अभी तो सूचना देना तनिक भी अभीष्ट नहीं था। बाबाकी तत्परता और सोद्देश्यता ऐसी थी मानो वे 'कार्यं वा साधयामि, देहं वा पातयामि' के लिये कृत-संकल्प थे। गाँवपर किसी प्रकारकी सूचना देना अथवा घरवालोंसे अपना कुछ भी सम्बन्ध रखना, इसका अर्थ था साधनाके क्रममें व्यवधानको आमन्त्रण देना। अगले एक-दो मास बाबाके सर्वथा एकान्त-परायणताके और घोर साधन-संलग्नताके रहे।

अज्ञातवास करते हुए साधनाके आसनपर बैठनेके लिये परमोत्सुक बाबाका मानसिक-बौद्धिक धरातल कैसा था, उसकी किंचित् झलक आवश्यक है। श्रीमद्भगवद्गीता बचपनसे ही बाबाका प्रिय ग्रन्थ रहा है। बाबा जब सात वर्षके थे, तभीसे श्रीमद्भगवद्गीताके निम्नलिखित श्लोकके अनुसार उनकी साधनाका शुभारम्भ हो गया था।

मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनंजय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥

(श्रीगीता— ७/७)

(हे धनंजय! मेरे अतिरिक्त किंचित् मात्र भी दूसरी वस्तु नहीं है। यह संपूर्ण जगत सूत्रमें सूत्रके मणियोंके सदृश मेरेमें गुँथा हुआ है।)

इस श्लोकके अर्थके अनुसार भावना करते हुए बाबा स्त्री-पुरुष, पशु-पक्षी, स्थावर-जंगम, जड़-चेतन सभीमें भगवद्भावका प्रयास किया करते थे। जेलके बन्दी जीवनमें ग्रन्थावलोकनके लिये पर्याप्त समय मिलता था और उस समय श्रीमद्भगवद्गीताके साथ अन्य धार्मिक पुस्तकोंका भी पठन-पाठन होता था। राजनैतिक बन्दियोंमें जब विचार-गोष्ठियाँ हुआ करती थीं, तब बाबा आध्यात्मिक विषयोंपर भाषण दिया करते थे। जेलसे बाहर आनेके बाद कलकत्तेके विद्यार्थीजीवनमें

आध्यात्मिक ग्रन्थोंका स्वाध्याय बहुत अधिक होने लग गया। संन्यास ले चुकनेके बाद बाबा छः मासतक कलकत्तेमें अपने बड़े भाइयोंके पास रहे। यह अवधि अति गम्भीर अध्ययनमें व्यतीत हुई।

बाबाका हिन्दी, बंगला, संस्कृत तथा अँगरेजी भाषाओंपर समान अधिकार था, इससे उन्हें अनेक ग्रन्थोंके अवलोकन-अध्ययनका भरपूर अवसर मिला। हिन्दी मातृभाषा थी ही, गयाके विद्यार्थी जीवनमें बंगला एवं अँगरेजीका तथा कलकत्तेके विद्यार्थी जीवनमें संस्कृतका परिमार्जित ज्ञान बाबाको हो गया था। गया जिला-स्कूलमें पढ़ते समय बाबा स्कूलके हेडमास्टर श्रीविजयकृष्णजी सेनके घरपर ही एक पारिवारिक सदस्यके रूपमें रहते थे। श्रीसेन महाशयके बंगाली परिवारके मध्य रहनेसे बाबाको बंगला भाषाका अभ्यास सहज ही हो गया। गयाके स्कूली जीवनमें बाबाका अँगरेजी भाषापर इतना असाधारण अधिकार हो गया था कि बाबाके अँगरेजी भाषणको सुनकर गया जिलाका अँगरेज कलक्टर भी आश्चर्य करता था। बाबाने संस्कृतका अध्ययन कलकत्तेमें रहते समय अपने बड़े भाईसे किया। ब्राह्मण कुल एवं पुरोहिती वृत्तिके कारण परिवारमें संस्कृतका वातावरण था ही, फिर एक ओर बड़े भाईका कुशल अध्यापन और दूसरी ओर बाबाकी प्रखर ग्राहकता, इससे बाबा शीघ्र ही संस्कृत भाषामें निष्णात हो गये। इस प्रकार इन चार भाषाओंका विशद ज्ञान बाबाके लिये आध्यात्मिक-धार्मिक-दार्शनिक ग्रन्थोंके गम्भीर अध्ययन करनेमें बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ।

बाबाने श्रीमद्भगवद्गीताकी अनेक टीकाओं-व्याख्याओंका पठन-मनन-चिन्तन किया, किन्तु उनकी ज्ञान-सम्पन्न-बौद्धिकता तथा प्रतिभा-सम्पन्न-तार्किकताको प्रभावित एवं आकर्षित कर सका शांकर भाष्य ही। श्रीमद्भगवद्- गीताके शांकर भाष्यका अध्ययन करते-करते बाबा शांकर मतावलम्बी हो गये। भगवान् श्रीआदिशंकराचार्यजीने अपने अद्वैत तत्त्वका प्रतिपादन करनेके लिये श्रीमद्भगवद्गीताके अतिरिक्त ब्रह्मसूत्र तथा मुख्य उपनिषदोंके भी भाष्य लिखे हैं। इन भाष्योंके अध्ययनका परिणाम यह हुआ कि बाबाकी निष्ठा वेदान्त-दर्शनके प्रति दृढ़ हो गयी। भारतके छः आस्तिक दर्शनोंमेंसे एक वेदान्त दर्शन भी है। वेदान्त दर्शनके मर्मतक पहुँचनेके लिये बाबाने छः आस्तिक

दर्शनोंका विस्तृत रूपमें अध्ययन किया। वस्तुतः संन्यासोपरान्त छः मासका विद्यार्थी जीवन विशेष अध्ययनका काल रहा और इस अवधिमें श्रीमद्भगवद्गीता तथा उपनिषदोंके अतिरिक्त शांकर साहित्य, आध्यात्मिक ग्रन्थ तथा हिन्दू दर्शनोंका बाबाने विशद अध्ययन किया। अध्ययन जितना अधिक गहन होता गया, बाबाकी निष्ठा अद्वैत तत्त्वके प्रति उतनी ही अधिक गहरी होती चली गयी।

इसी निष्ठाको लेकर बाबाने अद्वैत तत्त्वकी साधनाके लिये नितान्त ऐकान्तिक जीवन अंगीकार किया। ऐसा लगता है कि पूर्व जन्ममें साधना लगभग पूर्ण हो चुकी थी। एक झीना-सा आवरण रह गया था। साधनाके आसनपर बैठते ही वह आवरण दूर हो गया। वेदान्त दर्शनका मूलाधार सिद्धान्त है 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म। नेह नानास्ति किञ्चन।' और इस तत्त्वके दिव्य सच्चिदानन्दमय प्रकाशसे बाबाके भीतर-बाहरका सारा जीवन आलोकित हो उठा।

शांकर मतके अनुसार परब्रह्म एक, अद्वैत, निर्विशेष और निर्गुण है। ब्रह्म सत्य है एवं जगत मिथ्या है। जीव ब्रह्मके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। साधन-चतुष्टयके द्वारा जब चित्तकी शुद्धि होती है, तब ब्रह्म-ज्ञान होता है। ब्रह्मात्म-बोध ही मुक्ति है। मुक्तात्मा ही व्यावहारिक क्षेत्रमें सभी प्राणियोंके प्रति ब्रह्म-दृष्टि रख पाता है। इस ब्रह्म-दृष्टिकी सिद्धिके लिये बाबाको साधनाके आसनपर लम्बी अवधिके लिये बैठना नहीं पड़ा। साधनामें संलग्न होनेके कुछ दिन बाद ही बाबाके हृदयमें ब्रह्म-तत्त्व उद्भासित हो उठा। स्वरूपावबोध होते ही बाबा ब्रह्म-भावमें प्रतिष्ठित हो गये। अखण्ड ब्रह्मानुभूतिमें निमग्न बाबाके लिये जगतका अस्तित्व समाप्त हो गया। बाबाके व्यक्तित्वमें अब रह गयी थी 'अहं ब्रह्मास्मि'की परमानन्दमयी अनुभूति। अद्वैत तत्त्वकी साधना बाबाने बहुत थोड़े समयके लिये की। एक ओर साधनाकी अत्यल्प अवधि और दूसरी ओर साधनामें महान सफलता, यह तथ्य ही संकेत करता है कि पूर्व जन्मकी साधनाकी पूर्णतामें कहने भरके लिये किञ्चित् न्यूनता रह गयी थी और उसे पूर्णता प्रदान करनेके लिये वर्तमान साधना एक निमित्त मात्र थी। इतना ही नहीं, इस छोटी आयुमें इतना विशद अध्ययन और ऐसी महान सिद्धि, इससे भी एक संकेत मिलता है कि बाबाके जीवनसे कोई विशेष महान कार्य होनेवाला है।

इन दिनों बाबाके परमानन्दकी सीमा नहीं थी। श्रीमद्भगवद्गीतामें आया है—

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्।।
(श्रीगीता— १३/१७)

(वह परब्रह्म ज्योतियोंका भी ज्योति एवं मायासे अत्यन्त परे कहा जाता है। वह बोधस्वरूप, जाननेके योग्य एवं तत्त्वज्ञानसे प्राप्त करने योग्य है और सबके हृदयमें विशेष रूपसे स्थित है।)

योऽन्तः सुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति।।
(श्रीगीता— ५/२४)

(जो पुरुष आत्मामें ही सुखी है, आत्मामें ही रमण करता है तथा जो आत्मामें ही ज्ञानवान है, वह सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्माके साथ एकीभावको प्राप्त, 'मैं ही ब्रह्म हूँ' इस प्रकार अनुभव करनेवाला ज्ञानयोगी शान्त ब्रह्मको प्राप्त होता है।)

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम्।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते।।
(श्रीगीता— ५/२१)

(बाहरके विषयोंमें आसक्तिरहित अन्तःकरणवाला साधक आत्मामें स्थित जो ध्यानजनित सात्त्विक आनन्द है, उसको प्राप्त होता है, तदनन्तर वह सच्चिदानन्दघन परब्रह्मके ध्यानरूप योगमें अभिन्न भावसे स्थित पुरुष अक्षय आनन्दका अनुभव करता है।)

शास्त्रोंकी मान्यताके अनुसार, 'मैं ब्रह्म हूँ' इस प्रकारके अनुभवसे सच्चिदानन्दघन ब्रह्ममें एकीभावसे स्थित प्रसन्न चित्तवाला संत सम्पूर्ण जागतिक द्वन्द्वोंसे अतीत हो जाता है। उसे जगत स्वप्नवत् प्रतीत होता है। उसके अन्तःकरणमें अहंता-ममता, राग-द्वेष, हर्ष-शोक आदि विकार नहीं रह जाते। बाबाके जीवनको देखकर यही कहना चाहिये कि ये शास्त्रीय मान्यताएँ पूर्णतः यथार्थ ही हैं।

जिस प्रकार अनुकूल परिस्थितिमें न्यूनताका बोध नहीं हो पाता, उसी प्रकार प्रतिकूल परिस्थितिमें भी न्यूनताका बोध नहीं हो, तभी उस

सिद्ध स्थितिको ब्राह्मी स्थिति कहना चाहिये, अतः वास्तविकताका परिज्ञान प्राप्त करनेके लिये बाबाने प्रतिकूल परिस्थितिका स्वेच्छासे वरण किया। बाबाके मनमें आया कि कुष्ठ रोगसे ग्रस्त कोढ़ी समाजमें अत्यधिक उपेक्षणीय होते हैं। इसमें भी जिन्हें गलित कुष्ठ होता है, उनसे कोई सम्पर्क रखना नहीं चाहता। एक प्रकारसे वे घृणाके पात्र बन जाते हैं। लोगों द्वारा तिरस्कृत इन उपेक्षणीय, अस्पृश्य कोढ़ियोंके बीच रहनेपर भी हृदयस्थ परमानन्दमें न्यूनता न आये और जगतमें सभी प्राणियोंके प्रति दृष्टि सम रहे, तब साधनामें प्राप्त सफलताको विश्वसनीय कहा जा सकता है।

आत्म-परीक्षणके लिये बाबाने कोढ़ियोंके मध्य बैठनेका निश्चय किया और बैठना आरम्भ किया कलकत्तेके कोढ़ियोंके साथ। बाबा हरिद्वारसे वापस कलकत्ता कब आये, इसके बारेमें निश्चयात्मक रूपसे कुछ कह सकना कठिन है। यही मानना चाहिये कि साधनामें सिद्धिकी उपलब्धिके उपरान्त बाबा कलकत्ते चले आये अपने प्रदत्त वचनका पालन करनेके लिये। बाबाने घरवालोंको वचन दिया था कि समय-समयपर मेरेसे सम्बान्धित सूचना आप लोगोंको मिलती रहेगी।

समाजकी दयापर निर्भर रहनेवाले न जाने कितने कोढ़ी कलकत्तेमें गंगाजीको जानेवाले मार्गपर पड़े रहते हैं। गंगास्नानके लिये जानेवाले धर्मात्मा एक-दो पैसा फुटपाथपर पड़े हुए कोढ़ियोंके सामने डाल देते हैं, वही उनके जीवनका आधार होता है। बाबा उन्हीं कोढ़ियोंके बीच बैठने लगे। बाबा प्रातःकाल आकर उनके पास बैठ जाते और संध्याके समय उठते। धर्मात्मा लोग जैसे अन्य कोढ़ियोंके सामने पैसा डालते, वैसे ही बाबाके सामने भी। बाबाको तो द्रव्य-स्पर्श करना नहीं था, अतः बाबा जब संध्याकालमें उठते तो पासवाले कोढ़ीको पैसा उठा लेनेके लिये कह देते। इससे वह कोढ़ी बड़ा प्रसन्न होता। प्रत्येक दिन बाबा ऐसा ही करते। इससे अब हर कोढ़ी यही चाहता कि बाबा मेरे पास बैठें, जिससे इनको मिला हुआ सारा पैसा मुझे मिल जाये, पर बाबा बैठते उस गलित कोढ़ीके पास, जिसकी शारीरिक दशा बड़ी शोचनीय होती।

कोढ़ियोंके मध्य बाबा एक-दो सप्ताह बैठे होंगे और बैठनेका प्रयोजन था आत्म-परीक्षण करना कि मेरे अन्दर विषमताका अभाव हुआ अथवा नहीं। सुख-दुःख, मम-पर, प्रिय-अप्रिय, लाभ-हानि यही तो

द्वन्द्वात्मक जगतका स्वरूप है और यथार्थ ब्रह्म-वेत्ता संन्यासी वही हैं, जिसकी दृष्टि दोनों सीमाओंके प्रति सम है और जिसका मन सभी परिस्थितियोंमें शान्त एवं प्रसन्न है। कोढ़ियोंके बीच रहनेवाले बाबाके ब्रह्मानन्दका सागर वहाँ भी हिलोरें लेता रहता था।

* * * * *

गीता-प्रवचन एवं हठयोग

अब वचन-पालनके रूपमें अपने बड़े भाइयोंको स्वयंसे सम्बन्धित सूचना देनेकी बात बाबाके मनमें स्फुरित हुई और संयोगकी बात, बाबाके ही स्वजन श्रीभवानीशंकरजी मिश्रकी बाबासे भेंट हो गयी। श्रीभवानीशंकरजीमें देशसेवाका भाव बड़ा प्रबल था और क्रान्तिकारियोंसे उनका सम्पर्क था। श्रीभवानीशंकरजी अपने क्रान्तिकारी मित्रोंके परिवारोंकी दयनीय स्थितिसे बड़े व्यथित थे। कोई क्रान्तिकारी फाँसीके तख्तेपर चढ़ा दिया गया था, कोई पिस्तौलके निशानेका शिकार हो चुका था, कोई जेलकी चार दीवारके भीतर यातनाएँ भोग रहा था, कोई गिरफ्तारीके वारंटके कारण फरार था, कोई सरकारी कोपका भाजन होनेके कारण कुछ कमा नहीं पा रहा था और कोई देशसेवाके उत्साहमें घर-गृहस्थीसे सम्बन्ध विच्छिन्न करके अपनी योजनानुसार सक्रिय था। रोटी-कपड़ेकी गम्भीर समस्याके कारण इन लोगोंके परिवारोंकी दशा बड़ी शोचनीय थी। इन सारी विपन्नताओंका नग्न चित्र श्रीभवानीशंकरजीने बाबाके सामने रखा। कुछ तो उन्होंने बतलाया और कुछकी जानकारी बाबाको स्वयं थी। बाबाका करुणार्द्र हृदय सुन-सुन करके द्रवित हो उठा।

अब प्रश्न यह था कि इन संत्रस्त परिवारोंकी सहायता किस प्रकार की जाये। इन्हें सहायता प्रदान करनेके लिये धन कहाँसे मिले? श्रीभवानीशंकरजीने बाबाको सुझाव दिया— देखिये स्वामीजी! भगवानने आपको प्रतिभा और योग्यता दे रखी है। आपने श्रीगीताजीका गहन अध्ययन किया है। आपका शास्त्र-ज्ञान विशद है, आपके प्रवचनकी शैली सुन्दर है, विषयका प्रतिपादन रोचक होता है और आपके कण्ठका स्वर भी मधुर है। यदि आप ग्राम-ग्राम भ्रमण करते हुए श्रीगीताजीपर कथा कहें तो बात सरलतासे बन सकती है। कथामें जो चढ़ावा आयेगा, उससे

विपत्ति-ग्रस्त परिवारोंकी सहायता की जा सकती है।

अध्यात्म-चर्चाको बेचना और कथा कह करके द्रव्य संग्रह करना, यह कल्पना भी बाबाके लिये असह्य थी। बाबाने इस कार्यके लिये स्पष्ट रूपसे मना कर दिया। बाबा राजी नहीं हुए। वे सुझावके रूपमें बार-बार अनुरोध करते रहे। एकबार बाबाका करुणार्द्र हृदय विगलित हो उठा और उनका आग्रह देखकर बाबाने अपनी सहमति प्रदान कर दी, परंतु इसीके साथ बाबाने यह भी कहा— पैसेका स्पर्श तो मैं करूँगा ही नहीं।

श्रीभवानीशंकरजीने कहा— आप पैसेका स्पर्श कभी न करें। चढ़ावेको मैं इकट्ठा कर लिया करूँगा।

श्रीभवानीशंकरजीके साथ ग्राम-ग्राम यात्रा करते हुए बाबाने श्रीमद्भगवद्गीतापर कथा कहनी आरम्भ कर दी। कई ग्रामोंमें बाबाका श्रीमद्भगवद्गीतापर प्रवचन हुआ। बाबा तो ग्रामके बाहर किसी मन्दिर अथवा एकान्त-शान्त स्थानपर ठहरा करते थे, केवल कथा कहनेके लिये ग्रामके भीतर जाया करते थे। बाबाकी भिक्षाके लिये श्रीभवानीशंकरजी ग्रामसे कच्चा अन्न माँगकर ले आते और जहाँ ठहरे होते, वहीं रन्धन करते। बाबाको भिक्षा करा करके वे स्वयं भोजन करते।

सबसे पहली कथा हुई पहाड़पुर ग्राममें, जो कलकत्ता जानेवाले मार्गमें बंगाल-बिहारकी सीमापर है। बाबाकी वक्तृत्व-शक्ति अद्भुत थी ही। कथामें लोगोंकी बड़ी भीड़ होती थी। श्रोताओंके विशाल समूहको देखकर श्रीभवानीशंकरजी बड़े प्रसन्न हुए कि चढ़ावेके रूपमें पुष्कल धन ... गा। बाबाके प्रवचनसे प्रभावित होकर ग्रामवाले चढ़ावेकी बात ... भी लगे थे, पर बाबाने अपने प्रवचनमें कहा— मैं न तो पैसेका स्पर्श करता हूँ और न इस चढ़ावेसे मेरा कोई सम्बन्ध है। कथाके अन्तमें जो चढ़ावा आयेगा, उसे मेरे साथ रहनेवाले पण्डित श्रीभवानीशंकरजी मिश्र ले लेंगे। मैं इतना अवश्य कह सकता हूँ कि चढ़ावेसे इकट्ठे होनेवाले धनका उपयोग ये निश्चय ही श्रेष्ठ सेवा-कार्यमें करेंगे।

कथासे प्रभावित श्रोतागणमें चढ़ावा देनेका उत्साह तो बहुत था, परंतु बाबाकी स्पष्टवादितासे वह उत्साह मन्द पड़ गया। फिर चढ़ावा बहुत कम रूपमें होता। चढ़ावा देखकर श्रीभवानीशंकरजीको बड़ी निराशा हुई। एक ग्राममें कथा केवल कुछ दिन होती। फिर बाबा और

श्रीभवानीशंकरजी किसी अन्य ग्रामकी ओर बढ़ जाते। इस प्रकार कथाका क्रम चलता रहा। यह कथा मुख्यतः उन ग्रामोंमें हुई, जो पटनासे कलकत्तातक श्रीगंगाजीके तटवर्ती थे। श्रीमद्भगवद्-गीतापर जो प्रवचन स्थान-स्थानपर बाबा द्वारा हुए, उससे श्रीभवानीशंकरजीके उद्देश्यकी सिद्धि नहीं हो पायी, परंतु एक लाभ उन्हें हुआ। श्रीगीताजीकी सुन्दर कथा और बाबाकी आदर्श जीवनचर्यासे श्रीभवानीशंकरजीकी जीवन-धारामें परिवर्तन अवश्य आया।

बाबा ग्राम-ग्राम भ्रमण करते हुए प्रवचन दिया करते थे। एक घटनासे उनकी ख्याति बहुत बढ़ गयी। एकबार बाबा ग्रामके बाहर एक मन्दिरमें ठहरे हुए थे। रातके समय एक स्त्रीने पैर पकड़ लिये और रो-रो करके कहने लगी— आप मेरे भाईको बचा लीजिये। उसे हैजा हो गया है। आप उसको जीवनका दान दे दीजिये।

संन्यास ग्रहण करनेके बाद बाबाका अति कठोर नियम था नारी-स्पर्शसे सर्वथा दूर रहना। बाबाने पैर छुड़वानेकी बड़ी चेष्टा की, पर उसने छोड़ा ही नहीं। मन्दिरके एक-दो व्यक्तियोंने उसे समझानेका प्रयास किया, पर वह तो सुनती ही नहीं थी। वह तो लगातार रो-रो करके अपने भाईके जीवनकी रक्षाके लिये गुहार कर रही थी। जब उसने पैर नहीं छोड़ा तो बाबाने सोचा कि रौद्र रूप धारण किये बिना बात बनेगी नहीं। बाबाने रोष भरे स्वरमें उससे कहा— आज तू अपने भाईके लिये इतना रो रही है और कल यदि तेरा ही प्राणान्त हो जाये तो?

बाबाकी क्षुब्धता देखकर वह स्त्री पीछे हट गयी। संयोगकी बात, उस स्त्रीकी अगले दिन हैजेसे मृत्यु हो गयी। इससे लोगोंपर बड़ा प्रभाव पड़ा। लोग आपसमें कहने लगे कि स्वामीजी तो भविष्यके गर्भकी बात भी बोल जाते हैं। बाबाने तो सहज ढंगसे एक सनातन दार्शनिक सम्भावनाको कहा था, जिससे वह स्त्री स्वयंको संयमित कर सके, पर यह तो मात्र संयोग था कि वह उक्ति सत्य हो गयी। प्रवचनकी रोचक शैली, पैसा नहीं लेनेके कारण निस्स्पृह वृत्ति, कठोर संन्यासी जीवन आदिके कारण बाबाकी ख्याति तो थी ही, इस भविष्यवाणीकी सत्यतासे बाबाकी प्रसिद्धि बहुत अधिक हो गयी।

जब बाबा स्थान-स्थानपर श्रीमद्भगवद्गीतापर प्रवचन दिया करते

थे, तबकी बात है। एक बार बसमें बैठकर वे जा रहे थे। १८ मीलकी यात्रा तय करनी थी। ड्राइवर अच्छे स्वभावका व्यक्ति था, अतः उसने संन्यासी देखकर बाबाको आगेवाली सीटपर बैठा लिया। बस जब चलनेको हुई तो एक पुलिस अधिकारी आया और अगली सीटपर बाबाके बगलमें बैठ गया। वह जमाना अँगरेजी शासनका था और पुलिसके सिपाही या अफसरका रोब इतना अधिक होता था कि कोई उनके सामने कुछ बोलनेका साहस नहीं कर सकता था। उसी रोबके दबावमें ड्राइवरने पुलिस अधिकारीको भी आगेवाली सीटपर बैठा लिया था।

जब बस चल पड़ी तो वह पुलिस अधिकारी बाबाको कुहनी मारने लगा। संन्यासी होनेके कारण बाबा सब सह रहे थे तथा जहाँतक सम्भव था, वे ड्राइवरकी ओर सरक भी गये थे, जिससे पुलिस अधिकारीको बैठनेके लिये पर्याप्त स्थान मिल जाये। सुविधापूर्वक बैठनेके लिये स्थान मिल जानेके बाद भी वह पुलिस अधिकारी अपने अहंकारमें भला क्यों चुप बैठनेवाला था। वह तो बाबाको रह-रह करके कुहनी मारता रहता था। पिछली सीटपर बैठे हुए यात्रियोंने देखा कि यह तो अनुचित हो रहा है, पर किसीमें विरोध करनेका साहस नहीं था। वह पुलिस अधिकारी बाबाको अधिकाधिक तंग ही करता रहा। बाबा अधीरतापूर्वक प्रतीक्षा करने लगे कि यह यात्रा कब पूर्ण होगी।

आगे चलकर बस एक स्थानपर रुकी। वह पुलिस अधिकारी जलपान करनेके लिये बससे नीचे उतरा। अब संयोगकी बात, बसमें पुनः चढ़कर उस पुलिस अधिकारीने जब फाटक बन्द किया तो फाटकमें उसकी अँगुली दब गयी। दब क्या गयी, एकदम चिथ गयी। चिथते ही उस पुलिस अधिकारीने जोरसे चीख मारी। सहायता करनेके लिये और लोग बढ़ें, इसके पहले ही बाबा चटसे आगे आये और तुरंत फाटक खोलकर उसकी अँगुलीको बाहर निकाला। अँगुलीका हाल बड़ा बुरा था। बाबाने तत्काल अपने गेरुए वस्त्रका छोर फाड़ा और कमण्डलुके जलसे उस छोरको भिगोकर उसकी अँगुलीपर बाँध दिया। फिर बाबाने कहा—अगले ग्राममें डिस्ट्रिक्ट बोर्डकी डिस्पेंसरी है, वहाँ आप ठीकसे पट्टी बँधवा लीजियेगा।

बसके सह-यात्री उस अधिकारीकी करतूतको पहले देख चुके थे और फिर वे आश्चर्य कर रहे थे कि एक ओर तो उस पुलिस अधिकारीका कैसा निन्दनीय आचरण था और दूसरी ओर इस युवक संन्यासीका कैसा साधु व्यवहार रहा। फिर तो उस पुलिस अधिकारीमें भी परिवर्तन आया। बाबाने तो वही किया, जो यति-धर्मसे अनुमोदित था।

अपनी एकान्त-प्रियताके कारण कभी-कभी बाबाको विकट परिस्थितिका भी सामना करना पड़ा। बाबा सदा ही गाँवके बाहर निवास किया करते थे और प्रातःकाल अकेले ही घने जंगलमें शौचके लिये जाया करते थे। ग्रामवासियोंने सावधान करते हुए कहा— जंगलमें भालू-तेंदुए-बाघ आदि हिंसक पशु रहते हैं, अतः अकेले नहीं जाना चाहिये। हमलोग भी जाते हैं तो समुदायमें ढोल पीटते हुए जाया करते हैं।

लोगोंद्वारा अनुरोध किये जानेके बाद भी बाबा अकेले ही वनमें जाया करते थे। जन-सम्पर्क एवं जगच्चर्चा बाबाको रुचिकर नहीं थी। एक बारकी बात, जिस ग्राममें बाबा गये थे, उसके समीपके जंगलमें एक झरना था। वनकी निर्जनता और जलका प्रवाह, यह बाबाको स्वभावतः प्रिय रहा। अपने प्रातः कालीन शौचादि कार्यसे निवृत्त होनेके लिये बाबा वहीं जाया करते थे। बाबा शौचके लिये बैठे ही होंगे कि बाघके शरीरकी तीव्र दुर्गन्ध आने लगी। बाबाको उसी समय अनुमान हो गया कि आस-पास कोई बाघ है। बाबाके मनमें तुरन्त यही आया— बाघ इस शरीरको अपना भोजन बनाना चाहता है तो बना ले। मैं शरीर तो हूँ नहीं। जो भवितव्य है, मैं उसमें व्यवधान क्यों डालूँ? शरीरको रहना हो तो रहे और जाना हो तो जाये। दोनोंके प्रति मेरी दृष्टि सम है।

उस विकट परिस्थितिमें भी 'ब्रह्म सत्य है, जगत मिथ्या है और जीव ब्रह्म है', इस शांकर सिद्धान्तसे बाबाका मन एकाकार हो गया। यह अद्वैत तत्त्व बाबाके चित्त रूपी स्वच्छ दर्पणमें पूर्णतः प्रतिफलित हो उठा। इधर बाबा अपने तत्त्व-चिन्तनमें तल्लीन हो गये और उधर वह तीव्र दुर्गन्ध क्रमशः कम होने लग गयी। क्रमशः क्षीण होती हुई दुर्गन्धिसे बाबाने अनुमान लगा लिया कि बाघ चला जा चुका है। बाघसे बाबाका आमनासामना नहीं हुआ, किन्तु शरीरके अस्तित्वकी दृष्टिसे एक बार भयावह परिस्थिति बाबाके सामने उपस्थित हो ही गयी थी। वास्तविक

आत्म-परीक्षणके सच्चे अवसर होते हैं जीवनके विषम क्षण ही। वस्तुतः प्रतिकूलताके मध्य ही सही-सही परिज्ञान हो पाता है कि जीवनका संस्कार और उसकी संरचना स्वीकृत सिद्धान्तोंके अनुसार हुई है अथवा नहीं। इस अति विकट परिस्थितिमें भी बाबा अपनी आत्म-स्थितिके स्वरूपसे अच्युत थे।

ग्राम-ग्राम भ्रमण करते समय बाबा ब्रह्मचिन्तन एवं ग्रन्थावलोकन तो करते ही थे, इसीके साथ उनका योगाभ्यास भी चलता रहता था। हठयोगकी साधना करते समय एक बार ऐसी चूक हो गयी कि बाबाके प्राणोंपर बन गयी। स्थिति ऐसी गम्भीर हो गयी मानो कुछ ही क्षणोंमें शरीरान्त हो जायेगा। किसीको कुछ भी सूझ नहीं रहा था कि क्या उपचार किया जाये। यह कष्ट किसी व्याधिका परिणाम तो था नहीं। थोड़ी देर बाद वह कष्ट स्वतः ही कम हो गया। वह कम हुआ था, समाप्त नहीं।

बाबाके साथ श्रीभवानीशंकरजी रहते ही थे। उन्होंने बाबासे बिना पूछे ही चुपचाप बाबाके बड़े भाई श्रीतारादत्तजीको पत्र द्वारा सूचना दे दी। घरसे श्रीतारादत्तजी बाबाके पास पहुँच गये और उन्होंने अपने गाँव चलनेके लिये आग्रह किया। गाँवपर जानेके लिये बाबा तनिक भी राजी नहीं हुए। बाबाने कहा— यदि जाना ही है तो मैं कलकत्ते जाना चाहूँगा।

श्रीतारादत्तजीने रेलसे यात्रा करनेके लिये कलकत्तेकी टिकट कटवा दी। बाबा पैसेंजर ट्रेनसे कलकत्ते गये। श्रीतारादत्तजीने कलकत्ते सूचना तार द्वारा भिजवा दी थी, अतः कई स्वजन स्टेशनपर आ गये थे।

उन दिनों कलकत्तेमें सुप्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक थे श्रीब्रह्मस्वरूपजी श्रोत्रिय। बाबा उनके चिकित्सा-केन्द्रपर गये। भवनके द्वारपर दरबानने बाबाका बड़ा अपमान किया यह समझकर कि यह भिखारी संन्यासी मालिकको व्यर्थ ही तंग करनेके लिये आया है। जब उससे यह कहा गया कि एक रोगीके रूपमें चिकित्सा करवानेके लिये आये हैं, तब उसने प्रवेश करने दिया। बाबा भवनके अन्दर गये। एक संन्यासीको आया हुआ देखकर श्रीब्रह्मस्वरूपजी तुरंत अपनी कुर्सीपरसे उठ खड़े हुए और हाथ जोड़कर विनम्र भावसे उन्होंने बाबाको प्रणाम किया। बाबाने उनको बतलाया— हठयोगकी एक क्रियामें किंचित् चूक हो

जानेसे पीठकी एक नाड़ीमें वात-प्रवेश हो गया है। यदि इसका उपचार सम्भव हो तो आप उचित परामर्श दें।

श्रीब्रह्मस्वरूपजीने पूर्ण आश्वासन दिया तथा उन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा-विधिसे उपचार आरम्भ कर दिया। उन्होंने न तो चिकित्सा-शुल्क लिया और न उपचार-व्यय। उन्होंने बड़े सम्मानपूर्वक बाबाकी चिकित्सा की। जितने विनम्र और उदार श्रीब्रह्मस्वरूपजी थे, वैसी ही सेवापरायणा और साधुहृदया उनकी धर्मपत्नी थी। उपवासके उपरान्त रसाहारकी सारी व्यवस्था उनकी धर्मपत्नी ही करती थी। पहले ही दिन उसने कर-बद्ध होकर बाबासे प्रार्थना की थी— स्वामीजी! घरपर भिक्षा किये बिना जाने नहीं दूँगी।

बाबाकी प्राकृतिक चिकित्सा लगभग १५-१६ दिनोंतक चली। इससे बाबाको लाभ हुआ। चिकित्साका क्रम पूर्ण हो जानेके बाद भी बाबा उनके पास आते रहे। बाबा प्रतिदिन जाते तथा प्राकृतिक चिकित्साकी प्रकियाका व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करते रहते। बाबाके अद्भुत पाण्डित्य तथा सच्चे जीवनसे श्रीब्रह्मस्वरूपजी भी कम प्रभावित नहीं थे। परस्परका यह स्नेह-सम्बन्ध भविष्यमें भी बना रहा।

इन्हीं दिनों बाबाका एक ऐसे साधुसे सम्पर्क हुआ, जो हमेशा नंगा रहता था, प्रायः पागलकी-सी चेष्टा करता। हाथ इस ढंगसे उठाता, मानो किसीको मार देगा, पर कभी किसीको मारा नहीं। वे गंदी नालीकी ओर अपना मुँह ले जाते तथा ऐसे लपकते, मानो कुछ खानेके लिये लपक रहे हों, पर कभी कुछ लेते नहीं थे।

बाबा उन्हें संन्यास लेनेके पूर्व भी ऐसे ही देखते और संन्यास लेनेके बाद भी ऐसे ही देखा। एक दिन बाबा उनके पीछे हो लिये। उन्होंने उसी प्रकार बाबाको मारनेके लिये हाथ उठाया। इस पर भी बाबा भय-शून्य खड़े रहे। उनकी दृष्टि नीचे थी। कुछ देर बाद उन्होंने अपनी नजर उठाकर, दृष्टिके माध्यमसे अपने अन्तरका सारा प्यार उड़ेलते हुए स्नेहभरे स्वरमें दो ही शब्द कहे कि 'अब जावो'। बाबा विचारने लगे— कहा नहीं जा सकता कि किस रूपमें कौन है।

* * * * *

पुलिस विभाग के गुप्तचर द्वारा नजर

संन्यास ले चुकनेके बाद भी पुलिसने बाबाका पीछा नहीं छोड़ा। कलकत्तेके पुलिस विभागने पहचान लिया और पता लगा लिया कि संन्यासी वेषमें यह युवक क्रान्तिकारी चक्रधर मिश्र ही है। उनको सन्देह था कि संन्यासी जीवन स्वीकार करना भी इनके षड्यन्त्रका एक अंग हो सकता है। फिर पुलिसका एक गुप्तचर ही संन्यासी वेषमें बाबाके पीछे लगा रहा। उन दिनों बाबा प्रायः संस्कृत भाषामें ही बोला करते थे। बाबाको क्या पता कि वह एक गुप्तचर है। वह संन्यासी वेषधारी बाबाके ही साथ रहता। बाबा उस संन्यासी गुप्तचरको अपने साथ-साथ भिक्षा कराने लगे। वह कई दिनोंतक बाबाके साथ रहा। उसकी आध्यात्मिक उन्नति नहीं देखकर बाबाको बड़ा विस्मय होता था, अतः बाबाने उससे कहा— महाराज! मेरे साथ रहनेसे आपकी भिक्षाकी व्यवस्था तो हो जाती है, पर आपकी पारमार्थिक उन्नतिके लक्षण दिखलायी नहीं देते। मेरे जैसे अति साधारण व्यक्तिके साथ रह करके आप अपना समय क्यों नष्ट करते हैं? आपको किसी श्रेष्ठ संतका आश्रय ग्रहण करना चाहिये।

उस संन्यासी गुप्तचरने कुछ उत्तर नहीं दिया। एक दिन बाबाने उनको किसी दूसरे स्थानपर सादे नागरिक वेषमें देखा। बाबाने उनको पहचान लिया और बँगला भाषामें पूछा— महाशय! आज यह नागरिक वेष कैसे धारण कर लिया?

वह संन्यासी गुप्तचर बाबाद्वारा प्रश्न किये जानेपर झेंप गया। उसने जान लिया कि आज मेरी बात खुल गयी और बाबाने भी जान लिया कि यह तो संन्यासी वेषमें गुप्तचर था। फिर वे कभी बाबाके पास नहीं आये। इसके बाद पुलिसने भी बाबाका पीछा करना छोड़ दिया। बाबाकी बातचीतको, उनसे मिलनेवालोंको और उनके कार्यको लगातार देखते रहनेके बाद भी पुलिस विभागको आशंका करनेके लिये कोई छिद्र नहीं मिला। सतत निरीक्षण करते-करते पुलिसको यह विश्वासको हो गया कि बाबाका संन्यासी जीवन किसी षड्यन्त्रका अंग नहीं, अपितु विशुद्ध आध्यात्मिक जीवन है।

* * * * *

स्वामी श्रीरामसुखदासजी से निकटता

बाबा नियमतः प्रतिदिन गंगास्नानके लिये जाया करते थे। साधक, संत अथवा सिद्ध, सभीके लिये भगवती गंगा नित्य वन्दनीय हैं। भगवती गंगाके शान्त प्रवाहका पावन दर्शन, निर्मल नीरका सभक्ति सेवन एवं एकान्त कूलपर स्थिर आसन साधकों-संतों-सिद्धोंके लिये सदैव ही उपयोगी एवं उद्दीपक रहा है। गंगा-तीरके पुनीत वातावरणमें ब्रह्म-चिन्तन, भगवदर्चन, साधन-भजन आदि सहज सम्भव बन जाते हैं। जब बाबा गंगा-स्नानके लिये जाते थे तो किसी अचिन्त्य विधानसे सदा ही ऐसे श्रेष्ठ संत अथवा साधु, विचारक अथवा सात्त्विक पण्डित अथवा विरक्त संन्यासी मिल जाया करते थे, जिनसे पर्याप्त समयतक सच्चर्चा हुआ करती थी। चर्चाके विषय मुख्यतः रहते थे श्रीमद्भगवद्गीताके प्रधान प्रतिपाद्य सिद्धान्त, त्रिगुणातीत संतजीवन, सिद्ध महापुरुषकी जीवनचर्या, श्रीशंकराचार्यजीका अद्वैत तत्त्व।

इसी अवधिमें बाबाको गोविन्द भवनका परिचय मिला, जिसके द्वारा गोरखपुरके गीताप्रेसका और गीताप्रेससे प्रकाशित होनेवाली धार्मिक पुस्तकोंका एवं 'कल्याण' पत्रिकाका संचालन और नियन्त्रण होता था। उन दिनों कलकत्तेमें गोविन्द भवन अध्यात्मचर्चाका एक प्रमुख केन्द्र था। गोविन्द भवनमें सत्संगकी व्यवस्था सदा ही रहती थी, पर रविवारको विशेष रूपसे। पूज्य स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजके प्रवचनको सुननेके लिये न जाने कहाँ-कहाँसे श्रोतागण गोविन्द भवन आया करते थे। श्रीस्वामीजी महाराजका प्रवचन मुख्यतः श्रीमद्भगवद्गीतापर होता था। श्रीगीताजी बाबाका अत्यन्त प्रिय ग्रन्थ रहा, अतः श्रीगीताजीपर श्रीस्वामीजीके विचारोंको सुननेके लिये बाबा भी गोविन्द भवनमें श्रोताओंके मध्य पीछे बैठ गये। मंचपर बैठे हुए श्रीस्वामीजी महाराजकी दृष्टि बाबापर पड़ी। संन्यासी वेषको उचित सम्मान तथा संन्यासीको बैठनेके लिये उचित स्थान देना चाहिये, इसी भावनासे श्रीस्वामीजीने बाबाको आग्रहपूर्वक आगे बैठाया। यह प्रथम परिचय था, जो शीघ्र ही घनिष्ठ रूपमें परिणत हो गया।

परस्परमें भगवत्तत्त्वपर विचार-विनिमय हुआ करता था। परस्परके विचारोंका आदान-प्रदान संस्कृत भाषामें ही होता। बाबाकी प्रतिभासे स्वामीजी प्रभावित हुए। स्वामीजीने पूज्य श्रीसेठजी (पूज्य श्रीजयदयालजी गोयन्दका) की 'तत्त्व-चिन्तामणि' नामक पुस्तकके प्रथम दो भाग पढ़नेके लिये बाबाको दिये। बाबाने पुस्तकोंको पढ़कर शीघ्र ही वापस कर दिया।

एक दिन स्वामीजी श्रीसेठजीके कुछ पत्र एक साधक श्रीचम्पालालजी बिन्नानीको सुना रहे थे। बाबा भी वहीं बैठे-बैठे पत्रको सुन रहे थे। स्वामीजीने कई पत्र पढ़कर सुनाये। कई पत्रोंके बीच इस प्रकारका भी पत्र आया, जिसे सुनकर बाबाको यह लगा कि ऐसा पत्र वही लिख सकता है, जिसे 'स्वरूपानुभव' हो गया हो। स्वरूपानुभूतिके बिना वैसा पत्र लिखा ही नहीं जा सकता। बाबाने स्वामीजीसे पूछा— यह पत्र किसने लिखा है?

स्वामीजीने कहा— यह श्रीसेठजीका पत्र है।

बाबा— श्रीसेठजी कहाँ रहते हैं?

स्वामीजी— वे तो बाँकुड़ा रहते हैं।

बाबा— यह बाँकुड़ा कहाँ है?

स्वामीजी— बंगालका ही एक नगर है। यहींपर श्रीसेठजीका सारा व्यापार है।

बाबा— मैं उनसे मिलना चाहता हूँ।

स्वामीजी— आपके बाँकुड़ा जानेकी सारी व्यवस्था करवा दी जायेगी। आप कब जाना चाहते हैं?

बाबा— मैं तो आज ही जाना चाहता हूँ। जब मिलनेकी इच्छा जाग गयी, तब फिर विलम्ब क्यों किया जाय?

बाबाके इस उल्लास भरे उत्तरको सुनकर स्वामीजीके नयनोंमें उत्फुल्लता छा गयी। स्वामीजीको विश्वास था कि इन सुयोग्य युवक संन्यासी श्रीचक्रधरजीसे मिलकर श्रीसेठजीको बड़ी प्रसन्नता होगी। बाबाको बाँकुड़ा भेजनेकी दृष्टिसे स्वामीजीका चिन्तन सक्रिय हो उठा।

* * * * *

श्रीसेठजी से बाँकुड़ा में मिलन एवं विचार-विनिमय

स्वामीजी श्रीसेठजीके परम निज जन रहे हैं। स्वामीजीको यह देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि बाबा जैसे प्रतिभा-सम्पन्न युवक संन्यासीके मनमें श्रीसेठजीके प्रति आदरका भाव जाग उठा है। स्वामीजीने रेलकी टिकट कटवा कर दे दी और बाँकुड़ा तार करवा दिया कि एक युवक संन्यासी आपके दर्शनार्थ आ रहे हैं, जो बड़े योग्य हैं। तार यथा-समय बाँकुड़ा पहुँच गया। श्रीसेठजीके आदेशानुसार श्रीघनश्यामदासजी जालान, जो गीताप्रसके आजीवन प्रकाशक और मुद्रक रहे हैं, वे ही द्वारपर युवक संन्यासीके आगमनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। बाँकुड़ा स्टेशनसे उतरकर बाबा लोगोंको पूछते-पूछते श्रीसेठजीके घर पहुँचे। द्वारपर श्रीघनश्यामदासजी जालान थे ही। बाबाके पहुँचते ही उन्होंने पूछा– क्या आप श्रीसेठजीसे मिलनेके लिये आये हैं?

बाबाने उनकी जिज्ञासाका अनुमोदन किया। फिर श्रीघनश्यामदासजी जालानने कहा– आप यहीं बैठिये, मैं अभी पूछकर आता हूँ।

बाबा वहीं बरामदेमें अपना कम्बल और कमण्डलु रखकर बैठ गये। पाँच मिनट बाद ही श्रीसेठजी घरसे बाहर आये। उन्होंने उन युवक संन्यासीको प्रणाम किया तथा विनय पूर्वक पूछा– कहिये क्या आज्ञा है?

बाबाने कहा– मैं आपसे एकान्तमें कुछ देर बात करना चाहता हूँ।

तुरंत एक एकान्त स्थानपर श्रीसेठजी तथा बाबा बैठ गये। उस समय एक विचित्र बात घटित हुई। श्रीसेठजी कभी भी अपने बारेमें कुछ बताया नहीं करते थे। वे स्वयंको बड़ा सुगुप्त रखते थे। कोई कुछ कहता था तो प्रत्युत्तर स्वरूप श्रीसेठजी यही कहते कि आप तो मेरी प्रशंसा कर रहे हैं। ऐसे संगोपन-प्रिय श्रीसेठजीने मिलते ही बाबाके समक्ष मारवाड़ी-हिन्दी-मिश्रित भाषामें अपनी स्वरूप-स्थितिका निवेदन कर दिया। बाबाके पूछनेके पहले ही किसी अज्ञातकी प्रेरणासे उस जिज्ञासाका स्वतः समाधान हो गया, जिसके लिये बाबा कलकत्तेसे बाँकुड़ा आये थे। बाबा यही तो जानना चाहते थे कि क्या उस पत्रके लेखकको वस्तुतः

स्वरूपानुभूति हो गयी है?

अपने अनुमानको सही पाकर बाबाको बड़ी प्रसन्नता हुई। श्रीसेठजीके सामने बाबा नत-मस्तक थे। श्रीसेठजीसे मिलनेके पहले बाबाके मनमें एक और प्रश्न था। बाबा सदाकी तरह अब मन-ही-मन चिन्तन करते हुए यह सोचने लगे— अद्वैत-साधनाके अनुसार पूर्णताकी जो स्थिति होती है, उसमें मेरी प्रतिष्ठा है। अनन्त-सत्य-ज्ञान-आनन्दमय ब्रह्मसे मेरी एकरूपता है। सदा यही अनुभूति रहती है कि जगत न था, न है और न होगा। यह जगत स्वप्नवत्, पूर्णतः मिथ्या है। ऐसी ब्राह्मी स्थितिमें प्रतिष्ठित रहनेके बाद भी एक बात मैं स्वयंमें यह पाता हूँ कि जब मैं भिक्षा करता हूँ तो वह वस्तु अधिक खा जाता हूँ, जो मीठी होती है। श्रीमद्भगवद्गीताजीमें आया है—

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते॥

(श्रीगीता— २/५९)

विषयोंका उपभोग न करनेवालेके विषय तो निवृत्त हो जाते हैं, पर विषयोंमें जो रस है, जो आसक्ति है, वह निवृत्त नहीं होती। इस रसकी, इस आसक्तिकी सर्वथा निवृत्ति तब होती है, जब पर-तत्त्वका दर्शन हो जाये। मैं गीताका बड़ा उपासक रहा हूँ। जब मैं आत्मस्थितिपर विचार करता हूँ तो मुझे कहीं न्यूनता दिखलायी नहीं देती है, पर यह भी सत्य है कि मैं भिक्षामें मीठी वस्तु अधिक खा लिया करता हूँ। मीठी वस्तु अधिक खा लिये जानेके आधारपर क्या मैं यह मान लूँ कि मुझे अपनी पूर्णताका भ्रम है और पर-तत्त्वका मुझे साक्षात्कार नहीं हुआ है?

बाबाने मन-ही-मन यह सोच रखा था कि जो मेरी इस गुत्थीको सुलझा देगा, उसका मैं महापुरुषत्व स्वीकार कर लूँगा। बाबाने अपना यह प्रश्न श्रीसेठजीके सामने रखा। उन्होंने बड़े सरल ढंगसे कहा कि मीठी वस्तु अधिक खा लेनेका अर्थ ब्राह्मी स्थितिमें कोई त्रुटि नहीं है। मीठी वस्तुके खानेकी स्पृहा तो रक्तकी अल्पताका द्योतक है। रक्ताल्पताके समाप्त होते ही वह स्पृहा और स्पृहाजनित क्रिया भी समाप्त हो जायेगी। मेरी सारी उलझन श्रीसेठजीने समाप्त कर दी। उन्होंने सन्देहरहितरूपसे मुझे विभु-तत्त्वमें प्रतिष्ठित कर दिया।

इसके बाद भगवत्तत्त्वपर परस्परमें विचार-विनिमय होने लगा। बाबा शांकर मतानुयायी थे और अद्वैत साधनाके अनुसार पूर्णताकी जो अत्युच्च स्थिति होती है, उसमें बाबा प्रतिष्ठित थे। अनन्त-सत्य-ज्ञान-आनन्दमय ब्रह्मसे सदा एकात्मताकी अनुभूतिके फलस्वरूप बाबाको यह अनुभव होता रहता था कि जगत न था, न है और न होगा। यह जगत तो स्वप्नवत् पूर्णतः मिथ्या ही है। ऐसी ब्राह्मी स्थितिमें प्रतिष्ठित रहनेके कारण बाबा श्रीसेठजीसे विचार-विनिमय करते समय अपनी अद्वैत निष्ठाका ही प्रतिपादन करते थे। 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नाऽपरः' सिद्धान्त वाक्यके अनुसार बाबाकी स्थापना यही थी कि एक मात्र अद्वैत ब्रह्म ही सत्य है। ब्रह्मके अतिरिक्त अन्य किसीकी सत्ता है ही नहीं। जीव ब्रह्म ही है और सम्पूर्ण जगत स्वप्नवत् मिथ्या है। जीवकी मुक्तिका एक मात्र उत्तम उपाय आत्म-ज्ञान है। ईश्वरका सगुण-साकार स्वरूप और उनकी भक्ति सर्वथा मायाराज्यकी वस्तु है। परम तत्त्वके साक्षात्कारका एक मात्र साधन-पथ ज्ञानयोग है। श्रीसेठजीकी मान्यता इससे भिन्न थी। श्रीसेठजीकी आत्यन्तिकी निष्ठा तो ईश्वरके निर्गुण-निराकार ब्रह्म-स्वरूपमें ही थी। वे मानते थे कि जिस प्रकार बिन्दु सिन्धुमें मिलकर सिन्धुसे अभेद रूपमें एकाकार हो जाता है, उसी प्रकार जीवका परम प्राप्तव्य निर्गुण-निराकार सच्चिदानन्दघन ब्रह्ममें अभेद रूपसे मिलकर एकाकार हो जाना है। परंतु इसके साथ ही श्रीसेठजीकी आस्था ईश्वरके सगुण-साकार-स्वरूपमें भी थी। श्रीसेठजीकी मान्यताके अनुसार जीव सगुण-साकार ईश्वरकी भक्तिके द्वारा भगवत्साक्षात्कार करके परम पदको प्राप्त कर सकता है। श्रीसेठजीकी मान्यताका आधार था श्रीमद्भगवद्गीताके तीसरे अध्यायका तीसरा श्लोक।

लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्॥

(हे निष्पाप अर्जुन! इस लोकमें दो प्रकारकी निष्ठा मेरे द्वारा पहिले कही गयी है ज्ञानियोंकी ज्ञानयोगसे और योगियोंकी निष्काम कर्मयोग से।)

गीता-वक्ता भगवान श्रीकृष्णके इस कथनके आधारपर श्रीसेठजीका सतत प्रतिपाद्य तथ्य यही था कि जिस प्रकार ईश्वरका निर्गुण-निराकार-स्वरूप सत्य है, उसी प्रकार सगुण-साकार-स्वरूप भी सत्य है। निर्गुण-निराकार साध्यकी प्राप्तिके लिये साधन-पथ है ज्ञानयोगका और

सगुण-साकार साध्यकी प्राप्तिके लिये साधन-पथ है भक्ति-प्रधान-कर्मयोगका। ये दोनों साधन-पथ स्वयंमें पूर्ण हैं तथा एक दूसरेसे सर्वथा स्वतंत्र हैं। किसी एक साधन-पथके आश्रयसे साधक अपने जीवनके चरम लक्ष्यतक पहुँच सकता है।

श्रीसेठजीका भक्ति-सम्बन्धी सिद्धान्त बाबाको मान्य नहीं था। श्रीसेठजी अपनी मान्यता समझाना चाहते थे, पर वैसी प्रतिपादन-क्षमता नहीं होनेके कारण बाबाको समझा नहीं पाये। बाबा विद्वान् थे और विद्वानोंकी गोष्ठीमें जिस शैलीसे विचारोंका आलोचन-प्रतिपादन, खण्डन-मण्डन हुआ करता है, उस शैलीसे बाबा अभ्यस्त थे। श्रीसेठजी तो अपनी बातको सीधे-सीधे शब्दोंमें सरल रीतिसे रखना जानते थे, पर बाबाकी शास्त्रीय शैलीके समक्ष उनकी वह सरल पद्धति टिक नहीं पाती थी। शब्द-प्रमाण, पारिभाषिक शब्दावली आदिका प्रयोग करते हुए जिस शास्त्रीय शैलीसे विद्वान् लोग अपने मतका प्रतिपादन किया करते हैं, इसका श्रीसेठजीके पास अभाव था। परिणाम यह निकला कि श्रीसेठजीको अपने प्रयासमें सफलता नहीं मिली। श्रीसेठजी अपनी बात बाबाको समझाना चाहते थे, पर समझा नहीं सके। वे चाह करके भी बाबाको समझा नहीं पाये।

इस विचार-विनिमयका स्वरूप कुछ-कुछ शास्त्रार्थ जैसा था। दोनों पक्षोंकी ओरसे स्वानुभूत सत्यका उद्घाटन और प्रतिपादन ही इस शास्त्रार्थमें आदिसे अन्ततक रहा। प्रतिपक्षको परास्त करके विजय-गर्वसे प्रफुल्ल होनेकी भावना किसीके भी मनमें नहीं थी। शास्त्रार्थमें विजयी कहलाकर अहं-भावको परिपोषित करनेकी वृत्तिका कहीं अस्तित्व ही नहीं था। किसी भी प्रकारकी क्षुद्रतासे पूर्णतः विरहित था यह शास्त्रार्थ। दोनों पक्षोंकी ओरसे एक मात्र हो रहा था अपने-अपने अनुभूत सत्यका निवेदन। मनोवृत्तिकी क्षुद्रतासे सर्वथा शून्य होनेके कारण यह शास्त्रार्थ पूर्णतः सात्त्विक था। इसी सात्त्विकताका परिणाम था कि इस विचार-विनिमयमें कटुताके लेशका उद्भव कहीं भी हुआ ही नहीं, प्रत्युत् इस सम्पूर्ण विचार-विवेचनमें आत्यन्तिक सौहार्द परिव्याप्त रहा। इतना होकर भी स्वानुभूत सत्यका आग्रह और उस अनुभव-गत सत्यको भिन्न-भिन्न प्रकारसे प्रस्तुत करनेका पूर्ण प्रयास दोनों पक्षोंमें था ही। यही हेतु

था कि बाबा इस विचार-विनिमयको कभी-कभी शास्त्रार्थ कहा करते थे।

जब बाबा श्रीसेठजीके पास बाँकुड़ा गये थे, उसके तीन-चार दिन बाद ही श्रीसेठजीको सत्संगके लिये राँची जाना था। श्रीसेठजीके अनुरोधपर बाबा भी उनके साथ-साथ राँची गये। बाँकुड़ा तथा राँची, इन दोनों स्थानोंपर लगभग चौदह-पन्द्रह दिनोंतक बाबाका तथा श्रीसेठजीका परस्परमें विचार-विनिमय होता रहा। भले यह विचार-विनिमय दो पक्षतक चला, फिर भी इस अवधिमें बाबाके प्रखर तर्कोंके सामने श्रीसेठजीकी बात उभर नहीं पायी। जहाँतक निर्गुण-निराकार ब्रह्मके (क) साध्य-तत्त्व और (ख) साधन-पद्धतिकी बात थी, वहाँतक इन दोनों विभूतियोंकी मान्यताएँ समान थीं। निर्गुण-निराकार ब्रह्मके साध्य-साधनकी दृष्टिसे दोनों एक दूसरेसे सहमत थे, परंतु सगुण-साकार ईश्वरके (क) साध्य-तत्त्व और (ख) साधन पद्धति, अर्थात् (क) ईश्वरके अस्तित्व और (ख) ईश्वरकी उपासनाके विषयमें बाबा श्रीसेठजीसे सर्वथा असहमत थे। ईश्वर एवं ईश्वरकी भक्ति सम्बन्धी प्रत्येक बातको बाबा मिथ्या-राज्यकी वस्तु मानते थे। यह ठीक है कि ईश्वरकी साकारोपासनासे सम्बन्धित बातें श्रीसेठजी बाबाके हृदयमें स्थापित नहीं कर पाये, परंतु सत्य तो सत्य ही है और जो सिद्धान्त उनके अपने अनुभवसे पूर्णरूपेण स्वतः सिद्ध है, उसे वे कैसे झुठला देते? वह सत्य तो उनका स्वानुभूत था। जब श्रीसेठजी किसी भी प्रकारसे बाबाको नहीं समझा पाये तो उन्होंने बाबासे कहा— आप एक बार भाई हनुमानप्रसाद पोद्दारसे गोरखपुरमें मिल लें।

बाबाने तटस्थ भावसे कहा— पोद्दारजीसे मिलनेके लिये मेरे मनमें उत्साह नहीं।

श्रीसेठजी बाबाके अन्तरमें अपनी बात नहीं उतार पाये, पर बाबा श्रीसेठजीकी स्वरूपानुभूतिपर और उनके चिन्तन-विवेचनपर मुग्ध थे। बाबाका अध्ययन विशाल था। उस अध्ययनके आधारपर बाबाको लगा कि श्रीमद्भगवद्गीता सम्बन्धी श्रीसेठजीके जो भाव थे, विचार थे, अनुभव थे, चिन्तन था, वैसा अन्यत्र देखनेमें नहीं आया और यह गहन चिन्तन यदि लिपिबद्ध नहीं हुआ तो जगत एक दिव्य और दुर्लभ निधिसे वंचित रह जायेगा। बाबाने श्रीसेठजीसे कहा— आप गीता सम्बन्धी अपने विचारोंको लिपिबद्ध करा दें।

अपनी विवशता व्यक्त करते हुए श्रीसेठजीने कहा– कौन करे और कैसे होगा? मैं तो शुद्ध हिन्दी भी ठीक प्रकारसे नहीं बोल पाता।

बाबाने कहा– आप अपने विचार मुझे बतलायें। उनको लिख करके मैं आपको दिखला दूँ। यदि आपको लगे कि मेरे द्वारा ठीक लिखा गया है तो फिर लेखन-कार्य हो।

श्रीसेठजी मारवाड़ी-मिश्रित-हिन्दीका प्रयोग अपने गीता-प्रवचनोंमें किया करते थे। श्रीसेठजीके एक गीता-प्रवचनको बाबाने शुद्ध हिन्दी भाषामें लिपिबद्ध करके दिखलाया। बाबाकी अभिव्यक्ति-कुशलता, भाषा-अधिकार और विषय-प्रवेशको देखकर श्रीसेठजीको बड़ा विस्मय हुआ। बस, तभी यह तय हो गया कि श्रीमद्भगवद्गीताकी टीका लिखी जानी चाहिये और यह भी तय हो गया कि टीका लिखनेके कार्यका आरम्भ गोरखपुरमें होगा। गोरखपुर पहुँचनेकी तिथि निश्चित हो गयी। श्रीसेठजीको कहीं अन्यत्र भी जाना था, अतः वे अलगसे पहुँचनेवाले थे, पर बाबाको पहुँचनेकी तिथिके अनुसार गोरखपुरतककी रेल-टिकट कटाकर दे दी गयी।

* * * * *

बाबूजी-बाबा मिलन की दिव्यता

बाबा गोरखपुरके रेलवे-स्टेशनपर उतरे। दो रात और एक दिनकी रेल-यात्रामें बाबाको निराहार रहना पड़ा। रेल-यात्राके समय बाबाने किसीसे भिक्षाके लिये याचना की नहीं और किसीने भी भिक्षाके लिये बाबासे कुछ कहा ही नहीं। आहारके बिना बड़ी कमजोरी लग रही थी। स्टेशनसे बाहर आकर बाबाने गीताप्रेसका मार्ग पूछा तथा स्टेशनसे दूरी पूछी। लगभग तीन मीलकी दूरीकी बात सुनकर बाबाको इतना लम्बा मार्ग तय करना बड़ा भारी लगा। बाबा न तो पैसेका स्पर्श करते थे और न किसी जानदार सवारीपर चढ़ते थे। दो दिनसे भूखे रहनेके कारण अशक्तताकी अनुभूति इतनी अधिक हो रही थी कि गीताप्रेस पहुँचना पहाड़-सा लग रहा था, पर कोई दूसरा उपाय भी नहीं था। बाबा थोड़ी दूर चलते, फिर थक करके बैठ जाते। इस प्रकार नौ-दस बार ठहरते-बैठते-उठते हुए बाबाने वह तीन मीलकी दूरी अढ़ाई-तीन घंटेमें

तय की। गीताप्रेसके द्वारपर पं.श्रीलादूरामजी शर्मा मिले। बाबाने उनसे पूछा— क्या यहाँ श्रीसेठजी हैं?

श्रीशर्माजीने कहा— सेठजी आनेवाले थे, पर अभीतक आये नहीं हैं। हो सकता है, एक-दो दिनमें आ जायें।

बाबाको बाबूजीके नामकी स्मृति हो आयी और उन्होंने श्रीशर्माजीसे पूछा— क्या हनुमानप्रसादजी पोद्दार हैं?

श्रीशर्माजीने बतलाया— वे हैं तो गोरखपुरमें ही, पर वे गीतावाटिकामें हैं।

बाबा— गीतावाटिका यहाँसे कितनी दूर है?

श्रीशर्माजी— तीन मील।

अभीतक बाबा खड़े-खड़े बात कर रहे थे, पर पुनः तीन मीलकी बात सुनते ही वे हताश होकर वहीं भूमिपर बैठ गये। बड़ी कठिनाईसे पैदल चलकर तीन मील पार करके वे आये थे और अब तीन मीलका अगला रास्ता कैसे तय हो पायेगा, यही समस्या थी। शरीरकी दुर्बलता तथा उपवास जनित अशक्तताके कारण तीन मील पुनः चलना असम्भव-सा लग रहा था। उसी समय श्रीशर्माजीने कहा— मैं आपको इक्का कर देता हूँ, उसपर चढ़कर आप चले जाइये।

इक्केकी सवारीमें घोड़ा लगता है और जानदार सवारी बाबाको स्वीकार नहीं थी, पर विवशताकी स्थितिमें उस सवारीपर चढ़ना पड़ा। इक्केका भाड़ा श्रीशर्माजीने ही चुका दिया था। इक्का गीताप्रेससे गीतावाटिका आया और प्रवेश-द्वारपर बाबा उतर पड़े।

आजकी और तबकी गीतावाटिकामें बड़ा अन्तर है। उन दिनों न बिजलीका प्रकाश था, न चारों ओर जन-बस्ती थी, न पक्के मकान थे, न पक्की सड़क थी और न ट्रक-कार-बसके सतत आवागमनसे उत्पन्न कोलाहल था। तब सड़क ऐसी कच्ची थी कि वर्षा हो जानेपर सड़कपर कीचड़ हो जाता था। फिर कीचड़ तथा पानीमें पैदल चलने-वालोंको बहुत अधिक परेशानी होती थी। रातके समय दीपक या लालटेनसे काम चलाया जाता था। चारों ओर अमरूद और आमके बड़े-बड़े बाग थे। उन दिनों यह क्षेत्र ऐसा निर्जन था कि लोग दिनमें आते हुए डरते थे, रातकी तो बात ही क्या? उस समयकी गीतावाटिकाको एक प्रकारसे लघु

वनस्थल ही कहना चाहिये। हरी-भरी लताओं तथा ऊँचे-ऊँचे वृक्षोंके कारण यह उपवन बड़ा सघन था। फूलोंके पौधोंकी तो संख्या ही नहीं। फल-फूल खूब होते थे। वैसी सघन हरियाली अब नहीं रही। ऐसे इस ऋषि-उपवनमें अपने इने-गिने सहयोगियोंके साथ रहते हुए बाबूजी 'कल्याण' पत्रिकाके सम्पादनका कार्य किया करते थे। गीतावाटिकाके प्रवेश-द्वारपर बाबाको श्रीदूलीचन्दजी दुजारी मिले। श्रीदूलीचन्दजी दुजारीसे बाबाको ज्ञात हुआ कि बाबूजी गीतावाटिकामें हैं।

वाटिकाके अग्रभागमें एक भवन था (और है), जिसमें बाबूजी सपरिवार रहा करते थे। इसी भवनमें सम्पादकीय विभागका कार्यालय भी था। उस भवनके बरामदेकी सीढ़ियोंपर बाबा आकर बैठ गये। इन्हीं दिनों गीतावाटिकामें एक वर्षका अखण्ड-हरिनाम-संकीर्तन चल रहा था। संकीर्तन-पंडालमें बाबूजी अण्डी (एक विशेष प्रकारकी रेशमी चादर) ओढ़े हुए हाथसे ताली बजा-बजा करके कीर्तन कर रहे थे। श्रीदूलीचन्दजीने जाकर बाबूजीसे कहा— एक दुबले-पतले युवक संन्यासी आये हैं और आपको पूछ रहे हैं।

जब श्रीदूलीचन्दजी बाबूजीके पास जा रहे थे, उस समय बाबाने बस, एक बार दृष्टि उठाकर पंडालकी ओर देखा था, फिर तो उनकी दृष्टि नीची हो गयी। श्रीदूलीचन्दजीके कहते ही बाबूजी संकीर्तन-पंडालसे चल पड़े तथा बाबाके पास आये। बाबा तो दृष्टि नीची किये हुए बैठे थे, तभी बाबूजीने अपने दोनों हाथोंसे बाबाके दोनों चरणोंको छू करके प्रणाम किया।

उस प्रणामने चमत्कारी परिणाम उपस्थित कर दिया। प्रणाम करते समय बाबूजीने बाबाके चरणोंका स्पर्श किया था, उस स्पर्शका प्रभाव सर्वथा दिव्य, सर्वथा लोकोत्तर था। बाबूजीकी अँगुलियोंका स्पर्श पाते ही बाबाकी परिणति निराकारवादीसे साकारवादीके रूपमें हो गयी। ऐसी आश्चर्यमयी, आकस्मिक, आत्यन्तिक और आशिख परिणतिकी कल्पना भला क्या कोई कभी कर सकता था अथवा है? सचमुच उस स्पर्शने एक महदाश्चर्य मूर्तिमान कर दिया। गोरखपुर आनेसे पहले बाबाका श्रीसेठजीसे चौदह-पन्द्रह दिनतक शास्त्रार्थ हुआ था। जो कार्य वह शास्त्रार्थ नहीं कर पाया, वही कार्य एक क्षणमें इस स्पर्शने कर दिया।

बाबा कहा करते थे— उस स्पर्शने तत्काल मेरे अन्दर व्रज-भावका सम्पूर्ण रूपसे बीजारोपण कर दिया। साकारोपासनाकी तो बात ही क्या! वस्तुतः ऐसी बात तो साधारण स्तरकी होगी। साकारोपासनाकी अन्तरंगतम हृदय-वस्तु ही उस स्पर्शने प्रदान कर दी। न जाने कितनी-कितनी उपासना-साधनाके उपरान्त भी जो वस्तु प्राप्त नहीं होती, वह लव मात्रमें मुझे कैसे प्राप्त हो गयी, यह रहस्य बुद्धिगम्य है ही नहीं। यह सब अनुमानसे अति अतीत है। बस, इतना ही कहा जा सकता है कि साकारोपासनाकी हृदय-वस्तु जो व्रज-भाव है, वह व्रज-भाव बाबूजीके उस अद्‌भुत स्पर्शसे लव मात्रमें मेरे अन्तरमें सुस्थापित हो गया। लोकमें सदा ही देखा जाता है कि देनेवाला गर्वोन्नत मस्तकसे देता है और लेनेवाला झुककर लेता है तथा हाथ पसारकर लेता है, किन्तु श्रीपोद्दार महाराज द्वारा व्रज-भावकी इस अद्‌भुत प्रदान-प्रक्रियामें क्रम विपरीत रहा। दिव्य वस्तुका यह प्रदाता कैसा अनोखा है कि जो नत-मस्तक होकर दे रहा है, जो झुककर दे रहा है, जो अपने हाथ फैलाकर दे रहा है और जो चरणोंको छूकर दे रहा है। ब्राह्मी स्थितिकी मस्तीमें मैं चतुर्थाश्रमी संन्यासी न तो झुका और न हाथ ही पसारा, मनसे भी ऐसा नहीं हुआ, परंतु 'ज्ञानोत्तर भावराज्य'की रसमयतामें सतत निमग्न श्रीपोद्दार महाराजको वस्तुका दान करते समय झुकनेके लिये सोचना नहीं पड़ा। सहज भावसे झुक करके अति विनम्र होकर उन्होंने अपने जीवनकी क्या निधि नहीं दे दी?

वस्तुतः रसामृतके दानकी यह प्रक्रिया भी कितनी अद्‌भुत है? झुकना चाहिये था ग्रहीताको, परंतु झुक रहा है प्रदाता। गागर आया सागरके पास। गागर नहीं झुका, झुक गया सागर ही। सागर पूर्णतः झुक गया। झुक पड़ा सागर रसामृतका पान करानेके लिये। वह बह पड़ा और रससे सिक्त हो उठा पात्र। पात्र रसमय हो उठा।

बाबाकी दृष्टि बाबूजीपर तभी लग गयी थी, जब वे प्रणाम कर रहे थे। प्रणाम करके बाबूजीने ज्यों ही अपना मस्तक ऊपर उठाया, उनकी दृष्टि बाबापर ठहर गयी। बाबाको बाबूजी एकटक देखने लगे। बाबा भी बाबूजीको एकटक देखने लगे। लगभग तीन-चार मिनटतक परस्पर एकटक देखते रहे। तीन-चार मिनटका समय कम नहीं होता। इस अवधिमें निश्शब्द

दोनों एक दूसरेको अपलक देखते रहे। देखनेके स्थानपर यह कहना चाहिये कि परस्पर निहारते रहे, ऐसे निहारते रहे मानो कितने युगोंके बाद यह सम्मिलन हुआ है।

बाबा स्वयंको कट्टर वेदान्ती कहा करते थे, पर अब वे बदल चुके थे। बाहरसे उनका गैरिक वस्त्रधारी संन्यासीका वेष ज्यों-का-त्यों था, पर उनके भीतर अकल्पनीय परिवर्तन हो चुका था। बाबाकी परिणति अद्वैतवादी ज्ञानीसे केवल साकारोपासक आस्तिक भक्तके रूपमें ही नहीं हुई, अपितु वे मधुरोपासनाके सरस सिन्धुमें क्रमशः गहरेसे भी अति गहरे उत्तरोत्तर उतरते चले गये। बाबा और बाबूजीकी यह प्रथम भेंट सं.१९९३ वि. आश्विन शुक्ल द्वादशी मंगलवार तदनुसार २७ अक्टूबर १९३६ को हुई थी। इस तिथिका संकेत बाबाने अपने स्वरचित चौपदेकी एक पंक्तिमें किया है— 'द्वादशी प्रदोष समय आश्विन शुक्लाकी यह घटना प्रियतम।'

श्रीचैतन्यमहाप्रभुसे श्रीनित्यानन्दमहाप्रभुका मिलन अथवा श्रीरामकृष्ण परमहंससे स्वामी विवेकानन्दका मिलन, उस मिलन जैसा ही है यह गरिमामय दिव्य मिलन बाबूजी और बाबाका, जो अपने वस्तु-गुणके कारण भक्ति-राज्यका एक अनुपम एवं स्मरणीय प्रसंग है। इस मिलनके फलस्वरूप अहैतुकी ईश्वरानुरक्तिके ऐसे भव्य सिद्धान्तोंका प्रतिपादन और प्रचार हो सका, जो काम-कालुष्यसे सर्वथा विरहित है। इतना ही नहीं, इस मिलनके फलस्वरूप भविष्यमें सच्चिदानन्दमयी सरस लीलाओंकी ऐसी मधुर-मन्थर अगाध-अविरल स्रोतस्विनी प्रवाहित हो सकी, जिसके स्मरण मात्रसे अन्तर आह्लादित हो उठता है।

बाबा ट्रेनसे यात्रा करके राँचीसे गोरखपुर आये थे। वे तो किसीसे कुछ याचना करते थे नहीं, अतः दो दिनतक ट्रेन यात्रामें निराहार रहना पड़ा था। गीताप्रेससे गीतावाटिका आनेपर बाबा और बाबूजीका बड़ा भावपूर्ण परस्परावलोकन हुआ। प्रणामोपरान्त यह परस्परावलोकन अति दिव्य था। निरन्तर चुपचाप दो-तीन मिनटतक देखते रहना, यह अवधि कम नहीं होती। भावके किञ्चित् शमित होनेपर बाबूजीने बाबासे पूछा— क्या आपने भिक्षा की है?

बाबूजी द्वारा पूछे जानेपर बाबाने तनिक-सा मुस्करा दिया। बाबूजी

तुरन्त समझ गये कि बाबाने भिक्षा नहीं की है। बाबूजी उसी समय घरके भीतर आये। थालमें फलाहारी वस्तुएँ लेकर बाबूजी बाबाके पास आये। बाबाने कहा— मैं पहले स्नान करना चाहता हूँ।

बाबूजीने तत्काल स्नानकी व्यवस्था की। स्नानके उपरान्त बाबाको बाबूजीने भिक्षा करवायी। भिक्षाके समय बाबूजीने पत्तल परोसनेका कार्य स्वयं ही किया। इसी प्रकार कुटियामें बाबाके विश्रामके लिये पुआलका गद्दा भी बाबूजीने स्वयं ही बिछाया। बाबाके विश्रामका प्रबन्ध एक कुटियामें किया गया था। बाबा स्वयं देख रहे थे बाबूजीद्वारा किये गये अतिथि-सत्कार और संत-सेवाके भाव और चावको और उसे देख-देख करके बाबाको बड़ा विस्मय हो रहा था, यह विस्मय क्षण-प्रति-क्षण बढ़ता जा रहा था— क्या ऐसे शील-सम्पन्न और सेवा-भावी मानव इस भूतलपर हो सकते हैं? ऐसा सौजन्य, इतना शील, इतनी दीनता आजके युगमें देखनेको कहाँ मिलती है?

सब आवश्यक कार्योंसे निवृत्त होनेके बाद बाबा जब कुछ सुस्थिर हुए, तब बाबूजीसे थोड़ी बातचीत हुई। बाबाने संक्षेपमें बतलाया किस प्रकार राँचीमें पूज्य श्रीसेठजीसे श्रीमद्भगवद्गीताकी टीका लिखनेकी बात उठी और फिर गोरखपुर आनेका कार्यक्रम बना। सारे विवरणको सुनकर बाबूजीने कहा— स्वामीजी! मुझे तो आज ही वाराणसी जाना पड़ रहा है। वहाँ एक स्वजन मरणासन्न स्थितिमें हैं। वाराणसी जाना आवश्यक है। तीन-चार दिनमें मैं अवश्य लौट आऊँगा। तबतक आप यहीं विराजे रहें। आपको कोई कष्ट नहीं होगा। मेरे व्यक्ति यहाँ आपकी भली प्रकारसे सँभाल करेंगे।

बाबाने कहा— आप मेरी ओरसे निश्चिन्त हो जायें। आप चिन्ता-रहित होकर वाराणसीकी यात्रा करें। मैं यहींपर रहूँगा।

* * * * *

विशिष्ट शरद पूर्णिमा

बाबूजी उसी रात वाराणसी चले गये। बाबाने उस रात्रिमें गहरी नींद ली। ट्रेनकी लम्बी यात्रामें बाबा ठीक प्रकारसे सो नहीं पाये थे। बाबूजी दो-तीन दिनमें ही लौटकर आनेवाले थे, पर वे लौटकर आये प्रतिपदा-तिथिके दिन। बाबूजी जिस दिन आये, उससे पहलेवाली रात्रिका प्रसंग है।

प्रतिपदासे पहले बीत गयी थी आश्विन शुक्ल पूर्णिमा। यह थी शारदीय पूर्णिमा, रास-पूर्णिमावाली तिथि। ब्रह्म-विचार-गत और ब्रह्म-चिन्तन-रत बाबाको रास-पूर्णिमासे भला क्या प्रयोजन? जिन बाबाके लिये श्रीमद्भागवतपुराणका रास-पञ्चाध्यायी-अंश सदैव आलोचनाका विषय रहा और जिन बाबाके लिये सगुण-साकार-तत्त्व और साकारोपासना सर्वदा ही उपहासास्पद बनी रही, ऐसे वे कट्टर वेदान्ती बाबा अपनी कुटियामें आसनपर बैठे हुए ब्रह्म-तत्त्वके चिन्तनमें लीन थे। जब ठीक मध्य-रात्रिकी वेला उपस्थित हुई, तभी बाबाको सुनायी पड़ा—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण रहे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

महामन्त्रकी यह स्वर-लहरी बड़ी मनोहर, बड़ी मधुर, बड़ी सुरीली, बड़ी आकर्षक थी। यह पता नहीं कि वह स्वर-लहरी किस दिशासे आ रही थी, परंतु वह थी बड़ी मन-मोहिनी। उस सुललित-सुमधुर नाम गायनकी ओर बाबाका मन आकृष्ट हो गया। उस गायनके साथ-साथ बाबा भी गायन करने लग गये। बाबाका कण्ठ भी बड़ा मधुर था। बाबाके द्वारा गायन तो धीरे-धीरे हो रहा था, पर इसीके साथ उनके नेत्रोंसे अश्रुके बिन्दु टपकने लगे और फिर उन टपकते बिन्दुओंने कपोलोंपर प्रवाहका रूप धारण कर लिया। यह भावपूर्ण स्थिति लगभग पन्द्रह मिनटतक रही, परंतु इस स्थितिका प्रभाव न जाने कितनी देरतक बना रहा। बाबाके लिये यह एक विचित्र और नवीन अनुभव था।

* * * * *

श्रीहनुमानगढ़ी में श्रीकृष्ण-दर्शन

शरद पूर्णिमाके अगले दिन प्रतिपदाको बाबूजी वाराणसीसे वापस आये। आनेपर बाबासे मिले तथा पूछा— यहाँ आपको कोई कष्ट तो नहीं हुआ ?

बाबाने कहा— कष्ट तो तनिक भी नहीं हुआ। यहाँ मेरी सँभाल सब रीतिसे भली प्रकार हुई, किन्तु मेरा एक निवेदन है। मेरे ठहरनेकी व्यवस्था किसी जन-रव-शून्य स्थानपर कर दें। मुझे भीड़ और कोलाहल प्रिय नहीं है। यहाँपर जो अखण्ड हरिनाम संकीर्तन चल रहा है, उससे वातावरण सदा गुञ्जित रहता है और कभी-कभी तो अति तुमुल स्वरसे कीर्तन होता है। कोलाहलपूर्ण एवं जनसंकुल वातावरणमें रहनेका मुझे अभ्यास नहीं है, इसीलिये यह निवेदन किया है।

बाबूजीने कोई सुन्दर प्रबन्ध कर देनेका तुरन्त आश्वासन दिया। अगले दिन बाबूजी स्वयं स्थानका प्रबन्ध करनेके लिये निकले। अनेक बातोंको विचारने तथा कुछ स्थानोंको देखनेके बाद राप्ती नदीके किनारे श्रीहनुमानगढ़ीवाला स्थान उन्होंने निश्चित किया। गोरखपुर राप्ती नदीके तटपर ही बसा हुआ है। नदीके किनारे श्रीहनुमानगढ़ी एक निर्जन एवं नीरव स्थान है। गीतावाटिका गोरखपुरके उत्तरी छोरपर है तो श्रीहनुमानगढ़ी दक्षिणी छोरपर। यहाँ श्रीहनुमानजीका साधारण-सा मन्दिर है। गढ़ीके एक कमरेमें बाबाके आवासकी व्यवस्था की गयी। नदीके तटपर यह एकान्त स्थान बाबाको बड़ा प्रिय लगा।

बाबा गीतावाटिकासे श्रीहनुमानगढ़ी चले आये। इस समयतक पूज्य श्रीसेठजीका गोरखपुर शुभागमन नहीं हो पाया था। श्रीसेठजीका आगमन कब हुआ, यह निश्चित रूपसे ज्ञात नहीं, किन्तु श्रीमद्भगवद्-गीताकी टीकाके लेखनका कार्य लगभग एक-डेढ़ मास बाद आरम्भ हो पाया। टीका-लेखनके कार्यारम्भके पूर्व जो-जो प्रसंग श्रीहनुमानगढ़ी-वासके समय घटित हुए, उनका बाबाके जीवनमें अति महत्त्व है।

इन दिनों बाबा मुख्यतः चार प्रकारके जप किया करते थे। 'सोऽहम्', 'शिवोऽहम्', 'आनन्दोऽहम्', 'ॐ', इन्हीं चारका जप बाबाद्वारा हुआ करता था। जप आरम्भ करते ही यह सारा जगत तुरन्त

विलीन हो जाता था और रह जाती थी एक मात्र ब्रह्म-सत्ता। सर्वत्र आनन्द-ही-आनन्द परिव्याप्त हो उठता था। परमानन्दमें बाबाकी सम्यक् स्थिति थी ही।

एक दिन राप्ती-स्नानके बादकी बात है। बाबा राप्ती-स्नान करनेके लिये प्रतिदिन जाया करते थे। वे स्नान करके जलसे पूर्ण कमण्डलु हाथमें लिये हुए भीगे वस्त्रोंमें ही श्रीहनुमानगढ़ी वापस आ रहे थे। अपने अभ्यासके अनुसार बाबा 'सोऽहम्', 'सोऽहम्'का जप कर रहे थे। लौटते समय बिना प्रयास एक परिवर्तन हो गया। अनायास 'सोऽहम्'का जप छूट गया और शारदीय पूर्णिमाकी मध्य रात्रिमें जो जप पन्द्रह मिनटके लिये हुआ था, वही जप स्वतः होने लग गया। इतना ही नहीं, वह जप अखण्ड रूपसे चलने लगा। 'सोऽहम्'के स्थानपर सोलह नामवाले महामन्त्रका जप अपने आप निरन्तर होने लग गया।

श्रीहनुमानगढ़ी आकर बाबाने भीगे वस्त्रोंको बदला और दूसरे गैरिक वस्त्रोंको धारण किया। वस्त्र-परिवर्तनके उपरान्त बाबा ब्रह्म-चिन्तनके लिये अपने आसनपर विराजित हुए। श्रीहनुमानगढ़ीमें बड़े-बड़े केलेके वृक्ष लगे हुए थे। बाबाने दो कदली-स्तम्भोंके मध्य अपना आसन बिछाया था। बाबा पूर्वाभिमुख बैठे हुए थे और जप करते हुए ब्रह्म-चिन्तनमें तल्लीन थे। तभी अकस्मात् भगवान श्रीकृष्ण हाथमें वंशी धारण किये आकाशमें खड़े हुए दिखलायी दिये। ज्यों ही भगवान श्रीकृष्णकी दिव्याकृति बाबाके सामने प्रकट हुई, बाबाके मनमें तत्क्षण यह भाव आया कि यह माया जनित है। यह तो मिथ्या मूर्ति है। माया-राज्यकी यह मिथ्या वस्तु मेरे समक्ष कहाँसे आ गयी?

अद्वैत-तत्त्व-वादी बाबाने बड़ा प्रयत्न किया कि भगवान श्रीकृष्णका यह रूप मेरे सामनेसे हट जाये और मैं ब्रह्म-चिन्तनमें लीन हो जाऊँ, पर न तो वह गगनस्थ मूर्ति बाबाके सामनेसे हटती थी और न बाबा ब्रह्म-चिन्तनमें लीन हो पाते थे। बाबाने बार-बार प्रयास किया, पर सफलता नहीं मिल पा रही थी। बाबा भी हार माननेको प्रस्तुत नहीं थे। उस अलौकिक मूर्तिको अपने सामनेसे हटानेका प्रयास बाबा लगातार दो घंटेतक करते रहे, पर भरपूर प्रयासके बाद भी वह मूर्ति सामने ही विराजित रही। अथक प्रयासके बाद भी वह सगुण-साकार-तत्त्व बाबाके

सामनेसे हटनेका नाम भी नहीं ले रहा था। बाबाके अद्वैत-तत्त्व-निष्ठ जीवनमें सतत प्रयासको करारी मात मिलनेका यह प्रथम प्रसंग था। बाबाने थककर प्रयास छोड़ दिया।

भगवान श्रीकृष्णका वह सगुण-साकार स्वरूप किशोरावस्थाका था। कदम्ब वृक्षके सहारे खड़े होकर वे वेणु वादन कर रहे थे। वेणुका शीर्षभाग भगवान श्रीकृष्णके अरुण अधरोंसे संलग्न था और दूसरा छोर भगवानके उदरप्रदेशके पास था। ज्यों ही बाबाने साकार विग्रहको अपने सामनेसे हटानेका प्रयास विसर्जित किया, त्यों ही वह चिन्मय मूर्ति आकाशसे नीचे उतरने लगी और बाबाकी ओर बढ़ने लगी। बाबाकी ओर बढ़ते-बढ़ते बाबाके समीप आ गयी। फिर कदम्ब-वृक्ष-सहित वेणु-वादन-तत्पर भगवान श्रीकृष्ण बाबाके वक्षःस्थलमें प्रवेश कर गये। वक्षःस्थलमें प्रवेश करते ही उस सच्चिदानन्दमयी मूर्तिकी दिशा परिवर्तित हो गयी। उसका मुख पश्चिम दिशासे पूर्व दिशाकी ओर हो गया। वक्षःस्थलमें प्रवेश करके वह परम सुन्दर मूर्ति वहाँ सदाके लिये प्रतिष्ठित हो गयी। बाबा कई बार कहा करते थे— भगवान श्रीकृष्णका वह सुन्दर साकार श्रीविग्रह आजतक मेरे हृदय-देशमें विराज रहा है। उस श्रीविग्रहकी जैसी कान्ति, जैसी छवि, जैसी शोभा है, वह किसी भी चित्र या मूर्तिमें देखनेको नहीं मिलती।

यह अवश्य ही एक ईश्वरीय विधान था कि परम निष्ठावान वेदान्ती बाबाको 'ज्ञानोत्तर भगवद्भावराज्य' में नित्य अवस्थित बाबूजीका संस्पर्श और सम्पर्क मिला और इस संस्पर्श और सम्पर्कके फलस्वरूप बाबाकी परिणति निराकारवादीसे साकारवादीके रूपमें हो गयी। अब बाबाकी सगुण-साकार-तत्त्वमें वैसी ही निष्ठा थी, जैसी उनकी निर्गुण-निराकार-तत्त्वमें। गोरखपुर आनेके पूर्व बाबाका श्रीसेठजीसे चौदह दिनतक शास्त्रार्थ हुआ था और इस विचार-विनिमयमें बाबा किसी भी प्रकारसे सगुण-साकार-तत्त्वको स्वीकार करनेके लिये प्रस्तुत नहीं थे। उन्हीं बाबाने गोरखपुर आनेके बाद बिना किसी प्रकारका विचार-विनिमय हुए ही साकारोपासनाके अस्तित्वको और महत्त्वको सिद्धान्ततः और व्यवहारतः स्वीकार कर लिया। यह स्वीकृति भी हो गयी गोरखपुरमें श्रीसेठजीसे भेंट होनेके पूर्व ही। सगुण-साकार-तत्त्वके साक्षात्स्वरूप हैं भगवान श्रीकृष्ण और उन्हीं भगवान श्रीकृष्णका परमामृतोपदेश है 'श्रीमद्भगवद्गीता'। भगवान

श्रीकृष्णके सगुण-साकार-तत्त्वपर आस्थाके अभावमें उनकी दिव्य भगवदीय वाणी श्रीमद्भगवद्गीताकी टीका कितनी श्रेष्ठ हो पाती, यह एक विचारणीय तथ्य है। श्रीमद्भगवद्गीताकी टीकाके लेखन-कार्यको आरम्भ करनेके पूर्व जिस प्रकारकी मनोभूमिका आवश्यक थी, उसी आवश्यकताकी परिपूर्तिके लिये ईश्वरीय योजनाके अनुसार बाबाका गीतावाटिकामें शुभागमन हुआ और पूज्य बाबूजीका संस्पर्श और सम्पर्क मिला। प्रथम मिलनके अवसरपर बाबूजीने प्रणाम करते समय बाबाके चरणोंका जो स्पर्श किया, वह मात्र स्पर्श नहीं, एक महान संस्पर्श था। संस्पर्शके उस दिव्य क्षणमें ही सगुण-साकार-तत्त्व और साकारोपासनाका बीजारोपण हो गया। वह बीज इतना शीघ्र अंकुरित हो उठेगा, इसकी कल्पना कोई कर ही नहीं सकता था। बाबूजी जैसे सर्वसमर्थ संतके अति सुगुप्त महान दानका यह परम सुन्दर परिणाम था कि बाबाको भगवान श्रीकृष्णके दर्शन मिले, वे सगुण-साकार-तत्त्वके प्रति निष्ठावान बन गये और अब टीका-लेखनके कार्यमें उनके द्वारा सहयोग-प्रदान सुचारु-श्रेष्ठ रूपसे हो सकता था।

* * * * *

गोपी-वपु का दिव्यावतरण

यह पहले बतलाया जा चुका है कि श्रीमद्भगवद्गीतापर श्रीसेठजीके विचारोंको सुनकर बाबाको ऐसा लगा कि यह तत्त्व-चिन्तन तो भारतकी अद्भुत आध्यात्मिक निधि है और न केवल लोक-हितकी दृष्टिसे, अपितु आध्यात्मिक वाङ्मयकी संवृद्धिके लिये भी इसे लिखित रूप प्रदान किया जाना चाहिये। बाबाने अपना सहयोग देनेका आश्वासन दिया। सहयोगके प्रस्तावसे श्रीसेठजीको बड़ी प्रसन्नता हुई। श्रीगीताजीकी टीकाके लेखन-कार्यकी दृष्टिसे बाबा गोरखपुर आये थे। बाबा तो गोरखपुर आ गये, परन्तु सेठजीको आनेमें बड़ा विलम्ब हुआ। गीता-प्रचार एवं सत्संगके लिये कतिपय अन्य-अन्य स्थानोंपर उनका रुकना आवश्यक हो गया था।

श्रीसेठजीके गोरखपुर आनेपर श्रीमद्भगवद्गीताकी टीका लिखनेका कार्य आरम्भ हो गया। विद्वद्-गोष्ठीमें पहले श्रीगीताजीके श्लोकोंके अर्थपर

विचार किया जाता। यह विचार-गोष्ठी प्रतिदिन बैठती। इस गोष्ठीमें रहते श्रीसेठजी, स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज, बाबा, परमादरणीय श्रीहरिकिशनदासजी गोयन्दका (श्रीसेठजीके छोटे भाई) आदि-आदि। बाबाका कार्य यह था कि इस गोष्ठीमें श्रीगीताजीके श्लोकोंपर भिन्न-भिन्न आचार्योंके मतोंको बतलाना। तदुपरान्त श्लोकमें निहित रहस्यपर परस्परमें विचारोंका आदान-प्रदान होता। इस रहस्य-मन्थनमें श्रीसेठजीका मत ही अन्तिम निर्णयके रूपमें मान्य रहता। श्रीसेठजीके इन विचारोंको ही बाबा लिपिबद्ध करते। श्रीमद्भगवद्गीतापर ये लिपिबद्ध विचार पहले 'कल्याण' पत्रिकाके विशेषांक 'गीता-तत्त्वांक'के रूपमें प्रकाशित हुए, फिर इसे 'गीता-तत्त्व-विवेचनी' नामक एक स्वतन्त्र पुस्तकके रूपमें गीताप्रेसने प्रकाशित कर दिया। सत्संगके लिये श्रीसेठजीको प्रायः यहाँ-वहाँ जाना ही पड़ता था, अतः इस भ्रमणमें भी विचार-गोष्ठीमें भाग लेनेवाले लोग यथासंभव साथ-साथ जाते थे। इस प्रकार निरन्तर तत्परतापूर्वक संलग्न रहनेके बाद लगभग अढ़ाई वर्षमें 'गीता-तत्त्व-विवेचनी'के लेखनका कार्य सम्पन्न हुआ।

लेखन-कार्यकी दृष्टिसे बाबाको सेठजीके साथ रहना ही पड़ता था। सत्संगके लिये सेठजी जहाँ भी जाते, बाबाको जाना पड़ता। अब सन् १९३७ ई.का एक महत्त्वपूर्ण प्रसंग है। इस प्रसंगको लिखनेसे पहले प्रसंगकी वैचारिक पृष्ठभूमिका उल्लेख आवश्यक लग रहा है।

सिद्धान्ततः यह सही है और श्रीमद्भगवद्गीताकी यह मान्यता भी है कि योगीकी साधनाका प्रवाह कभी विखण्डित नहीं होता और योग-भ्रष्ट अपने अगले जन्ममें साधन-पथपर चल पड़ता है। उसके पिछले जन्मकी अपूर्ण साधना अगले जन्ममें पूर्णताकी ओर अग्रसर हुआ करती है। यही कारण है कि किसी बालककी असामान्य प्रतिभाको देखकर उसे योग-भ्रष्ट अथवा अत्यधिक संस्कारी कहा जाता है। वर्तमान कालकी अत्युत्कृष्ट प्रतिभा अथवा असाधारण सफलता ऐसा सोचनेके लिये बाध्य कर देती है कि इसका सम्बन्ध अवश्य भूतकालकी निरन्तर तत्परता और सतत साधनासे है। श्रीप्रिया-प्रियतमके लीला-सिन्धुमें नित्य निरन्तर निमज्जनकी दृष्टिसे बाबाकी अद्भुत स्थितिका जो स्वरूप और स्तर था, उसे देखकर कोई भी कह सकता है कि इसका सम्बन्ध अवश्य ही

पूर्व-जन्मकी साधनासे होगा।

इस तथ्यपर प्रकाश डालते हुए बाबाने स्वयं ही कहा था— मेरे जीवनमें व्रजभावकी सरस धारा, पूर्व जन्मकी साधनाका फल नहीं है। मैं तो शांकर मतानुयायी कट्टर वेदान्ती था। मेरे जीवनमें जो अद्वैत-निष्ठा थी, उसके बारेमें मैं यह स्वीकार कर सकता हूँ कि मेरे पूर्व जन्ममें निराकार स्वरूपकी जो साधना रही होगी, वही साधना इस जीवनके आरम्भिक कालमें चली और वह निराकार साधना पूर्णताकी स्थितिको पहुँच गयी, पर जहाँतक मेरे जीवनमें व्रज-भावके वपन और पल्लवनका प्रश्न है, यह सर्वथा श्रीपोद्दार महाराजके सम्पर्कका परिणाम है। यह उनका ही कृपा-प्रसाद है कि मुझ निराकारवादी अद्वैत-तत्त्व-निष्ठके जीवनमें मधुर भावापन्न रसोपासनाकी रसमयी धारा प्रवाहित हो उठी। प्रथम मिलनके समय श्रीपोद्दार महाराजने मुझ संन्यासीको प्रणाम करनेकी भावनासे मेरे चरणोंका स्पर्श किया और स्पर्शके उसी क्षणमें व्रज-भावकी महाविचित्र गूढ़तम वस्तु उन्होंने मुझे प्रदान कर दी।

बाबूजीसे मिलनेके उपरान्त ही गोपी-भावकी रसमयी साधना सही रूपमें आरम्भ हुई। साधना करते-करते भाव-देहकी भावना इतनी प्रगाढ़ हो गयी कि बाबाको अपना पुरुष-शरीर-भाव ही विस्मृत हो गया। बाबा बार-बार कहा करते थे— यह भाव-वपु मात्र कृपासे प्राप्त होता है। किसी सिद्ध संतके अनुग्रहसे ही भावराज्यकी भाव-साधनामें प्रवेश सम्भव हो पाता है। श्रीपोद्दार महाराजके अनुग्रहने मेरे जीवनमें महान परिवर्तन ला दिया। मेरा सारा जीवन रसमय हो गया।

अब सन् १९३७ का यह महत्त्वपूर्ण प्रसंग इस प्रकार है। बाबा गोरखपुर आये हुए थे और गीताप्रेसके एक कमरेमें ठहरे हुए थे। यह वही कमरा है, जिसमें आदरणीया बहिन सावित्रीबाई फोगलाका जन्म हुआ था। इसी कमरेमें बाबाको एक विचित्रानुभव हुआ। आसनपर बैठे हुए बाबा अपने उपास्य चित्रपटका एकटक दर्शन कर रहे थे। देखते-देखते चित्रपट चिन्मय हो उठा। चित्रपटका कण-कण दिव्यतासे परिपूर्ण हो गया। इस अचानक परिवर्तनके साथ-साथ दूसरा परिवर्तन यह हुआ कि बाबाके शरीरमें भी परिवर्तन आ गया। सारे अङ्ग-संस्थान बदल गये। बाबाको सर्वथा विस्मृत हो गया कि मैं संन्यासी हूँ अथवा मैं कभी पुरुष था। बाबाकी परिणति एक किशोरीके रूपमें हो गयी। वर्ण गौर

रंगका है। आयु लगभग चौदह-पन्द्रह वर्षकी है। नव यौवनका उन्मेष हो चुका है। उस गोपी-वपुकी आभा अद्वितीय है। दिव्य परिधानमें किशोर वपुकी शोभा कुछ निराली ही है। अंगोंकी कमनीयता और कान्ति कल्पनातीत है। शरीरके विभिन्न अंगोंपर कंकण, वलय, हार, मुद्रिका, करधनी, पायल आदि दिव्य आभूषण यथास्थान सुशोभित हैं। काली-काली सुदीर्घ घुँघराली केश-राशि पृष्ठ भागपर बड़ी भली लग रही है।

भविष्यमें जो होनेवाला था, उसका यह एक पूर्वाभास था। भविष्यकी एक झलक दिखला करके यह दिव्यानुभव तिरोहित हो गया। यह अनुभूति अब मात्र स्मृतिकी एक वस्तु रह गयी। किसी अचिन्त्य विधानके अनुसार इस दिव्यानुभवके तिरोहित हो जानेमें एक विशेष हेतु था। बाबाके सहयोगसे टीका-लेखनके कार्यको सम्पन्न जो करवाना था।

* * * * *

गठिया रोग से मुक्ति

ऋषिकेशसे लगभग दो-अढ़ाई मील दूर गंगाजीके उसपार स्वर्गाश्रम है। आजकल स्वर्गाश्रममें बड़ी भीड़ रहती है। जिधर देखो उधर भवन-ही-भवन दृष्टिगत होते हैं। सन् १९३७-३८ में स्वर्गाश्रम नितान्त निर्जन स्थान था। चारों ओर सघन जंगल थे। निवास करनेकी दृष्टिसे एक रानीकी छोटी कोठी गंगाजीके तटपर थी और कालीकमलीवालोंके कुछ कमरे थे। सत्संगके लिये श्रीसेठजी स्वर्गाश्रम ग्रीष्म ऋतुमें आया करते थे। देशके कोने-कोनेसे श्रद्धालु सत्संगी भाई लोग आकर श्रीसेठजीके सान्निध्यमें रहा करते थे। सेठजीके साथ बाबाको आना ही था। इन्हीं दिनों बाबाको गठिया रोग हो गया। वे अत्यधिक कष्ट भोग रहे थे।

गठिया रोगकी भीषण व्यथा प्रभु-कृपासे कैसे दूर हुई, इसका वृत्त बाबाके शब्दोंमें इस प्रकार है—

सम्भवतः सन् १९३७ ई. की बात है। मैं स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश) में था। मेरे पैरके घुटनोंमें गठिया हो गया। घुटनोंमें सूजन आ गयी। पीड़ा इतनी ज्यादा थी कि रातको नींद नहीं आ पाती थी। दर्दके मारे उठना-बैठना सम्भव नहीं था, फिर तो कहीं भी आने-जानेका प्रश्न ही

नहीं बनता। शौच जानेके लिये लोग मुझे कमोडपर बैठा दिया करते थे। पीड़ाके मारे हिलना-डुलना शक्य नहीं था। बिस्तरपरसे उठाकर कमोडपर बैठा देना और बादमें कमोडपरसे उठाकर स्नान करवाना, यह सब कार्य दूसरोंके द्वारा होता था। उन दिनों श्रीसेठजी मेरा बड़ा ध्यान रखते थे। उन्होंने एक व्यक्तिकी ड्यूटी लगा रखी थी। मेरी पीड़ा देखकर परिचर्या करनेवाले भी घबरा उठे थे तथा यह सोचते थे कि ये बाबा दवा कुछ लेते नहीं और न जाने कबतक ठीक होंगे। एक दिन संध्याके समय की बात है। उस समय मेरी परिचर्याके लिये श्रीहीरालालजी थे। संध्याके समय श्रीगंगाजीके किनारे श्रीसेठजी संध्या-वन्दन करके फिर (गंगातटकी रेतीली भूमि) टिबड़ीपर सत्संग प्रतिदिन किया करते थे। मेरे मनमें आया कि आज टिबड़ीपर श्रीसेठजीके सत्संगमें मैं चलूँ। मैंने श्रीहीरालालजीसे कहा— आप मुझे श्रीसेठजीके सत्संगमें टिबड़ीपर आज ले चलें।

उनको मेरी बात सुनकर आश्चर्य हुआ। जो व्यक्ति चलना-फिरना तो दूर रहा, उठ-बैठ भी नहीं सकता, जिसके घुटनेमें गठियाके कारण बहुत दर्द है तथा अत्यधिक सूजन है, वह व्यक्ति भला टिबड़ीतक कैसे जा सकेगा? टिबड़ी तो बहुत दूर है। श्रीहीरालालजी वेदान्ती थे, अतः व्यंग्य वचन बोलते हुए कहने लगे— स्वामीजी! आप स्थान जानते ही हैं कि कहाँ सत्संग होता है तथा उस स्थानतक जानेवाले मार्गसे भी आप परिचित हैं ही। इसके अलावा आप तो अनन्त-ज्ञान-सम्पन्न, अनन्त-शक्ति-सम्पन्न हैं। आप सर्व-समर्थ हैं। आपके लिये वहाँ जाना कौन-सी बड़ी बात है?

श्रीहीरालालजीके ऐसा कहनेपर मैंने उनसे कहा— मैं सचमुच आज वहाँ जाना चाहता हूँ।

यह सुनकर श्रीहीरालालजीने कहा— तभी तो मैं कह रहा हूँ कि आपकी शक्ति अनन्त है अतुल है, अतः आपके लिये तो वहाँ जाना एक साधारण कार्य है।

श्रीहीरालालजीके मुखसे ऐसे व्यंग्य वचन सुनकर मैंने दृढ़ताके स्वरमें कहा— हीरालालजी! आप ऐसा समझते हैं कि क्या मैं नहीं जा सकता?

श्रीहीरालालजीने फिर वैसे ही व्यंग्य वाक्योंकी आवृत्ति कर दी।

प्रीतिरसावतार महाभावनिमग्न
श्रीराधा बाबा
(प्रथम भाग)
पृष्ठ संख्या
151-200
तक
राधेश्याम बंका

तब मैंने आँखोंको मूँद करके कुछ समयके लिये भगवान श्रीकृष्णका स्मरण किया। इसके बाद मैं दीवालकी ओर मुँह करके बैठ गया। फिर दीवालका सहारा लेकर खड़ा हो गया। धीरे-धीरे खड़े होनेके बाद मैं दीवालका सहारा लिये-लिये धीरे-धीरे दरवाजेकी ओर सरकने लगा। धीरे-धीरे चलकर मैं दरवाजेके पास आ गया। वहाँ चार-पाँच फीट लम्बा एक दण्ड रखा था। उस दण्डको लेकर उसके सहारे कमरेके बाहर आ गया और क्रमशः टिबड़ीकी ओर बढ़ने लगा। पहले तो मैं सरकता-सा चल रहा था, अब मेरी चालमें थोड़ी गति आ गयी। श्रीहीरालालजी यह सब चकित नेत्रोंसे देख रहे थे। जो स्वामीजी उठ भी नहीं सकते थे, वे ही अब चलकर टिबड़ीपर जा रहे हैं। मेरे पीछे-पीछे वे भी आये। मैं उस दण्डके सहारे चलते-चलते टिबड़ीपर पहुँच गया। ज्यों ही मैं श्रीसेठजीके पास पहुँचा, त्यों ही धम्मसे उस रेतीली भूमिपर गिर पड़ा। वहाँतक पहुँचनेके संकल्पको भगवानने पूरा कर दिया था। श्रीसेठजीको तथा अन्योंको भी मुझे वहाँ देखकर और चलकर आया हुआ जानकर बड़ा आश्चर्य हुआ। टिबड़ीसे निवास स्थानपर वापस तो स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज अपने कन्धेपर बैठा कर ले आये।

उस गठिया रोगसे मैं अत्यधिक परेशान था। टिबड़ीपर जानेवाली घटना जिस दिन हुई, उसके बाद भी पीड़ा बढ़ती ही जा रही थी। दर्दके मारे नींद नहीं आती थी। मुझे लगा कि अब सहन करनेकी शक्ति शून्य-सी होती जा रही है। रात्रिकी बात है। उस असह्य पीड़ासे विकल होकर मैंने भगवान श्रीकृष्णसे कहा— मैं यह नहीं कहता कि आप मेरा रोग दूर कर दें। रोगके रूपमें भी आप ही हैं, पर इतना निवेदन तो अवश्य है कि जितनी मात्रामें रोग देते हैं और रोगका दुःख देते हैं, उसी अनुपातमें उस दुःखको सहन करनेकी शक्ति भी दें।

मेरे इतना कहनेपर मुझे लगा कि उनके नेत्र सजल हो उठे हैं तथा मुझसे कह रहे हैं— सचमुच, क्या तुम मुझे इतना निष्ठुर इतना

बह चले और उनसे कहने लगा— मुझसे बढ़कर अधम और कौन होगा, जो अपने शरीरके सुखके लिये आपसे प्रार्थना करता है! मुझे कुछ नहीं चाहिये। मेरी नीचताकी सीमा नहीं।

इन भावोंके प्रवाहमें मेरा मन बह चला। थोड़ी देर बाद मुझे नींद आ गयी। आज बत्तीस-तैंतीस दिन बाद नींद आ पायी थी। दो-तीन घण्टे गहरी नींदमें सोया। जगकर देखता हूँ कि विस्मयकारी परिवर्तन हो गया है। पीड़ा सोलह आनेमें चौदह आने समाप्त हो गयी है तथा सूजन भी अस्सी प्रतिशत समाप्त हो गयी है। उन कृपालुकी कृपालुताकी सीमा नहीं। उनकी कृपाका द्वार जैसे मेरे लिये खुला था और खुला है, उसी प्रकार सभीके लिये उन्मुक्त रूपसे खुला हुआ है। जिस प्रकार वे गठिया रोगको ठीक कर सकते हैं, उसी प्रकार कोई भी कार्य सम्पन्न कर देना उन सर्व-समर्थके लिये एक क्षुद्र-सी बात है। तभीसे रोगके लिये और रोग-जनित कष्टके लिये मेरा दृष्टिकोण ही दूसरा हो गया है। मैं कितना ही बताऊँ, पर लोग अनुमान लगा नहीं सकते, परन्तु यह सच है कि रोगके आने अथवा जानेके सम्बन्धमें मेरे मनमें कोई संकल्प उत्थित होता ही नहीं।

* * * * *

भगवान द्वारा सँभाल

सर्वव्यापी भगवान सर्वज्ञ हैं और परम सुहृद हैं। वे सर्वसमर्थ भगवान अपने आश्रित जनोंकी हर प्रकारसे सँभाल करते हैं। श्रीसेठजीसे एक बार जो पारस्परिक संलाप हुआ, उसका उल्लेख करके बाबाने अपनी आपबीती घटना सुनायी कि किस प्रकार निज-जन-वत्सल प्रभुने विषम क्षणोंमें मुझे सँभाला। बाबाकी ही वाणीमें वह विवरण आगे प्रस्तुत किया जा रहा है।

कर्मठ और ज्ञानी तो नहीं, पर भक्त अवश्य ही भगवत्कृपासे परम दिव्य, परम चिन्मय भगवदीय रसका आस्वादन कर पाता है। भक्तका बल है भगवानकी परम समर्थ कृपापर विश्वास। संतों-भक्तोंकी ऐसी मान्यता है कि भगवानमें एक बड़ी दुर्बलता है कि वे अपने आश्रितकी आशा कभी नहीं तोड़ते। भक्त भगवानकी इस दुर्बलताका लाभ उठा लेता है। वैचारिक

दृष्टिसे जब मेरा संक्रमण-काल था, जब अद्वैत-सिद्धान्तकी कट्टरता अपनी विदाई ले रही थी, उस समय यही विश्वास मेरे मनमें जग रहा था। भगवानकी अहैतुकी कृपापर आस्था मनमें हिलोरें ले रही थी। सन् १९३७ या ३८ की बात है। मैं ऋषिकेश (स्वर्गाश्रम) में श्रीगंगाजीके किनारे बैठा था। स्वयं ही स्वयंमें विलीन था। अपने ध्यानमें संलग्न था। पास ही सेठ श्रीजयदयालजी गोयन्दका बैठे हुए संध्या कर रहे थे। शाम होनेवाली थी। अपनी संध्यासे निवृत्त होकर श्रीसेठजी मेरे पास आकर खड़े हो गये। उनका मेरे प्रति बड़ा प्यार था। वे प्यारमें भरकर बोले— कहिये स्वामीजी! आपके प्रति क्या कहूँ, क्या निवेदन करूँ?

मैंने सहज भावसे विनम्रतापूर्वक कहा— इस समय आपके मनमें जो स्फुरित हो रहा हो, आप वही कहें।

श्रीसेठजीने पूछा— क्या कह दूँ?

मैंने कहा— आप कहें, अवश्य कहें और वही कहें।

'क्या कह दूँ' यह बात श्रीसेठजीने कभी शब्द बदलकर, कभी स्वर (टोन) बदलकर कई बार कही और मैं हर बार यही कहता कि आप अवश्य वही बात कहें। फिर वे कहने लगे— भगवान बड़े कृपा-परवश हैं। वे इतने करुणामय हैं कि यदि कोई व्यक्ति ईमानदारीसे भगवानके शरणापन्न हो जाये, भगवानपर सर्वथा निर्भर हो जाये तो भगवान उसकी सारी कामना पूर्ण कर देते है।

श्रीसेठजीके मुखसे यह बात सुनकर मुझे बड़ा विस्मय हुआ। इन दिनों मैं जिस भावनामें लहरा रहा था, मेरी जो अनुभूति थी, श्रीसेठजीने उसको ज्यों-की-त्यों वाणी प्रदान कर दी। श्रीसेठजी यदि ऐसा नहीं कहते तो भी मेरा विश्वास डिगनेवाला नहीं था, क्यों कि यह तो मेरा अनुभूत सत्य था, पर श्रीसेठजीके कहनेसे उस अनुभूत सत्यकी अत्यधिक परिपुष्टि हो गयी।

भगवानकी कृपा-शक्ति सभी नियमोंसे सर्वथा परे है। कोई भी नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता कि कब और कैसे वह कृपा किसपर ढरेगी। जो भगवानके आश्रित हो जाता है, भगवान उसकी सँभाल करते हैं और करते हैं सर्वथा अचिन्त्य रीतिसे। मेरे जीवनकी कई घटनाएँ हैं, जो इस तथ्यके पक्षमें पुष्ट प्रमाण हैं।

एक प्रसंग सुनाता हूँ—

यह प्रसंग भी सम्भवतः १९३७ या ३८ का ही है। मैं कलकत्तासे चूरू जा रहा था। बीचमें मैं बिहारके गया स्टेशनपर रुक गया। कहाँ रुकना और कब पुनः यात्रारम्भ करना, यह निश्चित था। इस कार्यक्रमके अनुसार कानपुर तार दे दिया गया था कि मैं अमुक दिनांकको अमुक ट्रेनसे इतने बजे पहुँच रहा हूँ, जिससे मेरे शौच-स्नान-भिक्षाकी व्यवस्था रहे। मेरे पास रेल टिकट कलकत्तेसे चूरूतककी थी। मैं गया स्टेशनपर आया। मुझे विदाई देने राजासाहब श्रीकृष्णेश्वरप्रसादजी भी आये। वे लगभग दो-अढ़ाई घंटे मेरे पास रहे। अब रातके लगभग बारह बज रहे थे। मैंने कहा— आप जायें। जब ट्रेन आयेगी, तब मैं चढ़ जाऊँगा। कबतक आप खड़े रहेंगे। इसके अलावा एक बात और भी है। यदि आप चले जायेंगे तो मैं कम्बल बिछाकर कुछ लेट भी लूँगा। आपके रहते मैं वह भी नहीं कर पाऊँगा।

मेरे आग्रह करनेपर राजा साहब चले गये। मेरे सामनेसे चार ट्रेनें आयीं और चलीं गयीं, पर ट्रेनमें भीड़ इतनी थी कि डब्बेमें घुसना भी सम्भव नहीं। व्यवहारकी अभद्रता मेरे द्वारा सम्भव नहीं थी और भीड़की अधिकता देखकर कोई मुझे चढ़ने नहीं देता था। मैं सोच रहा था उन कानपुरवालोंके लिये, जो मुझको लेने स्टेशनपर आयेंगे तथा मुझको न पाकर कितना परेशान होंगे। रातके दो बज गये थे। मैं स्टेशनके प्लेटफार्मपर एक बेंचपर बैठा था। तभी एक युवक मेरे सामने आकर खड़ा हो गया, एकदम गौरवर्ण और खूब हृष्टपुष्ट। मैं तो उसे पहचान गया। उसका नाम था विजय। मेरे साथ पढ़ता था। मैं उसे विजय भइया कहा करता था। वह फुटबालका बहुत उत्कृष्ट खिलाड़ी था। फुलबैककी पोजीशनसे वह खेला करता था। फुटबालके कारण वह विख्यात था। मैं भी फुटबालका खिलाड़ी था। सेंटर फारवर्डकी पोजीशनसे खेला करता था। मेरी उससे बड़ी मैत्री थी। वह सूट पहने था। मैं तो उसे पहचान गया और उसको देखकर मैंने अपनी आँखें नीची कर ली, नीची इसलिये कर ली कि क्यों अपने पुराने मित्रोंसे मिलूँ और क्यों अपने पुरातन सम्पर्कको पुनर्जीवित बनाऊँ। बादमें उसकी बातोंसे ही पता चला कि वह सी.आई.डी. का इंस्पेक्टर बन गया है तथा किसी सरकारी कामसे वह स्टेशनपर नियुक्त है। यह भी कालका कैसा प्रवाह है कि दो साथियोंमेंसे

एक संन्यासी बन गया और एक सरकारी नौकरीमें चला गया।

सूट पहने विजय दूर खड़ा होकर एकटक मेरी ओर देखने लगा। मेरेपर अपनी दृष्टि गड़ाकर वह मन-ही-मन तर्क कर रहा था कि क्या यह वही मेरा मित्र चक्रधर मिश्र है। क्रमशः उसका संदेह दूर होने लगा तथा उसने निश्चित कर लिया कि पहलेका चक्रधर मिश्र ही यह संन्यासी है। उसने मेरे प्रति कुछ कहा। मैंने अपनी नजर ऊपर उठायी। आँखोंके चार होते ही उसके निश्चयकी परिपुष्टि हो गयी। फिर वह विजय तो वही 'तू' की भाषामें बात करने लगा तथा उसने जिज्ञासा व्यक्त की– यह कैसा वेष?

मैंने कहा– हाँ, विजय भइया! तुम्हारा वह भइया अब संन्यासी हो गया है।

उसने तुरन्त पूछा– कुछ भोजन किया है कि नहीं?

मैंने कहा– मेरे पाससे अभी राजा साहब गये हैं। मुझको स्टेशनपर छोड़कर गये हैं। मेरी भिक्षा उनके यहाँ हो चुकी है।

फिर विजयने पूछा– यहाँ कैसे बैठे हैं?

मैंने सब बात बता दी। विजयने कहा– अब ट्रेनमें स्थानकी व्यवस्था हो जायेगी।

उससे बड़ी देरतक बातें होती रहीं। इसी बातके बीच पता चला कि वह सी.आई.डी. इंस्पेक्टर हो गया है। ट्रेनके आनेपर उसने पूरी एक बर्थकी व्यवस्था कर दी और मैंने आरामसे कानपुरतककी यात्रा की। अब आप ही विचार करें कि उस विजयके रूपमें भगवदीय कृपा ही तो सक्रिय हुई थी, जिसने उस निराशा पूर्ण परिस्थितिकी सारी बात सुन्दर ढंगसे बना दी। मैं कानपुर पहुँचा। जो लेने आये थे, वे एक मिलके मैनेजर थे। तारमें जिस ट्रेनका संकेत था, वह ट्रेन उन्होंने देखी, उसके बाद उन्होंने दो-तीन ट्रेनें और देखी, पर मैं होता, तब न मैं मिलता। हर बार वे परेशान होकर लौट जाते।

मैं जिस ट्रेनमें चढ़ा था, वह ट्रेन जब कानपुर पहुँची तो मैं ट्रेनसे उतरकर एक किनारे खड़ा हो गया। वे मैनेजर न मुझको पहचानते थे और न मैं उनको पहचानता था। मुझको संन्यासी देखकर वे मेरे पास आये तथा पूछा– तारसे सूचना मिली कि मेरे पास एक संन्यासी आनेवाले हैं,

उनका अमुक नाम है। क्या आप ही हैं?

मैंने विनम्र भाषामें कहा— यह नाम तो मेरा ही है।

फिर उन्होंने कहा— कहिये, आपकी क्या सेवा करूँ। मैं तो कई बार आकर लौट चुका हूँ। आपकी सेवामें कार हाजिर है।

मैंने कहा— पहले तो आप गंगा तटपर ले चलें। वहाँ शौच-स्नानसे निवृत्त होना चाहता हूँ।

वे मुझे कारपर चढ़ाकर गंगाजी ले गये। नावसे गंगाजी पार की। शौचसे निवृत्त होकर स्नान करके फिर उनके वासस्थान गया। अब पुनः विचार करें कि तारके अनुसार तो मैं कानपुर पहुँचा नहीं, बल्कि उसके बाद भी एक-दो ट्रेन छोड़ चुका था। उसके बाद भी मुझको परेशानीसे बचा लेनेके लिये उस भगवत्कृपाने उन मैनेजर साहबके अन्दर संत-सेवाकी भावना जागृत कर दी तथा वे स्टेशनपर आये। भगवत्कृपा जितनी सँभाल करती है, उतनी मानवी शक्ति नहीं कर सकती।

* * * * *

बाँकुड़ा में भावमयी स्थिति

श्रीसेठजीका व्यापार-व्यवसाय बाँकुड़ामें था, जो बंगाल प्रदेशका एक नगर है। श्रीगीताजीकी टीकाके लेखनके कार्यसे बाबाको श्रीसेठजीके साथ-साथ रहना पड़ता था, अतः समय-समयपर उनके साथ बाँकुड़ा जाना पड़ता था। बाँकुड़ामें रहते समय बाबाकी जो भावमयी स्थिति थी, उसका वर्णन बाबाने एक बार एक समीप विराजित श्रेष्ठ संतके समक्ष स्वयं किया था। भगवत्प्रेम और भगवत्कृपाकी महिमाका वर्णन करते हुए बाबाने उनसे कहा था—

जिस व्यक्तिपर भगवानकी कृपा ढल जाती है और जिसको भगवानका साक्षात्कार हो जाता है, उसकी स्थिति और अनुभूति कुछ विचित्र ही होती है। उसे न भूखका ध्यान रहता है और न प्यास। न निद्रा सुहाती है और न जागरण। उसमें न कोई जिज्ञासा रहती है और न कोई प्रश्न ही। उसकी दृष्टि में न भूत रहता है और न भविष्य। बस, एक चाह उसके हृदयमें उमड़ती रहती है कि नीलसुन्दरको पकड़कर अपनी छातीसे चिपका लूँ।

मैं अपनी एक स्थितिकी बात बतलाता हूँ। गीताप्रेससे श्रीमद्भगवद्गीताकी एक टीका प्रकाशित है। इसका नाम 'गीता तत्त्व विवेचनी' है। सन् १९३९ के आरम्भिक मासकी बात है। गीता तत्त्व विवेचनीके प्रणयनका कार्य पूर्णताकी ओर था। उस समय मैं श्रीसेठजीके साथ बाँकुड़ामें था। मेरे जिम्मे कार्य यह था कि श्रीमद्भगवद्गीताके एक श्लोकपर जिन-जिन आचार्योंने जो-जो कहा है, उसका पठन और मनन करना और फिर अपने चिन्तन-सारांशको पारस्परिक विचार-विनिमयके समय बतलाना तथा इस गोष्ठीमें विचार-मन्थनके उपरान्त जो निर्णीत हो, उसको लिपिबद्ध करना। इस सारे निर्णीत चिन्तनको स्वच्छ और सुन्दर लेखमें लिखकर श्रीसेठजीको मैं दे देता था, जिससे छपनेके लिये गीताप्रेस भेज दिया जा सके। यह सारा कार्य दिनमें होता था।

सूर्यास्तके बाद मैं छतपर चला जाता था। यह एक कारखानेकी छत थी। छत बहुत बड़ी थी। उस छतपर मैं टहलता था तथा अपनी मस्तीमें गुनगुनाता-गाता रहता था। मुझे पता नहीं था कि नीचे मजदूर लोग मेरी गुनगुनाहटको सुन रहे हैं। यह तो बादमें पता चला कि वे मजदूर चुपचाप सुना करते थे। कोई छतपर आता नहीं था। उनको इस बातका भय रहता था कि छतपर जानेसे इस गुनगुनाहटका प्रवाह बन्द हो जायेगा। रातके लगभग आठ-नौ बजेतक यह गुनगुनाहट चलती रहती थी और आँखोंसे आँसू झरझर बहते रहते थे। मैं उनको रोकना चाहता था, पर रोक सकना संभव नहीं हो पाता था। फिर रातको ध्यान करनेके लिये बैठता। ध्यानकी प्रगाढ़तामें समयकी सुधि नहीं रहती। रातमें कठिनतासे दो-तीन घण्टे नींद आ पाती थी। फिर सुबह मैं उठता। मेरे जिम्मे जो काम था, उसको करना आवश्यक था। ग्रन्थोंमें आचार्योंके विचारोंको देखना और फिर गोष्ठीके निर्णयको स्वच्छ लेखमें लिखना, यह सब करना पड़ता था, किन्तु यह काम बड़ी कठिनाईसे हो पाता था। मनको पढ़ने-लिखनेके काममें जबरदस्ती लगाना होता था।

जब जीवन भगवत्कृपासे संसिक्त हो जाता है, उस समय कृपा-स्नात व्यक्तिका जीवन क्या होता है, उसकी कल्पना जगतके लोग कर ही नहीं सकते। श्रीनारायण स्वामीका एक प्रसिद्ध पद है 'जाहि लगन लगी घनश्याम की'। उस पदमें वर्णित स्थितिकी एक-एक बात पूर्णतः यथार्थ है।

क्षेत्र-संन्यास का नवीन अर्थ

सन् १९३९ ई. के अप्रैल मासमें 'गीता तत्त्व विवेचनी' के लिखनेका कार्य पूर्ण हो चुका था। इस लेखन-कार्यकी सम्पन्नता बाँकुड़ामें हुई थी, जो पश्चिमी बंगालका एक नगर है। उस समय श्रीसेठजी तथा बाबा तो बाँकुड़ामें थे ही, बाबूजी भी वहीं थे। 'गीता तत्त्व विवेचनी'के कार्यके सम्पन्न हो जानेके बाद प्रश्न यह था कि बाबा अब कहाँ रहें। इसके बारेमें अन्तिम निर्णय तो बाबाको ही लेना था, पर श्रीसेठजीकी चाह थी कि अटकसे कटकतक तथा काश्मीरसे कन्याकुमारीतक अर्थात् सम्पूर्ण भारतमें श्रीमद्भगवद्गीताके प्रचारके लिये बाबा मेरे साथ रहें। बाबाकी स्मरण-शक्ति, विषय-प्रवेश, तत्त्व-बोध, वक्तृत्व-क्षमता, उत्तर-पटुता, प्रतिपादन-शैली, आध्यात्मिक स्थिति, साधु-जीवन आदिको देखते हुए श्रीसेठजीके द्वारा ऐसा सोचा जाना उचित ही था। श्रीसेठजी तो बाबाके बारेमें इस प्रकार सोच हीं रहे थे और बाबा भी श्रीसेठजीकी ब्राह्मी-स्थितिपर विमुग्ध थे। बाबाकी यह मान्यता थी कि ज्ञानकी चतुर्थ भूमिकापर श्रीसेठजीकी स्थिति नित्य बनी रहती है। गुणग्राही बाबाका भी श्रीसेठजी जैसे संतके प्रति आकृष्ट रहना स्वाभाविक था।

इधर तो श्रीसेठजी और बाबा, दोनों एक दूसरेके प्रति आकृष्ट होकर इस प्रकार विचार कर रहे थे, उधर २६ या २७ या २८ अप्रैल १९३९ को एक विशेष बात घटित हो गयी। बाबा अपने उपासना-कक्षमें बैठे हुए थे। बाबाके सामने अपने उपास्यका चित्रात्मक श्रीविग्रह विराजित था वह चित्र, जिसमें भगवान श्रीकृष्ण यमुना-तटपर अकेले खड़े हुए हैं, खड़े-खड़े वंशी-वादन कर रहे हैं और वह वंशी वक्षः स्थलसे लगी हुई है। बाबाने एक बार कहा था कि मुझे भगवान श्रीकृष्णकी जिस रूप-माधुरीका दर्शन मिला है, उस छविकी कुछ-कुछ अनुहार इस चित्रमें है। बाबाका यह उपास्य श्रीविग्रह चिन्मय हो उठा और बाबाको दिखलायी दिया कि श्रीविग्रहके दोनों अधर हिल रहे हैं। बाबाका ध्यान उसपर और अधिक केन्द्रित हो गया। अधरोंका हिलना ही नहीं, उसीमें भगवान श्रीकृष्ण प्रकट हो गये। बाबाका हृदय

आनन्दसे भर गया।

भगवान श्रीकृष्णने बाबासे पूछा— गीताकी विवेचनपूर्ण तात्त्विक व्याख्याके लिखनेका कार्य तो पूरा हो गया। अब मुझे यह बतलाओ, अट्ठारहवें अध्यायके ६८ वें तथा ६९ वें श्लोक—

> य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति।
> भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः।। ६८।।
> न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
> भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि।। ६९।।

इन दोनों श्लोकोंके प्रतिपाद्य तथ्यके बारेमें तुम्हारी क्या धारणा है?

इस प्रश्नको सुनकर बाबाने कहा— सभी आचार्योंने तथा श्रेष्ठ टीकाकारोंने 'य इमं परमं गुह्यं' का अर्थ श्रीमद्गीता ही माना है तथा श्लोकका अर्थ ऐसा लगाया है कि इस परम गुह्य गीताशास्त्रका जो मेरे भक्तोंमें प्रचार करेगा, वह मुझे ही प्राप्त होगा और भू-मण्डलमें उससे बढ़कर प्रियतर मेरे लिये कोई होगा नहीं। आचार्योंके इसी मतको मैं भी मानता हूँ।

भगवान श्रीकृष्णने कहा— एक दृष्टिसे यह अर्थ पूर्णतः सही है, परंतु 'य इमं परमं गुह्यं'का परम गूढ अर्थ कुछ और ही है। इसका वास्तविक अर्थ है 'सर्वगुह्यतमं परमं वचः' जो इसी अध्यायके ६४ वें श्लोकमें है।

इस वाक्यको सुनते ही बाबाके अन्तरमें ६४ वाँ श्लोक उभर गया—

> सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः।
> इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम्।। ६४।।

बाबाकी प्रतिभा तो प्रखर थी ही। इस श्लोकके उभरते ही एक-एक शब्दके गर्भमें निहित अर्थ भी उभरने लगे। 'सर्वगुह्यतमं' शब्द गीतामें केवल एक बार यहीं आया है और इस सर्वगुह्यतम-परम-वचनका अर्थ है—

> मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
> मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे।। ६५।।

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥ ६६॥

६४ वें श्लोकमें 'सर्वगुह्यतमं'के तुरंत बाद 'भूयः' शब्द इसलिये आया है कि 'मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु' यह पंक्ति ज्यों-की-त्यों नवें अध्यायके ३४ वें श्लोकमें आ चुकी है और यही बात भगवान 'भूयः' अर्थात् पुनः कहने जा रहे हैं तथा यही भगवानका सर्वगुह्यतम-परम-वचन है। इन बातोंको यहाँ लिखने-पढ़नेमें कुछ क्षण तो लगे ही, पर बाबाको यह अर्थ-बोध होनेमें क्षण भी शायद ही लगा हो और फिर तुरंत बाबा भगवान श्रीकृष्णसे पूछ बैठे— तो क्या सर्व-धर्मका परित्याग करके तुम्हारे प्रति सर्व-भावसे आत्म-समर्पण करना ही श्रीगीताजीका सर्वगुह्यतम प्रतिपाद्य तथ्य है और इसका आचरण करनेवाला एवं इस तथ्यका प्रचार करनेवाला ही तुमको सर्वाधिक प्रिय है?

भगवान श्रीकृष्णने कहा— वस्तुतः यही सर्वगुह्यतम तथ्य है। गीताके सर्वान्तमें ज्यों ही यह सर्वगुह्यतम-परम-वचन कहा गया, त्यों ही तथ्यके रक्षार्थ मुझे यह भी तुरंत कहना पड़ा कि जिस व्यक्तिके जीवनमें तप न हो, भक्ति न हो, श्रवणेच्छा न हो और श्रद्धा न हो, ऐसे अतपस्वी-अभक्त-अश्रवणेच्छुक-असूयाप्रिय व्यक्तिके सामने इस परम रहस्यमय तथ्यका कथन नहीं करना चाहिये।

अब बाबाके मनकी विचित्र स्थिति थी। एक नवीन अर्थ, एक नवीन दृष्टि पानेका मनमें परम उल्लास था, पर साथ ही एक आत्यन्तिक खेद भी था कि हाय, व्यर्थ ही मैंने इतने दिवस खो दिये। अपने उल्लासको छिपाते हुए बाबाने भगवान श्रीकृष्णको उपालम्भ दिया— यह अर्थ पहले क्यों नहीं बतलाया? पहले बता देते तो क्या कोई हानि हो जाती? अबतक मुझे भ्रममें क्यों डाले रखा?

भगवान श्रीकृष्णने कहा— मुझे तुम्हारे द्वारा 'गीता तत्त्व विवेचनी' के लेखन-कार्यको सम्पन्न करवाना था। तुम्हारे सहयोगके अभावमें यह कार्य पूर्ण हो ही नहीं पाता। ज्यों ही यह कार्य सम्पन्न हुआ, इन श्लोकोंका मर्म अब तुम्हारे सामने उद्घाटित कर दिया।

इस नवीन दृष्टिको देकर भगवान श्रीकृष्ण तो तिरोहित हो गये

और इसके साथ-साथ परिवर्तित हो गयी बाबाकी विचार-धारा भी। इस सद्योद्‌घाटित नवीन अर्थके बाद बाबाने यही सोचा— क्षेत्र-संन्यासका नियम लेकर वृन्दावन-वास किया जाये। कर्मयोगकी अथवा ज्ञानयोगकी पद्धतिसे जो साधना किया करते हैं, वे किया करें अथवा कर्म-ज्ञान-भक्तिकी सम्मिलित पद्धतिके अनुसार जो साधनपथपर चलना चाहते हैं, वे उसी पथका अनुसरण करें, परंतु श्रेष्ठतम सरलतम एवं सरसतम साधन है समर्पण-योगका, जो 'मन्मना भव ....' तथा 'सर्वधर्मान्परित्यज्य ....' वाले श्लोकोंमें प्रतिपादित हुआ है। पूर्ण समर्पणमय प्रेमयोगकी रसमयी साधना जितना और जैसा लोकोत्तर सुख प्रदान कर सकती है, वह अन्य किसीके द्वारा सम्भव है ही नहीं।

क्षेत्र-संन्यास लेकर वृन्दावन-वास करनेका विचार अधिकाधिक प्रबल होता जा रहा था, इसके बाद भी एक और विचार बाबाके मनमें सक्रिय था। गीता-प्रचारकी भावना तो सर्वथा निवृत्त हो चुकी थी; हाँ, संत-सेवाकी भावना अभी भी मनमें बनी हुई थी। बाबा ऐसा भी सोच रहे थे— श्रीसेठजी सच्चे संत हैं, सिद्ध संत हैं और ऐसे सच्चे सिद्ध संतकी किंचित् सेवा मेरे द्वारा सम्पन्न हो सके तो यह मेरा सौभाग्य होगा।

इन्हीं भावोंसे भावित हुए बाबा श्रीसेठजीके पास गये तथा वृन्दावन-वासकी अभिलाषा उनके सामने व्यक्त की। श्रीसेठजीने कहा— मेरी तो ऐसी इच्छा है कि आप मेरे साथ रहें और अवश्य रहें, जिससे गीता-प्रचारका कार्य और तीव्र गतिसे हो सके।

बाबाने कहा— आपके साथ रहनेकी चाह तो मेरी भी है, पर मैं तो किसी और हेतुसे आपके साथ रहना चाहता हूँ। अब आपका शरीर वृद्ध हो चला है और फिर आपकी आँखोंमें मोतिया-बिन्दु हो गया है। नेत्र-ज्योतिके अत्यन्त क्षीण हो जानेपर किसी-न-किसीसे सेवा करवानेकी आवश्यकता आपको पड़ेगी ही। ऐसी स्थितिमें मैं तो आपकी लाठी पकड़नेके लिये आपके साथ रहना चाहता हूँ। यदि इसके लिये आप स्वीकृति प्रदान करें तो मैं स्वयंको धन्य मानूँगा।

श्रीसेठजीने तुरंत उत्तर दिया— इस नश्वर शरीरकी सेवाके लिये मैं आपको अपने पास नहीं रखना चाहता। मैं तो आपको साथ रखना

चाहता था श्रीमद्भगवद्गीताजीके प्रचार-कार्यके लिये।

बाबाने विनम्र स्वरमें निवेदन किया— मैं तो आपकी सेवा करनेके विचारसे आपके साथ रहना चाहता था, पर मेरा यह प्रस्ताव आपको स्वीकार ही नहीं है।

श्रीसेठजीकी तथा बाबाकी लगभग एक-डेढ़ घंटेतक बातचीत होती रही। लोक-संग्रहकी भावनासे प्रेरित होकर श्रीसेठजी चाहते थे कि बाबा किसी प्रकारसे गीता-प्रचारके लिये राजी हो जायें, पर गीता-प्रचार और धर्म-प्रचारके प्रति वैसी महत्त्व-बुद्धि अब बाबाके मनमें रह नहीं गयी थी। श्रीसेठजीद्वारा दिया गया सारा प्रबोध-उद्बोध बाबाको अपने निश्चयसे विचलित नहीं कर पाया। फिर तो खिन्न मनसे श्रीसेठजीने बाबाको क्षेत्र-संन्यास लेकर वृन्दावन-वास करनेके लिये अपनी सहमति प्रदान कर दी।

श्रीसेठजीसे विदाई लेकर बाबा अन्तिम विदाई लेनेके लिये बाबूजीके पास आये। बाबूजीके पास भी बात करते-करते लगभग एक- डेढ़ घंटा लग गया। क्षेत्र-संन्यासका व्रत लेकर वृन्दावन-वास करनेके निर्णयका बाबूजीने अनुमोदन नहीं किया। इतना ही नहीं, बाबूजीने इस विचारका परित्याग कर देनेके लिये अनुरोध किया, परंतु इस समय तो बाबाके मन और मस्तिष्कमें भगवान श्रीकृष्णद्वारा सद्योद्घाटित नवीन तथ्य समाया हुआ था। बाबाके मनमें अब यही लगी हुई थी कि कब वृन्दावन पहुँचूँ तथा क्षेत्र-संन्यासका नियम ले लूँ। बाबूजीने बाबाको उस निश्चयसे विरत करनेका बड़ा प्रयास किया। जिस तरह श्रीसेठजीने बाबाको रोकनेका प्रयास किया, उसी प्रकार किया बाबूजीने भी। बाबाको रोकनेका प्रयास इन दोनों महापुरुषोंद्वारा हुआ, परंतु इन दोनों महापुरुषोंके उद्देश्यमें अन्तर था। विगत अढ़ाई वर्षकी अवधिमें बाबूजीको बाबाकी 'पात्रता' का परिचय मिल चुका था। बाबूजीकी पैनी दृष्टि बाबाके जीवनमें किसी ऐसे दिव्य एवं भव्य भविष्यकी सम्भावनाको देख रही थी, जिसकी उपलब्धि ऋषि-मुनि-गणको भी दुर्लभ हो। श्रीसेठजीद्वारा रोके जानेका उद्देश्य था जगतमें श्रीगीता-तत्त्वका चुतर्दिक् प्रचार हो और बाबूजीद्वारा रोके जानेका उद्देश्य था जगतमें प्रेम-धर्मके आदर्शकी प्रतिष्ठा हो। बाबूजीने बाबाको बहुत समझाया, परंतु बाबा भला इस बातको कब सुनने-समझनेके लिये प्रस्तुत थे।

समझाने- बुझानेके प्रयासको असफल देखकर बाबूजीने आत्मीयता पूर्वक कहा— हमलोग चाहेंगे, तब न आप जा पायेंगे। देखें, आप वृन्दावन कैसे जाते हैं?

बाबूजीकी इस प्यार भरी उक्तिका विनोद भरी भाषामें उत्तर देते हुए बाबाने कहा— आप लोग रेल-टिकट नहीं देंगे तो क्या हुआ? भगवानने इस शरीरमें दो पैर दे रखे हैं, पैरोंमें चलनेकी शक्ति दे रखी है और लोगोंसे मार्ग पूछनेके लिये मुखमें वाणी दे रखी है। लोगोंसे मार्ग पूछते-पूछते बाँकुड़ासे आसनसोल चला जाऊँगा, आसनसोलसे रेलकी पटरीके किनारे-किनारे चलते हुए हाथरस पहुँच जाऊँगा और फिर हाथरससे वृन्दावन।

इसके बाद बाबा बाबूजीके पाससे अपने उपासना-कक्षमें आकर बैठ गये। सामने अपने उपास्यका श्रीविग्रह था। पुनः भगवान श्रीकृष्ण उस चित्रात्मक श्रीविग्रहमेंसे प्रकट हो गये। भगवानने पूछा— तुम वृन्दावन क्यों जाना चाहते हो?

बाबाने बतलाया— इसलिये कि वह तुम्हारी लीला-भूमि है।

भगवान श्रीकृष्णने पुनः पूछा— हनुमानप्रसादके संतत्वके बारेमें तुम्हारी संदेह-रहित मान्यता क्या है?

बाबा— मैं उनको सिद्ध कोटिका संत मानता हूँ।

भगवान श्रीकृष्ण— सिद्ध कोटिका संत किसे कहते हैं?

बाबाने तुरंत कहा— जिसका मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार सभी कुछ भगवत्स्वरूप ही हो जाता है, वही सिद्ध संत है। उसकी अहं भावना सर्वथा-सर्वांशमें सर्वदाके लिये विगलित हो जाती है। उसका हृदय तुम्हारी लीला-भूमि बन जाता है।

इसी उत्तरकी अपेक्षा और प्रतीक्षा थी। इस उत्तरको सुनते ही भगवान श्रीकृष्णने कहा— जब तुम हनुमानप्रसाद पोद्दारको सिद्ध संत मानते हो तो उनमें और वृन्दावनमें भला क्या अन्तर रहा? उनके अन्तःकरण-चतुष्टयपर मेरा ही पूर्ण रूपसे अधिकार है। उनके हृदय-पटलपर मैं ही विलसित हूँ। यदि यह सचल वृन्दावन है तो वह अचल वृन्दावन है।

बाबाको यह समझनेमें देर नहीं लगी कि जहाँ श्रीकृष्णका नित्य निवास और विलास है, वहीं वृन्दावन है। भगवत्प्राप्त संतके मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार-इंद्रियके पीछे रह जाता है केवल-केवल भगवानका अस्तित्व। उस संतके व्यक्तित्वपर रहता है एक मात्र भगवानका अधिकार और उस संतके माध्यमसे सदा-सर्वत्र सक्रिय रहते हैं पूर्णतः भगवान ही। ऐसे संतके स्थूल शरीरमें और वृन्दावनमें देखने-भरका अन्तर रहते हुए भी वस्तुतः अन्तर होता ही नहीं। भगवान श्रीकृष्णके प्रश्नका कोई उत्तर बाबा दे नहीं पाये, अपितु यह कहना चाहिये कि अपनी मूक वाणीके द्वारा बाबाने स्वीकार कर लिया कि बाबूजीके स्थूल शरीरमें और वृन्दावनमें कोई अन्तर नहीं है। थोड़ी देर बाद भगवान श्रीकृष्णने फिर कहा— अब तुमको चलता-फिरता साक्षात् वृन्दावन सुलभ है, तब अन्यत्र जानेकी क्या आवश्यकता है और इससे अधिक तुम्हें और चाहिये ही क्या?

भगवान श्रीकृष्णके ऐसा कहते ही वृन्दावन-वासके सम्बन्धमें बाबाके मनका निश्चय तो ज्यों-का-त्यों रहा, पर उसके बाह्य स्वरूपमें अन्तर आ गया। क्षेत्र-संन्यासका व्रत लेकर वृन्दावनमें वास करनेका निश्चय वैसा-का-वैसा ही था, पर अब 'क्षेत्र'के अर्थमें परिवर्तन होनेसे क्षेत्र-संन्यासका स्वरूप दूसरा हो गया। अब उस मथुरा-मण्डलान्तर्गत अचल वृन्दावनमें वास नहीं करना है, अपितु इस सचल वृन्दावन श्रीपोद्दारजीके नित्य पास, निरन्तर साथ रहना है। 'क्षेत्र'के नवीन अर्थके अनुसार अब बाबाने बाबूजीके साथ सदा-सर्वदा रहनेका निश्चय कर लिया। बाबूजीके साथ नित्य रहनेका निश्चय होते ही मनमें एक उलझन उत्पन्न हो गयी कि उनके नित्य साथ रहनेका स्वरूप क्या हो? मनमें उचित समाधान स्फुरित नहीं होनेपर बाबाने भगवान श्रीकृष्णके समक्ष अपनी उलझन रख दी। भगवान श्रीकृष्णने कहा— सूर्योदयसे लेकर सूर्योदयतक (अर्थात् चौबीस घंटे) की अवधिमें एक बार श्रीपोद्दारजीका दर्शन कर लो, भले यह दर्शन एक क्षणका ही हो। इसके अतिरिक्त जबतक श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार प्रसन्न चित्तसे अनुमति न दें, तबतक वृन्दावन-धाममें मत जाना।

इतना कहकर भगवान श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये। अब बाबाके मनसे वृन्दावन जानेका निश्चय विसर्जित हो गया था। बाबा अपने उपासना-कक्षसे उठकर बाबूजीके पास आये। बाबूजी अपने सम्पादन-कार्यमें

संलग्न थे। बाबूजीके पास बैठकर बड़े मीठे शब्दोंमें बाबाने कहा— भाईजी! अब मैं वृन्दावन नहीं जाऊँगा।

बाबूजीने कहा— आपको कौन रोकता है? आप वृन्दावन जाइये। लोग आपको वृन्दावनका मार्ग भी बता देंगे।

बाबूजीके घुटनोंको प्यार भरे हाथोंसे सहलाते हुए बाबा पुनः कहने लगे— नहीं भाईजी! अब वृन्दावन जानेका विचार छोड़ दिया है। अब तो एक ही बात है। सदा आपके पास आपके साथ रहना है। बस, चौबीस घंटेमें एक बार आपका दर्शन मिल जाया करे।

परखनेके लिये बाबूजीने आनाकानी कम नहीं की, परंतु अन्तमें बाबाको अपने मनुहारमें सफलता मिली। अपने पास नित्य साथ रहनेके लिये बाबूजीने बाबाको अपनी अनुमति प्रदान कर दी।

* * * * *

मातृ-चरण के अन्तिम दर्शन

अपने पास नित्य साथ रहनेके लिये बाबूजीने बाबाको ज्यों ही अनुमति प्रदान की, बाबाको परमाह्लाद हुआ। यह जीवन-धारामें एक महत्त्वपूर्ण मोड़ था। एक नवीन अध्यायका शुभारम्भ था। नित्य साथ रहनेके व्रतका जीवनमें निर्वाह भली प्रकारसे हो, इसके लिये बाबा पूर्ण रूपसे कटिबद्ध थे। बस, एक बाधा थी। बाबाको अपनी जन्मदात्री माँकी स्मृति कभी-कभी गहराईसे हो आया करती थी। इस स्मृतिसे भी ऊपर उठ जानेके लिये बाबा अपनी माँसे एक बार और अन्तिम बार मिलना चाहते थे और इस मिलनके लिये वे बाबूजीसे प्रसन्न आज्ञा प्राप्त करना चाह रहे थे। इस भावसे प्रेरित होकर बाबाने बाबूजीसे कहा— मैं आपसे एक बात और कहना चाहता हूँ, पर अपनी बात मैं तब बताऊँगा, जब आप पहले उसके लिये स्वीकृति प्रदान कर दें।

बाबूजी— पता नहीं, आप क्या कहेंगे?

बाबा— मैं आपसे किसी अशुभ अथवा असत्य बातके लिये तो अनुरोध करूँगा नहीं, फिर आपको स्वीकृति देनेमें क्या आपत्ति है?

बाबूजी— पहले आप अपनी बात तो कहें।

बाबा— मुझे अपनी जन्मदात्री माँकी स्मृति कई बार आती है। मैं अपनी माँका दर्शन एक बार करना चाहता हूँ। यह मेरे लिये अन्तिम दर्शन होगा। आप कह दें कि अपनी माँका दर्शन करके आप मेरे पास आ जायें।

बाबूजी— इसके लिये आपको कौन रोकता है?

बाबा— यही तो मैं कहता हूँ कि आप वाणीका घुमाव-फिराव छोड़कर सीधे-सीधे कह दीजिये।

बाबूजीने बाबाको अपनी माताजीका दर्शन कर आनेके लिये कह दिया। अनुमति मिलनेपर बाबाने बाबूजीसे कहा— मैं आपसे एक आश्वासन और चाहता हूँ।

भगवान श्रीकृष्णसे वार्तालाप होनेके बादसे बाबाको बाबूजीके स्वरूप, उनके सामर्थ्य, उनकी महत्ता, उनके प्रभावका परिज्ञान हो चुका था। बाबूजीने पूछा— क्या चाहते हैं?

बाबाने कहा— अपने गाँव जानेपर माँकी ममताके कारण मेरे सामने कोई बाधा या उलझन उपस्थित न हो। बस, माँका अन्तिम दर्शन करके आपके पास आ जाऊँ। माँके पास जानेकी स्फुरणा मनमें अवश्य उठती है, किंतु मेरे पैर गाँवपर जानेके लिये उठ पायेंगे आपसे आश्वासन मिलनेके बाद ही कि किसी प्रकारकी कोई बाधा खड़ी नहीं होगी।

बाबूजीने यह भी आश्वासन प्रसन्न मनसे बाबाको दे दिया। आश्वस्त मनसे बाबाने अपने गाँव जानेके लिये बाँकुड़ासे प्रस्थान किया। बाबाके लिये बाबूजीने द्वितीय श्रेणीकी रेल-टिकट कटवा दी। उन दिनों रेलगाड़ीमें चार श्रेणियाँ—प्रथम, द्वितीय, मध्यम और तृतीय हुआ करती थीं। द्वितीय श्रेणीके डिब्बेमें भीड़से उत्पन्न होनेवाली परेशानीका प्रश्न ही नहीं था। बाबाको रेलगाड़ीमें चढ़ानेके लिये बाबूजी स्वयं स्टेशनपर आये और रेलगाड़ीके चल देनेके बाद ही बाबूजी स्टेशनसे वापस लौटे।

द्वितीय श्रेणीकी टिकट कटवाते समय बाबूजीने सोचा कुछ और था और विधि-विधानसे हो गया कुछ और ही। द्वितीय श्रेणीके डिब्बेमें बाबाके बगलमें एक ईसाई-दम्पति बैठे हुए थे। उस ईसाई व्यक्तिको एक हिन्दू संन्यासी सह्य नहीं हो पा रहा था। उस ईसाई व्यक्तिने बाबाको धकियाना शुरू किया। उसके दुर्व्यवहारकी उपेक्षा करते हुए बाबा शान्त बैठे रहे।

इसपर भी उस ईसाईकी धृष्टता कम नहीं हुई। संन्यासी होनेके नाते बाबाने उसकी धृष्टताको सह लिया और एक ओर सरक गये। बाबा ज्यों-ज्यों शिष्टता बरतते, त्यों-त्यों उसकी धृष्टता बढ़ती जाती। बाबा बार-बार सरकते जाते और जब सरकनेके लिये स्थान ही नहीं रहा तो बर्थसे नीचे उतरकर डिब्बेके फर्शपर बैठ गये। अब उस ईसाईकी धृष्टताने दुष्टताका रूप ले लिया। बर्थके नीचे बैठ जानेके बाद भी जब वह ईसाई अपनी दुश्चेष्टासे बाज नहीं आया, तब बाबा तुरंत खड़े हो गये और आँख निकालकर कड़क आवाजमें बोले— Am I not a man (क्या मैं एक मानव नहीं हूँ)?

बाबाका ऐसा बोलना था कि उस ईसाईकी मेम घबड़ा उठी। उस मेमने भयभीत वाणीमें अपने पतिसे कहा— तुम शान्त रहो, तुम शान्त रहो। इसे तंग मत करो। यह पागल है। तुम पागलको तंग मत करो। कहीं हमला कर दे तो क्या होगा?

मेमके कहनेपर वह ईसाई अपनी सीटपर बैठ गया और बाबा भी अपनी सीटपर बैठ गये। जिस डिब्बेमें बाबा बैठे थे, उसी डिब्बेमें एक और यात्री चढ़ गये। वे जातिके क्षत्रिय थे और स्वभावसे सात्त्विक थे। वे यात्री बाबाके पास ही बैठ गये। बिना कारण ही उस यात्रीके मनमें बाबाके प्रति एक प्रकारका खिंचाव-सा होने लगा। वे मन-ही-मन सोचने लगे कि ये संन्यासी हैं, पता नहीं, इनके पास रेल-टिकट है या नहीं। यदि रेल-टिकट नहीं होगी तो टिकट-चेकर इन्हें तंग करेगा। पूछकर पता लगा लेना चाहिये और यदि रेल-टिकट नहीं हो तो उसकी व्यवस्था मैं क्यों नहीं कर दूँ? फिर उस यात्रीने आदरपूर्वक वन्दन करनेके उपरान्त बाबासे पूछा— स्वामीजी! क्या आपके पास रेल-टिकट है?

अपनी रेल-टिकट दिखलाते हुए बाबाने कहा— यह देखिये, मेरे पास द्वितीय श्रेणीकी टिकट है।

उस यात्रीका मन निश्चिन्त हो गया, परंतु उसका मन अधिकाधिक बाबाकी ओर आकृष्ट होता चला जा रहा था। उन्होंने मन-ही-मन सोच लिया कि मुझे इन स्वामीजीके साथ चलना है। जहाँ ये रेलसे उतरेंगे, वहीं मैं भी उतर जाऊँगा तथा इन्हें जिस स्थानपर जाना होगा, वहाँ जानेके लिये रेल या बसकी टिकट कटाकर अथवा टैक्सीमें चढ़ाकर इनके जानेकी

व्यवस्था कर दूँगा। ऐसा ही उन्होंने किया भी। गया स्टेशनपर उतरनेके बाद गाँवतक पहुँचनेका प्रबन्ध उन्होंने कर दिया। वस्तुतः योग-क्षेम वहन करनेवाले भगवान सबकी सुधि रखते हैं और अकारण सुहृद् भगवानकी यह मङ्गलमयी लीला थी कि उस यात्रीको प्रेरणा देकर भगवानने बाबाकी सारी व्यवस्था कर दी। बाबाका नियम था कि मैं किसीसे कुछ याचना नहीं करूँगा, पर इस अयाचित और अद्‌भुत व्यवस्थाके फलस्वरूप बाबा अपने गाँव ठीक प्रकारसे पहुँच गये।

बाबा सूर्यास्तके समय गाँवपर पहुँचे थे। माँकी ममता अपने पुत्र चक्रधरके लिये अत्यधिक विकल थी। यह ममता कभी कल्पना भी नहीं कर पाती थी कि मेरा चक्रधर अब कभी गाँवपर आयेगा और मैं अपनी आँखोंसे उसे देख पाऊँगी। यह अकल्पनीय बात इस समय प्रत्यक्ष थी। बाबाके आनेकी जानकारी घरमें ज्यों ही दी गयी, त्यों ही माँ अपनी सुध-बुध खोये हुए, अपने वस्त्रोंकी सँभाल भुलाये हुए घरके बाहर आयी। उस सित-केशी कृश-वदना अति-वृद्धा माँने देखा कि मेरा लाल मेरे द्वारपर खड़ा है, पर अपने लालको देखकर भी वह नहीं देख पा रही थी। भावका आवेग इतना अधिक हो रहा था कि अपने द्वार-स्थित लालसे ही वह भाव-भ्रमिता वृद्धा पूछने लगी— क्या मेरे बेटेको तुमने देखा है? तुम बताओ तो कि मेरा बेटा कहाँ गया है? वह क्यों चला गया है? सच बताओ, क्या तुमने मेरे बेटेको देखा है? वह कबतक आयेगा? बस, एक बार मिल लेता।

वात्सल्यके प्राबल्यने माँके व्यक्तित्वको नख-शिख झकझोर दिया था। भावावेगमें वह अपने बेटेको ही नहीं पहिचान पा रही थी। उन्मादिनीकी भाँति न जाने कितने प्रकारकी जिज्ञासाएँ वह व्यक्त कर रही थी। माँकी उन्माद-भरी स्थितिको देखकर बाबा चकित थे। बाबा बहुत देरतक चुपचाप खड़े रहे। पास- पड़ोसके लोग भी आ गये थे, पर माँको था न तो पड़ोसियोंका ध्यान और न स्वयंका भान। बाबाके लिये समस्या बन गयी कि किस प्रकार माँ प्रकृतिस्थ हो। बाबाको अपने बचपनकी एक बात याद आ गयी। अपने बचपनमें बाबा कई बार चञ्चलतावशात् अपनी माँसे हठकर बैठते थे कि मैं स्तन-पान करूँगा। माँ कहती कि अब इन शुष्क स्तनोंमें दूध नहीं है, पर हठी पुत्रके समक्ष उसको झुकना पड़ता। शुष्क

स्तनोंको चूसते-चूसते कौतुकी पुत्रद्वारा कभी दाँत गड़ा दिये जानेपर माँ डाँटने लगती और कहने लगती कि 'अरे कोढ़िया! अरे कोढ़िया!! यह क्या रे? यह तू क्या कर रहा है रे?' इससे अधिक वह परम वत्सला माँ कहती भी क्या? इस प्रसंगकी स्मृति होते ही वात्सल्य-भावोन्मादिनी माँको प्रकृतिस्थ करनेके लिये बाबाके मनमें एक उपाय उभरा। आस-पास खड़े हुए लोगोंकी लज्जाको छोड़कर और संन्यासीपनके भावसे ऊपर उठकर बाबाने सबके सामने ही अपनी माँके स्तनोंपर अपने दाँत गड़ा दिये, वैसे ही गड़ा दिये, जिस प्रकारसे अपने बचपनमें किया करते थे। दाँतका गड़ाया जाना था कि माँको अपने पुत्रकी उपस्थितिका परिज्ञान हो गया। अपने लालके मस्तकको माँने अपनी छातीसे चिपका लिया। अब अश्रु केवल माँके कपोलको ही नहीं भिगो रहे थे, अपितु उस संन्यासी पुत्रके मुण्डित शीशपर भी बह रहे थे। अपने लालके शीशको अपनी छातीसे चिपकाये माँ बहुत देरतक खड़ी रही।

भावके किञ्चित् शमित होनेपर माँने बेटेसे कहा— घरमें चल।

बाबाने विनम्र शब्दोंमें कहा— संन्यासीके लिये अपने घरमें रहना उचित नहीं।

तब माँने पूछा— फिर तू कहाँ ठहरेगा?

बाबाने बतलाया— गाँवके बाहर बगीचेमें।

यह सुनकर माँने कहा— चल, मैं भी तेरे साथ चलती हूँ।

बाबाके साथ चलनेके पहले माँ चट घरमें गयी और एक छोटी-सी पोटली लेकर आयी। बाबा चल पड़े। आगे-आगे बाबा जा रहे थे और पीछे-पीछे माँ। बाबाके परिवारमें पर्देकी मर्यादा बहुत अधिक रही। घरकी स्त्रियाँ प्रायः घरके बाहर नहीं निकलतीं। आज माँको न तो पर्देकी परवाह थी और न घरकी मर्यादाकी चिन्ता थी। गाँवके छोटे-बड़े लोगोंसे बेखबर माँ नेत्रोंके आँसुओंको बार-बार पोंछती हुई बाबाके पीछे-पीछे चली जा रही थी। गाँवके बाहर एक हाई स्कूल और एक पाठशाला थी। यह पाठशाला एक उद्यानमें थी। हाई स्कूलका फर्श सीमेंटका बना हुआ बढ़िया था और पाठशालाका फर्श मिट्टीका बना हुआ कच्चा था। बाबाने माँसे कहा— मैं इसी पाठशालामें ठहरूँगा।

इस पाठशालामें ही बाबा ठहरे। इधर तो बाबा अपने हाथ-पैर धो रहे

थे, उधर माँ अपनी पोटलीकी पुड़ियाओंमें व्यस्त थी। माँने उस पोटलीमें कई बड़ी-बड़ी पुड़ियाएँ इकट्ठी कर रखी थीं। माँ एक-एक पुड़ियाको खोलती और उसे सूँघती। उसमें दुर्गन्ध पाकर नाक सिकोड़ते हुए माँ उस पुड़ियाकी वस्तुको एक किनारे फेंक देती। एकके बाद दूसरी, दूसरीके बाद तीसरी, इस प्रकार प्रत्येक पुड़ियाको वह फेंकती चली जा रही थी। बाबा यह सब देख रहे थे। बाबाने पूछा— माँ! तू यह क्या कर रही है?

माँने बतलाया— बेटा! जब भी घरमें कोई बढ़िया चीज बनती अथवा तेरी प्रिय चीज बनती तो मैं उसे पुड़ियामें बाँधकर रख देती थी कि यदि तू कभी आयेगा तो तुझे खिलाऊँगी, पर अब तो ये सब खाने लायक रही नहीं। सबमें दुर्गन्ध आ रही है, अतः फेंक दे रही हूँ।

माँके इस अगाध वात्सल्यपर बाबा बलिहारी जा रहे थे। माँ अच्छी तरह जानती थी कि मेरा पुत्र संन्यासी हो गया है और अब वह कभी भी घरपर नहीं आयेगा, इसके बाद भी अपने संन्यासी बेटेके लिये उसके हृदयका पागल प्यार खानेकी वस्तुओंको पुड़ियाओंमें संग्रह करता ही रहता था। मातृ-हृदयका यह पवित्र पागलपन एक परमाद्भुत वस्तु है, जिसकी गरिमाको न कोई आँक पाया है और न उसकी गहराईको कोई छू पायेगा। एक-एक करके वे सारी पुड़ियाएँ फेंक दी गयीं। फिर तो माँने बाबाको सद्यः सिद्ध भोजन करवाया। माँ रात्रिभर वहीं पाठशालामें ही रही। बाबाने माँसे कहा— तू सो जा।

माँने भरे-भरे स्वरमें कहा— सोनेके लिये समय तो मुझे फिर भी मिल जायेगा, पर तू मुझे फिर कब मिल पायेगा?

माँ इतना तो जान ही रही थी कि यह यहाँ केवल कुछ दिनोंके लिये ही आया है। फिर माँने स्खलित वाणीमें कहा— अब तू केवल मेरा बेटा थोड़े ही है। जो भी तुझे बेटा कहेगा, उसे तू माँ कह देगा। अब तो तू सारे संसारका है।

इस प्रकारकी बातें माँ कहती जाती थी और अपने आँसू पोंछती जाती थी।

प्रातःकाल बाबा शौचके बाद स्नान करनेवाले थे। उसी समय माँने बाबाके स्नानके लिये कुएँसे जल निकाला। आज उस वृद्धाके कृश शरीरमें न जाने कहाँसे इतनी शक्ति आ गयी थी कि कुएँसे बार-बार जल निकाल

करके भी माँमें थकानका नाम भी नहीं था। बाबा लगभग आठ-नौ दिन अपने गाँवपर रहे। इस अवसरपर बाबाके पूर्वाश्रमके चचेरे बड़े भाई पूज्य श्रीदेवदत्तजी मिश्रने श्रीमद्भागवत सप्ताहकी कथा सात दिनतक कही। कथा बाबाके घरपर होती। कथा सुननेके लिये बाबा घरपर जाते तथा कथा पूर्ण होनेपर प्रतिदिन सायंकाल पाठशालापर वापस आ जाते। बाबाके आनेकी बात सुनकर न केवल उस गाँवके लोग, अपितु आस-पासके कई गाँवके लोग बाबासे मिलनेके लिये आने लगे। बाबाके पिताश्री जिस राजवंशके कुल-पुरोहित थे, वे राजासाहब भी बाबाके पास आये और उन्होंने बाबाको साष्टांग प्रणाम किया। कहाँ तो एक बड़ी उम्रके अति सम्माननीय राजासाहब और कहाँ एक युवक संन्यासी! राजासाहबको प्रणाम करते देखकर बाबाको बड़ा संकोच हुआ। बाबाने तुरंत उठकर उनका यथोचित स्वागत-सत्कार किया।

ग्राम-वासकी अवधिमें एक दिन बाबाके कमण्डलुकी चोरी हो गयी। जब बाबा रात्रिके समय उद्यानमें सोये हुए थे, तब उस घने अँधेरेमें कोई व्यक्ति उनका कमण्डलु उठा ले गया। प्रातःकाल उठनेपर बाबाको कमण्डलु नहीं मिला। बाबाने किसीसे कुछ कहा नहीं, परंतु शौच-स्नानादिकी क्रियाको सम्पन्न करनेके लिये जलपात्रकी आवश्यकता तो थी ही। बाबाने देखा कि उद्यानके बाहर एक किनारे मिट्टीकी एक हड़िया पड़ी है। उसपर बड़ी कालिख चढ़ी हुई है। यह कालिख धुएँ और आगपर चढ़े होनेके कारण थी। हो सकता है कि शवयात्रामें काम ले लेनेके बाद उस हड़ियाको फेंक दिया गया हो। संन्यासीकी दृष्टि सम होनी चाहिये, अतः बाबाने वह हड़िया उठा ली। उन्होंने बालूसे रगड़-रगड़ करके उसे खूब माँजा, जिससे उसकी कालिख छूट जाय। पर्याप्त साफ कर लेनेके बाद बाबा जलपात्रके रूपमें उसका उपयोग करने लगे। जब लोगोंको ज्ञात हुआ कि कमण्डलुके चोरी चले जानेके कारण बाबा एक परित्यक्त पुरानी हड़ियाको अपने काममें ले रहे हैं तो सभीके चित्तमें बड़ी खिन्नता हुई। गाँवके एक बढ़ईने उसी समय काठका एक सुन्दर कमण्डलु बनाकर बाबाको भेंट किया। काष्ठ निर्मित कमण्डलुके मिलनेसे बाबाको तो प्रसन्नता हुई ही, इसीके साथ अनेकोंकी विकल भावनाओंको भी बड़ा विश्राम मिला।

इस अवसरपर बाबाने अपने पूर्वाश्रमके बड़े भाई पं. श्रीताराचत्तजी

मिश्रसे बड़ी महत्त्वपूर्ण बात कही— मैं और आप सहोदर भाई हैं। इस भ्रातृत्वको विश्वमें कोई मिटा नहीं सकता, पर पहलेके सम्बन्धमें और आजके सम्बन्धमें कुछ अन्तर अवश्य हो गया है। पहले हमलोगोंको परस्परमें बाँधनेवाली थी माया और इसी मायाके कारण भाई ही भाईका विरोधी बन जाता है। इसी मायाके कारण एक भाई यहाँतक विरोध ठान लेता है कि क्षुद्र जागतिक इच्छाओंकी पूर्तिके लिये अपने भाईके प्राणका भी घात करनेसे नहीं चूकता, पर अब मेरे और आपके बीचमें माया नहीं रही। मायाका स्थान ले लिया है भगवानने। बीचमें भगवानकी प्रतिष्ठा हो जानेसे अब हमलोगोंका सम्बन्ध परम पवित्र परम उत्कृष्ट हो गया है। हमलोगोंका यह सम्बन्ध अक्षुण्ण है।

बाबाकी इस प्रीति समन्वित वाणीको सुनकर पं. श्रीतारादत्तजी विभोर हो उठे। उन्होंने बाबासे कहा— चक्रधर! बचपनमें मैंने तुमको अपने कंधेपर बहुत बैठाया है। घरसे बाजार जाते समय अथवा रामलीलाके मेलेसे घर आते समय तुम मचल उठते थे और तुम्हारे मनकी करनेके लिये मैं तुमको अपने कंधेपर बैठा लेता था और दूरतक ले चलता था। यह सही है कि लोककी दृष्टिसे भाईके नाते मैं तुमसे बड़ा हूँ, पर उससे भी अधिक सही और सच्ची बात यह है कि अध्यात्मकी दृष्टिसे आज तुम मुझसे बहुत बड़े हो और अब उस अध्यात्मके पथपर तुमको ही मेरा भार अपने कंधेपर ढोना है।

सहोदर भाईके इन उद्‌गारोंको सुनकर बाबाका अन्तर विह्वल हो उठा। इन दिनों माँ लगातार बाबाके पास ही रहती। शौच-स्नानके लिये वह जाती अवश्य थी और इतना समय छोड़कर वह बाबासे अलग होती ही नहीं थी। माँका यह वात्सल्य अनोखा था। माँके इस वात्सल्यके प्रति बाबाके मनमें अत्यधिक आदर था, पर वात्सल्यको देखकर बाबाका मन मोहाच्छन्न नहीं हुआ। अपने मनकी तत्कालीन विचित्र स्थितिके बारेमें बतलाते हुए बाबाने एक बार कहा था— एक ओर तो मैं माँके प्यारमें डूब-उतरा रहा था, उससे मेरा रोम-रोम संसिक्त हो रहा था, पर इसके साथ ही मेरे मनमें अपरिसीम वैराग्य और आत्यन्तिक विरक्ति भी भरी हुई थी।

श्रीमद्‌भागवत सप्ताहकी कथा विधिवत् सम्पूर्ण हुई। कथाके सम्पूर्ण होनेपर बाबाने माँसे कहा— संन्यासीको अपने गाँवपर अधिक नहीं रहना चाहिये।

इतना कहना था कि माँके धैर्यका बाँध टूट गया। उसके लिये तो ये शब्द वज्रपातके समान ही थे। माँको लगा कि अब मेरा बेटा मुझसे सदाके लिये जा रहा है। उसके आँसुओंका अजस्र स्रोत फूट पड़ा। थोड़ी ही देरमें यह बात सारे गाँवमें फैल गयी। पाठशालाके पास भीड़ इकट्ठी हो गयी। अपने कंधेपर कटिवस्त्र तथा हाथमें कमण्डलु लेकर बाबा चलनेके लिये तैयार हो गये। बाबाकी एक सहोदरा बहिनका नाम रहा सुहागमणि। उनके पति श्रीयुगलकिशोरजी संस्कृतके उद्भट विद्वान थे। वे भी वहीं खड़े थे। माँने अपने जामाता श्रीयुगलकिशोरजीसे विनती की— क्या आप मेरा एक काम कर देंगे?

उस समय सारा वातावरण करुणापूर्ण हो रहा था। वे ही क्यों, हर एक व्यक्ति माँके आदेशका पालन करनेके लिये प्रस्तुत था। श्रीयुगलकिशोरजीने कहा— कहिये, क्या बात है?

माँने कहा— आप इसे पटनातक छोड़ आयें। वहाँसे फिर यह जहाँ जाना चाहेगा, रेलगाड़ीसे चला जायेगा।

माँके इस आदेशके पालनमें उन्होंने अपना सौभाग्य ही समझा। श्रीयुगलकिशोरजीने माँसे कहा— मैं अवश्य चला जाऊँगा।

जानेके लिये टैक्सी आ गयी। विदा होनेका समय अब समीप था। अब बाबाको अपने गाँवसे, ग्रामवासियोंसे, परिवारसे और अपनी जन्मदात्री माँसे अन्तिम विदाई लेनी है। लोगोंसे घिरे हुए बाबा खड़े थे अपनी माँके सामने और माँ खड़ी थी अपनी भीगी आँखें, भीगे कपोल और भीगा आँचल लिये हुए। सबका हृदय भर-भर आ रहा था, किन्तु माँकी विकलताकी तो सीमा ही नहीं। उसी समय माँने भीगी-भीगी भीनी-भीनी वाणीमें कहा— कुछ खा ले।

उस समय माँके हाथमें या पासमें कुछ था नहीं, पर वात्सल्य-भावका महोद्रेक होता ही है ऐसा अनोखा!

बाबाके मुखसे निकल गया— दे।

बाबाके मुखसे 'दे' निकलते ही माँ घरके लिये दौड़ पड़ी। वह हवाकी तरह भागती जा रही थी। घरमें जो भी मिला, वही वह ले आयी। उसने वह मिष्टान्न बाबाके हाथपर रख दिया।

बाबाने पूछा— यह अन्नाहारी है या फलाहारी?

माँने कहा— यह फलाहारी है। इसे खा लें। तेरा मंगल ही होगा।

बाबाने तुरंत वह मिष्टान्न खा लिया। उस अमृतमय मिठासकी स्मृति बाबाको अपने परवर्ती जीवनमें सदा ही बनी रही। मिष्टान्न खा लेनेके बाद बाबाने माँके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रणाम किया। माँने बाबाके मस्तकपर, चरणोंसे लगे हुए मस्तकपर अपने दोनों हाथोंको रखकर भर्राये स्वरमें अपने लालको आशीर्वाद दिया— सुखी रहो, सदा सुखी रहो!

गुरुजन-पुरजन-परिजन-स्वजन आदि सभीसे विदाई लेकर बाबा टैक्सीपर चढ़े तथा श्रीयुगलकिशोरजीके साथ पटना स्टेशनपर आ गये। बाबाको सूचना मिल चुकी थी कि बाबूजी बाँकुड़ासे कलकत्ता चले गये हैं। बाबा पटनासे कलकत्ता गये तथा गोविन्द-भवनमें बाबूजीसे मिले। बाबाको देखकर बाबूजीको बड़ी प्रसन्नता हुई।

* * * * *

नित्य-संग का संकल्प

अपनी जन्मदात्री माँसे मिलकर बाबाको बड़ा परितोष मिला। परम वत्सला माँसे अमोघ आशीर्वाद प्राप्त करके बाबा बाबूजीके पास कलकत्ता चले आये।

यह दिन ११ मई १९३९ का था। बाबा दोपहरके समय गंगा-स्नानके लिये गये। परम पावनी गंगाजीमें स्नान करनेके उपरान्त माँ गंगाके तटपर खड़े होकर तथा हाथमें गंगाजल लेकर बाबाने संकल्प किया— इस क्षण मध्याह्नके बादसे मैं श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारके साथ नित्य-निरन्तर-निरवधि रहूँगा। हम दोनोंमें वियोग होगा ही नहीं। भविष्यमें हम दोनोंमें यदि वियोग हुआ तो वह अब मात्र मृत्यु ही करा पायेगी अथवा तब, जब श्रीपोद्दारजी मुझे वृन्दावन जानेके लिये स्वयं प्रसन्न चित्तसे अनुमति प्रदान करेंगे।

ऐसा संकल्प करके बाबाने अपनी अञ्जलिका जल पुण्य-सलिला माँ गंगाके निर्मल प्रवाहमें छोड़ दिया। ११ मई १९३९ के मध्याह्नके बादसे बाबा नित्य ही बाबूजीके साथ रहने लगे। बाबाके मनमें इस संकल्पके वास्तविक अर्थको चरितार्थ करनेके लिये एक 'पूरक-संकल्प' और था। बाबा मन-ही-मन कृत-संकल्प थे कि यदि श्रीपोद्दारजीके शरीरान्त होनेके पूर्व ही मेरा निधन हो जाता है तब तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता, पर यदि

श्रीपोद्दारजीका निधन पहले होता है तो जहाँ उनकी चिता प्रज्वलित होगी, उस चिता-स्थलीपर मैं अपने जीवनके अन्तिम क्षणतक वास करूँगा।*

अड़चनोंमें भी इस जीवन-व्रतका निर्वाह किस प्रकार हो पाया, उदाहरण-स्वरूप एक प्रसंग लिख रहा हूँ—

एक बार पूज्य श्रीसेठजी बहुत अधिक बीमार हो गये। उन्हें देखनेके लिये बाबूजी गये। वे गोरखपुरके साहबगंज मोहल्लेमें आदरणीय श्रीघनश्यामदासजी जालानके घरपर थे। मध्याह्नके समय गये हुए बाबूजी दिनभर वहीं रहे। श्रीसेठजीकी स्थिति ऐसी नाजुक थी कि बाबूजी रात्रिको भी गीतावाटिका वापस नहीं आ पाये। इस बातकी किसे कल्पना थी कि आधी राततक भी बाबूजी गीतावाटिका नहीं लौट पायेंगे? यदि तनिक भी अनुमान होता तो बाबूजी बाबासे मिलकर ही गीतावाटिकासे जाते। श्रीसेठजीकी रुग्णताके कारण सभीका मन व्यग्र था, इस व्यग्रताके वातावरणमें बाबूजीको भी स्मरण नहीं रहा कि बाबासे मिलना है। आधी रातसे अधिक हो जानेपर पूज्या माँ अत्यधिक सचिन्त हो उठीं। तरह-तरहके विचार उनके मनमें आने लगे— बाबाका क्या होगा? क्या बाबा हमलोगोंको छोड़कर वृन्दावन चले जायेंगे? क्या बाबाका नियम खण्डित हो जायेगा? क्या साथ रहनेका व्रत सूर्योदय होते ही समाप्त हो जायेगा?

इस प्रकारसे चिन्ता करते-करते एक-दो घंटे बीत गये। माँका कोमल

---

*बाबा द्वारा कृत-संकल्पकी गम्भीरताको हृदयंगम करानेके लिये भविष्यमें घटित प्रसंगको अभी लिख देना आवश्यक लग रहा है। प्रसंगानुरोधसे प्रेरित होकर ऐसा करना पड़ रहा है।

बाबासे 'जाने'की अनुमति लेकर २२ मार्च १९७१ को पूज्य बाबूजीने महाप्रस्थान किया। अपने महाप्रस्थानकी अनुमति पूज्य बाबूजीने दो-तीन दिन पहले ही ले ली थी। बाबूजीकी रुचिको अपनी रुचि माननेवाले बाबाने अवसन्न मनसे बाबूजीको महा-विदाई दी। बाबाका निवास उनके 'पूरक-संकल्प'के अनुसार उसी स्थानपर बना रहा, जहाँ बाबूजीकी चिता सजाई गयी थी। उनके महाप्रस्थानके पूर्व ११ मई १९३९ से लेकर २२ मार्च १९७१ तक, इन बत्तीस वर्षोंकी अवधिमें अड़चनें बहुत आयीं, पर प्रभु-कृपासे बाबाके उन संकल्प-निर्वाहमें कभी कोई अपवाद आया ही नहीं। अगणित बाधाओंके बाद भी बाबाकी चादरमें कभी रंचमात्र दाग लग ही नहीं पाया।

प्लेटफार्म पर ध्यानस्थ
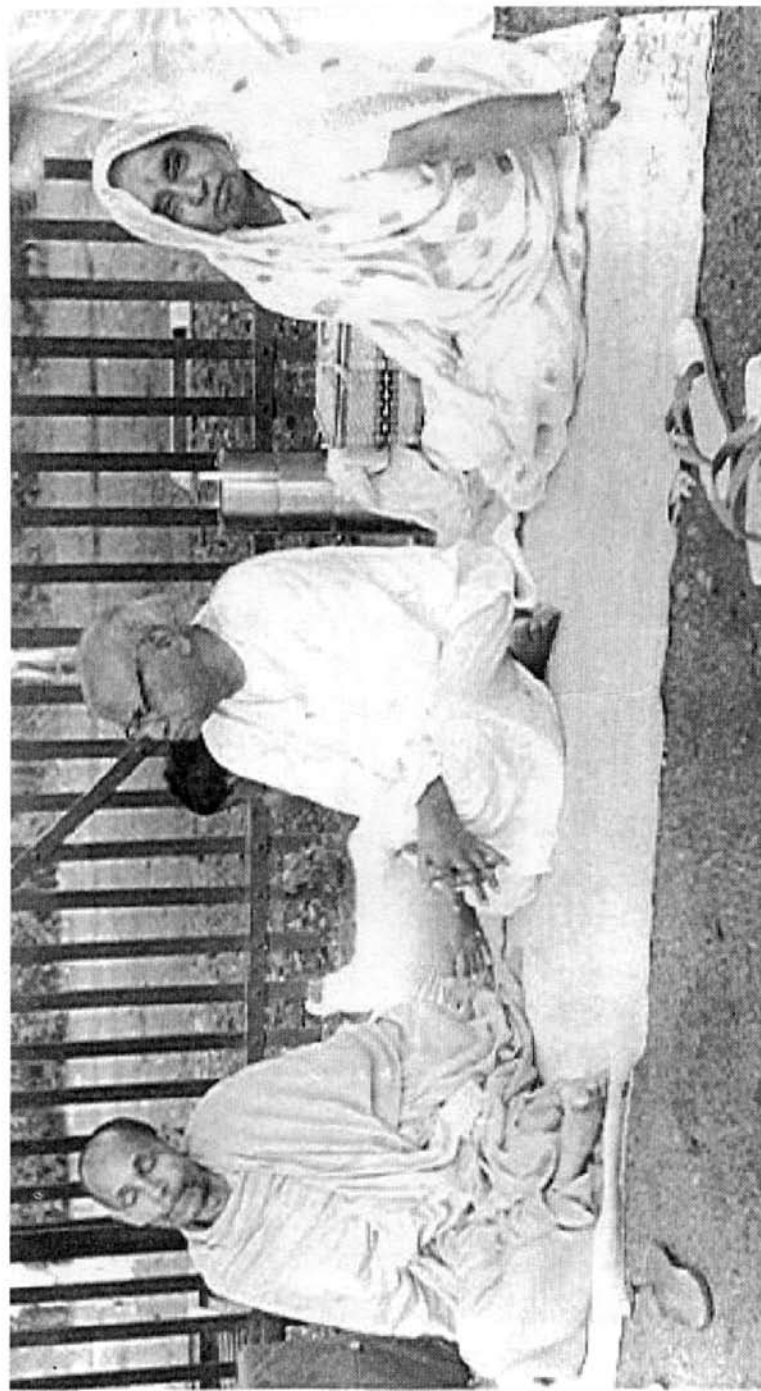
ट्रेन की प्रतिक्षा में

बाबूजी द्वारा दीक्षा

सन् १९३६ में बाबूजीसे भेंट हो चुकने तथा समय-समयपर उनसे लगभग सतत सम्पर्क बने रहनेके बाद भी जबतक बाबा टीका-लेखनके कार्यमें व्यस्त रहे, तबतक रसोपासनाकी ओर प्रवृत्त होनेके लिये उपयुक्त वातावरण था ही नहीं। यह ठीक है कि सन् १९३६ ई. में बाबूजीसे प्रथम भेंट होते ही बाबा साकारोपासनावादी हो गये थे और इतना ही नहीं, इसके कुछ दिन बाद तुरन्त ही भगवान श्रीकृष्णका दर्शन भी बाबाको हो गया था और यह भी ठीक है कि इसके लगभग एक वर्ष बाद सन् १९३७ ई. में बाबाको गीताप्रेसके एक कमरेमें रसोपासनासे सम्बन्धित एक विशेष दिव्यानुभव भी हुआ था, इतना सब होनेके बाद भी व्रजभावके उस बीजको भली-भाँति अंकुरित हो उठनेके लिये सर्वथा अनुकूल अवसर नहीं मिल पाया था। अनुकूलताके अभावका मुख्य हेतु था टीका-लेखनके कार्यमें पूर्ण दत्त-चित्तता एवं अत्यधिक व्यस्तता। टीका-लेखनके उत्तरदायित्वका वरण बाबाने स्वेच्छासे किया था। ११ मई १९३९ से बाबा, बाबूजीके नित्य साथ रहने लगे थे। बाबूजीकी नित्य निकटताके सुलभ होनेके बाद बाबाके जीवनमें वैसी व्यस्तता रह ही नहीं गयी थी। किसी भी प्रकारके उत्तरदायित्वसे विहीन पूर्ण एकान्त तो बाबाको मिला ही, इसीके साथ प्राप्त हो गया बाबूजीका सरस सामीप्य। एक ओर यह पूर्ण एकान्त और दूसरी ओर वह सरस सामीप्य, इन दोनोंने व्रजभावके उस बीजको अंकुरित होनेके लिये उन्मुक्त और अनुकूल अवसर प्रदान किया, जिसका वपन सन् १९३६ई. में हो चुका था।

व्रजभावकी साधनाका भाव मनमें उदित होते ही बाबाकी सबसे पहली जिज्ञासा यह थी कि उस साधनाका स्वरूप क्या हो? श्रीकृष्ण-तत्त्व क्या है, श्रीराधा-तत्त्व क्या है, श्रीराधाकृष्णके नित्य धाम वृन्दावनका स्वरूप क्या है, श्रीराधाकृष्णकी सरस उपासनाकी पद्धति क्या है, उनका ध्यान कैसे किया जाता है, उनकी प्रसन्नताकी प्राप्ति कैसे हो सकती है, इस प्रकारकी अनके जिज्ञासाओंसे उनका मन भरा हुआ था। बाबा सोलह नामवाले महामन्त्रका जप करते ही थे और कुछ मानसिक पूजन भी होता

था, पर वे अपने मानसिक जगतके लिये एक आधारकी खोजमें लगे हुए थे। बाबाके मनमें यह भी था कि यदि अष्टकालीन सेवाका क्रम मिल जाता अथवा किसी प्रकारसे लीलाके चिन्तनका ढंग बैठ जाता तो तदनुसार श्रीप्रिया-प्रियतमकी सेवा करता। मनमें बड़ी उत्कण्ठा बनी हुई थी कि साधनाकी शैली क्या हो, जिससे सारा जीवन श्रीकृष्णमय बन जाये।

इस प्रकारके विचार-जिज्ञासा-उत्कण्ठा-त्वरा आदिके भावोंमें बाबाका मन निमग्न था कि बाबाने एक रात स्वप्न देखा। स्वप्नमें बाबाने यह देखा कि माँ (बाबूजीकी धर्मपत्नी) मेरे सामने खड़ी हैं। माँके पार्थिव शरीरमें विचित्र परिवर्तन हो गया है। वह शरीर अब साधारण नहीं रहा। साधारण पाञ्चभौतिक शरीरके स्थानपर वह असाधारण दिव्य शरीरके रूपमें परिणत हो गया है। माँके दिव्य शरीरसे अत्यधिक तेज विकीर्ण हो रहा है। शरीरके रोम-रोमसे दिव्य प्रकाश निकल रहा है। उस तेजपुञ्ज ज्योतिर्मय शरीरको देखकर यही लग रहा था, मानो ये ही आद्याशक्ति भगवती जगदम्बा हैं। इसीके साथ-साथ बाबाको यह भी दिखलायी दिया कि मैं एक बहुत छोटे बालकके रूपमें हो गया हूँ। बाबा इस प्रकारसे स्वयंको और माँको देख रहे थे। यह देखते-देखते आगे यह हुआ कि दिव्य स्वरूपा माँने उस बहुत छोटे बालकको अपनी गोदमें उठा लिया और अपने वक्षःस्थलसे चिपका लिया। इससे थोड़ी देर बाद माँने एक सघन-सुन्दर कुञ्जकी ओर संकेत किया। वेलि-विटपोंसे निर्मित यह हरा-भरा कुञ्ज थोड़ी ही दूरपर स्थित है। उस कुञ्जके वितानके नीचे बाबूजी (श्रीपोद्दारजी महाराज) विराज रहे हैं। जब माँ उस कुञ्जकी ओर अँगुलीसे संकेत कर रही थी, तभी बाबाकी नींद खुल गयी।

इस स्वप्नको देखकर बाबाको प्रसन्नता हुई। बाबाको लगा कि यह स्वप्न किसी मंगलका परिचायक है, पर वे समझ नहीं पाये कि इस स्वप्नका अर्थ क्या है। बाबाकी भावना ऐसी थी कि एक-दो दिनके अन्दर कोई शुभ प्रसंग घटित होना चाहिये। क्रमशः ये एक-दो दिन भी निकल गये। एक-दो दिनके स्थानपर कई दिन निकल गये। फिर तो वह स्वप्न भी विस्मृत हो गया। जिज्ञासासे भरे हुए मनमें उस स्वप्नकी स्मृति भला कबतक बनी रहती!

बाबाका मन साधना-सम्बन्धी अनेक समस्याओंका आगार बना हुआ था। बाबाके कथनानुसार वे समस्याएँ ऐसी थीं, जो केवल उसीसे सुलझ सकती थीं, जिसके जीवनमें व्रजभावकी साधनाकी सिद्धावस्था पूर्ण रूपसे उतर आयी हो। मात्र अध्ययनके आधारपर उन समस्याओंका हल दिया ही नहीं जा सकता था। निर्ग्रन्थ बाबाकी इस कठिन ग्रन्थिको खोलनेमें ग्रन्थ भी असमर्थ थे। ग्रन्थिकी कठिनताको देखकर ग्रन्थावलोकन भी पंगु हो रहा था। एक ओर व्रजभावके सैद्धान्तिक पक्षकी जिसे सम्यक् जानकारी हो और दूसरी ओर व्रजभावकी साधनाकी सिद्ध-स्थितिपर जो आरूढ़ हो, ये दोनों तथ्य जिसके जीवनके अंग हों, एक मात्र उस महान विभूतिसे उन समस्याओंका समाधान मिल सकता था। शास्त्रके अवलोकन-अध्ययनसे वे प्रश्न हल नहीं हो सकते, विचार-शक्ति भी उन समस्याओंको सुलझा नहीं पाती। वह प्रश्न तो एक मात्र सरल हो सकता है सिद्ध गुरुकी अहैतुकी कृपासे ही, पर जो वस्तुतः सिद्ध है, वह अपनेको सिद्ध बतलानेके लिये व्यक्त होगा नहीं और व्यक्त-स्तरपर जो अपनेको सिद्ध घोषित करते हैं, उनमेंसे शायद ही कोई विरला सिद्ध हो। बाबाके सामने भी कुछ ऐसी समस्या थी, जिसका समाधान वे पाना चाहते थे, पर कोई उपाय था नहीं। अब बाबाको दिन-रात, जागते-सोते, चलते-फिरते, उठते-बैठते निरन्तर यही चिन्तन बना रहता था कि इन जिज्ञासाओंका समाधान कैसे प्राप्त होगा। कोई महान विभूति गुरुपद स्वीकार कर ले तो अटकी हुई बात बन जाये। बाबाका मन बड़ा आकुल था कि 'तथा कथित' गुरुओंसे यह काम बननेवाला है नहीं और सिद्ध गुरुचरणोंकी कृपाकी उपलब्धि कैसे हो?

ये सारी बातें सन् १९३९ ई. के जून मासकी अथवा इसके आस-पासकी हैं। इन दिनों बाबा गीतावाटिकामें पीछेकी एक कुटियामें रहा करते थे। गीतावाटिकामें अब जहाँ श्रीनारद-मन्दिर है, इस मन्दिरकी ठीक दक्षिण-दिशामें यह कुटिया थी, तीन या चार फीटतक ईंटकी दीवाल और दीवालके ऊपर काठके पटरोंका छाजन। कुटियाके बाहर था एक हैंड-पाइप, जहाँ बाबा स्नान किया करते थे। कुटिया इतनी छोटी थी कि कठिनाईसे दो व्यक्ति लेट पायेंगे। अब यह कुटिया नहीं रह गयी है। इसके स्थानपर आजकल तुलसी-चबूतरा बना हुआ है। मनमें वैचारिक

द्वन्द्व बहुत बढ़ जानेसे बाबा एक दिन सचिन्तावस्थामें अपनी कुटियाके बाहर बैठे हुए थे कि वहीं पूज्य बाबूजी आये। बाबाको चिन्तित देखकर बाबूजीने पूछा – आप कैसे बहुत विचार-मग्न बैठे हुए हैं?

बाबाने कहा – श्रीकृष्ण-प्रेमकी साधनाकी दृष्टिसे मेरी जो स्थिति है, उन सब बातोंको एक मात्र आप समझ सकते हैं। अब कुछ ऐसी बातें सामने आ गयी हैं कि जिनका निराकरण किसी समर्थ गुरुकी कृपाके बिना नहीं हो सकता। जिनका व्रजभावमें वस्तुतः प्रवेश है, वे समर्थ जन अपनेको गुरु बतायेंगे नहीं और बिना गुरु-कृपाके मेरी बात बनेगी नहीं। न जाने कितने दिनोंसे मैं इसी उधेड़-बुनमें पड़ा हुआ हूँ। चित्त विविध प्रकारके चिन्तनके झंझावातसे भरा हुआ है।

बाबूजीने पूछा – आपकी उलझन क्या है?

बाबाने निवेदन किया – आप सब प्रकारसे समर्थ हैं, पर आप तो गुरुपद स्वीकार करेंगे नहीं। मेरी यह धारणा है कि आप किसीको अपना शिष्य बनाते नहीं। जहाँतक मेरी उलझनकी बात है, मुझे ऐसा नहीं लगता कि बिना गुरु वरण किये मेरी समस्या हल हो जायेगी।

बाबूजीने विनम्रता भरे शब्दमें कहा – यह मैंने कब कहा कि मैं किसीको शिष्य बनाऊँगा ही नहीं?

तब बाबाने कुछ आश्वस्त होकर और कुछ विस्मित होकर उत्सुकतापूर्वक पूछा – क्या आप मेरे लिये गुरु-पदको स्वीकार कर लेंगे?

बाबूजीकी आँखोंमें मौन एवं विनम्र स्वीकृति झलक रही थी। बाबाकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं थी। बाबूजीने कहा – आप अपनी दोनों हथेलियोंको फैलाइये।

बाबाने अपनी दोनों हथेलियाँ फैला दी।

बाबूजीने कहा – हथेलियोंको उलट दीजिये, जिससे नख ऊपर हो जायें।

बाबाने अपनी हथेलियाँ उलटी कर दी। बाबूजीने अपनी एक अँगुलीसे बाबाकी दसों अँगुलियोंके दसों नखोंका क्रम-क्रमसे स्पर्श किया। इस स्पर्शका चमत्कारी प्रभाव यह था कि बाबाका वैचारिक द्वन्द्व तत्क्षण शान्त हो गया। बाबाका अन्तर्हृदय दिव्य आशा और उमंगसे परिपूरित हो उठा। बाबाके मनकी स्थिति ऐसी हो गयी मानो 'मरन सीलु जिमि पाव पिऊषा। सुरतरू लहै जनम कर भूखा॥' बाबूजीके प्रति बाबाके हृदयका

भाव उमड़ रहा था, आज बाबाको अपार आनन्द हो रहा था। 'सो सनेहु सुखु नहिं कथनीया।' बाबाको उसी समय कुछ दिनों पूर्व देखे हुए उस स्वप्नकी स्मृति हो आयी, जिसमें पूज्या माँने कुञ्ज-स्थित बाबूजीकी ओर संकेत किया था। अब समझमें भी आ गया कि माँके उस संकेतका अर्थ क्या था? तब बाबा संकेतके भावको ग्रहण नहीं कर पाये थे, अन्यथा संकेत तो पहले ही मिल गया था कि सभी समस्याओंका समाधान कहाँ है?

यहीं पर एक और तथ्य उल्लेखनीय है। बाबूजीसे दीक्षा मिली, उससे पहले कई दिनोंतक बाबाको एक और अनुभव हुआ करता था। एक बार बाबाने स्वयं बतलाया था – श्रीपोद्दार महाराजसे दीक्षा मिलनेके पूर्व मेरे द्वारा भगवान श्रीकृष्णकी आराधना मानसिक रूपसे हुआ करती थी। मानसिक आराधना करते समय जब मैं पुष्प भगवान श्रीकृष्णके मस्तकपर चढ़ाता तो मेरे मानसिक नेत्रोंको एक दूसरा ही दृश्य दिखलायी दिया करता था कि पुष्प भगवान श्रीकृष्णके मस्तकपर न चढ़ करके श्रीपोद्दार महाराजके मस्तकपर चढ़ जाया करते हैं। मैं तो चढ़ाता था भगवान श्रीकृष्णके मस्तकपर, किन्तु वे श्रीपोद्दार महाराजके मस्तकपर चढ़े हुए दिखलायी देते थे। इस अनुभवका वास्तविक रहस्य भी खुला दीक्षा मिलनेके उपरान्त।

बाबूजीद्वारा गुरु-पद स्वीकार कर लिये जाते ही बाबाके मनमें दृढ़ आस्था हो गयी कि अब रसोपासनाका पथ सदाके लिये पूर्ण रूपसे प्रशस्त हो गया। बाबाने समय-समयपर कई बार इस प्रकारके मनोभाव व्यक्त किये हैं – साधनाके क्षेत्रमें समर्थ गुरुके श्रीचरणोंकी कृपाकी आवश्यकता पड़ा करती है, जिससे पथकी सारी बाधाएँ दूर हो जायें। मेरे जीवनमें ऐसी गूढ़ समस्याएँ उठ खड़ी हुई थीं, जिसका समाधान व्रजरसमें पगे हुए किसी रसिक संतको गुरु रूपमें वरण करनेपर ही सम्भव था। श्रीपोद्दार महाराजके जीवनमें किसीको भी शिष्य न बनानेका अति दृढ़ आग्रह होनेके बाद भी मेरे मनकी कुण्ठा और खिन्नताको उन्होंने अपनी अन्तर्भेदी दृष्टिसे जान लिया और स्वयं ही मेरे गुरु-पदपर प्रतिष्ठित होकर सारी समस्याओंको सदाके लिये दूर कर दिया।

ज्यों ही बाबूजी बाबाके पाससे गये, इसके थोड़ी देर बाद ही

बाबाके चिन्तनकी धाराने एक नया मोड़ लिया। बाबा सोचने लगे – क्या वस्तुतः श्रीपोद्दार महाराज मेरे पास आये थे? मैं नहीं कह सकता कि मेरे सामने श्रीपोद्दार महाराज वस्तुतः आये अथवा नहीं आये, पर सच बात यह है कि वे तो मेरे लिये आये ही थे। मेरी स्थिति उस समय न तो जाग्रतकी थी, न स्वप्नकी थी, न तन्द्राकी थी। क्या स्थिति थी, मैं बता नहीं पा रहा हूँ, पर मेरे लिये श्रीपोद्दार महाराज सचमुच आये।

बाबाको कुछ-कुछ ऐसा लगा कि श्रीपोद्दार महाराज अपने सूक्ष्म स्वरूपसे मेरे पास आये थे। बादमें कुछ छानबीन और पूछताछ करनेपर बाबाके मनकी इसी संभावनाका परिपोषण हुआ और बाबाकी सुदृढ़ मान्यता हो गयी कि श्रीपोद्दार महाराजने सूक्ष्म शरीरसे पधार करके मेरे गुरु-पदको स्वीकार किया है।

बाबाने बतलाया – स्पर्शकी क्रियाके समाप्त होते ही श्रीपोद्दार महाराजने हँसते हुए कहा कि लीजिये हो गया। इस प्रकारसे कह करके फिर वे हँसते हुए चले गये। उनके स्पर्शने चमत्कार कर दिया। मेरी सारी उलझन तत्काल समाप्त हो गयी। मेरे सारे प्रश्न हल हो गये, स्वतः हल हो गये। भविष्यमें फिर मेरे लिये कोई प्रश्न, कोई समस्या रही ही नहीं। उनके उस स्पर्शका प्रभाव है कि आज कोई भी, कैसी भी समस्या, व्रजभावकी साधनासे सम्बन्धित मेरे सामने रखे, उस समस्याका हल तुरन्त स्फुरित हो उठता है। यह सर्वथा सत्य बात है कि समर्थ गुरुकी कृपाका आश्रय मिलते ही सारे प्रश्न हल हो जाते हैं। ऐसे कृपाश्रितकी स्वयंकी सारी समस्याएँ तो दूर होती ही हैं, इसके अतिरिक्त समर्थ गुरुकी वह कृपा आश्रित जनको इतना सामर्थ्य प्रदान कर देती है कि वह दूसरोंकी समस्याओंको भी दूर कर सके। वह कृपाश्रित स्वयं तो तरता ही है, दूसरोंको भी तार देता है। इसी क्षमताकी ओर देवर्षि श्रीनारदने अपने भक्ति-सूत्रमें एक सूत्रके द्वारा संकेत किया है –

'स तरति स तरति स लोकांस्तारयति'

* * * * *

रसोपासना में निमग्नता

बाबाको साधना सम्बन्धी जिज्ञासाओंका समाधान कैसे प्राप्त हुआ, इसके बारेमें बाबाने कई बार बतलाया है। जिस समय ये जिज्ञासाएँ उत्पन्न हुई थीं, उस समय अंगीकृत नियमोंके कारण बाबा गीतावाटिकाके बाहर जा नहीं सकते थे। ऐसी भी सम्भावना नहीं थी कि समाधान प्रदान करनेके लिये बाहरसे कोई व्यक्ति गीतावाटिकामें आयेगा। एक बात और थी। बाबाकी तार्किकता बड़ी प्रखर थी। किसी अच्छे व्यक्ति द्वारा बता दिये जाने मात्रसे भी बाबाका समाधान होनेवाला नहीं था। जहाँ सिद्धान्तकी बात आती, वहाँ बाबाकी बुद्धि विवेचन-विश्लेषणमें प्रवृत्त हो जाती। बाबाकी आप्त वाक्योंमें आस्था थी, ये वाक्य यदि औपनिषदिक अथवा पौराणिक हों तो और भी सुन्दर, परंतु ऐसा प्रामाणिक तथ्योद्घाटन कहाँ मिलेगा? बाबाके मनमें बड़ा वैचारिक द्वन्द्व था। साधनाको आरम्भ करनेके पहले मानसिक द्वन्द्वका दूर होना आवश्यक था।

बाबाका नियम था कि चौबीस घंटेमें एक बार बाबूजीका दर्शन अवश्य कर लेना चाहिये। अपने नियमके अनुसार बाबा बाबूजीके दर्शनके लिये गये हुए थे। दोपहरका समय था। बाबा बाबूजीके पास बैठे हुए थे। उस समय बाबूजी बाबाको पद्मपुराणकी कुछ बातें सुनाने लगे। इसके बाद बाबूजीने कहा — आप पद्मपुराणका यह अंश पढ़ लीजिये। पद्मपुराणके पाताल खण्डमें सुन्दर-सुन्दर बातें हैं।

बाबा पद्मपुराणके विशाल ग्रन्थको अपनी कुटियापर ले आये और वह अंश पढ़ने लगे। बाबाने पाताल खण्डमें गोपी-जन-चितचोर भगवान श्रीगोविन्दके सच्चिदानन्द स्वरूप, नित्य कैशोर्य, लोकोत्तर माहात्म्य, महान ऐश्वर्य, गूढ़ रहस्य आदिका वर्णन पढ़ा। इसीके साथ श्रीकृष्ण-वल्लभा श्रीराधाके गूढ़ तत्त्व और उनकी दिव्य लीला भी पढ़नेको मिली। इन्हीं पृष्ठोंपर भगवती श्रीराधाकी अनन्य सखियोंकी प्रेममयी सेवा-परायणताका और अक्षयानन्दमय प्रेमधाम वृन्दावनका भी वर्णन था। दिव्य वृन्दावनमें सिंहासनासीन भगवान श्रीकृष्णके ध्यानका वर्णन तो अतीव सुन्दर था। इन सबको पढ़कर बाबाको यही लगा कि मैं जो खोज रहा था, वही यहाँ मिल गया। पद्मपुराणके कुछ अंश तो ऐसे सुन्दर

मिले, जो बाबाकी साधनाके मूलाधार बन गये। इसीमें बाबाको एक ऐसा अष्ट-कालीन लीलाका अत्यन्त सुन्दर क्रम प्राप्त हो गया, जिसके लिये बाबाके मनमें बड़ी अभिलाषा थी। बाबाको अत्यन्त विस्मय हो रहा था कि आज तो श्रीपोद्दार महाराजकी सर्वज्ञता-शक्ति किंचिदंशमें प्रकाशित हो उठी, जो उन्होंने मेरे मनकी आकुलतापूर्ण द्वन्द्वात्मक स्थितिको समझकर मेरे लिये पठनीय अंशकी ओर निर्देश कर दिया।

बाबूजीके दैन्यकी ओर संकेत करते हुए बाबाने एक बार कहा था – श्रीपोद्दार महाराजने ऐसा कभी नहीं चाहा कि मैं बतलानेवाला बनकर अपनी श्रेष्ठता स्थापित करूँ। यह क्षुद्र वृत्ति उनमें कभी जगी ही नहीं। वे बातें श्रीपोद्दार महाराज स्वयं भी बतला सकते थे, परंतु आत्म-संगोपन-भावकी प्रबलताके कारण उन्होंने बतलानेके स्थानपर पठनीय अंश दिखला दिया। इतना ही नहीं, मेरे मनके समाधानके लिये उन्होंने वही प्रक्रिया अपनायी, जो मेरी रुचिके और प्रकृतिके सर्वथा अनुकूल थी।

फिर बाबूजी द्वारा लिखित 'पुरुषोत्तम तत्त्व' नामक एक लेख बाबाको पढ़नेके लिये मिला। इस लेखमें पद्मपुराणकी मान्यताका ही प्रतिपादन करते हुए प्रकृति और पुरुषके वास्तविक स्वरूपको विस्तार पूर्वक बतलाया गया है। सांख्य दर्शनमें वर्णित प्रकृति-पुरुषका स्वरूप क्या है, श्रीमद्भगवद्गीतामें वर्णित प्रकृति-पुरुषका स्वरूप क्या है, वेदान्त दर्शनके आधार-भूत सिद्धान्तोंका स्वरूप क्या है, इन सबका तुलनात्मक विवेचन करते हुए इस लेखमें बाबूजीने यही बतलाया है कि परमाद्या प्रकृति भगवती श्रीराधासे समन्वित शुद्ध-पूर्ण-ब्रह्म-कारणरूप भगवान श्रीकृष्ण ही परम पुरुषोत्तम हैं। इस लेखसे बाबाको इतना अधिक परिपोषण और प्रोत्साहन मिला कि यह 'पुरुषोत्तम तत्त्व' लेख बाबाके नित्य पाठका अंग बन गया। बाबूजीके गुरुपदपर प्रतिष्ठित होते ही तथा मनकी जिज्ञासाओंका समाधान मिलते ही जो होना चाहिये था, वही हुआ। सारे अभाव दूर हो गये। कोई प्रतिबन्धक रहा ही नहीं। बाधारहित होकर बाबा रसोपासनामें प्रवृत्त हो गये। श्रीराधा-तत्त्व क्या है, श्रीकृष्ण-तत्त्व क्या है, श्रीवृन्दावनका स्वरूप क्या है, इन सब रहस्योंका मर्म खोल दिया पद्मपुराणने और उस प्राप्त ज्ञानको अत्यधिक परिपुष्ट कर दिया बाबूजीके 'पुरुषोत्तम तत्त्व' नामक लेखने। बाबाको

लीला-चिन्तनके लिये अष्टकालीन लीलाक्रम भी प्राप्त हो गया था। अब बाबा तत्परतापूर्वक अपनी रसोपासनामें संलग्न हो गये।

इन दिनों बाबाकी रसोपासनाका मुख्य आधार और प्रेरक ग्रन्थ था पद्मपुराण। इस पुराणके पाताल खण्डमें भगवान शंकरने कहा है –

यथा प्रकटलीलायां पुराणेषु प्रकीर्तिताः।
तथा ते नित्यलीलायां सन्ति वृन्दावने भुवि॥

(श्रीकृष्ण, उनका परिकर और विहार जिस प्रकार भूमण्डलके वृन्दावनकी प्रकट लीलामें पुराणोंद्वारा वर्णित है, उसी प्रकार नित्य लीलामें है।)

जैसे प्रकट-लीलामें भगवान श्रीकृष्ण विहार करते हैं, वैसे ही नित्य-लीलामें करते हैं और उनकी नित्य-लीला नित्य चलती ही रहती है, भगवान शंकरके ये वचन बाबाके हृदयमें पैठ गये। बाबा सोचने लगे – आज भी और इस समय भी, इस क्षण भी वे लीला कर रहे हैं, पर वह लीला मुझे दिखलायी नहीं देती। भगवान शंकर मिथ्या नहीं कहेंगे। भगवान शंकरने जो कहा, वह सर्वथा सत्य कहा है कि लीला नित्य-निरन्तर हो रही है। बस, यह मेरी अपात्रता है कि उस लीलाके दर्शन मुझे नहीं हो रहे हैं।

इसी पातालखण्डमें देवर्षि नारद द्वारा जिज्ञासा किये जानेपर वृन्दादेवीने श्रीराधाकृष्ण युगलकी सेवाके लिये लीलाका क्रम बतलाया है। इस लीलाक्रमके सम्बन्धमें भगवान शंकरने कहा है –

आत्मानं चिन्तयेत्तत्र तासां मध्ये मनोहराम्।
रूपयौवनसम्पन्नां किशोरीं प्रमदाकृतिम्।
इत्यात्मानं विचिन्त्यैव तत्र सेवां समाचरेत्।
ब्राह्मं मुहूर्तमारभ्य यावत्स्यात्तु महानिशा॥

[वहाँ उन (अनुचरियों सहित श्रीप्रिया-प्रियतम) के मध्य स्वयंका चिन्तन करें एक रूप-यौवन-सम्पन्ना मनोहरा किशोरी व्रजांगनाकृतिके रूपमें और इस प्रकार आत्म-स्वरूपका विचिन्तन करते हुए ब्राह्म मुहूर्तसे लेकर मध्य रात्रितक सेवा करनी चाहिये।]

अपनेको मनोहर प्रमदाकृतिके रूपमें भावना करके तब इस लीलाके द्वारा सेवा करनी चाहिये, इस भगवद्वाणीसे बाबाकी भाव-धाराको बड़ा परिपोषण मिला। यह मनकी भावनाओंका अनुमोदक था। सन् १९३७ में गोपी-वपुकी एक झलक मिल ही चुकी थी। पद्मपुराणके आधारपर अष्टकालीन लीला-क्रमका अनुसरण करते हुए बाबाने गोपी-भावसे

श्रीराधाकृष्णकी मानसिक रसमयी सेवा आरम्भ कर दी। तीन लाख नाम जप, कुछ पाठ तथा मानसिक सेवा, यही बाबाकी साधनाका इन दिनों मुख्य स्वरूप था। सन् १९३९ के अक्टूबर-नवम्बर मासमें जब बाबा बाबूजीके साथ दादरीमें निवास कर रहे थे, तब बाबाकी साधनामें फिर एक मोड़ आया। बाबाके मनमें श्रीरामचरितमानसकी एक चौपाई बार-बार उभरने लगी।

एकइ धर्म एक व्रत नेमा।काय बचन मन पति पद प्रेमा।।

जिसका जीवन समर्पित होता है, उसके लिये एक ही धर्म, एक ही व्रत, एक ही नियम होता है तनसे-मनसे-वचनसे पति-पद-प्रेम करना। बाबा अपने मनमें चिन्तन करने लगे – मेरे पास गोपी-शरीर तो है नहीं, पर मन है और वाणी है। मनसे मानसिक सेवा यथा-शक्ति सम्पन्न होती है, पर वाणीका विनियोग कैसे करूँ, जिससे भगवान श्रीकृष्णकी प्रसन्नता मिले। परम पुरुषोत्तम भगवान श्रीकृष्णको अपनी (परमाद्या प्रकृति) परमाराध्या प्राण-प्रियतमा भगवती श्रीराधाका नाम अत्यन्त प्रिय है, अतः उनकी प्रसन्नताके लिये 'राधा' नामका जप मैं क्यों न करूँ? इसी प्रकार भगवती श्रीराधाको अपने (परम पुरुषोत्तम) प्राण-प्रियतम श्रीकृष्णका नाम अत्यन्त प्रिय है, फिर तो 'कृष्ण' नामका भी जप करना चाहिये।

बाबाके मनमें यह भाव इतना अधिक छा गया कि सोलह नामवाले महामन्त्रका जप छूट गया और बाबाने 'राधा-कृष्ण' 'राधा-कृष्ण'का जप आरम्भ कर दिया। ब्रह्मवैवर्त पुराणके एक श्लोकको पढ़कर बाबाकी 'राधा' नामके प्रति श्रद्धा अत्यधिक बढ़ गयी। भगवान श्रीकृष्णने अपनी प्राणेश्वरी श्रीराधाके प्रति कहा है कि जो 'रा' अक्षरका उच्चारण करता है, उसे तो मैं अपनी उत्तमा भक्ति प्रदान कर ही देता हूँ, पर जो इसीके साथ 'धा' का उच्चारण करता है, उच्चारणके होते ही मैं उसके पीछे-पीछे चलने लगता हूँ। ब्रह्मवैवर्त पुराणोक्त इस महिमाने बाबाके मनको 'राधा' नामके प्रति अत्यधिक श्रद्धावान बना दिया। अब 'राधा-कृष्ण' नामका निरन्तर जप और मुखसे जब-तब 'राधा', 'राधा', नामका उच्चारण परम श्रद्धालु बाबाकी साधनाका महत्त्वपूर्ण अङ्ग बन गया।

* * * * *

'मञ्जुलीला' भावमें प्रतिष्ठा

एक बार मानसिक सेवाका चाव बाबाके मनमें बहुत अधिक बढ़ गया। तब बाबाके अन्तरमें ऐसा विचार उठा – खग और मृग भी तो श्रीप्रिया-प्रियतमकी सेवा करते हैं। व्रजांगनाकृतिके स्थानपर खगाकृति अथवा मृगाकृति स्वीकार करनेपर सम्भवतः सेवाका अवसर अधिक मिले। यदि मैं तोता बन जाऊँ और शुक-शरीरसे सेवा करूँ तो कैसा रहे? यह तो सुन्दर ही होगा यदि मैं शुक-भावसे श्रीप्रिया-प्रियतमकी सेवा करते हुए उन दिव्य युगलको सुख पहुँचाऊँ, परंतु एक बाधा है। तोता तो पुरुष-शरीर है। यह तो अन्तरंग सेवाके लिये उपयुक्त नहीं। फिर क्यों नहीं मैं सारिका-शरीरसे सेवा करूँ? सारिका तो स्त्री-शरीर है।

बाबाको सारिका-भाव जँच गया और उनके मनने इस भावको पकड़ लिया, पर यह भाव भी बहुत दिनोंतक स्थिर नहीं रह सका। कुछ दिनों बाद यह भाव भी शिथिल होकर शमित हो गया। पुनः भगवान शंकरके वचन मनपर छा गये कि स्वयंको गोपी-रूपमें भावना करके श्रीप्रिया-प्रियतमकी मानसिक सेवा करनी चाहिये। बाबाका वह सारिका-भाव तिरोहित हो गया और उन्होंने गोपी-भावसे प्रिया-प्रियतम श्रीराधाकृष्णकी अष्टकालीन मानसिक सेवा आरम्भ कर दी। यह मानसिक सेवा पद्मपुराणके पाताल खण्डके तिरासिवें अध्यायके अनुसार थी। इसी सेवा-भावनाको संक्षेपमें बाबाने हिन्दीमें भी लिखा जो, 'प्रेम सत्संग-सुधा-माला'* पुस्तकके ७६ वें मणिमें प्रकाशित है।

गौड़ीय साहित्यके लिये बाबाके हृदयमें बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रिया-प्रियतम श्रीराधाकृष्णकी रसमयी सेवाकी दृष्टिसे बाबाके हृदयमें जो भाव अपने आप उदित हुए थे, उन भावोंको गौड़ीय साहित्यसे बड़ा समर्थन मिला। गौड़ीय साहित्यके अवलोकन-अध्ययनसे बाबाको विश्वास हो गया कि मेरे अन्दर भावोंका जो स्वतः और सहज प्रवाह है, वह सही है। मञ्जरी-भावसे श्रीराधाकृष्णकी सेवा करनेकी जो पद्धति बाबाने अपना रखी थी, गौड़ीय साहित्यके पठनके परिणामस्वरूप बाबाके मनकी आस्था उस पद्धतिके प्रति सुदृढ़ होती चली गयी।

---

*'प्रेम सत्संग-सुधा-माला' पुस्तक गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित है।

भगवान शंकरके वचन 'आत्मानं चिन्तयेत्तत्र तासां मध्ये मनोहराम्'के अनुसार बाबा स्वयंकी एक अति मनोहरा-मनोरमा राधानुचरीके रूपमें भावना करते हुए श्रीयुगल सरकारकी सेवा करते। यह सब बाबाके द्वारा होता, परंतु उस भावनाका तथा सेवाका जो उत्कृष्ट आदर्श रूप बाबाके मनपर अंकित था, वह जीवनमें प्रतिष्ठित नहीं हुआ था। इन दिनों बाबाके मनकी दशा बड़ी विचित्र थी। मानसिक सेवाका आदर्श स्वरूप जीवनमें चरितार्थ हो जाये, इस दृष्टिसे कभी आशा, कभी निराशा, कभी व्याकुलता, कभी तत्परता, कभी आत्माहुति, कभी सर्वस्वार्पण आदि-आदि अनके प्रकारके भावोंसे बाबाका मन आप्लावित रहता। बाबा निरन्तर यही सोचते – वह दिन कब होगा, जब मेरे व्यक्तित्वका अस्तित्व रह जायेगा मात्र उनकी सेविकाके रूपमें। मैं क्या करूँ, कैसे करूँ, जिससे मात्र राधानुचरीके रूपमें मेरी स्मृति शेष रह जाये। मानसिक सेवा करते समय जिस तरह मैं श्रीराधारानीके समीप हूँ, यह सामीप्य सदाके लिये स्थायी बन जाये। फिर यह शरीर रहे अथवा न रहे। तब तो इस शरीरके रहते हुए भी इसी जीवनकालमें राधारानीके सर्वथा समीप और जीवनके उस पार चले जानेपर भी श्रीराधारानीके सर्वदा समीपवाली स्थिति बनी रहेगी। नित्य-निरन्तर श्रीराधारानीका सामीप्य रहेगा। राधानुचरीके रूपमें श्रीराधारानीका नित्य सांनिध्य और उनकी नित्य सेवा, ऐसा कब होगा?

बाबाको एक बार श्रीमद्भागवतका एक श्लोक याद आ गया। भगवानने सनकादिकोंसे कहा है –

मनसा वचसा दृष्ट्या गृह्यतेन्यैरपीन्द्रियैः।
अहमेव न मत्तोन्यदिति बुध्यध्वमञ्जसा॥

(भागवत/११/१३/२४)

(मनसे, वाणीसे, दृष्टिसे तथा अन्य इन्द्रियोंसे जो कुछ भी ग्रहण किया जाता है, वह सब मैं ही हूँ। मुझसे भिन्न और कुछ नहीं है। यह सिद्धान्त आप लोग तत्त्वविचारके द्वारा समझ लीजिये।)

बाबा भी इसी तत्त्वको पूर्णतः स्वीकार करते थे कि यह दृश्य जगत और इस जगतकी सभी दृश्य वस्तुओंके रूपमें श्रीकृष्ण ही हैं, पर बाबाको यह रूप अभीष्ट नहीं था। बाबाको तो चरमान्तर्मुखीवाला रूप चाहिये था। नारायण स्वामीने कहा भी है –

सुनूँ न काहू की कही, कहूँ न अपनी बात।
नारायण वा रूप में, छकी रहूँ दिन रात।।

जब मनकी व्यथा बहुत बढ़ गयी तो बाबाके अधरोंसे प्रार्थना फूट पड़ी – जगतका यह रूप मेरे सामनेसे हटा लो नाथ! न जगतका यह रूप मेरे सामने रहे और न अन्य किसीकी स्मृति किंचित् रहे। मेरे सामने रह जायें श्रीराधा और श्रीकृष्ण। गौराङ्गिनी श्रीराधा और नीलकलेवर श्रीकृष्ण सदा मेरे तन-मन-नयनमें बसे रहें और मात्र युगलानुचरीके रूपमें मेरा अस्तित्व बना रहे।

इस विकलताकी स्थितिमें प्रेरणा-ग्रन्थ पद्मपुराणके निम्नलिखित श्लोक बाबाके हृदयको स्पर्श कर गये –

ऐहिकामुष्मिकी चिन्ता नैव कार्या कदाचन।
ऐहिकं तु सदा भाव्यं पूर्वावरितकर्मणा।।
आमुष्मिकं तथा कृष्णं स्वयमेव करिष्यति।
सरःसमुद्रनद्यादीन्विहाय चातको यथा।।
तृषितो म्रियते चापि याचते वै पयोधरम्।
एवमेव प्रयत्नेन साधनानि विचिन्तयेत्।।

(साधकको ऐहिक अर्थात् लौकिक और आमुष्मिक अर्थात् पारलौकिक चिन्ता कभी नहीं करनी चाहिये। इस लोकके भोग तो सदा पूर्वकृत कर्मोंके अनुरूप प्राप्त होंगे ही और परलोककी चिन्ता स्वयं श्रीकृष्ण ही करेंगे। चातक भले प्यासके मारे मर जाये, पर सरोवर-समुद्र-सरितासे विमुख होकर वह जिस प्रकार एक मात्र मेघसे जलकी याचना करता है, उसी प्रकार प्रयत्न पूर्वक साधकको अपने साधनके सम्बन्धमें विचार करना चाहिये।)

बाबाके मनमें बड़ी विकलता थी, इसके बाद भी श्रीपद्मपुराणके निर्देशके अनुसार अपनी साधनामें सफलताके लिये बाबाने चातकी वृत्तिका आश्रय लिया। बाबाके मनमें एक ओर बड़ी विकलता और दूसरी ओर अखण्ड आशा थी – कभी तो वह सरस नीलघन सदय होगा ही।

और बाबाकी सच्ची निष्ठाको देखकर वह सजल नीलघन बरस पड़ा, बह चला। एक दिन परम स्नेहमयी गुरुस्वरूपा श्रीरूपमञ्जरीने बाबापर कृपा की और बाबाको बतलाया – जिस मञ्जरी भावसे तुम्हारे द्वारा श्रीयुगल-सेवा हो रही है, वह तुम वस्तुतः मञ्जुलीला मञ्जरी हो।

यही बाबाकी प्रथम 'भाव-दीक्षा' थी। यह दीक्षा सन् १९४० में सम्पन्न हुई। श्रीमञ्जुलीला भावमें प्रतिष्ठा होते ही बाबाके अन्तरमें आत्म-संगोपनकी प्रवृत्ति जाग उठी। अपने शरीरके कार्य तथा जगतके व्यवहारको सम्पन्न करनेमें बाबाको बड़ी अड़चनकी अनुभूति होती थी। लोगोंसे व्यवहार करते समय बाबाको आवश्यकतासे अधिक सावधान रहना पड़ता था। बहुत सतर्क रहनेके बाद भी सबल-भाव-स्थिति होनेके कारण बाबाके मुखसे पुरुषवाचक क्रियापदके स्थानपर स्त्रीवाचक क्रियापद निकल जाया करते थे। इस प्रकारकी अभिव्यक्तिके फलस्वरूप जब कभी उलझन पूर्ण परिस्थिति उत्पन्न हो जाया करती थी, तब उसे सँभालना भी बाबाके लिये बड़ा कठिन हो जाया करता था।

वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाके वाम कपोलपर कृष्णवर्णीय बिन्दु है। यह कृष्ण बिन्दु नासिका-पुटसे तनिक-सा हटकर कुछ ऊपरकी ओर है। इस बिन्दुके रूपमें श्यामवर्णीया श्रीमञ्जुलीलाका श्रीराधारानीके गौर अंगमें नित्य अवस्थान है। कभी तो उस बिन्दुमें विलीन होकर उससे बाबाकी एकात्मता स्थापित हो जाती और कभी उससे बाहर आकर श्यामवर्णीया श्रीमञ्जुलीला मञ्जरीके रूपमें स्थिति हो जाती। जबतक बाबा श्रीमञ्जुलीला भावमें रहे, तबतक विरह भावकी ही प्रधानता रही।

रसोपासनाके इन आरम्भिक वर्षोंमें बाबाको भक्त कवि श्रीसूरदासजीके तीन पद बहुत ही अधिक प्रिय थे। इन पदोंमें प्रेम-पथका, प्रेम-पथ-पथिकका, प्रेम-दशाओंका, प्रेम-निमग्नताका, प्रेमोन्मत्तताका और सच्चे प्रेमी जीवनका बड़ा ही हृदयस्पर्शी चित्रण है। यही तो बाबाके समक्ष प्रेम-पूर्ण-जीवनका एक आदर्श स्वरूप था। वे तीनों पद इस प्रकार हैं –

ग्वालिनि प्रगट्यो पूरन नेहु।
दधि भाजन सिर पैं लिए (हो), कहत गुपालहिं लेहु।। १।।
कौन सुनै, कासौं कहौं (हो), काकें सुरत संकोच।
काकौं डर पथ अपथ कौ (हो), को उत्तम, को पोच।। २।।
हाट बाट, प्रिय पुर गली (हो), जहाँ तहाँ हरिनाम।
समुझाएँ समुझैं नहीं (हो), वाहि सिख दै बिथक्यौ ग्राम।। ३।।
पान किये जस बारुनी (हो), मुख भलकत, तन न सँभार।
पग डगमग इत उत परैं (हो), बिथुरी अलक लिलार।। ४।।

दीपक ज्यों मन्दिर बरै (हो), बाहर लखै न कोय।
तृन परसत प्रज्वलित भयो (हो), (अब) गुपुत कवन बिधि होय।। ५।।
सरिता निकट तड़ाग के (हो), दीनौ कूल विदारि।
नाम मिट्यौ, सरिता भयौ, (अब) कौन निबेरैं बारि।। ६।।
लज्जा तरल-तरंगिनी (हो), गुरुजन गहरी धार।
दोउ कुल कूल, परिमित नहीं (हो), वाहि तरत न लागी बार।। ७।।
बिधि भाजन ओछो रच्यौ (हो), लीला सिन्धु अपार।
उलटि मगन तामें भयौ (हो), (अब) कौन निकासनहार।। ८।।
चित आकर्ष्यो नन्द के (हो), मुरली मधुर बजाय।
जेहि लज्जा जग लजायो (हो), सो लज्जा गई लजाय।। ९।।
प्रेम मगन ग्वालिनि भई (हो), सूरदास प्रभु संग।
स्रवन नयन मुख नासिका ज्यौं, कंचुकि तजत भुजंग।। १०।।

* * *

कब की मह्यौ लिऐं सिर डोलै।
झूँठई इत उत फिर आवत, इहाँ आय यह बोलै।।
मुँह लौ भरी मथनियाँ तेरी, तोहि रटत भई साँझ।
जानति हौं गोरस को लेवा, याही बाखरि माँझ।।
इत तौ आय बात सुनि मेरी, कहें बिलग जिन मानै।
तेरे घर मैं तुही सयानी, और बेचि नहिं जानै।।
भ्रमतहिं भ्रमत भरमि गई ग्वारिनि, बिकल भई बेहाल।
सूरदास प्रभु अंतरजामी, आइ मिले गोपाल।।

* * *

नाहिन रह्यौ हिय मैं ठौर।
नंदनंदन अछत कैसे आनिये उर और।।
चलत चितवत दिवस जागत सुपन सोवत रात।
हृदय ते वह स्याम मूरति छिन न इत उत जात।।
कहत कथा अनेक ऊधौ लोक लाज दिखात।
कहा करौं तन प्रेम पूरन घट न सिंधु समात।।
स्याम गात सरोज आनन ललित गति मृदु हास।
सूर ऐसे रूप कारन मरत लोचन प्यास।।

इन तीनों पदोंकी बाबाने बड़ी ही भावमयी व्याख्या विस्तार पूर्वक लिखी है। प्रथम दो पदोंकी व्याख्या 'चलौ री आज व्रजराज मुख निरखिये' पुस्तकमें प्रकाशित है और तृतीय पदकी व्याख्या 'प्रेम सत्संग-सुधा-माला' पुस्तकमें मणि-६७ में है। इन पदोंके अतिरिक्त श्रीनारायणस्वामी, श्रीगोविन्दस्वामी, श्रीवल्लभजी एवं श्रीहरिश्चन्द्रजीके निम्नलिखित पद भी बाबाको अत्यन्त प्रिय थे। ये चारों पद इस प्रकार हैं –

मोहन मुखारबिंद पर मनमथ कोटिक वारौं री माई।
जिहि जिहि अंगनि दृष्टि परति (है) तहँ तहँ रहत लुभाई।।
अलक तिलक कुंडल कपोल छबि, इक रसना मोपै बरनि न जाई।
गोबिंद प्रभु की बानिक ऊपर, बलि बलि रसिक चूड़ामनि राई।।

* * *

छिनहिं छिन सुरति होति री माई।
बोलनि मिलनि चलनि हँसि चितवनि प्रीति रीति चतुराई।।
साँझ समय गोधन सँग आवनि परम मनोहरताई।
रूप सुधा आनंद सिंधुमें झलमलात तरुनाई।।
अंग अंग प्रति मैन सैन सजि धीरज देत छुड़ाई।
उड़ि उड़ि लगत दृगनि टोना सो जग मोहनी कन्हाई।।
मरियत सोचि सोचि बिन बातनि हौं बन गहन भुलाई।
बल्लभ औचक आय मंद हँसि गहि भुज कंठ लगाई।।

* * *

पिय प्राननाथ मनमोहन सुन्दर प्यारे।
छिनहूँ मत मेरे होहु दृगन सों न्यारे।।
घनस्याम गोप-गोपी-पति गोकुल-राई।
निज प्रेमीजन-हित नित नित नव सुखदाई।।
बृन्दावन-रच्छक ब्रज-सरबस बल-भाई।
प्रानहुँ ते प्यारे प्रियतम मीत कन्हाई।।
श्रीराधानायक जसुदानन्द दुलारे।
छिनहूँ मत मेरे होहु दृगन सों न्यारे।।१।।

तुव दरसन बिनु तन रोम रोम दुख पागे।
तुव सुमिरन बिनु यह जीवन विष सम लागे।।
तुमरे सँयोग बिनु तन बियोग दुख दागे।
अकुलात प्रान जब कठिन मदन मन जागे।।
मम दुख जीवन के तुम हो इक रखवारे।
छिनहूँ मत मेरे होहु दृगन सों न्यारे।।२।।
तुम हीं मम जीवन के अवलम्ब कन्हाई।
तुम बिनु सब सुख के साज परम दुखदाई।।
तुव देखे ही सुख होत न और उपाई।
तुमरे बिनु सब जग सूनो परत लखाई।।
हे जीवनधन मेरे नैनों के तारे।
छिनहूँ मत मेरे होहु दृगन सों न्यारे।।३।।
तुमरे-बिनु इक छन कोटि कलप सम भारी।
तुमरे-बिनु स्वरगहु महा नरक दुखकारी।।
तुमरे सँग बनहू घर सौं बढ़ि बनवारी।
हमरे तौ सब कुछ तुमही हौ गिरधारी।।
'हरिचन्द' हमारो राखो मान दुलारे।
छिनहूँ मत मेरे होहु दृगन तें न्यारे।।४।।

* * *

जाहि लगन लगी घनस्याम की।
धरत कहूँ पग परत कितैहू, भूलि जाय सुधि धाम की।।
छबि निहारि नहिं रहत सार कछु, निसि दिन पल-छिन-जाम की।
जित मुँह उठैं तितै ही धावै, सुरति न छाया घाम की।।
अस्तुति निंदा करौ भले ही, मैंड तजी कुल - गाम की।
नारायन बौरी भई डौलै, रही न काहू काम की।।

रसोपासनामें और रसमें सर्वथा आशिख निमग्न हो जानेकी आत्यन्तिक चटपटी-छटपटी जिनके हृदयमें क्षण-प्रति-क्षण मची हुई हो, ऐसे बाबाके लिये उन दिनों ये सारे पद सतत प्रेरणा-स्रोत रहे।

* * * * *

अपमान के क्षण

प्रसंग सन् १९४१ का है। एक बार पूज्य बाबूजीके साथ बाबा दिल्ली गये हुए थे और वहाँ श्रीमथुरानाथजीके यहाँ ठहरे थे। बाबासे पूज्य बाबूजीने बता रखा था कि टहलनेके लिये यमुनाजीके किनारे चले जाया करियेगा। जब बाबा टहलकर वापस आये और कोठीमें घुसने लगे तो पहरेदारने कड़ककर कहा – कहाँ जाता है?

बाबाने उसको कुछ विनम्र उत्तर दिया तो उसकी तेजी बहुत बढ़ गयी। बाबा जितनी शालीनता दिखलाते, उतना ही उसकी बोली अधिकाधिक कड़क होती जाती। वह तो बड़ा ताकतवर था, पर बाबा थे शारीरिक दृष्टिसे दुबले-पतले। बाबा वहीं चुपचाप खड़े रहे। बाबाको रह-रह करके पूज्य बाबूजीकी चिन्ता हो रही थी। बाबा तो यहाँ एकदम बाहरी गेटपर खड़े थे और कोठीके भीतरसे यदि श्रीमथुरानाथजी पूज्य बाबूजीको फोन कर देंगे कि अभीतक यहाँ बाबा नहीं आये हैं तो उनको चिन्ता हो जायेगी। यह समाचार पाकर वे स्वयं कार लेकर यमुनाके किनारे पहुँच जायेंगे। पता नहीं वे कितना परेशान होंगे। पूज्य बाबूजीको परेशानीसे बचानेके लिये बस, एक ही तरीका था कि बाबा किसी तरह कोठीके भीतर श्रीमथुरानाथजीके पास पहुँच जायें, पर पहुँचें कैसे? यह पहरेदार जो बाधक बना हुआ था। भीतर-ही-भीतर मन-ही-मन बाबाने एक योजना बनायी। बाबाको अपने बचपनकी याद आयी। जब बाबा विद्यार्थी थे, तब वे सेंटर-फार्वर्ड पोजिशनसे फुटबालके खिलाड़ी थे। बस, बाबाको वह अपना फुटबाल खेलना और तेज दौड़ लगाना स्फुरित होने लगा। बाबा माला जप रहे थे। बाबाने अपनी माला पूरी की। जपको पूरा करके उन्होंने मालाको अपनी टेंटमें खोंस लिया। फिर कपड़ोंको दौड़ लगानेकी दृष्टिसे समेट लिया, पर समेटा इस चुपचाप ढंगसे कि वह पहरेदार देख नहीं पाये। बाबा मन-ही-मन यह भी समझ रहे थे – भले यह पहरेदार मुझसे अधिक ताकतवर है, पर मेरा शरीर अधिक हल्का है तथा जितना तेज मैं दौड़ सकता हूँ, उतना तेज वह नहीं दौड़ सकता।

बाबा इस मौकेकी राह देख रहे थे कि आधे-एक मिनटके लिये यह पहरेदार किसी ओर हटे तो मैं तपाकसे कोठीके अन्दर भाग चलूँ।

थोड़ी देर बाद ही वह अवसर हाथ लग गया। किसी और व्यक्तिसे बात करनेके लिये वह पहरेदार एक मिनटके लिये गेटपरसे हटा। बाबा तो तैयार थे ही। उसी बीचमें बाबा कोठीके अन्दर भाग चले। कोठीमें घुसते देखकर पहरेदार अपनी लाठी लेकर बाबाके पीछे भागा, आगे बाबा, पीछे वह पहरेदार। बाबाका अनुमान सही था। वह बाबा जितना भाग नहीं पा रहा था। वह लपककर बाबाको पकड़ सके, इसके बहुत पहले ही बाबा कोठीकी गद्दीमें पहुँच गये। वहाँ श्रीमथुरानाथजी बैठे थे। भागकर आते हुए बाबाको देखकर उन्होंने अकचकाकर पूछा — क्या बात है? क्यों दौड़ रहे हैं?

बाबाने कहा — कुछ नहीं।

तबतक वह पहरेदार भी आ गया। पहरेदारने पूछा — यह साधु कौन हैं?

श्रीमथुरानाथजीने कहा — ये अपने ही हैं।

तब वह पहरेदार वापस चला गया।

* * *

अगला प्रसंग बिहार प्रदेश स्थित डेहरी-आन-सोनका है —

एक बार पूज्य बाबूजी, बाबा तथा श्रीजयदयालजी डालमिया दिल्लीसे सबेरे आठ बजे रेलगाड़ीसे रवाना होकर डेहरी-ऑन-सोन दूसरे दिन नौ बजे सबेरे पहुँचे। साथमें श्रीडालमियाजीका नौकर श्रीश्यामा भी था। नौ बजे पहुँचकर स्नान-शौच आदिसे तथा भिक्षासे निवृत्त होनेमें अपराह्नकालके चार बज गये थे। चार बजे बाबाने स्लेटपर लिखकर पूछा था — क्या कोई जगह टहलनेके लायक है?

पूछनेपर श्रीडालमियाजीने कहा — यहाँ पासमें नहर है। नहरके किनारे- किनारे टहला जा सकता है।

जिस दिशाकी ओर बतलाया गया था, बाबा उधर नहरके किनारे टहलने चले गये। इधर बाबा टहलने गये और उधर कोठीके दरबानकी बदली हो गयी। पहलेवाला दरबान विश्रामके लिये चला गया और उसके स्थानपर अब अपनी खुखरी लिये एक नेपाली गोरखा दरबान पहरा दे रहा था। ज्यों ही बाबा टहलकर लौटे और कोठीके मुख्य द्वारसे प्रवेश किया, त्यों ही उस नेपाली गोरखा दरबानने बाबाकी गर्दन पकड़कर

अति अभद्र गाली देते हुए सड़कपर दूर बैठा दिया। नेपाली गोरखा दरबान द्वारा ऐसा किये जानेपर भी बाबाके मनमें रंच मात्र भी विकृति या ऊँच-नीचका भाव नहीं आया। वही मुस्कान बाबाके चेहरेपर थी। बाबा गन्दे धूलि भरे स्थानपर बैठे थे। सामनेसे सैकड़ों बैलगाड़ियाँ, ईंख लादे हुए चली गयीं। बैलोंके खुरोंसे धूलि उड़-उड़ करके बाबाके ऊपर पड़ रही थी। लगभग आधा घण्टा हो गया। इस अवधिमें वह नेपाली गोरखा दरबान दो-तीन बार बाबाके पास आया तथा गाली देते हुए कहने लगा – यह साधु अभीतक यहीं बैठा है, हँसता है, जाता नहीं है।

जब वह पास आता तो बाबाको अपनी खुखरी दिखलाता, मानो पेटके अन्दर घोंप देगा। आधा घण्टे बाद वह श्यामा नौकर कोठीके बाहर निकला। उसने देखा कि बाबा बड़े गन्दे स्थानपर धूलिमें बैठे हैं। श्यामाने यही समझा कि ये बाबा भी कितने मूर्ख हैं? उनको यह भी ज्ञान नहीं है कि कहाँ बैठना चाहिये और कहाँ नहीं। श्यामा नौकरने जाकर बाबासे कहा – अरे राम! अरे राम! यह भी कोई बैठनेकी जगह है?

इतना कहकर वह श्यामा नौकर बाबाका हाथ पकड़कर कोठीके अन्दर ले गया। बाबा मन-ही-मन कहने लगे – इस श्यामाको मैं यह कैसे बताऊँ कि मैं स्वयं बैठा हूँ या किसीके द्वारा बैठाया गया हूँ।

कोठीके अन्दर प्रवेश करते समय बाबाने एक बार उस नेपाली गोरखा दरबानकी ओर एक नजर फेंककर देख लिया था। उसके तो चेहरेकी हवाइयाँ उड़ रही थीं। कोठीके भीतर दूबका सुन्दर मैदान था। श्यामाने एक और नौकर बुला लिया और उसकी सहायतासे बढ़िया सोफा कोठीके बरामदेमेंसे दूबके हरे मैदानमें लाकर रख दिया। इसके बाद उसने बाबाको उस सोफेपर बैठाया। थोड़ी देर बाद श्रीडालमियाजी आकर बाबाके चरणोंके पास दूबके मैदानमें बैठ गये। फाटकपर खड़े-खड़े वह नेपाली गोरखा दरबान यह सब देख रहा था। अब तो उसके होश गुम हो गये। उसको लगा कि आज बहुत बड़ी गलती हो गयी है और किसी बहुत बड़े साधुके प्रति मैंने बड़ा ही गलत काम कर दिया है। उसके मनके भाव उसके चेहरेपर झलक रहे थे और उसका चेहरा देखकर बाबा उसके भावोंकी आँधीको समझ भी रहे थे। बाबाका मौन चल रहा था। बाबाने स्लेटकी पट्टीपर लिखकर श्रीडालमियाजीसे कहा – मैं इस समय एकान्त चाहता हूँ।

श्रीडालमियाजी उठकर तुरन्त चले गये। उनके जाते ही वह नेपाली गोरखा दरबान घबराया हुआ बाबाके पास आया तथा घबरायी आवाजमें अपने एक हाथसे झुककर पूज्य बाबाके पैर छूते हुए कहने लगा – हम नहीं जानता था, हम नहीं जानता था।

फिर वह भागकर मुख्य द्वारपर चला गया, पर उसके भीतर चैन था नहीं। वह भागकर बाबाके पास आता था, माफी माँगता था और फिर भागकर वह मुख्य द्वारपर चला जाता था। इस प्रकार उसने तीन-चार बार किया। बाबा उसको सान्त्वना देना चाहते थे, पर दें कैसे? इधर तो बाबाका मौन था और उधर वह पढ़ना जानता नहीं था। अन्तमें बाबाने अपना मौन भंग करके उसको आश्वस्त किया – तुम चिन्ता मत करो, घबराओ नहीं, मैं किसीसे यह बात नहीं कहूँगा।

जब बाबाने इतना कहा, तब कहीं जाकर वह नेपाली गोरखा दरबान शान्त-चित्त हो सका।

* * *

एक और प्रसंग लखनऊ हवाई अड्डेका है –

बाबा और बाबूजी हवाई जहाजसे उतरे। अड्डेपर इन लोगोंको लेनेके लिये कार नहीं पहुँच पायी थी। पूज्य बाबूजीने पूछा – बाबा! अभीतक कार नहीं आयी है। मैं बाहर जाकर देखता हूँ कि क्या बात है। इधर हवाई जहाजसे अपना सामान उतरेगा। क्या उसे आप सँभाल लेंगे?

बाबाने बाबूजीसे कहा – मैं खड़ा-खड़ा सामान देखता रहूँगा।

पूज्य बाबूजी आवश्यक व्यवस्थाके लिये बाहर चले गये। बाबा खड़े-खड़े प्रतीक्षा कर रहे थे कि कब हवाई जहाजसे सामान उतरकर आये और उसे अपने पास रखवा लूँ। बाबाको खड़े देखकर हवाई अड्डेका पोर्टर (कुली) आया और धक्का देकर बाबाको एक किनारे कर दिया। उसकी धारणाके अनुसार तो बाबा कोई उचक्का साधु ही था, जो किसी खराब नीयतसे वहाँ खड़ा था। बाबा फिर भी वहाँ चुपचाप निर्विकार खड़े रहे। जब सामान बाहर आने लगा तब बाबाने अँगरेजीमें कहा – यह सामान हमारा है।

बाबाके द्वारा इतना कहा जाना था कि वह कुली घबड़ाया। उसको डर लगा कि कहीं मेरे दुर्व्यवहारकी शिकायत न कर दी जाय। उसने क्षमा-याचना करते हुए कहा — मुझे पता नहीं था कि आप भी यात्री हैं।

बाबाने उसे आश्वासन दिया — मेरे द्वारा तुम्हारा कोई अहित नहीं होगा। मैं कोई भी शिकायत नहीं करूँगा।

जीवनमें घटित ऐसे कई प्रसंगोंको बाबा कभी-कभी सुनाया करते थे। इन कुछ घटनाओंको सुनाकर बाबा कहा करते थे — जबतक मनमें मान-अपमानके बोधकी भावना है, तबतक भगवद्दर्शन तो दूरकी बात है, हम स्वयंको आस्तिक कहलानेके भी अधिकारी नहीं हैं। यह जो शरीर रूपी पाञ्चभौतिक आवरण है, जबतक हम इससे अलग नहीं होते, तबतक उस दिव्य भावराज्यमें प्रवेश हो ही कैसे सकता है?

* * * * *

प्रवचन-परित्याग : मौन-व्रत

बाबूजी अपने सम्पादकीय विभागके साथ रतनगढ़में निवास कर रहे थे, परन्तु श्रीसेठजीके विशेष अनुरोधपर उन्हें चूरू जाना पड़ता था। रतनगढ़के समीप चूरू राजस्थानका एक प्रमुख नगर है।

चूरूमें पूज्य श्रीसेठजीने एक ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रमकी स्थापना कर रखी है, जहाँ प्राचीन गुरुकुल पद्धतिसे ब्रह्मचारियोंको शिक्षा दी जाती है। प्रतिवर्ष ऋषिकुलमें वार्षिकोत्सव मनाया जाता है। इस उत्सवमें बाबूजीकी उपस्थितिसे उल्लास छा जाया करता था। बाबूजीके साथ बाबा तो उत्सवमें आते ही थे, सम्पादकीय विभागके प्रमुख व्यक्ति भी उपस्थित रहा करते थे। ऋषिकुलके ब्रह्मचारियोंको प्रबोध प्रदान करनेके लिये सभी समागत संतों-विद्वानोंसे भाषण देनेके लिये अनुरोध किया जाता था। बाबासे तो विशेष रूपसे अनुरोध किया जाता था।

बाबाकी वाणीमें बड़ा ओज था और उनके वक्तव्यमें लोगोंको प्रभावित करनेकी अनोखी क्षमता थी। विषयकी प्रतिपादन शैली इतनी प्रभावोत्पादक होती थी कि श्रोताका चिन्तन-प्रवाह प्रवचनमें प्रतिपाद्यके अनुसार बह चलता था। बाबाके प्रवचनोंमें सिद्धान्तोंका विवेचन और उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण इतना सुन्दर होता था कि उसकी स्थायी छाप

श्रोताके मनपर पड़ती थी। उन आकर्षणपूर्ण प्रवचनोंको सुन करके लोग भक्तिभावपूर्ण जीवनके सपने देखने लगते थे। उन प्रवचनोंसे प्रेरणा प्राप्त करके न जाने कितने लोगोंका जीवन साधन-परायण हो गया। यही कारण था कि बाबाके प्रवचनोंमें बड़ी भीड़ हुआ करती थी। पंडालमें ऋषिकुलके ब्रह्मचारी तो रहते ही थे, नगरके अनेक सम्भ्रान्त लोग तथा राजकीय अधिकारीगण भी प्रवचन सुननेके लिये अवश्य आते थे। समाजके केवल प्रबुद्ध वर्गके व्यक्ति ही नहीं, साधारण स्तरके लोग भी बहुत बड़ी संख्यामें आया करते थे। पंडाल एकदम भरा रहता था, इसके बाद भी सर्वत्र बड़ी शान्ति रहा करती थी। ऐसा लगता था मानो सभी मन्त्र-मुग्ध हों।

समाजमें आध्यात्मिक भावोंके जागरणकी दृष्टिसे इन प्रवचनोंके द्वारा एक महान कार्य हो रहा था, परन्तु ऐसा लगता है कि इस महान कार्यसे भी अति विशिष्ट किसी महान आदर्शकी प्रतिष्ठाका कार्य ईश्वरीय योजनाको अभीष्ट था, तभी तो बाबूजीने एक बार बाबासे एक बड़ी ऐकान्तिक एवं मार्मिक बात कही। सम्भवतः सन् १९४१ ई. की बात है। एक दिन बाबा प्रवचन देनेके लिये जब जाने लगे तो उचित अवसर देखकर बाबूजीने बाबासे कहा — आप तो आये थे किसी और कामके लिये, पर आप लग गये धर्म-प्रचार और लोक-सुधारके कार्यमें।

बाबाने कहा — मैं आपके कथनका आशय नहीं समझ पाया। आप क्या कहना चाहते हैं?

बाबूजीने कहा — मैं क्या बताऊँ कि मैं आपको किस रूपमें देखना चाहता हूँ। मेरी आन्तरिक अभिलाषा है कि आपका जीवन श्रीकृष्णानुरागिणी व्रजांगनाओंके दिव्य प्रेमका साकार स्वरूप बन जाय। श्रीमद्भागवतका एक श्लोक है —

या दोहनेऽवहनने मथनोपलेप-
प्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ।
गायन्ति चैनमुनरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्यो
धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः॥
(भागवत/१०/४४/१५)

मैं तो चाहता हूँ कि इस श्लोकका सत्य आपके जीवनमें चरितार्थ हो उठे। आपको धर्मोपदेशक बनना है या प्रेम-सिन्धुमें निमज्जन करना है? श्रीकृष्णप्रेमसे परिपूर्ण उस दिव्य जीवनका महत्त्व कुछ अद्भुत ही है।

प्रवचन देनेसे बहुतोंको लाभ होगा और आपकी प्रतिष्ठा भी बहुत होगी, परन्तु इस प्रकारकी बहिर्मुखतासे उस दिव्य जीवनकी प्राप्तिमें बहुत अधिक विलम्ब हो जायेगा।

बाबूजीके ये शब्द बाबाके मर्मको स्पर्श कर गये। बाबाने पूछा – आप कहें तो मैं अभी मौन हो जाऊँ?

बाबूजीने कहा – आज तो आप प्रवचन दे आयें। पंडालमें लोग आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। नगरके लोग श्रद्धा-भाव लेकर सुननेके लिये आये हैं। इसके बाद आप इस प्रवृत्तिसे निवृत्त हो जायें।

बाबूजीका तनिक-सा संकेत पर्याप्त था। बाबा पंडालमें गये और उस दिन उनका 'अन्तिम' प्रवचन था। अन्तिम प्रवचन होनेसे वह और भी विचारोत्तेजक एवं भावोद्दीपक था। प्रवचन देकर बाबा मौन हो गये। उसी प्रवचनमें बाबाने कह भी दिया कि यह मेरा अन्तिम प्रवचन है। यह सुनते ही सबकी भावनाएँ बड़ी व्यथित हुईं, परन्तु अब तो बाबाकी जीवन धारामें एक मोड़ आ चुका था। अब बाबाको रस-सिन्धुमें निमज्जन करना था। पूज्य श्रीसेठजीने इस निर्णयमें शिथिलता लानेके लिये कई बार कहा, परन्तु सागरोन्मुखी सरिताके प्रवाहको लक्ष्यसे विमुख अथवा पथसे विरत कौन कर पाया है? बाबाके जीवनकी यह एक प्रमुख विशेषता थी कि जिसको पकड़ा, उसको सदाके लिये पकड़ लिया और जिसको छोड़ा, उसको सदाके लिये छोड़ दिया। छोड़ा हुआ बाबाके स्मृति-क्षेत्रसे ही दूर हो जाता था। पूज्य श्रीसेठजीके अतिरिक्त अन्य कई बन्धुओंने भी लोक-हितकी भावनासे प्रवचन देनेके लिये अनुरोध किया, परंतु उन बन्धुओंको भला क्या पता कि बाबाका जीवन अब किस संकेतसे परिचालित है। यह बात बतलाने योग्य थी भी नहीं। अब तो उस संकेतके साँचे में जीवनको चुपचाप ढाल देना था।

कुछ स्वजनोंका ऐसा कथन है कि बाबूजीने मौन हो जानेका संकेत चूरूमें नहीं, रतनगढ़में दिया था। कुछ लोगोंका ऐसा भी कहना है कि स्वर्गाश्रममें संकेत दिया गया था। जो भी हो, बाबाको संकेत बाबूजीसे प्राप्त हुआ था और संकेत मिलते ही बाबा मौन हो गये। मौन व्रत लेनेके बाद बाबा अपने पास स्लेट और पेंसिल रखा करते थे। यदि कभी किसीसे कुछ कहना होता था तो स्लेटपर लिखकर बात किया करते थे। लिखकर बात करनेमें भी बाबा संयम रखते थे कि जहाँ तक

प्रीतिरसावतार महाभावनिमग्न
श्रीराधा बाबा
(प्रथम भाग)
पृष्ठ संख्या
201-300
तक
राधेश्याम बंका

हो सके, कम लिखना पड़े।

पूज्य श्रीसेठजी ऐसा चाहते थे कि बाबा बाइस घंटे मौन रहें तथा दो घंटे प्रवचन दिया करें, जिससे गीता-प्रचारके द्वारा लोक-संग्रहका कार्य सुन्दर प्रकारसे हो सके। श्रीसेठजी समय-समयपर बाबासे निवेदन करते रहते थे, इसी आशामें कि न जाने कब उत्प्रेरणसे बात बन जाये, तीर लक्ष्य-बिन्दुपर लग जाये और बाबा प्रवचन देना आरम्भ कर दें। जब-जब श्रीसेठजी प्रवचन देनेकी बात चलाते, तब-तब बाबा किनारा काट जाते, परंतु उन्होंने ऐसा कभी नहीं बताया कि मेरा मौन-व्रत श्रीपोद्दार महाराजके संकेतके अनुसार है। एक बार कर्णवासमें बाबाके सामने बड़ी उलझनपूर्ण परिस्थिति उत्पन्न हो गयी। कर्णवासमें श्रीसेठजीका सत्संग-सत्र चल रहा था। वहींपर बाबूजी और बाबा भी थे। श्रीसेठजीने बाबासे जब प्रवचन देनेके लिये निवेदन किया तो बाबाने विनम्र शब्दोंमें विवशता व्यक्त करते हुए कहा – मैं इस बातका अधिकारी नहीं कि प्रवचन दूँ और प्रवचन देकर लोगोंको सन्मार्गपर चलनेके लिये प्रेरित करूँ।

बाबाकी बात सुनकर सेठजीको थोड़ा भावावेश हो आया और उन्होंने कहा – आप कहें तो मैं अभी आपको अधिकारी बना दूँ।

श्रीसेठजीके मुखसे इन शब्दोंको सुनकर बाबा बड़े धर्म-संकटमें पड़ गये। श्रीसेठजीको क्या उत्तर दिया जाय, इसीके सोचने-विचारनेमें समय निकलता चला जा रहा था। इस अवसरपर जो-जो व्यक्ति वहाँ उपस्थित थे, सभी बड़ी उत्सुकताभरी दृष्टिसे बाबाकी ओर देखने लग गये। वे सुनना चाहते थे कि बाबा क्या उत्तर देते हैं। समीपस्थ सभी लोगोंकी उत्सुकता स्वाभाविक थी। वे लोग अच्छी प्रकार जान रहे थे कि महागम्भीर श्रीसेठजीने आज वह बात अपने मुखसे कह दी है, जो वे स्वभावतः कभी किसीसे कहते ही नहीं और यह एक परम दुर्लभ अवसर है। श्रीसेठजी जैसे सिद्ध संतने स्वयं आगे होकर पात्रता प्रदान करनेकी बात कही है और ऐसा स्वर्ण अवसर फिर कभी भविष्यमें आनेवाला है नहीं। लोगोंके मनमें उत्सुकता भरी हुई थी, पर बाबाके मनमें उलझन खड़ी हुई थी। इसीमें कुछ क्षण निकल गये। फिर सोच-विचारमें पड़े हुए बाबासे श्रीसेठजीने कहा – स्वामीजी! मैंने अधिकार-प्रदान करनेकी जो बात कही थी, उसे मैं अब वापस लेता हूँ। यदि आप 'हाँ' कह देते तो मेरे ऊपर बड़ी जिम्मेदारी आ जाती।

श्रीसेठजीके इन शब्दोंको सुनकर सभी समीपस्थ लोग खिन्न हो गये। उन लोगोंके मनमें बाबाके प्रति नितान्त खेदभरी सहानुभूति उमड़ने लगी कि बाबाने एक अति सुन्दर स्वर्ण अवसर अपने हाथसे खो दिया। वे लोग चाहे जो सोचें, पर बाबा तो मौन और निर्विकार बैठे रहे। सहानुभूतिसे भरे हुए उन लोगोंको भला क्या पता कि बाबाके मानसका स्तर कैसा है? बाबाको श्रीसेठजीके सामर्थ्यपर तनिक भी संदेह नहीं था। बाबा भलीभाँति जानते थे कि श्रीसेठजी एक सिद्ध संत हैं और वे अपने संकल्पसे किसी अनधिकारीको पूर्ण अधिकारी बना सकते हैं, परंतु बाबाके मनका निश्चय यह था कि यदि कुछ लेना है तो वह एक मात्र लेना है श्रीपोद्दार महाराजसे, जिनको स्वयं व्रजेन्द्रनन्दन भगवान श्रीकृष्णने सचल वृन्दावन बतलाया है और जिनके साथ नित्य रहनेका संकेत देकर एक ऐसा परम निर्मल स्नेह-सम्बन्ध स्थापित किया है, जो सर्वथा-सर्वथा अतीत है मेरे-तेरेसे, देश-कालसे, जन्म-मृत्युसे, इह-परसे। ऐसे परमात्मीय महाभागवत श्रीपोद्दार महाराजपरसे दृष्टि हटाकर अन्यकी ओर देखनेका अर्थ है प्रीतिकी उज्ज्वलताको धूमिल कर देना, समर्पणकी चादरपर धब्बा लगाना। अन्यकी आशासे आस्थाकी आनपर आँच आती है। अन्यके द्वारसे प्राप्त परिपोषण निष्ठाके लिये कलंक है। विश्व-वन्दनीया पुण्य-सलिला भगवती गंगाजी चाहे जितनी महान और पवित्र हों, परंतु चातकके लिये गंगा-जल नहीं, एक मात्र स्वातिजल ही ग्राह्य है। अन्याश्रयसे अनन्यता खण्डित होती है। 'भक्त' वह जो 'विभक्त' न हो। अन्यके सहयोगकी स्वीकृति एकाश्रयका विघातक है। इस प्रकारके विचारोंके प्रवाहने ही धर्म-संकटकी विकट स्थिति बाबाके सामने उपस्थित कर दी थी। एक ओर थी सच्चे प्यारकी टेक और दूसरी ओर था सिद्ध संतका प्रस्ताव, इस प्रकारके उलझनमें पड़े हुए बाबाको उन्हीं सर्व-उर-प्रेरक व्रजेन्द्रनन्दन भगवान श्रीकृष्णने धर्म-संकटसे उबार लिया। उबार लिया श्रीसेठजीको प्रेरणा देकर कि अपने शब्द वापस ले लो। ज्यों ही श्रीसेठजीने अपने शब्द वापस लिये, बाबाके एक-निष्ठ मनको बड़ी शान्ति मिली। उस शान्तिकी परमातिपरम सात्त्विकताकी कल्पना भी उन सहानुभूति करनेवाले लोगोंके लिये असम्भव थी।

* * * * *

गंगा-स्नान के लिए प्रस्तुत

भाव भरा वन्दन

आन्तरिक मान्यताएँ : अन्तरंग लीलाएँ

बाबूजी अपने पूर्वजोंके नगर रतनगढ़में दिसम्बर १९३९ से लेकर जून १९४५ तक रहे। वहाँ पूर्वजोंकी हवेली है, उसीमें बाबूजी सपरिवार रहा करते थे। बाबूजीके साथ बाबा भी वहीं थे। रतनगढ़-निवासकी अवधिका बाबाके जीवनमें कम महत्त्व नहीं है। इस अवधिके प्रथम चार वर्षतक बाबा श्रीमञ्जुलीला-मञ्जरी-भावमें प्रतिष्ठित रहे। बाबा भाव-सिन्धुमें उत्तरोत्तर गहरे उतरते चले गये। बाबाका तन-मन-जीवन सब कुछ भाव-सिन्धुमें निमग्न रहता था। सूर्योदय और सूर्यास्तसे बाबाकी दैनिक जीवन-चर्या परिचालित अवश्य रहती थी, पर सत्य तो यह है कि उन्हें न दिवसके आनेका पता था और न रात्रिके जानेका पता।

कुछ अकथ कथा है नेह की।
भोर साँझ अरु साँझ भोर कुछ सुधि नहीं आवत गेह की॥
परे रहै नित प्रेम सिंधु में भई औरे दुति देह की।
श्रीहरिप्रिया निरखि नैननि में लगिय रहै झरि मेह की॥

महावाणीकार श्रीहरिप्रियाजीने उपर्युक्त पंक्तियोंमें श्रीराधाकृष्ण-चरणारविन्दके महानुरागी रसिककी जिस भाव-दशाका चित्रण किया है, वह दशा बाबाके जीवनकी एक यथार्थ स्थिति थी। जो लोकातीत श्रीराधाकृष्णलीलामें नित्य-निरन्तर सर्वथा निमज्जन कर रहा हो, उसे लोक और परलोकसे भला क्या प्रयोजन?

इस अवधिमें किसी अचिन्त्य विधानसे एक ऐसा हेतु उपस्थित हो गया, जो बन गया निमित्त बाबाकी भाव-दशाका परिचय प्रदान करनेवाला। यदि यह हेतु उपस्थित नहीं होता तो हम लोगोंको परिज्ञान ही नहीं हो पाता कि बाबा परम उज्ज्वल एवं परम मधुर भाव-सिन्धुकी कैसी-कैसी लीला-लहरियोंमें संतरण कर रहे हैं।

सन् १९४१ ई. में बाबूजीकी लाडली सुपुत्री सावित्रीबाई का श्रीपरमेश्वरप्रसादजी फोगलासे विवाह हुआ। विवाहके कुछ समय बादसे श्रीपरमेश्वरप्रसादजीके पूज्य पिताजी श्रीशिवभगवानजी फोगलाको जब अवकाश मिलता, तब वे बाबूजीके पास आ जाया करते थे। श्रीशिवभगवानजी लौकिक दृष्टिसे थे तो बाबूजीके समधी, परंतु आध्यात्मिक दृष्टिसे बाबूजीके प्रति उनके मनमें बड़ा आदर-भाव था।

बाबूजीके भक्त-जीवनकी उनके हृदयपर गहरी छाप थी। इसी आदर-भावके कारण उन्होंने अपने सुपुत्रका सम्बन्ध बाबूजीकी सुपुत्रीसे किया था। श्रीशिवभगवानजी चाहते थे कि मेरा जीवन प्रिया-प्रियतम श्रीराधाकृष्णकी भक्ति-भावनासे सराबोर हो उठे और वे अपनी समझ और शक्तिके अनुसार साधनामें जुटे भी रहते थे। साधनाके आसनपर बैठते ही और उस आसनपरसे उठनेके बाद भी उनके मनमें भाँति-भाँतिके विविध प्रश्न उभरते रहते थे। जब-जब साधनापरक प्रश्न उभरते, तब-तब वे समाधान प्राप्त करनेके लिये बाबूजीके पास आया करते थे और वे प्रिया-प्रियतम श्रीराधाकृष्ण एवं वृन्दावनी उपासनासे सम्बन्धित अनेकानेक बातें बाबूजीसे पूछा करते थे।

समधी होनेके कारण बाबूजीको कुछ बतलानेमें संकोच होता था, अतः उनके समाधानके लिये बाबूजीने एक मध्यम मार्ग अपनाया। बाबूजी एक दिन श्रीशिवभगवानजी फोगलाको लेकर बाबाके पास गये और उनसे कहा – ये मेरे लिये परम सम्माननीय हैं। इनके मनमें साधना सम्बन्धी कुछ जिज्ञासाएँ हैं और ये जिज्ञासाएँ हैं साधन-पथपर अग्रसर होनेकी दृष्टिसे। सच्चे जिज्ञासुको समाधान मिलना ही चाहिये। साध्य और साधनाके सम्बन्धमें ये जो कुछ पूछें, वह सब आप इन्हें बतलाया करिये तथा इन्हें श्रीकृष्ण-लीला भी सुनाया कीजिये।

बाबाने कहा – आपका इतना कथन ही पर्याप्त है। आपके कथनानुसार अवश्य ही इन्हें बतलानेका प्रयास करूँगा।

सन् १९४२-४३ में श्रीशिवभगवानजीका बाबासे यह सम्पर्क एक परम सुन्दर हेतु बन गया और इस निमित्तसे अनेक गम्भीर तथ्योंके व्यक्त हो सकनेकी परिस्थितिका निर्माण हो गया। श्रीशिवभगवानजीकी जिज्ञासाओंका समाधान प्रस्तुत करनेके लिये बाबा अपनी आन्तरिक मान्यताएँ एवं अपनी अन्तरंग लीलाएँ उन्हें बतलाया करते थे। इन दिनों बाबा मौन तो थे ही, अतः वे लिख-लिख करके श्रीशिवभगवानजीको समझाया करते थे। यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि जिन पृष्ठोंपर बाबाने लिखा, वे पृष्ठ सुरक्षित रख लिये जाते थे। यदि वे तथ्य लिखित रूपमें सुरक्षित नहीं रहते तो उन सिद्धान्तोंकी और उन लीलाओंकी प्राप्ति किसी भी प्रकारसे सम्भव नहीं थी।

बाबाने व्रज-भावकी साधनासे सम्बन्धित जो सिद्धान्त बतलाये और

साधकोंके लिये सहायक सिद्ध होनेवाले जो सुझाव दिये, वे कई वर्षों बाद 'कल्याण' पत्रिकामें क्रमशः प्रकाशित होने लग गये। 'कल्याण' पत्रिकामें ये 'बातें' मार्च १९५७ से लेकर दिसम्बर तक 'सत्संग-सुधा'के शीर्षकसे छपती रहीं। ये 'बातें' इतनी अधिक श्रेष्ठ एवं उपयोगी थीं कि इनको पढ़कर बहुत लोगोंने पुस्तकाकार प्रकाशित कर देनेके लिये बाबूजीसे अनुरोध किया। इसी अनुरोधका परिणाम था कि गीताप्रेससे वे 'बातें' पुस्तक रूपमें प्रकाशित हो गयीं। पुस्तकका नाम है 'प्रेम-सत्संग-सुधा-माला'।* व्रजभावके न जाने कितने रसोपासकोंके लिये यह पुस्तक एक प्रेरणा-ग्रन्थ है।

बाबाने श्रीशिवभगवानजीको जिस प्रकारसे व्रंजभावकी साधनासे सम्बन्धित सैद्धान्तिक पक्षको लिख-लिख करके बतलाया, उसी प्रकारसे श्रीराधाकृष्णकी अनेक अन्तरंग लीलाएँ भी बतलायीं। बाबाने जो स्वानुभूत लीलाएँ लिखकर श्रीशिवभगवानजीको बतलायी थीं, इसके पीछे बाबूजीकी आज्ञाके पालनका भाव मुख्य रूपसे प्रबल था। जिनके लिये बाबाने ये लीलाएँ लिखीं, उनकी पात्रताको देखते हुए बाबाकी लेखनी रह-रह करके संकुचित हो जाया करती थी। श्रीशिवभगवानजीके मनमें व्रजभावके गम्भीर रहस्योंका ज्ञान प्राप्त करनेकी चाह थी और साधना करनेका चाव भी था, उस चाह और चावके होते हुए भी उनके हृदयका धरातल ऐसा नहीं था, जो उन भावोंकी दिव्यताको सर्वांशमें हृदयंगम कर सके। सच्ची चाह और सच्चा चाव होनेके बाद भी परिपक्वावस्था सतत साधनाके उपरान्त ही आती है और कई बातें तो ऐसी होती हैं, जो अति श्रेष्ठ स्तरके साधकके सामने ही कहनी उचित होती हैं। वर्तमानमें श्रीशिवभगवानजीके स्तरको देखते हुए बाबाको कई बार संकोच होता था, परंतु एक महासिद्ध संतकी

---

*एक बार बाबासे 'प्रेम-सत्संग-सुधा-माला' पुस्तकके बारेमें चर्चा हो रही थी तो बाबाने बतलाया था – जितनी 'बातें' इस पुस्तकमें छपी हैं, वह तो नितान्त अल्पांश हैं। इससे लगभग बीस गुना अधिक बातें लिखी गयी थीं, परंतु इन गम्भीर तथ्योंके अधिकारी हैं ही कितने? निर्देश तो यह दिया गया था कि सारे पृष्ठ नष्ट कर दिये जायें, किन्तु संयोगसे किसीके पास इतनी 'बातें' बची रह गयीं। सन् १९५६ में काष्ठ मौन ले लेनेके बाद श्रीपोद्दार महाराजने स्वजनोंके अत्यधिक आग्रहपर इन बची हुई 'बातों'को 'कल्याण' पत्रिकामें छापना आरम्भ कर दिया।

आज्ञाका पालन भी आवश्यक था। प्रिया-प्रियतम श्रीराधाकृष्णकी परम रसमय एवं सर्वथा लोकातीत युगल लीलाओंके जो-जो दृश्य बाबाकी दृष्टि-पथपर अवतरित हुए और जो-जो संवाद उनके श्रुति-पुटके विषय बने, उन सबका पर्याप्त अंश बाबाने लिखा ही नहीं। वैसे-वैसे गम्भीर रहस्यमय अंशके पठन एवं श्रवणकी पात्रताके होनेका प्रश्न बाबाके सामने था। उन लीलाओंको पढ़नेवाला या सुननेवाला चाहे वह कोई भी हो, यदि उसने अपनी आन्तरिक दृष्टिको मलरहित, सत्त्वसम्पन्न तथा स्नेहस्निग्ध नहीं बना लिया है तो उन-उन पाठकों-श्रोताओंके द्वारा निज-निज दृष्टि-दोषके कारण यह सम्भव ही नहीं कि वे इन दिव्य लीलाओंकी निर्दोषता-निर्मलता-अनिन्द्यता-अलौकिकताकी परिधिका भी स्पर्श कर सकें। यही कारण है कि उन लीलाओंकी दिव्यता और पवित्रताको अक्षुण्ण बनाये रखनेके लिये बहुतसे प्रसंग अवर्णित रह गये।

कुछ प्रसंग तो इस प्रकार अभिव्यक्त होनेसे रह गये और कुछ लीलाओंकी अभिव्यक्ति चाह करके भी हो नहीं पायी। बाबूजीका निर्देश मिलनेके बाद बाबाने लीला लिखनेके एक क्रमका निर्धारण किया। आठ प्रहरकी अष्टयाम लीला तथा कुछ अन्य लीलाओंको लिखनेका विचार करके ही बाबाने एक योजना बनायी थी। इस योजनाके अनुसार बाबाने ३८ लीलाओंको लिखनेका विचार किया था। उन ३८ लीलाओंमेंसे केवल २९ लीलाएँ लिखी जा सकीं।*

एक बात यहाँ बतलानी आवश्यक लग रही है कि 'केलिकुञ्ज'में प्रकाशित जितनी लीलाएँ हैं, उनमेंसे अधिकांशका लीला-स्थल श्रीराधाकुण्ड रहा है। श्रीराधाकुण्डके पार्श्वमें ही श्रीकृष्णकुण्ड भी है और संगमपर दोनों कुण्डोंका जल इधर-उधर प्रवाहित होता रहता है। बाबाकी भावनाके अनुसार श्रीराधाकुण्ड-श्रीकृष्णकुण्डकी आठ दिशाओंमें आठ कुञ्ज हैं। ये आठ कुञ्ज प्रधान अष्ट सखियोंके हैं

---

*इन २९ लीलाओंका संग्रह 'केलि-कुञ्ज'के नामसे गीतावाटिकासे प्रकाशित हो चुका है। 'केलि-कुञ्ज'की भूमिकामें बतलाया गया है कि वे ३८ लीलाएँ कौन-कौन-सी हैं और इनमेंसे कौन-कौन-सी लिखी नहीं जा सकीं। वह विवरण विस्तार-भयसे यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

और इन अष्ट कुञ्जोंमें ही प्रिया-प्रियतमकी अष्ट-यामीय लीलाएँ सम्पन्न होती हैं।

जिन दिनों ये लीलाएँ लिखी जा रही थीं, उस अवधिमें बाबाकी भाव-दशा असाधारण थी। भाव-दशाकी गम्भीरताके कारण बाबाको अपने कमरेके बाहर आना नितान्त अप्रिय था, परंतु श्रीशिवभगवानजीको कुछ बतलानेके लिये कमरेके एकान्तका परित्याग करना ही पड़ता था। रतनगढ़में बाबूजीकी हवेलीके बगलमें सर्राफोंकी हवेली है। अनुभूतिकी प्रगाढ़तामें बाबाको सर्राफोंवाली हवेलीके स्थानपर श्रीयमुनाजीके प्रवाहका दर्शन होता था, ऐसा प्रवाह जहाँ अथाह जल हो। बाबा स्वयं ही स्वयंको समझाया करते थे कि यहाँ श्रीयमुनाजी नहीं, सर्राफोंकी हवेली है, परंतु गहरी भाव-दशाके समक्ष यह समझ टिक नहीं पाती थी। बाबाको यही दिखलायी दिया करता था कि श्रीयमुनाजी प्रवाहित हो रही हैं। पर्याप्त समय व्यतीत हो जानेके बाद जब वह भाव शमित हुआ, तब वह हवेली, हवेलीके रूपमें दिखलायी देने लग गयी। इसी प्रकारका एक और प्रसंग है। बाबा श्रीसुदेवी-कुञ्जकी एक लीलामें निमग्न थे। यह लीला रात्रिके समयकी है। लीलामें निमग्नता होनेके कारण बाबाको हर समय रात्रि ही दिखलायी देती थी। रात्रिकी अनुभूति इतनी सघन थी कि बाबाके लिये भिक्षा करना कठिन हो गया। संन्यासीको रात्रिके समय भिक्षा नहीं करनी चाहिये। बाबा वस्तुतः भिक्षा दिनके प्रकाशमें ही कर रहे थे, परंतु बाबाको यही लग रहा था कि मैं भिक्षा रात्रिके अन्धकारमें कर रहा हूँ। दिनका उजियाला भी उजियाला नहीं लगता था, अपितु घना अन्धकार लगता था। बाबा तो भिक्षा करानेवालोंके सम्बन्धमें यही सोचा करते थे कि ये लोग कैसे हैं जो रात्रिके समय भिक्षा करवा रहे हैं। श्रीसुदेवी-कुञ्जकी लीलामें बाबा तीन दिनतक निमग्न रहे और तीन दिनतक ऐसी 'विक्षिप्तावस्था' बनी रही। उस समय बाबाकी बातको समीपस्थ लोग समझ भी नहीं पाते थे।

यह लीला तो ऐसी थी, जब कि दिवसका प्रकाश भी अन्धकारके रूपमें दिखलायी देता था। एक बार तो इससे भी अधिक विचित्र लीलाके दर्शन बाबाको हुए। उस विचित्रताका वर्णन करते हुए बाबाने बतलाया था – प्रिया-प्रियतम श्रीराधाकृष्ण मानवाकृतिमें होते हुए मानवी-मानव नहीं हैं, उसी प्रकार उस लीला-राज्यके पात्र भी पाञ्चभौतिक नहीं हैं। उनकी आकृति और कृति हम मानवोंके जैसी है, पर वे पात्र तत्त्वतः और वस्तुतः

मानवीय धरातलके हैं ही नहीं। इसी प्रकार उस लीला-राज्यके देश और काल भी हमारे जगतके देश और कालसे सर्वथा भिन्न हैं। यहाँका सूर्य तो निश्चित समयपर उगता है और अस्त होता है, परंतु उस दिव्य राज्यमें सूर्यका उदय और अस्त लीलाकी आवश्यकताके अनुसार होता है। लीलाकी सम्पन्नताके लिये सूर्य आकाशमें स्थिर रह सकता है। लीला-राज्यमें एक बार ऐसी ही बात हो गयी, जिसपर यह जगत तो विश्वास करेगा ही नहीं और जगतके सामान्य व्यक्तिकी कल्पनामें वह बात आनी ही कठिन है। एक विशाल वृत्त है। वृत्त माने गोल आकृतिवाला एक अति विशाल प्रदेश है। उस गोल प्रदेशके आधे भागमें प्रखर प्रकाश है और शेष आधे भाग में गहन अन्धकार है। प्रखर प्रकाश और गहन अन्धकार, ये दोनों एक साथ युगपत् उस लीला-राज्यमें विराजमान हैं और दोनों विराजित हैं लीलामें सहयोग देनेके लिये। वस्तुतः वह सच्चिदानन्दमय लीला-राज्य और उस राज्यकी अद्‍भुत दिव्य लीलाएँ सर्वथा लोकोत्तर एवं कल्पनातीत हैं।

हवेलीके जिस कमरेमें बैठे-बैठे बाबाने ये लीलाएँ लिखकर श्रीशिवभगवानजीको दी, उन लीलाओंके सूक्ष्म परमाणु उस कमरेके वातावरणमें अत्यधिक परिव्याप्त हो गये। जब बाबूजी और बाबा रतनगढ़से गोरखपुर आ गये थे, उस समयकी बात है। कलकत्तेके एक सज्जन रतनगढ़ गये हुए थे। उनको उसी कमरेमें ठहराया गया, जिसमें बाबा रहा करते थे। रात्रिमें शयनके समय उन सज्जनको वे लीलाएँ दिखलायी देने लगीं, जिनको बाबाने लिपिबद्ध किया था। वे रह-रह करके विस्मयमें डूबे जा रहे थे कि यह सब क्या अद्‍भुत देखनेको मिल रहा है। उन सज्जनकी जिन संतमें श्रद्धा थी, उन संतको उन्होंने अपने रात्रिवाले अनुभव सुनाये। वे संत बाबाको भली प्रकार जानते थे। उन संतने उनसे कहा – उस कमरेमें श्रद्धेय स्वामी श्रीचक्रधरजी रहा करते थे। उनका सम्पूर्ण जीवन श्रीराधाकृष्णके चरण-कमलोंपर समर्पित है। यह कमरा स्वामीजीका निवास-स्थान रहा है। उनके निवाससे कमरेका वातावरण दिव्य हो गया है और इसी कारण तुम्हें इस प्रकारकी लीला-स्फूर्तियाँ हुईं।

श्रद्धामें भीगे-भीगे वे सज्जन फिर गोरखपुर आये और बाबाको रात्रि-निवासके अपने सारे अनुभव सुनाने लगे। वे तो अपने अनुभव भाव-विभोर होकर सुना रहे थे, परंतु उन अनुभवोंको सुन-सुन करके बाबा विस्मयान्वित हो रहे थे। बाबाको विस्मय हो रहा था यह देखकर कि इन

अनजान सज्जनको भी उन लीलाओंकी अनुभूति हो उठी। बाबाने वे लीलाएँ लिखकर इन्हें नहीं, श्रीशिवभगवानजीको दी थी। इन सज्जनको तो उन लीलाओंके दर्शन और लेखनके बारेमें कुछ परिज्ञान ही नहीं था, किन्तु आश्चर्य तो यह है कि जो बाबाने लिखा था, वही सब उन सज्जनके अनुभवमें आया। लीलाके सूक्ष्म परमाणुओंसे परिपूर्ण उस कमरेका आकाश-तत्त्व इतना सशक्त हो उठा था कि उसके सम्पर्कमें आनेवाले व्यक्ति भी दिव्यानुभव करने लगते थे। 'तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि'। उस कमरेके वातावरणकी प्रभावोत्पादकताका यह एक अनोखा उदाहरण है।

* * * * *

कठिन बवासीर रोग

सन् १९४३ ई. में बाबूजी बवासीर रोगसे इतने अधिक बीमार पड़ गये कि उनको खाट पकड़ लेनी पड़ी। रोगकी भीषणता देखकर बाबूजी चिकित्सा करानेके लिये दिल्ली आये। वहाँ रोगका शमन होना दूर रहा, स्थिति और बिगड़ गयी। हालत इतनी खराब हो गयी कि बचनेकी आशा भी जाती रही। स्थितिकी गम्भीरताका समाचार पाकर लोग अन्तिम बार मिलनेके लिये और दर्शन करनेके लिये आने लग गये।

दिल्लीमें जो उपचार चल रहा था, उससे कोई लाभ नहीं देखकर कतिपय स्वजनोंने सलाह दी कि अजमेरके प्रसिद्ध चिकित्सक डा. श्रीअम्बालालजीको भी एक बार अजमेर जाकर दिखला लेनेमें क्या हानि है? बाबूजीको लेकर लोग अजमेर गये। बाबा साथमें थे ही। डा. अम्बालालजीकी चिकित्सासे बाबूजीको लाभ हुआ तथा बाबूजीके स्वास्थ्यमें सुधार आने लग गया।

तबीयत ठीक होनेपर बाबूजी अजमेरसे रतनगढ़ वापस आ गये। तबीयत तो ठीक थी, परंतु शरीरमें दुर्बलता थी। तीन माह ठीक रहे होंगे कि बवासीरका रोग पुनः उभर पड़ा। उसके भीषण रूपको देखकर एक बार फिर लोग चिन्तित हो उठे। बाबा-बाबूजी पुनः अजमेर गये। डा. श्रीअम्बालालजीके चिकित्सालयमें गुदाके फोड़ेका आपरेशन हुआ। आपरेशन सफल रहा। इन दिनों बाबूजीको बड़ा कष्ट भोगना पड़ा। स्निग्ध पदार्थका प्रयोग करनेके बाद भी बड़े कष्टसे मल-द्वारसे मल उतर पाता था।

गुदाका घाव ठीक हो जानेपर बाबूजी अजमेरसे वापस रतनगढ़ आ गये। एक दिनके बाद दूसरा दिन और एक सप्ताहके बाद दूसरा सप्ताह, इस प्रकार कई सप्ताह निकल गये। समयके व्यतीत होनेके साथ-साथ लोगोंके मनसे सारी चिन्ता अथवा सारी आशंका भी निकल गयी। बाबूजीकी अच्छी तबीयत देखकर यह स्मृति भी धूमिल होने लग गयी कि विगत छः-सात मासतक उन्होंने बहुत कष्ट पाया।

एक दिनकी बात है। बाबा रतनगढ़में अपने कमरेमें बैठे हुए थे। मध्य रात्रिका समय था। उस समय भगवान श्रीकृष्णने बाबासे कहा— यह तो तुम्हारा ही कष्ट था, जो उन्होंने अपने ऊपर लेकर भोग लिया।

यह सुनकर बाबाको बड़ा दुःख हुआ। इस रुग्णताकी अवधिमें बाबा बाबूजीके सदा पास रहे और बाबूजीके कष्टका एक-एक क्षण और एक-एक दृश्य बाबाके स्मृति-पथपर आने लगा। बाबूजीके कष्टको स्मरण करके व्यथा तो मनमें अपार थी ही, साथ ही मनमें बार-बार उभर रहा था कृतज्ञताका भाव भी कि मेरे कष्टको उन्होंने अपने ऊपर लेकर झेल लिया। अब बाबाकी आँखोंमें नींद नहीं थी, अपितु भरी हुई थी अकुलाहट। व्यथा तथा कृतज्ञताके अतिरिक्त बाबाको आश्चर्य भी कम नहीं हो रहा था। आश्चर्य हो रहा था बाबूजीकी आत्म-संगोपन प्रवृत्तिपर। बाबूजीने किसीको ज्ञात ही नहीं होने दिया कि दूसरेका कष्ट मेरेद्वारा ले लिया गया है। निज जनका आत्यन्तिक हित करनेकी भावना, फिर उस भावनाके अनुसार पूर्ण क्रियाशीलता और वह क्रियाशीलता इतने गुप्त रूपसे कि किसीको आभासतक न मिले, यदि उस भावना और क्रियाशीलताका आभास मिल गया तो वह आभारसे दब जायेगा और फिर सब कुछ किरकिरा हो जायेगा, ऐसी लोकोत्तर सदाशयताका सजीव उदाहरण कहाँ देखने-सुननेको मिलता है? कभी व्यथा, कभी कृतज्ञता, कभी दैन्य, कभी आश्चर्य, इन्हीं प्रकारके अनेक भावोंसे सारी रात बाबाका मन आलोड़ित रहा। बड़ी कठिनाईसे बाबाकी वह रात व्यतीत हुई। बाबाके अन्तरमें आतुरता थी बाबूजीसे मिलनेकी।

प्रातः शौच-स्नानसे निवृत्त होकर बाबा बाबूजीके पास गये। बाबूजी अपने सम्पादन-कार्यमें व्यस्त थे। छपनेके लिये जानेवाले लेखोंको ठीक कर रहे थे। बाबाके आते ही बाबूजीने स्नेह-सम्मानपूर्वक अपने पास बैठाया। फिर बाबासे बोले— कहिये, आज एकदम सबेरे-सबेरे कैसे आये?

बाबाने भगवान श्रीकृष्णका नाम छिपाकर शालीन भाषामें कहा — मुझे

ऐसा लग रहा है कि आपने मेरा कष्ट अपने शरीरपर झेल लिया है और इसके परिणामस्वरूप आप सात माहतक बवासीरसे बीमार रहे।

बाबाके ऐसा कहते ही बाबूजीने बड़ी गम्भीर, बड़ी रोषपूर्ण मुद्रा बना ली और झिड़कते हुए बाबासे कहने लगे – क्या कभी ऐसा हो सकता है? क्या यह सम्भव है कि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्तिका कष्ट अपने ऊपर ले ले? ऐसा आपने कहीं देखा है क्या? आपको बैठे-बैठे व्यर्थकी बातें सूझती रहती हैं। मैं तो आपको सुबुद्ध संन्यासी समझता था, पर आप अपने एकान्तमें इसी प्रकारका व्यर्थ चिन्तन करते रहते हैं क्या?

वास्तविकताकी गोपनीयताको बनाये रखनेके लिये ही बाबूजीने बाबाको झिड़का था तथा रोषपूर्ण व्यवहार किया था। बाबूजी कुछ देरतक रोषपूर्ण भाषामें बोलते रहे तथा बाबा चुपचाप सुनते रहे। बाबाको चुपचाप देखकर बाबूजीने यही सोचा कि मेरे रोषके प्रभावमें बाबा आ गये हैं, पर बाबा मन-ही-मन सोचने लगे कि जिस उद्देश्यसे मैं यहाँ आया था, वह बात तो बनी नहीं।

कुछ क्षण और बीत जानेके बाद बाबाने अपना ढंग बदला तथा बाबूजीसे भी अधिक रोबदार-जोरदार भाषामें बोलते हुए वे कहने लगे – विश्वमें कोई शक्ति नहीं, जो मेरी बातको काट सके। मैं निराधार नहीं बोल रहा हूँ। मेरे पास अकाट्य प्रमाण है। मैं आपकी बातकी लपेटमें आनेवाला नहीं हूँ। आपका सम्पादकत्व मेरे साथ नहीं चलेगा। आप मुझे भ्रममें नहीं डाल सकते।

अब बाबूजी समझ गये कि बाबाके कथनमें दम है। ये हवामें नहीं बोल रहे हैं। अवश्य ही भगवान श्रीकृष्णने कुछ गड़बड़ मचा दी है। ऐसा लगता है कि वह छिपी बात प्रकट हो गयी है। बाबूजीके रोषका अभिनय तिरोहित हो गया। उनके नेत्रोंमें प्यार छलछला आया। उन्होंने अपने हाथकी लेखनी नीचे रख दी और अपनी दोनों हथेलीको बाबाके दोनों कंधोंपर रखकर बाबूजी बोले – क्यों, हम और आप दो हैं क्या?

पहले केवल दो नेत्र सजल थे, अब दोनोंके नेत्र सजल हो उठे। प्यारकी बूँदें टप-टप चू रही थीं। बाबा 'मूँदे सजल नयन पुलके तन'। बाबा बहुत देरतक मिलित नयन, मूक अधर, अचल अंग बैठे रहे। मूर्तिवत् बैठे-बैठे न जाने कितना समय निकल गया।

* * * * *

बाबूजी का दिव्य लोकोत्तर स्वरूप

सन् १९४१-४२ ई. में बाबाने अपने अन्तरंग निज-जनों जैसे श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी, श्रीगम्भीरचन्दजी दुजारी, श्रीगोवर्धनप्रसादजी शर्मा, श्रीमोतीलालजी पारीक आदिके समक्ष पूज्य बाबूजीके सम्बन्धमें बड़े गम्भीर एवं दिव्य तथ्य व्यक्त किये थे। बाबा द्वारा लिखित वह विवरण बहुत अधिक विस्तृत है। उस लिखित विवरणका कुछ अंश यहाँ संक्षिप्त रूपमें प्रस्तुत किया जा रहा है। बाबाने अपने निज जनोंको बतलाया –

आप देखें, श्रीभाईजी (बाबूजी) को जिस दिन जसीडीह में भगवत्प्राप्ति हुई थी, उस प्राप्तिमें और आजकी प्राप्तिमें जमीन आसमानका अन्तर है। वह तो त्रिदेवोंमें सर्वोच्च एक देवके दर्शन थे। वह जो उनकी स्थिति थी, वह ऐसी थी, जैसे ध्रुवको भगवद्दर्शन। इसके बाद और भी ऊँची अवस्था हुई, श्रीकृष्ण आये। फिर और भी ऊँची अवस्था हुई, युगल सरकार आये। फिर इससे भी ऊँची अवस्था यह हुई कि श्रीराधारानीमें सर्वथा इनका अहंकार विलीन हो गया अर्थात् श्रीराधारानीके नित्य विग्रहमें ये लीन हो गये। यद्यपि यह अवस्था अनिर्वचनीय है, वाणी-मन-बुद्धिसे परेकी है, पर जहाँतक विवेचन हो सकता है, वही बात शाखा-चन्द्र-न्यायसे कही जा रही है। वह अवस्था इतनी विलक्षण है कि जिस दिन हम लोगोंमेंसे कोई सचमुच श्रीभाईजीकी कृपासे गोपीभावकी साधना करके गोपी बन जायेगा, उसी दिन वह ठीक-ठीक समझ सकेगा और फिर वह भी किसी दूसरेको समझा नहीं सकेगा। यह तो प्राप्तिकी बात हुई, पर साधनाके ऊँचे स्तरकी बात भी समझायी जा ही नहीं सकती। केवल एक ही उपाय है, उसका अनुभव करना साधनाके द्वारा। अस्तु, जो भी विवेचन है, वह बाहरी है।

अब आप सोचें, श्रीभाईजीके राधारानीमें लीन होते ही स्वयं श्रीकृष्ण इस पाञ्चभौतिक ढाँचेके धर्मी बन गये। दूसरे शब्दोंमें समझानेके लिये यह कह सकता हूँ कि मान लें, जो पाञ्चभौतिक ढाँचा दीखता है, उसके द्वारा जो व्यवहार होता है, वह तो सर्वथा उसी

ढंगसे हो रहा है कि स्वयं भगवान श्रीकृष्ण उसके अन्दर श्रीराधाकृष्णके रूपमें अभिव्यक्त हैं और फिर उनकी सर्वसमर्था शक्तिके कारण एक ही समय श्रीभाईजीके साथ श्रीराधारानीके साथ सर्वथा दिव्य सच्चिदानन्दमयी लीला करते हुए भी जड़ जगतके व्यवहारकी भी रक्षा करते हैं। एक ही समयमें, जब कि श्रीभाईजी रेडियो सुन रहे हैं, लोगोंकी दृष्टिमें यह बात रहेगी कि वे रेडियो बड़े चावसे सुन रहे हैं, पर ठीक उसी क्षण एक सर्वथा सच्चिदानन्दमयी लीला वहाँ प्रकट रूपसे चल रही है। उस लीलामें और आपमें इतना ही व्यवधान है कि पाञ्चभौतिकका पर्दा पड़ा हुआ है। जिस प्रकार समस्त वृन्दावनकी लीलाका एक चित्र खींचकर उसे एक मिट्टीके बर्तनसे ढक दें तो मिट्टीके बर्तनके भीतरका रहस्य जिसे मालूम नहीं है, उसको यही दीखेगा कि मिट्टीका पात्र है। उसके भीतर क्या है, वह जान ही नहीं सकता। वैसे ही, जिसे श्रीभाईजीके इस रहस्यका पता नहीं है, वह जान ही नहीं सकता कि इस पाञ्चभौतिक ढाँचेसे जो आवाज आती है, उदाहरणार्थ 'दूलीचन्द, दवाई लाओ तो', यह आवाज सर्वथा श्रीराधा-कृष्णकी अचिन्त्य दिव्य सर्वसमर्था शक्तिके कारण प्रारब्ध व्यवहारके लिये उनके द्वारा कही गयी है और ठीक उसी समय कही गयी है, जिस समय एक विलक्षण लीला वहाँ चल रही है। शब्दमें ताकत नहीं कि मैं समझा सकूँ। मेरी बुद्धि जिस बातको ठीक समझ रही है, वह वाणीमें आ ही नहीं सकती। वह तो सर्वथा उनकी कृपासे ही सम्भव है। आप नीचे हैं अथवा ऊँचे हैं, यह प्रश्न नहीं है। प्रश्न है कि मैं सोच कर भी उसे ठीक-ठीक भाषा-बद्ध नहीं कर पाता तो क्या करूँ? अस्तु, आप ऐसा समझें कि समस्त भूत-वर्तमान-भविष्यकी लीलाके आधारस्वरूप जो श्रीराधाकृष्ण हैं, वे स्वयं इस ढाँचेमें पाँच-सात वर्ष पहलेसे अभिव्यक्त हो गये हैं और तबतक रहेंगे, जबतक यह पाञ्चभौतिक ढाँचा चलेगा। उसमें होगा क्या कि जिसकी जैसी भावना है, उसीके अनुरूप प्रतीति होगी। कोई श्रीरामभक्त चाहे तो उसे वहाँ भी सीतारामके रूपमें ही दर्शन होगा, क्यों कि भगवान श्रीकृष्ण ही भगवान श्रीराम हैं और राधारानी ही सीतारानी हैं। ठीक-ठीक साधना पूरी होते ही इस ढाँचेकी जगह वह दिव्य लीला ही दिखेगी।

स्वयं भगवान श्रीकृष्णके अवतारमें और यहाँकी स्थितिमें अन्तर

यह है कि अवतार कालमें जो अवतरण होता है, वह पाञ्चभौतिक ढाँचेका आधार लेकर नहीं होता। वह होता है सर्वथा आत्ममायाकृत, जहाँ पाञ्चभौतिकका सम्बन्ध नहीं है। जो योगमायाका पर्दा है, वह पाञ्चभौतिक पर्दा नहीं है। अतः यहाँ जो अवतार है, उसे आप प्रकारान्तरसे ऐसा समझें कि स्वयं भगवान श्रीकृष्ण अपनी आह्लादिनी शक्ति श्रीराधाके साथ आवेशावतारके रूपमें अवतरित हुए हैं और पाञ्चभौतिक ढाँचेके प्रारब्ध शेषतक यह अवतार रहेगा।

मेरी यह धारणा है कि श्रीराधारानीके साथ अभेद बिरले किसी-किसी महापुरुषका ही होता है, जिसका उदाहरण अबतक केवल श्रीचैतन्यमहाप्रभु हैं। और कोई मेरी दृष्टिमें शास्त्रमें या आधुनिक संतोंमें नहीं है। सारांश यह है कि जिस क्रमसे साधना बढ़ी, उसी क्रमसे ऊपर उठते-उठते श्रीभाईजी इतने ऊपर उठ गये कि स्वयं श्रीराधारानीका साक्षात्, जिसके लिये पद्मपुराणमें नारदजीसे स्वयं श्रीगोपीजनोंने कहा है कि इनके इस रूपका दर्शन ब्रह्मा एवं शंकरके लिये भी दुर्लभ है, उस रूपका दर्शन नारद तुम्हें हुआ है, वह दर्शन श्रीभाईजीको हुआ और फिर श्रीभाईजी उसीमें लीन हो गये। अर्थात् भक्तका जो निर्गुण अहंकार होता है, दासीका, सखी नर्म सहचरीका, सब छूटकर बिलकुल राधारानीके साथ सायुज्य लाभ प्राप्त करके कृतार्थ हो गये। जो जीव हनुमानप्रसादके कलेवरका आश्रय करके पचास वर्ष पहले पैदा हुआ था, वह 'मैं हूँ', इस अहंकारको सर्वथा 'मैं राधा हूँ' इस रूपमें विलीन करके श्रीराधारानीमें तन्मय हो गया। अब उस स्थितिके बाद वहाँ जो अन्तःकरण पाञ्चभौतिकके आश्रित है, वह सर्वथा उस सच्चिदानन्दमय राज्यके द्वारा प्रकाशित होता है। उस वागेन्द्रियमें बोली तो आती है, पर उस चिन्मय राज्यकी बोली आती है। प्रत्येक इन्द्रियोंकी प्रत्येक चेष्टा जिस चेतनके आधारपर हम लोगोंकी चलती है, अर्थात् आत्माके रहनेपर ही लिंग शरीरकी जो चेष्टा होती है, वह नहीं होकर, केवल पाञ्चभौतिकमें जो इन्द्रिय गोलक बच रहे हैं, उनमें उस राज्यका प्रकाश आता है, जो सर्वथा पूर्ण सच्चिदानन्दमय है, जीवकी तरह अणु नहीं है। इसीलिये इनके सम्पर्कमें आनेवाले पुरुषका भी ऊँचे-से-ऊँचा उज्ज्वलतम भविष्य है।

भगवानकी सर्वसमर्था शक्तिके कारण यह किसीको भी पता नहीं चलेगा, सुनकर भी विश्वास उसी मात्रामें होगा, जिस मात्रामें भजनके द्वारा इनकी कृपा प्रकाशित होकर इस बातको ग्रहण करनेमें अन्तःकरण समर्थ हो सका है। यह मैं स्वयं ऐसा अनुभव करता हूँ कि उत्तरोत्तर यह अनुभव विलक्षण होता जाता है। कई बार तो ऐसा अनुभव होता है कि मानो इनके अन्दरसे राधारानी बिलकुल एक हलका-सा नकाब डाले लीला कर रही हैं, बिलकुल एक विलक्षण-सी अनुभूति होती है, अभूतपूर्व। इस तथ्यपर विश्वास कराना मेरे बसकी बात नहीं है। यह तो श्रीराधाकृष्णके बसकी है। इतना लिखकर समझानेकी मैं जो चेष्टा कर सका, वह यही बात है, जो वहाँ, मेरे विश्वासके अनुसार, चाहे वह अधूरा विश्वास ही क्यों न हो, जो वहाँ उस ढाँचेमें अभिव्यक्त है। इसीलिये सर्वज्ञता-सर्वसमर्थता, स्वयं भगवान श्रीराधाकृष्णकी जो-जो बातें शास्त्रोंमें आजतक कही गयी हैं और कही जायेंगी, सब-की-सब वहाँ प्रकट हैं, पर वह प्रकाशित होगी उसीके लिये, जिसका सर्वथा संशयहीन विश्वास होगा। थोड़ा-बहुत परिचय तो निश्चय ही मिल सकता है, यदि कोई सच्चा श्रद्धालु बननेकी चाह करे, क्यों कि छिपाना तो उन्हें उसीके लिये है, जो अश्रद्धालु है, श्रद्धालुके लिये छिपाना है नहीं। उसकी श्रद्धा प्रकट करनेके लिये बाध्य कर देगी। पर जो उनसे पूछेगा कि 'आप ऐसे हैं क्या?' तो मेरी समझमें पूछनेपर शायद यही उत्तर मिले कि यह भावकी बात है, मैं ऐसा नहीं हूँ।

इस सम्बन्धमें स्वयं श्रीभाईजी ऐसी-ऐसी बातें दो-तीन बार कुछ ऐसे शब्दोंमें कह गये, जिससे मेरे ऊपर यही असर पड़ा, असर ही नहीं पड़ा, बिलकुल समझमें आया कि श्रीभाईजीकी जो स्थिति मैंने बतलायी है, उसको स्वयं प्राप्त हो गये हैं। दूसरे शब्दोंमें, स्वयं राधारानीने दया करके बतला दिया कि जिसके चरणोंकी खोज कर रहे हो, वह मैं इस ढाँचेमें आ गयी हूँ। हनुमानप्रसादकी आत्मा तो मुझमें विलीन हो गयी है, उसकी जगह अब मैं अपने प्रियतम श्रीकृष्णके साथ हूँ। राधारानीके पास जाना चाहते हो तो तुम तीन सालसे उनके पास हो, केवल पाञ्चभौतिकका पर्दा है, यह उठेगा समयपर। जिस प्रकार अवतारकालमें श्रीकृष्णका विग्रह एक स्थानपर दीखकर भी

सर्वव्याप्त है, दामबन्धनलीलामें, विश्वरूपदर्शनमें इसे समझा जा सकता है, वैसे ही एक देशमें सीमित-सा दीखनेपर भी वह सर्वव्यापक है। जिस क्षण आपको या किसीको सचमुच उसका दर्शन होगा, उस समय देशका प्रश्न ही नहीं रह जायेगा। वहाँका देश बिलकुल ऐसा हो जायेगा, जो सर्वथा अनिर्वचनीय है। श्रीभाईजीने एक बार मुझसे कहा था कि दर्शन होते समय यह देश बिलकुल नहीं रहता, वह सर्वथा सच्चिदानन्दमय हो जाता है।

आपका प्रश्न जो मैंने समझा है, उत्तरमें यही बात समझें कि पाञ्चभौतिककी सीमामें तभीतक बाँध रहा हूँ, जबतक उस लीलाका दर्शन नहीं हो रहा है, क्यों कि वह लीला ही सर्वव्यापक तत्त्व है। वह आपके अन्तःकरणमें भी है, अणुमें भी है, पर वह वहाँ अभिव्यक्त है। भगवान् श्रीकृष्ण जैसे एक सौ पच्चीस वर्ष तकके लिये एक देशमें अभिव्यक्त दीखते थे, वैसा दीखनेपर भी, उतने कालके लिये, समस्त रूपोंमें सब लीलाओंमें व्यापक भी थे, वैसे ही प्राप्तिके दिनसे लेकर प्रारब्धके शेषतक श्रीयुगल सरकारकी सच्चिदानन्दमयी लीला उस ढाँचेका पर्दा देकर सबके सामने अभिव्यक्त है। अभिव्यक्त होते हुए भी वह सर्व व्यापक है। पता नहीं समाधान हुआ कि नहीं। इसमें भी गोलोक है, पर अभिव्यक्त नहीं है।

इस समय तो मेरा दिमाग भर गया है। आप पूछते थे कि श्रीभाईजीकी दृष्टि लोगोंपर पड़ेगी तो उसका और भी विलक्षण फल होगा। मैं क्या जवाब देता और अभी आपको समझाना कठिन है। मतिभ्रम हो जायगा। श्रीभाईजी इस जगतको कैसे देखते हैं, उनकी कैसी दृष्टि इस जगतके किसी प्राणीपर पड़ती है, इसका उत्तर यह है कि स्वयं भगवान श्रीराधाकृष्ण जिस दृष्टिसे जगतको देखते हैं, उसी दृष्टिसे श्रीभाईजीके पाञ्चभौतिक ढाँचेका नेत्र-गोलक भी देखता है। वह दृष्टि कैसी है, वह बुद्धिके परेकी है।

देखें मेरी समझ बहुत अल्प है, पर जो कुछ भी पढ़ा-सुना है, सोचा-समझा है, उसके आधारपर मैं बहुत संक्षेपमें आपके समक्ष निवेदन करता हूँ। भगवत्प्रेमका मार्ग बड़ा ही विचित्र होता है। इसकी ऊँची अवस्थामें जब कोई महापुरुष पहुँचता है, तब उसकी अवस्था

इतनी विलक्षण, इतनी विचित्र हो जाती है कि उस अवस्थाको बिरले प्राणी, जिनपर श्रीकृष्णकी विशेष दया होती है, वे ही समझ पाते हैं। उस अवस्थाको लिखकर-सुनकर-पढ़कर कोई समझ ही नहीं सकता। वह एक अजब पागलकी-सी अवस्था होती है। उस अवस्थामें पहुँचे हुए महापुरुषके द्वारा ऐश्वर्य मार्गकी भक्ति, ऐश्वर्य मार्गके द्वारा होनेवाली भगवत्सेवाका आचरण नहीं होता। वह इतना ऊपर एक मधुरतम राज्यमें जा पहुँचता है कि उसकी कोई तुलना ही नहीं होती।

श्रीभाईजीकी भीतरी दशा, भीतरी अवस्था क्या है, ये तो केवल ये ही जानते हैं, मुझे बिलकुल पता है ही नहीं, पर वैष्णव शास्त्रोंको पढ़कर तथा और भी कई कारणोंसे यह मेरा अनुमान है कि श्रीभाईजी ठीक उसी अवस्थामें पहुँच गये हैं। उनका जो स्वभाव पहले था, वह बिलकुल बदल गया है, उसपर रंग चढ़ते-चढ़ते इस जगतकी स्मृति ही अन्तःकरणमें बहुत कम, शायद नहीं ही होती होगी।

आप भागवत आदि पढ़ें, फिर पता लगेगा। प्रेमीकी बात तो दूर रही, जो असली ब्रह्म-प्राप्त होता है, उसकी भी ऐसी दशा हो जाती है। जैसे मदिरा पीकर मनुष्य अपने वस्त्रोंकी सुधि भुला देता है, वैसे ही असली ब्रह्म-प्राप्तको यह भी पता नहीं रहता कि मेरा शरीर बैठा है, चल रहा है, खा रहा है, क्या कर रहा है। यह स्पष्ट श्लोक भागवतमें है।

और सच मानिये, जो श्रीभाईजीको प्रेमकी अवस्था प्राप्त है, वह इस ब्रह्म-प्राप्तिके बादकी अवस्थाका प्रेम है। ऐसी अवस्थामें जो इनका शरीर ठीक-ठीक व्यवहारका काम करता है, उसे देखकर यही बात समझमें अनुमानसे आती है कि खास श्रीकृष्णकी इच्छा है, जगतका कोई मंगल कराना है, जिससे वे उनके अन्तःकरणके द्वारा स्वयं इस प्रकारकी आश्चर्यमयी घटना कर रहे हैं, अर्थात् वहाँ उस स्थितिमें पहुँचकर भी इनके अन्तःकरणका कार्य जगतकी दृष्टिमें ठीक-ठीक हो रहा है।

असलमें तो मैंने जो लिखा है, वह सर्वथा ऊपर-ऊपरकी बात है। भीतरकी स्थितिको समझानेका कोई उपाय ही नहीं है। सच मानिये, उस अवस्थाका मुझे तो ज्ञान ही नहीं है, पर जो अनुमान

होता है, वह भी समझाना चाहनेपर भी समझा नहीं सकता। उसे कैसे समझाऊँ? ऐसी कोई युक्ति या दृष्टांत ही ठीक-ठीक नहीं मिलता। संत और भगवान एक ही होते हैं। राधा एवं श्रीकृष्ण एक ही हैं, पर प्रेम देनेका कार्य स्वयं श्रीकृष्ण नहीं करते, राधारानी करती हैं, संत करते हैं। इसीलिये श्रीभाईजीकी स्थितिकी विलक्षणता तो कुछ ऐसी है कि भगवान ही दो रूपोंमें अब इनके पाञ्चभौतिक द्वारा काम करते हैं।

आजतक इस पारमार्थिक स्थितिका वर्णन मैंने किसी शास्त्रमें नहीं पढ़ा है और चैतन्य महाप्रभुके सिवा किसी भी भक्तके जीवनमें इस स्थितिका संकेत प्राप्त नहीं होता। मैं यह नहीं कहता कि जगतके इतिहासमें श्रीभाईजीका पहला उदाहरण है। ऐसे कुछ बिरले महात्मा हुए होंगे, पर वह बात प्रकाशमें नहीं आयी और ऋषियोंने जान-बूझकर, मालूम पड़ता है, शास्त्रोंमें इस स्थितिका उल्लेख नहीं किया और कहीं हुआ भी हो तो मेरी दृष्टिमें नहीं आया।

* * * * *

एक आन्तरिक मान्यता

बाबूजीके सम्बन्धमें बाबाकी जो सर्वथा निजी और नितान्त आन्तरिक मान्यता थी, उसे वे सदा उन्मुक्त स्वरमें कहा करते थे। बाबूजी तो स्वयंको अत्यधिक छिपाये रखना चाहते थे, परन्तु उनके वास्तविक गौरवपूर्ण स्वरूपको देखा और घोषित किया बाबाकी नीर-क्षीर-विवेकी संत-दृष्टिने।

भगवानके अवतरणका हेतु होता है साधु-परित्राण और धर्म-संस्थापन। ये कार्य भगवानके निजी विशेष कार्य हैं। इसी प्रकारका कार्य बाबूजीके द्वारा हुआ। एक बार भावाप्लावितावस्थामें उनके द्वारा इस तथ्यकी सत्यता अनायास अभिव्यक्त हो उठी कि प्रभुकी मेरे द्वारा 'कुछ विशेष कार्य' करवानेकी योजना थी। आर्ति-निवारण, भक्ति-प्रचार, साधु-सेवा, गो-संवर्धन, शास्त्र-संरक्षण, साहित्य-प्रकाशन आदि-आदि कार्यकलापोंके रूपमें उस विशेष कार्यके सम्पन्न होनेकी झलक मिलती है। बाबूजीको अपने प्रयासमें अभूतपूर्व सफलता मिली। उनके भक्ति-प्रचार एवं धर्म-संस्थापनके कार्यको देखकर श्रीगुरुजी

(राष्ट्रीय-स्वयंसेवक-संघके दिवंगत सरसंघचालक श्रीमाधवराव सदाशिवजी गोलवलकर) ने एक बार कहा था कि अनास्था और अनैतिकतासे आच्छादित

आजके अन्धकारपूर्ण युगमें आस्तिकता और सात्त्विकताकी प्रतिष्ठाके लिये जोकार्य श्रीपोद्दारजीने किया है, वह अद्वितीय है। सर्व साधारण लोगोंके मनमें धर्म-भावना जगानेके लिये, प्रभुके प्रति विश्वासको सुदृढ़ करनेके लिये, विभिन्न मत-मतान्तरोंमें सामञ्जस्यको स्थापित करनेके लिये और शील-सदाचारके प्रति निष्ठावान बनानेके लिये श्रीपोद्दारजी द्वारा किया गया कार्य अपने ढंगका अनूठा और अकेला है।

श्रीगुरुजीका यह वक्तव्य बाबूजीके व्यक्तित्वके सम्बन्धमें एक उल्लेखनीय तथ्य है, परन्तु इससे भी अधिक गम्भीर और गौरवपूर्ण उद्‌गार हैं श्रीराधा बाबाके। बाबूजीके आध्यात्मिक व्यक्तित्वको उद्‌भासित करनेके लिये अपनी अगाध मान्यताको व्यक्त करते हुए श्रीबाबाने कहा—

(१) धार्मिक ग्लानि और ह्रासको दूर करनेके लिये धर्म-प्रचारका जो कार्य आद्यशंकराचार्य-रामानुजाचार्य जैसे आचार्यों द्वारा हुआ,

(२) जन-जनके आचार-विचार-व्यवहारको नियन्त्रित-सुसंस्कृत करनेके लिये समाज-जीवन-सम्बन्धी प्रश्नोंपर व्यवस्था देनेका जो कार्य मनु-याज्ञवल्क्य जैसे स्मृतिकारों द्वारा हुआ,

(३) हृदयकी कोमल भक्ति-भावनाओंके तरंगित हो उठनेपर भक्ति-काव्यकी रचनाका जो कार्य तुलसीदास-सूरदास जैसे भक्त-कवियोंद्वारा हुआ और

(४) श्रीराधा-माधवके लीला-सिन्धुमें नित्य-निरन्तर निमग्न रहनेके आदर्शकी प्रतिष्ठाका जो कार्य मीराबाई-चैतन्यमहाप्रभु जैसे रसिक जनोंद्वारा हुआ,

इन चारों कार्य-धाराओंके अद्‌भुत संगमका पावन दर्शन श्रीपोद्दारजीके विशाल व्यक्तित्वमें होता है।

* * * * *

ईश्वरीय संकेतों की आहुति

एक सज्जन थे श्रीशिवकुमारजी केडिया। आप श्रीवृन्दावन धाममें वास करते थे। श्रीकेडियाजी अच्छे साहित्यिक विद्वान् थे। बाबा और बाबूजीके प्रति उनके मनमें बहुत आदरका भाव था। सत्संगकी दृष्टिसे वे कई बार बाबा और बाबूजीके पास आया करते थे। एक बार वे वृन्दावनसे रतनगढ़ सत्संग-लाभके लिये आये। अवसर पाकर उन्होंने एकान्तमें बाबासे कहा — आप मुझे श्रीपोद्दारजीकी आध्यात्मिक स्थितिके बारेमें कुछ बतलाइये।

जैसी चर्चा श्रीकेडियाजीने लोगोंके मुखसे सुन रखी थी, उसीके कारण उन्होंने बाबासे ऐसा निवेदन किया था। लोगोंमें प्रायः ऐसी चर्चा होती ही रहती थी कि बाबूजीकी आध्यात्मिक स्थितिके बारेमें जितना बाबा जानते हैं, उतना अन्य कोई नहीं। लोगोंका ऐसा ही विश्वास था और इसी विश्वासके कारण इस प्रकारकी चर्चा होती रहती थी। साधारण लोगोंको भीतरी मर्मकी जानकारी तो थी नहीं और उस मर्मभरी गहरी बातको लोग भला जान भी कैसे सकते थे, पर वह चर्चा वस्तुतः सही थी। बाबूजीके बारेमें बाबाको अनेक बातें ज्ञात थीं। स्वयं भगवान श्रीकृष्ण समय-समयपर उनकी आध्यात्मिक स्थितिके बारेमें बतलाते रहते थे। जब-जब भगवान श्रीकृष्ण बतलाते थे, तब-तब बाबा उनको लिख लिया करते थे। वे केवल बातें ही नहीं लिखते थे, अपितु तिथि और समय भी लिख लिया करते थे। ऐसी बातोंकी संख्या लगभग सत्तर-अस्सी होगी। इन लिखित बातोंको बाबा हमेशा अपने गलेमें धारण किये रहते थे। केवल शौच-स्नानके समय उनको उतारकर अलग रखा करते थे। ये बातें बाबा किसीको बताया नहीं करते थे। यह तो उनके जीवनकी सुगुप्ततम एवं उत्तमतम निधि थी।

जब श्रीकेडियाजीने बाबूजीकी आध्यात्मिक स्थितिके बारेमें बाबासे प्रश्न किया तो बाबा बड़ी दुविधामें पड़ गये। उनके मनमें एक ओर तो इस निधिको अत्यधिक सुगुप्त रखे रहनेका भाव कार्य कर रहा था और दूसरी ओर यह भाव भी था कि कहीं किसी सच्चे जिज्ञासुकी भावनाका अनादर नहीं हो जाये। अतः बाबाने सोचा कि श्रीकेडियाजीकी परीक्षा लेनी चाहिये। उनकी चाहकी उत्कटताकी परीक्षा लेनेके लिये बाबाने कहा — यदि आप प्रतिदिन एक लाख नामजप एक मासतक लगातार करें तो मैं उसके बाद आपको कुछ बातें श्रीपोद्दार महाराजकी आध्यात्मिक स्थितिके बारेमें बतला

सकता हूँ।

श्रीकेडियाजीने बाबाकी यह शर्त स्वीकार कर ली। वे एक मासतक निष्ठापूर्वक 'हरे राम' महामन्त्रकी चौंसठ माला प्रतिदिन फेरते रहे। अभ्यास नहीं होनेसे मन बड़ा ऊबता था, पर किसी दिव्य वस्तुके लोभमें वे सारी कठिनाई पार करते चले गये। शर्तके अनुसार एक मासतक नामजप कर चुकनेके बाद श्रीकेडियाजी बाबाके समक्ष प्रस्तुत हुए। शर्तकी सम्पन्नता देखकर बाबा बड़े प्रसन्न हुए और फिर बाबाने बाबूजीके जीवनकी कई दिव्य आध्यात्मिक बातें लिख करके श्रीकेडियाजीको दीं। फुलस्केप साइज कागजके चालीस पृष्ठोंपर वे बातें लिखी हुई थीं।

श्रीकेडियाजीने अपना परम सौभाग्य माना। उन दिव्य बातोंको पढ़कर श्रीकेडियाजीको बड़ा आश्चर्य हो रहा था। उनके आश्चर्यकी सीमा नहीं थी। इस घोर कलियुगमें भी ऐसी उच्च आध्यात्मिक स्थिति किसी व्यक्तिकी हो सकती है, ये सब बातें उनकी कल्पनामें सिमट नहीं पा रही थीं। श्रीकेडियाजीके मनकी स्थिति ऐसी थी मानो विस्मयको भी विस्मय हो रहा हो। श्रीकेडियाजी ऐसी दुर्लभ वस्तु पाकर 'हृदय लगाइ जुड़ावहिं छाती'। वे उस दुर्लभ विवरणको बार-बार पढ़ते, बार-बार प्रसन्न होते और बार-बार आश्चर्य करते।

श्रीकेडियाजीने सोचा – इन चालीस पृष्ठोंपर जो बातें लिखी हैं, क्यों न उनपर श्रीपोद्दारजीकी मोहर लगवा ली जाये? श्रीपोद्दारजी इन पृष्ठोंको पढ़ लें और अनुमोदन कर दें। फिर तो कहना ही क्या है? इन सब बातोंको बाबाने बतलाया है, अतः श्रीपोद्दारजी अनुमोदन कर ही देंगे। ये बातें यथार्थ हैं, तभी तो बाबाने लिखा है। बाबा जैसे महान संन्यासी भला यर्थाथ रहित तथ्य क्यों लिखेंगे?

इन सब बातोंसे भावित हुए श्रीकेडियाजीने वे चालीस पृष्ठ बाबूजीको पढ़नेके लिये दे दिया तथा बता भी दिया कि इन पृष्ठोंकी प्राप्ति कैसे-कैसे हुई। बाबाने जो लिखा था, उन पृष्ठोंको पढ़कर बाबूजीने वह सब श्रीकेडियाजीको वापस कर दिया। बाबूजीकी हर-सम्भव चेष्टा रहती थी कि अपनी दिव्य भागवती स्थितिको, जहाँतक बन सके, अधिक-से-अधिक सुगुप्त रखा जाय। वापस करते हुए बाबूजीने कहा – बाबा तो संन्यासी हैं, भावुक हृदय हैं। व्यावहारिक जगतसे उनका कोई सम्बन्ध अथवा सम्पर्क नहीं। रात-दिन जगतसे परेकी बात सोचते रहते हैं। ये बातें सर्वथा सार-हीन हैं।

सच्ची बात तो यह है कि यह सब बाबाकी मात्र थोथी भावुकता है।

श्रीकेडियाजी तो पहले ही हृदयंगम नहीं कर पा रहे थे। उन कल्पनातीत बातोंको हृदयंगम कर सकना उनके लिये सम्भव था नहीं और अब, जब बाबूजीने अपनी टिप्पणी कर दी, तब तो श्रीकेडियाजीने यही मान लिया कि यह सब बाबाके भावुक हृदयकी कल्पना जगतमें एक मीठी उड़ान है, जो आदिसे अन्त तक थोथी है। श्रीकेडियाजीके अन्तरकी यही आस्था थी कि बाबूजी न कभी असत्यका आश्रय लेंगे और न कभी अन्यथा भाषण करके मुझे बहकायेंगे। इसके बाद श्रीकेडियाजीके मनमें बाबाके प्रति वैसी श्रद्धाका भाव नहीं रह गया। श्रद्धा-भावना पर्याप्त डगमगा चुकी थी।

इधर तो बाबूजीने श्रीकेडियाजीसे कहा कि यह सब बाबाकी मात्र थोथी भावुकता है, उधर उन्होंने थोड़ी देर बाद ही एकान्तमें बाबासे कहा – जो बातें आपने श्रीकेडियाजीको लिखकर दी हैं, उसके वे अधिकारी नहीं हैं।

बाबूजीका इतना कहना ही पर्याप्त था। बाबूजीके चले जानेके थोड़ी देर बाद श्रीकेडियाजीको बुलाकर बाबाने कहा – जो मैंने आपको लिखकर दिया है, उसमें कुछ संशोधन करना है। आप एक बार मुझे दे दीजिये।

श्रीकेडियाजीने वह लिखित सामग्री तुरंत सहर्ष दे दी। अब उस सारी सामग्रीके प्रति भी उनके मनमें वैसी आदर-भावना नहीं रह गयी थी। उस लिखित सामग्रीको अब पुनः श्रीकेडियाजीको दे देनेका प्रश्न ही नहीं था। श्रीकेडियाजीने भी वापस लेनेका प्रयास नहीं किया। श्रीकेडियाजी उस सामग्रीको बिना लिये ही रतनगढ़से वृन्दावन वापस आ गये। वृन्दावन आनेके कुछ दिन बाद भगवान श्रीकृष्णने स्वप्नमें दर्शन देकर श्रीकेडियाजीसे कहा – बाबाने जो लिखा था, वह एकदम सही था और श्रीपोद्दारजीने स्वयंको पूर्णतः छिपाये रखनेके लिये तुमसे वैसा कह दिया था।

ऐसा ज्ञात होते ही श्रीकेडियाजीको अपार दुःख हुआ कि मैं व्यर्थ ही उस वस्तुकी उत्कृष्टतापर संदेह कर बैठा और हाथमें आयी हुई उस श्रेष्ठ सामग्रीको मैंने खो दिया। 'कहि न जाइ कछु हृदय गलानी'। श्रीकेडियाजीने बादमें बड़ा प्रयास किया कि वे चालीस पृष्ठ मुझे पुनः मिल जायें, पर अब कैसे मिल पाते ? चिड़िया तो हाथसे उड़ चुकी थी।

जिस प्रकार बाबा अपने कण्ठहारके रूपमें उन सत्तर-अस्सी बातोंको सदा धारण किये रहते, उन्हीं बातोंके साथ इन चालीस पृष्ठोंको भी रख लिया। ये सब तथ्य बाबाके हृदयके हार बने हुए थे। शीत ऋतुकी बात है।

बाबा एकान्तमें बैठे हुए आग ताप रहे थे। अँगीठीमें कोयलेके अंगारे दहक रहे थे। उन एकान्त क्षणोंमें बाबूजी बाबाके पास आये। बाबाने उनका सम्मान किया तथा बैठनेके लिये आसन दिया। कुछ साधारण बातें करनेके बाद बाबूजीने कहा – मैं वह सब देखना चाहता हूँ, जो आपने भगवान श्रीकृष्णके संकेतपर मेरे बारेमें कुछ लिख रखा है।

बाबाने तुरंत अपने गलेसे निकालकर वह सब लिखित वस्तु बाबूजीको दे दी। बाबूजी वह सारी सामग्री आदिसे अन्ततक पढ़ गये। पढ़ चुकनेके बाद उन सारे पृष्ठोंको बाबूजीने मोड़कर समेटा और बाबाके सामने बाबाके देखते-देखते उसे अँगीठीकी आगमें डाल दिया। उस दिव्य सामग्रीको आगमें डाल करके बाबूजीने बाबासे कहा – आपपर भगवान श्रीकृष्णकी बड़ी कृपा है, जो आपको यह सब बतला देते हैं।

बाबा अपनी आँखोंसे देख रहे थे कि मेरी जीवन-निधिको आगकी लपटें आत्मसात् किये जा रही हैं। इसके बाद भी बाबा निश्चेष्ट-निस्स्पन्द बैठे रहे, इतना ही नहीं, वे मुस्कुराते रहे। न कोई शिकायत बाबूजीसे कि आपने यह सब क्या कर दिया और न किसी प्रकारका क्षोभ परिस्थितिके प्रति कि हाय, मेरी जीवन-निधि आगमें भस्मीभूत हो गयी।

बाबूजीने एक स्थानपर कहा है कि जो अपने सर्वस्वके भस्मावशेषपर सहर्ष नृत्य कर सकेगा, उसे ही उस प्रेम-राज्यमें प्रवेश मिल पाता है। इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं बाबा। अपनी भस्मीभूत जीवन-निधिकी राखको देखकर मुस्कुरानेवाले बाबाके अग्रिम जीवनमें श्रीप्रिया-प्रियतमकी जिन-जिन दिव्यातिदिव्य लीलाओंका उन्मेष हुआ, वे सब साधारण स्तरके जनके लिये अनुमानसे बाहरकी बातें हैं, सर्वथा बाहरकी बातें। इस बातपर लोगोंका विश्वास होगा नहीं, पर यह बात है पूर्णतः सत्य।

बाबूजीकी रुचिमें रुचि मिलानेवाले बाबाने फिर भविष्यमें ऐसे प्राप्त भगवदीय संकेतोंको अंकित करना बन्द कर दिया। बाबूजी नहीं चाहते तो क्यों लिखा जाये? अतः कागजपर लिख लेनेका कार्य बन्द हो गया सदाके लिये, परंतु संकेत तो मिला ही करते थे और उन भगवदीय संकेतोंको अंकित करनेका लोभ भी कम प्रबल नहीं था। तो अब यह कहना चाहिये कि बाबाने उन संकेतोंको लिख लेनेकी प्रक्रिया ही बदल दी। आगेसे जब-जब जो-जो संकेत मिलते, उनको बाबाने

'परम प्रेममय मृदु मसि कीन्ही। चारु चित्त भीतीं लिखि लीन्ही॥'

श्रीमञ्जुश्यामा भावाप्लावन

एक बार नित्यनिकुञ्जेश्वरी-नित्यनिकुञ्जेश्वर श्रीराधाकृष्णके लीला-राज्यकी एक बार पूर्णतः ऐकान्तिक चर्चामें बाबाने बतलाया कि उन्हें कृष्ण-प्रिया श्रीवृषभानुनन्दिनीने किस प्रकार अंगीकार किया। बाबाने दो-अढ़ाई घंटेतक जिस रूपमें बतलाया, वह तो सर्वांशमें लिख सकना कभी भी सम्भव है ही नहीं। बाबाने तो बहुत विस्तारसे बतलाया, परंतु उसमेंसे जितना स्मरण रह सका, जितना समझमें आया और जितना ग्रहण कर पाया, वही यहाँ लिखनेका प्रयत्न कर रहा हूँ। इस नितान्त अंतरंग प्रसंगके लिखनेमें यदि कोई भी भूल अथवा विसंगति अथवा प्रमाद हो तो उसके लिये क्षमा-प्रार्थना है।

पूज्य श्रीबाबूजीके सम्पर्कमें आनेके बाद बाबाकी रस-साधना एवं उनका रसावगाहन उत्तरोत्तर गहनसे गहन होता चला गया। बाबा अधिकाधिक अन्तरंग परिधियोंमें प्रवेश करते चले गये। इसके बाद बाबाको एक विशिष्ट निकुञ्ज-लीलाका दर्शन हुआ, जिससे भाव-सिन्धुकी एक अति गम्भीर लहरी उच्छलित हो उठी और उस गम्भीर उच्छलनने बाबाके भाव-जीवनमें एक महान परिवर्तन ला दिया। वह विशिष्ट निकुञ्ज-लीला इस प्रकार है।

श्रीयमुनाजीके निर्मल प्रवाहके तटपर एक सुन्दर कुञ्ज है। इस निकुञ्जमें निवास करती है एकाकिनी श्यामविरहिणी एक व्रजाङ्गना। इस निकुञ्ज-निवासिनी व्रजाङ्गनाके अधरोंका हास्य और नयनोंका लास्य न जाने कहाँ छिप गया है। बहुत-बहुत देरतक वह उदास चित्तसे यमुना-तटपर बैठी रहती है। कभी नील धाराको, कभी नील गगनको और कभी नील तमालको देखकर वह व्याकुल हो उठती है। कभी-कभी तो यह रुदन करने लगती है। उसकी विरह दशाको देखकर यही लगता है कि उसका भोजन और शयन भी कठिनतासे हो पाता होगा। कभी तटपर और कभी कुञ्जमें अकेली बैठी हुई वह न जाने क्या-क्या सोचती और प्रार्थना करती रहती है।

एक दिन प्रातःकाल वह स्नान करके यमुनाजीसे लौटकर आयी थी और कुञ्जमें खड़ी-खड़ी अपने केशोंको सँवार रही थी कि तभी उसे

कदम्ब वृक्षके नीचे खड़े हुए श्रीश्यामसुन्दर दिखलायी पड़ गये। दिखलायी देते ही वह ठगी-सी रह गयी। केशोंको सँवारना स्थगित हो गया। वह मूर्तिवत् खड़ी-खड़ी एकटक श्रीश्यामसुन्दरको निहारने लगी। फिर तो वह ऐसी विभोर हो गयी कि उसे स्वयंकी भी सुधि नहीं रही। जब सुध-बुध आयी तो देखा कि श्रीश्यामसुन्दर वहाँ हैं नहीं। दर्शनका सुख तुरन्त अदर्शनकी पीड़ामें खो गया। उसकी व्यथाकी सीमा नहीं थी। सारे दिन और सारी रात उसके हृदयमें व्यथाका सागर उमड़ता रहा। एक क्षणके लिये भी श्रीश्यामसुन्दर उसकी स्मृतिसे हटे नहीं। वह सोच रही थी निरन्तर यही कि पुनः दर्शनका सौभाग्य मिलेगा या नहीं, किन्तु उस सौभाग्यका उदय हुआ।

प्रियतम श्यामसुन्दर दूसरे दिन पुनः प्रातःकाल उसी कदम्ब वृक्षके नीचे दिखलायी पड़े। उनको देखते ही व्रजाङ्गनाके हृदयमें उनके प्रति आत्म-निवेदनकी भावना जाग उठी, पर वह संकोचके मारे ठिठकी रह गयी। उधर कदम्ब वृक्षके नीचे प्रियतम श्यामसुन्दर खड़े हैं और इधर लज्जा और संकोचकी मूर्ति बनी वह व्रजाङ्गना खड़ी है। देखते-देखते ज्यों ही इसकी सुध-बुध गयी, त्यों ही प्रियतम श्यामसुन्दर चले गये। चेत आते ही व्रजाङ्गनाके तन-मन-नयनमें फिर वही विरह-व्यथा व्याप्त हो गयी। व्यथा अपार थी, परंतु आशा भी अवश्य थी कि कल प्रातःकाल वे पधारेंगे और वह आशा फलवती हुई। वे प्रातःकाल आये भी। अब श्रीश्यामसुन्दर प्रतिदिन प्रातःकाल आने लगे। दर्शन तो प्रतिदिन होता, परंतु परस्परमें बातचीत नहीं होती। प्रतिदिनका मिलन यदि एक ओर हृदयके निर्मल अनुरागको प्रतिपल संवर्धित कर रहा था तो दूसरी ओर अन्तरके संकोचको क्रमशः शिथिल भी करता जा रहा था।

मौन मिलनका क्रम कई दिनतक चलता रहा। एक दिन व्रजाङ्गनाके मनमें यह स्फुरणा उदित हुई – यदि मेरे पास सेवा-योग्य वस्तुएँ होतीं तो मैं उनकी सेवा करती, पर मेरे पास तो कुछ भी नहीं है। मैं किससे याचना करूँ?

उसे अचानक श्रीयमुनाजीका ध्यान हो आया और वह व्रजाङ्गना यमुनाजीकी ओर चल पड़ी। याचक बनकर कोई तटपर आये, उसे

श्रीयमुनाजी दर्शन न दें और उसकी मनोकामना पूर्ण न करें, यह भला कैसे हो सकता है? व्रजाङ्गनाने ज्यों ही याचना की, त्यों ही श्रीयमुनाजी अपने दिव्य परिवेषमें प्रकट हो गयीं और उसकी अभिलषित वस्तुएँ प्रदान करने लग गयीं। स्वर्ण थाल दिव्य आभूषण, दिव्य वस्त्र, दिव्य लेप, दिव्य गन्ध आदिसे भर गया। श्रीयमुनाजीने विविध प्रकारकी दिव्य भोजन सामग्री भी प्रदान की।

इन वस्तुओंको व्रजाङ्गना अपने कुञ्जमें ले आयी और प्रियतमकी प्रतीक्षा करने लगी। सेवाका चाव मनमें इतना अधिक भरा हुआ था कि प्रतीक्षाका एक-एक क्षण एक-एक युगके समान लग रहा था। इस प्रतीक्षाका भी अन्त आया और प्रातःकाल प्रियतम श्यामसुन्दरसे संकोच सहित उसने कहा – क्या मेरी कुछ सेवा स्वीकार कर लोगे?

प्रियतम श्यामसुन्दरसे स्वीकृति मिलनेपर उसने कहा – मेरे कुञ्जमें चलो।

प्रियतम मन्द गतिसे चलते हुए उसकी कुञ्जमें आये। व्रजाङ्गनाने प्रियतम श्यामसुन्दरका अपने हाथोंसे शृङ्गार किया। आज उसके आनन्दका सागर हिलोरें ले रहा था। उसके अन्तरका आह्लाद सीमाके बन्धनको छिन्न-भिन्न कर रहा था। उसने प्रियतम श्यामसुन्दरको सुन्दर पलंगपर बैठाकर सुमधुर भोजन कराया। भोजनके उपरान्त उसने प्रियतम श्यामसुन्दरको ताम्बूल अर्पित किया। प्रियतम श्यामसुन्दरने आधा पान आरोगकर शेष आधा पान उसके मुखमें दे दिया। वह तो इस परम सौभाग्यकी कल्पना भी नहीं कर सकती थी।

इसके उपरान्त प्रियतम श्यामसुन्दर चले गये। प्रियतमने अपने कर-कमलसे पान खिलाया, इसकी स्मृतिसे वह बार-बार सिहर उठती थी। इस प्रकार सेवाका क्रम कुछ दिनों तक चलता रहा। सेवोचित वस्तुएँ श्रीयमुनाजी प्रदान कर देतीं और वह व्रजाङ्गना उल्लसित हृदयसे अत्यधिक चाव पूर्वक प्रियतमकी सेवा-चर्या करती रहती।

एक दिन सेवा-चर्या करते समय उस व्रजाङ्गनाने प्रियतम श्यामसुन्दरसे पूछा – तुम यहाँसे नित्य ही कहाँ जाते हो?

प्रियतम श्यामसुन्दरने कहा – तुम जानना चाहती हो तो सुनो। मुझे श्रीराधाकी स्मृति सदा विभोर बनाये रखती है। उसी श्रीराधाके

पास जाया करता हूँ। श्रीराधाके रूप और गुणकी कोई सीमा नहीं।

प्रियतम श्यामसुन्दरके उत्तरसे व्रजाङ्गनाका समाधान तो हो गया, परंतु उनके चले जानेके बाद वह श्रीराधाके चिन्तनमें ही लीन हो गयी। वह श्रीराधा कैसी है, जिसकी स्मृति प्रियतम श्यामसुन्दरको सदा विभोर बनाये रखती है। ज्यों-ज्यों श्रीराधाका चिन्तन सघन होने लगा, त्यों-त्यों उसके प्रति व्रजाङ्गनाका आकर्षण गहन होने लग गया। प्रियतम श्यामसुन्दर तो व्रजाङ्गनाके पास नित्य ही आते थे और नित्य ही अचिन्त्य निर्मल प्यारसे पूरित होकर वह उनकी सेवा करती थी। एक दिन उस व्रजाङ्गनाके हृदयमें श्याम-प्रियतमा श्रीराधाकी भी सेवा करनेकी भावना स्फुरित हुई। जबसे नाम सुना और परिचय मिला, तबसे उस व्रजाङ्गनाका आकर्षण श्रीराधाके प्रति अत्यधिक बढ़ता चला जा रहा था। प्रबल आकर्षणसे अभिभावित उस व्रजाङ्गनाके द्वारा सेवा-चर्याके समय एक नवीन चेष्टा हो गयी। जब प्रियतम श्यामसुन्दर अपना चर्वित ताम्बूल उसके मुखमें देने लगे तो उसने आज अपना मुख खोलनेके स्थानपर अपनी हथेली फैला दी। प्रियतम श्यामसुन्दरने पूछा — आज यह नवीन बात कैसे?

उस व्रजाङ्गनाने सहमते हुए कहा — यदि तुम्हारी आज्ञा हो तो यह चर्वित ताम्बूल श्रीराधाको दे आऊँ?

प्रियतम श्यामसुन्दरने अपनी प्रसन्नता पूर्ण अनुमति प्रदान कर दी। अनुमति प्रदान करनेके साथ-साथ उन्होंने व्रजाङ्गनाको श्रीराधाजीके निकुञ्जकी राह भी बता दी।

उस व्रजाङ्गनाने तुरन्त जाना उचित नहीं समझा। प्रियतम श्यामसुन्दर अभी वहीं गये हैं। मेरे तुरन्त जानेसे उनके विहार-विलासमें बाधा आयेगी। पर्याप्त समयके बाद वह व्रजाङ्गना प्रियतम द्वारा बतलाये गये पथपर चल पड़ी। उसने अपने आँचलमें वह चर्वित ताम्बूल भी बाँध लिया था श्रीराधाको उपहार स्वरूप देनेके लिये। उसे मार्गमें बड़े शुभ शकुन हुए। वनकी शोभा ही संकेत करने लगी कि अब श्रीराधाका निकुञ्ज नितान्त निकट है। यों तो सारा वन-प्रान्त ही रमणीय है, परंतु उस निकुञ्जके उपवनकी शोभा तो न्यारी ही है। ऐसा कौन-सा वृक्ष होगा, जो सुमधुर पक्व फलोंसे भरा न हो! वृक्षोंपर और लताओंपर

बैठे हुए शुक-पिकादि पक्षी कलरव नहीं कर रहे थे, अपितु वीणा जैसे सुमधुर स्वरमें गा रहे थे 'राधा-राधा-राधा-राधा'। कमल पुष्पोंसे भरित सरोवरकी शोभा सर्वथा अनुपम थी। दूर्वादलसे आच्छादित भूमिकी हरी-हरी आभा बड़ी ही प्यारी लग रही थी। नेत्रोंके लिये उपवनकी सुन्दर शोभा, नासिकाके लिये पुष्पोंकी मादक सुवास, कर्णपुटोंके लिये 'राधा' नामका ललित स्वर, पैरोंमें हरित भूमितलका कोमल स्पर्श – ये सभी अतीव न्यारे थे, पूर्णतः निराले थे। इस उपवनमें वह व्रजाङ्गना प्रवेश करती चली गयी। आगे उसे भव्य विशाल महल दिखलायी दिया। महलकी सुन्दरताको देखकर उसे विश्वास हो गया कि यही श्रीराधाका निकुञ्ज है। उसने अपने आँचलसे ताम्बूल निकाल कर अपने हाथमें ले लिया और वह महलके प्रवेश-द्वारकी ओर बढ़ने लगी। प्रीतिकी अधिकतासे उसकी चालमें गति-भंग परिलक्षित हो उठा था। स्खलित गतिसे चलती हुई वह महलके प्रवेश-द्वारपर आकर खड़ी हो गयी। तभी परिचारिकाने महलसे बाहर आकर उससे पूछा – क्या मैं तुम्हारे शुभागमनका हेतु जान सकती हूँ?

जिस प्रीतिकी अधिकताके कारण उसकी चालमें गति-भंग हो गया था, उसीके कारण अब कण्ठावरोध उपस्थित हो गया। उसकी भावमय स्थिति परिचारिकासे छिपी नहीं रह सकी। उसके हाथमें ताम्बूलको देखकर उसने अनुमान लगा लिया कि यह उपहार प्रदान करनेके लिये लायी है। परिचारिकाने पुनः अति स्नेह सनी वाणीमें पूछा – क्या तुम यह ताम्बूल-उपहार श्रीप्रियाजीके लिये लायी हो?

उस मूक-अधरा व्रजाङ्गनाके नयनोंने 'हाँ' कहा और उसके हाथ फैल गये, बढ़ गये वह चर्वित ताम्बूल देनेके लिये। उसके कर-पल्लवसे पान लेते ही वह परिचारिका भी प्यारमें डूब गयी और उसके नेत्र गीले हो उठे। ज्यों ही वह परिचारिका महलके अन्दर श्रीराधाकिशोरीको ताम्बूल अर्पित करनेके लिये गयी, वह व्रजाङ्गना तत्काल अपने कुञ्जके लिये लौट पड़ी। श्रीराधा और उसकी सखियाँ मुझ नगण्याके प्रति न जाने क्या सोचेंगी और न जाने क्या कहेंगी, इसी संकोचमें पड़कर अत्यधिक दैन्यसे अभिभूत हुई वह लौट पड़ी और इतनी तीव्र गतिसे लौटी कि अपने कुञ्जमें आकर ही उसने साँस ली।

दूसरे दिन प्रातःकाल प्रियतम श्यामसुन्दर उस व्रजाङ्गनाके कुञ्जमें जब आये तो उन्होंने पूछा – क्या तुमने मेरी प्राण-प्रियतमाको ताम्बूल भेंट किया था?

उस व्रजाङ्गनाकी दृष्टि लज्जाके मारे पृथ्वीसे चिपक-सी गयी। संक्षेपमें उसने प्रियतम श्यामसुन्दरसे सारा वृत्त बता दिया कि किस प्रकार महलकी एक सुन्दरीको ताम्बूल देकर वह लौट आयी थी। उस वृत्तको सुनकर प्रियतम श्यामसुन्दरने कहा – तब तो उसे बड़ी तीव्र व्यथा हुई होगी। जो भावपूर्ण हृदयसे रागानुरञ्जित प्रेमोपहार देता है, उस अनुरागिणीसे मिलनेके लिये वह कितनी अधिक आतुर हो उठती है, इसका अनुमान तुम कर ही नहीं सकती। तुम सोच भी नहीं सकती कि सच्चे स्नेही हृदयोंकी प्रतीक्षामें उसकी स्थिति क्या-से-क्या हो जाया करती है।

प्रियतम श्यामसुन्दरके श्रीमुखसे यह सुनकर वह व्रजाङ्गना अत्यधिक खिन्न हो गयी। उसके मनमें बड़ा खेद था कि मैं बिना मिले क्यों चली आयी। श्रीराधाके कष्टकी कल्पना करके वह स्वयंको कोसने लगी। प्रियतम श्यामसुन्दरकी सेवा-चर्याके उपरान्त ज्यों ही उस व्रजाङ्गनाको ताम्बूल-खण्ड मिला, वह तत्क्षण श्रीराधाकिशोरीसे मिलनेके लिये चल पड़ी। महलके प्रवेश द्वारपर उसे वही परिचारिका मिली। व्रजाङ्गनाको देखते ही उस परिचारिकाने मधुर उपालम्भ देना आरम्भ कर दिया – अरी सखी! कल तुम कहाँ चली गयी थी? मेरे वापस आनेतक तुमको यहाँ रहना चाहिये था। तुम एक क्षण भी यहाँ ठहरी नहीं। मेरी स्वामिनी श्रीराधा तुमसे मिलनेके लिये कितनी उत्सुक थी! पहले तो मैं यही सोच रही थी कि तुम इस उपवनकी शोभा देखनेके लिये गयी होगी, पर तू तो आयी ही नहीं। अब तू ही बता, बिना कुछ बतलाये ही चले जानेसे मेरी स्वामिनी श्रीराधाको कितना कष्ट हुआ? अब चल भीतर महलमें।

लज्जाके मारे उस व्रजाङ्गनाके पैर उठ ही नहीं रहे थे। उस सुन्दरी परिचारिकाने ही उसका हाथ पकड़ा और उसे श्रीराधाकिशोरीके समीप ले गयी। कक्षकी यवनिकाके उठते ही श्याम-प्रियतमा श्रीराधाको देखकर वह तो मन्त्र-सम्मोहित-सी खड़ी-की-खड़ी रह गयी। दोनों आँखें

खुली-की-खुली रह गयीं। पाषाणवत् खड़ी-खड़ी वह मन-ही-मन आश्चर्य करने लगी कि यह श्रीराधा है या मूर्तिमान सुन्दरता? ऐसी अनुमानातीत सुघरता! ऐसा निरुपमेय लावण्य!! ऐसी अपरिमेय कान्ति!!! नित्य किशोरी श्रीराधाको देखते ही वह व्रजाङ्गना तो उनपर न्यौछावर हो गयी। अनुपम-रूप-धामिनी श्रीराधाके अति सुकुमार पदारविन्दोंका अभिवन्दन करनेके लिये उसका तन-मन ललक उठा। उसे प्रियतम श्यामसुन्दरके भाव भरे उद्गार स्मरण हो आये – श्रीराधा तो अचिन्त्य सौन्दर्य, अकल्पनीय माधुर्य, अतुलनीय लालित्यकी साकार प्रतिमा है।

ज्यों ही श्रीराधाकिशोरीने उस व्रजाङ्गनाको देखा, त्यों ही तुरन्त आकर उसे छातीसे चिपका लिया। बहुत देरतक छातीसे चिपकाये रही तथा अपने स्नेहाश्रुओंसे उसे नहलाती रही। श्रीराधाकिशोरी उसे हृदयसे लगाकर इस प्रकार मिल रही थी, मानो युग-युगसे बिछुड़ी हुई अपनी सगी बहिनसे मिल रही हो। दोनोंके अद्भुत प्रेम-मिलनको देखकर निकुञ्जका सारा सखी-समुदाय परम विस्मय करने लगा। दोनोंको ही स्वयंकी सुधि नहीं रही। फिर सखियोंने ही दोनोंको चेत कराया।

कुछ प्रकृतिस्थ होनेपर श्रीराधाकिशोरीने उस व्रजाङ्गनाको अपने साथ पलंगपर बैठाया। पलंगपर साथ-साथ बैठनेमें उसे संकोच तो बहुत हो रहा था, परंतु स्नेह सने आग्रहको अस्वीकार कर सकना उसके लिये सम्भव नहीं हो पाया। पलंगपर बैठनेके बाद स्नेह भरिता श्रीराधा उससे विभोर वाणीमें कहने लगी – मैं कबसे तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हूँ। तू कहाँ अटक-भटक गयी थी? जबसे तू अलग हुई, तबसे तुम्हारी स्मृतिमें विराम आया ही नहीं। यही स्थिति प्राणाधार प्रियतमकी है। तुम्हारा नाम सुनते ही वे तो अधीर हो उठते थे। आजका दिवस कितना शुभ है, कितना सुन्दर है, जो तुम मुझे मिल गयी।

इतना कहकर श्रीराधाकिशोरीने पुनः उसे चिपका लिया। वह व्रजाङ्गना तो श्रीराधाकिशोरीके अतुलित रूपको, उसके अद्भुत स्वभावको, उसके अपार स्नेहको देखकर क्षण-प्रति-क्षण विस्मयमें अधिकाधिक डूबती चली जा रही थी। थोड़ी देर बाद प्रीतिनिमग्ना श्रीराधाकिशोरीने उस व्रजाङ्गनाका अपने हाथोंसे शृंगार करना चाहा।

व्रजाङ्गनाने विनम्र अनुरोध करते हुए कहा – आप ऐसा न करें। यदि आप कुछ करना ही चाहती हैं तो अपने श्रीचरणोंकी अमल और अविरल अनुरक्ति प्रदान करें। आप श्रीश्यामप्रिया हैं। आप ही मेरा शृंगार करेंगी तो वे प्रियतम श्यामसुन्दर मेरे बारेमें क्या सोचेंगे? वे मुझे क्या कहेंगे?

श्रीराधाकिशोरीने उससे कहा – अरी! तू इतना संकोच क्यों करती है? अपनेको पृथक् क्यों समझती है? हम दोनों ही श्रीकृष्णानुरागिणी हैं। वे श्रीकृष्ण ही हम दोनोंके प्राणवल्लभ हैं। वस्तुतः हम दोनों एक मन और एक प्राण हैं और वे श्रीकृष्ण ही हमारे जीवन-सर्वस्व हैं।

श्रीराधाकिशोरीके प्यारकी प्रबल धारामें वह व्रजाङ्गना बह चली। श्रीराधाकिशोरीने अपने हाथसे उसका शृंगार किया तथा स्वयं ही उसे भोजन कराया। इसके बाद जब वह व्रजाङ्गना अपने कुञ्जके लिये चली तो श्रीराधाकिशोरी उसे महलके द्वारतक पहुँचानेके लिये आयी। वह मार्गपर चल तो रही थी, परंतु आजके प्रेमासवका प्रभाव गहरा था। आज उस व्रजाङ्गनाके चरण पथपर ठीकसे पड़ ही नहीं रहे थे। डगमगाती चालसे चलती हुई अपने कुञ्जमें आकर वह अपनी शय्यापर अचेत-सी पड़ गयी। ऐसी अचेत कि उसे न दिवसके जानेका भान हुआ और न रात्रिके बीत जानेका ज्ञान। दूसरे दिन प्रियतम श्यामसुन्दरके आ जानेका भी परिज्ञान उसे नहीं हुआ। प्रियतम श्यामसुन्दरको खड़े-खड़े थोड़ा ही समय व्यतीत हुआ था कि किसी अचिन्त्य विधानसे उसकी आँखें खुलीं। उसने देखा कि सामने प्रियतम श्यामसुन्दर खड़े हैं। वह तुरंत उठकर बैठ गयी। बैठे-बैठे वह आत्म-ग्लानिमें डूबी जा रही थी। वह आत्म-भर्त्सना कर रही थी। प्रियतम श्यामसुन्दरके आ जानेके बाद भी वह सोयी रही। इस विचारसे उसके नयनोंमें खेद और ग्लानि भरी हुई थी। प्रियतम श्यामसुन्दरका उस ओर ध्यान गया ही नहीं। वे तो अपनी प्राणप्रिया श्रीराधाकिशोरीसे उसके मिलनका सारा विवरण सुननेके लिये उत्सुक हो रहे थे। वे कोमल शय्यापर उसके समीप बैठ गये और युगल नयनोंमें राग भरी जिज्ञासा लिये हुए उससे पूछने लगे – क्या कल तुम्हारी श्रीराधासे भेंट

हुई थी?

उस व्रजाङ्गनाने आदिसे अन्ततक जैसे-जैसे हुआ था, सारा बिना छिपाये बतला दिया। जब श्यामसुन्दरने यह सुना कि प्राणेश्वरी श्रीराधाने अपने हाथसे शृंगार किया तो उनके हृदयमें अत्यधिक प्यार उमड़ पड़ा और उन्होंने कहा – आज मैं तेरा शृंगार करूँगा।

इतना सुनते ही उस व्रजाङ्गनाको बहुत अधिक संकोच हुआ। मेरे सेव्य मेरा ही शृंगार करें, मेरे स्वामी ही मेरी सेवा-चर्या करें, इसे मन स्वीकार करनेके लिये प्रस्तुत ही नहीं था। वह स्वयंको स्वयंके आँचलमें छिपा लेना चाहती थी। उस व्रजाङ्गनाके अत्यधिक संकोचको देखकर और उसकी रुचिको आदर देनेके लिये प्रियतम श्यामसुन्दरने अपना आग्रह छोड़ दिया। इसके बाद प्रियतम श्यामसुन्दर प्राणेश्वरी श्रीराधाके निकुञ्जकी ओर चले गये।

श्रीराधाकिशोरी तथा प्रियतम श्यामसुन्दरसे व्रजाङ्गनाको जो अगाध प्यार मिला, इससे उसकी दशा कुछ निराली ही हो गयी थी। वह अपने आपेमें नहीं थी। यमुना-स्नान करके वह पुनः श्रीराधाकिशोरीसे मिलनेके लिये चल दी। कलकी तरह आज भी स्वागतका वही उत्साह, सत्कारका वही उल्लास, स्नेहकी वही वर्षा। श्रीराधाकिशोरीसे जब बात होने लगी तो उसने प्रियतम श्यामसुन्दरके आनेका सारा विवरण सुना दिया। ज्यों ही श्रीराधाकिशोरीने सुना कि संकोचके अतिरेकके कारण प्रियतम श्यामसुन्दर उसका शृंगार नहीं कर पाये और उनकी अभिलाषा अपूर्ण रह गयी, त्यों ही प्रिय-रुचि-मग्ना श्रीराधाकिशोरी उससे कहने लगी – अरी! अपना तन-मन-धन-जीवन सर्वस्व उनके लिये ही तो है। सब कुछ उनका ही है। वे जब चाहें, जो चाहें, जैसा चाहें, सदा-सर्वत्र वैसा ही करें। सदा उनकी अभिलाषा पूर्ण हो। उनकी रुचि ही अपना जीवन है। अपना सम्पूर्ण अस्तित्व उनके प्रसादनके लिये है। उनसे भला कैसा संकोच?

श्रीराधाकिशोरीके इन मार्मिक उद्गारोंको सुनकर व्रजाङ्गनाको अपने संकोचपर अत्यधिक पश्चात्ताप होने लगा। उसके नयनोंमें अश्रु-बिन्दु झलक आये। अब श्रीराधाकिशोरीने उसका नख-शिख शृंगार करना आरम्भ किया। इस नवीन सखी व्रजाङ्गनाको पल-पलपर संकोच

तो बहुत हो रहा था, पर श्रीराधाके अतुलनीय प्यारके सामने वह संकोच टिक न सका। नख-शिख शृंगार करते-करते जब श्रीराधाकिशोरी उसके वक्षःस्थलपर 'कृष्ण-कृष्ण' लिखनेको प्रस्तुत हुई तो उसने अनुरोध किया, बार-बार अनुरोध किया – आप 'राधा-राधा' लिख दें।

इतना सुनना था कि परम पुनीत प्रेमके प्रबलावेशके कारण श्रीराधाकिशोरी मूर्तिवत् स्थिर हो गयी। आवेशके किंचित् शमित होनेपर जब वे कुछ प्रकृतिस्थ हुईं तो बड़े मधुर स्वरमें उन्होंने कहा – अरी बहिन! तेरा अकलुष प्यार तो सर्वथा प्रियतम श्यामसुन्दर जैसा ही है।

इसके बाद श्रीराधाकिशोरीने अनेकानेक हार्दिक शुभाशंसनसे उस व्रजाङ्गनाका मंगलाभिषेक किया, जिसे सुनकर वह मन-ही-मन बार-बार स्वयंको धन्य-धन्य कह रही थी। वह बार-बार स्वयं ही स्वयंके सौभाग्यकी सराहना कर रही थी। मंगलाभिषेक करते-करते ही श्रीराधाकिशोरीने उसके वक्षःस्थलपर 'राधा' नाम लिख दिया।

जब वह व्रजाङ्गना अपने कुञ्जमें वापस लौट रही थी, तब उसके महान सौभाग्यको देखकर वनके जड़-चेतन स्थावर-जंगम सभी प्रफुल्लित हो रहे थे। मार्गके वृक्ष उसपर राशि-राशि पुष्प-वर्षा करने लगे तथा वृक्षोंपर बैठा हुआ खगकुल उसका बार-बार गुणगान करने लगा।

जिस समय उस व्रजाङ्गनाको प्रियतम श्यामसुन्दरके संस्पर्शकी प्राप्ति होती है, उसी क्षण उसकी परिणति श्रीमञ्जुश्यामा मञ्जरीके रूपमें हो जाती है और जिस समय उसके वक्षःस्थलपर श्रीराधाकिशोरी 'राधा-राधा' लिखती हैं, उसी क्षण उस परिणतिपर पक्की छाप लग जाती है। यह परिणति बाबाके गम्भीर 'भाव-जीवन' की परम रसमयी अन्तरंग गाथा है। प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधवके रस-राज्यकी रसमयी लीलामें प्रवेश मिलनेके बाद बाबा सर्व प्रथम गौरवर्णीया श्रीमञ्जुलीला भावमें प्रतिष्ठित हुए थे, इसके बाद श्यामवर्णीया श्रीमञ्जुश्यामा भावमें प्रतिष्ठित हुए और यह बाबाकी द्वितीय भाव दीक्षा है। सन् १९४३-४४ में यह दीक्षा भी मिली निकुञ्जेश्वर श्रीकृष्णके द्वारा ही।

बाबाने अनेक बार श्रीमञ्जुश्यामा मञ्जरीके स्वरूपकी चर्चा करते हुए बतलाया है कि श्रीमञ्जुश्यामाजी श्रीराधाकिशोरीकी छोटी सहोदरा बहिन हैं। यह छोटी बहिन स्वभावसे कुछ चञ्चल और कुछ मुखर है

और श्रीराधाकिशोरी एवं श्रीश्यामसुन्दर दोनोंकी ही अत्यन्त प्रीतिपात्री है। दोनों ही श्रीमञ्जुश्यामाके माध्यमसे एक दूसरेको सुख प्रदान करनेका विधान रचते हैं। दोनोंको ही श्रीमञ्जुश्यामाजीमें अपनी-अपनी विवशताका एक सुन्दर समाधान दिखलायी देता है।

महाभावस्वरूपा वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाके हृदयमें अपार व्यथा है कि मैं अपने प्राणप्रियतम श्रीकृष्णको किंचित् भी सुख दे ही नहीं सकी। यद्यपि उनके जीवनका एक-एक श्वास, उनके हृदयका एक-एक स्पन्दन, उनकी वाणीका एक-एक शब्द, उनकी क्रियाका एक-एक व्यापार सर्वत्र और सर्वदा सर्वथा-सर्वथा हृदयाराध्य श्रीश्यामसुन्दरके लिये ही होता है, इसके उपरान्त भी वे अहर्निश अनवरत यही सोचती रहती हैं कि मुझ अकिंचनाके द्वारा प्रियतमका सुख-विधान कब हो पायेगा! श्रीवृषभानुनन्दिनी परम खिन्नताकी दारुण भावनासे नित्य-निरन्तर भावित रहती हैं कि मेरे द्वारा प्रियतमकी कोई सेवा कभी बन नहीं पायी। परम खिन्नताकी भावनासे सदैव अभिभूत रहनेके फलस्वरूप उनके आन्तरिक क्रन्दनमें कभी विराम आता ही नहीं। उनके अन्तरकी इस अपार व्यथा और अपार क्रन्दनके आधारपर बाबा कहा करते थे कि क्रन्दन ही श्रीराधाका जीवन है।

ठीक यही व्यथा रसराज नन्दनन्दन श्रीकृष्णके हृदयमें परिव्याप्त है। श्रीकृष्ण महामहैश्वर्यमय हैं, फिर भी प्रेम-परवश हुआ उनका व्यथित हृदय चीत्कार कर उठता है कि मैं अपनी प्राण-प्रियाको तनिक भी सुख नहीं दे पाया। हृदयकी व्यथाकी पराकाष्ठाका एक बिन्दु ऐसा भी आ जाता है, जब दोनों प्रेमी हृदयोंके हाहाकारका दारुण स्वरूप प्राणान्तक सीमाका स्पर्श करने लगता है और तब प्राणान्तक पीड़ासे अन्तरके व्यथित और मथित होते ही उन दोनोंके करुण हाहाकारके मिलन-बिन्दुपर अघटन-घटना-पटीयसी महाशक्तिमयी भगवती योगमायाके अचिन्त्य विधानसे एक नवीन परिस्थितिका निर्माण हो जाता है। वृषभानुनन्दिनीके दृष्टिपथपर अपनी सहोदरा बहिन मञ्जुश्यामा आती है। उसे देखते ही श्रीवृषभानुनन्दिनीके हृदयमें परम आशा उद्भासित हो उठती है कि मैं तो प्रियतमको सुख नहीं दे सकी, कदाचित् इसके माध्यमसे मैं प्रियतमको सुख-दान कर सकूँ। ठीक ऐसी ही प्रबल

आशाका उद्‌भव प्रियतम श्रीकृष्णके अन्तरमें होता है। श्रीमञ्जुश्यामाको देखते ही उनके मनमें भाव उमड़ने लगते हैं कि मैं तो अपनी प्रियाका सुख-सम्पादन नहीं कर पाया, किन्तु एक सम्भावना दिखलायी देती है कि कदाचित् इसके माध्यमसे मैं अपनी प्राण-प्रियाको सुखी बना सकूँ। ज्यों ही दोनोंके हृदयमें हाहाकारकी चरम सीमा उपस्थित होती है, उस सीमाके मिलन-बिन्दुपर श्रीमञ्जुश्यामा दोनोंके दृष्टिपथपर आती है और तत्क्षण दोनोंके प्रीति-विगलित हृदयमें बलवती आशाका संचार हो उठता है। श्रीमञ्जुश्यामाके माध्यमसे प्रिया श्रीराधा और प्रियतम श्रीकृष्ण एक-दूसरेको सुख-दान कर सकनेकी भावनासे परमाशान्वित हो उठते हैं और यह आशा फलवती भी होती है। फिर तो सुख-दानकी दिव्य लीलाका मधुर विलास आरम्भ हो जाता है और दोनों ओर सुख-दानके लिये होड़-सी मच जाती है। श्रीमञ्जुश्यामाजीके माध्यमसे दोनों एक-दूसरेको सुख-दान कर पाते हैं, ऐसा इसलिये कि श्यामवर्णा श्रीमञ्जुश्यामा श्रीराधाकृष्णका युगलित रूप है। नीलमकी नकबेसरके रूपमें श्रीमञ्जुश्यामाजी श्रीप्रियाजीके नासिकाग्र भागमें सदा विराजित रहती हैं। श्रीप्रियाजीके अंगमें श्रीमञ्जुश्यामाजीकी अवस्थिति ऐसे स्थलपर है, जहाँ वाम श्वासका एवं दक्षिण श्वासका, दोनोंका सुखद स्पर्श सदा-सर्वदा उन्हें प्राप्त होता रहता है, जो उनके युगलित स्वरूपका परिचायक है।

* * * * *

'स्वामी श्रीचक्रधरजी' से 'श्रीराधा बाबा'

स्वामी श्रीचक्रधरजीका नाम धीरे-धीरे श्रीराधा बाबा हो गया। जब उन्होंने संन्यास लिया था, तब उनके संन्यासी जीवनका नाम था श्रीमधुसूदनानन्द। ऐसा होकर भी लोग उन्हें स्वामी श्रीचक्रधरजी ही कहा करते थे। इसके बाद भावी जीवनमें भावोंका जैसा उन्मेष, उद्वेलन और आप्लावन हुआ, इसके फलस्वरूप इस नाममें भी परिवर्तन आ गया। परिवर्तनका वह ऐतिहासिक क्षण उपस्थित हुआ एक अद्‌भुताद्‌भुत दिव्य लीलाके दर्शनोपरान्त। रतनगढ़में रहते हुए जिन दिनों बाबा श्रीमञ्जुश्यामा भावसे भावित रहा करते थे, उसी समयकी बात है। यह प्रसंग सन् १९४४-४५ का होना चाहिये।

बाबा रतनगढ़वाली हवेलीमें अपने कमरेके अन्दर आसनपर बैठे हुए थे। प्रातःकालका समय था। तभी संसारकी विस्मृति हो गयी। जग-विस्मृतिके साथ ही शरीरकी भी विस्मृति-सी हो गयी। 'विस्मृति-सी' शब्दका प्रयोग इसलिये किया गया कि शरीरका भान कुछ-कुछ तो था ही। बाबाके नेत्रोंके सामनेसे वह हवेली तिरोहित हो गयी और वृन्दावनका दिव्य निकुञ्ज प्रासाद आविर्भूत हो गया। वह विशाल प्रासाद ऐसा है, जो अलौकिक सुन्दरता और अलौकिक सुगन्धसे भरपूर है। इसी दिव्य प्रासादमें एक सुन्दर स्थानपर वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाकिशोरी विराज रही हैं। इस समय श्रीराधाकिशोरी अकेली हैं। पासमें न तो प्रियतम श्रीकृष्ण हैं और न कोई सखी-मञ्जरी- सहचरी है। यदि समीपमें कोई है तो उनकी प्रिय सारिका और प्रिय शुक।

सारिका किशोरीकी बाँयी हथेलीपर बैठी है और वे अपनी दाहिनी हथेलीसे उसे सहला रही हैं। बहुत धीरे-धीरे, बहुत मीठे-मीठे सहला-सहला करके किशोरी अपने हृदयका प्यार सारिकापर उड़ेलती चली जा रही हैं। सहलाते-सहलाते किशोरीने सारिकासे कहा – सारिके! आजसे तुमको मेरा एक अभीष्ट कार्य विशेष रूपसे करना है।

ऐसा कहते-कहते किशोरीने, जिस तरह अपनी बाँयी हथेलीपर सारिकाको बैठा रखा था, उसी तरह अपनी दाहिनी हथेलीपर शुकको भी बैठा लिया और अपनी स्नेह सनी दृष्टिसे सारिका और शुक, दोनोंको नहलाते हुए किशोरीने कहना आरम्भ किया – तुम दोनोंसे ही मेरा निवेदन है और तुम दोनोंको ही मेरा अभीष्ट कार्य सम्पन्न करना है। तुम दोनों ही जानते हो कि मेरे प्राणवल्लभ प्रियतमका मधुर नाम मुझे अत्यन्त प्रिय है। मेरे प्रसादनके लिये तुम दोनों ही मुझे 'श्रीकृष्ण' नाम सुनाया करते हो। मुझे सुखी बनानेकी तुम दोनोंकी जो भावना है, मैं उसका अभिनन्दन करती हूँ, पर आजसे तुम दोनों अपना क्रम बदल दो। अब तुम मुझे 'कृष्ण' नामके स्थानपर 'राधा' नाम सुनाया करो। तुम दोनों कहोगे कि क्या राधा पगली हो गयी है। तुम दोनों ही नहीं, जो भी इसे देखेगा-सुनेगा, वही मुझे पगली और मूर्खा कहेगा। लोग मुझे पगली कहें तो उनको कहने दो। लोग मुझे मूर्खा कहेंगे, वह भी कह लेने दो। लोग मुझे अहंकारिणी कहेंगे, इसीलिये कि यह अत्यधिक आत्म-केन्द्रिता है

और इसे स्वयंको ही स्वयंका नाम सुननेमें बड़ी अभिरुचि है। मैं यह सारे आक्षेप सुन लूँगी और सह लूँगी, पर तुम दोनों आजसे मुझे 'राधा' नाम सुनाया करो। मेरी सखियाँ तुम दोनोंको मना कर सकती हैं, पर उन सखियोंका कहना भी मत मानना। हे प्रिय सारिके! हे प्रिय शुक! आज मैं अपने हृदयका अन्तरंगतम भाव भी तुम दोनोंसे छिपाऊँगी नहीं। मेरे प्राणाधार हृदयेश्वरको मेरा नाम प्रिय लगता है, अतः उनको प्रिय लगनेवाले नामका ही संकीर्तन किया करो। यह सही है कि मुझे 'श्रीकृष्ण' नाम अत्यधिक प्रिय है और यह नाम मेरे कर्णपुटोंमें अमृत उड़ेल देता है, पर क्या यह राधा अपने सुखके लिये प्रियतमके सुखकी उपेक्षा कर दे? मेरे लिये यह असह्य है। बस, मेरे प्राणवल्लभके सुखकी जय हो। अब मुझे 'राधा' नाम ही सुनाया करो।

इतना कहते-कहते श्रीराधाकिशोरी भाव-सागरमें निमग्न हो गयीं। इस लीलाके रसावगाहनमें कितना समय व्यतीत हो गया, इसका तनिक भी ज्ञान बाबाको नहीं रहा। इस लोकातीत दिव्य एवं कल्पनातीत मधुर लीलाने बाबाके व्यक्तित्वको सीमातीत रूपसे प्रभावित किया। उस महाभावके सागरकी लहरोंपर बाबाके जीवनका आग्रह — अन्य नामका आग्रह और जप-नियमका आग्रह — सभी आग्रह बह गये और रह गया अधरोंपर 'राधा' नाम। कभी मन-ही-मन, कभी मन्द स्वरमें और कभी उच्च स्वरमें 'राधा' नामका उच्चारण होने लगा। पहले बाबा महामन्त्रका और फिर राधाकृष्ण नामका जप और संकीर्तन किया करते थे, परंतु अब 'राधा' नामके मधुर स्मरण और संकीर्तनके परमानन्दमें 'महामन्त्र' और 'राधाकृष्ण' नाम स्वतः विलीन हो गया। अब रह गया था हृदयके भीतर और अधरोंके ऊपर 'राधा' नाम।

यह प्रसंग है प्रातःकालका और उसी दिन संध्याके समय बाबूजी बाबाके पास आकर कहने लगे — आज आपको एक अति विचित्र बात बतला रहा हूँ। क्या यह कभी उचित ठहराया जा सकता है कि निकुञ्जेश्वरी श्रीराधा अपने निकुञ्जके शुक-पिक-सारिकाको सतत 'राधा-राधा' रटनेके लिये कहे? लोग इसे आत्म-श्लाघा, आत्म-प्रतिष्ठा, आत्म-प्रशंसा ही कहेंगे। लोग कुछ भी कहें और कुछ भी समझें, पर श्रीराधा अपने निकटवर्ती विहंगम-वृन्दको 'राधा-राधा' रटनेके लिये ही कहती हैं और इस कथनकी प्रेरणा भी कितनी

सुन्दर है! इससे मेरे प्रियतमका सुख-विधान होगा। अपने प्रियतमके सुख-विधानके लिये श्रीराधा आत्म-श्लाघा जैसा कार्य करनेसे भी नहीं चूकती।

बाबूजीके मुखसे यह बात सुनकर बाबाको बड़ा ही विस्मय हो रहा था। यही दिव्य लीला तो आज प्रातःकाल बाबाने देखी थी। बाबाने बाबूजीसे कहा – अब मैंने भी 'राधा राधा' जपना आरम्भ कर दिया है।

यह सुनकर बाबूजीको बड़ी प्रसन्न्ता हुई। थोड़ी देर बाद बाबूजी बाबाके पाससे चले गये। तीन-चार दिन बाद बाबूजी पुनः बाबाके पास आये और कहने लगे – आप पहले षोडश-नामात्मक महामन्त्र जपा करते थे, इसके बाद 'राधाकृष्ण' 'राधाकृष्ण'का जपना आरम्भ किया। अब 'राधाकृष्ण'के स्थानपर 'राधा-राधा' जप करने लग गये हैं। आगे आप इसे मत छोड़ दीजियेगा।

बाबाने कहा – आप निश्चित मानिये कि अब 'राधा' नामको नहीं छोड़ूँगा, पर इसीके साथ आप यह भी निश्चित समझ लें कि यह 'राधा' नाम यदि किसी कारणसे अपने आप छूट गया तो उस छूटनेसे रसका ही निर्झरण होगा।

बाबाके इस उत्तरसे बाबूजीको प्रसन्नता ही हुई।

कमरेके एकान्तमें अपने सुरीले कण्ठसे बाबा जब 'राधा' नाम संकीर्तन किया करते थे, वह इतना मधुर एवं इतना ललित हुआ करता था कि लोग छिप-छिप करके उसे सुना करते थे। उस संकीर्तनको सुननेके लिये लोगोंके मनमें उत्कट चाह रहा करती थी। कभी-कभी लोगों द्वारा अनुरोध किये जानेपर भी बाबा स्वजन-समुदायमें अकेले ही 'राधा' नामका गायन किया करते थे। बाबाके अधरोंपर सदा ही राधा नाम रहा करता था। किसी कामके लिये सहमति अथवा असहमति प्रकट करनी हो अथवा किसीको बुलाना हो या सम्बोधित करना हो अथवा कभी विस्मय व्यक्त करना हो, तब-तब बाबा राधा ही कहा करते थे। बाबाके मन और मस्तिष्कपर राधा नाम पूर्णतः छा गया था। दिन हो या रात, जागरण हो या स्वप्न, बाबा राधा नाममय हो गये थे। उनका व्यक्तित्व ऐसा राधा नाममय हो गया था कि वे 'राधा बाबा' ही कहलाने लग गये।

भविष्यमें जब बाबा श्रीराधा-महाभावमें प्रतिष्ठित हुए, तब तो इस

संज्ञासे अभिहित होनेका पूर्ण औचित्य स्वतः सिद्ध हो गया। अब यह भी कहना पड़ता है कि श्रीराधा बाबा वे ही हैं, जो पहले स्वामी चक्रधरजी महाराजके नामसे जाने जाते थे। श्रीराधा बाबा कहलाये जानेकी यह पृष्ठ-कथा है बड़ी अद्भुत, बड़ी रोचक और बड़ी प्रेरक।

* * * * *

परकाय प्रवेश की साधना

परकाय-प्रवेश तथा स्थूल-सूक्ष्म-देहसे सम्बन्धित अनेक तथ्य बताते-बताते बाबाने अपनी साधनाका एक अनुभव सुनाया। बाबाके हाथ एक पुस्तक लगी, उसका नाम था 'Projection of Astral Body'। इस पुस्तकके लेखक शायद डा. मुल्डन हैं। बाबाने इस पुस्तकको देखा। इस पुस्तकमें स्थूल देहसे सूक्ष्म देहको पृथक् करनेके अनेक उपाय बताये गये हैं। उसमें एक उपाय यह था कि शवासनसे लेट जाय तथा स्थूल देहसे सूक्ष्म देहको पृथक् करनेका अभ्यास करे।

रतनगढ़में बाबा इस साधनाको करने लगे। तीन माह बाद उन्हें सफलता मिली। वे कमरेमें सोये थे। बाबाका स्थूल शरीर जमीनपर लेटा हुआ था, पर उनका सूक्ष्म-शरीर, स्थूल-शरीरसे बाहर निकलकर ऊपरकी ओर उठने लगा। बाबाकी दृष्टि स्थूल-शरीरपर भी थी और सूक्ष्म-शरीरपर भी। बाबाको इस सफलतापर प्रसन्नता भी हो रही थी। उनको ऐसा लग रहा था कि सूक्ष्म-शरीर छतमेंसे होते हुए छतको पार करके आकाशकी ओर ऊपर उठ जायेगा। तभी एक घटना हो गयी। श्रीदूलीचन्दजी दुजारीने एक बड़ा-सा बण्डल जोरसे पटका। वह बण्डल पुस्तकोंका था। उस बण्डलको पटकनेसे बड़े जोरसे धमाकेकी आवाज हुई। धमाकेकी जोरदार आवाजसे बाबापर बड़ा बुरा असर हुआ। उनको बड़ा झटका लगा। इस आकस्मिक आवाजसे उनका सूक्ष्म-शरीर तत्काल धड़ामसे नीचे गिर गया, अर्थात् छतके पाससे नीचे स्थूल-शरीरपर आ गिरा।*

* * * * *

*बाबाने बतलाया — इस झटकेका बड़ा भारी कुपरिणाम यह हुआ कि मैं हृद्-रोगसे ग्रस्त हो गया।

पिताजी की सद्गति

बाबाके पिताजीका निधन सं. २००० वि. चैत्र शुक्ल पञ्चमी तदनुसार ९ अप्रैल १९४३ को हुआ था। इन दिनों बाबा बाबूजीके साथ रतनगढ़में रह रहे थे। बाबाके पूर्वाश्रमके भाइयोंने पिताजीके निधनका समाचार तार द्वारा रतनगढ़ भेजा। यह तार बाबाको मिला तब, जब वे भिक्षा कर रहे थे। पत्तलमें परोसी गयी भिक्षा यदि बाबा छोड़ देते हैं तो भगवानको अर्पित किये गये नैवेद्यका अनादर होगा, अतः बाबाने और कुछ तो नहीं परोसवाया, पर पत्तलपर पहलेसे जो परोसा हुआ था, उसे बाबाने शीघ्रतासे ग्रहणकर लिया। भिक्षा समाप्त करके बाबाने यति धर्मके अनुसार तुरंत स्नान किया।

इसके कुछ समय बादकी बात है। प्रसंग रतनगढ़का है। जब एक दिन बाबा अपने निवास-कक्षमें प्रवेश कर रहे थे, तभी बाबाने देखा कि उनके पूर्वाश्रमके पूज्य पिताजी प्रवेश-द्वारपर खड़े हैं। वे अपने सूक्ष्म शरीरसे आ करके प्रवेश-द्वारपर खड़े हो गये थे। पिताजीको देखते ही बाबाने भूमिपर मस्तक टिकाकर प्रणाम किया और पूछा – आप यहाँ कैसे पधारे?

सूक्ष्म शरीरसे उपस्थित पिताजीने कहा – मैं इस समय बड़े कष्टमें हूँ। एक ही स्थानपर पड़ा रहता हूँ। कहीं भी आने-जानेकी स्वतंत्रता नहीं है।

पिताजीके उत्तरको सुनकर बाबाको बड़ा आश्चर्य हो रहा था कि मेरे पिताजीका जीवन तो अत्यधिक आस्तिक और सात्त्विक था, फिर यह दुर्गति क्यों हुई? बाबाने विस्मय व्यक्त करते हुए अपने पिताजीसे पूछा – आपका जीवन तो निर्मलता और सदाचारका मूर्तिमान स्वरूप था। आप तो अत्यधिक संत-सेवी, पर-हितैषी, धर्म-निष्ठ और ईश्वरानुरागी थे, फिर ऐसी कठिन गति क्यों हुई? आपके जीवनकी श्रेष्ठता तो सदैव सराहनीय रही है और फिर आपकी सुगति न हो, यह तो बड़े ही आश्चर्यकी बात है।

बाबाका आश्चर्य और ऐसा प्रश्न उचित ही था। यह सुनकर सत्यको उद्घाटित करते हुए पिताजी कहने लगे – जब तुमने संन्यास

लेनेका निश्चय कर लिया तो तुम्हारे इस निश्चयको सुनकर परिवारके हम सभीको बड़ा दुःख हुआ। तुमको समझानेका तथा निश्चयसे विरत करनेका प्रयास किया गया, पर कुछ भी अभिलषित परिणाम नहीं निकला। जब तुमने संन्यास ले लिया तो मेरा हृदय बड़ा विकल हो उठा। हृदयस्थ क्षोभकी सीमा नहीं थी। क्षोभके अतिशय आवेगमें मैं तुम्हारे लिये यह कह बैठा कि 'जा, तेरा योग सिद्ध न हो।' एक प्रकारसे यह शाप ही था। उसीका यह कुपरिणाम है कि मैं इतना कष्ट पा रहा हूँ।

बाबाने पिताजीसे कहा – ईश्वराराधन करनेसे यह कष्ट दूर हो सकता है। आपकी और भी तो सन्तानें गाँवपर हैं। आप उनसे कहें कि इस कष्टके निवारणके लिये वे कोई अनुष्ठान करें।

पिताजीने बताया – वे सब कर नहीं पायेंगे। न तो उनकी सूक्ष्म पकड़ है और न उनकी ऊँची पहुँच है। यह कार्य तुमको ही करना है।

इतना कहकर पिताजी अन्तर्धान हो गये। बाबा मन-ही-मन विचार करने लगे कि क्या करना चाहिये। कई हेतुओंसे बाबा स्वयं अनुष्ठान कर नहीं सकते थे और पिताजीके कष्ट-निवारणके लिये अनुष्ठानका होना आवश्यक था। बाबाने एक सज्जनको बुलवा करके अपने पूर्वाश्रमके भाईके नाम पत्र लिखवाया। उन सज्जनने पूज्य श्रीतारादत्तजी मिश्रके पास पत्र लिखा कि पूज्य स्वामी श्रीचक्रधरजी महाराजके द्वारा दिया गया एक संदेश मैं आपके पास लिख रहा हूँ।

पत्रमें पिताजीसे वार्तालाप होनेवाली सारी घटनाका उल्लेख करके यह बतलाया गया था कि 'श्रीहरिः शरणम्' का सवा लाख जप अति विधि पूर्वक ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करते हुए करना चाहिये। यह पत्र उन सज्जनने डाक द्वारा भेज दिया। उन दिनों पं.श्रीतारादत्तजी मिश्र श्रीवैद्यनाथधाममें रहते हुए अध्यापन कार्य कर रहे थे।

पत्र मिलते ही उन्होंने विधि-विधान एवं नियम पूर्वक अनुष्ठान आरम्भ कर दिया और थोड़े दिनोंमें वह विधिवत् पूर्ण हो गया। इस अनुष्ठानके पूर्ण होनेपर पिताजी पुनः बाबाको दिखलायी दिये और उन्होंने कहा – मेरा कष्ट दूर हो गया है। मैं तो तुमको आशीर्वाद देनेके लिये आया हूँ।

इतना कहकर पिताजीने अपने दोनों हाथ ऊपर उठाकर तीन बार

शुभाशीर्वाद दिया। बाबाका मन और मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। बाबाने तुरंत अनुमान लगा लिया कि उधर भाई द्वारा वह अनुष्ठान सविधि सम्पन्न हुआ है और इधर कष्ट-विमुक्त पिताजीने पधारकर अपना शुभ दर्शन प्रदान किया है। अब शुभाशीर्वाद देकर पिताजी अन्तर्धान हो गये।*

* * *

इसके बहुत दिनों बाद बाबाको एक बार बड़ा शुभ दृश्य दिखलायी दिया। श्रीबदरीनाथजीके मन्दिरके उस पार पावन तीर्थ-स्थलीमें एक बड़ी सुन्दर हरी-भरी समतल भूमि है। उस समतल पावन स्थलीपर अनेक संत बैठे हुए हैं। कोई संत मुण्डित है और किसी-किसी संतके लम्बी-लम्बी श्वेत दाढ़ी है। एक संत व्यास-आसनपर विराजे हुए प्रवचन दे रहे हैं। बाबाको दिखलायी दिया कि श्रोताओंके रूपमें उपस्थित उस संत समुदायके बीचमें पिताजी भी बैठे हुए हैं। ऐसा देखकर बाबाका मन आह्लादित हो उठा।

* * * * *

मधुर वाद-विवाद

यह प्रसंग रतनगढ़का है। बाबूजी अपने कमरेमें बैठे हुए थे। पासमें विराजित थे बाबा। दोनों ही किसी लोकोत्तर रस-चर्चामें निमग्न थे, कभी रस-सुधा-सिन्धुकी मधुर लहरोंपर लहराना और कभी उस रस-सुधा-सिन्धुके अतल तलमें डूब जाना।

तभी कमरेमें बाहरसे आवाज आयी — बाबूजी!

बाबूजीने अनमनी, किंतु शान्त वाणीमें कहा — कौन है? आ जाओ, भीतर आ जाओ।

कमरेके भीतर आकर सेवकने कहा — बाहर एक दम्पति आपसे मिलनेके लिये प्रतीक्षा कर रहे हैं।

बाबूजीने कुछ सोचते हुए कहा — अच्छा, उन्हें बुला लो।

---

*एक बार बाबाने बतलाया — इस शरीरके जनक श्रीपिताजीकी अन्तिम परिणति भागुरि ऋषिके रूपमें हुई। महर्षि शाण्डिल्य तो श्रीनन्दकुलके पुरोहित हैं और महाभाग श्रीभागुरि ऋषि वृषभानुकुलके पुरोहित हैं।

वह सेवक तो कमरेके बाहर गया और बाबाने बाबूजीका हाथ अपने हाथमें लेकर कहा – अब मैं चलता हूँ। आप आगन्तुकसे मिलिये।

बाबूजीने कहा – आप जानेके लिये आतुर क्यों हो रहे हैं? उनसे बात करके उन्हें जल्दी ही विदा कर दूँगा। आप यही बैठे रहें।

बाबाने कहा – आपके सामीप्यके बाद अन्यत्र जानेके लिये आतुरताका अस्तित्व ही कहाँ है?

इस बातके समाप्त होते-होते दम्पतिने कमरेमें प्रवेश किया। म्लान मुख, गहन चिन्ता, जर्जर शरीर, सजल नेत्र, प्रत्येक चिह्न जैसे उनकी असहायावस्थाकी साक्षी दे रहा हो। बाबा तो संलग्न हो गये अपने नाम-जपमें और बाबूजी संलग्न हो गये दम्पतिसे बात करनेमें। प्रणाम तथा कुशल समाचारके बाद बाबूजीसे उन्होंने कहा – हमलोगोंकी इज्जत अब आपके हाथमें है। दस दिन बाद कन्याका विवाह है। मेरे पास कुछ भी नहीं है और न कुछ प्रबन्ध ही हो पाया है। बड़ी आशा लेकर आया हूँ। बस, किसी तरह लड़कीके हाथ पीले करवा दीजिये।

समाजके मध्यम वर्गके सफेदपोश लोगोंकी स्थिति बड़ी विकट है। वे लोग न तो कहीं मुख खोल सकते हैं और न कहीं हाथ फैला सकते हैं, भीतर-ही-भीतर घुटते हैं। वे यदि कहीं तनिक भी कुछ कहते हैं तो सामाजिक प्रतिष्ठाको धक्का लगता है और अभावावस्थामें काम बने तो कैसे बने? ऐसे सफेदपोश लोग बाबूजीके सामने भी खुल जाते थे, बह पड़ते थे। कुछ ही क्षणोंमें अभिलषित सीमासे कहीं अधिक राशि उस दम्पतिको मिल गयी। कृतज्ञताके भाव नेत्रोंकी सजलताके रूपमें छलक उठे। उस दम्पतिने चाहा कि कुछ शब्दोंके द्वारा अपने आभारको व्यक्त करें, पर बाबूजीने अपनी व्यस्तताका बहाना बताकर इसके लिये भी अवसर नहीं दिया। दम्पतिके विदा होनेपर कमरेके एकान्तमें पुनः बाबूजी और बाबा, दोनों लोकोत्तर रस-चर्चामें बह चले।

इसके एक मास बादकी बात है। बाबूजी अपने कमरेमें बैठे हुए थे। बाहरसे सेवकने निवेदन किया – कोई आपसे मिलना चाहता है।

क्या ही संयोगकी बात है कि इस बार भी बाबा बाबूजीके पास बैठे हुए थे, वैसी ही मधुर चर्चा और उस रस-चर्चाकी माधुरीमें दोनों परम निमग्न। बाबूजीको कुछ क्षण लगे अपने मनको इस लोकके धरातलपर उतार

लानेमें और फिर सेवककी बातको समझनेमें। बाबूजीने कहा – भेज दो।

अपनी पगड़ीको सहेजते हुए एक अधेड़ावस्थाके व्यक्तिने कमरेमें प्रवेश किया। औपचारिक बातचीतके बाद उस व्यक्तिने कहा – मुझे किन्हीं विश्वस्त लोगोंसे ऐसा ज्ञात हुआ है कि उस लड़कीके घरवालोंका हाथ एकदम ही खाली था और विवाहके लिये सारा खर्चा आपने दिया है। यह सम्बन्ध मेरे लड़केसे ही हुआ है। मुझे तो पता हीं नहीं था कि उनकी आर्थिक स्थिति इस प्रकारसे निम्न है। मुझे यदि तनिक भी जानकारी होती तो मैं यह सम्बन्ध कदापि स्वीकार नहीं करता। मेरा भाग्य फूटा हुआ था, जो मेरे इतने पढ़े-लिखे सुयोग्य लड़केको इस प्रकारसे अभाव-ग्रस्त घरका सम्बन्ध मिला।

बाबूजीके मुख-मण्डलकी सहज मुस्कान सर्वथा विलुप्त हो गयी। उनकी भृकुटि थोड़ी बंकिम हो गयी और उनके नेत्रोंमें लालिमा उतर आयी। 'रदपट फरकत नयन रिसौंहें' से होकर बाबूजी कँपकँपी वाणीमें फूट-से पड़े – कौन कहता है कि मैंने दिया है? इस प्रकारका मिथ्या प्रचार मुझे कदापि सह्य नहीं है। कहनेवालेको मेरे सामने लाइये। मैं ईश्वरकी साक्षीमें शपथपूर्वक कहता हूँ कि मैंने एक भी पैसा उसे नहीं दिया है।

बाबा मन-ही-मन बड़ा आश्चर्य करने लगे – मैं यह क्या सुन रहा हूँ? उस दिन मेरे सामने ही श्रीपोद्दार महाराजने उस दम्पतिको कन्याके विवाहके लिये धनराशि सहायता स्वरूप प्रदान की थी और आज वे ही सर्वथा उस सत्यको अस्वीकार कर रहे हैं। क्या श्रीपोद्दार महाराज ऐसा भी कर सकते हैं?

बाबा ऐसा सोचकर भी कुछ बोले नहीं, पर वे प्रौढ़ व्यक्ति कुछ घबरा-से गये। अभी जो देखा-सुना, वह सब उनकी आशाके सर्वथा विपरीत था। जब श्रीपोद्दारजी शपथपूर्वक कह रहे हैं, तब निश्चित-निश्चित ही लोगोंने झूठा प्रचार किया है। उनके मनकी सारी उथल-पुथल समाप्त हो चुकी थी। उन्होंने मस्तक झुका करके क्षमा-याचना की और संदेह-रहित मनसे बाबूजीके पाससे विदाई ली।

उनके जाते ही फिर पारस्परिक चर्चाका क्रम चल पड़ा। बाबाने बाबूजीसे कहा – मैं तो कल्पना भी नहीं कर सकता कि आप असत्य भाषण भी कर सकते हैं।

दुग्ध-धवल खादीके स्वच्छ वस्त्र पहने हुए बाबूजीने गम्भीर स्वरमें कहा – असत्य? कैसा असत्य भाषण? मैं तो कभी झूठ बोलता ही नहीं।

बाबाने तुरन्त कहा – आप यह क्या कह रहे हैं? क्या मुझसे भी झूठ? मेरे सामने आपने उस दम्पतिको कन्याके विवाहके लिये विपुल धनराशि दी थी। आप 'कल्याण' जैसी धार्मिक पत्रिकाके सम्पादक होकर इतना सफेद झूठ बोलेंगे तो इस कलिकालमें धर्मकी रक्षा कैसे हो पायेगी?

बाबूजीने विनम्र स्वरमें कहा – सचमुच, मैं कभी झूठ नहीं बोलता। मैं धनराशि देनेवाला कौन होता हूँ? वह धन मेरा था नहीं। वे रुपये तो किसी औरके थे। वे रुपये क्या मेरे द्वारा कमाये गये थे? जिसने कमाया था, उसका वह धन था। जिसका धन था, उसका वह धन कन्याके विवाहके लिये उनको दिया गया। उस देने और लेनेके बीच मैं तो मात्र माध्यम हूँ। हाँ, यदि मैं यह कहता कि मैंने दिया तो वह सचमुच झूठ होता।

इतना कहकर बाबूजीने आकाशकी ओर हाथ उठाकर एक दोहा सुना दिया –

देनहार कोउ और है, देत रहत दिन रैन।
लोग भरम मोपै करें, याते नीचे नैन॥

दोहेको सुनते ही बाबाके नेत्र छलक उठे। भरे-भरे स्वरमें बाबा कहने लगे – आपके इस असत्य भाषणपर कोटि-कोटि सत्य बलिहारी है। यह नितान्त सत्य है कि धर्मकी ध्वजा आप ही सँभाल सकते हैं। धर्मका प्रचार करनेवाली 'कल्याण' जैसी पत्रिकाका सम्पादकत्व आपको ही शोभा देता है। ऊपरसे देखनेमें असत्य, परंतु भीतरसे यथार्थतः महान सत्यका ही कथन आपके द्वारा हुआ है। इसीके साथ आपने उस कन्या-पक्षकी सामाजिक प्रतिष्ठापर रंच मात्र भी आँच नहीं आने दी। ऐसा बस, आप ही कर सकते हैं।

इसके बाद चल पड़ा पुनः रस-चर्चाका वही प्रवाह, जो था, पूर्वकी

अपेक्षा अधिक मधुर और अधिक महान। फिर वही निमज्जन और वही आह्लाद।

* * * * *

गीतावाटिका में प्रथम श्रीराधाष्टमी

बाबाने पहली राधाष्टमी सन् १९४१ ई.में दिल्लीमें चुपचाप मनायी। बाबूजीके साथ बाबा दिल्लीमें श्रीमथुरादासजीके घरपर ठहरे हुए थे। श्रीमथुरादासजीने ही जानकारी दी कि आज श्रीराधारानीका जन्म-दिवस है। सन् १९४१ ई. की राधाष्टमीकी पूजन-प्रक्रिया बाबाने दिल्लीमें व्रजरजसे अति संक्षिप्त रूपमें सम्पन्न की थी।

इसके बाद सन् १९४२, १९४३ और १९४४ में बाबाने श्रीराधाजीका जन्म दिवस रतनगढ़में मनाया। सन् १९४२ की भाद्र शुक्ल अष्टमीके दिन बाबा रतनगढ़में थे। बाबाने श्रीमोतीजीसे पूछा – क्या आपकी गाय दूध देती है?

श्रीमोतीलालजी पारीक बाबाके परम श्रद्धालु निजी परिकर थे। श्रीमोतीजीने कहा – आजकल डेढ़-दो पाव दूध देती है।

बाबाने पुनः पूछा – आप अपनी गायके दूधका दो पेड़ा, केवल दो पेड़ा बनाकर अभी थोड़ी देरमें ला सकते हैं क्या? आज राधाष्टमी है, अतः मुझे अर्चनाके समय नैवेद्य अर्पित करनेके लिये चाहिये।

श्रीमोतीजीने तुरंत स्वीकार कर लिया। सेवाके इस अवसरको उन्होंने अपना सौभाग्य समझा। वे अपने घर चले गये। थोड़ी देरमें दो पेड़ा बनाकर वे ले आये और बाबाके सामने रख दिया। क्या ही विचित्र संयोग है? श्रीमोतीजीने उन दोनों पेड़ोंपर स्वयं-प्रेरणासे (अथवा किसी अचिन्त्य प्रेरणासे) 'राधा' नाम अंकित कर रखा था। बाबाने तो ऐसा करनेके लिये कहा नहीं था, अतः यह देखकर बाबाको बड़ा विस्मय हो रहा था। बाबा विमुग्ध थे श्रीमोतीजीके मनकी सात्त्विकता एवं ग्रहणशीलतापर, जहाँ अव्यक्त इच्छा सहज ही प्रतिबिम्बित हो उठी थी।

इसके बाद श्रीराधा-प्राकट्यके निमित्तसे होनेवाली अर्चनामें बाबाने बाबूजीसे अनुरोध किया नैवेद्य अर्पित करनेके लिये। बाबूजी द्वारा नैवेद्य

निवेदन किये जानेपर बाबाने देखा कि पहले व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णने नैवेद्य स्वीकार किया और इसके बाद वृषभानुनन्दिनी श्रीराधारानीने। बाबाके उल्लासकी सीमा नहीं थी।

गीतावाटिकामें श्रीराधाजन्मोत्सव सर्वप्रथम सन् १९४५ ई. में मनाया गया, पर वस्तुतः यह था पाँचवाँ जन्मोत्सव।

(गीतावाटिकामें जो प्रथम श्रीराधा-जन्मोत्सव मनाया गया, उसका विवरण बाबाने स्वयं श्रीमहाराजजी (श्रद्धेय श्रीबालकृष्णदासजी)को सुनाया था।)

बाबाके शब्दोंमें वह विवरण है — मेरे मनमें विचार उठा कि इस बार श्रीराधा-किशोरीकी अर्चना 'काम-गायत्री' मन्त्रसे की जाये और अर्चना करें श्रीपोद्दार महाराज। अर्चनाके लिये मुझे श्रीराधाकिशोरीके एक सुन्दर चित्रकी आवश्यकता थी। मैंने श्रीपोद्दार महाराजसे निवेदन किया कि आप मेरे लिये तीन चित्र (१) माँ कीर्तिदा, (२) श्रीराधाकिशोरी और (३) सखी श्रीललिता — ये तीन चित्र बनवा दें।

श्रीपोद्दार महाराजने पूछा — इन चित्रोंको बनवाकर आप क्या करेंगे?

तब मैंने उत्तर दिया — ये तीनों चित्र उपासनाके लिये चाहिये और वह अर्चना भी आपसे करवानी है।

श्रीपोद्दार महाराजने इन चित्रोंको बना देनेके लिये चित्रकार श्री बी.के. मित्रा बाबूको कह दिया। चित्र-रचनाके पूर्व श्रीमित्रा बाबूसे एक संक्षिप्त अनुष्ठान भी करवाया गया था, जिससे अन्तरकी सात्त्विकता तूलिकाके माध्यमसे अवतरित होकर इन चित्रोंको कुछ-वास्तविकता कुछ-सजीवता प्रदान कर सके। श्रीमित्रा बाबूने ये तीनों चित्र बनाये। वस्तुतः यह आश्चर्य ही है कि मेरे लीला-राज्यकी आकृतियोंकी पर्याप्त अनुहार इन चित्रोंमें उतर आयी। इन्हीं चित्रोंकी सर्वप्रथम अर्चना सन् १९४५ ई. में श्रीराधाष्टमीके दिन हुई। ये चित्र आज भी पूजाघरमें हैं और उनकी नित्य पूजा होती है।

गीतावाटिकाका यह प्रथम राधाष्टमी-उत्सव अत्यधिक संक्षिप्त रूपमें

मनाया गया। मैंने श्रीपोद्दार महाराजसे कहा – आपको ही अर्चना करनी है और अर्चना 'काम-गायत्री' मन्त्रसे करनी है।

श्रीपोद्दार महाराजने कहा – यह सब विधि-विधान और काम-गायत्री मन्त्र आदि तो मैं कुछ जानता नहीं।

इन शब्दोंके माध्यमसे उनका दैन्य ही मुखरित हो रहा था। मैंने उनसे कहा – विधि-विधान और काम-गायत्री मन्त्र आदि तो मैं बता दूँगा, पर आप अपनी स्वीकृति प्रदान करें।

श्रीपोद्दार महाराजजीकी सदाशयता थी कि कभी उन्होंने मेरे अनुरोध या आग्रहको टाला नहीं। विरही संत श्रीरघुजी जिस कमरेमें रहा करते थे, उसीके सामनेवाले कमरेमें पूजाकी सारी तैयारी पहलेसे ही थी। पञ्चोपचार पद्धतिसे सूक्ष्म पूजा करवानी थी। कमरेमें मैंने और श्रीपोद्दार महाराजने प्रवेश किया। अन्दरसे मैंने कमरा बन्द कर लिया। अर्गला भी लगा दी, जिससे पूजाके बीचमें कोई आ न सके। कमरेमें अन्दर केवल दो ही व्यक्ति थे, मैं और वे। श्रीपोद्दार महाराज अर्चकके आसनपर विराजित हुए। पूजाके सारे उपकरण यथा-स्थान रखे हुए थे। सामने वे तीनों चित्र उच्च सिंहासनपर पधराये हुए थे। पूजाके आरम्भ होनेके तुरन्त पहले जो घटित हुआ, उसे तो मैं देखता-का-देखता ही रह गया। मैंने देखा कि श्रीपोद्दार महाराजके स्थानपर श्रीराधाकिशोरी प्रकट हो गयी हैं। उनका दर्शन पाकर अब भाव-विभोर-दशामें मैं क्या बोलूँ, क्या कहूँ?

श्रीपोद्दार महाराजने पूछा – क्या करना है?

मैं इस प्रकारकी स्थितिमें था ही नहीं कि कुछ बोल सकूँ। मैं कुछ भी निर्देश देनेकी स्थितिमें नहीं था, पर श्रीपोद्दार महाराजकी जल्दी बोलने-जैसी कुछ आदत थी, उसी स्वरमें उसी ढंगसे वे बोले – आप बताते क्यों नहीं कि क्या करना है? जल्दी बताइये।

श्रीपोद्दार महाराजके कहनेपर मैं प्रयास-पूर्वक इतना ही बोल पाया – जैसी आपकी इच्छा हो, वैसे कर लें।

मेरी ऐसी मनस्थिति थी ही नहीं कि कुछ संकेत कर सकूँ। किस उपचारसे पहले और किस उपचारसे बादमें अर्चन हो, यह बता सकना मेरे

लिये सम्भव ही नहीं था। श्रीपोद्दार महाराजके स्थानपर अभिव्यक्त श्रीराधाकिशोरीको देखकर मेरे लिये सारा कुछ विस्मृत हो चुका था।

श्रीपोद्दार महाराजने फिर पूछा – क्या जल अर्पित कर दूँ?

वे जैसा-जैसा कहते गये, मैं वैसे-ही-वैसे यन्त्रवत् अनुमोदन करता चला गया। उन्होंने ही श्रीराधाकिशोरीकी काम-गायत्री मन्त्रसे अर्चना की और अर्चनाकी विधि भी उन्होंने ही सम्पन्न की। मैं तो यही देख रहा था कि श्रीराधाकिशोरी स्वयं ही स्वयंकी अर्चना कर रही हैं। अर्चना सम्पन्न होते ही श्रीराधाकिशोरी अदृश्य हो गयीं और श्रीपोद्दार महाराजके स्थानपर श्रीपोद्दार महाराज ही दिखलायी देने लग गये।

(बाबाके श्रीमुखसे इस विवरणको सुनकर श्रीमहाराजजी बहुत विभोर थे।)

* * *

श्रीकामगायत्री मन्त्रसे सम्पन्न हुई अर्चनाका जो दिव्य चरणोदक था, उसको बाबाने अपने निकटजनोंके मध्य वितरित करवाया। उस चरणोदककी महिमाको उद्‌घाटित करनेवाला एक विचित्र प्रसंग घटित हो गया। वह दिव्य चरणोदक श्रीमोहनलालजी झुँनझँनूवालाको भी दिया गया। श्रीमोहनलालजी पूज्य श्रीसेठजी (श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) के समधी लगते थे। श्रीमोहनलालजी वह दिव्य चरणोदक शीशीमें अपने पास घरमें रखे हुए थे। वृन्दावनमें उनका कोई आत्मीय सम्बन्धी मरणासन्न स्थितिमें मृत्यु-शय्यापर पड़ा हुआ था। कई दिनोंसे उसे होश नहीं था। सेवा-शुश्रूषामें संलग्न व्यक्तियोंको ऐसा लगा कि ये अब कुछ ही क्षणके मेहमान हैं। श्रीमोहनलालजीको उस चरणोदककी स्मृति हो आयी। वे शीशी लाये तथा उस चरणोदककी कुछ बूँदें उस मरणासन्न व्यक्तिके मुखमें डाल दी। बूँदके पड़ते ही एक विचित्र चमत्कार हुआ। कहाँ तो वह व्यक्ति कई दिनसे बेहोश पड़ा था और कहाँ अब वही व्यक्ति अपना मुख खोलकर बार-बार कह रहा था – और लावो।

उस मरणासन्न व्यक्तिके द्वारा बार-बार 'और लावो', 'और लावो' कहे जानेपर श्रीमोहनलालजीने शीशीका सारा चरणोदक उनके मुखमें उड़ेल दिया। अब उस मरणासन्न व्यक्तिके मुखकी मुद्रा कुछ इस प्रकारकी

हो रही थी मानो वह किसी दिव्योन्मादकी स्थितिमें हो और उस समय उसके मुखसे जो कुछ उद्‌गार व्यक्त हुए, उससे उपस्थित अन्य लोगोंको ऐसा अनुमान होने लगा कि उसे कोई असाधारण अलौकिक अनुभूति हुई है। चरणोदकको पीनेके थोड़ी देर बाद ही उस मरणासन्न व्यक्तिका प्राणान्त हो गया।

श्रीमोहनलालजीने वह सारा विवरण लिखकर बाबाके पास भेजा। बाबाने बतलाया – जिस चकित और विभोर मनसे श्रीमोहनलालजीने वह सारा विवरण अपने पत्रमें लिखा था, वह सारा प्रसंग मेरे लिये आश्चर्यकी वस्तु नहीं था, अपितु जो हुआ, वह होना ही चाहिये था। वह चरणोदक कोई साधारण वस्तु तो था नहीं!

जिस भावभरे मनसे श्रीमोहनलालजीने बाबाको पत्र लिखा था, उसी भावभरे मनसे उन्होंने श्रीसेठजीको भी पत्र लिखा। श्रीसेठजीको इस प्रकारके चमत्कारमें न रुचि थी और न उन्हें पसन्द था, अपितु यही कहना उचित है कि उनकी स्पष्ट अरुचि थी। श्रीसेठजीको सदा यह भय रहता था कि फिर साधक साधनाके वास्तविक रूपसे फिसलकर चमत्कारके चक्करमें पड़ जाता है। श्रीसेठजीने श्रीमोहनलालजीका पत्र तथा उस पत्रके साथमें अपना एक अभिमत पत्र, ये दोनों पत्र बाबूजीके पास भेज करके टिप्पणी की – बाबा यह सब क्या चमत्कार करते हैं? इस प्रकारके चमत्कारका प्रदर्शन करनेमें बड़ी हानि होगी। हमलोग जिस प्रकारके संतोचित और सात्त्विक जीवनका प्रचार करना चाहते हैं तथा जन-जनमें जिस प्रकारकी भक्ति-पूर्ण आध्यात्मिक जीवनचर्याको प्रत्यक्ष देखना चाहते हैं, वह सब कैसे हो पायेगा?

यह पत्र पाकर बाबूजीने बाबाको बुलाया तथा कहा – बाबा, यह पत्र पढ़ें।

बाबाने वह पत्र पढ़ा। उस पत्रको वे क्या पढ़ते? उनके पास तो श्रीमोहनलालजीका पत्र पहले ही आ चुका था तथा उनको सारे प्रसंगकी जानकारी थी ही। हाँ, श्रीसेठजीके अभिमतको उन्होंने अवश्य पढ़ा और वह बात विचारणीय भी थी। बाबा भला क्या कहते बाबूजीसे? उनके मनमें इस

प्रकारके चमत्कार की कोई योजना थी नहीं। उस दिव्य चरणोदकके वस्तु-गुणसे कोई चमत्कार घटित हो जाय तो उसको रोक सकना किसीके बसकी बात है क्या? पत्र पढ़ चुकनेके बाद बाबा बाबूजीके मुखकी ओर देखने लगे। बाबूजीने कहा – श्रीमोहनलालजीको आप चरणोदक नहीं देते तो यह उलझन सामने नहीं आती। बातको पचाकर रख लेना सामान्य लोगोंके लिये कठिन होता है। अब अच्छी बात यही होगी कि आगेसे इस प्रकारकी पूजा ही न करी-करवायी जाय। अब उत्सव भी गीतावाटिकामें नहीं मनाया जाय।

बाबूजीके पाससे बाबा चले आये। इसका परिणाम यह हुआ कि सन् १९४६ में श्रीराधाजन्मोत्सव गीतावाटिकामें नहीं मनाया गया। उन दिनों 'कल्याण' पत्रिकाके सम्पादकीय विभागमें श्रीचन्द्रशेखरजी पाण्डेय कार्य किया करते थे। उनका निवास स्थान गीतावाटिकाके उत्तर लगभग दो मीलकी दूरीपर स्थित पालड़ी-बाजार नामक ग्राममें था। सन् १९४६ में बाबाने श्रीराधा-जन्मोत्सव उनके निवास स्थानपर मनाया, जिससे बाबूजीके कथनका निर्वाह हो सके। वहाँ जन्मोत्सव केवल सन् १९४६ में ही मनाया गया। फिर तो भविष्यमें प्रतिवर्ष गीतावाटिकामें ही मनाया जाने लगा।

* * * * *

'श्रीकृष्ण-लीला चिन्तन'

'कल्याण' मासिक पत्रिकाके सम्पादक होनेके नाते बाबूजीका यह प्रयास रहा करता था कि पत्रिकामें सुन्दर और श्रेष्ठ सामग्री प्रकाशित हो। बहुत पुराना प्रसंग है कि एक बार 'कल्याण' पत्रिकामें भक्त सूरदासजीके पदोंको बाबूजीने अर्थसहित प्रकाशित किया। कहा नहीं जा सकता कि यह बात कैसे घटित हो गयी, पर हो अवश्य गयी कि उन पदोंके साथ उन महोदयका नाम नहीं छप सका, जिन्होंने उन पदोंका हिन्दी भाषामें अर्थ लिखा था। कल्याणके उस अंककी एक प्रति उन अनुवादक महोदयके पास कल्याण-कार्यालयने नियमानुसार भेज दी। अनुवादके साथ अपने नामका अ-प्रकाशन उन्हें अच्छा नहीं लगा। वे अनुवादक महोदय गोरखपुरके ही थे। उन्होंने बाबूजीको उपालम्भ देनेके लिये छोटा-सा एक पत्र लिखा – कल्याणमें

श्रीसूरदासजीके पद अर्थसहित छापे गये, पर उसके साथ अनुवादका नाम आपने नहीं छापा। यह आपका अपनापन ही है, पर लेखक या अनुवादककी सदा चाह रहा करती है कि उसकी कृतिके साथ उसके नामको भी छापा जाये।

उन साहित्यकार महोदयने यह पत्र स्वयं अपने हाथसे बाबूजीको दिया। बाबूजी अपने कमरेमें बैठे हुए 'कल्याण'के फर्मोंके प्रूफ देख रहे थे। बाबूजीने उस पत्रको पढ़ा और पढ़कर उनको उत्तर देनेके बदले 'कल्याण'के प्रूफके पन्नोंको उलट-पलटकर कुछ खोजने लगे। 'कल्याण'का जो नया अंक छपनेवाला था, उसीके प्रूफ थे। इस अंकमें भी श्रीसूरदासजीके पद अर्थसहित प्रकाशित होनेवाले थे। इस अनुवादको उन साहित्यकार महोदयके सामने रखकर बाबूजी बोले – देखिये, यह पत्र तो आपने आज लिखा है और आगामी अंकमें छपनेवाले अनुवादके साथ आपका नाम पहले ही दिया जा चुका है। इससे पहलेवाले अंकमें अनुवादके साथ आपका नाम छपनेसे रह गया, इस भूलके लिये स्वयं मुझे खेद है।

नवीन अंकमें प्रकाश्य अनुवादके साथ अपना नाम देखकर वे साहित्यकार महोदय तो पानी-पानी हो गये। अब कुछ कहनेके लिये रह ही नहीं गया था। कुछ दिनके बाद यह बात बाबाके पास किसी सूत्रसे पहुँच गयी। बाबाका मन ग्लानिसे भर गया। वे मन-ही-मन कहने लगे – ये जगतके लोग भी कैसे हैं, जो अपने नामके प्रचारके पीछे मरे जाते हैं। मेरा गुण-गान हो, मेरे नामका नाम हो, यह आत्माराधन ऐसे-ऐसे नाच नचाता है कि लोग शील-संकोच सभी-कुछ भूल जाते हैं। उन साहित्यकार महोदयको श्रीपोद्दार महाराजके पास पत्र लिखते हुए लज्जा भी नहीं आयी।

* * *

इसके बाद बाबाने श्रीसूरदासजीके ३३ पदोंका हिन्दी भाषामें अर्थ लिख दिया और भेज दिया बाबूजीके पास। मर्मका उद्घाटन, भावोंका माधुर्य, अभिव्यक्तिका सौन्दर्य, भाषाका प्रवाह, शब्दोंका लालित्य आदि अनेक दृष्टिसे यह अनुवाद उन साहित्यकार महोदयके अनुवादकी अपेक्षा अत्यधिक उत्कृष्ट था। बाबाद्वारा किये गये अनुवादको प्राप्त करके बाबूजी बड़े प्रसन्न हुए। बाबूजीने उन साहित्यकार महोदयको विनम्र शब्दोंमें अनुवाद-कार्यसे विरत कर दिया। फिर बाबूजी बाबाके पास कुटियामें गये तथा कहने लगे – इनके आगे

जो और पद हैं, आप उनका भी हिन्दीमें अर्थ लिख दीजिये। आपके ये अनुवाद साधना-जगत और साहित्य-जगत, दोनोंके लिये परम उपयोगी सिद्ध होंगे।

बाबाने कहा — आपको कहनेकी आवश्यकता ही नहीं। आपकी इच्छा ही मेरे लिये आदेश-तुल्य है, पर मेरी एक प्रार्थना है। उसे आप स्वीकार कर लें तो मैं पदोंका अर्थ अवश्य लिख दूँगा।

बाबूजीने कहा — आप क्या कहना चाहते हैं?

बाबाने बताया — मैं अनुवाद तो कर दूँगा, पर यह सारा अनुवाद छपे हनुमानप्रसाद पोद्दारके नामसे।

बाबूजीने तुरन्त प्रतिवाद किया — यह भला कैसे सम्भव है? यह तो मैं समझ सकता हूँ कि आत्म-संगोपनकी प्रवृत्तिके कारण आप अपना नाम नहीं देना चाहेंगे, पर यह तो सर्वथा अनुचित है कि अनुवाद करें आप और अनुवादकके रूपमें छपे मेरा नाम हनुमानप्रसाद पोद्दार। हाँ, यह तो हो सकता है कि वह अनुवाद बिना-नाम दिये ही छप जाये।

बाबाने बड़े मीठे शब्दोंमें कहा — क्या मैं और आप दो हैं? मैंने जो लिखा, वह आपने ही तो लिखा। आप भेद-दृष्टिसे क्यों देख रहे हैं?

बाबूजीने समझानेका प्रयास किया — आप और मैं, हम दोनों एक ही हैं। यह सर्वथा सत्य होते हुए भी क्या यह यथार्थ नहीं है कि इस प्रकारके कार्यसे मेरे द्वारा दूसरेके यशका अपहरण होगा? इस यशापहरणके लिये मेरा मन कदापि तैयार नहीं है।

बाबा और बाबूजी, दोनों ही परम साधु, परम सुविज्ञ, परम चतुर, परम स्नेही, परम अमानी और इसके साथ ही परम मान-दाता। दोनोंमें यह प्रेम-कलह बहुत देरतक चलता रहा। दोनों एक दूसरेकी बात माननेको तैयार नहीं थे। बाबूजीको रंच-मात्र प्रिय नहीं था, अपितु पूर्णतः अप्रिय था कि बाबाद्वारा किये गये अनुवादपर नाम छपे हनुमानप्रसाद पोद्दार और बाबाको इतना भी अभीष्ट नहीं था कि बिना-नामके ही यह अनुवाद छपे। बाबाको यह भय था कि आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों, कभी-न-कभी बाबूजी अवश्य यह रहस्य खोल देंगे कि बिना-नामसे छपनेवाले ये अनुवाद बाबाद्वारा लिखे गये हैं। इस प्रेम-कलहमें कोई भी झुकनेको प्रस्तुत नहीं था। अतः आगे अनुवाद-कार्य नहीं हो पाया।

बाबाने फिर बताया — मुझे पता नहीं कि उन ३३ पदोंका अनुवाद

श्रीपोद्दार महाराजने छापा अथवा नहीं। यदि छापा होगा तो बिना नामके ही छापा होगा, किंतु भविष्यमें मेरेद्वारा पदोंका हिन्दी भाषामें अर्थ नहीं किया गया। अनुवाद करनेकी बात वहीं समाप्त हो गयी।

बाबाके मनमें जो भय था, वह सही ही था। आगे चलकर बाबूजीके अनुरोधपर बाबाने 'कल्याण'के लिये लेख देने आरम्भ कर किये। ये लेख 'कल्याण'में छपते थे, परंतु उन लेखोंके साथ लेखकका नाम नहीं रहता था। इसके पहलेसे ही पाठकोंके बीच एक बात सर्वज्ञात थी कि जहाँ लेखकका नाम नहीं हो, वहाँ यह बात समझ लेनी चाहिये कि इस लेखके लेखक श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार हैं। वही बात उन प्रकाशित लेखोंके बारेमें होने लगी, जिनके लेखक वस्तुतः बाबा थे। लोगोंने बाबूजीसे कहना आरम्भ कर दिया कि आपके ये लेख बड़े ही सुन्दर और बड़े ही प्रेरणाप्रद हैं। कुछ दिनतक तो बाबूजीने रहस्य खोला नहीं, किंतु प्रशंसा जब अधिक होने लगी तो बाबूजीसे कहे बिना रहा नहीं गया और एक दिन कह ही दिया – सच्ची बात यह है कि इन लेखोंके लेखक तो बाबा हैं।

रहस्योद्घाटन होने भरकी देर थी, फिर तो लोगोंने बाबाकी प्रशंसा करनी आरम्भ कर दी। बस, उसी क्षणसे बाबाने लिखना बन्द कर लिया। फिर लेख लिखा ही नहीं। जो लेख 'कल्याण'में क्रमशः छपे थे, उनको बाबूजीने गीताप्रेससे सन् १९५२ ई.में पुस्तकके रूपमें प्रकाशित कर दिया। इस पुस्तकका नाम है 'सत्संग-सुधा'।

* * *

एक और घटना उल्लेखनीय है। बाबूजीने बाबासे पुनः अनुरोध किया – आप 'कल्याण'के लिये श्रीकृष्णलीला लिख दें। आप आशंकित न हों, आपका नाम प्रकाशित नहीं होगा।

बाबाने श्रीकृष्ण-लीला लिखनी आरम्भ कर दी। बाबा स्लेटपर पेंसिलसे लिखते थे और उनकी सेवामें रहनेवाले भगतजी कागजपर उतारकर 'कल्याण'के लिये बाबूजीको दिया करते थे। श्रीकृष्ण-लीलाके लेखनका कार्य बाबा प्रायः सूर्यास्तके बाद किया करते थे। कभी-कभी तो ऐसा भी हो जाता था कि शामके समय सात-आठ बजेके बैठे हुए रातके दो-तीन बजेतक लिखते रह जाते थे। श्रीकृष्ण-लीलाके लेखनकी बात जब एक बार बाबाने चलायी तो

कहा — कई बार ऐसा होता था कि मैं घंटों पाषाणवत् बैठा रहता और यह भगत मेरे पास निश्चेष्ट बैठा रहता। इस बातकी साक्षी तो यह भगत ही है। मैं स्लेटपर लिखूँ, तब न भगत कागजपर नकल करते हुए उतारे! मेरे द्वारा जो कुछ लिखा गया, वह स्व-दृष्ट लीला ही लिखी गयी। कई बार दृष्ट-लीलाके लिये उचित शब्द नहीं मिलते थे और कई बार लीलाका प्रवाह ऐसा गम्भीर और ऐसा भावमय रहता था कि लिख सकनेकी स्थिति नहीं रहती थी। इसके फलस्वरूप न जाने कितनी देरतक निष्पन्द बैठे रहना पड़ता था। जिस लीलाको मैंने देखा, उसको लिपिबद्ध करनेके लिये उचित मनस्थिति बने और उसको भाषाबद्ध करनेके लिये उपयुक्त शब्द मिलें, तभी तो वह लीला स्लेटपर लिखी जा सकेगी। जब लिखनेकी स्थिति बनती और लिखनेके लिये मन प्रस्तुत होता, उस समय भी जो-जो देखा गया, वह सब लिख नहीं सकता था। श्रीमद्भागवत पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण, गर्गसंहिता जैसे कतिपय प्रामाणिक ग्रन्थ तथा गोपालचम्पू, आनन्दवृन्दावनचम्पू जैसे कुछ श्रेष्ठ लीला-ग्रन्थकी मर्यादाको ध्यानमें रखते हुए लिखना था, अन्यथा वास्तविकता तो यह है कि ऐसी-ऐसी लीलाएँ देखी हैं, जिनका वर्णन इन सारे ग्रन्थोंमें है ही नहीं।

बाबाके श्रीमुखसे यह विवरण सुनकर मन भरता ही नहीं था। यही चाव बना रहता था कि सदैव ऐसे प्रसंग सुननेको मिलते रहें।

श्रीहलधर-षष्ठीके दिनकी बात है कि उस दिन हमलोगोंकी एक बाल-सुलभ जिज्ञासाका समाधान करनेके लिये बाबा अपने 'श्रीकृष्ण-लीला-चिन्तन' ग्रन्थमेंसे वह अंश निकालकर सुनाने लगे, जहाँ श्रीकृष्णका श्रीबलरामजीके साथ तथा अन्य गोपबालकोंके साथ मिलन-महोत्सवका वर्णन है। जन्म होनेके बादसे श्रीकृष्णको तथा श्रीबलरामजीको अलग-अलग रखा जाता था। अभीतक इन दोनोंने एक-दूसरेको देखा भी नहीं है। कंसके भयसे ही वसुदेव-पत्नी-रोहिणीजीके तनय श्रीबलरामजीको छिपाकर रखना आवश्यक था। कुछ समय बीत जानेके बाद यही उचित समझा गया कि ये गौर एवं श्याम शिशु साथ-साथ रहें-खेलें। यह निश्चय भी क्रियान्वित हुआ मिलन-महोत्सवके उपरान्त। इस मिलन-महोत्सवके दिन ही श्रीकृष्णका, श्रीबलरामका तथा अन्य गोपबालकोंका परस्परमें सम्मिलन होता है।

श्रीकृष्ण-लीला-चिन्तन ग्रन्थके इस अंशमें मैया यशोदा तथा

रोहिणीजीकी वत्सलताके वर्णनको पढ़ते-पढ़ते बाबाका स्वर गद्गद हो रहा था तथा आँखें तरल हो उठी थीं। मैया यशोदाको बलराम इतने प्रिय लगते हैं कि वे अपने पुत्र कन्हैयाको भूल जाती हैं और ठीक इसी प्रकार रोहिणीजीकी श्रीकृष्णमें इतनी आसक्ति है कि वे अपने पुत्र बलदाऊको भूल जाती हैं। इस अंशको पढ़कर बाबा कहने लगे — ऐसा केवल व्रज-भावके राज्यमें ही मिलता है कि दूसरेके पुत्रका लाड-चाव करनेमें माँ अपने पुत्रको भूल जाये। यह बात मैया यशोदामें है, मैया रोहिणीमें है और यही बात व्रजकी गोपसुन्दरियोंमें है। इन गोपसुन्दरियोंको भी अपने-अपने पुत्रकी सुधि नहीं। बस, उनके मनमें और उनकी आँखोंमें श्रीकृष्ण बसे हैं। इस भाव-राज्यकी यह गरिमा अन्यत्र दुर्लभ है। ब्रह्म-सम्मोहनके प्रसंगमें जब श्रीकृष्ण ही इन गोपसुन्दरियोंके पुत्र बन जाते हैं, तब उनकी स्व-तनयासक्ति अनोखा रूप धारण कर लेती है।

इतनी टिप्पणी करनेके बाद बाबा आगेका अंश पढ़कर सुनाने लगे। आगे ऐसा वर्णन आया है कि इस मिलन-महोत्सवपर व्रजसुन्दरियाँ मंगल-गीत गाने लगीं। इस पंक्तिको सुनाकर बाबा कहने लगे — अब यह कैसे विश्वास कराऊँ कि इस लीलाको लिखते समय मेरे समक्ष यह लीला ज्यों-की-त्यों हो रही थी। मेरे इन कानोंने मंगल-गीतोंकी ध्वनिको स्पष्ट रूपसे सुना है। गीतका गायन इतना ललित था, उनके कण्ठका स्वर इतना मधुर था कि वह सब वर्णनमें आ नहीं सकता। वह लालित्य, वह मधुरिमा मेरे अपने अनुभवकी वस्तु है।

इसी श्रीकृष्ण-लीला-चिन्तन ग्रन्थके बारेमें एक प्रसंग बाबा कई बार सुनाया करते थे। श्रीकृष्णके जन्म होनेपर उल्लासोन्मत्त गोपोंने इतना दूध-दही-घृत-नवनीत ढरकाया कि नदी बह चली। दधि-कीचसे भरा हुआ व्रज, सागर जैसा लग रहा है और उसके बीच सर्वत्र घूमते हुए नन्दरायजी मन्दर पर्वत जैसे लग रहे हैं। उनकी कमरमें लपेटा हुआ वस्त्र घृत-दधिसे चिकना होकर तथा फूलकर ठीक वासुकि नाग जैसा लग रहा है। उस कटिबन्ध वस्त्रको पकड़-पकड़ करके उनके प्रियजन उन्हें इधर-उधर खींच ले जा रहे हैं और वे अतिशय प्रसन्न हो रहे हैं। इस दृश्यका वर्णन गोपालचम्पू ग्रन्थमें भी है और बाबाने वह श्लोक उद्धृत कर दिया। उस श्लोककी एक पंक्ति है: —

'मध्य-धटी-फणिराजे कृष्टं, हृद्यसुहृद्भिरतीव च हृष्टम्'

अपनी दृष्ट लीलाके आधारपर बाबाने 'धटी' शब्दका अर्थ कटिबन्धवस्त्र कर तो दिया और यह अर्थ सही भी था, परंतु इस सही अर्थके

अल्पना-स्थली का पूजन
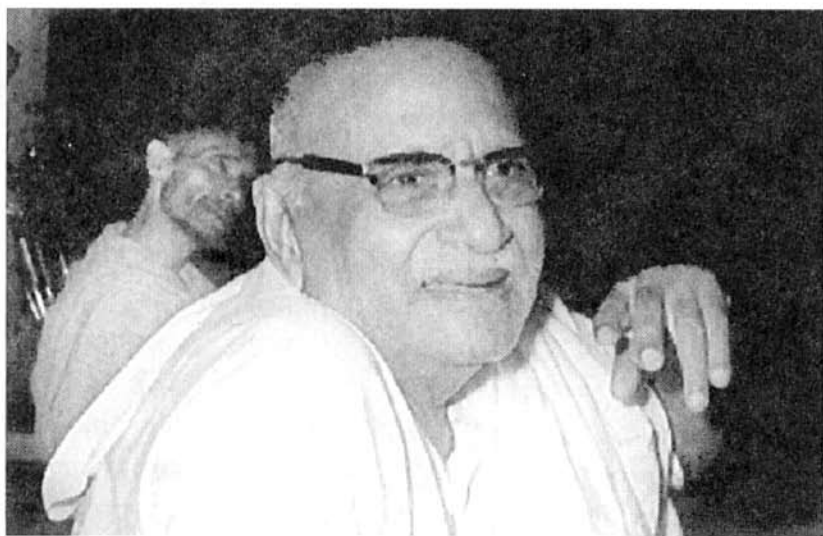
उत्सव के मध्य उल्लास

श्रीराधाष्टमी के मंच पर : बाबा एवं मैया

पक्षमें कोई प्रमाण बाबाकी स्मृतिमें उभरकर सामने नहीं आ रहा था। प्रमाणके अभावमें बाबाके मनको संतोष नहीं हो रहा था। अपनी स्मृतिको पर्याप्त टटोल लेनेपर भी जब बात नहीं बनी तो बाबाने अपनी 'दृष्टि' अपने जीवनाराध्य श्रीनन्दनन्दनकी ओर 'फेरी' और उन्होंने 'बता' भी दिया कि अमुक कोषमें ऐसा ही अर्थ दिया हुआ है। बाबाने वह संस्कृत शब्दकोष मँगवाकर देखा और उस शब्दकोषमें वह अर्थ मिल गया।

इस जन्म-महोत्सवके सारे वर्णनको स्लेटपरसे कागजपर उतारकर भगतजीने बाबूजीको दे दिया और यह वर्णन कम्पोज होनेके लिये गीताप्रेस भेज दिया गया। कम्पोज हो जानेके बाद उस वर्णनका प्रूफ देखनेके लिये सम्पादकीय विभागके एक विद्वानको दिया गया। वे 'धटी' शब्दका अर्थ नहीं लगा पाये और उन विद्वान महोदयने अपनी समझके अनुसार उस सारे वर्णनमें कई जगह संशोधन-परिवर्तन कर दिया। यह संशोधन-परिवर्तन गोस्वामीजी (पूज्य श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी) को अभीष्ट नहीं था, पर इस संशोधन-परिवर्तनको अस्वीकृति प्रदान करनेसे उन विद्वान महोदयके मनमें अपमान-बोध हो जानेकी आशंका थी। गोस्वामीजी वह सारा संशोधित-परिवर्तित वर्णन लेकर बाबाके पास गये। बाबाको वस्तुस्थिति समझनेमें देर नहीं लगी। बाबाने कहा — गोस्वामीपाद! 'धटी' शब्दका अर्थ नहीं जाननेके कारण ही यह सारा संशोधन-परिवर्तन हुआ है। आप उस शब्दकोषमें 'धटी' शब्दका अर्थ देखकर सब ठीक कर दीजिये।

गोस्वामीजीने शब्दकोष देख लेनेके बाद वह सारा संशोधन-परिवर्तन हटा दिया और सम्पूर्ण वर्णनकी शब्दावली ज्यों-की-त्यों पूर्ववत् कर दी।

बाबाद्वारा लिखित 'श्रीकृष्ण-लीला-चिन्तन' धारावाहिक रूपसे 'कल्याण'में प्रकाशित होने लगा। इस वर्णनके आरम्भ अथवा अन्तमें लेखकका नाम तो रहता नहीं था, अतः 'कल्याण'के पाठक यही समझने लगे कि इसके लेखक हनुमानप्रसादजी पोद्दार हैं। लोग बाबूजीकी सराहना, कभी समक्ष मौखिक रूपमें और कभी परोक्ष लिखित रूपमें पत्रके द्वारा करने लगे। स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश) की बात है। वटवृक्षके सत्संगके उठते ही 'कल्याण'के एक पाठकने बाबूजीकी प्रशंसा करते हुए कहा — आपका अत्यन्त सुन्दर और मर्मस्पर्शी लेख देखकर अत्यधिक आनन्द होता है। 'श्रीकृष्ण-लीला-चिन्तन' जैसा भक्तिपूर्ण और विद्वत्तापूर्ण परम सुन्दर लेख 'कल्याण'में धारावाहिक रूपसे छापकर आप

'कल्याण'के पाठकोंका बड़ा हित कर रहे हैं।

अपनी झूठी प्रशंसा सुनते-सुनते परमपूतात्मा बाबूजीके निर्मल हृदयकी कोमल भावनाएँ अत्यधिक आहत होती चली जा रही थीं। उनका धैर्य अब अपनी अन्तिम सीमाका स्पर्श कर रहा था। बाबाको आश्वासन दे रखा था, अतः सत्योद्घाटन कर नहीं पाते थे, पर अब यह सराहना सर्वथा असह्य हो गयी और बाबूजीके मुखसे निकल ही गया – यह सब झूठी सराहना हो रही है। इस धारावाहिक लेखका लेखक मैं नहीं हूँ। यह सरस और विद्वत्तापूर्ण लेख श्रीस्वामी चक्रधरजी महाराजने अपना नाम प्रकट न होने देनेकी शर्तपर लिखना प्रारम्भ किया था।

अधरोंकी सीमासे बाहर निकलने भरकी देर थी, फिर तो यह सत्य बात फैलने लगी। ऐसी बात भला छिपायेसे भी छिपती है? वास्तविकता तो यह है कि ऐसी बात चावपूर्वक परस्परमें कही जाती है, सुनायी जाती है और बतायी जाती है। धीरे-धीरे यह बात बाबातक पहुँची और तभी 'श्रीकृष्ण-लीला-चिन्तन'के लेखनका कार्य विसर्जित हो गया। तबतक जितना लिखा गया था, बस, वही उसकी सीमा हो गयी। बाबाद्वारा सम्पूर्ण श्रीकृष्ण-चरित्रका लेखन नहीं हो पाया। सन् १९४६ ई. से लगभग दस वर्षोंतक अनवरत धारावाहिक रूपसे 'कल्याण'के पृष्ठोंपर जितना छप पाया, वह गीताप्रेससे पुस्तकाकार 'श्रीकृष्ण-लीला-चिन्तन'के नामसे प्रकाशित हो गया।

सन् १९४८ ई.में 'कल्याण'का 'नारी' विशेषांक प्रकाशित हुआ था। बाबूजीके अनुरोधपर विशेषांकमें प्रकाशनार्थ बाबाने चार सुन्दर वृत्त लिखे, १ –जगज्जननी श्रीराधा, २ – माता यशोदा, ३ – माता रोहिणी और ४ – अष्टसखी। ये चारों वृत्त अति भावपूर्ण हैं। इनका प्रकाशन सर्वप्रथम 'नारी' अंकमें हुआ। इसके बाद इनका प्रकाशन 'ब्रजलीलाके प्रमुख नारी पात्र' में पुस्तकाकार हुआ। 'जगज्जननी श्रीराधा' का स्वतन्त्र लघु पुस्तिकाके रूपमें प्रकाशन कई बार हो चुका है। 'जगज्जननी श्रीराधा' पुस्तिका पूज्या श्रीआनंदमयी माँको बड़ी प्रिय थी।

* * * * *

श्रीमोहनलालजीको पत्र

[१]

गोरखपुर
श्रावण द्वितीय पूर्णिमा, २००४ वि.
३१-८-१९४७

श्रीयुत मोहनलालजी,

श्रीस्वामीजीने लिखवाया है—

आपका पत्र मिला। आपने वृन्दावनमें स्त्रियोंको दीक्षा आदि दी जानेकी बातें लिखकर इस सम्बन्धमें मेरी राय पूछी है। संक्षेपमें उन बातोंका उत्तर यह है—

(१) मेरी मान्यता यह है कि स्त्रियोंको दीक्षा देना अत्यन्त हानिकर है। इसमें हानि-ही-हानि भरी हुई है। किसी भी त्यागी साधुको, संन्यासीको अथवा त्यागी वैष्णवको स्त्रीसे सर्वथा अलग रहना चाहिये, अन्यथा अधिकांशमें पतन होना अनिवार्य है। जो सच्चे साधु वैष्णव संत आदि हैं, वे तो इस चेला-चेली बनानेकी झंझटसे अलग रहकर भजन ही करते हैं।

(२) मन्दिरोंमें बिना मन्त्रकी पूजा होनेके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं कह सकता। श्रीकृष्ण ही जानें कि वे कौन-सी पूजा ग्रहण करते हैं और कौन-सी नहीं।

(३) पर मुझे अत्यन्त विचार हो रहा है कि वृन्दावनमें रहकर इन गन्दी बातोंको देखनेके लिये आप समय क्यों निकालते हैं? मेरी तो प्रेमभरी राय है कि जहाँ कहीं भी जिस स्थानमें जिस मन्दिरमें बुरी बातोंको देखने-सुननेका मौका मिले, वहाँ जाना आप स्थगित कर दें। सर्वत्र आपको यदि यही मिलता हो तो आप जिस मकानमें हैं, उसीको प्रिया-प्रियतमका मन्दिर मानकर उसके कण- कणमें उनकी भावना कीजिये। वे हैं ही। आपको इसलिये नहीं दीखते कि आप उन्हें देखना नहीं चाहते तथा कहीं आपका मकान भी ऐसे ही वातावरणसे भरा हो तो मैं तो यही कहूँगा कि आप वृन्दावन छोड़कर कहीं दूसरी जगह

चले जाइये।

(४) दूसरेकी ओर न देखकर आप अपनेको सुधारिये। श्रीप्रह्लादरायजी निम्बार्क सम्प्रदायकी दीक्षा लेकर रामायण, गीता-पाठ, संध्या आदि सभी छोड़ दिये हैं तो उनको छोड़ने दीजिये। आपको नहीं छोड़ना चाहिये। सनातन आचारका पालन करते हुए ही आप प्रिया-प्रियतमका अखण्ड स्मरण कीजिये। वे बनते हैं या बिगड़ते हैं, इसका ठेका आपको श्रीकृष्णने दिया हो तब फिर तो उनकी सँभाल करनी ही चाहिये, पर यदि ठेका नहीं दिया है तो यह दोहा याद कीजिये –

तेरे भावै जो करो, भलो बुरो संसार।
नारायण तू बैठ कै, अपनो भवन बुहार।।

(५) महावाणीके पाठ करनेका वास्तविक अधिकारी वही है, जिसके मनमें स्त्री भावना सर्वथा समाप्त हो गयी हो और जो कामविकारसे सर्वथा मुक्त हो गया है। महावाणी एक परम दिव्य ग्रन्थ है। बिना अधिकारी बने जो पारायण करता है, उसके जीवनमें पतनकी ही आशंका विशेष है। प्रिया-प्रियतम उनकी रक्षा करें।

अन्तमें आपसे प्रार्थना है कि अनमोल जीवनको इस प्रकार पापमयी बातोंको देखनेमें, सुननेमें मत खोइये। इन सबकी ओरसे दृष्टि मोड़कर प्रिया-प्रियतमके चिन्तनमें मन लगाइये। यही सार है। आपका मेरे प्रति बड़ा स्नेह एवं विश्वास है, इसलिये निःसंकोच अपने मनकी बात लिख गया हूँ। बुरा तो आप मानेंगे ही नहीं, ऐसा मेरा विश्वास है। मेरे अन्तर्हृदयका सप्रेम यथायोग्य।

राधा राधा राधा राधा

* * * * *

[२]

श्रीयुत मोहनलालजी,

श्रीस्वामीजी महाराजने लिखवाया है–

आपका पत्र मिला। उत्तरमें रूखी बात लिखानी है। वह यह कि असलमें आप वृन्दावन जाकर भी वृन्दावनबिहारीको नहीं देख पा रहे हैं। आपको वृन्दावनबिहारी न दीखकर अधिक समय दीखता है संसार। यही कारण है कि जैसा जीवन आपका होना चाहिये, वैसा नहीं हो पा रहा है तथा जबतक आप पूरी दृढ़तासे अपने जीवनकी धारा प्रिया-प्रियतमकी ओर मोड़ना नहीं चाहेंगे, तबतक कोई दूसरा ऐसा कर दे, यह सम्भव नहीं। यह आपको ही करना पड़ेगा। आज करें, मरते समयतक करें, कभी भी करें, करना आपको ही है, अतः अभीसे सावधान होकर यह कार्य कर लें तो अनर्थकर दुःख, चिन्ता, फिकरसे बच जायँ। काम भी कठिन नहीं। केवल इतना ही करना है :–

१. कानसे प्रिया-प्रियतमकी चर्चाके सिवा दूसरा शब्द जहाँतक सम्भव हो, बिल्कुल नहीं सुने।

२. आँखसे प्रिया-प्रियतमके सम्बन्धकी चीजोंके सिवा और दूसरी वस्तु यथासम्भव नहीं देखें।

३. वाणीसे राधाकृष्ण-राधाकृष्णकी पुकार एक क्षण भी न छोड़े। बस, फिर जीवनकी धारा वृन्दावनबिहारीकी ओर बह चलेगी। उस धारामें स्नान करते-करते प्रिया-प्रियतम किसी दिन प्रकट हो जायेंगे और आप निहाल हो जायेंगे।

राधा राधा राधा राधा

* * * * *

रासलीलाके ठाकुर में ठाकुरावेश

सन् १९४९ के आस-पासकी बात है। स्वामी श्रीश्रीरामजी शर्माने अपनी नयी-नयी रासमण्डलीका गठन किया था और वे रासमण्डली लेकर वृन्दावनसे समस्तीपुर (बिहार) की ओर जानेवाले थे। यात्रा बहुत दूरकी थी, अतः वृन्दावनमें श्रीमोहनलालजीने सुझाव दिया कि आप लोग मार्गके बीचमें एक-दो दिन गोरखपुरमें ठहर जाइये। यह सुझाव स्वामी श्रीश्रीरामजीको प्रिय लगा। श्रीमोहनलालजीने श्रीठकुरी बाबूके नाम एक पत्र भी लिख दिया। गोरखपुर आकर श्रीश्रीरामजीकी रासमण्डली श्रीठकुरी बाबूके यहाँ ठहर गयी। गोरखपुरके रास-प्रेमी लोग कहने लगे – जब रासमण्डली आ ही गयी है तो एक झाँकी और एक लीला भी हो जाय।

यह प्रस्ताव तो स्वामी श्रीश्रीरामजीने स्वीकार कर लिया, परंतु एक बड़ी कठिनाई थी। विपत्ति अकेले नहीं आती। अभी रासमण्डली नयी-नयी बनायी थी, अतः साज-सज्जाका सामान बहुत अधिक नहीं था और जो थोड़ा-बहुत संग्रह था, शृङ्गारका वह सारा सामान राहमें चोरी चला गया था। पहननेवाली धोतीको पीले रंगमें रंग करके और उसपर साधारण नकली गोटा लगा करके परिधान बनाया गया। मोर-मुकुट भी अति साधारण था। पर्दा भी साधारणसे साधारण। मंचकी सज्जाके बारेमें कुछ न कहा जाय तो उत्तम रहेगा। बस, कहने भरके लिये नाम मात्रकी सज्जा थी। वेष, शृङ्गार, मंच-सज्जा, सभीका स्तर अति साधारण ही था, परंतु आश्चर्य तो यह है उस साधारणमें असाधारणका अवतरण हो उठा और दर्शकगण विमुग्ध-विलुब्ध भावसे रासलीलाको देखते ही रह गये। पहले तो केवल एक दिनके लिये लीला होनेकी बात कही गयी थी, पर अब लोग इतने प्रभावित हुए कि कई दिनोंतक ठहरनेके लिये अनुरोध किया जाने लगा। लोगोंके अनुरोधपर रासमण्डली गोरखपुर ठहर गयी।

रासलीलाकी ख्याति क्रमशः फैलने लग गयी। इस रासमण्डलीमें श्रीकृष्णस्वरूप बना करते थे ठाकुर श्रीघनश्यामजी। ठाकुरजीने एक बार

बतलाया था – लीला आरम्भ होनेके सात-आठ दिन बाद दो व्यक्ति रासलीला देखनेके लिये आये। वहाँके व्यवस्थापक लोगोंने उनके आगमनको बहुत अधिक महत्त्व दिया और उनको अति सम्मानपूर्वक बैठाया। वे दोनों ही व्यक्ति मोटे थे। मुझे ऐसा लगा कि ये दोनों मोटे व्यक्ति गोरखपुरके कोई बहुत बड़े सेठ हैं। जो भी हो, ये दोनों व्यक्ति मुझे बड़े प्रिय लगे। बादमें पता चला कि ये दोनों व्यक्ति ही 'कल्याण' पत्रिकाके सम्पादक हैं श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार और श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी।

भाई श्रीरामदासजी जालानके आग्रहपर ही बाबूजी रासलीला देखनेके लिये गये थे। कुछ दिनोंके बाद बाबूजीके साथ बाबा भी गये। बाबूजीके पार्श्वमें ही बाबाका आसन था। ज्यों ही मंचका पर्दा हटा और बाबाने सिंहासनासीन ठाकुरस्वरूपको देखा, बाबाको उनमें एक विचित्र आकर्षण लगा। ठाकुरस्वरूपमें बाबाको व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णकी एक प्यारी-सी झलक दिखलायी दी। बाबाने परीक्षा लेनेके विचारसे मन-ही-मन कहा – मुझे जो दिव्याभास मिला है, उसको सत्य तब मानूँ, जब यह ठाकुर आज रासके आरम्भमें 'बन्यौ मोर मुकुट नटवर वपु स्याम सुन्दर कमल नैन' वाला पद गाये।

यद्यपि मण्डलीके प्रमुख समाजीके रूपमें श्रीश्रीरामजीने हारमोनियमपर कोई एक दूसरे पदका गायन आरम्भ कर दिया था, इसके बाद भी ठाकुरस्वरूपने वही पद गाया, जिसके बारेमें बाबाने मन-ही-मन सोचा था। स्वामी श्रीश्रीरामजी द्वारा आरम्भ किये गये पदको नहीं, बाबाद्वारा सोचे गये नये पदको ठाकुरस्वरूपने गाया था, इससे बाबाको उस दिव्याभासपर विश्वास होने लग गया, पर बाबाने पुनः सोचा कि हो सकता है, ऐसा संयोगसे हो गया हो। बाबाने अपने संदेहके निवारणके लिये पुनः मन-ही-मन कहा – यदि यह ठाकुर आज रासमें नृत्य अमुक प्रकारकी पद्धतिसे करे तो मैं सच मान लूँ कि इस ठाकुरस्वरूपमें श्रीकृष्णावेश है।

क्या ही आश्चर्य, नृत्यके आरम्भ होते ही ठाकुरस्वरूपने ठीक उसी प्रकारकी पद्धतिसे नृत्य किया। ऐसे लगभग नौ-दस बार बाबाने

मन-ही-मन परीक्षा ली और प्रत्येक बार ठाकुरस्वरूपने वैसा कर दिया। प्रत्येक परीक्षामें ठाकुरस्वरूपको सफल देखकर बाबाका ठाकुरजीके प्रति सहज आकर्षण हो गया। उस दिनकी रासलीलाके बारेमें बाबा कई बार कहा करते थे – उस दिन तो लीलाका सारा नियन्त्रण और संचालन मेरे द्वारा हो रहा था और इस तथ्यको मेरे अतिरिक्त कोई जानता भी नहीं था।

अब बाबा रासलीला देखनेके लिये जाने लगे। बाबा और बाबूजीके प्रति ठाकुरजीका भी आकर्षण हो गया था। इतना ही नहीं, जहाँ इन युगल विभूतियोंका निवास था, उस गीतावाटिकाकी ओर सम्पूर्ण रासमण्डलीवालोंका मन आकृष्ट हो गया था। रासमण्डली श्रीठकुरी बाबूके यहाँ ठहरी हुई थी और उनके यहाँ घोड़ेकी एक बग्घी थी। रासमण्डलीके स्वरूप बग्घीपर चढ़कर गीतावाटिका आया करते थे। जब पहली बार रासमण्डलीके स्वरूप गीतावाटिका आये, उस समयका एक प्रसंग है। अन्य सब लोग तो वाटिकाकी कोठीके उस कमरेकी ओर बढ़े, जहाँ बैठकर बाबूजी 'कल्याण' पत्रिकाका सम्पादन किया करते थे, परंतु ठाकुरजीके मनमें चाव था बाबाके दर्शनका। ठाकुरजीने एक व्यक्तिसे पूछा कि बाबा कहाँ रहते हैं। उस व्यक्तिने बाबाकी कुटियाकी ओर संकेत कर दिया। तब कुटियाके चारों ओर बाड़ा नहीं बना था। ठाकुरजी सीधे कुटियाकी ओर गये। कुटियाके पीछेवाली खिड़कीसे झाँकनेपर ठाकुरजीने देखा कि बाबा अपने बिस्तरपर लेटे हुए हैं। उनके दाहिने हाथमें तुलसीकी जपमाला नाम-जप करनेके लिये है और बाँयें हाथमें कमलकी माला जपकी संख्या रखनेके लिये है। वे लेटे-लेटे जप कर रहे हैं और उनके नेत्रोंसे टप-टप अश्रु झर रहे हैं। वे अश्रु-बिन्दु तकियेको भिगो रहे हैं। यह दृश्य ठाकुरजीको बड़ा प्रिय लगा। ठाकुरजी तुरंत लौटकर श्रीश्रीजीस्वरूपको बुला लाये। श्रीश्रीजी और ठाकुरजी दोनों द्वारपर खड़े हो गये और कुटियाका दरवाजा खटखटाने लगे। ठाकुरजीके मनमें न किसी प्रकारका संकोच था और न भय। ठाकुरजीको बाबा अपनेसे भी बढ़कर अपने लग रहे थे। बाबाने उठकर दरवाजा खोला। श्रीश्रीजी और ठाकुरजीको देखकर उन्हें बड़ी

प्रसन्नता हुई। बाबाने दोनोंको कुटियाके अन्दर बुला लिया। दोनों स्वरूपोंको अपने बिस्तरपर बैठाकर बाबा स्वयं भूमिपर बैठ गये। उस समय बाबाके पास सुगन्धित फूलोंके दो गजरे रखे हुए थे। बाबाने एक गजरा श्रीश्रीजीको और एक गजरा ठाकुरजीको पहना दिया।

श्रीश्रीजी तथा ठाकुरजी बाबाके पास बैठे ही होंगे कि उसी समय बाबूजीके पाससे बाबाके लिये बुलावा आ गया। अब तो सभी कुटियाके बाहर निकल पड़े। बाबा, श्रीश्रीजी तथा ठाकुरजी, तीनों ही बाबूजीके पास जा रहे थे कि इसी बीच श्रीश्रीजीस्वरूप न जाने किधर चले गये। हो सकता है, किसी कार्यसे इधर-उधर चले गये हों। ठाकुरजीके मनमें कोई भाव उभरा। ये स्वभावसे थोड़े चपल-चञ्चल थे ही। बाबा तो गये बाबूजीके पास और ठाकुरजी पुनः बाबाकी कुटियामें आ गये। जब तीनों लोग कुटियासे बाहर निकले थे तो श्रीश्रीजीने और ठाकुरजीने उन गजरोंको बाबाके बिस्तरपर ही छोड़ दिया था। कुटियामें वापस आकर ठाकुरजीने वे दोनों गजरे कलात्मक रीतिसे बाबाके बिस्तरपर ही सजा दिये। उन दोनों पुष्प-मालाओंको सजाकर रखनेके बाद ठाकुरजीने कुटियाको पूर्ववत् बन्द कर दिया और फिर आ गये बाबूजीके पास। वहाँ बाबूजीके पास ठाकुरजीकी खोज हो ही रही थी कि वे कहाँ गये। ठाकुरजीके पहुँचते ही रासमण्डलीके सभी स्वरूपोंका स्वागत-सत्कार किया जाने लगा। स्वरूपोंको अधिक-से-अधिक सम्मान दिया गया। इसके बाद स्वरूपोंको विदाई दी गयी और वे लोग बग्घीपर चढ़कर अपने डेरेपर वापस आ गये।

स्वरूपोंके विदा होते ही बाबा अपनी कुटियापर आये। बिस्तरके तकियेपर पुष्प-मालाएँ जिस प्रकारसे सज्जित थीं, उस सज्जा-शैलीको देखकर बाबाको बड़ा आश्चर्य हुआ। आज बाबाने अपने लीला-राज्यमें पुष्प-मालाओंकी जो छवि देखी थी, वही छवि इस समय दो नेत्रोंका प्रत्यक्ष दृश्य बनी हुई थी। वहाँ निकुञ्जमें श्रीप्रिया-प्रियतम-युगलके पुष्प-शृङ्गारके उपरान्त युगल पुष्प-मालाओंके पारस्परिक सुगुम्फनसे जो सुन्दर आकृति बनी थी, उसी आकृतिकी सर्वथा अनुकृति बाबा देख रहे थे यहाँ अपने बिस्तरपर। उस आकृति और इस अनुकृतिमें एक

पंखुड़ीका भी तो अन्तर नहीं था। बाबा जड़वत् बहुत देरतक बिस्तरपर सजा करके रखी हुई पुष्पमालाको देखते रहे। तभी बाबाको एक पुरानी बातकी स्मृति हो आयी। प्रियतम श्रीकृष्णने बाबासे कहा था कि मैं लगभग दो वर्ष बाद तुम्हारे पास रासके ठाकुरके रूपमें आऊँगा। इसका स्मरण होते ही बाबाको ऐसा लगा कि इस ठाकुरस्वरूपके रूपमें सम्भवतः वे प्रियतम श्रीव्रजेन्द्रनन्दन ही आये हैं। बिस्तरके तकियेपर शोभायमान पुष्प-मालाकी सुसज्जा-शैली बार-बार उस बातकी स्मृति दिला रही थी।

रासमण्डली गोरखपुरमें कई सप्ताह रही और मण्डलीके स्वरूप प्रायः गीतावाटिका आ जाया करते थे। ठाकुरस्वरूपका बाबा, बाबूजी और गोस्वामीजीके प्रति एक भाव-भरा आकर्षण था। एक बारकी बात है। सभी स्वरूप गीतावाटिका आये हुए थे, पर आज ठाकुरजीको डेरेपर वापस जानेकी जल्दी थी। बग्घीपर ठाकुरजी बैठ गये, सभी सखी-स्वरूप बैठ गये, परंतु श्रीश्रीजी-स्वरूपका आगमन अभी नहीं हुआ था। वे बाबाके पास बैठे थे। कुटियामें बैठे हुए बाबासे बात कर रहे थे। ठाकुरजीने दो-तीन बार बुलावा भेजा, पर वे दोनों तो बात करनेमें अत्यधिक तल्लीन थे। ठाकुरजीको तनिक आवेश हो आया और वे बोले – श्रीजी क्या बाबाके घरकी हैं, जो आने नहीं देते?

ठाकुरजीने ऐसा कहा ही था कि श्रीश्रीजीस्वरूप आ गये और सभी स्वरूप बग्घीसे अपने डेरेपर चले आये। उन स्वरूपोंके चले जानेके बाद बाबाको पता चला कि ठाकुरजी आवेशमें ऐसा-ऐसा बोल रहे थे। इतना सुनकर बाबाको भी भावावेश हो आया और वे अपने भाव-स्वरूपमें प्रतिष्ठित होकर मन-ही-मन कहने लगे – ठाकुरने ऐसी बात कैसे कह दी? सखी और श्रीजीके बीचमें ठाकुरको हस्तक्षेप करनेका क्या अधिकार है? श्रीजीपर सखीका जितना अधिकार है, उसे जानते हुए भी ठाकुर क्यों अनजान-से बन रहे हैं? ठाकुर जा सकते हैं श्रीजीके पास तब ही, जब सखी चाहती है। जिस समय सखी ड्यौढ़ी बन्द कर देती है, उस समय ठाकुर ही सखीके चरणोंपर गिरते हैं और हा-हा खाते हैं। सखीके प्रसन्न और अनुकूल होनेपर ही ठाकुरका निकुञ्जमें प्रवेश सम्भव है। यह सब जानते हुए भी ठाकुरने ऐसा कैसे कह दिया कि क्या श्रीजी बाबाके घरकी हैं?

बाबा इस प्रकारके भावों-विचारोंमें लहरा-उतरा रहे थे। बाबाने

निश्चय किया कि ठाकुरकी इस वाचालताको अनुशासित करना चाहिये। बाबूजीके पास लाल रंगकी नैश नामक एक मोटरकार थी। नैश कारपर चढ़कर बाबा साहबगंज गये। साहबगंज मोहल्लेमें ही रासमण्डलीका डेरा था। डेरेके ऊपरी कमरेमें सभी स्वरूप भोजन कर रहे थे, केवल ठाकुरजी नीचे थे और घरके बाहरी चबूतरेपर चुपचाप टहल रहे थे। उसी समय चबूतरेके पास आकर लाल रंगवाली नैश कार खड़ी हुई। किसीने उल्लास-भरे स्वरमें कहा – स्वामीजी आ गये, स्वामीजी आ गये।

इस उन्मुक्त स्वरको सुनते ही ठाकुरजी मुड़े और देखा कि कारमें अगली सीटपर बाबा बैठे हुए हैं। ठाकुरजी लपक करके आगे बढ़े, अगली सीटका दरवाजा खोला और बाबाका हाथ पकड़कर कारसे नीचे उतारा। ठाकुरजीने बाबाको कारसे ज्यों ही उतारा, त्यों ही उन्होंने बाबासे कहा – सबसे पहले आप मेरे गालपर चपत लगाइये।

यह सुनते ही बाबा वहीं सड़कपर मूर्तिवत् खड़े-के-खड़े रह गये। बाबा रास्ते भर यही सोचते आ रहे थे कि ठाकुरको सबसे पहले गालपर चपत लगाऊँगा। बाबा जो बात सोचते आ रहे थे, वही बात इस ठाकुरने कैसे कह दी? भाव-विभोर और चिन्तन-लीन बाबाको ठाकुरजी बड़ी कठिनाईसे ऊपर ले आये। बाबा तीन घंटेतक लगातार भाव-निमग्न बैठे रहे। जब भाव कुछ शमित हुआ तो बाबा कारसे गीतावाटिका आये। वाटिका आनेके बाद भी विभोरताकी स्थिति घंटोंतक बनी रही।

एक बार ठकुरीबाबूके बगीचेमें रासलीला हो रही थी। बगीचेके पेड़-पौधोंने, लताओं-झाड़ियोंने फूलों-फलोंने स्वतः ही वनका सुरम्य वातावरण उपस्थित कर दिया। बगीचेकी हरियालीसे लीलामें सहज ही स्वाभाविकता एवं प्रभावोत्पादकता उभर आयी। बाबा भी लीला देख रहे थे। रासलीला देखते-देखते बाबाको ऐसा लगा कि ठाकुरके अधरोंसे दिव्य सुधारसका निर्झरण हो रहा है। यह देखते ही बाबाको बड़ा विस्मय हुआ और बाबा सोचने लगे – यह क्या दिखलायी दे रहा है? कहीं यह मेरी मात्र भावना तो नहीं है? क्या वस्तुतः चिन्मय राज्यका वह महामधुमय सुधारस इन अधरोंसे झर रहा है? इसे मैं पूर्ण सत्यके रूपमें स्वीकार तब करूँ, जब मेरे मनकी एक बात हो जाय। यदि यह ठाकुर स्वतः अपना कोई उच्छिष्ट पदार्थ मुझे खिलावे और उस सुधारसका आस्वादन मुझे भी मिले, तब मैं मानूँ कि ठाकुरके अधरोंसे वह दिव्य सुधारस झर रहा है।

इधर तो बाबा अपने मनमें ऐसा विचार कर रहे थे, उधर ठाकुरजीने तत्काल वृक्षसे अमरूदका फल तोड़ा, उसमेंसे थोड़ा खाया और उसी समय बाबाके पास आकर उनके मुखमें अपना उच्छिष्ट दे दिया। बाबाको बड़े विचित्र स्वादकी अनुभूति हुई। वह स्वाद इस लोकका था ही नहीं।

* * *

रासके ठाकुर-स्वरूपके उच्छिष्ट प्रसादको ग्रहण करनेकी दृष्टिसे एक बार एक विचित्र प्रसंग बाबाके सामने उपस्थित हो गया था। रासलीलाकी ख्याति दिन-प्रति-दिन बढ़ती ही जा रही थी और इसीके साथ बढ़ रही थी भक्त दर्शकोंकी संख्या भी। रासलीलाके दर्शक समुदायमें कुछ भावुक भक्त ऐसे भी थे, जिनका रासके ठाकुरके प्रति स्वाभाविक भगवद्भाव था। इन भावुक भक्तोंकी चाह रहा करती थी कि ठाकुरका उच्छिष्ट प्रसाद ग्रहण करनेके लिये मिला करे, परंतु अत्यधिक मर्यादावादी श्रीसेठजी (पूज्य श्रीजयदयालजी गोयन्दका) के कारण उनमें उच्छिष्ट प्रसाद लेनेका साहस नहीं हो पाता था। उच्छिष्ट प्रसादकी चाह जब बहुत बढ़ गयी तो भावुक भक्तोंने एक योजना बनायी। उन्होंने सोचा कि यदि बाबा किसी प्रकार रासके ठाकुरका उच्छिष्ट प्रसाद पा लें तो बात बन जायेगी। इन भक्तोंने रासके ठाकुरको अपनी योजनानुसार पटा लिया। लीला हो चुकनेके बाद ठाकुरजी बाबाके पास आये और बाबाके हाथमें अपना उच्छिष्ट प्रसाद देकर कहा — इसे पा लें।

बूँदीका उच्छिष्ट प्रसाद बाबाके हाथमें था। बाबाके लिये बड़ा धर्म-संकट उपस्थित हो गया। संन्यासी वस्त्रकी मर्यादाके अनुसार उच्छिष्ट प्रसाद ग्रहण करना उचित नहीं और रासलीलाकी मर्यादाके अनुसार ठाकुरके वचनोंकी अवहेलना करना उचित नहीं। उच्छिष्ट प्रसाद अपने कर-पल्लवपर लिये-लिये बाबा बहुत देरतक खड़े रहे। वे किंकर्तव्य-विमूढ़ हो रहे थे। आस-पास खड़े लोगोंकी दृष्टि बाबापर गड़ी हुई थी। बाबाके मनमें आया — अपनी दो अँगुलियोंके मध्य बूँदीका एक दाना दबा लूँ। इस दानेको बादमें पा लूँगा और अपने संन्यासी वेषकी रक्षाके लिये शेष सारा प्रसाद किसी अन्यको दे दूँ।

इस विचारके उभरते ही तुरन्त दूसरा विचार आया — यह तो मेरे समक्ष खड़े ठाकुरजीकी वंचना होगी। ठाकुरके वचनका पूर्ण सम्मान करनेके

लिये यह प्रसाद मुझे अवश्य पा लेना चाहिये।

ठाकुरजीके वचन एवं प्रसादका सम्मान करनेके लिये एक बूँदीका भी अल्पांश, मात्र एक कण बाबाने खा लिया और शेषांश श्रीगोस्वामीजी (पूज्य श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी) को दे दिया, जो पासमें ही खड़े थे। स्पर्शास्पर्शका अत्यधिक विचार रखनेवाले श्रीगोस्वामीजीने भी वह उच्छिष्ट प्रसाद किसी प्रकारका विचार किये बिना ही तत्क्षण पा लिया, इसीलिये कि बाबाने उनको दिया था। उन भावुक भक्तोंकी योजना आवश्यकतासे अधिक पूर्ण हो चुकी थी। उनकी योजनाके जालमें एक नहीं, दो सम्माननीय व्यक्ति आ चुके थे और उनके लिये तो उच्छिष्ट प्रसाद ग्रहण करनेके लिये मार्ग खुल गया था।

इस प्रसंगसे मार्ग खुला उनके लिये, जिनके हृदयमें श्रद्धाका भाव था, परंतु अपचर्चाके लिये एक अच्छा विषय मिल गया उनके लिये भी, जो लोग छिद्रान्वेषी थे। एक छिद्रान्वेषी व्यक्ति सेठजी और बाबाके मध्य खाई खोदनेके लिये तथ्योंको एवं उक्तियोंको विकृत रूपमें प्रस्तुत करने लगा। वह अपने मन्थरा-स्वभावके वशीभूत होकर ऐसा कर रहा था। श्रीसेठजीकी बातको विकृत करके बाबासे कहना और बाबाकी बातको तोड़-मरोड़ करके श्रीसेठजीसे कहना, इस प्रकार उसने उच्छिष्ट प्रसाद ग्रहण करनेवाली बातको इतना अधिक विकृत रूप प्रदान कर दिया कि बाबा बाबूजीसे आज्ञा लेकर गोरखपुरसे वृन्दावन चले जानेका विचार करने लगे।

संयोगकी बात, जब बाबा इस प्रकार सोच रहे थे, तभी उनसे मिलनेके लिये कलकत्तेके श्रीज्वालाप्रसादजी कानोड़िया आये। श्रीकानोड़ियाजीका तीनों विभूतियों – श्रीसेठजी, बाबूजी एवं बाबाके प्रति अत्यन्त श्रद्धा-भाव था। बाबाने श्रीकानोड़ियाजीको सारा वृत्त बताकर कहा – जब श्रीसेठजीको मेरा यहाँ रहना उचित नहीं लग रहा है, तब मैं क्यों रहूँ? मैं सोच रहा हूँ कि अब मुझे वृन्दावन चले जाना चाहिये।

श्रीकानोड़ियाजीने तुरन्त प्रतिवाद किया – श्रीसेठजी न ऐसा सोच सकते हैं और न ऐसा कह सकते हैं। मुझे संदेह है कि किसीने परिस्थितिको बिगाड़ दिया है। मैं अभी श्रीसेठजीके पास जाता हूँ।

श्रीकानोड़ियाजी तुरन्त गीतावाटिकासे गीताप्रेस आये और श्रीसेठजीको सब बातें बतलायी। श्रीसेठजी तो आश्चर्य करने लगे और उन्होंने कहा – मैंने तो ऐसा कहा ही नहीं है। आप गीतावाटिका जाकर

स्वामीजीसे कहें कि मैं प्रातःकाल आकर उनसे भेंट करूँगा।

श्रीकानोड़ियाजीने श्रीसेठजीका संदेश बाबाको दिया। इसके बाद उन्होंने सारी स्थिति बाबूजीको बतलायी। बाबूजीको कुछ पता ही नहीं था। इसे सुनते ही बाबूजी क्षुब्ध हो उठे और कहने लगे – जगतके लोग भी कैसे हैं, जिन्हें बात बिगाड़नेमें ही आनन्द आता है। यह भला कैसे सम्भव है कि बाबा यहाँसे चले जायें?

प्रातःकाल श्रीसेठजी गीतावाटिका आकर बाबासे मिले तथा कहा – यह मैंने कब कहा कि स्वामीजी हमलोगोंको छोड़कर चले जायें? मैंने मात्र इतना ही कहा था कि स्वामीजी द्वारा उच्छिष्ट प्रसाद लिया जाना मुझे उचित नहीं लगा। इस कथनका यह अर्थ कदापि नहीं कि आप हमलोगोंका साथ छोड़कर चले जायँ। आपके चले जानेके लिये तो मैंने कभी कहा ही नहीं। इतना ही नहीं, इस बातसे सम्बन्धित कोई स्फुरणा मेरे मनमें कभी उदित ही नहीं हुई। मैं तो भगवानसे यहाँतक प्रार्थना करता हूँ कि यदि मेरे प्रसुप्त मनमें इस प्रकारकी कोई भी बात हो तो वे उसकी छायाको तुरन्त मिटा दें।

श्रीसेठजीकी छल-रहित एवं प्रीति-भरित उक्ति सुनकर बाबाका हृदय द्रवित हो उठा। आने-जानेकी बात अब सर्वथा समाप्त हो गयी। अन्तिम निवेदनके रूपमें श्रीसेठजीने बाबासे इतना अवश्य कहा – मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप भविष्यमें यदि उच्छिष्ट ग्रहण न करें तो उत्तम बात रहेगी।

बाबाने श्रीसेठजीसे कहा – मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं आपके इस अनुरोधका अक्षरशः पालन करूँगा, परंतु किसी परिस्थितिमें उलझकर यदि विवशतावशात् उच्छिष्ट प्रसादका मात्र कणांश कभी मुझे ग्रहण करना पड़ जाय तो इसके लिये आपको विचार नहीं करना चाहिये।

यह सुनकर श्रीसेठजी मुस्कुराने लगे। अकारण ही जो विषम परिस्थिति उत्पन्न हो गयी थी, वह सर्वथा समाप्त हो गयी।

* * *

इसके अगले वर्ष जब रासमण्डली आयी, तब वह शहरमें नहीं, आदरणीया बाई (श्रीसावित्रीबाई फोगला) की बगीची 'श्रीकृष्ण निकेतन'में ठहरायी गयी। बगीचीमें बड़ी सुन्दर फुलवारी थी। ठाकुर-स्वरूप

श्रीघनश्यामजी तथा अन्य स्वरूप अपने सहज बाल्य स्वभावसे फलोंके पौधोंमें जल दे रहे थे। इसी समय बाबा गीतावाटिकासे श्रीकृष्णनिकेतन गोस्वामीजीको साथ लेकर पहुँच गये। दूरसे ही बाबाने देखा कि वे स्वरूप कुएँसे जल निकाल-निकाल करके पौधोंको सींच रहे हैं। उनके घुँघराले केश, उनका बालोचित चापल्य, उनकी स्वाभाविक चेष्टाएँ, उनका उन्मुक्त संभाषण, उनका वृक्ष-सिंचन, इन सबको देखकर बाबाको बड़ा उद्दीपन हुआ। बाबाको यही लगा कि निकुञ्जकी सखियाँ श्रीप्रियाजीकी फुलवारीको सींच रही हैं। बाबा एक वृक्षकी ओटमें छिप गये और बहुत देरतक यह दृश्य देखते रहे। बाबाने गोस्वामीजीको अँगुलियोंसे निर्देश दे दिया था कि आप आनेका संकेत न दें। स्वरूपोंको बहुत देर बाद पता चल पाया कि बाबा आये हुए हैं।

इस बार बाबाने जो एक विशिष्ट रासलीला करवायी, उसका उल्लेख करना आवश्यक है। लीलाके भावोंकी पवित्रता एवं गम्भीरताको बनाये रखनेके लिये यह लीला पूर्णतः एकान्तमें हुई। इस लीलाके अभिनीत होनेकी सूचना किसीको नहीं दी गयी और यह लीला मध्य रात्रिके समय आरम्भ हुई। लीला पूरे तीन-चार घंटे हुई, परंतु इसमें कुल दर्शक ग्यारह ही थे — माँ, बाबूजी, गोस्वामीजी आदि चुने हुए व्यक्ति। लीलाके आरम्भ होते ही द्वारपर ताला लगा दिया गया, जिससे अन्य कोई प्रवेश न कर सके। इस दिन गुणी-जन-लीला हुई और लीलाके समय वातावरण इतना अधिक गम्भीर था कि कोई सीमा नहीं। लीलाके बाद बाबा तीन दिनतक भावमें गहरे डूबे रहे। गहरी भाव-निमग्नताके कारण उनको भिक्षा करा सकना भी कठिन हो गया था।

एक बार और इसी रीतिसे बाबाने रासलीला करवायी। दूसरी बार दर्शक कुल इक्कीस लोग थे। यह बाध्यता थी कि सभी दर्शकोंको स्नान करके और नवीन शुद्ध वस्त्र धारण करके ही बैठना था। इस लीलाका प्रभाव भी इतना अधिक पड़ा कि लीलाके दृश्य एवं संवाद लोगोंके हृदयपर कई दिनोंतक छाये रहे।

* * * * *

श्रीकृष्णचन्द्रजी अग्रवाल को दीक्षा

सन् १९४५ में बी.ए.की परीक्षा दे देनेके बाद श्रीकृष्णचन्द्र अग्रवाल रतनगढ़में बाबूजी और बाबाके पास चले आये और इसी सन् १९४५ के जून मासमें इन युगल विभूतियोंके साथ रतनगढ़से गोरखपुर आ गये। गोरखपुर आनेके बाद कृष्णजी बाबाकी सेवामें संलग्न रहने लगे। बाबाको भिक्षा करवाना, कुटियाकी सफाई करना और उनके आदेशानुसार साधन-भजन करना, यही उनका जीवन था।

सच्ची सेवा सेव्यके हृदयको आकृष्ट कर ही लेती है। सतत सेवा सेवकको सेव्यसे एकाकार बना देती है। स्वार्थ भावसे सर्वथा शून्य होकर की जानेवाली सेवा सचमुच एक चमत्कार उपस्थित कर देती है। कृष्णजीकी सेवा-भावनापर बाबा भीतरी मनसे रीझे हुए थे। वे तो बाबाको अपना गुरु मानते थे, पर बाबा उनको शिष्य नहीं, बल्कि मात्र मित्र मानते थे। जो मात्र मित्र मानते थे, वे ही बाबा अब कृष्णजीको विधिवत् मंत्र-दीक्षा देनेका विचार करने लगे। बाबाके मनमें ऐसे विचारका उद्भव क्यों हुआ, इसकी पृष्ठभूमि भी अटपटी और अनोखी है।

बाबा तो कट्टर वेदान्ती थे, पर उनके जीवनमें व्रजभावका बीजारोपण हुआ तब, जब सन् १९३६ में बाबूजीने तेइस वर्षीय युवक संन्यासी बाबाको चरण-नख छूकर प्रणाम किया था। इस घटनाके तीन साल बाद सन् १९३९ में बाबाकी भाव-साधनामें कुछ बाधा आ गयी थी, तब बाबूजीने सूक्ष्म देहसे पधारकर बाबाके कर-नखका स्पर्श किया था और इससे उनकी भाव-साधनाका रसमय पथ प्रशस्त हो गया था। बाबा रस-सागरमें उत्तरोत्तर गहरे-से-गहरे उतरते चले गये।

जब बाबाने सन् १९५६ में प्रथम बार काष्ठ मौन लिया था, तब भरी सभामें सबके सामने एक अन्तरंग सत्यको उद्घाटित करते हुए कहा था – श्रीपोद्दार महाराज यदि गुलाबके पौधे हैं तो उस पौधेकी एक शाखापर खिलनेवाला मैं एक छोटा-सा गुलाबका फूल हूँ और सदा हँसता रहता हूँ। उस गुलाबमें तो काँटा भी होता है, पर गुलाबका यह पौधा तो कण्टक-रहित है और मुझसे भी अधिक सुन्दरतर और अधिक श्रेष्ठतर पुष्प, एक नहीं, अनेकानेक पाटल पुष्प खिला देनेकी क्षमता इस पौधेमें है।

अब एक बड़ा ही माधुर्यपूर्ण और रहस्यपूर्ण तथ्य यह है कि जिन बाबूजीके अहैतुक अनुग्रहसे अति कट्टर वेदान्ती बाबाके अन्तरमें व्रजभावका बीजारोपण

हुआ और उनके जीवनमें प्रियाप्रियतम श्रीराधामाधवकी रसमयी मधुर भक्तिकी रसधारा प्रवाहित हुई, उन बाबूजीकी सेवा करना चाह रहा था बाबाका भावमय हृदय, पर यह संभव नहीं था। प्रथम, बाबूजी वैश्य थे और बाबा ब्राह्मणकुलोद्भूत। द्वितीय, बाबूजी गृहस्थाश्रमी थे और बाबा चतुर्थाश्रमी संन्यासी। अतः यह संभव ही नहीं था कि बाबूजी बाबासे अपनी कोई निजी सेवा करवा लें। इस विवशताकी दशामें अपनी भावनानुसार कार्य करनेके लिये बाबाने एक अन्य उपायका आश्रय लिया। वे चाहते थे कि वह उपाय सुगुप्त हो, जिससे जगतके लोग आन्तरिक उद्देश्यको तनिक भी जान नहीं पायें। बहुत चिन्तनके बाद बाबाने ऐसा निश्चय किया कि मैं अपना कोई प्रतिनिधि उनकी सेवामें नियुक्त कर दूँ और उस प्रतिनिधि व्यक्तिके द्वारा की जानेवाली सेवाका अर्थ यही होगा, मानो वह सेवा प्रच्छन्न रूपसे मेरे द्वारा सम्पन्न हो रही है, पर अवश्य ही वह व्यक्ति सही-सही रीतिसे प्रतिनिधि हो। ऐसा सोच करके बाबाने सेवापरायण कृष्णजीको संन्यासकी दीक्षा देकर अपना प्रतिनिधि बनानेका निर्णय किया।

इस निर्णयके अनुसार बाबाने कृष्णजीको संन्यासकी दीक्षा दी। यह दीक्षा स्वयं उन्होंने ही चिम्मनलालजी गोस्वामीजीकी उपस्थितिमें दी और दी गीतावाटिकाके पिछले भागमें स्थित कुएँ पर। मेरी अल्प जानकारीके अनुसार यह दीक्षा सन् १९४८ के उत्तरार्धमें दी गयी। सही-सही तिथि और वार बता सकना कठिन है, पर इतना तो निश्चित ही है कि सन् १९४८ के अन्तिम चार मास सितम्बर-अक्टूबर-नवम्बर-दिसम्बर, इन चार मासकी अवधिके भीतर ही कभी दीक्षा दी गयी होगी। दीक्षा देते समय बाबा सावधान थे और इस प्रक्रियामें केवल दो बात शेष रह गयी थी। एक तो यह कि वस्त्र श्वेत ही रखा। उनको गैरिक वस्त्र प्रदान नहीं किया। दूसरे यह कि प्राणी मात्रको अभय प्रदान करनेवाला कोई मंत्र होता है, वह मंत्र बाबाने नहीं कहा। इस प्रकार श्रीकृष्णजी बाबाके एक मात्र शिष्य हैं, जिन्हें विधिवत् दीक्षा मिली। संन्यासकी दीक्षा देकर अपने प्रतिनिधिके रूपमें बाबाने कृष्णजीको बाबूजीकी सेवामें रखा और कृष्णजीने बाबाके इस प्रतिनिधित्वको अपने तन-मन-जीवनसे निभाया। सन् १९७१ में बाबूजीने महाप्रयाण किया। उनके महाप्रयाणके बाद भी कृष्णजी पूरे परिवारकी सेवा उसी श्रद्धासे और उसी संलग्नतासे निरन्तर करते रहे।

* * * * *

आयु-वृद्धि हेतु देवाराधन

पं. श्रीमोतीलालजी पारीकसे तथा पं. श्रीसूरजमलजी शर्मासे एक विशेष देवार्चन बाबाने करवाया था। इस देवार्चनका उद्देश्य था बाबूजीके आयुकी वृद्धि। यह अनुष्ठान सन् १९४९ के उत्तर भागमें आरम्भ हुआ था और सन् १९५० के २ अप्रैल तक (चैत्र मासकी पूर्णिमातक) चला। इस अनुष्ठानमें श्रीगणेशजीका, श्रीनृसिंह भगवानका और भगवती नव-दुर्गाका विशेष पूजन-अर्चन गीतावाटिकामें होता रहा। इस अनुष्ठानके सम्पन्न होनेके बाद पं. सूरजमलजी शर्माका जीवन कल्पनातीत रूपसे बदल गया। सारी व्यावहारिकताका सर्वथा परित्याग करके उन्होंने सदाके लिये पूर्ण मौन ले लिया और हरिद्वारके पास कनखलमें वास करने लग गये। सादे वेशमें एकान्त वास करते हुए निरन्तर गायत्री मन्त्रका जप करते रहना, यही उनकी जीवनचर्या रही। बाबा जब-जब गीताभवन (ऋषिकेश) जाया करते थे, तब-तब किसी व्यक्तिको कनखल भेजकर पं. श्रीसूरजमलजीको बुलवाया करते थे मात्र भेंट करनेके लिये। वह व्यक्ति अपने साथ उन्हें कनखलसे ले आता और फिर वापस कनखल पहुँचाकर आता।

इस अनुष्ठानमें जब श्रीनवदुर्गाजीको नैवेद्य अर्पित किया जाता तो छोटे-छोटे नौ आसन बिछा दिये जाया करते थे तथा उन आसनोंके समक्ष नैवेद्य रख दिया जाता था। ऐसे प्रतिदिन होता था। एक दिन बाबाने पं. श्रीसूरजमलजीसे कहा – आप देवीसे प्रार्थना करें कि 'हे माँ! आज तो तुम प्रत्यक्ष रूपसे पधारकर नैवेद्य स्वीकार करो'।

उन्होंने ऐसा ही किया। श्रीनवदुर्गाजीके लिये नौ आसन बिछा करके तथा आसनोंके समक्ष नैवेद्य रखवा करके बाबाने दोनों अर्चकोंसे अनुरोध किया कि वे लोग पूजा-कुटीरके बाहर आ जायें, जिससे पट दे दिया जाये तथा श्रीनवदुर्गाजी नैवेद्य आरोगें। पं. श्रीसूरजमलजीने बाहर आनेके पहले एक विचित्र दृश्य देखा। पट देनेके समय भी पं. श्रीसूरजमलजी मन-ही-मन प्रार्थना कर रहे थे कि 'माँ! आप भोग स्वीकार करनेके लिये प्रत्यक्ष रूपसे पधारें'। पट दे देनेके पहले पं. श्रीसूरजमलजीने देखा – श्रीनवदुर्गा, एक नहीं, सभी पधारीं। शैलपुत्रीजी, ब्रह्मचारिणीजी, चन्द्रघण्टाजी, कूष्माण्डाजी, स्कन्दमाताजी, कात्यायनीजी, कालरात्रिजी, महागौरीजी तथा सिद्धिदात्रीजी, ये सभी उन नौ

आसनोंपर विराज गयी हैं तथा उन्होंने भोग आरोगना आरम्भ कर दिया है। पं. श्रीसूरजमलजीको बड़ा आश्चर्य हो रहा था कि बिछाये गये ये सारे आसन तो अति छोटे, अति संकीर्ण हैं और कैसे ये सब इन छोटे-छोटे आसनोंपर विराज पायीं ? इस दृश्यको देखकर पं. श्रीसूरजमलजी विभोर हो उठे।

उस दिन तो श्रीनवदुर्गाजीने प्रत्यक्ष रूपसे भोग स्वीकार किया, पर अन्य दिनोंमें भी कम महत्त्वपूर्ण बात नहीं हुआ करती थी। बाबाने मनमें यह तय कर रखा था कि यदि इस प्रकारके लक्षण दिखलायी दे जायें तो यह समझा जायेगा कि आज जगदम्बाने भोग स्वीकार कर लिया है। नैवेद्य तैयार हो जानेके बाद भोग श्रीनवदुर्गाजीके समक्ष समर्पित कर दिया जाता था। जैसा बाबाने मनमें तय कर रखा था, यदि वैसा लक्षण नहीं मिलता तो नये सिरेसे कार्यारम्भ होता। बर्तनोंको फिरसे माँजकर दूसरे व्यक्तिके द्वारा शुद्धतापूर्वक नैवेद्य-निर्माणका कार्य होता था। पुनः भोग समर्पित किया जाता था। यदि लक्षण मिल गये तो ऐसा मान लिया जाता था कि देवीके द्वारा भोग स्वीकार कर लिया गया है। यदि लक्षण पुनः नहीं मिलते तो बाबा यही समझते कि निर्माण-कार्यमें किसी अशुद्धिके कारण अथवा निर्माणकर्ताके किसी भाव-दोषके कारण देवीने भोग स्वीकार नहीं किया है। अतः फिर नये सिरेसे नैवेद्य-निर्माणका सारा कार्य होता। एक बार तो बाबाको एक दिनमें छः बार नैवेद्य बनवाना पड़ा था, पर अन्तमें बाबाको सफलता मिली ही।

इस अनुष्ठानके पूर्ण होनेपर श्रीमोतीजीको एक बार सुनायी पड़ा – 'सत आयु हो ! सत आयु हो !! सत आयु हो !!!'

इस दैवी आशीर्वादको सुनकर श्रीमोतीजी बड़े प्रसन्न हुए कि अनुष्ठान सफल हो गया, परंतु उनके मनमें एक संदेह भी घर कर गया। इस दैवी आशीर्वादमें शब्द 'शत' है अथवा 'सत' है ? यदि दन्त्य 'स' है, तब तो बाबूजीकी आयु सात वर्षके लिये बढ़ गयी है और यदि तालव्य 'श' है, तब तो आयु सौ वर्षकी हो गयी है। शब्द 'शत' हो अथवा 'सत', आयुमें वृद्धि तो हुई ही है और एतदर्थ सभीके मनमें प्रसन्नता तो थी ही, परंतु आशीर्वादके अर्थकी वास्तविकताको लेकर मनमें दुविधा भी थी।

वस्तुतः ये दोनों ही अर्थ नहीं थे। वास्तविक अर्थका परिज्ञान तो सन् १९७१ ई. में हुआ, जब बाबूजीने महाप्रस्थान किया। दैवी आशीर्वादमें 'सत' शब्दका प्रयोग तीन बार हुआ था और दैवी आशीर्वादके अनुसार इस

अनुष्ठानके बाद बाबूजी तीन सत (३×७) अर्थात् २१ वर्षतक इस भूतलपर विराजे रहे।

* * *

इसी प्रकार बाबाने श्रीमोतीजीसे भगवान नारायणका एक और अनुष्ठान करवाया था। ब्राह्म मुहूर्तकी बात है। श्रीमोतीजी सोकर उठे। उन्होंने देखा कि उनके सामने एक बालक खड़ा है। श्रीमोतीजीने अपने अटपटे ढंगसे, जिसमें कोई सम्मानसूचक शब्द नहीं थे, उस बालकसे पूछा – अरे! तू कौन है? यहाँ मेरे पास क्यों आया है?

उस बालकने कहा – आजकल चल रहे अनुष्ठानमें आप किनकी पूजा किया करते हैं?

श्रीमोतीजीने सहज ढंगसे बतलाया – मैं तो भगवान नारायणकी पूजा किया करता हूँ।

तब उस बालकने कहा – वह नारायण मैं ही हूँ। जाकर बाबासे कह दें कि जिस निमित्तसे यह अनुष्ठान चल रहा था, वह सफल हो गया।

ऐसा सुन करके और उस बालकमें कोई दिव्य झलक पा करके श्रीमोतीजी उन्मत्त हो गये। वे वहीं नृत्य करने लग गये। उस उन्मत्तावस्थामें कई घण्टे निकल गये। भावके शमित होनेपर श्रीमोतीजीने यह बात बाबाको बतलायी।

* * * * *

एकांकी नाटक का अभिनय

बाबाने बाबूजीकी प्रेरणासे एक एकांकी नाटक लिखा। उस नाटकका नाम है 'देवर्षि नारदपर श्रीवृषभानुनन्दिनीकी कृपा'। नाटक लिखकर बाबाने पढ़नेके लिये बाबूजीको दे दिया और उसका अभिनय करनेके लिये अनुमति माँगी। नाटकको बाबूजी आद्यन्त पढ़ गये और पढ़कर बाबासे बोले – नाटक तो बहुत सुन्दर लिखा गया है, पर अभिनयकी दृष्टिसे इसमें दो बातें विचारणीय हैं। प्रथम तो यह कि इस नाटकको देखनेके अधिकारी कितने लोग हैं? यदि कुछ अधिकारी दर्शक देखनेके लिये इकट्ठे भी हो जायें तो दूसरी बात यह है कि इस नाटकका अभिनय करनेवाले उचित एवं योग्य पात्र कहाँ हैं? अपनी वाटिकामें जो लोग हैं और जिनका नाम आप बता रहे हैं, वे भला क्या

कथानककी गरिमाको अपने अभिनयमें उतार पायेंगे?

बाबूजीके द्वारा ऐसा कहनेके बाद भी बाबाने किसी प्रकारसे उनसे अनुमति प्राप्त कर ली। अब अभिनयकी तैयारी होने लगी। जिन-जिन लोगोंको अभिनयके लिये चुना गया था, उन-उन लोगोंको पात्रके 'बोल' बतला दिये गये कि लोग याद कर लें। लोगोंको आवश्यक निर्देशन भी दे दिया गया, पर जब पूर्वाभ्यास (रिहर्सल) हुआ तो बाबाको बड़ी निराशा हुई, अत्यधिक निराशा हुई। कोई भी व्यक्ति उचित गम्भीरताका निर्वाह कर ही नहीं पा रहा था। निराश मनसे बाबा बाबूजीके पास गये और कहने लगे – अभिनयके बारेमें आपने ठीक ही कहा था। कोई भी व्यक्ति योग्य नहीं है। प्रसंगकी भाव-गरिमा वे लोग रख ही नहीं पा रहे हैं। यदि अभिनय हुआ तो मंचपर उचित वातावरण नहीं बन पायेगा। मैंने तो अब यही सोचा है कि नाटकके अभिनयके विचारको विसर्जित कर दिया जाय।

बाबाका ऐसा कथन सुनकर बाबूजीने तुरन्त कहा – नहीं, अब तो इस नाटकका अभिनय अवश्य होना चाहिये। घोषणा जो की जा चुकी है, अतः घोषणाके अनुरूप कार्य अवश्य होना चाहिये। अब रही बात मंचपर अभिनयकी। यह जैसा होगा, वैसा होगा। अभिनयमें सुन्दरता नहीं रहेगी, सही, पर अब तो घोषणाके अनुसार कार्य करना ही उत्तम बात होगी।

२६.९.१९५०, शरद पूर्णिमाकी रात्रिके समय नाटकका अभिनय हुआ। अभिनयके आरम्भ होनेके पूर्व मंचपर खड़े होकर बाबूजीने सभी दर्शकोंके समक्ष कहा – यह अभिनय कोई मनोरञ्जन नहीं है, कोई तमाशा नहीं है। यह तो दिव्य लीलाराज्यकी अति सुन्दर झाँकी है। जो लोग इसे मनोरञ्जन अथवा तमाशा अथवा विनोदकी वस्तु मान रहे हों, उनसे मेरी प्रार्थना है कि वे लोग चले जायें। आप विश्वास करें, यह अभिनय शुद्ध साधनाकी वस्तु है।

इस अभिनयके बारेमें चर्चा करते हुए बाबाने बतलाया था – श्रीपोद्दार महाराज जिस समय मंचपर खड़े होकर यह कह रहे थे, श्रीपोद्दार महाराजके स्थानपर ही श्रीराधाजी प्रकट हो गयीं। यह देखकर मैं तो अवाक् रह गया। अब मानो उस सारी मंच-स्थलीका नियन्त्रण तथा सारे अभिनयका निर्देशन भगवती श्रीराधाजीने अपने हाथमें ले लिया हो। वह सारा अभिनय इतना श्रेष्ठ, इतना सफल, इतना सुन्दर हुआ कि क्या कहा जाय। बादमें तो श्रीपोद्दार महाराजने मुझसे कहा कि इस प्रकारके प्रपञ्चमें अब न तो मैं पड़ूँ और न आप पड़ें।

अभिनय पूर्ण हो जानेके बाद श्रीमाधवजी (श्रीभुवनेश्वर प्रसादजी मिश्र 'माधव') बाबासे मिले। उन्होंने कहा – बाबा! नाटक बड़ा सुन्दर हुआ। सभीने मिलकर बड़ा सुन्दर अभिनय किया।

बाबाने उनसे कुछ कहा नहीं, पर वे मन-ही-मन कह रहे थे – क्या आप लोगोंने सुन्दर किया? आप और आपके मित्र क्या इतना सुन्दर कभी कर सकते थे? जब स्वयं श्रीराधारानीने सारा नियन्त्रण अपने हाथमें ले रखा था, तब भला नाटक सुन्दर क्यों नहीं होता? पल-पलपर और पद-पदपर वे प्रत्येक कार्यको प्रच्छन्न रूपसे सँभाल रही थीं।

ये तो बाबाके मनके भाव थे, परंतु प्रकट रूपसे तो बाबाने श्रीमाधवजीको साधुवाद ही दिया।

* * * * *

भगवती श्रीत्रिपुरसुंदरी उपासना

भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरी वृषभानुपुरनरेश सूर्यवंशीय श्रीवृषभानुजीकी कुलाधिष्ठात्री देवी हैं। शक्तिकी आदि-स्रोतस्विनी ये ही हैं। इन्हें ही आद्या-शक्ति कहते हैं। भगवती श्रीललिताम्बा, भगवती श्रीललितासुन्दरी आदि नाम इन्हींके हैं। महारानी कीर्तिदा एवं महाराज वृषभानुजीके भावपूर्ण पूजन-वन्दनसे प्रसन्न होकर भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीने माँ कार्तिदाकी ललित गोदमें श्रीराधाके रूपमें अवतार ग्रहण किया। ये ही भगवती श्रीराधा हैं। भगवती श्रीराधा और भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीमें सर्वथा अभिन्नता है। अपने महा-माधुर्यशाली स्वरूपके कारण जो सच्चिदानन्दमयी महाशक्ति भगवती श्रीराधाके रूपमें सुकीर्तित हैं, वे ही सर्वसमर्थ महाशक्ति अपने महा-ऐश्वर्यशाली स्वरूपके कारण भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीके रूपमें सुपूजित हैं। स्वरूप भेदसे एक ही महाशक्तिकी दो संज्ञाएँ हैं। मधुर भावकी दृष्टिसे जो श्रीराधाके रूपमें विख्यात हैं, वे ही ऐश्वर्य भावकी दृष्टिसे भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरी कहलाती हैं। भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरी ही व्रजमण्डलकी सम्पूर्ण लीलाओंकी सूत्रधारिणी हैं। इन्हें भगवती योगमाया भी कहते हैं और वे अघटन-घटना-पटीयसी

योगमाया ही सम्पूर्ण लीलाओंका संचालन, नियमन एवं संयमन करती हैं। शारदीय पूर्णिमाके दिन रास विलासके पूर्व इनका ही भगवान श्रीकृष्णने स्मरण किया था और इन भगवती योगमायाके उपाश्रित रहनेसे व्रजाङ्गनाओंके साथ शारदीय रास विहार सोल्लास सम्पन्न हो सका।

वैष्णवाचार्योंने प्रेमके सात स्तर बतलाये हैं। प्रगाढ़से प्रगाढ़तर होता हुआ उसका श्रेष्ठतम स्तर है महाभाव। इसी प्रकार श्रीवृषभानुजीके राजप्रासादके सात विशाल प्रवेश-द्वार हैं। सातवें प्रवेश-द्वारके बाद वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाका निज-सदन है। राजप्रासादके छठवें प्रवेश-द्वारमें भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीका भव्य मन्दिर है। उस मन्दिरमें 'पुण्ड्रेक्षुपाशांकुशपुष्पवाण' धारिणी चतुर्भुजा देवीकी स्वर्ण प्रतिमा प्रतिष्ठित है। दिव्याभामयी प्रतिमाका स्वर्ण अति विचित्र प्रकारका है। उस स्वर्णकी कान्ति इतनी अधिक दिव्य है कि उसके समक्ष इस लोककी उत्तमोत्तम स्वर्णकान्ति भी सर्वथा तुच्छ लगती है। भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीका वह स्वर्ण निर्मित श्रीविग्रह अत्यधिक देदीप्यमान है। इस मन्दिरमें नौ सदाशिव भगवतीकी सर्वदा अर्चना करते रहते हैं। ये सदाशिव भी प्रच्छन्न रूपमें श्रीकृष्ण ही हैं। राजप्रासादके सातवें द्वारमें प्रवेश पानेके लिये भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीकी प्रसन्नता नितान्त आवश्यक है। भगवतीकी प्रसन्नतासे ही वह सातवाँ द्वार खुलता है। जब भगवती प्रसन्न होती हैं तो वे अपने नेत्रोंसे संकेत करती हैं और संकेत पाकर वे महामहिमामय नौ सदाशिव प्रवेशार्थीके लिये सातवाँ द्वार खोलते हैं। रस-साधनाके राज्यमें चरम सिद्धिकी उपलब्धिके लिये भगवतीकी अर्चना अपरिहार्य है। भगवतीकी कृपासे ही चरम सिद्धि मिल पाती है।

गीतावाटिकाका एक सुन्दर प्रसंग है। एक दिन प्रभातकी सुन्दर वेलामें भगवान श्रीकृष्णने ही बाबाको भगवती त्रिपुरसुन्दरीकी उपासना करनेका निर्देश किया। उपासना करनेका निर्देश उन्होंने दे तो दिया, पर बाबाको यह नहीं बतलाया कि उपासनाकी विधि क्या है और किस मन्त्रसे उपासना करनी होगी।

गीतावाटिकामें परमैकान्तिक साधक ब्रह्मचारी श्रीरामचन्द्रनूजी रहते थे। वे भगवती त्रिपुरसुन्दरीके उपासक थे। गीतावाटिकाके पिछले भागमें

बनी हुई एक छोटी-सी कुटियाके अन्दर उन्होंने अपना सारा जीवन बिताया। वे आजीवन गीतावाटिकामें रहे और प्रतिदिन चौदह-पन्द्रह घंटेतक भगवती त्रिपुरसुन्दरीकी अर्चना किया करते थे। उनकी अर्चनामें जप और पाठकी प्रधानता थी। ब्रह्मचारीजीने शक्ति-मन्त्रकी दीक्षा तो वाराणसीके किसी संन्यासीसे ली थी, परंतु वे काञ्चीकामकोटिके पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराजमें गुरुभाव रखते थे।

बाबाने ब्रह्मचारीजीसे भगवती त्रिपुरसुन्दरीकी उपासनाके सम्बन्धमें जिज्ञासा व्यक्त की। शक्ति-उपासनाका विषय बड़ा विशद और रहस्यपूर्ण है। ब्रह्मचारीजीने बाबाको जो बतलाया और जितना बतलाया, उससे बाबाको सन्तोष नहीं हुआ। फिर बाबाने अनेक शक्ति-उपासना सम्बन्धी ग्रन्थोंका अवलोकन एवं अध्ययन किया। इससे भी बात बनी नहीं। भगवान श्रीकृष्णके आदेशका पालन अवश्य करना है और शीघ्र करना है, इस प्रकारकी तत्परता और त्वरा बाबाके मनमें होनेके बाद भी उपासनाकी विधि निश्चित नहीं हो पा रही थी। इस विवशताकी स्थितिमें बाबाने श्रीललिता-सहस्रनाम-स्तोत्रके सहस्र नामोंके आधारपर हजार मन्त्रोंकी रचना स्वयं ही कर डाली।

भगवतीकी अर्चना हेतु बाबाने एक कोटि मन्त्र-जपका संकल्प किया। आजकल जहाँ बाबूजीकी समाधि है, इसीके पासमें बाबाकी पहलेवाली पुरानी कुटिया है। इसी कुटियाके अन्दर बाबा ऊनी आसनपर उत्तराभिमुख होकर बैठते थे। मन्त्र-जपके दैनिक नियमको पूर्ण करनेके लिये बाबाको प्रतिदिन चौदह-चौदह घंटेतक आसनपर बैठना पड़ता था। उपासनाके लिये प्रतिदिन कई सहस्र कमल-पुष्प चाहिये थे, पर कम-से-कम एक सहस्रकी नितान्त आवश्यकता थी। पुष्पोंके प्रबन्धका भार बाबूजीने श्रीरामसनेहीजीको सौंप रखा था। सहस्र पुष्पोंके प्रबन्धमें बड़ी कठिनाई आती थी। इस दुर्निवार कठिनाईके कारण बाबाको अपनी उपासना-विधिमें थोड़ा परिवर्तन करना पड़ा। कमल-पुष्पके स्थानपर अखण्ड चावलका प्रयोग करना पड़ा। बाबा अखण्ड चावलका प्रयोग करने लगे, किन्तु यह काम भी साधारण नहीं था। अर्चनाके लिये अखण्ड चावलोंको प्रतिदिन चुगकर इकट्ठा करना, यह भी अपने ढंगकी कठिनाईसे भरपूर

कार्य था। बाबाको अपनी उपासना-विधिमें फिर परिवर्तनका समावेश करना पड़ा। अब बाबाने चावलके स्थानपर लाल चन्दन और कुमकुमका प्रयोग करना आरम्भ कर दिया। लाल चन्दनको घिसकर तैयार करनेका तथा बिल्वपत्र-तुलसीदल-पुष्पादि पूजन सामग्रीको व्यवस्थित रख देनेका दायित्व भी श्रीरामसनेहीजीपर था, परंतु बाबा कुमकुमका निर्माण स्वयं किया करते थे। बाजारमें मिलनेवाली कुमकुममें बाबाको अशुद्धिकी गन्ध आती थी। लाल चन्दन और कुमकुमके प्रयोगसे सबसे बड़ी सुविधा यह हुई कि अधिक संख्यामें जप कर सकना सम्भव हो गया। कमल-पुष्प और अखण्ड चावलकी संख्या सीमित होनेके कारण जप भी सीमित हो पाता था। अब यह बाधा कुमकुमके प्रयोगसे समाप्त हो गयी।

शुभ कार्यमें बाधा आती ही है और कभी-कभी बड़े भीषण रूपमें आती है। सं. २००७ वि. (सन् १९५०-५१) की शीत ऋतुमें बाबाको बड़ी कठिन परिस्थितिका सामना करना पड़ गया। घटना २० जनवरी १९५१ की है। इन दिनों बाबा कुएँसे जल स्वयं ही निकाल कर स्नान किया करते थे। कुएँके जगतपर गड्ढे भी थे, जिनपर काई जमी हुई थी। वर्षाके कारण बड़ी फिसलन हो रही थी। दातुन करके बाबा स्नान करनेके लिये बढ़े ही थे कि उनकी खड़ाऊँ फिसल गयी और वे धड़ामसे भूमिपर गिर पड़े। गिरते ही बाबाको बड़ी चोट लगी और आँखोंके आगे अँधेरा छा गया। कुछ क्षणोंके लिये तो चेतना भी नहीं रही। परिचर्या हेतु श्रीरामसनेहीजी पास ही खड़े थे। उन्होंने बाबाको उठानेका प्रयास किया, पर वे उठा नहीं पाये। फिर रामसनेहीजीके पुकारनेपर कई लोग दौड़कर आ गये। बाबूजी भी तत्काल आ गये। बाबाके दाहिने कंधेमें भीषण वेदना थी। वेदनाको देखकर कोई मोचका और कोई गुम-चोटका संदेह कर रहा था। बाबाने बाबूजीसे कहा – वेदनाको देखते हुए ऐसा लग रहा है कि कहीं हड्डी टूट गयी है।

इस कष्टकी स्थितिमें भी बाबा प्रसन्न वदन थे। बाबाको उठाया गया तथा उनके वस्त्र बदले गये। गीतावाटिकाके समीपमें रेलवे अस्पताल है। बाबूजी बाबाको अस्पताल ले गये। वहाँ डाक्टर श्रीमाथुर साहबने एक्सरे लिया तो पता चला कि बाबाके दाहिने ओरके गलेकी हड्डी

(COLLAR BONE) टूट गयी है।

सारे संदेह दूर हो गये और सही स्थिति सामने आ गयी। बाबा बाबूजीके साथ अस्पतालसे गीतावाटिका चले आये। अब प्रश्न था चिकित्साका। लोगोंने चिकित्सा तथा औषधिके लिये अनुरोध किया तो बाबाको वह स्वीकार नहीं था। बाबाका बस, यही उत्तर था – यहाँ तो श्रीपोद्दार महाराज हैं और आप लोग हैं, अतः इतनी सारी दौड़-धूप हो रही है। यदि मैं घोर वनमें होता तो वहाँ कौन सँभालता?

रेलवे अस्पतालके डाक्टर श्रीमाथुर साहब बाबाको देखनेके लिये गीतावाटिका आये। उन्होंने भी बाबाको प्लास्टर बँधवा लेनेके लिये कहा, परंतु संन्यासी जीवनके नियमोंका आग्रह होनेके कारण बाबाने यह सुझाव स्वीकार ही नहीं किया। श्रीमाथुर साहब बड़े आस्तिक और साधु स्वभावके व्यक्ति थे। बाबाकी इस कठोर नियम-निष्ठासे वे बहुत अधिक प्रभावित हुए। बाबाने ज्यों ही प्लास्टर बँधवानेके लिये असम्मति व्यक्त की, त्यों ही श्रीमाथुर साहबने पूछा – क्या कम्बलकी पट्टीको काँखमें लगाकर गेरुए वस्त्रसे पट्टी बँधवानेमें भी आपको कोई आपत्ति है?

बाबाने कहा – इसमें तो कोई आपत्ति नहीं, परंतु मैं दिनमें शौचके बाद चार बार स्नान करता हूँ। प्रतिदिन वह स्नान तो होगा ही।

श्रीमाथुर साहबने समझ लिया कि नियमकी कठोरताके कारण बाबा स्नान अवश्य करेंगे, अतः विवशता भरे स्वरमें उन्होंने कहा – जब-जब आप स्नान करें, तब-तब पट्टी खोल लीजियेगा। बार-बार खोलनेसे हड्डीके जुड़नेमें समय अधिक लग जायेगा, परंतु कोई बात नहीं। आप स्नानके बाद पट्टी बँधवा लें। पूर्णतः नहीं बँधवानेकी अपेक्षा कम-से-कम इतना बँधवा लेना भी अवश्य लाभकर सिद्ध होगा।

बाबाकी अनुमति मिलनेपर श्रीमाथुर साहबने कम्बलके टुकड़ेका पैड काँखमें लगाकर गेरुए कपड़ेसे कसकर पट्टी बाँध दी। औषधि प्रयोगका तो प्रश्न ही नहीं था। इन दिनों डा.श्रीमाथुर साहबने बाबाकी बड़ी सेवा की। हड्डी टूटनेसे उत्पन्न होनेवाली वेदना कम नहीं होती। इस भीषण शारीरिक कष्टकी स्थितिमें भी भगवतीकी अर्चनाका क्रम खण्डित नहीं हुआ। अर्चनामें यह परमातिपरम कठिन विघ्न आया था, पर

बाबाकी निष्ठा-तत्परता-संलग्नता-दृढ़ता आदिके समक्ष उस विघ्नको भी अपना सिर झुका देना पड़ा। विघ्न आया, पर यह विघ्न अर्चनाके व्रतको प्रभावित नहीं कर सका। अर्चनाकी निरन्तरता सदा बनी रही। उस कष्टकी स्थितिमें भी अर्चनाका क्रम चल सके, एतदर्थ एक विशेष प्रकारकी काष्ठ-चौकी बनवायी गयी थी। इस चौकीपर बैठकर बाबा श्रद्धापूरित हृदयसे भगवतीकी अर्चना करते रहे। पहले सात दिन तो बड़ी पीड़ा रही, फिर वह पीड़ा क्रमशः कम होती चली गयी। हड्डीके जुड़ जानेके बाद तो स्थिति सामान्य हो गयी।

भगवतीकी अर्चनाका यह अखण्ड क्रम कितने मासतक निर्बाध रूपसे निरन्तर चलता रहा, यह निश्चित रूपसे कह सकना कठिन है, परंतु इस अर्चनावधिमें सम्भवतः चौबीस अथवा पच्चीस लाखके लगभग अर्चना सम्पन्न हो पायी होगी कि सं. २००८ वि. के वैशाख मासकी अक्षय तृतीया बुधवार (९ मई १९५१) के दिन भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीने बाबाको पावन दर्शन देकर कृतार्थ किया और अपना गुप्त मन्त्र बतलाया। यह मन्त्र-दान ही बाबाकी तीसरी भाव-दीक्षा है।

भगवती त्रिपुरसुन्दरीका अनुग्रह प्राप्त होनेके उपरान्त कोटि जपके संकल्पको पूर्ण करनेके स्थानपर बाबाने उनकी मानसिक अर्चना आरम्भ कर दी। बाबा द्वारा मानसिक पूजा प्रतिदिन तो होती ही थी, परंतु वे प्रत्येक शुक्रवारको विशेष रूपसे विस्तार पूर्वक किया करते थे। मानसिक पूजाका यह क्रम भविष्यमें सदा चलता ही रहा।

* * *

अनुमानतः सन् १९६० के आस-पासका एक प्रसंग है। बाबा बाबूजीके साथ स्वर्गाश्रममें गये हुए थे। बाबा गंगास्नानके लिये दोपहरके समय जाया करते थे। तटपर आकर बाबा पहले गंगाजीको प्रणाम करते और फिर अपनी मस्तीमें कुछ देरतक बैठे रहते। फिर गंगाजीके प्रवाहमें कटि-पर्यन्त प्रवेश करके बाबा लगभग आधा घंटा खड़े रहते। बाबाको याद नहीं रहा कि आज शुक्रवार है। यह विस्मृति साधारण प्रकारकी

सर्वथा नहीं थी। वृत्तिके अत्यधिक अन्तर्मुखी हो जानेके कारण बाबाको यह भान ही नहीं रहता था कि किस दिन कौन-सा वार अथवा कौन-सी तिथि है। अन्तर्मुखताकी प्रगाढ़ताके कारण कभी-कभी तो सूर्योदय-सूर्यास्ततकका भान नहीं होता था। भावकी प्रगाढ़ताके फलस्वरूप बाबाको यह स्मरण नहीं हुआ कि आज शुक्रवार है।

उसी समय एक पंजाबी मैया घाटपर खड़ी होकर कहने लगी – बेटा! आज शुक्रवार है। बेटा! आज शुक्रवार है। बेटा! आज शुक्रवार है।

बाबाने उसके कहनेपर ध्यान नहीं दिया, पर वह तो कहती ही चली जा रही थी। उसके लगातार कहनेसे बाबाकी वृत्ति थोड़ी बहिर्मुख हुई। उनका ध्यान घाटपर खड़ी पंजाबी मैयाकी ओर गया। बाबाको ऐसा लगा कि भगवती त्रिपुरसुन्दरी ही उसके अन्दर प्रवेश करके मुझे शुक्रवारवाली पूजाकी स्मृति दिला रही हैं। नहाते-नहाते बाबा उस मैयाकी ओर मुड़े और उसकी ओर मुँह करके खड़े हो गये। जलमें खड़े-खड़े ही बाबाने हाथ जोड़कर तथा मस्तक नवाकर उस पंजाबी मैयाको प्रणाम किया तथा मन-ही-मन कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहने लगे – मातः! मेरी भूलका सुधार तुम ही तो करोगी। यदि तुम नहीं बतलाती तो आज शुक्रवारवाली पूजा छूट जाती।

बाबाने उस पंजाबी मैयाको हाथ जोड़कर जब प्रणाम कर लिया, तब जाकर वह चुप हुई। उस पंजाबी मैयाकी चर्चा न जाने कितनी बार बाबा कृतज्ञता भरे शब्दोंमें किया करते थे।

* * *

बाबा कई बार कहा करते थे – परमवन्द्य जगद्गुरु श्रीआदि-शंकराचार्यजी महाराजने भी भगवती त्रिपुरसुन्दरीकी उपासना की थी और उन्हें भी ऐसी ही परम सिद्धिकी उपलब्धि हुई थी।

ब्रह्माण्ड पुराणमें भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीके पूजन-पाठ-जप आदिका विस्तृत वर्णन दिया हुआ है। इसी पुराणमें भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीको शैलेन्द्रतनया, शिवप्रिया, उमा, कात्यायनी, ललिताम्बिका, गोविन्दरूपिणी, ललिता आदि नामोंसे भी अभिहित किया

गया है। अपने-अपने अनुभवोंके आधारपर विभिन्न भक्ति-आचार्योंकी अपनी-अपनी धारणाएँ हैं, किन्तु बाबाकी मान्यताके अनुसार व्रजभावके साधकके लिये भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीकी प्रसन्नता और अनुग्रह आवश्यक है। इनकी कृपा-दृष्टिसे ही रस-साधना सिद्ध होती है और साधकका वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाके मधुर-भावके रस-राज्यमें प्रवेश सम्भव हो पाता है।

* * *

भगवती श्रीत्रिपुरसुन्दरीजीकी अर्चनाके मध्य जो कठिन व्यवधान आया, उससे सम्बन्धित एक तथ्य की ओर किञ्चित् संकेत कर देना उचित रहेगा। भगवान श्रीकृष्णके निर्देशानुसार भगवती श्रीमन्महा-त्रिपुरसुन्दरीजीकी अर्चना करते समय बाबाके गलेकी हड्डी (COLLAR BONE) टूट गयी थी। अर्चनाके क्रममें यह बहुत बड़ा विघ्न था। बहुत दिनों बाद इस सम्बन्धमें चर्चा करते हुए बाबाने बतलाया – जब मेरी हँसलीकी हड्डी टूटी, तब उससे कुछ देर पूर्व मुझे अन्तर्जगतसे यह सूचना दी गयी कि अब समय हो गया है। मैंने इस संकेतसे यह अर्थ लगाया कि शायद अब शरीर न रहे। ऐसा सोच करके मैं प्रतीक्षा करने लगा कि अब आगे क्या होता है।

इसके कुछ देर पश्चात् अन्तर्जगतके एक दिव्य पुरुष प्रकट हुए। उनके शुभ्र दाढ़ी थी, वृद्धावस्था थी। उन दिव्य पुरुषने बतलाया कि तुमसे जुड़े हुए एक व्यक्तिके द्वारा कुछ समय पूर्व ही भीषण पाप घटित हुआ है। उसका भोग तुमको हाथों-हाथ भोगना है। मैं इसके लिये पूर्ण रूपसे तैयार हो गया कि देखें, किस रूपमें घटना घटित होती है। मैं इसी विचारमें डूबा हुआ स्नान करनेके लिये बढ़ा ही था कि उसी समय मेरी खड़ाऊँ फिसल गयी। फिसलते ही मैं धड़ामसे गिरा और मेरी हँसलीकी हड्डी टूट गयी।

बाबाके श्रीमुखसे इस वर्णनको सुनकर बड़ा विस्मय हो रहा था, परन्तु मनमें यह भाव भी उठ रहा था कि वे किस सीमातक निज जनोंका दायित्व स्वीकार करते हैं।

* * * * *

संकीर्तन के मध्य बालिका

राधा-नाम संकीर्तनका एक प्रसंग है। प्रत्येक रात्रिमें नाम-संकीर्तन हुआ करता था। संकीर्तन केवल 'राधा' नामका होता था। बाबा स्वयं संकीर्तनमें खड़े होते थे तथा नेतृत्व करते थे। बाबाके हाथमें घंटा रहा करता था, एक हाथमें घंटा और दूसरे हाथमें लकड़ीकी मोगरी। बाबा मोगरीसे घंटा बजाते जाते थे और चक्राकार घूमते जाते थे। बाबाके बोल चुकनेके बाद साथके सबलोग 'राधे राधे राधे राधे' कीर्तन करते जाते थे। कभी-कभी कीर्तन इतना अधिक जमता था कि सारी रात ही कीर्तनमें निकल जाया करती थी। कीर्तन करते समय जब बाबा 'राधा' नामको उच्च स्वरसे बोलते थे, तब प्रायः भावाधिक्यमें उनकी आँखें मुँद जाया करती थीं। ऐसी स्थितिमें तीन-चार व्यक्ति अपने हाथका घेरा बनाकर बाबाको घेरेके भीतर ले लिया करते थे। जैसे-जैसे बाबा घूमते, वैसे-वैसे ये लोग भी घूमते रहते थे। घेरेमें ले लेनेका प्रयोजन इतना ही था कि बाबा कहीं गिर न जायें, कहीं किसीसे टकरा न जायें अथवा कोई व्यक्ति बाबापर गिर न जाय।

एक दिन एक मैयाने एक विचित्र बात देखी। आठ वर्षकी एक बड़ी सुन्दर बालिका बाबाके पीछे-पीछे चल रही है तथा कीर्तन कर रही है। कीर्तनके भावावेशमें बाबा जिस प्रकार तथा जिस ओर अपनी गर्दन झुकाते अथवा लटकाते हैं, उसी प्रकार वह बालिका भी अपनी गर्दन झुकाती-लटकाती है। मैयाको एक बातकी बड़ी चिन्ता थी कि कहीं यह बालिका दबकर पिच न जाय। कीर्तन करनेवालोंकी भीड़ है। लोगोंको इतना होश ही नहीं कि उस बालिकाका ख्याल रख सकें। सभी लोग अपनी-अपनी मस्तीमें उच्च स्वरसे कीर्तन कर रहे हैं। उन्हें भला क्या ध्यान कि कौन आगे है, कौन पीछे है, कौन बगलमें है? बाबाका उत्साह और उल्लास सबमें संक्रमित होकर सबको कीर्तनमें बावला बना रहा है। उन उमंग भरे बावलोंकी झूमती हुई भीड़में कहीं यह बालिका दब न जाय! लोग तो कीर्तनमें मस्त हो रहे थे, पर वह मैया तो उस बालिकाकी चिन्तामें ही मरी जा रही थी। उसका यह भी साहस नहीं था कि आगे बढ़कर बालिकाकी रक्षाका कोई उपाय करे।

कहीं मुझसे बाबाका स्पर्श हो गया तो बाबाके लिये चौबीस घंटेका उपवास हो जायेगा और तब एक नयी भीषण समस्या खड़ी हो जायेगी। अस्तु, मैयाकी भावनाएँ तो विकल थीं, पर कोई उपाय दिखलायी नहीं दे रहा था। मैया अपनी मानसिक उथल-पुथलमें उलझी हुई थी, पर कीर्तनका प्रवाह बहता ही रहा। आज कीर्तनका विराम जल्दी हो गया। कीर्तनके विराम होते ही मैया उस बालिकाके पास दौड़ी, जिससे उसकी रक्षाकी व्यवस्था और उसकी थकावटका निवारण कर सके, पर वह बालिका अब कहाँ गयी? बहुत खोजा, पर वह बालिका मिली नहीं। अभी तो यहाँ थी और अभी-अभी कहाँ चली गयी? जल्दी ही वह मैया समझ गयी, वह कोई इस लोककी बालिका थोड़े ही थी। मैयाने अपना सौभाग्य माना कि राधा नाम संकीर्तनके मध्य उस दिव्य बालिकाका दर्शन मिला।

इस प्रकारके अद्‌भुत प्रसंग बाबाके जीवनमें कई बार घटित हुए हैं।

* * * * *

पुराणों का श्रवण

आदरणीय श्रीशिवनाथजी दूबे 'कल्याण' पत्रिकाके सम्पादकीय विभागमें कार्य किया करते थे। 'कल्याण' पत्रिकाका सम्पादकीय विभाग अब गीतावाटिकासे गीताप्रेस चला गया है। जबतक वह गीतावाटिकामें रहा, तबतक श्रीदूबेजी सम्पादकीय विभागके सदस्य रहे। श्रीदूबेजी वाराणसीसे गीतावाटिका सम्पादकीय विभागमें कार्य करनेके लिये आये थे। बाबूजी अपने पत्र उनसे लिखवाया करते थे।

श्रीदूबेजी प्रतिदिन बाबाको प्रणाम करने जाया करते थे। प्रणाम करके उनकी कुटियाके सामने एक चौकीपर वे बैठ जाया करते थे। एक दिन बाबाने उनसे पूछा – क्या आप मुझे श्रीरामचरितमानस सुना सकते हैं?

श्रीदूबेजीने कहा – आप सुनकर देखें कि मैं कैसा पढ़ता हूँ।

श्रीदूबेजीने बाबाको नौ दिनमें श्रीरामचरितमानसका सम्पूर्ण पाठ

सुनाया। उनके वाचनकी शैली तथा उच्चारणकी स्पष्टता बाबाको अच्छी लगी। बाबाने फिर पूछा – क्या आप धाराप्रवाह संस्कृत पढ़ सकते हैं?

श्रीदूबेजीने पुनः उसी रीतिसे उत्तर दिया – आप सुनकर देख लें कि मैं कैसा पढ़ता हूँ।

बाबाने कहा – श्रीरामचरितमानसके बाद आप मुझे अध्यात्म रामायण सुनाइये।

अब अध्यात्म रामायणके वाचन-श्रवणके क्रमका आरम्भ हो गया। प्रातःकाल शौच-स्नानादिसे निवृत्त होकर बाबा और श्रीदूबेजी, दोनों ही बैठ जाते। आजकल जिस बिल्व-वृक्षके नीचे प्रत्येक सोमवारको श्रीशिवार्चन हुआ करता है, वहीं बाँसकी एक छतरी बनी हुई थी, उसी छतरीके नीचे यह वाचन-श्रवण होता। उस बाँसकी छतरीके स्थानपर अब तो संगमरमर-सीमेंटकी उतनी ही बड़ी पक्की छतरी बन गयी है। यह छतरी इतनी बड़ी थी कि एक वक्ता और एक श्रोता बैठ जायें। यह बिल्व-वृक्ष बाबूजीकी समाधिके एकदम समीप है।

बाबाने श्रीदूबेजीसे सम्पूर्ण अध्यात्म रामायण सुनी। हिन्दीके समान संस्कृतका वाचन भी बाबाको अच्छा लगा। अध्यात्म रामायणके सम्पूर्ण होनेपर श्रीमद्भागवत महापुराणके वाचन-श्रवणका क्रम चल पड़ा। क्रमशः बात ऐसी बन गयी कि एक पुराणके पूर्ण होते ही दूसरे पुराणका वाचन-श्रवण आरम्भ हो जाता। पुराणोंके वाचन-श्रवणका यह क्रम, दो-तीन मासतककी बात कौन कहे, सन् १९५१ के बाद कुछ वर्षोंतक चलता रहा। क्रम-क्रमसे बाबाने सत्तरह (१७) पुराण सुन लिये। बस, अन्तिम एक मात्र गरुड पुराण सुनाना-सुनना शेष रह गया था। हिन्दू परिवारोंमें ऐसी परम्परा है कि गरुड पुराण सुनाया जाता है किसीकी मृत्यु होनेपर। अन्तिम गरुड पुराण सुनानेका क्रम जब आया तो श्रीदूबेजीने कहा – बाबा! यह पुराण मैं आपको कैसे सुनाऊँ? मैं तो गृहस्थाश्रमी हूँ। इसके सुनानेकी परम्परा तो और ही है। किसीके निधन होनेपर इसको सुना जाता है।

बाबाने कहा – आप गृहस्थाश्रमी हैं, पर मैं तो चतुर्थाश्रमी संन्यासी हूँ। लोकाचारका यह नियम मुझपर लागू नहीं होता।

इसके बाद भी किसी अशुभकी आशंकासे श्रीदूबेजीका मन गरुड पुराण सुनानेके लिये तैयार नहीं हुआ। श्रीदूबेजीके मनके संकोचको देखकर

बाबाने सम्पादकीय विभागके पुस्तकालयसे खुले पृष्ठोंवाला गरुड पुराण मँगवाकर स्वयं पूरा पढ़ लिया। स्वयं ही पढ़ा और स्वयं ही सुना। इस प्रकार उस बिल्व-वृक्षके नीचे बाबाने अट्ठारहों पुराणोंको सुना। इस वृक्षके बिल्व फल बड़े ही सुमधुर होते हैं। मधुरताके अतिरिक्त एक बात और, किसी-किसी बिल्व फलमें बीज नहीं होते, जो स्वयंमें एक विचित्रता है।

बाबाने बिल्व-वृक्षके नीचे अट्ठारह पुराण सुने, पर सबसे आश्चर्यकी बात है श्रीशिव-पुराणके समयकी। नौ दिन और नौ रात्रितक न तो बाबा सोये और न श्रीदूबेजी सोये। व्यास-पीठके आसनसे श्रीदूबेजी और श्रद्धालु-श्रोताके आसनसे बाबा केवल शौच-स्नान तथा आहारादिके लिये उठते थे, अन्यथा नौ दिन और नौ राततक लगातार अखण्ड रूपसे वाचन-श्रवणका क्रम चलता रहा।

* * *

एक बार श्रीदूबेजीसे बात हो रही थी तो उन्होंने बताया – नौ दिन और नौ राततक लगातार बिना सोये और बिना विश्राम किये अखण्ड रूपसे पाठ करना और सुनाना, इसके बारेमें जब मैं आज सोचता हूँ तो परम विस्मय होता है। मैं तो एक साधारण स्तरका गृहस्थ हूँ। इस प्रकारका कार्य मेरे द्वारा हो सकना, मेरी कल्पना और मेरी क्षमताके सर्वथा बाहरकी बात है। न जाने कैसे एक सर्वथा अशक्य बात पूर्णतः सम्भव हो गयी। मेरे लिये आज भी यह रहस्य ही है कि किस अचिन्त्य शक्तिने मुझे माध्यम बनाकर इस प्रकार करवा लिया। कुछ भी हो, उन नौ दिनोंमें सारा श्रीशिवपुराण सम्पूर्ण हो गया।

बातचीतके मध्य मैंने श्रीदूबेजीसे पूछा – ऐसा सुना है कि आपके गुरुदेवने बाबाके हाथ आपको सौंपा है। यह कैसे हुआ?

श्रीदूबेजीने मेरी जिज्ञासाका समाधान करते हुए जो बतलाया, वह सब संत-चरणाश्रयका अत्यधिक परिपोषक है। श्रीदूबेजीके गुरुदेव महाराजका नाम था पूज्य श्रीनन्दकिशोरजी मुखोपाध्याय। श्रीमुखोपाध्यायजी सुयोग्य शिष्य थे परम पूज्य श्रीशिवराम किंकर योगत्रयानन्दजीके। (इन दोनों संतोंका संक्षिप्त जीवन-वृत्त 'कल्याण'

पत्रिकाके भक्त-चरित-विशेषांकमें छपा है।) श्रीमुखोपाध्यायजी काशीमें वास करते थे। साथमें माताजी भी रहती थीं। आजन्म ब्रह्मचारी रहते हुए श्रीमुखोपाध्यायजीने भारतीय ऋषियोंका-सा जीवन व्यतीत किया। शास्त्र-निष्ठा, तपोमय जीवन और सदाचारकी वे साक्षात् मूर्ति थे। श्रीदूबेजी अपने बचपनमें श्रीमुखोपाध्यायजीके पास ही रहते थे। श्रीदूबेजीपर उनका बड़ा वात्सल्य था।

श्रीदूबेजी बाबाको जब स्कन्द पुराण अथवा वाराह पुराण सुना रहे थे, तबकी बात है। 'कल्याण' पत्रिकाका भक्त-चरित विशेषांक सन् १९५२ के जनवरीमें छपा था, इससे पहलेकी यह बात है। पुराण खोलकर श्रीदूबेजीने ज्यों ही एक श्लोक पढ़ना आरम्भ किया, तभी बाबाने कहा – राधा राधा।

श्रीदूबेजी आँख उठाकर बाबाकी ओर देखने लगे। इन दिनों बाबा मौन रहा करते थे। यदि कुछ कहना होता था तो इशारेसे कहते थे अथवा अपनी हथेलीपर अँगुलीसे लिखकर बता दिया करते थे। बाबाने इशारेसे कहा – पुराणकी पोथी बन्द कर दीजिये।

बाबाका ऐसा संकेत मिलते ही श्रीदूबेजीने कहा – अभी तो एक श्लोकका वाचन भी नहीं हुआ। एक श्लोकके पूरा होनेके पहले ही आपने पोथी बन्द कर देनेके लिये इशारा कर दिया।

श्रीदूबेजीके ऐसा कहनेके बाद भी बाबाने पुनः इशारेसे कहा – आप पोथीको बन्द कर दें।

श्रीदूबेजीने नत-मस्तक होकर कहा – जैसी आपकी आज्ञा। सुनना तो आपको है।

श्रीदूबेजीने पुराणकी पोथी बन्द कर दी। बाबाके संकेतके अनुसार श्रीदूबेजी चुपचाप बैठ गये। थोड़ी देर बाद बाबा अपनी हथेलीपर लिखकर बातचीत करने लगे। बाबाने श्रीदूबेजीसे पूछा – क्या आपके श्रीगुरुजी गौर वर्णके थे?

श्रीदूबेजी – जी हाँ।

बाबा – क्या उनके शीशपर ऐसे और इतने लम्बे-लम्बे केश थे?

श्रीदूबेजी – आप यथार्थ कह रहे हैं।

बाबा – क्या वे अपने शरीरपर इस रीतिसे वस्त्र धारण करते थे?

श्रीदूबेजी – आप जैसा बता रहे हैं, वे सर्वथा वैसे ही वस्त्र पहनते थे।

बाबा – क्या आपका नाम इस प्रकारसे बोलकर पुकारा करते थे?

श्रीदूबेजी – आप तो इस ढंगसे बोल रहे हैं, मानो वे ही बोल रहे हों। आपने तो उनके बोलनेकी शैलीकी नकल भी ज्यों-की-त्यों कर ली।

श्रीदूबेजीको बड़ा आश्चर्य हो रहा था कि बाबाको यह सब कैसे पता चल गया। बाबाने तो कभी उनके दर्शन किये नहीं थे, फिर भी बाबा द्वारा बतलायी गयी सभी बातें एकदम सही हैं। इधर श्रीदूबेजी विस्मित हो रहे थे, उधर बाबाका प्रत्येक प्रश्न उस विस्मयको और भी बढ़ाता चला जा रहा था।

अब सर्वान्तमें बाबाने कहा – आज आपके गुरुदेव मेरे पास आये थे।

बाबाके ऐसा कहते ही श्रीदूबेजीका कौतूहल बहुत बढ़ गया। उत्सुकतापूर्वक बाबाकी ओर देखते हुए श्रीदूबेने पूछा – वे कब आये थे और आपसे क्या कह रहे थे?

बाबाने कहा – वे आज प्रातःकाल अपने सूक्ष्म शरीरसे आये थे। वे बड़े ही दिव्यात्मा थे। उन्होंने बतलाया कि मैं अपना पाञ्चभौतिक स्थूल कलेवर काशीमें परित्याग करके अब और भी उच्चतर लोकोंको जा रहा हूँ। इस शिवनाथके प्रति मेरा बड़ा वात्सल्य है। इस वात्सल्यके कारण इसकी स्मृति बनी रहती है। यदि आप इसका दायित्व स्वीकार कर लें तो मैं निश्चिन्त हो जाऊँ। आप महात्मा हैं। आप द्वारा भार सँभाल लिये जानेपर मैं सर्वथा चिन्ता-विमुक्त हो जाऊँगा। आपके श्रीगुरुजीद्वारा ऐसा कहे जानेपर मैंने निवेदन किया कि जबतक मेरा शरीर है, तबतक मैं श्रीशिवनाथकी सँभाल हर प्रकारसे करूँगा। मेरे द्वारा आश्वासन पाकर वे प्रसन्न हो गये और फिर वे चले गये।

श्रीगुरुदेवकी इस वत्सलताको देखकर श्रीदूबेजीका हृदय भर

आया और बाबासे गद्‌गद्‌ वाणीमें कहने लगे – गुरुदेवके इस वात्सल्यको पाकर मैं धन्य हो गया। जबतक जीवित रहे, तबतक तो सँभाला ही, शरीरका परित्याग करनेके बाद भी उन्हें सँभालकी चिन्ता बनी रही।

पूज्य श्रीमुखोपाध्यायजीको जो आश्वासन बाबाने दिया था, उसका निर्वाह करनेमें बाबाके सामने कम बाधाएँ नहीं आयीं। बाबाको बहुत परेशानियाँ उठानी पड़ीं। बाबाकी तत्परताके कारण कभी-कभी साथके लोग भी झुँझला उठते थे, पर इन लोगोंको क्या पता कि बाबाने किसी उच्च-लोक-गत संतको क्या वचन दे रखा है। अनेक बाधाओंके बाद भी अपने प्रदत्त आश्वासनको निभानेमें बाबाकी जैसी अ-शिथिल तत्परता और जैसा अ-मन्द उत्साह सदैव रहा, उसकी स्मृति आज भी अन्तरको विस्मयान्वित बना देती है।

* * * * *

साँप से निर्भीकता

बाबा गीतावाटिकाकी कुटियामें चौकीपर पद्मासन लगाये ध्यानस्थ बैठे हुए थे। रेंगते-घूमते हुए एक साँप आया और धीरे-धीरे चौकीपर चढ़कर बाबाकी जाँघ और हथेलीपर रेंगने लगा। ठण्डकी अनुभूति होनेपर उन्होंने अपने नेत्र खोले और उन्होंने देखा कि शरीरपर एक विषधर रेंग रहा है। देखकर भी वे पूर्ववत्‌ ध्यानस्थ हो गये। इसी बीच श्रीरामसनेहीजी कुटियामें आये और उनकी दृष्टि साँपकर पड़ी तो घबड़ा करके बाबाको सावधान करते हुए कहने लगे – बाबा! साँप।

उनकी आवाज सुनकर बाबाने उनको शान्त रहनेका संकेत देनेके लिये अपने मुँहपर तर्जनी अँगुली रख ली और इशारेसे चुपचाप चले जानेके लिये कह दिया। बाबाका चित्त शान्त था, पर उनका नहीं। वे तुरन्त बाबूजीके पास गये और बाबूजी दौड़कर कुटियामें आये। तबतक साँप चौकीसे उतर आया था। बाबूजीने बाबासे कहा – बाबा! आप मेरी प्रार्थना या आदेश, जो समझिये, मानकर बाहर चले आइये।

बाबा चुपचाप बाहर चले आये। तबतक कई व्यक्ति वहाँ इकट्ठे हो गये थे। बाबाके आदेशानुसार वह साँप मारा नहीं गया, बल्कि लकड़ीके बड़े कैंचेसे पकड़कर बाहर बहुत दूर छोड़ दिया गया।

अगली घटना उन दिनोंकी है, जब बाबाने पण्डित श्रीशिवनाथजी दुबेसे सत्तरहों पुराण सुने थे। श्रीदुबेजी सबेरे नौ-दस बजे पुराण सुनानेके लिये आया करते थे। उनके आनेका समय हो चुका था। उसी समय एक बहुत बड़ा गेहुअन साँप रेंगते-रेंगते आ निकला। बाबा खड़े रहे और मन-ही-मन उससे कहते रहे – देखिये महाराज, मुझसे तो आपकी कोई हानि नहीं होगी, किन्तु श्रीशिवनाथ दुबे आ रहे हैं। वे साँपसे बहुत डरते हैं। यदि वे आ गये और आपको देखकर शोर मचाना शुरू कर दिया तो फिर कई लोग आ जायेंगे और वे सब मिलकर आपकी जीवन-लीला समाप्त कर दे सकते हैं, अतः आप चले जाइये और छिप जाइये।

बाबा उनसे चुपचाप निवेदन कर रहे थे। सचमुच उस साँपने वह प्रार्थना सुन ली और वे एक झाड़ीमें चले गये। पर हुआ क्या? वे झाड़ीमें चले तो गये, परन्तु उनकी पूँछका बहुत बड़ा भाग बाहर दिखलायी दे रहा था। बाबाको संदेह था कि लोग उसे देखकर कहीं साँपको मार न दें। बाबा चाहते थे कि वे झाड़ीमें पूर्णतः छिप जायें, अतः उन्होंने हाथमें एक लकड़ी लेकर उसके पूँछको छुला दिया, जिससे वे अपनी पूँछको झाड़ीके भीतर कर लें। अन्दर करना तो दूर रहा, वे बाहर निकल आये। पूर्णतः बाहर निकलकर और एक हाथकी दूरीपर स्थित होकर उसने अपने फनको काफी ऊँचा कर लिया और काफी भयंकर फुफकार छोड़ते हुए बाबाकी ओर आक्रमण किया। बाबा भी अपने ही ढंगके थे। पूर्ण निर्भीकताके साथ वे वहीं खड़े रहे। ज्यों-के-त्यों खड़े रहकर उन्होंने फिर मन-ही-मन सर्पसे कहा –मैं तो आपकी रक्षाका उपाय कर रहा हूँ और आप मुझ ही पर क्रुद्ध हो रहे हैं।

इधर बाबा मन-ही-मन साँपसे निवेदन कर रहे थे और उधर साँपने दो-तीन बार फन फेंककर फुफकारते हुए बाबापर आक्रमण किया। बाबा फिर भी ज्यों-के-त्यों खड़े रहे और मन-ही-मन उनसे कहा – यदि आप मेरी जीवन-लीला समाप्त करनेके लिये ही आये हैं तो मैं आपका स्वागत करता हूँ।

इसके बाद वह साँप अपने आप एक ओर चला गया और फिर अदृश्य हो गया। बाबाके जीवनमें ऐसी और भी कई घटनाएँ हैं, पर प्रत्येक बार सर्पसे वे सर्वथा निर्भीक बने रहे। बाबाके लिये तो सर्प भगवत्स्वरूप ही था। क्या पशु और क्या पक्षी, क्या देव और क्या मानव,

क्या जड़ और क्या चेतन, इन सभीके प्रति बाबाका भगवद्भाव बड़ा सुदृढ़ था, पर बाबा ऐसा भी कहा करते थे— मेरी देखा-देखी नहीं करनी चाहिये। यदि साँपको देखकर तनिक भी भय लगता हो तो आत्मरक्षाका उपाय अवश्य करना चाहिये। जीवनको जोखिममें डालकर उसके सामने जानेका साहस नहीं करना चाहिये। कुछ भी हो, यह तो सत्य ही है कि साँपके रूपमें भगवान ही हैं।

* * * * *

एक असफल योजना

यह योजना थी बाबाकी भेंट जन्मदात्री माँसे एक बार करवा देनेकी। जन्मदात्री माँका बाबाके प्रति बड़ा वात्सल्य था, सीमातीत ममत्व था। बाबा तो संन्यास ले चुके थे और वह माँ अपने संन्यासी बेटेको एक बार फिरसे देखनेके लिये बड़ी व्याकुल थी। उसकी आँखें तरस रही थीं। संन्यास-धर्मके अनुसार संन्यासी एक बार घर जाता है तथा जाकर माता-पिताको प्रणाम करता है। इसके अनुसार बाबा तो घर जाकर माँके श्रीचरणोंका दर्शन कर चुके थे। इसके अतिरिक्त बाबा एक बार और गये थे, तब श्रीमद्भागवतमहापुराणकी पावन सप्ताह-कथाका आयोजन भी हुआ था बाबाकी प्रेरणासे। इस आयोजनका हेतु था वह आश्वासन, जो कभी बाबाने अपनी माँको दिया था और तब घरपर वह सप्ताह-कथा कही थी पूज्य पं. श्रीदेवदत्तजी मिश्रने, परंतु उस बातको भी तो कई वर्ष व्यतीत हो गये। माँके मनकी बेकलीकी सीमा नहीं थी। फिरसे अपने बेटेको देखनेके लिये माँका मन बड़ा अकुला रहा था। 'करति बिलाप मनहिं मन भारी'। हृदयमें हाहाकार मचा था कि एक बार मेरा बेटा मेरे पास आ जाये। जिसे नौ मासतक गर्भमें रखा, जिसे नौ वर्षोंतक अपने स्तनोंका दूध पिलाया और जिसे अपने आँचलकी छायामें पाल-पोसकर बड़ा किया, अपने उस बेटेकी यादमें रात-दिन बिसूरती रहती। माँकी दशा यह थी, 'जनु बिनु पंख बिहग अकुलाही'। वह बार-बार यही सोचती कि एक बार अपने बेटेके शरीरपर मैं हाथ फेर लूँगी तो मेरा कलेजा ठण्डा हो जायेगा। जब बाबाका जन्म हुआ था, तब माँको प्रसव-वेदना बहुत कम भोगनी पड़ी थी। बाबाने अपनी आयुके नौ वर्षोंतक माँके स्तनोंका पान

किया था। पाठशालासे पढ़कर आनेके बाद पहला कार्य होता था स्तन-पान करना। माँ कितना ही मना करे, पर पुत्र मानता था क्या? बाल-हठके सामने माँको झुकना ही पड़ता था। ऐसे प्यारे बेटेके लिये माँका हृदय छटपटाये तो क्या आश्चर्य? न दिनमें चैन, न रातमें चैन। अमिलनके दुःखसे उसका अन्तर अत्यधिक संतप्त था।

माँके हृदयकी छटपटाहटने परिवारके अन्य सदस्योंके हृदयमें भी बड़ी व्यथा उत्पन्न कर दी। वे लोग गीतावाटिका आकर बाबूजीसे मिले। उन लोगोंने माँकी मनस्थितिका जैसा चित्रण किया, उससे बाबूजीका अन्तर भी द्रवित हो उठा। सभी चाहते थे कि किसी प्रकार माँके मनको परितोष मिले, पर बाबाके नियमोंकी कठोरताको देखते हुए इस समस्याका कोई समाधान सूझ नहीं रहा था। कोई उपाय उभरकर सामने नहीं आ रहा था, जिसे क्रियान्वित किया जा सके। बहुत विचार करनेके बाद एक बात ध्यानमें आयी। बाबाकी माँ तो गीतावाटिका नहीं आ सकती। यदि वह गीतावाटिका आयेगी तो बाबा तुरंत बाबूजीका साथ छोड़कर गीतावाटिकासे वृन्दावनधामके लिये चल देंगे, हमेशाके लिये चले जायेंगे। अतः एक दूसरे उपायका आश्रय आवश्यक हो गया। बाबाकी माँ बाबूजीसे मिलनेके बहाने भी गीतावाटिका नहीं आ सकती, पर बाबूजी तो बाबाकी माँके पास मिलनेके बहानेसे जा ही सकते हैं। इसी चिन्तनके आधारपर एक नवीन योजना बनायी गयी।

बिहारके डेहरी-आन-सोनसे पश्चिम बंगालके दिनाजपुरतक कैनाल-रोड है। इसी लम्बे मार्गपर गया जिलेमें अरवल नामक बस्ती है। अरवलसे तीन मील पूर्वकी ओर बाबाका गाँव फखरपुर है। बाबाको लेकर बाबूजी कारसे अरवल आ जायें और माँ भी फखरपुरसे अरवल आ जाये। यहीं माँकी बाबासे भेंट करा दी जायेगी। यहाँ माँ अपने हाथसे बाबाको कुछ खिला देगी। यदि यह योजना सफल हो गयी तो बाबाके अनेक नियमोंका निर्वाह भी हो जायेगा और माँकी अभिलाषा भी पूर्ण हो जायेगी। यह सारी योजना बाबाको बिना बताये बनायी गयी थी। यदि बाबाको तनिक भी गंध मिल जाती तो सारी योजनापर पानी फिर जाता। इस गुप्त योजनाके अनुसार गोरखपुरसे प्रस्थान करनेकी तिथि भी निश्चित हो गयी। बाबूजीने बाबाके पास संदेश भिजवा दिया – आज रातको एक स्थानपर ट्रेनसे चलना है, अतः आप चलनेके लिये तैयार रहें।

इस संदेशके मिलनेपर बाबा अपने सारे कृत्योंसे निवृत्त होकर संध्याके

समय कुटियाके बाहर आकर बेलके वृक्षके नीचे बैठ गये। बाबा तो जानेकी पूर्ण तैयारीसे बैठे थे। उसी समय अचिन्त्य भगवदीय विधानसे बाबाके संन्यास-धर्मकी रक्षाका संयोग घटित हो गया। भगवदीय प्रेरणासे एक व्यक्तिने आकर बाबाको बताया – बाबा! एक योजना बनायी गयी है, जिसकी जानकारी आपको नहीं है। आजकी यात्राका उद्देश्य है आपको आपके गाँवके पास ले जाना और आपको आपकी माँसे मिलाना। लोग कुछ भी आपको बतायें, पर असली बात यही है।

उस व्यक्तिने सारी योजनाका सही विवरण बाबाके सामने रख दिया। उस व्यक्तिको विदा करके बाबाने पूज्या माँको बुलाया तथा उनसे बाबा कहने लगे – तुम सब लोग जा रहे हो मेरे पूर्वाश्रमकी माताजीको सुख पहुँचानेके लिये, पर तुम मान लो कि इससे उसको दुःख हो जायेगा तथा भविष्यमें उसका अमंगल होगा।

बाबाने माँको सच्ची बात कही थी और उस सच्चाईका असर माँके हृदयपर हुआ। माँ बाबाके पाससे उठकर बाबूजीके पास गयी। उसने सारी बात बाबूजीको बता दी। बातचीतका परिणाम सुन्दर निकला। यात्राका विचार छोड़ दिया गया और फिर वह योजना भी सर्वथा विसर्जित हो गयी।

जो सोचा गया था, वह सब ढह गया, सर्वथा बिखर गया। बाबाके जानेका ढंग नहीं बैठ पाया और सभी अपने मनको मसोस कर रह गये। जितने भी निकटवर्ती जन थे, उन सबका संवेदनशील हृदय माँकी व्यथाको याद कर-करके व्यथित हो रहा था। मेरे परमादरणीय मित्र श्रीशिवनाथजी दूबेने एक दिन अवसर पाकर बाबासे कहा – आप नारी मात्रमें भगवती श्रीराधाका दर्शन करते हैं, फिर अपनी जन्मदात्री जननीसे एक बार मिल लेनेमें कौन-सा अपराध बन जाता है? आपसे मिलनेके लिये वे बड़ी ही व्याकुल हैं। दया करके आप मेरे निवेदनपर कुछ विचार करें।

अत्यन्त गम्भीर होकर बाबाने उत्तर दिया – दूबेजी! मुझे इस गैरिक वस्त्रकी मर्यादाकी रक्षा करने दीजिये। आप मेरी बातपर विश्वास कर सकें तो उत्तम ही होगा। आप सत्य मान लें कि अपने जीवनके अन्तिम समयमें मेरी माँ निश्चय ही ऐसा अनुभव करेगी कि मैं उसके समीप हूँ.........। जिन श्रीराधारानीपर मैंने अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया है, वे इतनी निष्ठुर नहीं हैं कि इस शरीरको जन्म देनेवाली मेरी माँको निराशा प्रदान करेंगी। दूबेजी! एक बात और है। जिस लाभपर दृष्टि टिकाये हुए आप यह

अनुरोध कर रहे हैं, वह लाभ सामयिक, तात्कालिक और क्षणिक है, परंतु मैं अपनी जन्मदात्री माँके हितमें जिस लाभका चिन्तन कर रहा हूँ, वह लाभ चिरन्तन, स्थायी, निरवधि होगा और जीवनके उस पार भी मेरी माँके लिये हितकारी होगा।

अब श्रीदूबेजी बाबाके समक्ष नतमस्तक थे।

* * * * *

आदेशानुवर्तन में प्रमाद

कृष्णजी बाबूजी एवं बाबाकी सेवा तत्परता पूर्वक किया ही करते थे, पर उनसे एक बार एक चूक हो गयी। सन् १९५२ के १८ नवम्बरकी बात है। १७ नवम्बरको मार्गशीर्ष मासकी अमावस्या थी और बाबाको कोई विशिष्ट पूजन-अर्चन करना था। इसके लिये भूमिको गायके गोबरसे लीप दिया जाना जरूरी था, पर यह काम उचित ढंगसे नहीं हो पाया। कार्यके प्रति जो लापरवाही हुई, इससे बाबाको बड़ा कष्ट हुआ। सेवा-कार्यमें जो त्रुटि हुई, उसकी ओर संकेत करनेके लिये और भविष्यमें ऐसी भूलकी आवृत्ति न हो, एतदर्थ सावधान करनेके लिये बाबाने भाई कृष्णजीको एक लिखित संदेश दिया। यह संदेश तो पर्याप्त विस्तृत है। उसका मुख्य अंश नीचे दिया जा रहा है –

देखो भैया,

मैंने रामसनेहीको कहा कि कृष्णको कहकर जगह लीपनेकी व्यवस्था करवा दो, मेरी खास पूजा है। रामसनेही तुम्हें कहकर चले गये। तुमने बद्री (माली) को कह दिया। बद्रीने श्रीपत (माली) को कह दिया। अब श्रीपतके पास कोई उपयुक्त व्यक्ति होता, तब तो वह भी उसे कह देता कि लीप दो, पर बाध्य होकर उसे ही लीपना पड़ा, पर आखिर वह उतनी जगह लीप ही नहीं सका, जितनी मुझे चाहिये थी। इस प्रकार हुकुमके क्रममें सब व्यवस्था ही गड़बड़ हो गयी। मेरी पूजा न हो सकी। अब देखो, यदि मैं सौ वर्ष भी और जीवित रहूँ, फिर भी विक्रमी संवत् २००९ की मार्गशीर्षकी अमावस्याका ब्राह्म मुहूर्त तो मेरे जीवनमें नहीं आयेगा। कलकी संध्या, कलका निशीथ एवं अभी-अभी चार घड़ी पूर्व व्यतीत हुई ऊषाका प्रकाश मैं फिर इस जीवनमें नहीं देख सकूँगा। पट्टीपर अंकित करते हुए इन

अक्षरोंके मूर्त होनेमें जो क्षण, लव, निमेष आदि व्यतीत हुए और होते जा रहे हैं, वे भी अतीतके गर्भमें समा गये। उनके दर्शन भी अब मुझे नहीं होंगे। उन क्षण, लव, निमेषका उपयोग मैं नहीं कर सकता। मेरे लिये अनन्त कालतक यह असम्भव हो गया कि मैं उन क्षणोंका उपयोग कर सकूँ। इस जीवनमें ही नहीं, कभी भी नहीं कर सकता। श्वेत वाराहकल्पके बाद भी सृष्टिका निर्माण होनेपर मैं चाहूँ कि अतीतके उस लव मात्र समयका उपयोग मैं कर लूँ, फिर भी सम्भव नहीं, क्यों कि उस समय भी अग्रिम कल्पकी ओर ही कालका प्रवाह रहेगा। अतीतकी ओर कालकी धारा आती ही नहीं। सारांश यह है कि प्रत्येक क्षण ऐसे अनमोल हैं कि वास्तवमें शब्दोंमें उनकी गम्भीरता व्यक्त नहीं की जा सकती। एक मात्र श्रीकृष्णचन्द्र ही ऐसे हैं, प्रभु ही ऐसे हैं, जहाँ कालका भी यह प्रभेद नहीं है। वहाँ उनके समीप अतीत नहीं, भविष्य नहीं, बस, सब कुछ वर्तमान ही वर्तमान है। बस, केवल उनके लिये ही समयकी अनमोलता नहीं। अन्यथा हम सभीको प्रत्येक क्षण, लव, निमेषतकका भी सदुपयोग कर लेना है, क्यों कि अतीतके गर्भमें समाये हुए कालको हम कभी अनन्त कालतक निकाल सकेंगे ही नहीं।

जो हो, इतना मैं इसीलिये कह रहा हूँ कि कभी कोई काम मैं सौंपूँ तो यथासाध्य उसे पूरी तत्परतासे करवा दो और करवाकर मुझे सूचना दिलवा दो, जिससे मैं देख तो लूँ कि वह भली प्रकार हुआ या नहीं। समय रहते यदि मुझे सूचना मिल जाय तो मैं स्वयं चेष्टा करके उसकी त्रुटि पूरी करवा लूँ, पर मुझे सूचना तब मिलती है, जब उसके पूरा करनेका समय भी समाप्त हो जाता है।

यह युग अब प्रेमके ह्रासका है। सेवा-भावना समाप्तप्राय हो चुकी है। तुम चाहोगे कि हुकुमसे काम हो जाय तो नहीं होगा और यदि होगा तो उसमें 'तम' के परमाणु भरे रहेंगे। हुकुमके द्वारा तुम मेरे लिये पूजाकी जगह प्रस्तुत नहीं करवा सकोगे। प्रेमसे या अर्थके मूल्यमें ही यह बात सम्भव है। बिना प्रेम या अर्थका उपयोग किये ही यदि तुम चाहोगे कि 'स्वामीजीकी पूजा सतोगुणी हो' तो वह केवल तुम्हारा भ्रम मात्र होगा। अतः भविष्यमें प्रत्येक पूर्णिमा एवं अमावस्याको किसी मजदूरके द्वारा अथवा किसीके द्वारा नियम पूर्वक पूरी जगह गोबरसे लिपवा दो। मैं

फिर गंगाजलसे उसका संस्कार कर लिया करूँगा, पर यह काम करानेसे पूर्व ही उन्हें कुछ खानेके लिये दे दो, अपने पाससे या गोस्वामीजीसे लेकर या भाईजीके खातेसे ही। जब भाईजी मेरे लिये इतना खर्च करते हैं तो महीनेमें एक रुपया पूजा की जगह लीपनेके लिये भी दे सकते हैं। और भइया! मैं तो तुम सबका ही हूँ। यदि भाईजी मेरे शरीरकी भूखके लिये रोटी देते हैं तो तुम लोग मेरे मनकी भूख इस अनुष्ठान-पूजाकी वासनाकी तृप्तिके लिये क्या इतनी-सी तत्परतासे नहीं कर सकते? तो भइया! आगेसे इतना ही कर दो कि मेरे कामोंको तत्परतासे करवा दिया करो और जो भी कराओ, उसे 'तमोगुणी' हो जानेसे बचाकर करवाओ, क्यों कि मुझे कण-कणसे 'सत्त्व' को एकत्र कर-कर ही अपने मनका एक महल निर्माण करना है तथा फिर इस समूचे महलके साथ ही गुणोंसे पार उड़ जानेका स्वप्न सजाना है, इस आशासे कि कदाचित् राधारानीकी कृपा ढलक जाय और मेरे ये सुन्दर स्वप्न 'सत्य' के रूपमें परिणत हो जायँ।

राधा-राधा

यह था लिखित संदेश बाबाका कृष्णजीके लिये। इस लिखित संदेशसे पूर्णतः स्पष्ट संकेत मिलता है कि बाबा अपने निज जनोंसे कितनी तत्परता और सतर्कताकी अपेक्षा रखते थे और इसके साथ ही यह भी पूर्णतः स्पष्ट संकेत मिलता है कि उनके आध्यात्मिक 'स्वप्न' कितने महान और लोकोत्तर थे तथा वे यहीं इस भूतलपर कितनी आतुरता पूर्वक श्रीप्रिया-प्रियतमके दिव्य भाव-राज्यके अवतरणके लिये उत्सुक रहे।

* * * * *

श्रीकनकबिहारीजीके दर्शन

एक बार बाबूजी (श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) सपरिवार अयोध्याधाम गये। साथमें बाबा थे ही। अयोध्या पहुँचनेपर पूज्या माँने कहा – श्रीसरयूजीमें स्नान करके श्रीकनकबिहारीजीका दर्शन करना चाहिये।

बाबूजीको यह प्रस्ताव पसन्द नहीं आया। इसके पीछे कारण यह था कि पहले ही काफी देर हो चुकी है, अब देरमें देर करनेसे क्या लाभ? स्नान करके फिर कपड़े बदलनेसे इतनी अधिक देर हो जायेगी कि मन्दिरमें पहुँचनेपर श्रीकनकबिहारीजीके पट बन्द मिलेंगे। यदि पट बन्द हो जायेंगे तो बहुत देरतक अयोध्यामें रुकना ही पड़ेगा। इन सब बातोंको सोचकर बाबूजी यही चाहते थे कि दर्शन कर लेनेके बाद स्नान किया जाय, परन्तु पूज्या माँको बिना स्नान किये मन्दिर जाना प्रिय नहीं लग रहा था। माँकी भावनाओंकी गरिमाको बाबूजी मनसे समझ रहे थे, पर अतिकाल हो जानेके भयसे पहले दर्शन कर लेनेकी बात बाबूजी कह रहे थे। जो भी हो, पूज्या माँका आग्रह देखकर श्रीसरयू-स्नानके लिये बाबूजीने सहमति प्रदान कर दी।

स्नानके बाद सभी लोग श्रीकनकभवन गये और बाबूजीको जिस बातकी आशंका थी, वही घटित हो गयी। श्रीकनकबिहारीजीके पट बन्द हो चुके थे। अब दर्शन अपराह्नकालके बाद ही हो सकते थे। कनकभवनके बाहर बरामदेमें बाबूजी बैठ गये और कल्याणके कागजोंका बंडल निकाल लिया प्रूफ देखनेके लिये। पासमें बाबा भी बैठ गये। साथके अन्य लोग अपने खान-पानके क्रममें लग गये। अब प्रश्न था बाबाकी भिक्षाका। बाबूजीने बाबासे पूछा – क्यों बाबा! आपकी भिक्षाके बनवानेका कार्य आरम्भ किया जाये क्या?

बाबाने कहा – मैं तो भिक्षा तबतक नहीं करूँगा, जबतक श्रीकनकबिहारीजीके दर्शन नहीं हो जायेंगे।

बाबूजीने किञ्चित् झुँझलाये स्वरमें बाबासे कहा – पहले ही देरमें देर हो गयी श्रीसरयूजीके स्नानके कारण और अब दर्शनके बाद भिक्षा बनेगी तो फिर न जाने कितनी देर और होगी?

प्रीतिरसावतार महाभावनिमग्न
श्रीराधा बाबा
(प्रथम भाग)
पृष्ठ संख्या
301-343
तक
राधेश्याम बंका

बाबाने भी उसी स्थिरताके साथ निवेदन किया – चाहे कितनी ही देर हो, पर यह कैसे हो सकता है कि दर्शन किये बिना भिक्षा कर लूँ? पट पाँच बजे खुलेगा। उसके बाद जैसा होगा, देख लिया जायेगा।

बाबाका उत्तर सुनकर बाबूजी चुप बैठ गये तथा कल्याणका प्रूफ देखने लगे। इसी बीच किसीने श्रीकनकभवनके अधिकारियोंको बतला दिया कि 'कल्याण' सम्पादक श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार बरामदेमें बैठे हैं और उनको किसी उत्तम स्थानपर ठहराना चाहिये। ऐसी जानकारी मिलते ही तुरन्त एक अच्छा कमरा खोल दिया गया। उसकी सफाई भली प्रकार तत्काल करवा दी गयी। एक कलशा सरयूजलका भी रखवा दिया गया। यह व्यवस्था देखकर बाबूजीने अनुमान लगा लिया कि शायद किसीने मेरे आनेकी जानकारी दे दी है। जानकारीका दिया जाना बाबूजीको प्रिय नहीं लगा, पर उस व्यवस्थाको अस्वीकार करना भी उचित नहीं लगा। अस्तु, सबने आकर कमरेमें स्थान ग्रहण किया। जब कमरा मिल गया तो फिर बाबूजीने बाबासे पूछा – अब तो स्थानकी व्यवस्था हो गयी है, अतः क्यों नहीं भिक्षा बनवानेका कार्य आरम्भ कर दिया जाय, जिससे दर्शनके बाद तुरन्त भिक्षा हो सके।

बाबाने अपनी ओरसे सहमति व्यक्त कर दी। उसी कमरेमें भिक्षाके रन्धनका कार्य होने लगा।

शामको पाँच बजे श्रीकनकबिहारीजीके पट खुले। उस दिन कोई उत्सव नहीं था। कोई विशेष दिवस भी नहीं था, पर भीड़की सीमा नहीं। इतनी अधिक भीड़ थी कि क्या कहा जाय? बाबाके लिये यह सम्भव नहीं हो सका कि उस भीड़में जाकर दर्शन कर सकें। बाबा गये दर्शन करनेके लिये, पर भीड़की अधिकता देखकर अपने कमरेकी ओर लौट आये। कमरेके बाहर बरामदेमें बैठकर बाबा श्रीकनकबिहारीजीसे मन-ही-मन कहने लगे – आप तो राजराजेश्वर त्रिलोकीनाथ भगवान रामचन्द्र हैं। इतनी भीड़में मेरे द्वारा दर्शन किया जा सकना कैसे सम्भव है? मेरे लिये शक्य है ही नहीं। अब आपको दर्शन देना हो तो दें। अन्यथा यह भी समझ लें कि बिना दर्शन किये मेरी भिक्षा भी नहीं हो सकेगी।

बाबा द्वारा ऐसा कहे जानेके थोड़ी देर बाद ही आश्चर्य यह हुआ

कि जहाँ बाबा बैठे थे, वहाँसे लेकर गर्भगृह (जहाँ श्रीकनकबिहारीजी बिराजमान थे, वहाँ) तकका स्थान बिल्कुल खाली हो गया, अर्थात् भीड़ दो भागमें बँट गयी। बाबावाले कमरेसे लेकर गर्भगृहतकका स्थान एकदम खाली हो गया। इस खाली स्थानके दाहिने-बाएँ लोग खड़े हैं, पर बाबाके सामनेका स्थान पूर्णतः खाली है और बाबाको स्पष्ट रूपसे श्रीकनकबिहारीजीके दर्शन होने लगे। बाबाने बतलाया – दर्शन पाकर तो मैं निहाल हो गया। इसके बाद गर्भगृहसे दो महिलाएँ निकलीं नितान्त तेजोमयी और अत्यधिक सुन्दरी। मेरा अनुमान है कि एक तो स्वयं जगज्जननी भगवती श्रीसीताजी होंगी तथा साथवाली उनकी सहचरी होंगी। वे गर्भगृहसे बाहर आकर रेलिंगके पास खड़ी हो गयीं। रेलिंगके सहारे खड़े होकर रेलिंगपर अपनी अँगुलियोंकी ताल देते हुए (मेरी ओर देखते हुए मुझे सम्बोधित करके) कहने लगीं कि बुरा मत मानना, भीड़में ऐसा हो ही जाया करता है। आजकल सभी तीर्थस्थलोंमें भीड़के कारण ऐसी ही अव्यवस्था रहा करती है। उनकी प्यार भरी वाणी सुनकर मेरा भाव जितना उमड़ा, मेरी जैसी भावविभोर स्थिति हो गयी, उसका वर्णन क्या बताऊँ? वस्तुतः ठाकुर और ठकुरानी दोनों प्यारके भूखे हैं, भावके भूखे हैं फिर तो वे निजजनके लिये क्या नहीं कर देंगे?

* * * * *

व्रजरज वटी

अपने परमात्मीय जनोंको प्रेरित करके बाबाने व्रजमण्डलके सभी मुख्य स्थानोंकी पावन रजका संग्रह करवाया था। संग्रहकी प्रक्रियाको देखकर बड़ा विस्मय होता है कि कितनी गहरी श्रद्धासे यह कार्य किया गया है। बाबाने सन् १९५६ में काष्ठ मौन व्रत लिया था। काष्ठ मौन व्रत लेनेके पूर्वतक प्रतिदिन बाबा इस व्रजरजका सेवन किया करते थे। काष्ठ मौनकी घोर अन्तर्मुखतामें इसका सेवन छूट गया। इसमें व्रज-भूमिके असंख्य स्थानोंकी रज सम्मिश्रित है।

जिन-जिन स्थानोंसे रज ली गयी है। उसका विवरण बाबाने लिखवाया है। हस्तलिखित विवरणकी नकल नीचे दी जा रही है –

१- व्रज-चौरासी-कोसकी यात्राके समस्त मार्गकी रज। चौरासी

कोसका व्रज-मण्डल श्रीगोलोककी ही भूमि है, अतएव अलौकिक (दिव्य) है। व्रज-यात्रा, जो चौरासी कोसकी यात्रा या वन-यात्रा भी कहलाती है, करनेसे संसारके सब तीर्थोंकी यात्रा हो जाती है, क्यों कि समस्त तीर्थ यहाँ व्रजरजका आश्रय लेकर निवास करते हैं, जैसे श्रीबदरीनारायणजी, रामेश्वरजी इत्यादि।

कई वर्ष पहले गोस्वामी श्री १०८ व्रजरत्नलालजी महाराजने व्रज-यात्रा की, जो ४९ दिनोंमें पूर्ण हुई थी। इस यात्रामें यात्रियोंको लगभग ३४० मील चलना पड़ा था। इस मार्गकी रज मिनट-मिनटके अन्तरपर बराबर ली गयी है।

२- व्रज-यात्रामें जो-जो सरोवर (कुण्ड) आये, उनकी गीली (यदि किसीमें जल नहीं था तो उसकी सूखी) रज। कम-से-कम पाँच-सात कुण्ड नित्य आते थे। समग्र व्रजमें ये कुण्ड हैं और शास्त्रोंमें इनका बहुत ही महत्त्व बतलाया गया है, जैसे राधाकुण्ड, कृष्णकुण्ड, प्रेमसरोवर, क्षीरसागर, वृषभानुसर इत्यादि।

३- व्रज-यात्रामें जितने देव-मन्दिर आये, कम-से-कम पाँच-सात नित्य आते थे, उन स्थलोंकी रज।

४- मन्दिरोंमें जहाँ-जहाँ श्रीतुलसीजीके दर्शन हुए, वहाँसे ली गयी उनके मूलकी रज।

५- यात्रामें जितनी गंगाएँ हैं, उनकी गीली रज, जैसे मानसीगंगा, कृष्णगंगा, पाण्डवगंगा, अलकनन्दागंगा, चरणगंगा इत्यादि।

६- व्रज-चौरासी कोसमें श्रीयमुनाजीकी विभिन्न सैकड़ों स्थानोंसे ली गयी गीली रज।

७- व्रज-यात्रामें जहाँ-जहाँ श्रीराधाकृष्ण, श्रीदाऊजी आदिके चरण-चिह्न और अन्य कई प्रकारके दर्शनीय चिह्न आये, वहाँकी रज, जैसे चरण-पहाड़ी, व्योमासुरकी गुफा, भोजन-थाली इत्यादि।

८- श्रीलीलापुरुषोत्तमकी बहुत-सी लीला-स्थलीकी रज। व्रजमें श्रीनटनागरके अनेक लीला-विहार-स्थल हैं, जिनमें आपने भिन्न-भिन्न मधुरतम लीलायें की हैं, जैसे ऊखल-बंधन, मिट्टी-भक्षण, दान-लीला, मान-लीला आदि।

९- व्रज-यात्रामें जितने वन और कदम-खंडियाँ आयीं, उनकी रज। इनमें श्रीश्यामसुन्दरने महारास, गोचारण, आँखमिचौनी, प्रलम्बासुर बध, धेनुकासुर वध इत्यादि असंख्य लीलायें की हैं।

१०- श्रीरसिकविहारीकी लीलाओंसे सम्बन्धित व्रज-यात्राके वट, पीपल, ढाक, कदम्ब इत्यादि वृक्ष-स्थलोंसे ली हुई रज। व्रजमें अनेक महत्त्वपूर्ण और सौभाग्यशाली विटप हैं। इनके मूलकी रज, छायाकी रज और जहाँ मिली, वहाँ पेड़मेंसे रज ली गयी है, जैसे टेरकदम्ब, अक्षयवट, ऐंठाकदम्ब, संकेतवट इत्यादि।

११- व्रज-मण्डलमें बहुतसे महात्माओंकी तपोभूमियाँ और समाधि स्थल हैं, उनकी रज, जैसे सूरदासजीकी तपोभूमि चन्द्रसरोवरपर है और श्रीनारायण स्वामीजीकी समाधि कुसुमसरोवरपर है।

१२- व्रजभूमिमें कहीं-कहीं साक्षात्कारी साधु-महात्माओंके दर्शन हुए, उनके चरणारविन्दोंकी और निवास-स्थानोंकी रज, जैसे महात्मा श्रीरामकृष्णदासजी वृन्दावनमें।

१३- श्रीरासबिहारी युगल सरकार सहचरि-वृन्द सहित यात्राकी शोभा बढ़ा रहे थे, उनके चरणारविन्दकी रज।

१४- सम्पूर्ण व्रजमें महाप्रभु श्रीवल्लभचार्यजीने और वल्लभ कुलके अन्य महानुभावोंने जहाँ-जहाँ निवास किया एवं श्रीमद्भागवतकी कथा की थी, वहाँ-वहाँ उनकी बैठकें बनी हुई हैं, उन सबकी रज।

१५- श्रीहरिद्वारसे श्रीगंगाजीकी जो नहर व्रजमें आयी है, उसके विभिन्न स्थानोंसे ली गयी गीली रज।

१६- श्रीगिरिराज गोवर्द्धनजीकी रज। उनके श्रीविग्रहपरसे अनेक महत्त्वपूर्ण स्थानोंकी और उनकी परिक्रमा करके चारों ओरसे तलहटीकी चौदह मीलकी मिनट-मिनटके अन्तरपर ली गयी रज।

जतीपुरामें श्रीविग्रहपरसे श्रीनाथजी महाराजके प्राकट्य स्थानकी, नीचे श्रीगिरिराजजीके मुखारविन्दकी और गोवर्द्धन गाँवमेंसे उनके मन्दिरकी रज ली गयी है। श्रीगिरिराजजी श्रीव्रजराजके साक्षात् स्वरूप ही हैं, इसमें किंचित् भी संदेह नहीं।

१७- श्रीवृन्दावनके सैकड़ों स्थानोंकी रज। घाटोंकी, मन्दिरोंकी, सरोवरोंकी, लीलास्थलोंकी, महात्माओंके स्थानोंकी, समाधियोंकी, श्रीबिहारीजीका प्राकट्य हुआ था उस श्रीनिधिवनकी, श्रीयुगलसरकारके श्रीसेवाकुञ्ज नित्य-विहारस्थलकी, श्रीयमुनाजीके विभिन्न स्थानोंकी और श्रीवृन्दारण्यके चारों ओर परिक्रमा करके छः मीलके मार्गकी मिनट-मिनटके अन्तरपर रज ली गयी है।

१८- श्रीमथुराजीके बहुतसे स्थानोंकी रज। घाटोंकी, मन्दिरोंकी, सरोवरोंकी, कंसके टीले आदि लीला-स्थलोंकी और चारों ओर परिक्रमा करके आठ मीलके मार्गकी मिनट-मिनटके अन्तरपर रज ली गयी है।

१९- श्रीनाथजीके चरणामृतकी रज।

श्रीनाथद्वारेमें श्रीनाथजीके स्नानके जलमें कोई पवित्र रज मिलाकर चरणामृतके पेड़े बनाये जाते हैं। बहुतसे भक्त इनको पानीमें घोलकर नित्य चरणामृत लेते हैं। इस व्रज-रज-वटीमें इन पेड़ोंका भी पर्याप्त मात्रामें संयोग किया गया है।

२०- श्रीवृन्दावनके श्रीबाँकेविहारीजीके सर्वांगमें लेपन किया हुआ अक्षय तृतीयाका प्रसादी चन्दन।

२१- श्रीद्वारकाजीसे आया हुआ श्रीगोपीतलाईका गोपी चन्दन।

उपर्युक्त २१ तत्त्वोंका संयोग करके छानकर फिर इसको श्रीयमुना जलकी तीन भावना (पुट) देकर 'श्रीव्रजरज वटी' तैयार की गयी है।

इन श्रीव्रजरज वटीकी सेवन-विधि निम्नलिखित है।

श्रीयमुना जल आदिमें घोलकर अथवा सूखीका –

१- सर्वांगमें लेपन करना।

२- तिलक-स्वरूप धारण करना।

३- प्रसाद पाना।

इस रजमें गोपी चन्दन, श्रीठाकुरजीका प्रसादी चन्दन अथवा व्रजके किसी स्थानकी रज मिलाकर इसको बढ़ा लेना चाहिये, जिससे सदैव उपयोगमें लायी जा सके और अन्य व्यक्तियोंके भी काममें आ सके।

शास्त्रोंका एवं श्रीआचार्य-चरणोंका यह आदेश है कि श्रीव्रजरजका

स्पर्श मात्र उग्रतर पापोंका नाश करके अन्तरात्माको पावन करता है। तदनन्तर श्रीप्रिया-प्रियतमके श्रीचरण-कमलोंमें अनुराग बढ़ाता है, जिस अनुराग-दृढ़तासे परे जीवनका और कोई कर्तव्य शेष नहीं रहता। यदि देहावसान-समयपर इस रजका एक कण मात्र शरीरसे स्पर्श अथवा घटसे प्राप्त हो जाय तो निस्संदेह भगवत्प्राप्ति हो जाती है। यथासम्भव मरणासन्न व्यक्तिको इसका महत्त्व सुना देना परमावश्यक है।

इस रजको किसी श्रीविग्रहपर चढ़ाना ठीक नहीं है, क्योंकि इसमें प्रसादी चन्दन और मनुष्योंकी चरण-रज भी सम्मिलित है।

बोलो श्रीव्रजेश्वरी – व्रजराजकी जय।

विनीत
श्रीव्रजरजकणिकानुरागी
एक सेवक

इस विवरणके अतिरिक्त हस्तलिखित चार विवरण और हैं।

श्रीवृन्दावनके १०८ मन्दिर, श्रीमथुराधामके १०८ मन्दिर, श्रीव्रजमण्डलके १०६ मन्दिर और श्रीव्रजमण्डलकी चौरासी कोसकी यात्रामें पड़नेवाले १०८ मन्दिर, इन सभी मन्दिरोंका प्रसादी चन्दन भी इस रजमें सम्मिश्रित है। इन सभी मन्दिरोंके नामोंकी विस्तृत तालिका अभी अलग रखी है। अति विस्तारके भयसे उसका दिया जा सकना सम्भव नहीं है।

* * * * *

श्रीमद्भागवत सप्ताह-पाठ का परामर्श

प्रसंग सन् १९५२ या ५३ के आस-पासका होना चाहिये। गोरखपुर जिलेके एक ब्राह्मण थे। उन्होंने संस्कृतका अच्छा अध्ययन किया था। बनारसके क्विंस कालेजकी शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण कर ली थी। वे संस्कृतमें धारा-प्रवाह बोला करते थे और उन्हें अनेक स्थलोंके सुन्दर-सुन्दर सुभाषित श्लोक कण्ठस्थ थे। संतोंके संसर्गसे उनके मनमें श्रीकृष्ण-भक्ति जाग उठी और भगवत्साक्षात्कारके लिये मनमें चटपटी लगी रहा करती थी। वे बातचीतके बीचमें प्रायः कहा करते थे –

लगा दो प्राण की बाजी अगर गिरधर को पाना है।
नहीं बाजार का सौदा जो पैसे दे के लाना है।।

आप वृन्दावनमें श्रीउड़िया बाबाके आश्रममें रहा करते थे। स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी सरस्वतीका आपके प्रति बड़ा सौहार्द था। एक बार बाबूजीके दर्शनार्थ श्रीशास्त्रीजी गीतावाटिका आये हुए थे। उनका परिचय देते हुए स्वामी श्रीअखण्डानन्दजीने कहा था – भाईजी! आप अपने सामने आँसुओंके एक सागरको देख रहे हैं। आप एक छिपे हुए रसिक भक्त हैं। श्रीकृष्णानुरागके सरस पद सुननेपर इतना अधिक अश्रु-प्रवाह होता है कि इनके नेत्रोंसे झरनेवाले आसुओंसे पात्र भर लिया जा सकता है।

स्वामी श्रीअखण्डानन्दजीने श्रीशास्त्रीजीके श्रीकृष्णानुरागी व्यक्तित्वका उल्लेख करते-करते जो परिचय दिया, उससे उनकी आँखें मुँद गयीं और कपोल आसुओंसे भीगने लगे। अन्तरके प्रेमाप्लावित होते ही श्रीशास्त्रीजीका शरीर जैसा रोमाञ्चित और कण्टकित हो जाया करता था, वह भावमयी स्थिति देखते ही बनती थी। उनके रोमकूप कटहलके फल जैसे फूल जाया करते थे। श्रीरामचरितमानसकी एक चौपाई है 'पुलक सरीर पनस फल जैसा'। इस चौपाईके मर्मार्थका एक उदाहरण बन जाया करता था श्रीशास्त्रीजीका भावाभिभूत शरीर।

एक बार श्रीशास्त्रीजीने बाबासे बड़ी आतुरताके साथ प्रश्न किया – भगवान श्रीकृष्णका साक्षात्कार कैसे हो?

बाबाने उल्टा प्रश्न किया – क्या आप वह करेंगे, जो मैं एक स्वजनके नाते परामर्शके रूपमें आपसे कहूँगा?

श्रीशास्त्रीजीने प्रणाम करते हुए श्रद्धापूर्वक कहा – एक बार आप कहकर तो देखिये।

उनके उत्तरसे संतुष्ट होकर बाबाने पुनः पूछा – क्या आप श्रीमद्भागवतमहापुराणका मूल पाठ शुद्ध रीतिसे कर सकते हैं?

श्रीशास्त्रीजीने उसी गहरी श्रद्धा और बड़ी दृढ़ता पूर्वक निवेदन किया – क्या मैं आपके समक्ष भागवतके किसी अध्यायका पाठ करके दिखलाऊँ?

इतना कहते-कहते श्रीशास्त्रीजीने श्रीमद्भागवतके कुछ श्लोकोंका सस्वर पाठ सुना दिया। इससे बाबाको बड़ा संतोष हुआ। योग्य और अधिकारी पात्रको सामने पाकर बाबा बड़े प्यार पूर्वक श्रीशास्त्रीजीसे कहने लगे – मैं अपनी अल्प मतिके अनुसार जो कहूँगा, यदि आपने तदनुसार किया तो मेरी आस्थाके अनुसार अभीष्टकी सिद्धि होनी ही चाहिये। यदि

कोई अन्तराय बाधक तत्त्व बनकर विघ्न उपस्थित करता है तो उसे मात्र किञ्चित् विलम्ब कहा जा सकता है। आप भगवती भागीरथी माँ गंगाके एकान्त तटपर किसी ऐसे शिवालयको खोज लें, जहाँ आसन लगानेपर श्रीशिवलिङ्गका और माँ गंगाकी बहती हुई धाराका सहज दर्शन हो सके। मैं स्पष्ट रूपसे बतानेके लिये पुनः कह रहा हूँ कि श्रीमद्भागवतका पाठ करनेके लिये आप अपना आसन ऐसे स्थानपर लगायें, जो श्रीशिवलिङ्गके एकदम समीप हो, उनका सतत दर्शन होता रहे और भगवान श्रीशिवलिङ्गके दर्शनके साथ-साथ नेत्र ऊपर उठाते ही भगवती गंगाकी पावनी धाराका भी दर्शन होता रहे। यह शिवालय गंगातटके किसी निर्जन स्थानमें हो। उस शिवालयमें शुचि आसनपर बैठकर परम वैष्णवाचार्य कृष्णकथारसिक भगवान शिवको आप श्रीमद्भागवतमहापुराणका सस्वर सप्ताह पाठ बड़ी भक्ति-भावना सहित सुनाइये।

बाबाने जो कहा, उसको बड़े ध्यान पूर्वक श्रीशास्त्रीजीने सुना और साश्रु नेत्रोंसे सभक्ति प्रणाम करते हुए बाबासे विदाई ली। श्रीशास्त्रीजी निकल पड़े ऐसे शिवालयकी खोजमें। खोजनेके क्रमका शुभारम्भ हुआ कानपुरसे। वे गंगाजीके किनारे-किनारे चलने लगे। इस खोजमें कई मास निकल गये। खोजते-खोजते हरिद्वारसे आगे ऋषिकेश नगरकी बस्तीके बाहर एक एकान्त स्थानमें अभिलषित शिवालय भगवती गंगाके तटपर मिल गया और शुभ दिन देखकर आपने भगवान श्रीशंकरके समक्ष श्रीमद्भागवतमहापुराणका सप्ताह पाठ आरम्भ कर दिया। आप मन्द-मन्द स्वरमें बोल-बोल करके पाठ किया करते थे। भावपूर्ण श्लोकोंके आनेपर उन श्लोकोंकी आवृत्ति तो न जाने कितनी बार हुआ करती थी।

श्रीशास्त्रीजी जब बाबाके पाससे विदाई लेकर चले गये, उसके बाद फिर कोई श्रीकृष्ण-दर्शनाभिलाषी भक्त बाबाके पास आया और उसे भी बाबाने यही परामर्श दिया कि आप अपने घरपर रहते हुए श्रीमद्भागवत-महापुराणका भावपूर्वक सप्ताह-पाठ करें। बाबाने श्रीमद्भागवतमहापुराणके सप्ताह-पाठका परामर्श तो दिया, पर इसके साथ ही उनके मनमें खिन्नता भी भर गयी। बाबा मन-ही-मन स्वयं ही स्वयंसे कहने लगे – जब स्वयं पाठ नहीं करते, तब दूसरोंको पाठ करनेके लिये कहना कहाँतक उचित है? आचरण विहीन परामर्शसे अपेक्षित सफलताकी प्राप्ति नहीं होती। ऐसा

परामर्श देना तो एक अनधिकार चेष्टा है। यदि मेरे द्वारा सप्ताह-पारायणका परामर्श दिया गया है तो मुझे भी सप्ताह-पाठ करना चाहिये।

इन विचारोंसे मन आलोड़ित था। बाबाने अपनी कुटियामें ही बैठकर श्रीमद्भागवतमहापुराणका सप्ताह-पाठ आरम्भ कर दिया। बाबाने लगभग दस या ग्यारह सप्ताह-पाठ किये होंगे कि फिर पाठ करना छूट गया, छोड़ नहीं दिया, अपितु छूट गया। बाबाने एक बार कहा था – पाठ करते-करते जब स्थिति ऐसी हो गयी कि ग्रन्थके पृष्ठ-पृष्ठपर भगवान श्रीकृष्ण दिखलायी देने लग गये, इतना ही नहीं पृष्ठपर छपे हुए श्यामाक्षरोंमें श्रीकृष्णके कोमल-श्यामल वपुकी श्यामलता झलमल-झलमल करती हुई परिलक्षित होने लग गयी, तब पाठ कर सकना मेरे लिये बड़ा कठिन हो गया। कठिन ही नहीं, असम्भव-सा हो गया और तभी श्रीमद्भागवतमहापुराणका सप्ताह-पाठ विवशताकी स्थितिमें विसर्जित हो गया। हाँ, इतना अवश्य हुआ कि दस-ग्यारह सप्ताह पाठ करनेमें मुझे श्रीमद्भागवत-पुराणके अधिकांश श्लोक कण्ठस्थ हो गये।

इधर गीतावाटिकामें बाबाके सप्ताह-पाठका क्रम विवशताकी स्थितिमें विसर्जित हो गया और उधर ऋषिकेशके शिवालयमें श्रीशास्त्रीजीके सप्ताह-पाठका अनुष्ठान विवशताकी स्थितिमें अधूरा रह गया। मुझे इस समय याद नहीं आ रहा है कि बाबाने श्रीशास्त्रीजीको कितना पाठ करनेको कहा था। मेरा अनुमान है कि अवश्य ही १०८ पाठका परामर्श दिया गया होगा, पर यह संख्या पूर्ण नहीं हो पायी। मुझे इस समय यह भी याद नहीं आ रहा है कि श्रीशास्त्रीजीने भगवान श्रीशंकरको शिवालयमें बैठकर कितने पाठ सुनाये थे, पर यह तो सत्य ही है कि थोड़े पाठ सुनानेके बाद उनमें ऐसी भावोन्मत्तता परिव्याप्त हो गयी कि वे अपने आसनसे उठकर वृन्दावन चल दिये। फिर श्रीशास्त्रीजी वृन्दावनसे वाराणसी आकर श्रीदुर्गाकुण्डके पास बहुत दिनोंतक एक एकान्त स्थानपर निवास करते रहे। यहाँ भी श्रीकृष्ण-विरहमें उनके नेत्रोंसे आँसू झरते ही रहते थे। अवश्य ही यह उनके जीवनकी एक महत्त्वपूर्ण घटना है कि एक रात भगवती भक्ति देवीने स्वप्नमें प्रकट होकर उन्हें बड़ा आश्वासन प्रदान किया था। श्रीमद्भागवतमहापुराण तो सदैव ही उनके जीवनका आधार ग्रन्थ रहा।

* * * * *

हैजेकी लपेटमें

घटना सम्भवतः सन् १९५४ की है। एक दिन बाबा बाबूजीके घरसे भिक्षा करके रातके समय अपनी कुटियाकी ओर जा रहे थे। द्वारसे बाहर निकलते ही उन्हें जी-मिचलीकी अनुभूति होने लगी। वे रास्तेमें ही वमन करने लगे। कुटियापर पहुँचते-पहुँचते उल्टी बहुत अधिक होने लगी। इसी बीच उन्हें दस्त होने लगा। बाबा चिकित्सा-शास्त्रके पण्डित हैं। अपनी वर्तमान रुग्णताको देखकर उन्होंने बतलाया– हैजा हो गया है।

सब लोग घबड़ाने लगे, पर बाबा तो हँस रहे थे। शारीरिक कष्ट तो बहुत था, किन्तु दवा उनको लेनी नहीं थी। पानीकी कुछ बूँदे मुँहमें डालते ही जी-मिचली होने लगती थी और पेटमें पानी जाये बिना शरीरके भीतर जल-तत्त्वके कम हो जानेकी आशंका थी। बड़ी विकट समस्या उपस्थित हो गयी।

संयोगसे श्रीमोतीलालजी टेकड़ीवाल अपने घरसे गीतावाटिका आ गये। उनका घर शहरमें यहाँसे बहुत दूर घंटाघरके पास था। वे बाबाके भक्त थे और उनके अचानक आगमनको मात्र संयोग कहना चाहिये, अपितु उससे भी सच्ची बात यह होगी कि किसी अचिन्त्यकी प्रबल प्रेरणासे गीतावाटिका आ गये। बाबाको हैजेसे ग्रस्त देखकर और उनके कठोर नियमोंको जानकर एक मध्यम उपाय बतलाते हुए उन्होंने कहा– इस समय तो स्वामीजीको बर्फ देनी चाहिये।

श्रीमोतीलालजी टेकड़ीवालका सुझाव सचमुच समयोचित था, पर बाबा बाजारकी बर्फका उपयोग करते ही नहीं थे। ज्यों ही यह बात श्रीटेकड़ीवालजीको बतलायी गयी, उन्होंने निवेदनपूर्वक कहा कि मेरे घरपर रेफ्रिजरेटर है, मैं गंगाजलसे उस रेफ्रिजरेटरको धुलवा दूँगा और उसमें गंगाजलकी बर्फ तैयार करवा करके दे सकता हूँ। बाबाने इसके लिये अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी। श्रीटेकड़ीवालजीने उत्साहपूर्ण तत्परतासे गंगाजलकी बर्फ बनवायी और उसे अपने घरसे ले आये। बाबा गंगाजलकी बर्फको अपने मुखमें रखने लगे। इसीके साथ उनके पेटपर गीली मिट्टीकी और गीले कपड़ेकी पट्टी रखी जा रही थी। भगवानकी कृपासे बर्फ पचने लगी और पेटमें पानीके जानेसे जी-मिचली कम हो गयी। बेचैनीमें पर्याप्त

सुधार हुआ। दो-तीन दिनतक श्रीटेकड़ीवालजीके घरसे बर्फ आती रही और बाबा सेवन करते रहे। क्रमशः बाबाके स्वास्थ्यमें सुधार आने लगा। ठीक हो जानेपर बाबाने बतलाया – मुझसे जुड़े हुए एक व्यक्तिने ऐसा कुत्सित कर्म किया है कि उसका फल हाथों-हाथ भोगना था। जिन्होंने यह कुकर्म किया है, उन्हें इसका ज्ञान भी नहीं हो पायेगा कि उनके कारण मुझे कितना कष्ट भोगना पड़ा है।

* * * * *

प्रयाग का कुम्भ मेला

सन् १९५४ में प्रयागमें कुम्भका विशाल मेला था और उस मेलेमें भगवन्नाम-प्रचारके लिये बाबूजी परिवारके सहित लगभग सवा मास रहे थे। गीताप्रेसकी ओरसे एक शिविर लगा था, जिसमें कथा-कीर्तन-प्रवचनके कार्यक्रम चलते ही रहते थे। बाबूजीके अतिरिक्त स्वामी श्रीशरणानन्दजी, श्रीअखण्डानन्दजी, श्रीपथिकजी, श्रीरामकिंकरजी आदि संतों-विद्वानोंके प्रवचन नित्य होते रहते थे।

कुम्भमें बाबूजीके साथ बाबा थे ही। एक साधु बाबासे एकान्तमें मिले और कहने लगे – आपसे एक निवेदन करने आया हूँ।

बाबाने सम्मानपूर्वक कहा – कहिये, क्या कहना चाहते हैं?

वे साधु कहने लगे – मैं जो कहने जा रहा हूँ, उसपर तो आपको विश्वास करना पड़ेगा। मैं अपनी बातको सिद्ध करनेके लिये प्रमाण दे नहीं पाऊँगा, पर विश्वास करें, मैं सत्य ही कह रहा हूँ। आप तीर्थराज प्रयागमें कुम्भ स्नान करनेके लिये आये हैं, अतः आप पर्व स्नान इतने बजेसे लेकर इतने बजेतकके अन्दर कर लीजियेगा। यह अवधि ऐसी है कि इस बीचमें वे संत, जो सूक्ष्म शरीरसे अन्तरिक्षमें विचरण करते हैं अथवा कहीं अन्यत्र रहते हैं, वे सब संतगण स्नानके लिये आते हैं। इस परम शुभ अवधिमें स्नान करना बड़ा मंगलमय है।

बाबाने उनको प्रणाम किया तथा इस सूचनाके लिये कृतज्ञता व्यक्त की। फिर बाबा और बाबूजीने तथा अन्य स्वजनोंने उस अवधिके मध्य स्नान किया।

* * *

कुम्भ मेलेमें प्रवेश पानेका वृत्त भी बहुत रोचक है। इस वृत्तको बाबाने श्रीमहाराजजीको स्वयं सुनाया था। यह वृत्त इस प्रकार है –

कुम्भके मेलेमें जानेकी बात है। यह बात प्रयागके कुम्भ मेलेकी है। हैजा अथवा महामारी नहीं फैले, इसके लिये मेलाधिकारीकी ओरसे यह आज्ञा रहती है कि मेलेमें वही जा सकता है, जिसने इंजेक्शन लिया हो तथा इंजेक्शन लगा लिये जानेका प्रमाणपत्र हो। यह प्रायः चलता है कि लोग इंजेक्शन नहीं लेते हैं तथा झूठा प्रमाणपत्र देकर मेलेमें चले जाते हैं। बाबाको न तो इंजेक्शन लेना था और न झूठा प्रमाणपत्र प्रस्तुत करना था और न झूठ बोलना था। इसपर श्रीपोद्दार महाराज बाबापर बड़े बिगड़े – बस, आप तो बात-बातमें टाँग अड़ाते हैं और मुझे परेशान करते हैं। मुझको परेशान करनेके अलावा आपके पास दूसरा काम ही नहीं है।

श्रीपोद्दार महाराजने मेलाधिकारीसे कहा – मेरे साथ एक संन्यासी रहते हैं। वे न तो इंजेक्शन लेंगे और न झूठा प्रमाणपत्र प्रस्तुत करेंगे। क्या आप उनको मेलेमें प्रवेशके लिये आज्ञापत्र प्रदान कर देंगे?

उन्होंने व्यक्तिगत तौरपर कहा – देखिये, मैं लिखकर तो आज्ञा दूँगा नहीं, पर जब आप कारसे आयेंगे तो मैं आपकी कारको पास कर दूँगा। मेरे खड़े रहनेपर गेटपर कोई आपको रोकेगा नहीं।

उनका उत्तर बड़ा सज्जनतापूर्ण और आत्मीयतापूर्ण था, पर श्रीपोद्दार महाराजको इससे सन्तोष नहीं हुआ। फिर यह तय हुआ कि झूसी, जहाँ ब्रह्मचारी श्रीप्रभुदत्तजी महाराज रहते हैं, उस स्थानके रास्तेसे मेलेमें प्रवेश किया जाये। ज्यों ही उस रास्तेसे प्रवेश करने लगे, त्यों ही गेटपरके व्यक्तिने बाबासे पूछा कि सर्टिफिकेट कहाँ है। बाबाने कहा कि उनके पास नहीं है और न उन्होंने इंजेक्शन लगवाया है। श्रीपोद्दार महाराज बाबासे कुछ कदम आगे थे। जिस प्रकार बाबाके पास प्रमाणपत्र नहीं था, उसी प्रकार बाबाके साथवाले लोगोंके पास भी नहीं था। बाबाका यह उत्तर सुनते ही श्रीपोद्दार महाराज आये और आकर उस गेटकीपरके सामने खड़े हो गये तथा उससे कहा – उनसे क्या पूछते हो, इसके लिये मुझसे पूछो।

इतना कहकर श्रीपोद्दार महाराज कुछ तन करके खड़े हो गये तथा अपनी दृष्टि गेटकीपरकी दृष्टिमें गड़ा दी। गेटकीपर पत्थरकी मूर्तिकी तरह खड़ा रहा, कुछ भी बोला नहीं। बाबाके साथ जितने भी थे, सभी गेटसे

मेलेमें प्रवेश कर गये। बाबाको तो यही लगा कि श्रीपोद्दार महाराजने उस गेटकीपरको हिप्नोटाइज कर दिया था, इसीलिये वह कुछ बोला नहीं। बाबा और अन्य सभी लोगोंके प्रविष्ट हो जानेपर फिर श्रीपोद्दार महाराज भी आ गये।

* * * * *

मूर्च्छित साधु की सँभाल

एक बार बाबूजीके साथ बाबा श्रीअयोध्या धाम गये थे। वहाँपर कोई आत्मीय व्यक्ति श्रीरामार्चन अनुष्ठान करवा रहा था और उसमें बाबूजी आमन्त्रित थे। अयोध्यामें बाबूजी एवं बाबाको जहाँ ठहराया गया था, उस स्थानसे कुछ हटकर एक साधु सड़क पर मूर्च्छित पड़ा था। उसकी बाह्य दशा देखकर यही अनुमान होता था कि वह साधु मरणासन्न है।

अपने विश्राम स्थानसे बाबाने देखा कि सड़कपर उस मूर्च्छित साधुके बगलसे न जाने कितने लोग और महात्मा निकल गये, पर किसीने भी उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। बाबाका कोमल हृदय इस उपेक्षा वृत्तिको सहन नहीं कर सका और वे स्वयं जाकर उसके पास बैठ गये। वे दोपहरसे शामतक उसके पास बैठे रहे और उसके शरीरकी मक्खियाँ उड़ाते रहे। उन दिनों बाबाका यह नियम था कि मध्य रात्रिसे पहले-पहले अर्थात् बारह बजेसे पहले ही भिक्षा हो जानी चाहिये। शामके समय किसीने बाबासे कहा – आप चलकर शौच-स्नानादिसे निवृत्त हो लें फिर आप भिक्षा ग्रहण करें।

बाबाने कहा – इन मूर्च्छित साधुको छोड़कर मैं कैसे जाऊँ? मुझे भय है कि रात्रिके एकान्तमें कुत्ते या सियार इनको नोच लेंगे।

बाबाकी बात सुनकर उनको समझाते हुए कई लोगोंने कहा – कुत्ता या सियार जीवित व्यक्तिको नहीं नोचते। वे तो मुर्दाको ही नोचते हैं।

लोगोंके द्वारा बार-बार समझाये जानेपर बाबाने विश्वास कर लिया और वे अपने वास स्थानपर चले आये। दूसरे दिन सबेरे जब बाबा गये तो उन्होंने देखा कि कुत्ते और सियार उन मूर्च्छित साधुको लगभग पन्द्रह गज घसीटकर ले गये हैं, सियारने पैरका अँगूठा खा लिया है तथा शरीरके

कई भागपर पंजे द्वारा नोच लिये जानेके निशान हैं। बाबाको मन-ही-मन बड़ा कष्ट हुआ। उन्हें हार्दिक खेद था कि लोगोंकी बातोंपर विश्वास करके उन साधुके पाससे मैं क्यों हट गया। बाबा फिर वहीं बैठ गये।

दोपहरके बारह बजे श्रीरामार्चन अनुष्ठानकी सम्पन्नता होनेवाली थी, अतः बाबाको उसमें उपस्थित होनेके लिये बार-बार बुलाया जा रहा था। वे बड़े धर्म संकटमें थे कि क्या करूँ और क्या न करूँ? अयोध्या उनके लिये नवीन स्थान था। वे अनुष्ठानकी सम्पन्नताके अवसरपर जाना चाहते थे किन्तु प्रश्न यह था कि इन मूर्च्छित साधुको किसे सँभलायें। इतना ही नहीं, अनुष्ठानकी सम्पन्नता होते ही दोपहरको लगभग दो बजे बाबूजीके साथ गोरखपुर वापस चला जाना भी था। मनमें बड़ी उलझन थी। ठीक इसी समय प्रभुकी ओरसे सहायता मिली। एक बंगाली साधु उधरसे आ निकले। वे बाबाके पूर्व परिचित थे और अयोध्यामें उनका बड़ा सम्मान और बड़ा प्रभाव था। बाबाको वहाँ सड़कपर बैठा हुआ देखकर उन्होंने पूछा – बाबा! आप यहाँ कैसे बैठे हैं?

बाबाने उन मूर्च्छित साधुके बारेमें सब बात बतला दी और कहा – इन्हें किनको सँभलाकर अनुष्ठानमें जाऊँ?

उन बंगाली साधुने कहा – बाबा! इस साधुको मैं जानता हूँ। यह संग्रहणीका रोगी है। खान-पानके असंयमके फलस्वरूप यह साधु इस रोगसे भीषण रूपसे ग्रस्त है। यह मेरे अस्पतालमें भर्ती हो चुका है। मैंने यहाँ एक अस्पताल खोल रखा है। खोलनेका उद्देश्य है असमर्थ साधुओंकी सेवा।

उनकी बात सुनकर बाबाने उनसे कहा – मेरी आपसे एक प्रार्थना है। अब ये मरणासन्न दशामें हैं। जबतक इनका श्वास चल रहा है, तब तकके लिये आप इन्हें अपने अस्पतालमें भर्ती कर लें।

उन बंगाली साधुने कहा – आप निश्चिन्त हो जाइये। मैं सारी व्यवस्था कर दूँगा। अस्पतालसे स्ट्रेचर आ जायेगा और अस्पतालमें स्थान मिल जायेगा।

बाबाने संतोषकी साँस ली और प्रभुको साधुवाद दिया। फिर वे जल्दीसे स्नान करके श्रीरामार्चन अनुष्ठानमें गये। अनुष्ठानका अन्तिम अंश चल रहा था और उसकी फलश्रुति कही जा रही थी कि इस अनुष्ठानसे सबकी मनोकामना पूर्ण होती है। फलश्रुति सुनते-सुनते बाबाने

मन-ही-मन भगवान श्रीसीतारामजीसे कहा – वे मूर्च्छित साधु बहुत कष्ट पा रहे हैं। उनकी मृत्यु हो जाय तो उनको कष्टसे त्राण मिले।

बाबाको बादमें यह सूचना मिली कि उन बंगाली साधुको सँभला करके वे वहाँसे हटे, इसके पन्द्रह-बीस मिनटके अन्दर ही उन साधुका देहान्त हो गया। इस सूचनासे बाबाको बड़ा संतोष मिला। उसी समय उन्होंने बाबूजीसे कहा – आप मुझे अढ़ाई सौ रुपये दे दीजिये।

बाबूजीने पूछा – क्या करेंगे?

बाबाने कहा – मुझे चाहिये। आप दे दीजिये।

बाबाने वे रुपये वहीं आश्रममें दे दिये, जिससे उन दिवंगत साधुके पारमार्थिक कल्याणके लिये एक रामार्चन अनुष्ठान हो सके। बाबा बतला रहे थे – प्रभु बड़े कृपालु हैं। मुझे दोपहरके दो बजे श्रीपोद्दार महाराजके साथ गोरखपुर लौटना था। लौटनेसे पहले ही प्रभुने सारा काम उचित रीतिसे पूर्ण करवा दिया। उन मूर्च्छित साधुके पास मैं बैठा, मेरे बैठनेकी लाज प्रभुने रख ली। प्रभुके चरणोंमें बार-बार वन्दन!

* * * * *

श्रीबच्चनजीकी लेखनीके शब्द-पराग

श्रीहरिवंशरायजी 'बच्चन' अपनी मधुमयी रचनाके लिये सर्वत्र विख्यात हैं। उनकी 'मधुशाला' तो मधुरतासे लबालब भरी हुई एक ऐसी प्याली है, जो हर छन्दकी पंक्ति-पंक्तिपर क्षणे-क्षणे छलकती रहती है। उनकी रचनामें जन-मनको स्पर्श कर लेनेकी अद्भुत क्षमता है। इन रचनाओंमें कोमल भावनाओंकी कलिताभिव्यक्ति इतनी सरस हुई है कि कोई भी सहृदय श्रोता अथवा पाठक भावविभोर होकर खुले स्वरसे सराहना करने लगता है। उनकी 'मधुशाला'को वस्तुतः सीमातीत सराहना मिली है, पर समयके प्रवाहमें एक दिन ऐसा भी क्षण आया, जब मधुशालायी रंगोल्लासद मादकताने यह निश्चय कर लिया कि अब अध्यात्मवादके प्रतिपाद्य द्वन्द्वातीत ब्रह्मानन्दकी गुण-गरिमाका बखान करना है। मधुशालाकी रंगीली मादकताका आध्यात्मिकताके द्वारकी अर्चनामें प्रवृत्त होना एक ऐसा तथ्य था, जिसने सबको चौंका दिया। यह परिवर्तन था ही चकित बना देनेवाला और इस विस्मयकारी परिवर्तनका उद्भव हुआ पूज्य बाबाकी संनिधिमें। पूज्य बाबाके

सांनिध्यका यह एक चमत्कारी प्रभाव था। सांनिध्यका यह पुनीत अवसर कैसे मिला और आध्यात्मिकताके गायनमें सहज प्रवृत्ति कैसे हुई, इसकी भी गाथा रोचक है। पूज्य बाबाके सम्पर्कमें आनेके बाद श्रीमद्भगवद्गीताके पद्यानुवाद करनेके प्रेरणोद्भवसे सम्बन्धित सारा विवरण स्वयं श्रीबच्चनजीने अपनी कृतियोंकी भूमिकामें लिखा है। उनकी आध्यात्मिक रचना है 'जन गीता' और 'नागर गीता।' इन दोनों कृतियोंकी भूमिकाके आवश्यक अंश ज्यों-के-त्यों नीचे उद्धृत किये जा रहे हैं। 'जन-गीता'के 'समर्पण' की प्रक्रियाने तो अनेक गुरुजनों-विद्वानोंको अत्यधिक आश्चर्यमें डाल दिया है। यह 'समर्पण' बाबाके चरणोंपर न होकर उनके अनन्य परिकर श्रीरामसनेहीजीके प्रति है। वह 'समर्पण' भी नीचे दिया जा रहा है। अब श्रीबच्चनजीकी लेखनीसे विगलित-वितरित शब्द-परागका सौरभ देखिये –

(क) 'जन गीता'में समर्पण–

समर्पण

श्रीस्वामीजी महाराजकी
काष्ठ-मौनावस्थामें उनकी सेवामें रहनेवाले
श्रीरामसनेही
तथा
उन सब लोगोंको
जिन्होंने कभी, किसी प्रकार भी, उनकी सेवा की है।

— — — — —

(ख) 'जन गीता'में पहले संस्करणकी भूमिका–

मंगलाचरण

मेरे जीवनमें एक विचित्र घटना घटी। जो आगे आया, उसके लिये न मैंने कभी प्रयत्न किया था, न उसकी प्रत्याशायें की थी और न उसके लिये तैयार ही था, पर कोई अज्ञात शक्ति, शायद बहुत दिनोंसे, मुझे उसकी ओर ले जा रही थी।

'है एक कहीं मंजिल जो मुझे बुलाती है।'

(मिलन यामिनी)

एकाएक मुझे कई कड़ियाँ याद हो आयी हैं, जिनके द्वारा मेरा परिचय कलकत्ताके रामनिवाससे हुआ और रामनिवासने मेरा परिचय ब्रह्मस्वरूप श्रीस्वामीजी महाराजसे कराया। मैं उनके विचारोंकी सूक्ष्मता, भावोंकी गम्भीरता, व्यवहारकी आत्मीयता और उनके तपोमय जीवनकी पवित्रतासे अभिभूत हो गया।

उन्होंने 'बच्चन दादा' कहकर मेरा स्वागत किया। मैं अभी मन-ही-मन आश्चर्य कर रहा था कि इस पूर्व अपरिचितके पास आते ही क्यों मुझे ऐसा लग रहा है जैसे मैं किसी अपनेके पास आ गया हूँ कि उन्होंने कहा – हम किसी पूर्व जन्मके संस्कारसे मिले हैं।

मैं अपने सहज अविश्वासी स्वभावसे पूछ बैठा – क्या पुनर्जन्म होता है?

उन्होंने दृढ़ विश्वाससे कहा – होता है।

और वे कुछ सोचने-से लगे, कुछ कहते भी रहे, पर मुझे लगा कि जैसे मैं क्षणभरको चेतना-शून्य हो गया और इतनेमें ही कई जन्मोंके आवर्तमें घूम आया। वे कह रहे थे – इसमें आश्चर्य करनेकी क्या बात है, जन्म तो इसी जन्ममें कई बार होता है।

मेरे साथ मेरी पत्नी भी उनसे मिली। उनसे बात करते हुए उन्होंने कहा – तुम्हें मैं अपनी बहन बनाऊँगा।

और फिर मेरी ओर देखकर बोले – पर तुम्हें बहनोई नहीं बनाऊँगा।

मैंने उन्हें अपनी कुछ रचनाएँ भी सुनाई और जिस तन्मयतासे उन्होंने मेरी कविताएँ सुनीं, उस तन्मयतासे शायद आजतक किसीने मेरी कविताएँ नहीं सुनीं। 'मधुशाला' सुनकर उन्होंने कहा – मैं तुम्हारे 'प्याला'को 'काला' करूँगा; तुम्हारी मधुकी 'धारा'को उलट दूँगा, तुम्हारी मधुशालामें रम जाऊँगा।

अंतमें कुछ सोचकर बोले – तुम जो लिखते हो, उसका अर्थ तुम नहीं जानते।

दूसरे दिन मैंने अपने दो कवि-बन्धुओंके साथ उनके दर्शन किये। जिसने जो भी प्रश्न किया, उसका उन्होंने सारगर्भित उत्तर दिया। विशेषकर उन्होंने यह बताया कि काष्ठ मौन क्या है। वे थोड़े दिनों बाद काष्ठ मौन लनेवाले थे। बादको एकने मुझसे कहा कि स्वामीजीकी चेतना सजग हो गयी थी कि उसे सँभालना उनके लिये कठिन हो रहा था, बस, उन्होंने अपने

आत्म-बलसे उसे तिनकेकी तरह त्याग दिया।

दो दिनमें ही उन्होंने हमें ऐसी आत्मीयतामें बाँध लिया था कि उनके आगामी काष्ठ मौनकी कल्पना हमें विचलित करने लगी। कैसा लगेगा, जब वे न किसीसे बोलेंगे, न किसीकी ओर देखेंगे, न किसीको पहचानेंगे। हमारी व्यग्रताका समाधान उन्होंने यों किया – तब हम और ऊँचे स्तरपर मिलेंगे।

दूसरी बार जब मैंने उनके दर्शन किये तो उन्होंने मुझे कुछ अध्यात्मकी बातें बतायीं। मैंने कहा – महाराज, मैं तो आपके चरणोंसे आगे कुछ भी नहीं देख पाता।

तुरंत बोले – तो यदि मेरे चरणोंमें कुछ होगा, तो वे तुम्हें आगे भी ले जायेंगे।

उन्होंने मेरी शक्तिको नहीं, अपने चरणोंको चुनौती दी। यह भी महानताके अनुरूप था। यह उनके अंतिम शब्द थे, जो मेरे कानोंमें पड़े। इसके कुछ ही दिनों बाद उन्होंने काष्ठ मौन ले लिया।

काष्ठ मौनके पश्चात् जब मैंने उनके दर्शन किये तो मनमें बड़ा क्षोभ हुया, बड़ी निराशा हुई। जिस ऊँचे स्तरका आश्वासन उन्होंने दिया था, उसका कोई आभास मुझे नहीं मिला।

कुछ समय बीत गया। एक ब्राह्म मुहूर्तमें अध-सोया, अध-जागा-सा पड़ा हूँ। देखता हूँ – स्वामीजी महाराज सामने खड़े हैं, चेहरेपर वही पहलेकी-सी आत्मीयता भरी मुसकान है। कह रहे हैं – ''बच्चन दादा!''

मैं प्रसन्न हूँ।

फिर –''बच्चन दा......दा!''

मैं और प्रसन्न हूँ।

फिर –''बच्चन दऽ –दऽ'' –''बच्चन दो –दो!''

मैं स्तब्ध हूँ, यह अभिप्राय था आपका?

''मेरा कोई दादा-दीदी नहीं है। मैं महा मँगता हूँ। मुझे दो –दो!''

''महाराज, आपको देने योग्य मेरे पास क्या है?''

''बहुत है, योग्य भी है; अयोग्य भी है; मुझे सब दो; मुझे अपनी प्रीति दो, प्रतीति दो, श्रद्धा दो; अपना रोग, शोक, विकार, अपनी चिंता दो; अपना अहं दो, अपनेको दो। विषमता देखो, तुम देते हो, पर मेरे पास कुछ नहीं आता। मैं माँगता ही जाता हूँ। तुम्हारी पंक्ति उलट देता हूँ,

'भेंट न जिसमें मैं कुछ पाऊँ पर तुम सब कुछ खोओ।'
(सतरंगिनी)

यही अमर दान है। मनुष्य न खाली हाथ आता है, न खाली हाथ जाता है; उसे हाथ झाड़कर जाना चाहिये। मनुष्यके पास ऐसा कुछ भी नहीं, जिसे देकर वह कुछ हलका न हो सके, कुछ मुक्त न हो सके। जो भी दे सको, दो। जो नहीं देता, उसका भार नहीं टलता, उसका बन्धन नहीं कटता।''

''देना कोई सरल काम तो नहीं।''

''बच्चन दऽ – बचनेका बचन दो। मैंने कहा था, तुम्हें बहनोई नहीं बनाऊँगा। तुम हँस पड़े थे। मेरा अभिप्राय नहीं समझे थे। कबीरका कथन भूल गये? मैं बहनोई, राम मोरा सारा-सहारा। मैंने बचन दिया था, तुम भी बचन दो। बचना, बचनेवाले और बचानेवाले दोनोंके सहयोगसे संभव होता है।''

''प्रयत्न करूँगा।''

''बचन दऽ'' – ''बचानेवाला बचन दो!''

''मैं तो जग-जीवनमें डूबा हूँ, बचानेवाला बचन मैं कहाँसे दूँगा।''

''तुम जो लिखते हो, उसका अर्थ तुम नहीं जानते। यह मैंने तुम्हारा स्वभाव कहा है। यानी तुम उपकरण हो – शंख हो, वीणा हो; फूँकनेवाला, बजानेवाला दूसरा है। जो तुम स्वभावसे हो, उसके लिये सचेत रहो। तुम उपकरण मात्र बनो, बचानेवाला बचन तुमसे प्रतिध्वनित होगा।''

मेरी आँखें खुल गईं। कुछ दिन मैंने यह सोचनेका प्रयत्न किया कि वह बचानेवाला बचन क्या होगा। फिर जैसे किसीने मनमें कहा – ऐसा करके तुम पूर्ण उपकरण बननेमें बाधा डाल रहे हो।

कई महीने बीत गए। एक दिन सहसा दस बरस पहले एक मित्रकी कही हुई एक बात कानोंमें रह-रहकर गूँजने लगी। गजानन्दने मुझसे कहा था – बच्चन, गीताको लोकप्रिय वाणीमें कहो।

और मैंने फौरन यह कहकर टाल दिया था – यह मेरे बसकी बात नहीं है।

पर अब बात तो उनकी थी, पर स्वर स्वामीजी महाराजका था। मैं सोचने लगा, क्या बचानेवाला बचन यही नहीं है? यही है, तो मेरे लिये

यह काम कितना कठिन है!

'खो गई नदियाँ जहाँ, तू खोजने आई किनारा।'

(आरती और अंगारे)

इस कामको उठाना मेरे लिये असंभव है, पर इस पुकारकी उपेक्षा करना भी तो मेरे लिये असंभव है। इस संघर्षमें अनेक चमत्कारी अनुभव हुए, जिनसे प्रेरित होकर मैंने यह गीता-यज्ञ आरंभ किया और वह जिस रूपमें संपन्न हुआ है, मुझे लगता है, वह किसी अज्ञात शक्तिसे निर्दिष्ट है। मैंने केवल उपकरण बने रहनेका प्रयत्न किया है।

इस यज्ञका सबसे अधिक भार तेजीजीको वहन करना पड़ा।

'जिस जगह यज्ञ होता, राक्षस आ ही जाते।'

(बुद्ध और नाचघर)

यज्ञ वह नहीं है, जिसमें आग और आहुति हो; राक्षस वही नहीं, जिसके सिरपर सींग और जबड़ेमें बड़े-बड़े दाँत हों। मुझे गीता-यज्ञमें लगा, देख, राक्षस एक तुरंत रोगके रूपमें आया और उसने मेरी पत्नीपर आक्रमण किया, पर प्रभुकी कृपासे मैं उद्विग्न नहीं हुआ। स्वामीजी महाराजने कहा था, ''अपनी चिंता मुझे दो।'' मैंने अपनी चिंता उन्हें दे दी और यज्ञमें लगा रहा। मेरा विश्वास है कि उन्होंने ही मेरी चिंताका शमन किया, राक्षसको परास्त किया। अब मेरी पत्नी स्वस्थ हैं और यज्ञ भी संपूर्ण हो गया है।

स्वामीजी महाराजने कहा था, ''मेरे चरणोंमें कुछ होंगे, तो वे तुम्हें आगे भी ले जायेंगे।'' गीताको 'जन-गीता' का रूप देते हुए प्रतिक्षण मुझे अनुभव हुआ है कि उन्हींके चरण मेरे चरणोंको खींच रहे हैं।

'खींचतीं तुम कौन ऐसे बंधनोंसे जो कि रुक सकता नहीं मैं।'

(मिलन यामिनी)

गीताके अधिकारियोंसे मेरी प्रार्थना है कि वे 'जन गीता' की पंक्तियोंको स्वामीजी महाराजकी चरण-रेख समझकर स्वीकार करें। ये पंक्तियाँ जहाँ कहीं वक्र, कुंचित, अस्पष्ट अथवा खण्डित जान पड़ें, वहाँ यही समझा जाये कि मेरे दुर्बल चरण उनके दृढ़ चरणोंका ठीक अनुसरण नहीं कर सके हैं।

प्रभुकी प्रेरणा, बुद्धिकी विमलता एवं हृदयकी सद्भावनासे जो

सज्जन मेरी त्रुटियोंकी ओर संकेत करेंगे, उनपर मैं कृतज्ञता एवं विनम्रतापूर्वक विचार करूँगा।

अपनी अनुभूतियोंकी जो चर्चा मैंने यहाँ की है, वह स्वामीजी महाराजकी प्रेरणा है, कि मौनावस्थाका उच्चस्तरीय मिलन, कि मेरे अतिचेतनकी एक झलक, कि मेरे अवचेतनकी कोई झाँकी, कि मेरी कवि-कल्पना मात्र, इसे कौन बताये?

स्वामीजी महाराज बता सकते हैं, पर वे मौन हैं; मैं मुखर हूँ, पर मैं बता नहीं सकता।

'मेरी तो हर साँस मुखर है,
प्रिय, तेरे सब मौन सँदेश।'

(प्रणय पत्रिका)

'जन गीता' रचते हुए मैंने एक विशेष सुखका अनुभव किया है। मेरी हार्दिक कामना है कि जो इसे पढ़े, सुनें, सुनाएँ उन्हें भी वही सुख प्राप्त हो।

२१९ डी –१, डिप्लोमेटिक एनक्लेब,
नई दिल्ली
१२ - ५ - ५८

बच्चन

* * * * *

तुलसी पूजन

बाबा पहले श्रीतुलसीजीकी नित्य अर्चना किया करते थे। तीर्थयात्रा ट्रेन सन् १९५६ के जनवरी मासमें चली थी। तीर्थयात्रा ट्रेनके चलनेतक तुलसी पूजनका क्रम अखण्ड रूपसे निभता रहा। बाबा श्रीतुलसीजीके बिरवेमें जल दिया करते थे और जल देनेके बाद तुलसीजीके पत्तोंका स्पर्श करते हुए कुछ देरतक खड़े रहा करते थे। खड़े-खड़े वे क्या करते थे, यह तो वे ही जानें, परन्तु इतना अनुमान अवश्य किया जा सकता है कि वे स्तवन-निवेदन-गुणगायन करते होंगे। इस नियमके प्रति बाबा बड़े कड़े थे। यदि कभी उनको बाबूजीके साथ यात्रा करनी पड़ती थी तो यात्रामें भी

किसी भक्तके घरसे श्रीतुलसीजीका गमला रेलवे प्लेटफार्मपर मँगवाया जाता था और वहाँ बाबा अपनी तुलसी-अर्चना सम्पन्न किया करते थे।

* * * * *

तीर्थों की पावन यात्रा

भारतके प्रमुख तीर्थस्थलोंका परिचय समाजको देनेके लिये यह निश्चय किया गया कि सन् १९५७ के जनवरी मासमें 'कल्याण' पत्रिकाका 'तीर्थ' विशेषांक प्रकाशित किया जाय। स्थान-स्थानके संतोंको, महन्तोंको, विद्वानोंको, विशेषज्ञोंको, मठ-मन्दिरके प्रबन्धकों आदि-आदिको तीर्थ-स्थानोंका विवरण भेजनेके लिये अनुरोध किया जाने लगा। इसीके साथ ट्रेन द्वारा तीर्थयात्रा करनेका भी निर्णय ले लिया गया। यह निर्णय लिया गया मुख्यतः श्रीसेठजी (पूज्य श्रीजयदयालजी गोयन्दका) की प्रेरणासे ही। तीर्थ-यात्रा करनेसे तीर्थांकके लिये उत्तम सामग्री तो एकत्रित होती ही, परंतु इससे भी महत्त्वपूर्ण तथ्य यह था कि इस यात्रासे धर्म-ग्रन्थों एवं धर्माचार्यों द्वारा हिन्दू मात्रके लिये निर्दिष्ट कर्तव्यके पालनके आदर्शकी स्थापना होती। शास्त्रोंमें तो तीर्थ-यात्रा करनेके लिये लिखा ही गया है, भारतके चार सुदूर कोनोंमें चार प्रधान मन्दिरोंके पास चार मुख्य मठोंकी स्थापना करके भगवान श्रीआदिशंकराचार्यजीने निर्देश दिया कि भारतके तीर्थोंकी यात्रा करना हर एक हिन्दूका धार्मिक कर्तव्य है। महान आचार्यों द्वारा यह कर्तव्य-निर्देश भी इसीलिये है कि जन-जनका जीवन धर्म-पथपर अग्रसर होता रहे।

तीर्थ-यात्राका निश्चय होते ही सन् १९५६ के जनवरी मासमें ट्रेन द्वारा तीर्थ-यात्रा करनेकी योजना बना ली गयी। ज्यों ही लोगोंको ज्ञात हुआ कि बाबूजी और बाबाने तीर्थ-यात्राका निश्चय कर लिया है और तीर्थ-यात्रा-ट्रेन वाराणसीसे प्रस्थान करनेवाली है, जगह-जगहके लोग साथ चलनेके लिये उत्सुक हो उठे। मना करते-करते भी ट्रेनमें साथ चलनेवाले लोगोंकी संख्या छः सौसे भी अधिक हो गयी।

तीर्थ-यात्राके लिये जो तिथि निर्धारित की गयी थी, उसके अनुसार बाबूजी और बाबा वाराणसी पहुँच गये। अन्य तीर्थ यात्री भी आ गये, परंतु एक विकट परिस्थिति सामने खड़ी हो गयी। तीर्थ-यात्राके कार्यक्रमके

अनुसार तीर्थ-यात्रा-ट्रेन वाराणसीसे चलकर कलकत्ता-जगन्नाथपुरी-मद्रास-रामेश्वरम्-द्वारका होते हुए सभी तीर्थ स्थानोंपर जाने ही वाली थी कि तभी उड़ीसामें दंगा-फसाद हो जानेके कारण सरकारने यात्राको रोक दिया। इस विकट परिस्थितिमें बहुत विचारके बाद तीर्थयात्राका नवीन कार्यक्रम बनाना पड़ा। अब यह निश्चित किया गया कि तीर्थ-यात्रा-ट्रेन द्वारका-रामेश्वरम्-मद्रास होते हुए चले। यह सही है कि इस नवीन कार्यक्रमके अनुसार भारतकी परिक्रमा उल्टी होगी, पर ऐसा विवश होकर करना पड़ा। नवीन कार्यक्रमके अनुसार रेलवे अधिकारियोंसे यात्राके लिये आज्ञा मिलते ही २७ जनवरी १९५६ के दिन तीर्थ-यात्रा-ट्रेनने वाराणसीसे प्रस्थान किया। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि प्रस्थानके पूर्व काशीके विद्वान पण्डितोंके द्वारा भगवान श्रीगणपति एवं अन्य देवताओंका वेद मन्त्रों द्वारा विधि पूर्वक पूजन करवाया गया और भगवन्नामके संकीर्तन एवं जयघोषके उपरान्त ही ट्रेन वाराणसी स्टेशनसे चली। सम्पूर्ण यात्राके विस्तृत वर्णनका दिया जाना तो सम्भव है ही नहीं, अतः कुछ एक स्थानोंका ही सांकेतिक विवरण दिया जा रहा है।

१ – चित्रकूट

वाराणसीसे चलकर प्रातःकाल ट्रेन करवी स्टेशनपर पहुँची। वहाँ प्रातःकालीन प्रार्थना एवं संकीर्तनके कार्यक्रम पूज्य श्रीगोस्वामीजीके नेतृत्वमें हुए। बाबूजीने सभी यात्रियोंको यात्रामें पालनीय आवश्यक नियम सुनाये। सम्पूर्ण यात्रामें यह क्रम रहा कि प्रातःकाल जिस स्टेशनपर गाड़ी पहुँचती, वहीं प्लेटफार्मपर सब यात्री एकत्रित होकर श्रीगोस्वामीजीके नेतृत्वमें प्रार्थना एवं संकीर्तन करते। उसी समय आस-पासके दर्शनीय स्थानोंकी जानकारी यात्रियोंको दे दी जाती। करवीसे बस द्वारा सब लोग चित्रकूट गये। वहाँ दो दिनका वास रहा। श्रीकामदगिरिकी सभीने परिक्रमा लगायी। चित्रकूटके वातावरणकी शान्ति एवं वनकी शोभासे बाबा बड़े प्रभावित हुए। उस शान्ति और शोभाको देखकर बाबाको एक बड़ा दिव्य अनुभव हुआ।

मन्द-मन्द प्रवाहिनी मन्दाकिनीजीके तटपर बाबा बाँयी करवट लेटे हुए थे, उन्हें तन्द्रा भी नहीं थी। शरीरसे तो बाबा मन्दाकिनी तटपर लेटे हुए थे, परंतु उनका अनुभूति-जगत कुछ अन्य ही था। वे अनुभव करने लग गये कि मैं एक बड़े सुन्दर एवं सुरम्य वनमें विचरण कर

रहा हूँ। वनकी शोभा अवर्णनीय है। वृक्ष छोटे-छोटे ही हैं। वृक्षोंपर पके-पके मधुर फल लटक रहे हैं। फलोंके भारसे वृक्षोंकी शाखाएँ झुक गयी हैं। उन फलोंकी सुन्दरता और कान्ति अनोखी है। सम्पूर्ण वनकी शोभा आश्चर्यमयी है। बाबाके मनमें यह जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि मैं कहाँ हूँ, यह कौन-सा स्थान है और इस वनका नाम क्या है? उस नितान्त निर्जन वनमें भला कौन इन जिज्ञासाओंका समाधान करे? चारों ओर थी घोर सघनता और महा निर्जनता। जो भी हो, वनकी शोभा मनको बड़ी प्यारी लग रही थी। वनमें विहरण करते एक सुन्दर बालक दिखलायी दिया। वह श्याम वर्णका था। उस बालकका सौन्दर्य और लावण्य भी अनोखा था। उस श्याम बालकसे बाबाने पूछा – यह कौन-सा वन है?

बालकने कहा – चित्रकूट।

चित्रकूट नाम सुनकर बाबा 'चित्रकूट' 'चित्रकूट' 'चित्रकूट' नामकी आवृत्ति करने लगे। वह बालक तो वनमें अदृश्य हो गया, परंतु बाबा चित्रकूट नामकी आवृत्ति करते ही रहे। आवृत्ति करते हुए बाबा वनमें विचरण करने लगे। बाबा सोचने लगे कि जब त्रेतायुगमें भगवान श्रीरामने भगवती सीता एवं भाई लक्ष्मणके साथ चित्रकूटमें निवास किया होगा, तब यह चित्रकूट और इसके आस-पासका सारा वन-प्रान्त बहुत-बहुत सुन्दर रहा होगा।

बाबा इस प्रकारसे चिन्तनमें निमग्न थे, तभी यह दिव्यानुभूति तिरोहित हो गयी। बाबाने देखा कि मैं विहरण नहीं कर रहा हूँ, अपितु मन्दाकिनीके तटपर लेटा हुआ हूँ। चित्रकूटकी उस परम पवित्र भूमिने बाबाको अपनी जिस दिव्य छविका दर्शन करवाया, उससे बाबाका मन भक्ति-भावसे उर्मिल हो उठा।

बाबाने न जाने कितनी बार इस दिव्यानुभवको सुनाया है।

२ – दिल्ली

अयोध्यासे नैमिषारण्य, हरिद्वार, कुरुक्षेत्र होते हुए तीर्थ-यात्रा-ट्रेन दिल्ली पहुँची। दिल्लीमें बाबा कारमें बैठे हुए एक बार जब जामा मस्जिदके पाससे निकले, उस समय बाबाको कुछ विचित्र-सा अनुभव होने लगा। आध्यात्मिक स्तरकी भावमयी तरंगोंके स्पर्शकी अनुभूति

बाबाको होने लगी। बाबाको ऐसा लगा मानो वातावरणमें दिव्य प्रेमकी लहरें छायी हुई हैं। बाबाने मन-ही-मन सोचा कि कहीं आस-पास अवश्य ही किसी सिद्ध संतकी उपस्थिति है। यदि वह संत वर्तमानमें नहीं है तो भूतकालमें रहा ही होगा और उसीके कारण यहाँका वातावरण आध्यात्मिक भाव-तरंगों (SPIRITUAL VIBRATION) से इतना अधिक भरपूर और इतना अधिक सशक्त है। बाबाने यह बात पासमें बैठे हुए पं. श्रीजीवनशंकरजी याज्ञिकको बतलायी।

श्रीयाज्ञिकजी काशी हिन्दू विश्वविद्यालयमें अँगरेजीके प्राध्यापक थे। परम पूज्य श्रीमालवीयजीको प्रायः श्रीमद्भागवतकी कथा सुनाया करते थे। ज्यों ही बाबाने अपने विचित्र अनुभवकी बात श्रीयाज्ञिकजीको बतलायी, उन्होंने तुरन्त कहा – यहाँ जामा मस्जिदके द्वारपर सिद्ध संत सरमदकी मजार है। श्रीसरमद ईरानसे भारत सौदागरके रूपमें आये थे। भारत आकर वे बन गये फकीर और फकीरसे बन गये अवधके कुमार भगवान श्रीरामके सच्चे भक्त। वे सदा अवधूतके रूपमें रहते थे। उन्हें भगवान श्रीरामका दीदार (दर्शन) हो चुका था। भगवानकी रूप-माधुरीपर संत सरमद जी-जानसे फिदा थे। भगवान श्रीरामके ख्यालमें वे इतना गर्क रहते थे कि उन्हें दीन-दुनिया-दौलतसे कोई मतलब नहीं रह गया था। औरंगजेबके बड़े भाई दाराशिकोह इन्हें ही अपना पीर मानते थे। मुल्ला-मौलवियोंको इस बातसे बड़ी चिढ़ थी कि एक मुसलमान फकीर हिन्दुओंके देवी-देवताओंकी पूजा करता है। उन्होंने बादशाह औरंगजेबको भड़काया। धर्मान्ध औरंगजेबका मजहबी जुनून संत सरमदकी इस दीवानगीको गवारा नहीं कर सका और कुफ्रके नामपर उसने सिद्ध संत सरमदको मौतकी सजा दे दी। इस हुक्मनामेकी खिलाफत कौन करता? यही औरंगजेब अपने बड़े भाई दाराशिकोहके दो टुकड़े करवा चुका था। एक मोहतरम फकीरके लिये सजा-ए-मौतकी नापाक बातसे लोगोंके दिल तड़प उठे। यह दर्दभरी बात बरदाश्तके बाहर थी। लोगोंकी निगाहें नफरतसे भर गयीं। औरंगजेबके दिलमें खौफ था कि कहीं बगावत न हो जाय, इसलिये चौराहोंपर और जगह-जगहपर सेना तैनात कर दी गयी। काफी इन्तजामके बाद भी हमेशाके लिये जुदा होनेवाले शाह सरमदके कदमोंमें आखिरी सिज्दा अर्ज करनेके लिये तमाम लोग जामा

मस्जिदके बाहर इकट्ठे हो गये। इस भीड़में वे भी शामिल थे, जो तमाशा देखनेकी मंशासे आये थे। इस इकट्ठी भीड़के सामने शाही हुक्मके मुताबिक संत सरमदको कत्ल कर दिया गया। कातिलने ज्यों ही सरको धड़से अलग किया, त्यों ही धड़ने कटे सिरको अपने हाथमें उठा लिया और सरको हाथमें लेकर धड़ जामा मस्जिदकी सीढ़ियोंपर चढ़ने लगा। उसी समय सारा दिल्ली शहर काँप उठा, मानो भूचाल आनेवाला हो। वहाँकी सारी भीड़ भयसे अत्यधिक आक्रान्त हो उठी। सारे देखनेवाले डरके मारे थर्रा उठे। उसी भीड़में एक और फकीर था। उस फकीरने पुकार कर कहा – ओ सरमद! यह इजहारे-तैश फकीरके लिये मुनासिब नहीं है।

इतना सुनते ही सर सहित वह धड़ सीढ़ियोंसे नीचे उतरने लगा और जहाँ कत्ल किया गया था, वहाँ आकर धड़ जमीनपर गिर पड़ा। उसी जगहपर संत सरमदको दफना दिया गया। यही वह जगह है। इसी जगह उनकी मजार है। आपको जो दिव्यानुभव हुआ है, वह संत सरमदकी भाव-गरिमाके कारण हो रहा है।

बाबाने तुरन्त मस्तक झुकाकर संत सरमदको प्रणाम किया।*

३ – मथुरा

दिल्लीसे तीर्थ-यात्रा-ट्रेन जब मथुराके समीप पहुँचनेवाली थी, तब मथुरा और वृन्दावनका नाम सुनकर बाबाकी भाव-भूमिकामें परिवर्तन आने लग गया। व्रजमण्डलकी स्मृति मात्रने बाबाके लिये भावोद्दीपनका कार्य किया। यह भूमि तो अपने हृदयाराध्यके महाह्लादकी रंग-स्थली है। मथुरा पहुँचकर बाबा और बाबूजी ठहरे बिड़ला मन्दिरकी धर्मशालामें जो मथुरा और वृन्दावनके मध्य स्थित है। बाबूजीने बाबासे कहा –

---

*इस दिव्यानुभव होनेके बाद बाबा चाहने लगे कि संत सरमदकी जीवनगाथा प्रकाशमें आये। आगे चलकर बाबाने यह कार्य आदरणीय श्रीलखपत बाबूको सौंपा। उन्हें संत सरमदके जीवनवृत्तको लिखनेमें बड़ा परिश्रम करना पड़ा। आवश्यक तथ्य मिल ही नहीं पाते थे। कई वर्षोंतक कार्यमें लगे रहनेके बाद यह जीवन-वृत्त तैयार हो पाया और बाबाने सिद्ध संत सरमदका यह जीवन-वृत्त हनुमानप्रसाद पोद्दार स्मारक समिति गोरखपुर, द्वारा प्रकाशित करवाया।

चलिये, यमुना-स्नानके लिये चला जाय।

'यमुना' शब्द सुनते ही बाबाका मन अन्तर्मुख होने लग गया। जब बाबा बाबूजीके साथ यमुना-स्नान कर रहे थे, तब बाबाके दृष्टि-पथपर बाबूजी नहीं थे, अपितु बाबाको बाबूजीके स्थानपर नीलसुन्दर दिखलायी दे रहे थे। अन्य जितने तीर्थ-यात्री स्नान कर रहे थे, वे तीर्थ-यात्री बाबाको यात्री नहीं, 'कुछ और' ही दीख रहे थे।

तीर्थ-यात्रियोंके साथ बाबूजी और बाबाने श्रीगोवर्धन गिरिराजजीकी परिक्रमा भी की। परिक्रमा करके जब सभी लोग लौटे, इसके ठीक अगले दिन बिड़ला मन्दिरकी धर्मशालामें प्रातःकाल एक संतसे बाबाका मिलन बड़ी विचित्र रीतिसे हुआ। भगवती श्रीवृषभानुनन्दिनीके निर्देशपर ही वे बाबाके दर्शनार्थ आये थे।

बाबा सदा ही ब्राह्म वेलामें उठ जाया करते थे, इस अभ्यासके अनुसार बाबा प्रातःकाल चार बजे उठ गये, पर विगत दिवस श्रीगिरिराजजीकी लम्बी परिक्रमा करनेके कारण थकानकी अधिकतासे बाबा शय्यापर लगभग सात बजेतक लेटे रहे। शीत-ऋतु होनेके कारण सूर्योदय अभी हुआ ही था। सूर्योदय होनेपर बाबाने ज्यों ही अपना कमरा खोला, त्यों ही एक विशेष बात घटित हो गयी।

बाबाने अपने कमरेके फाटकको खोला ही था कि एक संत चटसे बाबाके कमरेमें घुस गये और घुस करके उन्होंने कमरेकी सिटकनीको भीतरसे बन्द कर लिया। यह एक अनहोनी बात थी। किसीका भी साहस नहीं कि कोई बाबाके कमरेके अन्दर प्रवेश कर सके। बाबूजीकी आज्ञा पानेके उपरान्त ही कोई बाबाके कमरेमें जा सकता था। श्रीरामसनेहीजी तथा श्रीभगतजी ऐसे निजी परिकर हैं, जो सदा सावधान रहते हैं, जिससे कि किसीके द्वारा किसी प्रकारका व्यवधान बाबाके जीवन-क्रममें उपस्थित न हो। इतनी सावधानीके बाद भी यह एक अनहोनी बात अचानक हो गयी। बिना किसी विशेष प्रयोजनके इस प्रकारका साहस कोई कर भी नहीं सकता।

भीतरसे सिटकनीको बन्द करके वे संत हाथ जोड़कर बाबाके सामने खड़े हो गये। विनम्रताके आधिक्यमें उनकी कमर कुछ झुकी हुई थी। घुटने भी कुछ-कुछ मुड़े हुए थे। वे गौर वर्णके थे, उनकी दाढ़ी शुभ्र थी और मुख-मण्डलपर बड़ी कान्ति थी। इतना ही नहीं, ज्यों ही वे हाथ जोड़कर

खड़े हुए, उनके नेत्रोंसे झर-झर अश्रु प्रवाहित होने लगे।

इनके प्रवेश करते ही बाबाके मनमें कई प्रकारके विचार रह-रह करके उठ रहे थे कि ये श्रीरामसनेहीजी अथवा श्रीभगतजीके साथ नहीं आये हैं, अतः अवश्य ही इन्होंने मिलनेके लिये श्रीपोद्दार महाराजसे आज्ञा नहीं ली है। इसके अतिरिक्त प्रवेश करते ही सिटकनीका बन्द कर लेना सर्वथा अनपेक्षित व्यवहार है। यह सब तो है ही, पर इसीके साथ इनकी भाव-दशा और विनम्रता भी साधारण नहीं है। तथ्यका अन्वेषण करनेकी दृष्टिसे बाबाने सहज प्रकारसे पूछा — क्या मैं आपका परिचय जान सकता हूँ?

वे संत विभोर वाणीमें कहने लगे — मैं तो श्रीकिशोरीजीका एक तुच्छ सेवक हूँ। आज मध्य रात्रिके बाद स्वप्नमें श्रीकिशोरीजीने एक आदेश दिया। श्रीकिशोरीजीने मुझे आज्ञा दी कि जाओ, बिड़ला मन्दिरमें जाकर राधा बाबाका दर्शन कर आवो। वे मेरे निज जन हैं। उन्होंने स्वप्नमें ही मुझे कमरा दिखला कर दिशाका निर्देश भी कर दिया कि किस प्रकार जाना है और कहाँ जाकर दर्शन करना है। मैं तो श्रीकिशोरीजीकी आज्ञाके अनुसार आपके दर्शनार्थ आया हूँ।

यह सुनते ही बाबा तो दीनतामें गड़ गये। अन्तर्हृदय भावोंसे अत्यधिक उर्मिल हो उठा। बाबा समझ नहीं पा रहे थे कि मैं अपने सौभाग्यकी सराहना करूँ अथवा इनके सौभाग्यकी सराहना करूँ। अत्यधिक दैन्य भरे स्वरमें बाबाने कहा — यह मेरा परम पावन सौभाग्य है, जो आपका शुभ दर्शन मुझे मिला। आप तो श्रीकिशोरीजीके अनन्य और अत्यन्त कृपा-पात्र हैं। जिन्हें श्रीकिशोरीजी स्वप्नमें आदेश दें, उनकी महिमाका बखान भला कौन कर सकता है? कहिये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ?

उन संत-प्रवरने कहा — बस, आपका दर्शन मिल गया, इससे अधिक और इसके अतिरिक्त अन्य क्या चाहिये? श्रीकिशोरीजीके आदेशानुसार आया और मेरा आना सार्थक हो गया।

बाबाने पूछा — आप कहाँ निवास करते हैं?

समागत संत-प्रवरने कहा — मैं तो वृन्दावनमें रहता हूँ, पर मुझे कोई नहीं जानता। भिक्षा-वृत्ति ही शरीर-निर्वाहका आधार है।

बाबाने पुनः जिज्ञासा की – आप बाहर कबसे खड़े हैं?

उन संत-प्रवरने बतलाया – लगभग दो-अढ़ाई घंटेसे खड़ा हूँ। स्वप्नादेशके बाद निद्रा खुल गयी। फिर स्नानादिसे निवृत्त होकर बिड़ला मन्दिरके लिये चल पड़ा। चार बजेके आस-पास मैं यहाँ आ गया था।

बाबाको बड़ा संकोच होने लगा कि मेरे कारण उनको दो-अढ़ाई घंटे हाथ जोड़े खड़े रहना पड़ा। इसके बाद बाबासे उनकी बहुत देरतक रसमयी बातचीत होती रही। दोनों ही एक दूसरेको रसके प्रवाहमें बहाये ले जा रहे थे। उन संत-प्रवरने अपने जीवनके कतिपय अनुभव भी सुनाये तथा बरसानेके एक प्रच्छन्न गृहस्थ-संतका परिचय भी दिया। उन संत-प्रवरने कहा – बरसानेमें एक गृहस्थ-संत हैं। उनका नाम है श्रीमोहिनीश्यामजी। ये बड़े ही गुप्त हैं। बाह्य रूप ऐसा बना रखा है कि कोई इनको पहचान ही न सके, पर ये हैं श्रीकिशोरीके परम कृपा-पात्र और गहरे प्रेममें छके रहनेवाले संत। यदि सम्भव हो तो आप उनका दर्शन करें।

लगभग आधे-पौन घंटेतक ये पूज्य संत-प्रवर बाबाके पास रहे होंगे। इस समय बाबाके आह्लादकी सीमा नहीं थी। 'मिलत प्रेम नहिं हृदय समाता। नयन स्रवत जल पुलकित गाता।।' फिर उन्होंने जानेके लिये बाबासे आज्ञा माँगी। बाबा तो चाहते थे कि ये और अधिक समयतक बैठे रहें, पर उनको रोकना भी सम्भव नहीं था।

वे जानेके लिये खड़े हुए तो बाबाने कहा – आप ठहरिये। मैं आपको 'कल्याण' सम्पादक श्रीपोद्दार महाराजसे मिलाता हूँ।

उन्होंने कहा – अब मुझे किसीसे नहीं मिलना है। श्रीश्रीजीका आदेश हुआ, अतः आपका दर्शन करने आ गया।

वे जानेके लिये उत्सुक थे। बाबासे विदाई लेकर वे कमरेसे बाहर निकले। बाबा यह जानना चाहते थे कि ये किधर जाते हैं। बाबा बिड़ला धर्मशालाकी छतपर चले गये। बाबाने देखा कि वे भावोन्मत्त दशामें अपने हाथ ऊपर किये वृन्दावनकी ओर तीव्र गतिसे चले जा रहे हैं। उनके चालकी गतिको दौड़ ही कहना चाहिये।

बाबा कई बार कहा करते थे – उन संतने न तो अपना नाम बतलाया, न अपना विशेष परिचय दिया और न फिर बादमें वे कभी

मुझसे मिले। वह उनका प्रथम एवं अन्तिम मिलन था। कुछ पता नहीं कि अब उनका शरीर है अथवा नहीं।

उन संत-प्रवरके चले जानेके बाद बाबा शौच-स्नानादिसे निवृत्त हुए। स्नानादिके सारे कार्य तो आज यन्त्रवत् सम्पन्न हो रहे थे। वस्तुतः बाबाका मन किसी अतीन्द्रिय सुख-सागरमें लहरा रहा था।

'हृदय समात न प्रेम अपारा'।

* * *

इन संतके अतिरिक्त दो और संत बाबासे मिलनेके लिये आये। इसी बिड़ला मन्दिर धर्मशालाके एक कमरेमें बाबा विश्राम कर थे। बाबाके विश्राममें किसी प्रकारकी कोई बाधा उपस्थित न हो, एतदर्थ बाबूजीने ठाकुर श्रीघनश्यामजी और श्रीरामसनेहीजीको नियुक्त कर रखा था। ये दोनों लोग धर्मशालाके अन्दरवाले कुएँकी जगतपर बैठे हुए धूपका सेवन कर रहे थे और साथ-साथ बाबाके कमरेकी ओर देखते भी रहते थे। अचानक ठाकुरजीको दिखलायी दिया कि बाबाके कमरेके द्वारपर एक महात्मा खड़े हुए हैं। उनके शीशपर लम्बे-लम्बे भूरे-भूरे केश हैं, जो पीठपर कमरतक लहरा रहे हैं और उनके कान्तिमय गौर शरीरपर मात्र एक कटिवस्त्र है। बाबाने अपने कमरेका द्वार खोल रखा है और उन महात्माके सामने हाथ जोड़े हुए खड़े हैं। वे महात्मा भी हाथ जोड़े वन्दन कर रहे हैं। ठाकुरजी कुएँकी जगतपर बैठे हुए दूरसे इस दृश्यको देख रहे थे। थोड़ी देर बाद ठाकुरजीने रामसनेहीजीसे पूछा – ये साधु कौन हैं?

रामसनेहीजीने प्रश्न किया – कौनसे साधु?

ठाकुरजी – ये ही, जो बाबाके कमरेके सामने खड़े हैं।

रामसनेहीजी – वहाँ तो कोई साधु नहीं है।

ठाकुरजी – पर, मुझे तो दिखलायी दे रहे हैं।

रामसनेहीजी – मुझे तो कोई भी साधु दिखलायी नहीं दे रहा है।

इधर यह बात हो रही थी और उधर वे साधु बाबासे विदाई लेकर चल पड़े। उनका चलना था कि ठाकुरजी कुएँकी जगतसे तत्काल उठकर उनकी ओर बढ़े, जिससे उनका परिचय प्राप्त किया जा सके, परंतु वे

देखते-देखते अदृश्य हो गये। जितनी शीघ्रतासे ठाकुरजी आये थे, उतनी देरमें वे धर्मशालासे बाहर जा ही नहीं सकते थे। ठाकुरजीने इधर-उधर बहुत देखा, परंतु वहाँ कोई साधु-महात्मा दिखलायी दिये ही नहीं। जब वे दिखलायी नहीं दिये, तब ठाकुरजी बाबाके पास गये और पूछा – ये साधु कहाँके थे?

बाबाने प्रश्न किया – क्या तुमने उनके दर्शन किये?

ठाकुरजीने कहा – हाँ, अभी-अभी एक साधु आपसे मिलकर गये हैं।

बाबाने बतलाया – एक नहीं, दो साधु थे।

बाबाने पुनः कहा – तुमको एकका दर्शन हो गया, यही बहुत है अन्यथा इनका दर्शन ही कठिन है। ये दोनों साधु सिद्ध संत हैं और कुसुम सरोवरपर रहते हैं। ये मात्र मिलनेके लिये यहाँ आये थे।

ठाकुरजीने इसीमें अपना सौभाग्य माना कि कम-से-कम एक संतका पावन दर्शन तो मिल ही गया।

४ – उज्जैन

मथुरासे चलकर तीर्थ-यात्रा ट्रेन प्रातःकालके समय उज्जैन पहुँचनेवाली थी। स्टेशनपर कड़कड़ाती शीतमें लोगोंकी भीड़ बड़ी उत्सुकताके साथ ट्रेनकी प्रतीक्षा कर रही थी। 'कल्याण' पत्रिका एवं धार्मिक पुस्तकोंकी आध्यात्मिक निधिको पढ़ देखकर जिन बाबूजीके प्रति लोगोंका हृदय अपार श्रद्धासे भरा हुआ था, उन धर्म-विभूतिका स्वागत करनेके लिये सबके हृदय प्रफुल्लित हो रहे थे। तीर्थ-यात्रा-ट्रेन ज्यों ही प्लेटफार्मपर आयी, उसी समय ढोलक-मजीरे खनक उठे। हरिकीर्तनकी ऊँची ध्वनिसे दूर-दूरका वातावरण गूँज उठा। गाड़ीके रुकते ही लोग पुष्पमालाएँ लेकर बाबूजीके डिब्बेकी ओर दौड़ पड़े। बाबूजीने गाड़ीसे उतरते ही हाथ जोड़कर सबका स्वागत किया। उपस्थित जन समुदायने देखा कि हमारे सामने तो साक्षात् प्रेमावतार ही खड़े हैं। चारों ओरसे पुष्प-वर्षा होने लगी और बाबूजीको माला पहनानेके लिये लोग आने लगे। उस समय ऐसा लगता था कि बाबूजी पुष्पमालाओंसे आवृत हो गये हों।

वहीं प्लेटफार्मपर माइकपर श्रीगोस्वामीजी द्वारा प्रातःकालीन प्रभु-प्रार्थना एवं सुन्दर पदोंका गायन हुआ। चारों दिशाओंमें भक्तिकी भावना परिव्याप्त हो गयी। दिनमें भगवान श्रीमहाकालके मन्दिरके प्रांगणमें बाबूजीका प्रवचन हुआ। उस प्रवचनका हजारों श्रोताओंपर ऐसा प्रभाव पड़ा कि यह प्रसंग पारस्परिक चर्चाका एक प्रधान विषय बन गया। उज्जैनमें बाबाको अपने एक पूर्व-जन्मकी बड़ी पुरातन स्मृति हो आयी। बाबा कई बार कहा करते थे कि मुझे अपने चार पूर्व-जन्मोंकी स्मृति है। एक जन्ममें बाबा उज्जैनमें थे। उज्जैन पहुँचते ही पूर्व-जन्मके दृश्य बाबाको याद आने लग गये।

५ – चित्तौड़गढ़-उदयपुर

उज्जैन-इन्दौर-ओंकारेश्वरसे चलकर तीर्थ-यात्री राजस्थान आये। सभी लोग चित्तौड़गढ़ देखनेके लिये गये। चित्तौड़गढ़की सीमाके भीतर प्रवेश करते ही बाबाकी भावनाएँ आर्द्र होने लग गयीं। इस गढ़के साथ राजपूत रमणियोंके अखण्ड सुहाग और राजपूत वीरोंके अद्भुत शौर्यकी बलिदानी स्मृतियाँ जुड़ी हुई हैं। अपने धर्मपर सर्वस्व न्यौछावर कर देनेके लिये कटिबद्ध उस राजपूती सौन्दर्य और राजपूती शौर्यने वासनालोलुप एवं मदान्ध मुसलमानी तलवारके सामने झुकना जाना ही नहीं। यह चित्तौड़गढ़ ही साक्षी देता है कि प्राणोत्सर्गकी उन अमर गाथाओंसे भारत भूमिका नारी-जीवन और पुरुष-जीवन कितना अधिक गौरवान्वित हो उठा। चितौड़गढ़की एक-एक दीवाल और यहाँकी भूमिका एक-एक कण उनके सतीत्व एवं वीरत्वके गीत गाता रहता है। बाबाको महान आत्माहुतिके वे ऐतिहासिक प्रसंग याद आने लगे कि उन्होंने किस प्रकार अपने सतीत्वकी और हिन्दुत्वकी रक्षाके लिये जीवनकी बलि धर्मकी वेदीपर चढ़ा दी थी। बाबाको अपने आँसू रोक पाना कठिन हो गया। बाबा बार-बार अपने वस्त्रोंसे अपनी आँखोंको और अपने कपोलोंको पोंछते रहते थे। जिस स्थानपर कुमारियोंने और रानियोंने जलती चितामें स्वयंको स्वाहा करके अपने शील और सुहागके पावित्र्यकी रक्षा की थी, उस स्थानका दर्शन करते ही बाबाकी भावनाएँ अत्यन्त विकल हो उठीं। बाबाने उस आत्माहुति-स्थलीको प्रणाम किया और वहाँकी परम पवित्र रजको अपने मस्तकपर लगाया।

शील और शौर्यकी वीर-गाथाओंके कारण चित्तौड़गढ़ विख्यात तो है ही, उसकी ख्यातिका एक कारण और भी है वहाँकी दिव्य भक्ति-गाथा। मोरमुकुटधर गिरिधर गोपालके प्रेममें दीवानी मीराके भक्ति-विह्वल एवं भाव-विभोर जीवनने चित्तौड़गढ़के नामको अमरता और उज्ज्वलता प्रदान की है। चित्तौड़गढ़के मन्दिरमें बाबा और बाबूजीने मीराबाईके परमाराध्य श्रीगिरिधर गोपालके दर्शन किये। उसी समय किसी प्रशासकीय अधिकारीने धीरेसे ऐसा बतलाया कि मीराबाई जिनकी उपासना करती थीं, वह श्रीविग्रह तो वस्तुतः उदयपुरके राजमहलमें है एवं श्रीराणा परिवारकी निजी निधि है। उसका दर्शन सहज सम्भव नहीं है। हो सकता है कि यदि कुछ प्रयास किया जाय तो आप लोगोंको दर्शन मिल जाय।

'कल्याण' सम्पादकके नाते बाबूजीका यश चारों ओर है और बाबूजीके नामपर दर्शन होनेकी विधि बैठ गयी। उन प्रशासकीय अधिकारीके सौहार्द एवं सहयोगसे बात शीघ्र बन गयी। बाबूजी और बाबा उदयपुरके राजमहलमें श्रविग्रहके दर्शनार्थ गये। बाबूजी और बाबाके साथ एक-दो व्यक्ति और होंगे। उस श्रीविग्रहकी छवि देखकर बाबा तो मोहित हो गये। छोटा होते हुए भी वह श्रीविग्रह बड़ा आकर्षक था। दर्शन मात्रसे हृदयके भाव रह-रह करके उमड़ रहे थे। उनका दर्शन करके जी भरता ही नहीं था। हृदय इतना उर्मिल हो उठा था कि मीराबाईके कई पदोंकी कई पंक्तियाँ बाबाकी स्मृतिमें उभरने लगीं और उभर उठी एक अति विशेष बात। मीराबाईने बाबूजीके बारेमें एक सूचना एक संतको दी थी। उन संतको जब मीराबाईके साक्षात् दर्शन हुए तो उन्होंने अनेक प्रश्न पूछे थे और उन प्रश्नोंमें एक प्रश्न यह भी था कि श्रीपोद्दार महाराजकी आध्यात्मिक स्थिति क्या है? इस प्रश्नका उत्तर देते हुए मीराबाईने उन संतसे कहा था कि 'हनुमानप्रसादका सूक्ष्म शरीर बिलकुल श्रीप्रियाजीका स्वरूप हो गया है।' मीराबाईके वंशजोंका वह महल, मीराबाईके आराध्यका वह दर्शन और मीराबाईके अधरोंका वह उत्तर, इन सब बातोंसे बाबाके हृदयमें भावका ज्वार आ गया।

६ – श्रीनाथद्वारा

उदयपुरके पास ही श्रीनाथद्वारा है, जहाँ परम पूज्य महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यजीके सेव्य श्रीश्रीनाथजी महाराज विराज रहे हैं। वहाँ बाबाको

श्रीश्रीनाथजी महाराजके दर्शनका अवसर दो बार मिला। मंगला-दर्शन एवं शृङ्गार-दर्शन करके मन स्वतः दिव्य भावोंसे भर गया। श्रीश्रीनाथजी महाराजका दर्शन पहली बार होते ही अन्तर किसी अभिनव भावसे भावित हो गया। भावाभिभूत होनेसे बाबाके शरीरमें पर्याप्त शिथिलता परिव्याप्त हो गयी। मन्दिरमें एक किनारे बाबा पर्याप्त समयतक निश्चेष्ट खड़े रहे। बहुत बादमें बाबाने कहा था – यह कहना बड़ा कठिन है कि श्रीश्रीनाथजी महाराजकी अहैतुकी कृपा किसको किस प्रकार बहा ले जायेगी।

नाथद्वाराके बाद अजमेर, सिद्धपुर, द्वारका, जूनागढ़, डाकोर आदि अनेक तीर्थोंका दर्शन करके यात्रा-ट्रेन बम्बई पहुँची। बम्बईमें बाबूजीका बड़ा भव्य स्वागत हुआ। बम्बईसे प्रस्थान करनेके बाद यात्रियोंने नासिक, पण्ढरपुर, किष्किन्धा, मैसूर, बंगलौर, कालहस्ती आदि-आदि महत्त्वपूर्ण स्थानोंके दर्शन किये। तिरुपतिमें श्रीबालाजी श्रीवेंकटेश्वर भगवानका अति विख्यात मन्दिर है।

७ – तिरुवण्णमल्लै

तिरुपति श्रीबालाजी महाराजका दर्शन करके सभी यात्री तिरुवण्णमल्लै गये। यहाँ श्रीरमण महर्षिकी समाधि है। बाबाने समाधिको दण्डवत् प्रणाम किया। प्रणाम करते ही बाबाको अमित भावोद्रेक हुआ। आँखोंसे अश्रुपात होने लगा। बाबाने संवरण करनेका बहुत अधिक प्रयास किया, परंतु सफलता नहीं मिली। एक बार नहीं, कई बार प्रयत्न करनेके बाद भी जब अश्रुका प्रवाह अवरुद्ध नहीं हो पाया तो बाबा समाधिके पास ही आँखें बन्द करके बैठ गये। भावोद्रेक इतना अधिक था कि लगभग आधे घंटेतक अनर्गल अश्रु-प्रवाहसे कपोल भीगते रहे। उस समय बाबाकी स्थिति विचित्र थी। आधे घंटेके बाद जब भाव किंचित् प्रशमित हुआ तो बाबा अपनी आँखों और अपने कपोलोंको पोंछते हुए खड़े हो गये। वहींपर एक स्त्री खड़ी-खड़ी बाबाकी विचित्र भाव-दशाको देख रही थी। जब बाबा खड़े हुए तो उस महिलाने अँगरेजीमें बाबासे कहा – मेरे योग्य कोई सेवा हो तो बतलाइये।

बाबाने कहा – मातः! मैं यहाँके लिये एक नवीन व्यक्ति हूँ।

यहाँपर जो-जो दर्शनीय स्थल हैं, वे सब यदि आप दिखला सकें तो बड़ी कृपा होगी।

उस महिलाने इस अनुरोधको स्वीकार कर लिया। वह लगातार आधा घंटातक साथ घूमती-फिरती रही और उसने महत्त्वपूर्ण स्थलों एवं वस्तुओंके दर्शन करवाये। उस महिलाके सरल व्यवहार एवं सेवा-भावकी बाबाके मनपर गहरी छाप पड़ी।

८ – कालड़ी

तिरुवण्णमल्लैके उपरान्त श्रीरंगम्, श्रीविल्लीपुत्तूर आदि अनेक स्थानोंका दर्शन करते हुए तीर्थ-यात्री कालड़ी पहुँचे। हिन्दू धर्मके महान उद्धारक भगवान श्रीआदिशंकराचार्यजीका जन्मस्थान दक्षिण भारतके कालड़ी नगरमें है। यहाँपर बाबाने, बाबूजीने और अन्य सभीने श्रीआदिशंकराचार्यजीके मन्दिरका दर्शन किया। पेरिवार नदीके तटपर भगवान श्रीआदिशंकराचार्यजीका तथा उनकी माताजीका मन्दिर है। मन्दिरमें प्रवेश करते ही बाबाको अनेक प्राचीन प्रसंग याद आने लगे। बाबाके अन्तरमें पुरातन स्मृतियोंका ज्वार-सा उठ आया। पहले बाबाकी शांकरमतमें अगाध आस्था थी (और अब भी है)। मन्दिरमें प्रवेश करते ही भगवान शंकराचार्य द्वारा प्रवर्तित अनेक सिद्धान्त-वाक्योंकी आवृत्ति स्वतः मन-ही-मन होने लग गयी और तभी स्मृति हो आयी उस परम दिव्य आत्म-परिणंतिकी। जो बाबा पहले शांकर मतानुयायी निष्ठावान अद्वैतवादी थे, वे ही अद्वैत-निष्ठ बाबा किस प्रकार बाबूजीके संस्पर्श एवं सम्पर्कमें साकारोपासकके रूपमें परिणत हो गये और किस प्रकार मधुरोपासनामें गहरे उतर गये, ये प्रसंग बाबाके स्मृति-पटलपर नृत्य करने लगे। जिन श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरी भगवतीकी उपासना श्रीआदिशंकराचार्यजी महाराजने की थी, उन्हींकी उपासना बाबाने भी की थी और वैसी ही सफलता भी मिली थी। कालड़ीके मन्दिरमें जानेपर बाबाको यह अनुभव हुआ कि वह स्थान अभी भी आध्यात्मिक शक्तिका पुञ्ज है और आध्यात्मिक दृष्टिसे बड़ा सशक्त है।

९ – कन्याकुमारी

इसके बाद विभिन्न स्थानोंका दर्शन करते हुए तीर्थ-यात्री जिस दिन कन्याकुमारी पहुँचे, उस दिन फाल्गुनी पूर्णिमा थी। कन्याकुमारी भारतकी

दक्षिणी सीमा है। यहाँपर कन्यास्वरूपा कुमारी पार्वतीजीका मन्दिर है। जनश्रुतिके अनुसार भगवती पार्वती यहाँ एक पैरपर खड़ी रहकर भगवान शिवशंकरकी प्राप्तिके लिये तप कर रही हैं और सतयुग आनेपर भगवान शिवशंकरसे परिणय होगा। भगवती पार्वतीका यह मन्दिर समुद्र तटपर ही है। दक्षिण दिशामें भारतका यह ऐसा सुदूरतम बिन्दु है, जहाँ तीन सागरोंका – बंगालकी खाड़ी, अरब सागर तथा हिन्द महासागर, इन तीनोंका संगम होता है। इतना ही नहीं, इस संगम-बिन्दुके दक्षिणमें दक्षिणी ध्रुवतक केवल अथाह जल है। इसी संगमपर बाबूजी और बाबाने सागर-स्नान किया। संगम-बिन्दुपर स्नान करते समय बाबा सोच रहे थे कि यह एक ऐसा बिन्दु है, जिसके आगे कोई भूमि-खण्ड है ही नहीं, केवल जल-ही-जल है, इसी प्रकार जीवनमें एक ऐसा भी बिन्दु आता है, जिसके आगे लौकिकता रह ही नहीं जाती, शेष रह जाता है मात्र भावोल्लास। जीवनमें सदा और सर्वथा भावका सिन्धु लहराता रहता है। स्नानके समय लहराते सिन्धुको देखकर बाबाके मनका भाव-सिन्धु बड़ा लहरा रहा था।

तीन सागरोंके संगमपर सूर्यास्तके समय डूबते हुए सूर्यका दृश्य बड़ा ही भव्य होता है। सभी यात्रियोंने इस दृश्यका दर्शन किया। आज फाल्गुनी पूर्णिमा होनेके कारण रात्रिके समय आकाशमें रुपहला चाँद हँस रहा था। रुपहली चाँदनीमें पृथ्वीका कण-कण चमक रहा था और चमक रही थी सागरकी लहरें भी। जल-थल-नभ सर्वत्र रजत शोभाका साम्राज्य था। इस शोभासे आकृष्ट होकर, मुख्यतः सागरकी चमकती उत्ताल तरंगोंके लहरानेसे उत्पन्न होनेवाली शोभापर विमुग्ध होकर बाबाने सागरके तटपर बैठनेके लिये अपना आसन बिछवाया। जब बाबा अपना आसन सागरके तटपर लगवा रहे थे, तब लोगोंने बहुत मना किया और बहुतोंने समझाना चाहा कि यहाँ बैठना खतरेसे खाली नहीं है। पूर्णिमाके दिन उमड़ते सागरकी न जाने कौन-सी उत्ताल तरंग कब किसको सागरके बीच खींच ले जाय, परंतु बाबा तो आज अपने दूसरे ही भाव-सिन्धुमें लहरा रहे थे। यात्री लोग तो रात्रिके समय होलिका-दहनके रूपमें होलीका उत्सव मना रहे थे, किन्तु बाबाके भाव-राज्यकी होली कुछ निराली रीतिकी थी। लोगों द्वारा मना किये जानेके बाद भी बाबा सागरके तटपर बैठ गये और रातभर बैठे रहे। ऊपर रुपहला चाँद, सामने रुपहला सागर और पार्श्वमें रुपहला

तट-प्रान्त, इस रुपहली रूप-राशिने बाबाको पहुँचा दिया अनूप रूपके भूप, भूत-वर्तमान-भविष्यके पुञ्जीभूत रूप श्रीप्रिया-प्रियतमके रंगोल्लासमें। बाबा अपने भावराज्यमें रात्रिभर लहराते रहे। ब्राह्म-मुहूर्तमें भाव-विभोर बाबा यही कहने लगे – जीवनमें व्यक्ति उस बिन्दुपर अपना आसन लगा ले, जिसके बाद रह जाय केवल भावका उछलता-उमड़ता सागर। जीवनमें पद-पदपर पल-पल रस उछलता रहे, उमड़ता रहे।

१० – श्रीरामेश्वरम्

जब तीर्थ-यात्री लोग श्रीरामेश्वरम् पहुँचे, तब बाबा रामझरोखा नामक स्थानका दर्शन करनेके लिये गये थे। यह स्थान श्रीरामेश्वरम्के मुख्य मन्दिरसे कुछ मीलकी दूरीपर है और एक बहुत छोटी पहाड़ीके ऊपर है। बाबाके साथ अन्य कई तीर्थयात्री गये थे। ये लोग अपराह्णकालमें गये थे और रामझरोखासे लौटते-लौटते सूर्यास्तका समय समीप हो आया था। आज सोमवारका दिन था और ठीक सूर्यास्तके समय बाबाको भगवान शिवकी अर्चना करनी थी। यह किसी भी प्रकारसे सम्भव नहीं था कि सूर्यास्तके समयतक श्रीरामेश्वरम् नगरमें डेरेपर पहुँचा जा सके। बाबाके मनमें चिन्ता व्याप्त हो गयी कि क्या श्रीशिवार्चनका नियम खण्डित होगा? वे एक क्षणके लिये खड़े हो गये और भगवान शिवका स्मरण करने लगे। फिर उन्होंने अपने चारों ओर दृष्टि दौड़ायी। समीपमें ही मीठे जलका एक सरोवर दिखलायी दे गया। सम्भवतः इस सरोवरका नाम सुग्रीवकुण्ड है। वे तत्क्षण सरोवरके तटपर आये। सरोवरके जलसे हाथ धोकर उन्होंने तटकी बालू हाथमें ली और भगवान शिवकी सैकत-प्रतिमाका निर्माण किया। ज्यों ही सूर्यास्त हुआ, बाबाने सरोवरके शीतल और पवित्र जलसे भगवान शिवका श्रद्धा-भक्तिसे अभिषेक किया। इस प्रकार बाबाने अपने नियमका निर्वाह किया।

बाबा कहा करते थे कि देवार्चनके लिये जो नियम और क्रम स्वीकार किये गये हों, उसकी कभी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। देवार्चनके लिये जो समय और जो प्रक्रिया निर्धारित की जाती है, उस समय देवजगत प्रतीक्षा करता है।

११ – मदुराई

रामेश्वरम्‌के बाद तीर्थयात्री लोग मदुराई आये। भगवती मीनाक्षी देवीके अति विशाल मन्दिरके कारण मदुराईकी ख्याति बहुत है। जब तीर्थयात्री लोग दर्शन करनेके लिये मन्दिरमें गये तो भगवतीके गर्भ-गृहका पट आधा घंटे बाद बन्द होनेवाला था। दर्शनार्थियोंकी संख्या छः सौसे अधिक थी। सभी सुविधापूर्वक तथा शीघ्र दर्शन कर सकें, एतदर्थ बाबाने सभीको पंक्तिबद्ध खड़ा कर दिया। बाबा एक-एक करके लोगोंको भेजने लगे। बाबूजी गर्भगृहके द्वारपर खड़े हो गये लोगोंको दर्शन करानेके लिये। मन्दिरके प्रमुख अधिकारियोंको ज्यों ही बाबूजीका परिचय मिला, त्यों ही धार्मिक 'कल्याण' पत्रिकाके यशस्वी सम्पादक एवं धार्मिक संस्था गीताप्रेसके सफल कर्णधारके नाते मन्दिरकी ओरसे उनको बहुत सम्मान दिया गया। उस समादरको देखकर बाबूजीको बड़ा संकोच हो रहा था।

दर्शनार्थी एक-एक करके आ रहे थे, इसके बाद भी मुख्य पुजारीजी रह-रह करके शीघ्रता करनेको कह रहे थे। पट बन्द होनेका समय समीप देखकर वे बहुत उतावलापन दिखला रहे थे, परंतु क्या किया जाय? दर्शनार्थियोंकी संख्या ही बहुत अधिक थी। जैसे-तैसे सबने दर्शन किया। सबको दर्शन कराकर फिर बाबा भगवतीका दर्शन करनेके लिये आगे आये। बाबाको देखते ही मन्दिरके मुख्य पुजारीजीको एक प्रकारका भावावेश हो आया। वह भगवती मीनाक्षी देवीका ही दिव्यावेश था। उसी दिव्यावेशमें पुजारीजीने गर्भ-गृह-द्वारपर खड़े हुए अति समीप बाबूजीसे अंग्रेजीमें पूछा—Is it your Swamiji? (क्या ये आपवाले ही स्वामीजी हैं?)

बाबूजीने प्रश्नका स्वीकृति सूचक उत्तर दिया। बाबाको देखते ही वे स्तम्भित हो गये। वे बाबाको एकटक देखने लगे। कहाँ तो वे पहले बड़ा उतावलापन दिखला रहे थे और कहाँ अब वे जड़वत् स्थिर खड़े थे। पुजारीजीकी बड़ी-बड़ी आँखें आरक्त और विस्फारित हो उठीं। भावाविष्ट दशामें वे कुछ देर मौन खड़े रहे। प्रकृतिस्थ होनेके बाद वे भगवती मीनाक्षीके श्रीविग्रहकी ओर बढ़े और उनके कण्ठ-देशमें जो सुन्दर-से-सुन्दर माला थी, उसे लेकर बाबाके गलेमें दूरसे पहना दी।

'अपरस'में होनेके कारण निकटसे पहनाना सम्भव नहीं था। प्रसादी माला कण्ठमें आते ही बाबाका हृदय आह्लादसे भर गया। मनके भीतर-ही-भीतर बाबा पुकार-पुकारकर कहने लगे – माँ तेरी कृपा, असीम कृपा, अहैतुक कृपा, अद्भुत कृपा, परम कृपा। मंगलमयि! वात्सल्यमयि!! तेरे श्रीचरणोंको प्रणाम, बार-बार प्रणाम, अनन्त-अनन्त प्रणाम!

१२ – वेदारण्यम्

इसके बाद कुम्भकोणम् आदि कई स्थानोंका दर्शन करते-करते तीर्थ-यात्रामें वेदारण्यम् नामक स्थान भी आया। यह स्थान समुद्र-तटपर ही है। वेदारण्यम्के निवासी बाबूजीको अपने नगरपर आयी हुई एक विपत्तिका वर्णन सुनाने लगे। यह वर्णन बाबा भी सुन रहे थे। वहाँके निवासियोंने बतलाया – कुछ समय पहले सागरकी एक ऐसी विशाल और भीषण लहर आयी कि सारा वेदारण्यम् नगर डूब गया। एकके बाद दूसरी और दूसरीके बाद तीसरी, कुल तीन भयंकर लहरें आयीं। ये तीनों लहरें पाँच-पाँच मिनटके अन्तरसे आयीं और चली गयीं। पहली लहर इतनी ऊँची थी कि रेलवे स्टेशनकी छतपर लगे हुए लोहेके डण्डेका शीर्ष भाग भी डूब गया। पहली लहरसे दूसरी लहर ऊँची थी और दूसरीसे तीसरी तो और भी अधिक ऊँची थी। हजारों पशु-पक्षी, नर-नारी बह गये और मर गये। धन-जनकी अपार क्षति हुई। उस हानिका अनुमान भी सम्भव नहीं है। कौन कल्पना कर सकता था कि ऐसी ऊँची लहर कभी आयेगी और सारा नगर डूब जायेगा।

जगतकी दृष्टिसे यह विवरण खिन्नता प्रदान करनेवाला ही है, परंतु बाबाके चिन्तनका स्वरूप कुछ और ही था। बाबाने इस प्रसंगका अपने ढंगसे अर्थ निकाला। वेदारण्यम्की यह घटना अध्यात्म-पथके साधकोंके लिये एक नवीन संदेशका वाहक बन गयी। कोई भी ऐसी विशाल लहरके उठनेकी कल्पना नहीं कर सकता था, जो सबको डुबा दे और सब कुछ बहा ले जाये। इसी प्रकार यह नहीं कहा जा सकता कि किसी संतके जीवनमें कब महाभावका सागर उछलेगा और कब उसकी विशाल लहरें निकटवर्ती लोगोंको सदाके लिये भाव सागरमें डुबा देंगी। बस, जैसे बने, वैसे किसी महान संतके सदा निकट रहनेका ढंग बना

लेना चाहिये। उस महान संतके जीवनमें महाभावका सागर कभी-न-कभी तो उछलेगा अवश्य और अवश्य बात बन जायेगी तब निकटवर्ती श्रद्धालु लोगोंकी। संतके निकट-सामीप्यमें रहनेवालोंका भविष्य कितना उज्ज्वल है, इस उज्ज्वलताको समझानेके लिये बाबा अनेक बार वेदारण्यम्‌का उदाहरण लोगोंको सुनाया करते थे।

१३ – चिदम्बरम्

वेदारण्यम्‌के बाद तीर्थ-यात्री लोग चिदम्बरम् पहुँचे। भगवान शिवकी उपासनामें चिदम्बरम्‌का एक विशेष स्थान है। दक्षिण भारतके पाँच शिवलिंग बड़े विख्यात हैं, पञ्च-तत्त्वोंमेंसे एक-एक तत्त्वके लिये एक-एक शिवलिंग। १ – शिवकाञ्चीमें क्षिति-तत्त्व लिंग, २ – जम्बुकेश्वरमें जल-तत्त्व लिंग, ३ – अरुणाचलम्‌में अग्नि-तत्त्व लिंग, ४ – कालहस्तीमें वायु-तत्त्व-लिंग और ५ – चिदम्बरम्‌में आकाश-तत्त्व लिंग। चिदम्बरम्‌में बाबाको एक विशेष अनुभव हुआ। बाबाने भगवान शिवके मन्दिरमें ज्यों ही प्रवेश किया, उन्होंने देखा कि एक व्यक्ति ध्यानस्थ बैठे हुए हैं। उनके रोम-रोमसे प्रकाश फूट रहा है। उनके शरीरके चारों ओर तेजका एक अद्‌भुत वलय है। वे आँखें बन्द करके बैठे हुए हैं। वे बन्द आँखें भी बड़ी विशाल हैं और आँखोंके ऊपरकी भौंहें भी बड़ी-बड़ी हैं। शीशकी लम्बी-लम्बी जटाएँ भूमिका स्पर्श कर रही हैं। उन तेज-पुञ्ज व्यक्तिको देखकर बाबाका मस्तक नत हो गया। बाबा अञ्जलि-बद्ध होकर उनके सामने खड़े हो गये और मन-ही-मन उनसे प्रार्थना करने लगे – आप अपना परिचय दें कि आप कौन हैं? बार-बार आपकी वन्दना करता हूँ। यह मेरा परम सौभाग्य है कि आपके पुनीत दर्शनका अवसर मुझ साधारण व्यक्तिको मिल सका।

कुछ देरतक बाबा मन-ही-मन प्रार्थना करते रहे। थोड़ी देर बाद उन ध्यानस्थ व्यक्तिने अपने नेत्र खोले। उन नेत्रोंमें कैसी शान्ति, कैसी प्रसन्नता, कैसी आत्मीयता, कैसी सहृदयता भरी हुई थी, यह वाणीका विषय बन ही नहीं सकता। बाबा उन महात्माका दर्शन कर रहे थे, तभी अचानक वे अदृश्य हो गये। उनके अदृश्य होते ही बाबाको भान हो गया कि वे तो स्वयं भगवान शिव थे, जिन्होंने दर्शन देनेकी कृपा की। जिस रूपमें भगवान शिवने दर्शन दिये, इसे बाबा भविष्यमें कभी भूल

नहीं पाये।

१४ – पाण्डीचेरी

चिदम्बरम्के पास ही पाण्डीचेरी है, जो योगीराज अरविन्दकी योग-साधनाका प्रधान स्थल रहा है। पाण्डीचेरी पहुँचनेपर श्रीअरविन्दाश्रममें पूज्या माँके दर्शन करनेका तीन बार अवसर मिला। जब माँके दर्शन हुए, तब बाबाको उनकी नीली-नीली आँखोंसे दिव्य प्यारकी किरणें प्रसरित होती हुई दिखलायी दीं। बाबूजीने पूज्या माँसे भगवती श्रीराधाके बारेमें एक प्रश्न पूछा। प्रश्नका जो उत्तर पूज्या माँने दिया, वह उनके आध्यात्मिक व्यक्तित्वके सर्वथा अनुरूप था। पूज्या माँके उत्तरमें भगवती श्रीराधाके इन्द्रियातीत प्रीतिकी व्याख्या थी, ऐसी प्रीति, जिसके आदि-मध्य-अन्तमें समर्पण-ही-समर्पण है।

१५ – बडुइअम्मन कोइल (VADUI AMMAN KOIL)

मद्रासमें बाबाने भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीकी अर्चना विशेष रूपसे करवायी। भगवान श्रीकृष्णके निर्देशपर बाबाने भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीकी सविधि एवं सविस्तार अर्चना की थी और सन् १९५१ में बाबाको भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीके दर्शन भी हुए थे। जब तीर्थ-यात्रा-ट्रेन दक्षिणमें भ्रमण कर रही थी, तब बाबाने बड़ा प्रयास किया कि भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीका कोई ऐसा प्राचीन मन्दिर मिल जाये, जिसमें भगवतीके हाथमें शास्त्रोक्त चारों आयुध हों। ये चार आयुध हैं— पाश, अंकुश, पुष्पवाण एवं इक्षुकोदण्ड। मदुराईमें भगवती मीनाक्षीजीके मन्दिरमें भगवतीके हाथमें ये चारों आयुध हैं, परंतु यह मन्दिर नवीन रचना है। बाबा तो किसी प्राचीन मन्दिरकी खोजमें थे। बाबाको ऐसी आशा थी कि भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरी श्रीआदिशंकराचार्यजीकी परमाराध्या रहीं हैं, अतः दक्षिण भारतमें कहीं तो ऐसा मन्दिर मिलना ही चाहिये। मद्रास शहरसे बाहर लगभग दस-बारह मीलकी दूरीपर एक स्थान वडुइअम्मन कोइल मिला, जहाँ चारों आयुध सहित भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीका प्राचीन मन्दिर है। वहाँ जाकर बाबाने भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीकी विधिपूर्वक अर्चना की।

१६ – श्रीजगन्नाथपुरी

श्रीजगन्नाथपुरी पहुँचनेपर बाबूजीको और बाबाको बड़ा भावोद्दीपन हुआ। श्रीजगन्नाथपुरी वह धाम है, जिसका श्रीचैतन्य महाप्रभुके जीवनसे घनिष्ठ सम्बन्ध है। श्रीचैतन्य महाप्रभुकी महाभावमयी गम्भीरा लीला इसी धाममें हुई थी और अन्तमें श्रीचैतन्य महाप्रभु मुख्य मन्दिरके पावन श्रीविग्रहमें सशरीर समाविष्ट हो गये थे। श्रीजगन्नाथपुरीकी पवित्र भूमिपर पैर रखते ही बाबा भावाविष्ट हो गये और जबतक वहाँ रहे, तब-तक भावाविष्ट ही रहे। जब बाबा सागर-स्नानके लिये गये तो बाबाकी भाव-दशा और भी गहरी हो गयी। बाबूजी इस भावदशाकी स्थितिको समझते थे, अतः सदा सावधान रहे और बाबाका हाथ पकड़े रहते थे। श्रीजगन्नाथपुरीके सागर-तटपर तरंगित लहरोंका दृश्य बाबाके भावोंको न जाने कहाँसे कहाँ बहा ले गया। उमड़ती लहरोंको देखकर बाबाको श्रीचैतन्य महाप्रभुके जीवनका वह प्रसंग स्मरण हो आया, जब वे श्रीकृष्णालिंगनकी लालसासे प्रभावित होकर समुद्रमें कूद पड़े थे। आज सागरकी हर उत्ताल लहरके साथ बाबाकी आत्म-विस्मृतिकी गहराई अधिकाधिक होती चली जा रही थी। गहराई इतनी अधिक हो गयी कि एक मात्र श्रीकृष्ण ही स्मृतिमें रह गये। उत्ताल तरंगें ऐसी लग रही थीं मानो ये प्रियतम श्रीकृष्णकी विशाल विस्तृत भुजाएँ हों, जो मिलनेके लिये बुलावा दे रही थीं। श्रीचैतन्य महाप्रभुके उस प्रसंगकी आवृत्ति आज हो जाती, यदि बाबूजी बाबाका हाथ नहीं पकड़े होते। बाबूजी जानते थे कि सागर-दर्शनसे बाबाके हृदयमें महाभावोद्दीपन हो सकता है। इसी कारण हाथ पकड़े-पकड़े सागर-स्नान किया और वापस लौटे।

जिस दिन जगन्नाथपुरीसे तीर्थ-यात्रियोंको प्रस्थान करना था, उसी दिन विचार यही था कि सभी मन्दिरका प्रसाद पाकर चलें, परंतु किसी कारणसे मन्दिरमें भोग नहीं लग पाया। ट्रेनके चलनेका समय क्रमशः समीप आता चला जा रहा था। जब पूर्णतः निराशा व्याप्त होने लगी तो बाबाने भगवान श्रीजगन्नाथजीसे प्रार्थना की – क्या आपके द्वारसे प्रसाद पाये बिना ही जाना होगा?

इधर बाबाने मन-ही-मन यह प्रार्थना की, उधर तत्काल श्रीरथजी पंडाने आकर भोग लगा दिये जानेकी सूचना दी और उन्होंने प्रसाद

ग्रहण करनेके लिये अनुरोध किया। श्रीरथजीकी बाबा और बाबूजीके प्रति बड़ी श्रद्धा थी। बाबाका मन प्रसन्न हो उठा और फिर सभी तीर्थ-यात्रियोंने प्रसाद पाकर श्रीजगन्नाथपुरीसे प्रस्थान किया।

श्रीजगन्नाथपुरीसे चलकर तीर्थयात्रियोंने कटक, भुवनेश्वर आदि स्थानोंका दर्शन किया। जब तीर्थ-यात्रा-ट्रेन कलकत्ता पहुँची तो हावड़ा स्टेशनपर बहुत बड़ी संख्यामें उपस्थित जन-समुदायने बाबूजीका स्वागत किया। इसके बाद वैद्यनाथधाम, गया आदि तीर्थस्थानोंमें भ्रमण करते हुए तीर्थ-यात्रा-ट्रेन तीन मास बाद २६-४-१९५६ को वाराणसी पहुँची, जहाँसे इसने सर्वप्रथम प्रस्थान किया था तीर्थ-यात्राके लिये। वाराणसी तीर्थ-यात्रा-ट्रेनका अन्तिम स्टेशन था और यहीं यात्राकी विराम-रेखा थी। यात्रियोंने बाबूजी और बाबाको प्रणाम किया, बहुत-बहुत कृतज्ञता व्यक्त की और सभी अपने-अपने स्थानको वापस चले गये। बाबूजी और बाबा भी वाराणसीसे गोरखपुर चले आये।

* * * * *

यह दिव्य चरण-पादुका

सहस्रारपद्मे तं त्रिकोणे परितिष्ठितम्।
सद्गुरु-पादुका-युग्मं स्वात्मरूपं सदाश्रये।।

सद्गुरु किंवा इष्टदेवकी पादुका-द्वयके आध्यात्मिक माहात्म्यका वर्णन अत्यन्त दुष्कर है। 'पादुका सहस्र' स्तवके रचयिता, विशिष्टाद्वैतके प्रसिद्ध दार्शनिक एवं सहृदय संत श्रीमद्वेंकटनाथजीका कथन है कि

निःशेषमम्बरतलं यदि पत्रिका स्यात्,
सप्तार्णवी यदि समेत्य मषी भवित्री।
वक्ता सहस्रवदनः पुरुषः स्वयं चेत्
लिख्येत रंगपति-पादुकयोर्प्रभावः।।

'यदि सम्पूर्ण आकाश पत्र (कागज) हो, यदि सप्त सागर संयुक्त रूपसे स्याही बन जावें, यदि सहस्रशीर्ष पुरुष स्वयं वक्ता हो, तो सम्भवतः श्रीरंगनाथ प्रभुकी पादुका-द्वयका प्रभाव लिखा जा सकता है।'

वे पादुका युग्मको सम्बोधित कर उसके स्वरूपका उद्घाटन करते हैं–

असूर्य-भेद्यां रजनीं प्रजाता-
मालोक-मात्रेण निवारयन्ती।
अमोघ-वृत्तिर्मणि-पाद-रक्षे
मुरद्विषो मूर्तिमती दया त्वम्।।

'हे पादुका-द्वय! तुम अनुग्रहकी मूर्तिमान स्वरूप हो। दिव्य प्रकाश-स्वरूपिणी होनेके कारण अलौकिक मणिके समान प्राणियोंके अविद्याकी उस अन्धकारमयी रात्रिको दूर कर देती हो, जिसे सूर्य भी निवारित नहीं कर सकता। तुम्हारा यह प्रभाव अमोघ है।'

उपर्युक्त श्लोकमें आध्यात्मिक जगतके एक निगूढ़ रहस्यकी ओर इशारा किया गया है।

गुरु-पादुका-द्वय जब सहस्रारमें प्रतिष्ठित होती है, तब निरन्तर स्निग्ध मधुमयी चन्द्र-रश्मियोंके समान परमानन्द बरसाती हुई जीवको आप्यायित कर देती है। भावुक भक्तका अज्ञान दूर होता है और दिव्य विमर्श प्रकाशित होता है। इससे स्थूल और सूक्ष्म शरीरोंके तत्त्वोंका शोधन प्राथमिक चरणमें ही हो जाता है। इसका विशद विवेचन शैव-तन्त्र-शास्त्रमें उपलब्ध होता है। यहाँ केवल संकेत-मात्र अभीप्सित है–

स्व-प्रकाश-शिवमूर्त्तिरेकिका,
तद्-विमर्श-तनुरेकिका तयोः।
सामरस्य-वपुरिष्यते परा
पादुका पर-शिवात्मनो गुरोः।।

'पर-शिव-रूपी गुरुकी पादुका-द्वयमें स्वप्रकाशात्मक अद्वितीय शिवमूर्ति है तथा साथमें विमर्शात्मक शक्ति-मूर्ति है। शिव शक्तिका सामरस्य एकात्मानुभूति अविनाभाव सम्बन्ध ही परा पादुका-युगल है।'

तथा–

स्वप्रकाश-वपुषा गुरुः शिवो
यः प्रसीदति पदार्थ-मस्तके।
तत्प्रसादमिह तत्त्वशोधनं
प्राप्य मोदमुपयाति भावुकः।।

'शिवरूपी गुरुकी पादुकायें जब भावुक भक्तके मस्तकपर सहस्रारमें सुशोभित होती हैं, तब वे अपने प्रकाशसे तत्त्वशोधन कर देती हैं। अतः उस भावुक भक्तको मोद मस्ती उपलब्ध होती है।'

पादुकोपासनाके मनोरम उदाहरण भरतजी हैं–

'नित पूजत प्रभु पाँवरी, प्रीति न हृदय समात।'

पादुका-सहस्रमें महात्मा श्रीवेंकटनाथजी कहते है।

रामपाद-सह-धर्मचारिणीं
पादुके निखिल पातकच्छिदम्।
त्वमशेष जगतामधीश्वरी
भावयामि भरताधिदैवतम्।।

'हे पादुका-द्वय! रामपदकी धर्मशीला सहचारिणीके रूपमें, समस्त पापोंके निवारिकाके रूपमें, सम्पूर्ण विश्वकी अधीश्वरीके रूपमें और भरतकी अधिदेवताके रूपमें तुम्हारी मैं भावना करता हूँ।

अतः

भरताय परं नमोऽस्तु तस्मै प्रथमोदाहरणाय भक्तिभाजाम्।
यदुपज्ञमशेषतः पृथिव्यां प्रथितो राघव-पादुका-प्रभावः।।

'उन भरतजीको जो अविचल भक्तिका निर्वहण करनेवाले पादुकोपासकोंमें प्रथम हैं, मैं बारम्बार प्रणाम करता हूँ। उन्होंने मौलिक रूपमें पृथ्वीपर राघव-पादुकाके प्रभावको सम्पूर्ण रीतिसे प्रदर्शित किया।'

प्रतिवर्ष गोरखपुरकी गीतावाटिकामें पौष शुक्ल नवमीको श्रीराधाबाबाके जन्म-दिवस-महोत्सवका शुभारम्भ उनकी पादुका-पूजनसे होता है। उस समय भावुक भक्तोंकी जो भावनायें होती हैं, वे निम्नोक्त 'पादुका-पञ्चक'में ग्रथित हैं–

सतत-वाञ्छित शरण-कांक्षी कृष्णकी मनुहार, प्रियतम,
भक्त-याञ्चा-कल्पतरु की कुसुम-भार-विहार, प्रियतम।
कमल-कोमल सुभग शीतल चरण-तल सिंगार, प्रियतम,
राधिकाकी पादुकाका कब मिलेगा प्यार, प्रियतम।।

प्रिय मनोरथ दिव्य मन्मथ प्रेम-सुरभित हार, प्रियतम,
लता-वेष्टित सुमन-शोभित कुञ्जमें अभिसार, प्रियतम।
वन-पालिका कर-तालिका जो खोलती है द्वार, प्रियतम,
राधिकाकी पादुकाका कब मिलेगा प्यार, प्रियतम।।

कुञ्ज-विहरत ध्वनित-नूपुर-मन्त्रकी झंकार, प्रियतम,
नख-चन्द्र-ज्योतित झिलमिली मधु-ज्योत्स्ना साकार प्रियतम।
प्रिय सुपूजित प्रेम-पूरित माधवी रसधार प्रियतम,
राधिकाकी पादुकाका कब मिलेगा प्यार प्रियतम॥

लुब्ध-अलिका मुग्ध विहरण प्रीतिमय संचार प्रियतम,
प्रणय-परिणत ललित प्रतिपद हृदयका संसार प्रियतम।
नित्य नूतन मदन केतन व्रज निकेतन सार प्रियतम,
राधिकाकी पादुकाका कब मिलेगा प्यार प्रियतम॥

क्वणित-नूपुर ध्वनित-वंशी शिञ्जिनी सहचार प्रियतम,
रेणु-रञ्जित रस-तरंगित सुमन-विपिन-विहार प्रियतम,
अनन्य निर्भर-गति प्रेमा-भक्तिका उपहार प्रियतम।
राधिकाकी पादुकाका कब मिलेगा प्यार प्रियतम॥

— प्राण नाथ शर्मा

पूज्य श्रीराधाबाबा की कृतियाँ

१ – अन्तर्वेदना

२ – श्रीकृष्ण लीला चिन्तन

३ – सत्संग सुधा

४ – प्रेम सत्संग सुधा माला

५ – चलौ री, आज ब्रजराज मुख निरखिये

६ – ब्रजलीलामें गाय

७ – जगज्जननी श्रीराधा

८ – केलिकुंज

९ – ब्रजलीलाके प्रमुख नारीपात्र

१० – जय जय प्रियतम

११ – अनुराग परीक्षा लीला

१२ – कुन्दवल्ली भावकी लीला

१३ – राधा-मनोरथकी लीलाएँ

१४ – देवर्षि श्रीनारदपर श्रीवृषभानुनन्दिनीकी कृपा

१५ – भागवत-मकरन्द (श्रीमद्भागवत महापुराणके कतिपय दिव्य श्लोकोंका संचयन)

१६ – अन्य प्रचुर अप्रकाशित गद्य-पद्यात्मक साहित्य

पुस्तक प्राप्ति स्थान

: गोरखपुर :
साहित्य मन्दिर
श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार स्मारक समिति,
पो. गीतावाटिका,
गोरखपुर - २७३००६.

मनमोहन जाजोदिया
अजय सलेक्शन, बैंक रोड,
गोरखपुर - २७३ ००१

:वाराणसी:
श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार स्मृति सेवा ट्रस्ट,
दुर्गाकुण्ड रोड,
वाराणसी

:उदयपुर:
दिनेश कुमार अग्रवाल
आर ५/३१, जयश्री कालोनी,
तिलक स्कूल रोड, धूलकोट,
उदयपुर - ३१३ ००१

: मुम्बई :
भारतीय ग्रामोद्योग वस्त्र भण्डार
सिंहानिया वाडी,
१८७, दादी सेठ अग्यारी लेन,
मुम्बई - ४०००० २

:वृन्दावन:
खण्डेलवाल एण्ड सन्स
अठखम्बा बाजार,
वृन्दावन - २८११२१

:जयपूर:
धार्मिक साहित्य सदन
बुलियन बिल्डींग के अन्दर,
हल्दियोंका रास्ता,
जौहरी बाजार,
जयपुर (राज.) ३०२००३

: स्वर्गाश्रम:
विष्णु पुस्तक भण्डार
पो. स्वर्गाश्रम,
(ऋषिकेश) - २४९३०४,
जि. पौढ़ी गढ़वाल

: अयोध्या:
श्रीस्वामीशरण उपाध्याय
श्रीसीताराम भवन,
गोलाघाट चौराह,
अयोध्या (उ.प्र.)

: पटना:
श्रीनागा बाबा
ठाकुरवाडी,
मथुरा प्रसाद सिन्हा रोड,
कदम कुँआ, पटना (बिहार)

॥ श्रीहरि: ॥

गीतावाटिका प्रकाशन

पो. - गीतावाटिका, गोरखपुर - २७३ ००६

द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

1.	श्रीभाईजी - एक अलौकिक विभूति	श्रीभाईजी एवं श्रीसेठजीकी संक्षिप्त जीवनी	60.00
2.	भाईजी चरितामृत	भाईजीके शब्दोंमें उनके जीवन प्रसंग	50.00
3.	सरस पत्र	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	30.00
4.	व्रजभावकी उपासना	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	25.00
5.	परमार्थकी पगडंडियाँ	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	30.00
6.	सत्संगवाटिकाके बिखरे सुमन	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	30.00
7.	वेणुगीत	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	35.00
8.	समाज किस ओर जा रहा है	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	30.00
9.	प्रभुको आत्मसमर्पण	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	30.00
10.	भगवत्कृपा	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	5.00
11.	श्रीराधाष्टमी जन्म-व्रत महोत्सव	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	5.00
12.	शान्तिकी सरिता	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	20.00
13.	रासपञ्चाध्यायी	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	35.00
14.	पारमार्थिक और लौकिक सफलताके सरल उपाय	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	25.00
15.	क्या, क्यों और कैसे ?	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	30.00
16.	साधकोंके पत्र	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	30.00
17.	रोगोंके सरल उपचार	सम्पादक : भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	35.00
18.	भगवन्नाम और प्रार्थनाके चमत्कार	सम्पादक : भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	30.00
19.	मेरी अतुल सम्पति	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	10.00
20.	श्रीशिव - चिन्तन	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	25.00
21.	अन्तरंग वार्तालाप	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	30.00
22.	आस्तिकताकी आधार-शिलाएँ	श्रीराधा बाबा	35.00
23.	महाभागा व्रजदेवियाँ	श्रीराधा बाबा	30.00
24.	केलि - कुञ्ज	श्रीराधा बाबा	70.00
25.	परमार्थके सरगम	श्रीराधा बाबा	30.00
26.	पद-रत्नाकर - एक अध्ययन	श्रीश्यामसुन्दर दुजारी	30.00
27.	दिव्य हस्तलिखित संकेत		50.00

महज्जनों के भावोद्‌गार

राधा बाबा प्रेम, भक्ति और सत्यके प्रतीक। भक्ति मार्गकी जीवन्त मूर्ति। एक स्थिति है, जहाँ ब्रह्म सिवाय और कुछ भी नहीं। द्वैत, अद्वैत, ज्ञान, भक्ति सब एक ही है। वही है, जो स्थिति राधा बाबा की है।

श्रीआनन्दमयी माँ

'जानेहु संत अनंत समाना' यह मन्त्र सत्य ही प्रतीत होय है। सुकृत पुंज बाबा (श्रीराधा बाबा) के विषय में तौ कुछ कहते ही नही बने।

'मन समेत जेहि जान न बानी'...।

पूज्य पण्डितजी श्रीगयाप्रसादजी महाराज

प्रीतिरसावतार महाभावनिमग्न

श्रीराधा बाबा

(द्वितीय भाग)

पृष्ठ संख्या
001-100
तक

राधेश्याम बंका

प्रीतिरसावतार महाभावनिमग्न
श्रीराधा बाबा
(द्वितीय भाग)

राधेश्याम बंका

प्रकाशक

योगेन्द्रनाथ बंका

हनुमानप्रसाद पोद्दार स्मारक समिति,

पो. गीतावाटिका,

गोरखपुर - २७३००६

वितरक

अनुराग कुमार बंका

गोरखपुर मशीनरी स्टोर,

जलकल भवन, गोलधर,

गोरखपुर - २७३००१

प्रकाशन तिथि

सं. २०६३ वि. पौष शुक्ल ९,

२८ दिसम्बर, २००६

मूल्य

१०० रुपये

द्वितीय संस्करण

१००० (एक हजार)

मुद्रक

न्यू जैक प्रिंटिंग प्रेस प्रा. लि.,

३८, सोनावाला रोड,

गोरेगांव (पूर्व), मुंबई - ४०० ०६३.

जीवन सोपान

* * * * *

।। श्रीहरिः ।।

नमाम्यहं प्रीति-रसावतारम्

यस्याः पाद-नखेन्दु-रश्मि-सुधया चित्तस्समुद्भासितः
कारुण्याम्बुधि-वाह-वेग-रभसा पापाः समुन्मूलिताः।
माञ्जिष्ठे वसने निलीन-मधुरप्रेमैक-पीतच्छविः
तद्राधा-पद-पद्म-राग-रसिको भृंगो भवेयं सदा।। १ ।।

जिनके चरणोंके नख-चन्द्रकी रश्मि-सुधासे मेरा चित्त भास्वर हो उठा, जिन करुणा-सागरके प्रवाहके आवेग युक्त थपेड़ेसे ही सभी पाप समूल विनष्ट हो गये, गैरिक वस्त्रोंमें छिपी हुई जिनकी मधुरा प्रीतिकी अद्वितीय पीतवर्णा छवि है, मैं उन राधाके चरण-कमलोंका आसक्ति-युक्त रसिक-भ्रमर निरन्तर बना रहूँ।

कृष्णस्त्वं ननु राधिकाऽपि मधुरा नीलाक्त-पीतोत्सवः
नित्यत्वं युगलोऽपि कोऽपि ललितो ह्यद्वैत लीलातनुः।।
कान्ता-कान्त-समाश्रितातिरसिका या प्रोज्ज्वला पावनी।
तद्राधा-पद-पद्म-राग-रसिको भृंगो भवेयं सदा।। २ ।।

तुम कृष्ण हो। तुम्हीं मधुर राधिका भी हो। तुम नील आभासे आच्छादित पीत-वर्णका आनन्द-विलास हो। तुम अद्वितीय नित्य-युगल हो। तुम्हारा तनु अद्वैत लीलाकी अभिव्यक्ति है। तुममें प्रियतम और प्रियतमाका नित्य निवास है। तुम जो रसमयी उज्ज्वल-रसकी पावन मूर्ति राधा हो, मैं उनके चरण-कमलोंमें आसक्ति-युक्त रसिक भ्रमर निरन्तर बना रहूँ।

अग्रे श्यामवपुस्तथैवमधरे पृष्ठेऽपि राराजते
वामे वाप्यपिसव्यकेऽपि पुरतो बाह्ये यथाभ्यन्तरे
दृश्ये द्रष्टरि दर्शनेन सकले प्रीणाति याम्माधवः
तद्राधा-पद-पद्म-राग-रसिको भृंगो भवेयं सदा।। ३ ।।

साँवर तनु ही आगे है, वही साँवर नीचे है, वही तो पीछे सुशोभित है। साँवर ही बाँये है और वही दाहिने एवं सामने है। वही बाहर है वही

भीतर है। इस प्रकार दृष्टामें दृश्यमें सभीमें अपने दर्शनोंसे जिसको माधव रिझाते हैं, उस राधाके चरण-कमलोंका आसक्ति-युक्त रसिक भ्रमर नित्य बना रहूँ।

कूजत्कोकिल-सारिका-खगकुले नृत्यन्मयूरावृते
ज्योत्स्ना-विच्छुरिते निकुंज-रमणे ह्यानन्द-वृन्दावने।
मंजुश्याम-सुरूपयाऽनुचरिता लीला ययोन्मादिनी
तद्राधा-पद-पद्म-राग-रसिको भृंगो भवेयं सदा।।४।।

कोकिल, सारिका और पक्षी-समूहसे गुंजित, नाचते हुये मयूरोंसे आवृत, चन्द्रिकासे आलोकित निकुंज-रमणीय आनन्द-वृन्दावनमें जिसने मंजुश्यामाके सुरूपसे उन्मादिनी लीला प्रकाशित की, मैं उस राधाके चरण-कमलोंका आसक्ति-युक्त भ्रमर निरन्तर बना रहूँ।

त्वद्वात्सल्यमभीक्षमाण-मुदितः द्वारि स्थितो भिक्षुकः
याचेऽहं प्रणिपत्य कातरमनाः बद्धप्रणामांजलिः।
आह्लादैकमयी त्वयि प्रकटिता यान्तःस्थिता मोहिनी
तद्राधा-पद-पद्म-राग-रसिको भृंगो भवेयं सदा।।५।।

तुम्हारी वत्सलता देखकर द्वारपर खड़ा हुआ प्रसन्न भिक्षुक मैं तुम्हें प्रणाम कर और हाथ जोड़कर कातर-मनसे यह याचना करता हूँ कि तुममें प्रकाशित और तुम्हारे भीतर अवस्थित जो आह्लाद-स्वरूपा मोहिनी राधा है, उसके चरण-कमलोंका आसक्ति-युक्त रसिक भ्रमर निरंतर बना रहूँ।

मांगल्यो परमाश्रयस्त्वमसि मे श्रेयस्करी सम्पदः
चैका त्वं मम जीवने मधुरिमा चान्ते च भाग्योदयः
सोऽहन्ते पद-दास-दास-शरणो याचे दयाशेवधिं
तद्राधा-पद-पद्म-राग-रसिको भृंगो भवेयं सदा।।६।।

तुम ही मेरे मंगलमय परम आश्रय हो, तुम ही श्रेयस्कर सम्पत्ति हो। तुम ही मेरे जीवनमें एकमात्र मधुरिमा हो और जीवनके अन्तमें तुम ही मेरे भाग्योदय होगे। हे दयानिधि, तेरे चरणोंके दासानुदासका

शरणागत मैं तुमसे माँगता हूँ कि उस राधाके चरण-कमलोंका आसक्ति-युक्त भ्रमर मैं निरन्तर बना रहूँ।

वार्धक्ये गलितो तनुश्च पलितो मुण्डोऽभवच्छ्रीहतः
विश्रब्धो वचनामृतैश्च भवतस्सुप्तो सुखी निर्वृतः।
साक्षान्मे शिखि-पिच्छ-मौलि-ललितं वंशी-ध्वनन्तं प्रियं
पार्श्वे मोहन-मोहिनी-सुरसिकामालोकयिष्ये खलु॥७॥

इस बुढ़ापेमें मेरा शरीर गल गया है। मुख श्री-हीन हो गया है। बाल पक गये हैं। फिर भी आपके वचन-सुधासे आश्वस्त होकर सुख और शांतिसे सो रहा हूँ। निश्चय ही मैं मयूर-पिच्छके मुकुटसे विलसित वंशी बजाते हुए प्रियको तथा उनके पार्श्वमें रसमयी मोहन-मोहिनीके दर्शन करूँगा।

नित्यं महाभाव-निमग्नशीलं प्रेष्ठं रसाद्वैत-सुदीप्तलीलम्
भक्तार्तिहं भागवताग्रगण्यं नमाम्यहं प्रीतिरसावतारम्॥८॥

महाभावमें सतत निमग्न रहना जिनका नित्य स्वरूप है, जो प्रियतम हैं, जिनमें रसाद्वैत-लीलाकी सुदीप्त अभिव्यक्ति है, जो भक्तोंकी व्यथाको दूर करनेवाले भक्त-शिरोमणि हैं उन प्रीति-रसावतार बाबाके श्रीचरणोंमें अजस्र प्रणामाञ्जलियाँ।

प्राण नाथ शर्मा
(विश्वम्भरशरण पाठक)

* * * * *

॥ श्रीहरिः ॥

प्रकाशक की ओर से

परम पूज्य बाबूजी एवं बाबा तथा गीतावाटिकाकी गरिमाको यत्किञ्चित् उद्घाटित करनेके लिये क्रमशः ग्यारह पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—

१— परम भागवत श्रीपोद्दारजी
२— संत हृदय श्रीपोद्दारजी
३— महाभावोदधि श्रीपोद्दारजी
४— वाटिका वेणु
५— वाटिका वातायन
६— वाटिका वैभव
७— वाटिका वीथी
८— वाटिकाके पत्र पुष्प (चार भागोंमें)

इन पुस्तकोंमें प्रकाशित प्रसंगोंके बारेमें यही समझना चाहिये कि जब जो तथ्य सामने आया, उसीको शब्द-बद्ध कर दिया गया। इन लिखित तथ्योंको पुस्तकाकार रूप प्रदान करते समय वर्षानुवर्षके क्रमको ध्यानमें नहीं रखा गया। निज जनोंकी ओरसे बार-बार यह अनुरोध किया जा रहा था कि पूज्य बाबाकी जीवन-धाराको आदिसे अन्ततक वर्षानुवर्ष-क्रमके अनुसार प्रस्तुत किया जाना चाहिये। इस अनुरोधको स्वीकार किया भाई श्रीभीमसेनजी चोपड़ाने। इस पावन चरितमें जो प्रसंग वर्णित हैं, वे सभी पूर्व-कथित ग्यारह पुस्तकोंमें प्रकाशित हो चुके हैं। पूर्व-प्रकाशित उन सभी प्रसंगोंमेंसे कुछ मुख्य-मुख्य प्रसंग वर्षानुवर्ष-क्रमको ध्यानमें रखते हुए इस पुस्तकमें संग्रथित किये गये हैं। विस्तृत जानकारीके लिये वे सभी ग्रन्थ अवलोकनीय हैं। परम पूज्य बाबाका यह पावन चरित भक्त-जनोंके समक्ष प्रस्तुत करते हुए परम प्रसन्नताकी अनुभूति हो रही है।

इस संकलनके सम्बन्धमें एक स्पष्टीकरण करना आवश्यक लग रहा है। पुस्तकमें 'बाबूजी' शब्दका प्रयोग परम श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार एवं 'बाबा' शब्दका प्रयोग परम पूज्य श्रीराधा बाबाके लिये किया गया है।

सावधानीके बाद भी भूल हो जाना स्वाभाविक है। इस संकलनमें जो भूल या प्रमाद हो गया हो, उसके लिये विनम्र क्षमा-याचना है। निज जनों द्वारा बतलाये जानेपर भविष्यमें भूलको सुधारनेका अवसर मिलेगा।

विनीत
योगेन्द्रनाथ बंका

॥ श्रीहरिः ॥

प्रकाशक की ओर से

(द्वितीय संस्करणके सम्बन्धमें निवेदन)

यह प्रसन्नताकी बात है कि समाजने इस पुस्तकका समादर किया। समय समयपर पाठकोंके पत्र आते रहे, जिसमें पुस्तककी सराहना की अभिव्यक्ति थी। एक वर्षके अन्दर ही प्रथम संस्करण समाप्तिकी सीमापर आ गया, अतः दूसरा संस्करण छपवाना पड़ा।

अनेक स्वजनोंका स्नेहपूर्ण आग्रह था कि पूज्य बाबासे सम्बन्धित अनेक प्रसंग इस पुस्तकमें नहीं आये हैं। उस आग्रहको सम्मान देनेके लिये कई प्रसंग सम्मिलित कर लिये गये हैं। परिशिष्टके रूपमें पूज्य श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीका भी जीवन वृत्त इस पुस्तकके अन्तमें प्रकाशित है।

पहले संस्करणमें शीघ्रताके कारण अनेक भूलें रह गयी थी। उन भूलोंको दूर करनेके लिये भरपूर प्रयास रहा है। इसके बाद भी कोई भूल रह गयी हो तो उसके लिये क्षमा याचना है। जो भी भूल ध्यानमें आये, वह अवश्य बतलायी चाहिये, जिससे भविष्यमें सुधार हो सके। यह ग्रन्थ सभी पाठकोंको जीवन निमाणकी प्रेरणा प्रदान करे, यही मेरी मंगल कामना है।

विनीत

योगेन्द्रनाथ बंका

लीला-सिन्धु में संतरण

संतसमागम : पूज्य श्रीपण्डितजी, श्रीभाईजी एवं श्रीराधाबाबा

प्रीतिरसावतार महाभावनिमग्न

श्रीराधा बाबा

(द्वितीय भाग)

सन् १९५६ की श्रीराधाष्टमी

बाबाने अन्तिम रात्रि-जागरण और अन्तिम उद्दाम नाम-संकीर्तन सन् १९५६ की श्रीराधाष्टमीको किया था। सन् १९५६ की शरद पूर्णिमाको बाबाने काष्ठ-मौन-व्रत लिया। शरद पूर्णिमाके पहले जो श्रीराधाष्टमी पड़ी, उसी श्रीराधाष्टमीकी बात है। इस साल भाद्र मासमें घनघोर वर्षा हुई। इतनी अधिक वर्षा हुई कि कुएँके मुँहतक पानी भर आया। रस्सीकी आवश्यकता नहीं, हाथ डालकर लोटेमें पानी भर लो, ऐसी घनी वर्षा हुई। स्नानके बाद भीगे कपड़ोंको सुखाना बड़ा कठिन हो गया था, परंतु जितनी घनी वर्षा, उतना ही घना आनन्द। जैसे आकाशमें बादल घुमड़ रहे थे, वैसे ही, बल्कि उससे भी अधिक उत्सवमें आनन्द उमड़ रहा था। श्रीराधा-जन्मके बाद 'राधा' नामका उद्दाम संकीर्तन हुआ। बाबा घंटा बजा रहे थे। वे लगातार दो-अढ़ाई घंटेतक बजाते रहे। सबलोग बाबाके स्वरसे स्वर मिलाकर बोल रहे थे और तालसे ताल मिलाकर वाद्य बजा रहे थे। कहीं भी तनिक-सी विस्वरता नहीं, धक्का-मुक्की नहीं और उद्दामताके नामपर उच्छृंखलता नहीं। उस संकीर्तनमें बड़ा सुख मिला।

बाबाने रात्रि-जागरण भी किया। रात्रि-जागरणमें ठाकुर श्रीघनश्यामजी तथा अन्य पाँच-छः व्यक्ति ही रहे होंगे। रातके बारह बजेतक तो उत्सव चलता रहा। बारह बजेके बाद रात्रि-जागरणके निमित्तसे कुछ लोग बाबाके पास बैठ गये। बाबाने पदकी एक पंक्ति गायी। वह स्वरचित पंक्ति थी —

कालिन्दी ! धीरे बहो, मेरे प्रियतम उतरेंगे पार।

कृष्णप्रिया श्रीराधारानीका कालिन्दी-तटकी ओर अग्रसर होना, तटकी सारी भूमिका दूर्वादलसे आच्छादित रहना, दूर्वादलपर पद-कमल रखते हुए प्रीति-भरिता श्रीराधाजीका अभिगमन करना, पद-कमलके स्पर्शकी प्राप्तिसे

दूर्वादलका अत्यधिक आह्लादित होना, कालिन्दीकी निर्मल धाराका बहना, श्यामल धारासे श्रीराधाजीका अनुरोध करना, इन सबके वर्णनमें समयका ज्ञान रहा ही नहीं। आधे लेटे-लेटे हुए बाबा यह सब सुना रहे थे और सबलोग विभोर चित्तसे सुन रहे थे। वर्णनके कहने-सुननेमें कब चार घंटे बीत गये और कब प्रातः कालके चार बज गये, कुछ पता ही नहीं चला।

* * * * *

काष्ठ मौन व्रत

जिन दिनों बाबाने बाबूजीके संकेतपर प्रवचन देना बन्द करके साधारण मौन व्रत लिया था, उन दिनों बाबा श्रीमञ्जुलीला मञ्जरी-भावसे भावित हुए श्रीराधा-माधवकी रसमयी लीलाओंके चिन्तनमें लीन रहा करते थे। श्रीमञ्जुलीला- भावमें विरहकी प्रधानता है। मौनव्रतने और अधिक अनुकूल परिस्थितिका निर्माण कर दिया। लीला-चिन्तनकी तल्लीनतामें प्रगाढ़ता आने लगी। बाबा श्रीमञ्जुलीला-भावमें लगभग चार वर्ष रहे और तदुपरान्त उनकी प्रतिष्ठा श्रीमञ्जुश्यामा-भावमें हो गयी। उत्तरोत्तर रसावगाहन गहन होने लग गया। इसी अवधिमें व्रजेन्द्रनन्दन भगवान श्रीकृष्णने भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीजीकी उपासना करनेका निर्देश दिया। भगवान श्रीकृष्णने उपासनाकी विधि नहीं बतलायी थी, परंतु उनकी प्रेरणासे उपासना-विधि बाबाके मनमें स्फुरित हुई। उपासनामें लवलीन बाबाको पूर्ण सफलता मिली और सन् १९५१ की अक्षयतीजके दिन भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीजीने दर्शन देकर निज मन्त्रका दान दिया।

यह शक्ति-अर्चना भावी महाभावमय जीवनकी आधार-स्वरूपा पृष्ठभूमि थी। बाबाको भला क्या पता था कि मेरी भावी स्थिति क्या होनेवाली है, परंतु उस दिव्य स्थितिकी ओर सर्व-संचालक एवं समर्थ सूत्रधार भगवान श्रीकृष्ण क्रमशः उन्हें अग्रसर कर रहे थे। बाबा भाव-सिन्धुमें गहरे-से-गहरे उतरते चले जा रहे थे। बाबाके जीवनमें भाव-सिन्धु अधिकाधिक उच्छलित होने लगा। लोकालय सुहाता नहीं था। जगतकी स्मृति भी चुभती थी। जगतकी स्मृतिकी बात तो अलग रही, शरीरकी स्मृति भी विक्षेपवत् लगती थी। रस-सिन्धुमें सतत निमज्जन करना बाबाके लिये एक स्वाभाविक स्थिति थी। सतत निमज्जनमें बाधक स्वरूप लगनेवाली मम-परकी स्मृतिका अस्तित्व ही क्यों रहे, अतः

अबाध-अगाध रसावगाहनके लिये बाबाने काष्ठ मौनका निर्णय ले लिया। काष्ठ मौन व्रतका निर्णय लेनेके पीछे भी वही ईश्वरीय योजना परोक्ष रूपसे सक्रिय थी, जिसने बहुत पहले प्रवचन देनेकी प्रवृत्तिसे निवृत्ति दिलाकर वाणीका मौन व्रत ग्रहण करनेके लिये उपयुक्त परिस्थितिका निर्माण कर दिया था। काष्ठ मौन व्रतका ग्रहण करना बाबाके लिये साधनावस्थाका कोई सोपान नहीं था। यह यदि लक्ष्यतक पहुँचाने वाले कतिपय सोपानोंमेंसे एक सोपान होता तो शरद पूर्णिमाके दिन काष्ठ मौन व्रत लेते ही बाबा तत्काल शरीरातीत कैसे हो जाते? सतत रसावगाहन तो बाबाके लिये सहज सिद्ध स्थिति थी। उस सातत्यमें कभी-कभी विक्षेपवत् उभरने वाली मम-परकी स्मृतिका बाध करनेके लिये यह काष्ठ मौन व्रत था। काष्ठ मौन व्रत लेते ही बाबाकी जो शरीरातीत स्थिति हो गयी तथा काष्ठ मौन व्रतकी अवधिमें बाबाकी जैसी गम्भीर स्थिति रही, उसे देखकर स्पष्ट लगता है कि काष्ठ मौन व्रतको ग्रहण करनेके पीछे भगवान श्रीकृष्णकी प्रेरणाका ही विलास है।

बाबाने काष्ठ मौन व्रतके निर्णयकी सूचना बाबूजीको सन् १९५५ के आरम्भमें दे दी थी। निर्णयकी जानकारी होते ही बाबूजीने इसका प्रसन्न चित्तसे अनुमोदन किया। काष्ठ मौन व्रत लेनेके सम्बन्धमें बाबाने बाबूजीसे कोई परामर्श अथवा विचार-विनिमय नहीं किया, यह तथ्य भी स्वयंमें एक प्रमाण है कि इस कठोर और महान व्रतका प्रेरक तत्त्व अवश्य ही भगवदीय संकेत है। यदि इसके पीछे भगवदीय संकेत नहीं होता तो ऐसा महत्त्वपूर्ण निर्णय लेनेके पूर्व पूर्णानुगत बाबा बाबूजीसे परामर्श करते। बाबाने यह भी बतला दिया कि इस व्रतके लेनेके लिये १९ अक्टूबर १९५६ की शारदीय पूर्णिमाका दिवस निश्चित हुआ है।

काष्ठ मौनका स्पष्टीकरण करते हुए बाबाने बताया था कि इसका अर्थ केवल वाणीका मौन नहीं होता, अपितु जगतकी और शरीरकी सारी क्रियाओंसे सर्वथा अपनेको हटा लेना, सबसे मौन हो जाना। बाबा द्वारा किये गये इस स्पष्टीकरणमें काष्ठ मौनके केवल बाह्य लक्षणोंकी ओर संकेत किया गया है। बाबाके काष्ठ मौनके वास्तविक स्वरूपका विवेचन करते हुए बाबूजीने सन् १९६७ के अप्रैल मासमें प्रवचन देते हुए कहा था — रस-सिद्ध पुरुषके जीवनमें एक प्रकारके ऐसे रसका आविर्भाव होता है, जो आगे जाकर समुद्र बन जाता है। रसके उस महासमुद्रमें अनन्त तरंगें उठती हैं और वह उन तरंगोंमें लहराता रहता है। कभी वह उस समुद्रके तटपर आता है तो बाहर दिखलायी देता है, अन्यथा वह उन्हीं तरंगोंमें रहता है। उत्तरोत्तर वर्धनशील रसावगाहनका

परमोत्कृष्ट स्वरूप ही यह काष्ठ मौन है।

यह भी ईश्वर-प्रेरित एक संयोग था कि सन् १९५६ के आरम्भमें तीर्थ-यात्रा ट्रेन चलनेसे तीन धामकी यात्रा भी काष्ठमौन व्रत स्वीकार करनेसे पूर्व सम्पन्न हो गयी। तीर्थ-यात्रासे लौटकर आनेके बाद बाबूजी बहुत अस्वस्थ हो गये। सुदीर्घ यात्राके श्रमका यह स्वाभाविक परिणाम था, परंतु उस अस्वस्थावस्थामें खूब एकान्त मिला और खूब अवसर मिला प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधवकी लीलामें निमज्जनका। क्रमशः बाबाके काष्ठमौनकी तिथि समीप आने लगी और गीतावाटिकामें स्वजनोंकी भीड़ बढ़ने लग गयी। देशके कोने-कोनेसे तथा दूर-दूरसे प्रतिदिन कोई-न-कोई आता ही रहता था। जिसका बाबासे थोड़ा-सा भी लगाव था, वह सुनते ही गीतावाटिकाके लिये चल पड़ता था। पता नहीं बाबा फिर बोलेंगे या नहीं, अतः दर्शन करनेके लिये तथा साधना सम्बन्धी निर्देश प्राप्त करनेके लिये लोग गीतावाटिका चले आ रहे थे।

जो भी मिलनेके लिये आया, बाबाने उन सभीसे बात की। प्रत्येक व्यक्तिको कम-से-कम पन्द्रह-बीस मिनटका समय तो बातचीत करनेके लिये मिलता ही था। सभीको बाबा साधनात्मक जीवन अंगीकार करनेके लिये प्रेरणा दिया करते थे। बाबासे जो और जैसी बातचीत होती थी, उसकी झलक प्राप्त करनेके लिये एक-दो उदाहरण पर्याप्त होंगे। बाबाको काष्ठ मौन लेना था १९ अक्टूबरको और १७ अक्टूबरको बाबाने डा. श्रीघनश्यामजी तोलानीको बातचीतके लिये समय दिया। डा. तोलानी नासिकसे आये थे। आपने तीर्थ-यात्रा ट्रेनमें सेवा-भावसे चिकित्सा-कार्य किया था। डा. तोलानीकी निष्काम सेवा तथा भक्ति-भावनासे बाबूजी बहुत अधिक प्रभावित और प्रसन्न थे। डा. तोलानीको बुलाकर बाबाने कहा — मेरी एक बात आप याद रखियेगा। श्रीपोद्दार महाराजका आपपर बहुत प्रगाढ़ स्नेह है। श्रीभाईजीका यह स्नेह आपके जीवनकी एक बहुत बड़ी निधि है।

डा. तोलानीने कहा — बाबा! श्रीभाईजी जैसे महान संतका मुझ दीन-हीनपर स्नेह होना बहुत बड़े सौभाग्यकी बात है। श्रीभाईजी नाम जपपर बहुत बल देते हैं, पर नाममें मेरा मन नहीं लगता।

बाबाने कहा — नाम और नामीमें भेद नहीं है। भगवन्नाम भगवत्स्वरूप है और भगवन्नामकी कृपासे नाममें मन लगेगा। साधना करते समय साधकके जीवनमें चढ़ाव-उतार आता ही है। प्रतिकूलतामें न घबराना चाहिये और न निराश होना चाहिये। अन्तमें आपको भगवान अवश्य मिलेंगे, यह विश्वास

रखिये। मैं आपको ठग नहीं रहा हूँ, एक यथार्थ सत्य कह रहा हूँ।

इस आश्वासनसे विभोर डा.तोलानीने कहा – बस, आपकी कृपा बनी रहे।

तुरंत बाबाने कहा – मेरी कृपा! मेरी कृपा कितनी है और कैसी है, इसकी आप कल्पना भी नहीं कर सकते। अन्त तक आप मुझसे जुड़े रहेंगे।

हृदयमें अमित उर्मिलता एवं नेत्रोंमें विकल सजलता लिये-लिये डा.तोलानीने बाबाको प्रणाम किया और चले आये।

डाक्टर ए.सी.साहासे मिलनेका प्रसंग तो और भी अद्‌भुत है। डाक्टर साहा पड़रौना नगरमें होमियोपैथिक चिकित्साका कार्य करते थे। वे तथा उनके मित्र श्रीहरिद्वारमलजी टीबड़ेवाल बाबासे मिलनेके लिये पड़रौनासे गीतावाटिका आये। बाबाने चतुर्दशी वाले दिन प्रातःकाल बात करनेके लिये उनको एक घंटेका समय दिया। इससे इन दोनों सज्जनोंको अतीव प्रसन्नता हुई। एक-दो दिनकी प्रतीक्षाके बाद चतुर्दशीका प्रातःकाल आ गया। ये दोनों लोग बहुत ही उत्सुक थे कि अब बात होगी। प्रातःकालसे अपराह्न काल हो गया, पर अनचाहा संयोग ऐसा बना कि इन लोगोंको बात करनेके लिये समय नहीं मिल पाया। इन लोगोंके मनमें बड़ी बेकली थी कि काष्ठ मौन व्रत लेनेसे पूर्व क्या बाबासे बात नहीं हो पायेगी ?

बाबाने कोठीके अन्दर पूजाघरके सामनेवाले बरामदेमें भिक्षा की। भिक्षा करके बाबा कोठीसे बाहर निकले। निकलते ही उन दोनोंने बाबासे कहा – सबेरेसे हमलोग प्रतीक्षामें बैठे हैं कि आप अब बात करेंगे, आप अब बात करेंगे, परंतु प्रतीक्षा करते-करते सुबहसे तीसरा पहर हो गया।

बाबाने कहा – मैंने आपको समय दिया है। मैं तो आपसे बात कर चुका।

उन दोनोंको बड़ा विस्मय हुआ कि बाबा क्या कह रहे हैं। उन लोगोंने निवेदन किया – स्वामीजी! हमलोगोंको समय नहीं मिला है। हमलोग तो सबेरेसे राह देख रहे हैं कि कब अवसर मिलेगा।

बाबाने पुनः कहा – पर मैं तो आपलोगोंको समय दे चुका।

उन लोगोंने यह समझा कि शायद बाबाको भ्रम हो गया है, अतः स्पष्टीकरणके लिये कहा – आपने हम लोगोंको एक घंटाका समय दिया था, पर अभी तक सचमुच हमदोनोंसे आपने बात नहीं की है।

बाबाने पुनः कहा – मैं भी सचमुच सत्य कह रहा हूँ कि मैंने आपको एक घंटा नहीं, दो घंटेका समय दिया है, इतना अधिक समय दिया है कि आप अनुमान नहीं कर सकते।

अब वे दोनों लोग क्या बोलें? चुपचाप निराश-विजड़ित बाबाके सामने खड़े थे। डा. साहा तथा श्रीहरिद्वारमलजीकी आँखोंमें खिन्नता एवं व्यथा नाच रही थी। अब वस्तुस्थितिको स्पष्ट करते हुए बाबाने कहा – मैंने प्रातःकाल आप दोनोंको स्मरण किया। भगवान श्रीकृष्णसे जुड़े हुए मनसे मैंने आप दोनोंको स्मरण किया। भगवान श्रीकृष्णके यहाँका एक क्षण क्या इस संसारके एक क्षणके बराबर होता है? भगवदीय एक क्षणकी अवधिकी तुलनामें जगतका कालमान आ ही नहीं सकता। भगवानसे जुड़े हुए मनसे जब मैंने आप दोनोंको स्मरण किया, उस समय जो वस्तु आपको मिली होगी, उसकी कल्पना भी आप नहीं कर सकते।

इतना सुनते ही वे दोनों लोग बहुत अधिक द्रवित हो उठे। सजल नयन और विभोर वाणीमें उन्होंने इतना ही कहा – हम सीमित दृष्टिवाले साधारण प्राणी इन गूढ़ बातोंको भला क्या समझ सकते हैं? हम व्यर्थ ही अन्यथा चिन्तन कर रहे थे। हम आये थे साधना-सम्बन्धी कतिपय छोटे-छोटे प्रश्नोंका समाधान प्राप्त करनेके लिये, परंतु आपने तो साध्य-राज्यकी वह वस्तु प्रदान कर दी, जो उन समाधानोंसे भी नितान्त परेकी है। हमें ऐसा महान आश्वासन और विश्वास प्राप्त हुआ है, जो कठोर साधना द्वारा भी अप्राप्य है। स्नेह परवश होकर आपने जो किया, उसकी कल्पना भी हम नहीं कर सकते थे। आपके प्यारसे रोम-रोम पुलकित है।

इतना कहकर डा. साहाने तथा श्रीहरिद्वारमलजीने बाबाको प्रणाम किया। काष्ठमौनके अवसर पर जितने लोग भी बाहरसे गीतावाटिका आये थे और जो लोग गोरखपुर नगरके थे, सबका ही बाबाने इस या उस विधिसे भरपूर समाधान किया।

काष्ठ मौन व्रत लेनेके पूर्व बाबाने अपनी अनेक अर्चनाएँ विसर्जित भी कर दी। उन सबका पूर्ण विवरण तो प्राप्त नहीं है। संकेतके रूपमें एक-दो बातें बतलायी जा सकती हैं। बाबा प्रतिदिन 'व्रजरजवटी' का सेवन किया करते थे, इसका निर्वाह सम्भव नहीं था, अतः बाबाने भगवानके श्रीचरणोंमें इस नियमको समर्पित कर दिया। इसी प्रकार अपने पूजा-पाठकी अनेक वस्तुएँ यथायोग्य व्यक्तियोंके मध्य वितरित कर दी, जैसे श्रीललिता

सहस्रनाम स्तोत्रकी पुस्तिका बाबाने श्रीकृष्णजीको प्रदान कर दी। गोस्वामी श्रीचिम्मनलालजीको भी कोई अर्चना प्रदान की थी।

क्रमशः काष्ठ मौन व्रत ग्रहण करनेकी वेला समीप आती चली जा रही थी। बाबासे अब भविष्यमें संभाषण-सम्मिलन नहीं हो पायेगा, इसकी कल्पना मात्रसे सभीकी भावनाएँ अति संत्रस्त हो रही थीं। साधन-भजनमें ज्यों ही थोड़ी शिथिलता आती थी तो लोग दौड़कर बाबाके पास चले आते थे और बाबासे थोड़ी देर बातचीत करनेका परिणाम यह होता था कि अवसादकी सारी बदली छँट जाती थी, तन-मनमें पूर्ण उत्साह भर जाया करता था और साधन-पथके सारे कंटक फूलमें बदल जाया करते थे। अब मनमें प्रश्न था कि वह उत्साह और वह प्रेरणा कहाँसे प्राप्त हो पायेगी, इस अभावकी अनुभूतिसे भावनाओंकी विकलता और भी अधिक बढ़ती चली जा रही थी। वे जन परम सौभाग्यशाली थे, जिन्हें बाबाके समीप बैठनेका उन्मुक्त अवसर मिला करता था और जिन्हें बाबाकी संनिधिमें समयका परिज्ञान भी नहीं हो पाता था, आज उन सबका हृदय भीतर-ही-भीतर चीत्कार कर रहा था अपने महान सौभाग्यका अन्त देखकर। बाबाके वे मुस्कुराते हुए अधर, वे प्यार-भरी आँखें, वे प्रेरणा भरी बातें अब देखने-सुननेको नहीं मिलेंगी, इसके अनुमान मात्रसे सभी आश्रित-जनोंके अन्तरमें हाहाकार मचा हुआ था, पर यह व्यथा किससे कहें और क्या कहें? सभी तो इस दारुण व्यथासे ग्रस्त थे। यह तो सर्वथा सत्य है कि बाबा एक ऐसा असि-धारा-व्रत स्वीकार करने जा रहे हैं, जिससे भक्ति-भावना भी महिमान्वित हो उठे और ऐसे महान बाबा हमारे अपने-से-अपने हैं, इसकी स्मृति और स्फूर्ति मात्रसे हृदय परमानन्दपूर्ण गौरव-भावसे भावित हो उठता था, परंतु इस समय उस गौरव-भावको आच्छादित किये हुए थी एक अदम्य टीस, एक ऐसी कसक, जिसका कोई निराकरण अथवा निवारण नहीं था। नहीं चाहते हुए भी परम प्राण-धन अपने परम श्रद्धास्पद बाबाको 'विदाई' देनेके लिये सभी लोग पंडालमें इकट्ठे होने लग गये। अब मध्य रात्रिकी वेलामें एक-दो घंटे और शेष रह गये थे।

जहाँ पहले पंडालमें श्रीराधाष्टमी-महोत्सव मनाया जाता था, वहींपर बाबाने मध्य रात्रिके समय मौन व्रत लिया था। रात्रिको दस बजे ही सभी भक्तगण पंडालमें आकर बैठने लग गये। गीताप्रेसके लोग तथा शहरके कई

लोग भी उस समय आ गये। पंडालमें आनेसे पहले बाबा एवं बाबूजीकी कुछ बात एकान्तमें थोड़ी देर हुई। इसके बाद बाबूजी बाबाको साथ लेकर लगभग ग्यारह बजे पंडालमें आये। चौकी लगाकर मंच बनाया गया था, उसपर बाबा और बाबूजी विराजित हो गये। सभी उपस्थित लोगोंका हृदय अपार व्यथासे भरा हुआ था। 'विदा' होनेवाले बाबापर सबकी दृष्टि टिकी हुई थी। टिकी नहीं, सबकी दृष्टि गड़ी हुई थी। सभी संन्यासी वेषमें विराजित बाबाको एकटक निहार रहे थे। लोग रह-रह करके देख लेते थे बाबूजीकी ओर भी उनके मुखमण्डलपर उभरती-मिटती हुई भाव-रेखाओंका अर्थ लगानेके लिये, किन्तु इस समय सभीके आकर्षणके केन्द्र-बिन्दु बने हुए थे बाबूजीके पार्श्वमें सुशोभित बाबा। संन्यासी वेषके मध्य बाबाकी सुदीप्त गौर कान्तिको लोग आँखोंसे पी जाना चाहते थे।

उस विदाईके अवसरपर सभी लोगोंके समक्ष बाबाने जो निवेदन किया, उसकी मुख्य-मुख्य बातें सार रूपमें इस प्रकार हैं। सब लोगोंसे बाबाने कहा —

जीवनमें कोई विरला अभागा प्राणी ही मरते समय झूठ बोलता है। मेरा अनुभव है, वे किसी विवशता या दबावसे ऐसा करते हैं। मैं मरने जा रहा हूँ।

'जो कुछ लिखि राखी नँदनंदन मेटि सकै ना कोय।'

वनमें घूमता भौंरा चम्पापर नहीं बैठता है। क्या उसमें सौन्दर्य नहीं और क्या इसमें रसकी वासना नहीं? चम्पा खूब सुन्दर है और भौंरा रसका लोभी है, पर ईश्वरेच्छा बलवान है। मैं स्नेहकी वन्दना करने आया हूँ।

काष्ठमौन बड़ी चीज नहीं है, यह संन्यासियोंका आचार है और अवश्य करना चाहिये। संन्यासकी मुझमें कोई वस्तु नहीं है। मनमें लगा कि शेष समयका ऐसा ही उपयोग हो। यह यतियोंका आचार है। काष्ठमौन गंगातटपर ही धारण करनेका नियम है। उत्तम वस्तु तो यह है कि शरीरपातके लिये चल पड़े गंगाके मूल स्रोतकी ओर, गंगाके प्रवाहमें जल पीये, भूखमें कोई पूछे तो हाथ फैला दे। खाने लायक हो तो खा ले, नहीं तो गिरा दे। वस्त्र गिर गया हो तो अपने आप न बाँधे, दूसरा कोई बाँध दे तो बाँध दे।

मेरा काष्ठमौन 'अधूरा' है, क्यों कि मेरी सुख-सुविधाकी सारी व्यवस्था भाईजी कर रहे हैं, भिक्षा यहाँ ले रहा हूँ। भाईजीका मेरे प्रति स्नेह

है। उसका मैं गहराईके साथ निरन्तर अनुभव करता हूँ। मैं भाईजीसे मिलने गया, जाते ही भाईजीकी आँखोंसे आँसूकी धारा बह चली। भाईजीके सम्बन्धमें अधिक नहीं कहूँगा। वे इसी स्थानपर हम सभीके सामने विराजित हैं।

श्रीपोद्दार महाराज यदि गुलाबके पौधे हैं तो उस पौधेकी एक शाखापर खिलनेवाला मैं एक छोटा-सा गुलाबका फूल हूँ और सदा हँसता रहता हूँ। उस गुलाबमें तो काँटा भी होता है, पर गुलाबका यह पौधा तो कण्टक-रहित है। मुझसे भी अधिक सुन्दरतर और अधिक श्रेष्ठतर पुष्प, एक नहीं, अनेकानेक पाटल पुष्प खिला देनेकी क्षमता इस पौधेमें है।

काष्ठमौनमें न किसीकी ओर नजर उठाकर देखना है, न बोलना है, न पढ़ना है, न संकेत करना या लिखना है। पर काष्ठमौनका अर्थ यह भी है – राधेश्याम (भगतजी) मेरी सेवा करता है, वह कुएँपर पानी भर रहा हो, पैर फिसल गया हो और वह कुएँमें गिर पड़ा हो तो उस समय मैं मौन नहीं रहूँगा, जोरसे चिल्लाऊँगा कि राधेश्याम कुएँमें गिर पड़ा और साथ-ही-साथ उसको बचानेके लिये कुएँमें कूद पड़ूँगा। यदि उसके प्राण बच गये तो ठीक है, नहीं तो मेरा और उसका, दोनोंका जीवन भगवानके चरणोंमें समर्पित हो जायेगा।

आगे चलकर मेरी मानसिक अवस्था क्या होगी, मैं नहीं जानता। बोलनेका प्रश्न भाईजीके साथ हो सकता है। अट्ठारह महीनेके पहले ही यह निर्णय हो गया था कि इस तिथिको, आश्विन पूर्णिमाको मौन हो जाऊँगा। भाईजी इतने बड़े संत –इनको संत ही मानता हूँ –अन्तकाल तक मेरी सँभाल करेंगे। जिस समय भाईजीको किसी प्रश्नको लेकर परेशानीका अनुभव हो, उस समय बोलकर प्रकाश डाल देना चाहिये, मेरी इतनी-सी चेष्टा हो सकती है। सावित्रीकी माँने पुत्रकी तरह मुझे भिक्षा करायी है। जब भिक्षाके लिये जाऊँ तो उनकी ओर देखूँगा। देखनेका प्रश्न केवल भाईजी और माँजीके लिये है।

जो मंगलमयता चिताकी ज्वालामें है, वही प्रसूतिगृहके मंगलप्रदीपमें है। मृत्यु और जीवन भगवानके राज्यके दो परदे हैं। यदि भाईजीका शरीरान्त हो रहा हो या उनका शरीर शान्त हो गया हो तो सूचना पाते ही आऊँगा। भक्तका हृदय करुणासे भरा होता है। जब मैं अभी मिलने गया तो श्रीभाईजी जोर-जोरसे रोने लगे।

विश्वातीत भगवानकी उपासना कीजिये। मेरी राधा विलक्षण है। वास्तवमें जिसके मनमें तनिक-सा भी काम विकार है, वे हमारी राधाकी उपासनाके अधिकारी नहीं हैं, चाहे वे पुरुष हों या स्त्री हों।

अब आप लोग जो हमें प्यार दे रहे हैं, वह राधाकिशोरी ही इतने रूपोंमें झाँक रही है। अपनी जानमें भगवानको एक क्षण भी भूलिये मत। भगवान थे, हैं और रहेंगे। देखनेके लिये शुद्ध आँख चाहिये।

हे राधाकिशोरी! हे कृष्ण! आशीर्वाद चाहता हूँ —

देहु दया करि दान न भूलौं केलि को।
भगवत वलित तमाल बिलोकों बेलि को॥
नरक स्वर्ग अपवर्ग आस नहिं त्रास है।
जहँ राखौं तहँ रहौं मानि सुख रास है॥
दुख सुख भुगते देह, नहीं कछु संक है।
निंदा अस्तुति करौ राव क्या रंक है॥
परमारथ व्यवहार, बनौ कै ना बनौ।
अंजन ह्वै मम नयन 'रसिक भगवत' सनौं॥

बस, राधाकृष्णको ही निरन्तर देखता रहूँ। अंजनके समान वे दोनों नयनमें विराजित रहें।

बाबाके बोल चुकनेके बाद बाबूजीने बोलना आरम्भ किया। बाबूजीने कहा — स्वामीजीका काष्ठमौन होने जा रहा है। इनके साथ जिनका बाह्य सम्बन्ध था, वह लोकमें टूट रहा है। इसका मुझको भी दुःख हुआ है, पर परमार्थका सम्बन्ध तो अटूट है।

असली सम्पर्क तो श्रीराधारानीको लेकर है, वह सम्पर्क कभी नहीं टूट सकता, सदा बना रहेगा। डरनेकी बात नहीं है। मेरा इनका क्या सम्बन्ध है, सो तो भगवान ही जानते हैं, मैं नहीं जानता, ये भी शायद नहीं जानते हैं।

मैं इनका यतिरूप इतना ऊँचा देखना चाहता हूँ कि वह औरोंके लिये इस समयके जगतमें आदर्श हो। इन्हें आदर्श यतिधर्मके निर्वाहकके रूपमें देखनेकी मेरी उत्सुकता है। मैंने मौनकी बात जाननेपर बाह्य रूपसे सम्मति नहीं दी, पर मानसिक रूपसे समर्थन किया।

इनका जीवन राधारानीमय हो। इनके जीवनकी धारा संसारको

विशुद्ध प्रेम-सुधा-रससे प्लावित कर दे। भविष्यकी बातका पता नहीं है, पर यदि इनमें दिव्य उन्माद-विक्षिप्तता आये, जो चैतन्य महाप्रभुके अन्तिम जीवनमें देखी गयी थी उनकी गम्भीरा लीलामें, तो मैं उसका हृदयसे स्वागत करता हूँ। रसकी धारा..........।

बाबूजी बोल ही रहे थे कि घड़ीने बारह बजाया और बाबाने तत्काल कहा – मैं यहीं मौन लेता हूँ।

इतना कहकर बाबा मंचपर ही खड़े हो गये। खड़े होकर बाबाने दो या तीन बार 'राधा' 'राधा' 'राधा' कहा और फिर तुरन्त ही नितान्त अन्तर्मुख हो गये। बाबूजीने ही सबको सूचना दी कि बाबा मौन हो गये हैं। ज्यों ही बाबूजीने सूचना दी, उसी समय कई व्यक्ति वस्तुतः बिलख-बिलख करके रोने लग गये। कई व्यक्तियोंने अपने रोदनके स्वरको अधरोंके कपाटके पीछे जकड़ रखा था। कुछको यह रंच मात्र भी अभीष्ट नहीं था कि मनका मर्म नेत्र व्यक्त कर दें, परंतु यह उनके बसकी बात थी नहीं और वे बार-बार अपनी धोती या साड़ीसे अपनी आँखोंको रह-रह करके पोंछ रहे थे। किसीको मीराबाईकी पंक्ति याद आ रही थी –

जो मैं ऐसो जानती प्रीति करै दुख होय।
नगर ढिंढोरा पीटती प्रीत करो जनि कोय।।

एक बहिन तो व्यथासे इतनी अधिक प्रपीड़ित हुई कि तीन दिनतक लगातार उसकी विक्षिप्ततावस्था बनी रही। सारे पंडालमें एक अति गम्भीर सन्नाटा छा गया, अपितु यह कहना चाहिये कि उस सन्नाटेने सारी गीतावाटिकाको आवेष्टित करके व्यक्ति-व्यक्तिके उल्लासको कुण्ठित कर दिया था। विजड़ित अधर, विरमित मति और विचलित हृदयसे सभीने अपने विगलित नेत्रों द्वारा देखा कि बाबूजीने बाबाको बड़े धीरेसे मंचपरसे नीचे उतारा और बाबूजी बाबाके गलेमें बाँह डालकर चलने लगे। चलते समय बाबाके शरीरसे उनकी गैरिक चादर भूमिपर गिर पड़ी। बाबा अपने शरीरसे उसी समय इतने अतीत हो गये थे कि चादर कब सरकी और कब गिरी, इसका भान ही नहीं रहा। जिस भक्तने वह चादर उठा ली, उसने उस चादरको अपने पूजा गृहमें पधरा दी। यह चादर तो उसके जीवनकी एक निधि हो गयी।

बाबूजीने बाबाको कुटियातक पहुँचाया तथा निजी परिकर

श्रीराधेश्याम भगत एवं श्रीरामसनेहीको कुछ आवश्यक निर्देश देकर अपने कमरेमें चले आये। सभी भक्तगण भी अपने-अपने विश्राम-स्थानपर चले आये, परंतु थे सभी नितान्त अवसन्न एवं अत्यधिक व्यथित।

* * * * *

अन्तर्मुखी जीवनकी झलक

बाबाने सं.२०१३ वि. की शरद पूर्णिमा, तदनुसार १९-१०-५६ को काष्ठ मौन लिया था। बाबाके मौन लेते ही गीतावाटिकाके वातावरणने मानो गम्भीर रूपसे मौन ले लिया हो। काष्ठ मौनके अवसरपर बाहरसे आये हुए सभी आत्मीयजन हृदयमें भावगाम्भीर्यको लिये-लिये अपने-अपने स्थानको वापस चले गये। पूज्य बाबूजीने २७-१०-५६ को अपने पत्रमें एक स्वजनको लिखा था — यहाँसे प्रायः सभी लोग चले गये हैं। ..... बगीचेमें सन्नाटा-सा छाया है।

इन दिनों बाबूजीका शरीर भी अस्वस्थ चल रहा था। वे तीन धामकी तीर्थयात्रासे अप्रैल ५६ में लौटकर आये थे, तभीसे अस्वस्थताने उनका पीछा नहीं छोड़ा। उनके बाँये हाथमें दर्द तथा शरीरमें हलका-हलका ज्वर सदा बना रहता था। शिथिलता और शक्तिहीनता भी कम नहीं थी। चिकित्सासे कुछ लाभ होता था, पर वह लाभ पुनः छिप जाया करता था। सदा ज्वरका बना रहना तो अच्छी बात नहीं। अब तो डाक्टरों-वैद्योंने भी परामर्श दिया कि उन्हें पूर्ण विश्राम करना चाहिये। इस परामर्शके अनुसार बाबूजीने स्वयंको एक कमरेके एकान्तमें सीमित कर लिया। यह एकान्त तो बाबूजीके लिये अत्यधिक अनुकूल ही सिद्ध हुआ, जिससे श्रीप्रिया-प्रियतमकी अन्तरंग लीलाओंका दर्शन करने और उन लीलाओंमें सम्मिलित होनेका सुअवसर मिला। परिवारके लोग कहने लगे कि बाबूजी चाहे कितना ही एकान्तमें रहें, किन्तु 'कल्याण' पत्रिकाके कामके अतिरिक्त अन्य कार्य सामने आते ही रहते हैं और इसीसे विश्राम नहीं मिल पाता, अतः हम लोगोंको रतनगढ़ चलना चाहिये, जिससे पर्याप्त विश्राम मिल सके। यह विचार जोर पकड़ने लगा और बाबाके काष्ठ मौन लेनेके एक मास बाद सभी लोग

गोरखपुरसे रतनगढ़ चले गये।

गोरखपुरमें और रतनगढ़में बाबाकी जैसी स्थिति रही, उसका वर्णन बाबूजीने समय-समयपर उन पत्रोंमें कुछ-कुछ किया है, जो उन्होंने अपने आत्मीयजनोंको लिखा है। उन अनेक पत्रोंमें लिखी गयी कतिपय पंक्तियोंका सारांश इस प्रकार है – बाबाका काष्ठ मौन व्रत ठीक चल रहा है। किसीसे बोलना, इशारा करना तथा देखना भी बन्द है। वे किसीकी ओर देखते ही नहीं। बाबा जहाँ रहते हैं, वहाँ कोई भी नहीं जाता है। शामके समय भिक्षा करते हैं। भिक्षाके समय भी चुपचाप रहते हैं। वे कभी कुछ संकेत करते ही नहीं, अतः उनकी सुविधा अथवा असुविधाका कुछ भी पता नहीं चलता। किसी दिन भिक्षामें बहुत कम खाते हैं, तब अनुमान होता है कि आज बाबाका स्वास्थ्य ठीक नहीं होगा। वैसे वे बहुत प्रसन्न एवं शान्त हैं। श्रीमद्भगवद्गीताका यह वाक्य 'निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्' बाबाके जीवनमें चरितार्थ है। किसीसे मानो कोई मोह नहीं, कोई सम्बन्ध नहीं, कोई आवश्यकता नहीं, किसी बातकी कोई चिन्ता नहीं।

ऊपर जो लिखा गया, वह तो सन् १९५६ में लिखे गये पत्रांशोंका सारांश है। सन् १९५७ में बाबूजीने जो पत्र लिखे, उनमें तो बाबाकी और भी गम्भीर स्थितिका चित्रण है। उन पत्रोंकी कुछ पंक्तियोंका सारांश है – बाबा आजकल बाह्य जगतसे और भी उपराम होते चले जा रहे हैं। कई बार भिक्षा या स्नान समयपर नहीं हो पाता। ध्यानस्थ बैठे रह जाते हैं। जाकर जगाया जाता है, तब उठते हैं। उनकी उपराम वृत्ति दिनों-दिन बढ़ रही है। बाह्य ज्ञान कम हो रहा है। घंटों बिना नहाये-खाये बैठे रहते हैं। उठानेपर उठते हैं।

इन्हीं तथ्योंकी आवृत्ति भिन्न-भिन्न प्रकारसे बाबूजीके द्वारा लिखित पत्रोंमें होती रही है। वस्तुतः इन दिनों बाबाकी अन्तर्मुखता दिन-प्रति-दिन गहरी होती चली जा रही थी।

* * *

जन्मदात्री माँ की दिव्य परिणति

अब थोड़ी देरके लिये बिहार प्रदेशके फखरपुर ग्राम चला जाय बाबाकी जन्मदात्री माँके पास। माँके मनमें तीव्र लालसा थी अपने संन्यासी पुत्रको एक बार देख लेनेकी। लालसाकी पूर्तिके लिये एक गुप्त योजना बनायी गयी थी, पर वह सफल नहीं हो सकी। सचमुच, उस योजनाकी असफलतामें ही माँ का वास्तविक हित निहित था। माँके आत्यन्तिक और पारलौकिक हितकी दृष्टिसे बाबाका चिन्तन अपने ही ढंगका था। पाञ्चभौतिक धरातलपर यहाँ कुछ क्षणके लिये मिलन एक सामयिक तात्कालिक क्षणिक लाभ था, पर बाबा सोच रहे थे माँके लिये वह परम पारमार्थिक लाभ, जो जीवनके उस पार चिरन्तन होगा, स्थायी होगा और निरवधि होगा। इतना ही नहीं, एक महत्त्वपूर्ण बात यह भी होगी कि जीवनके अन्तिम क्षणोंमें माँको मेरे सामीप्यकी अनुभूति भी होगी।

बाबाका चिन्तन पूर्ण रूपसे साकार हुआ। अब जन्मदात्री माँके जीवनके अन्तिम दिन आ गये थे। शरीर अस्वस्थ चल रहा था। मृत्युसे दो दिन पहलेकी बात है। एकादशीको माँकी स्थिति गम्भीर हो गयी। घरके लोगोंको ऐसा लगा कि शरीरसे हंस अब उड़ जानेवाला है। माँको खाटसे नीचे उतार लिया गया। ऐसे अवसरपर एकने माँसे पूछा – तुम्हें संन्यासी बाबू याद आते हैं क्या?

माँने बड़े प्रसन्न चित्तसे कहा – देखो, वह रहा। वह मेरे सामने ही तो है। देखो वह रहा।

जब-जब बाबाके बारेमें पूछा गया, तब-तब माँने बाबाकी उपस्थिति बतलायी, कभी पास, कभी दूर, कभी दाहिने, कभी बायें। माँको सतत यही अनुभव हो रहा था कि मेरा संन्यासी बेटा मेरे पास है और यह बात सही भी थी कि उसको बाबा दिखलायी दे रहे थे। वह प्रसन्न-वदना माँ समीप खड़े हुए अपने संन्यासी बेटेसे पूछने लगी – क्यों रे! तू मजे में है न? तुमको भोजन ठीकसे मिल जाता है न?

इस प्रकार वह माँ अपने संन्यासी बेटेसे थोड़ी देरतक बात करती रही, फिर वह अपने आप चुप हो गयी। प्रतिक्षण मृत्यु समीप

आ रही थी। सं.२०१३ वि.पौष शुक्ल द्वादशी (१३-१-५७) को माँने अपने परिवारवालोंसे कहा – मुझे काशी ले चलो।

बाबाके बड़े भाई बड़े मातृभक्त थे, उनकी हर आज्ञाको माननेमें वे तत्पर रहा करते थे। उनकी बड़ी चाह थी कि माँकी अन्तिम अभिलाषाको कैसे पूरा किया जाये। वे बड़े व्यथित थे कि न तो पासमें रेलवे-स्टेशन है और न ग्राममें किसीके पास मोटरकार है। माँकी मृत्युको सन्निकट देखकर वे सोच नहीं पा रहे थे कि क्या किया जाये? निराशाकी स्थितिमें भगवानका स्मरण ही एक मात्र सहारा होता है। वे भगवानका स्मरण मन-ही-मन करने लगे। अगले दिन उन्होंने देखा कि घरके पाससे होकर एक खाली मोटरकार चली जा रही है। पं.श्रीतारा- दत्तजीने दौड़कर ड्राइवरसे पूछा – यह मोटरकार कहाँ जा रही है?

ड्राइवरने बताया – काशी।

उन्होंने कहा – भइया! तुम जितना भी रुपया लोगे, हम देंगे। मेरी माँ मरणासन्न है। उसकी इच्छा काशी जानेकी है। तुम हमलोगोंको काशी पहुँचा दो।

वह ड्राइवर सहमत हो गया। तुरंत मोटर कारमें पीछे गद्दा बिछाया गया। माँके साथ बाबाकी बड़ी बहिन बैठी, जो बाबासे लगभग बीस वर्ष बड़ी थी। पं.श्रीदेवदत्तजी आवश्यक धन लेकर आगे ड्राइवरके बगलमें बैठ गये। इनके अतिरिक्त दो व्यक्ति और भी बैठे। कारमें परिवारके कुल पाँच व्यक्ति माँके साथ काशी गये। किसीको पता नहीं कि वह मोटरकार किसकी थी, वह कहाँसे आ रही थी और कैसे आयी, पर वह आ पहुँची ईश्वरीय विधानसे माँकी अन्तिम चाहको पूर्ण करनेके लिये। ज्यों ही मोटरकारने भगवान विश्वनाथके पावन क्षेत्रमें, पुण्यतोया गंगाजीके पुलको पार करके काशीकी सीमामें प्रवेश किया और चौकपर रुकी, त्यों ही माँने अपने पार्थिव शरीरका परित्याग कर दिया। बाबाकी पूज्या माँका देहान्त सं. २०१३ वि. की मकर संक्रान्तिके शुभ कालमें, तदनुसार पौष शुक्ल १३ सोमवार, १४ जनवरी १९५७ ई. के दिन हुआ। ऐसा लगता है कि वह भगवान सूर्यनारायणके उत्तरायण होनेकी प्रतीक्षा कर रही थी। मकर संक्रान्तिके दिन भगवान सूर्यनारायण दक्षिणायणसे उत्तरायणकी ओर हुए और

संक्रान्तिके पावन दिन तीन लोकसे न्यारी काशीके पावन क्षेत्रमें उसने अपने शरीरका परित्याग किया।

अब धर्मशालाके अन्दर जाकर ठहरना था ही नहीं। तुरंत विमान बनाया गया और मणिकर्णिका घाटपर ले जाकर शवको चिताके ऊपर रख दिया गया। ऋषि-मुनियोंकी सन्तान हिन्दूका एक-एक कार्य, उसका जन्म-मरण, उसका जीवन ही यज्ञमय होता है। हिन्दूकी अन्त्येष्टि प्रक्रिया भी एक प्रकारका यज्ञ ही है। वे जन परम भाग्यशाली हैं, जिनका शरीर किसी परम पुनीत तीर्थक्षेत्रमें एवं किसी परम पवित्र पुण्यकालमें परम पावनी भगवती गंगाके किनारे प्रज्वलित चितारूपी यज्ञाग्निमें आहुति बनता है। यह यज्ञ माता-पिता स्वयं नहीं करते, अपितु पुत्रके द्वारा होता है। माता-पिताका आत्म-विस्तार ही तो पुत्र है। पुत्रके रूपमें माता-पिता ही इस यज्ञको सम्पन्न करते हैं। चिताग्निमें शरीरकी अन्तिम आहुतिद्वारा जीवन-यज्ञकी पूर्णाहुति होती है। इस अन्तिम आहुतिको देकर श्रीतारादत्तजी एक किनारे बैठ गये और वे बैठ-बैठे देख रहे थे कि चिताग्निकी ऊँची-ऊँची लपटें शवको आत्मसात करती चली जा रही हैं। अपनी परम पूजनीया माँको भस्मीभूत होते देख करके उनके हृदयमें मातृ-वियोगका भाव उमड़ पड़ा और वे फूट-फूट करके रोने लगे। अपने भाई पं.श्रीदेवदत्तजीसे लिपट करके कहने लगे – क्या भइया! अब मैं टुअर (मातृ-पितृ-विहीन) हो गया? क्या मैं अनाथ हो गया?

उसी समय श्रीदेवदत्तजीने उनसे कहा – अरे तुम रोते हो? ऐसी माँका पुत्र होना कितना बड़ा सौभाग्य है? जिसने मकर संक्रान्तिके पुण्य अवसरपर भगवान विश्वनाथके परम पवित्र काशी क्षेत्रमें अपने शरीरका परित्याग किया, सारे जीवन जो संत-सेवा और पुरजन-सेवा उल्लास एवं उत्साह पूर्वक करती रही, जिसकी पति-सेवाका भाव सदा ही सराहा गया और सबसे बड़ी बात यह कि जिसने चक्रधर जैसे परम सुयोग्य संन्यासी पुत्रको जन्म दिया, वह माँ धन्य, उसका वंश धन्य, उसके दोनों कुल धन्य और उसके समस्त स्वजन धन्य। भगवान करे, ऐसी माँ सबको मिले।

पं.श्रीदेवदत्तजीके इन शब्दोंसे श्रीतारादत्तजीको बड़ी सान्त्वना मिली। चिता आधी ही जल पायी थी कि एक विशेष बात घटित हुई।

आकाशमें बादल तो थे ही, अब वर्षा आरम्भ हो गयी। यद्यपि वर्षा हल्की थी, फिर भी उसे देखकर दोनों भाइयोंको चिन्ता होने लग गयी। आश्चर्यकी बात यह हुई कि वर्षाका चितापर कोई प्रभाव नहीं पड़ा और वह पूर्ववत् ही प्रज्वलित रही।

माँके निधनकी सूचना देनेके लिये भाईने बाबाके पास रतनगढ़ तार दिया। बाबाने काष्ठ-मौन १९ अक्टूबर १९५६ को लिया था। इसके सवा माह बाद पूज्य बाबूजी स्वास्थ्य-लाभके लिये गोरखपुरसे रतनगढ़ चले आये। साथमें बाबा भी आये। तार तो बाबाके पास बहुत विलम्बसे पहुँचा, पर तारके पहुँचनेके पहले रतनगढ़में कुछ और ही घटित हो गया। बाबा अपने कमरेमें थे। रातके नौ-दस बजेके आस-पास बाबाकी माँ बाबाके सामने आकर खड़ी हो गयी। बाबाने अपनी माँको पहचान लिया और बाबाको बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह यहाँ कैसे आ गयी। बाबाने उससे पूछा – तू यहाँ कैसे?

खड़े-खड़े माँ मुस्कुराने लगी। उसके पैर भूमिपर टिके हुए नहीं थे। वह आकाशमें भूमिसे कुछ ऊपर खड़ी थी। यह देखकर बाबाको तुरंत ज्ञात हो गया कि यह तो अपने स्थूल शरीरका परित्याग करके इस समय मेरे सामने सूक्ष्म शरीरसे खड़ी है।

शरीरका परित्याग करनेके बाद बाबाकी माँकी कुछ दिव्य परिणतियाँ हुईं और निधनके तीन दिनके भीतर ही उसे जहाँ पहुँचना था, वह वहाँ पहुँच गयी। बाबाकी माँकी सर्व प्रथम परिणति भगवती पार्वतीके रूपमें हुई। माँने अपने शरीरका परित्याग भगवान विश्वनाथकी दिव्य पुरी काशीकी सीमाके भीतर किया था, सम्भवतः इसी कारण प्रथम परिणति भगवती पार्वतीके रूपमें हुई। इसके बाद दूसरी परिणति महर्षि भागुरिकी धर्मपत्नीके रूपमें हुई। महर्षि शाण्डिल्य तो श्रीनन्दकुलके पुरोहित हैं और महर्षि भागुरि वृषभानुकुलके पुरोहित हैं। बाबाके पिताजीकी परिणति महर्षि भागुरिके रूपमें हुई, अतः उनकी धर्मपत्नीके रूपमें माँकी परिणतिका होना स्वाभाविक है। बाबाकी माँकी अगली परिणति माँ कीर्तिदाके रूपमें हुई। सबसे अन्तिम परिणति हुई सौदामिनीके रूपमें, जो वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाके शीशपर विराजित एक विशिष्ट प्रकारकी चन्द्रिका है।

जन्मदात्री माँने निधन होते ही सूक्ष्म शरीरसे रतनगढ़ पधार

करके बाबाको दर्शन दिया। इस दर्शनके तीन दिन बादका प्रसंग है। रतनगढ़में बाबा अपने कमरेमें बैठे हुए थे। कमरेके दोनों द्वार बन्द थे। तभी एक स्त्री बाबाके कमरेमें आयी। उसके शरीरकी कान्ति बड़ी उज्ज्वल थी, उसके अङ्गोंमें दिव्य आभूषण शोभा पा रहे थे। उसके परिधान देखनेमें असाधारण लग रहे थे। कमरेके एकान्तमें एक स्त्रीको अपने सामने अचानक देखकर बाबाको बड़ा अटपटा लगा। बाबा अपने कमरेमें पाटेपर उत्तराभिमुख बैठे हुए थे और यह दिव्य स्त्री पूर्वाभिमुख खड़ी थी। बाबा उसे पहचान नहीं पाये। फिर उस स्त्रीकी ओर बाबा एकटक देखने लग गये। गड़ी दृष्टिसे निहारकर देखनेके बाद बाबा जान पाये कि यह तो मेरी जन्मदात्री माँ है। बाबा तुरंत अपने पाटेपरसे नीचे उतरे तथा भूमिपर मस्तक रखकर माँको प्रणाम किया। बाबाको इस बातसे अतीव प्रसन्नता हो रही थी कि मेरी माँको अपने अन्तिम स्वरूपकी प्राप्ति इतने शीघ्र हो गयी। ज्यों ही बाबाने भूमिपर माथा टिकाकर प्रणाम किया, त्यों ही उसने अपने दोनों हाथ ऊपर उठाकर वरद मुद्रामें आशीर्वाद दिया, उसने हाथ हिलाकर तीन बार आशीर्वाद दिया। बाबाने मन-ही-मन कहा — जा माँ, तू सुखसे रह।

इसके बाद वह अदृश्य हो गयी। वह फिर कभी बाबाको दिखलायी नहीं दी।

* * * * *

महाभाव की दीक्षा

रस-सिन्धुमें संतरणकी दृष्टिसे बाबाके जीवनकी चार घटनाएँ अति महत्त्वपूर्ण हैं। प्रथम है श्रीमञ्जुलीला भावकी दीक्षा, जो गुरुस्वरूपा श्रीरूपमञ्जरीजीने सन् १९३९ में प्रदान की। द्वितीय है श्रीमञ्जुश्यामा भावकी दीक्षा, जो प्रिया-प्रियतम श्रीराधाकृष्णने सन् १९४३ में प्रदान की। तृतीय है गुप्त दैवी मन्त्रकी दीक्षा, जो भगवती श्रीमन्महात्रि- पुरसुन्दरीने सन् १९५१ में प्रदान की और चतुर्थ है श्रीराधाभावकी दीक्षा, जो स्वयं प्रियतम श्रीकृष्णने सन् १९५७ में प्रदान की। सन् १९५६ की शरदपूर्णिमाको बाबाने काष्ठ मौन लिया और वे गम्भीर रूपसे अन्तर्मुख हो

गये, जिसकी एक अति झीनी-सी छवि ऊपर प्रस्तुत की जा चुकी है।

रतनगढ़में सन् १९५७ के चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी बात है। अष्टमी तिथि जानेवाली है और नवमी तिथि आनेवाली है, इन दोनों तिथियोंकी उस सन्धि-वेलामें 'श्रीराधास्वरूप' की महाभावमयी दीक्षा सम्पन्न हुई। बाबा उस 'दिव्य लीला राज्य'में अपने किसी लोकोत्तर दिव्य स्वरूपमें स्थित थे, तभी इस महान सौभाग्यका अवतरण हुआ। बाबाने अपने 'जय जय प्रियतम' काव्यमें स्वयं इस तथ्यको स्वीकार किया है। 'जय जय प्रियतम' काव्यके प्रथम शतकके आरम्भमें प्रथम आठ-नौ छन्दोंमें बाबाने अपने 'भाव-स्वरूप' का परिचय देते हुए लिखा है –

हूँ वही, जिसे कहकर 'मेरे प्राणोंकी रानी' हे प्रियतम।
थे पकड़ लिये वे हाथ, लगी मिंहदी जिनमें थी, हे प्रियतम।।
पर भग्न हुआ-सा था गृह वह जिसमें रहती बाला प्रियतम।
थी तमसे परिपूरित रजनी, जब तुम आये थे हे प्रियतम।।
उस कच्चे घरमें रहकर भी निर्मल थी वह बाला प्रियतम।
था सका नहीं छू उसे एक कण बाहर से आया प्रियतम।।
थी छिपी शक्ति उसमें सहस्र पावक पुञ्जोंकी हे प्रियतम।
सामर्थ्य नहीं थी कहीं किसीमें, जो दूषित कर दे प्रियतम।।

इन पंक्तियोंमें बाबाने अपने दिव्य स्वरूप, अपने दिव्य शृंगार, अपनी दिव्य निर्मलता, अपनी दिव्य शक्तिकी ओर संकेत करते हुए स्पष्ट रूपसे उस परम पवित्र सम्बन्ध और परम प्रिय सम्बोधनका उल्लेख किया है, जब वह महान सौभाग्य चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी अष्टमी-नवमी-तिथिकी संधि-वेलामें अवतरित हुआ था।

एक बार माँके मनमें यह जिज्ञासा जाग्रत हुई कि बाबासे ही उसके वास्तविक स्वरूपके बारेमें प्रश्न किया जाय। एक दिन भिक्षा कराते समय माँने बाबासे पूछा – बताओ! तुम कौन हो?

काष्ठ मौनका व्रत होनेके कारण बाबा कुछ बता नहीं पाये। बाबाने तो माँसे केवल दृष्टि मिलानेकी छूट ले रखी थी। काष्ठ मौनका कठोर व्रत छः वर्षतक चला और इस अवधिमें तीन वर्षतक बाई (श्रीसावित्रीबाई फोगला) से भी दृष्टि नहीं मिलायी। ज्यों ही माँने प्रश्न किया, भले बाबाने तत्काल बतलाया नहीं, पर उत्तर तो मनमें उभर ही आया। बाबाने उस

उत्तरको छन्द-बद्ध भी किया। भविष्यमें एक दिन बाबाने उस छन्दको सुनाकर उसका अर्थ बतलाते हुए कहा था – श्रीकृष्णका जो नील कलेवर है, वह मैं हूँ और मेरा जो गौर कलेवर है, वह वे श्रीकृष्ण हैं।

इसी छन्दमें एक पंक्ति आती है, उसका भाव यह है कि मैं श्रीकृष्णके हृदयका एक मधुर स्वप्न हूँ। इसका स्पष्टीकरण करते हुए बाबाने बतलाया था कि व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णके हृदयका मधुर स्वप्न श्रीराधा है, वह श्रीराधा मैं हूँ। इस पंक्तिका एक अर्थ यह भी हो सकता है कि श्रीकृष्णका हृदय श्रीराधा है, उस श्रीराधाका मैं एक मधुर स्वप्न हूँ।

* * *

बाबाको जिस महाभावमयी स्थितिकी और जिन विभिन्न अनुभूतियोंकी उपलब्धि हुई, उसको दृष्टिमें रखते हुए उन्होंने अपनी अनोखी पाठशालाका और अनोखी पाठ-प्रक्रियाका वर्णन 'राधा-संदेश' में स्वयं किया है। बाबाका 'राधा-संदेश' शीर्षक हृदयस्पर्शी वर्णन 'चलौ री आज व्रजराज मुख निरखिये' पुस्तकमें प्रकाशित हो चुका है और यह गद्यात्मक वर्णन 'जय जय प्रियतम' काव्यके एकादश शतकका विस्तृत भावानुवाद है। क्रन्दन ही जिनका जीवन है और उस अनादि क्रन्दनका अन्त जिनके जीवनमें कभी आता ही नहीं, वे कृष्णवल्लभा श्रीराधा अपने प्रियतमके प्रिय दूत श्रीउद्धवजीसे कहती हैं –

सुनो! सीखोगे उस कलाको? देखो, मेरे उर-स्थलमें एक पाठशाला है। कब निर्माण हुआ इस पाठशालाका, जानती नहीं। पर मैं उसीमें न जाने कबसे पढ़ रही थी और आज भी उसमें ही पढ़ती हूँ। उस पाठशालाका नाम है – 'प्रेम-पाठशाला'। तो मैं उसीमें पढ़ रही थी, पढ़ रही हूँ उसका प्रथम पाठ है – वर्णमालाका उच्चारण करके उन वर्णोंको लिखना। देखो! पर तुम्हें मैं वर्णमालाका एक ही नाम बताऊँगी। सुनो, 'कृष्ण' – इस वर्णका उच्चारण करते-करते शेष सम्पूर्ण वर्णमालाका तुम्हें भान हो जायगा और फिर तुम उस वर्णमालाकी आकृतियोंको, उनके रंगोंको अपने हृत्तलपर अंकित करते जाना। मैं यही करती हूँ, यही करती थी।

देखो! उस कृष्णवर्णके अन्तरालमें अरुणाभवर्ण बीस नखमणियाँ

दीखेंगी। उनपर वृत्ति केन्द्रित होते ही फिर एक अभिनव नारंगवर्णकी छटा व्यक्त होगी – कहाँ, कैसे, तुम स्वयं समझ लोगे। इसके पश्चात् एक पीतवर्णके दर्शन होंगे। फिर इसके अनन्तर एक हरिद्वर्ण समुद्भासित होगा। लिखते-लिखते श्रान्त कभी मत होना। फिर व्योमवर्ण, नीलवर्ण और वृन्ताकवर्ण – ये सब-के-सब उदित होंगे। अविराम भावसे 'कृष्ण-कृष्ण' उच्चारण करते रहना और इन वर्णोंकी आकृतिका निर्माण करते रहना। किन्तु सावधान! खड़िया मिट्टीसे नहीं, इसके लिये तुम्हारे अन्तस्तलसे अश्रु की बूँदें निःसृत होंगी। काँचकी भाँति गोल-गोल बूँदें व्यक्त होती रहेंगी और तुम लिखते रहोगे उन वर्णोंको। अक्षरका ज्ञान इतनेमें ही तुम्हें हो जायगा। फिर समझ पाओगे, दिनकरकी रश्मियोंमें इन्हीं वर्णोंकी छायाकी छाया प्रतिभात हो रही है। जब तुम्हें अक्षरका बोध हो जायगा, तब जानते हो, दृश्य-प्रपञ्चकी सत्ता सर्वथा तुम्हारी आँखोंसे विलुप्त हो जायेगी। एक सत्य, एक ज्ञान, एक आनन्द – एकरस सम्पूर्ण सत्य, एकरस सम्पूर्ण ज्ञान, एकरस सम्पूर्ण आनन्दकी बात तुमने कभी सुनी होगी न? उसे तो तुम घलुएमें प्राप्त कर लोगे।

अब आगे सुनो – जिसे अक्षरका बोध हो जाता है, जो वर्णमाला सीख जाती है, वह फिर शब्दोंको लिखती है। जानते हो, एक तो षड्जका शब्द आयेगा, एक ऋषभका, एक गान्धारका, एक मध्यमका, एक पञ्चमका, एक धैवतका और एक निषादका, पर यह शब्द-नामावली उस शब्दकी छायाकी छाया है, भला! उन शब्दोंके लिये भी कोई नाम ही नहीं रे दूत! क्या बताऊँ? पर जैसे, जिस भाँति मैं समझी थी, पाठ पढ़ पायी थी, वैसे ही उसी भाँति तुम समझ सको, इसीलिये ही इतना-सा कह दे रही हूँ। कालके प्रवाहमें कब, कैसे कितना इस प्रक्रियाका आश्रय मैंने स्वयं लिया, जानती नहीं, दूत!

अब इसके अनन्तर संयुक्त वर्णोंका भान होगा तुम्हें। ये संयुक्त वर्ण बहुत ही सरस होते हैं, दूत! फिर आगे चलकर विधेय-उद्देश्यमयी उस भाव-पंक्तिका पाठ आरम्भ होगा, किन्तु उस पाठका अर्थ इतना गूढ़ रहता है, जिसे तुम जान ही नहीं सकोगे। अज्ञात रहेगा उस पाठका गूढ़ार्थ। इसके अनन्तर कुछ दिन प्रतीक्षा करते रहना।

इसके पश्चात् क्या होगा, तुम्हें बताऊँ? एक होती है महाभाव

विद्या, जो अबतक तुमने पढ़ी नहीं है दूत! वह विद्या कैसी होती है, तुम्हें बता दूँ? अच्छा, सुनो! उस विद्याके आविर्भावमें किसीको अबतक हेतुका अनुसन्धान प्राप्त नहीं हुआ है। बड़ा ही सूक्ष्म है वह। मलकी गन्धकी गन्ध नहीं है वहाँ – इतनी अमल है वह महाभावकी विद्या; और वह है प्रतिक्षण वर्धनशील। उसमें खण्डित होनेका कहीं भान नहीं होता। वह सर्वथा अखण्ड है। सीमाविहीन है वह। आजतक कोई भी उसका पार न पा सकी, न पा सका। और देखो! वाणी छू भी नहीं सकती उसे। सर्वथा सर्वांशमें वह स्वसंवेद्य है। बड़ी गम्भीर है वह, भला! उस महाविद्याका 'अथ', सो भी कहनेके लिये, इस विशुद्ध सत्त्वमयी धाराके बिन्दुपर ही अवलम्बित है। उसी 'अथ' को स्पर्श कर अब तुम अग्रसर होओगे।

इसके पश्चात् क्या है, इसे तो कोई भी नहीं कह सकती। और सत्य तो यह है कि जो आगे जाकर उसमें निमग्न हो गयी, वह कभी लौटती ही नहीं।

* * *

उपर्युक्त पंक्तियाँ 'राधा-संदेश' से उद्धृत की गयी हैं। इन पंक्तियोंमें उस प्रेम-पाठशालाका, उसके पाठोंका, उसकी प्रक्रियाका और उसकी परमोच्चोपलब्धिका यह वर्णन अत्यधिक सांकेतिक और रहस्यपूर्ण है। इस वर्णनमें सात रंगोंके और सात स्वरोंके नामोंका उल्लेख है। कई बार पढ़नेके बाद जब तनिक-सा भी अर्थ-बोध नहीं हुआ तो एक बार बाबासे ही पूछा गया – बाबा! इन सात रंगोंके वर्णनके माध्यमसे क्या बात कही गयी है?

बाबाने बतलाया – उन वर्णोंके मिससे मैंने अपनी अनुभूतियोंका सांकेतिक वर्णन किया है। मेरे जीवनमें जो-जो जैसे-जैसे घटित हुआ है, उसीको वहाँ बतलाया गया है, पर वह कहा गया है बहुत ढककर। मेरे जीवनमें वही हुआ है, जिसका वर्णन वैष्णव शास्त्रोंमें आया है, पर उन शास्त्रोंमें जिन क्रमिक स्तरोंका वर्णन हुआ है और रस-मर्मज्ञों द्वारा उन्नयनके जो सोपान बतलाये गये हैं, वैसा मेरे जीवनमें नहीं है। भगवत्कृपाके फलस्वरूप प्रारम्भमें ही सर्वोच्च स्थितिपर मेरी प्रतिष्ठा कर दी गयी। उस अति महान स्तरपर प्रतिष्ठित हो जानेमें, सत्य-सत्य एक मात्र भगवत्कृपा ही मुख्य हेतु है, पर उस वर्ण-वर्णनमें वही है, जो मेरे अनुभवकी वस्तु है। यह बात अब अलग है कि मेरे जीवनमें उन

भिन्न-भिन्न सोपानोंका, उन भिन्न-भिन्न स्तरोंका प्रकाश बादमें भिन्न-भिन्न कालमें होता रहा। श्रीकृष्ण-प्रेमके विकासमें स्नेह-मान-प्रणय-राग-अनुराग-भाव-महाभावका वर्णन शास्त्रोंमें आया है। इसीको यहाँ विभिन्न रंगोंके माध्यमसे व्यक्त किया गया है। सूर्यकी शुभ्र किरणमें सात रंग होते हैं, जिनको इन्द्रधनुषमें अथवा पानीके बुलबुलेमें अथवा सप्तकोणीय काँच (PRISM) में देखा जा सकता है। ये सातों रंग एक दिनकर-रश्मिमें पर्यवसित होकर शुभ्र वर्ण धारण कर लेते हैं और परम उज्ज्वल प्रकाशका विस्तार करते हैं, जिससे सम्पूर्ण जगत आलोकित हो उठता है। सूर्य-तनया-कूल-विहारिणी एवं सूर्योपासिका श्रीराधा भी महा दिव्य भावराज्यकी एक महान रश्मि है, जो अपनी अद्वितीय अलौकिक महिमासे नित्य परिमण्डित रहती है, जो सातों भावोंकी पुञ्जिका-प्रतिष्ठा-प्रतिष्ठापिका-पोषिका है, जो सप्त-भाव-समूहमें अन्तिम सर्वश्रेष्ठ स्तर महाभावकी साकार प्रतिमा है और जिसका सम्पूर्ण अस्तित्व मलिनतासे सर्वथा शून्य सम्पूर्ण उज्ज्वलताका मूर्तिमान स्वरूप है। एक बात और, उन सात रंगोंसे इन सात भावोंकी तुलना तो की गयी है, पर यह तुलना भी अयुक्त है। हमारे प्राकृत जगतके सूर्यकी रश्मिमें जो सात रंग हैं, वे इतने अलग-अलग हैं कि एक रंगमें दूसरा रंग होता ही नहीं, पर उस दिव्य भावराज्यमें जो सातों भाव हैं, वे सारे भाव सदा एक दूसरेमें समाये रहते हैं। जो श्रीकृष्णके नामको अपने अश्रुजलसे भिगो-भिगोकर जप करता है, वही उस भावराज्यकी ओर अग्रसर हो पाता है। जप करनेसे उस त्रिकालातीत-त्रिगुणातीत-अविनाशी-अक्षर परमसत्यका बोध हो जाता है और श्रीप्रिया-प्रियतमकी बीस नख-मणियोंके शुभ दर्शनका सौभाग्य मिलता है। ब्रह्मज्ञानीको कठिन साधनाके उपरान्त जिस घनानन्द परमानन्दकी प्राप्ति होती है, वह परमानन्द तो उसे अनायास अनुभूत होने लगता है। फिर वह अनुक्षण सप्त स्वरोंपर गायन करता रहता है सप्त-भावोंसे प्रसूता एवं पोषिता रसमयी लीलाओंको और सर्वान्तमें होता है महाभाव सागरमें निमज्जन। यही इस प्रेम-पाठशालाकी सर्वोच्च महाविद्या है। जो महाभावसागरमें डूब गया, वह फिर लौटकर जगतमें नहीं आता। श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्ध (११-१६-३७) में श्रीउद्धवजीसे भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि जहाँ न सतोगुण है, न रजोगुण है और न तमोगुण है, वह निर्गुण अर्थात् महासत्त्व मैं हूँ। इस महासत्त्वकी स्थिति मानव

शरीरमें सर्वथा दुर्लभ है। अब इस अनोखी प्रीतिकी बलिहारी है कि जिसमें बहकर भगवान श्रीकृष्णने अपने नियममें परिवर्तन कर दिया और महासत्त्वकी स्थितिमें मुझे प्रतिष्ठित कर दिया। उनकी उस अचिन्त्य-अमाप्य प्रीतिको देखकर मेरे मुँहसे एक दोहा प्रस्फुटित हो पड़ा –

नियम हुतौ गुन देह में महाभाव नहि होन।
मेरे सुख हित साँवरो सोऊ कीनौ गौन।।

महाभावकी स्थितिका वर्णन मात्र वैष्णव ग्रन्थोंमें मिलता है। निर्गुण-निराकारवादी तो इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। इसीको श्रीपोद्दार महाराजने 'ज्ञानोत्तरभावराज्य' कहा है। वर्ण-वर्णनका तात्पर्य यही है कि भावपूर्ण श्रीकृष्णनामका जप करने तथा सच्ची श्रीकृष्णरति उत्पन्न होनेके बाद ही भाव-साधनाकी यात्राका शुभारम्भ होता है और इस 'भाव-यात्रा' का अन्तिम बिन्दु है महाभाव-निमज्जन।

बाबाने उस प्रेम-पाठशालाकी पाठ-प्रक्रियाका जो स्पष्टीकरण बतलाया, उसीका सारांश उपर्युक्त पंक्तियोंमें वर्णित है।

* * *

बाबाके रसावगाहनका शुभारम्भ स्वाधीनभर्तृका-भावसे हुआ। प्रियतम कान्त जिस नायिकाके अधीन होकर सर्वदा निकट वास करते हैं, उसे स्वाधीनभर्तृका नायिका कहते हैं। श्रीविशाखाजी स्वाधीनभर्तृका भावकी मूर्तिमान स्वरूप हैं और श्रीविशाखा-भावसे ही बाबाका रस-राज्यमें प्रवेश हुआ। श्रीराधाजी ही श्रीविशाखा हैं। श्रीराधाजीको अपने 'राधा-स्वरूप' की सर्वथा विस्मृति हो जाती है और वे स्वयंको पूर्ण रूपसे श्रीविशाखा मानने लगती हैं। भावकी प्रबलताके कारण वे ऐसा सोचने-समझने लगती हैं कि मैं वृषभानुनन्दिनी राधा नहीं, अपितु विशाखा हूँ। वस्तुतः वे हृदयसे ऐसा ही अनुभव करने लगती हैं। विशाखा-भाव जब और गहरा होता है तो वे स्वयंको मधुमती मानने लगती हैं। भावकी और अधिक गहराई होनेसे वे स्वयंको चन्दन मञ्जरी मानने लगती हैं। ज्यों-ज्यों भाव सघन होता चला जाता है, त्यों-त्यों वे चन्दन मञ्जरीसे स्वयंको शशिरेखा मञ्जरी, फिर शशिरेखासे स्वयंको हारहीरा मञ्जरी मानने लगती हैं। भावके आवर्त ज्यों-ज्यों सघन होते चले जाते हैं, त्यों-त्यों ऐसी परिणति उत्तरोत्तर होती चली जाती है।

उत्तरोत्तर उत्कर्षको प्राप्त होते हुए स्वाधीनभर्तृका-भावकी ये छः उर्मियाँ इसी प्रकारसे बाबाके अनुभवमें आयीं। लीलाराज्यमें बाबाकी यह भी अनुभूति है कि कृष्णवल्लभा श्रीराधाकी घन-घन केशराशिकी स्निग्धता ही श्रीविशाखा सखीके रूपमें मूर्तिमान होकर युगलकी निकुञ्ज सेवामें संलग्न रहती है। श्रीविशाखाजी स्वयं श्रीराधा हैं और श्रीराधाजीकी केश-स्निग्धताका मूर्तिमान स्वरूप भी हैं। ये अंशी भी हैं और अंश भी हैं। उस दिव्य लीलाराज्यमें अंशी-अंशका भेद नहीं रहता। अंश भी अंशीके समान पूर्ण है। इसी प्रकार रसिक युगलकी रसमयी सेवामें सतत संलग्न सभी सखियाँ-मञ्जरियाँ विभिन्न रूपोंमें निकुञ्जेश्वरी श्रीराधा ही हैं और उन्हीं श्रीराधाजीके किसी अंग अथवा आभूषण आदिका मूर्तिमान स्वरूप हैं। नित्य निकुञ्जेश्वरी श्रीराधा महाभाव स्वरूपा हैं और यह महाभाव सिन्धु निकुञ्जेश्वर श्रीकृष्णको सुख प्रदान करनेके लिये नित्य लहराता रहता है। इस नित्योच्छलित महाभाव सिन्धुमें ऊँची-नीची छोटी-बड़ी विविध भाव-तरंगें सदा उठती रहती हैं, किन्तु आठ दिशाओंसे उठनेवाली अष्ट-भाव-तरंगें प्रधान हैं और इन अष्ट तरंगोंमेंसे एक है स्वाधीनभर्तृका-भाववाली तरंग, जिसका उच्छलन-विलास ईशान दिशामें होता है। स्वाधीनभर्तृका-भावकी उत्तरोत्तर उत्कर्षोन्मुखी उर्मियाँ (इनका स्वरूप, इनकी संज्ञा, इनके प्रतीक) तथा विशाखा कुञ्जकी स्थिति, इस कुञ्जकी वनस्पति, इस कुञ्जकी केलि आदिका स्वरूप, ये सब बाबाके निजी लीलाराज्यके अन्तरंग तथ्य हैं।

इसी प्रकार उस महाभाव सिन्धुकी उत्तर दिशामें जब खण्डिता-भावकी उर्मि लहराने लगती है, तब श्रीराधा ही श्रीललिताके रूपमें मूर्तिमान हो उठती हैं। बाबाकी दिव्यानुभूतिके अनुसार श्रीराधाके अरुणाधरोंकी लालिमा ही श्रीललिता सखीके रूपमें मूर्तिमान होकर युगल-सेवामें सतत संलग्न रहती है। खण्डिता-भावकी भी उत्तरोत्तर अधिक सुख-विधायक षट उर्मियाँ महाभाव सिन्धुमें लहराती हैं और उनकी संज्ञाएँ हैं ललिता, मञ्जुश्यामा, रूपमञ्जरी, लवंगमञ्जरी, मोदिनी मञ्जरी, और माधवी मञ्जरी।

स्वाधीनभर्तृका-भाव और खण्डिता-भावके समान दिवाभिसारिका-भाव, प्रोषितभर्तृका-भाव, वासकसज्जा-भाव, उत्कण्ठिता-भाव, विप्रलब्धा-भाव और कलहान्तरिता-भावकी दिव्य तरंगें उस महाभाव सिन्धुमें क्रमशः पूर्व, आग्नेय, दक्षिण, नैऋत्य, पश्चिम और वायव्य दिशाओंकी ओर लहराती हैं और इन

भाव-तरंगोंकी क्रमशः मूर्तिमान स्वरूप हैं श्रीचित्राजी, श्रीइन्दुलेखाजी, श्रीचम्पकलताजी, श्रीरंगदेवीजी, श्रीतुंगविद्याजी और श्रीसुदेवीजी। इन सभी भावोंकी उत्तरोत्तर सघन षट ऊर्मियाँ अपनी-अपनी दिशाओंमें लहराती हैं और प्रत्येक भावकी षट ऊर्मियोंकी अलग-अलग संज्ञाएँ हैं। इन ८ भावोंकी ६-६ ऊर्मियाँ, इस प्रकार कुल ४८ ऊर्मियाँ और एक सामान्य ऊर्मि, कुल ४९ ऊर्मियोंका विवेचन स्वयंमें एक विशद विषय है। यहाँ तो उन सबकी एक झलक मात्र प्रस्तुत की गयी है, परंतु इतना सत्य है कि लीलाराज्यके ये तथ्य बाबाकी निजी उपलब्धि हैं और काष्ठ मौनकी अवधिकी महान देन हैं।

* * *

इस भावानुभूतिमें एक स्थानपर बाबाका पूर्वाचार्योंसे किंचित् मतभेद है। रस-ग्रन्थोंमें ऐसा बतलाया गया है कि उत्कण्ठिता नायिका वह कहलाती है, जो निरपराधी प्रियतमके नहीं आनेपर प्रियतमसे मिलनेके लिये अत्यधिक उत्कण्ठित हो जाती है और विप्रलब्धा नायिका वह कहलाती है, जो संकेत प्रदान करनेवाले प्रियतमके दैवात् नहीं आनेपर आन्तरिक व्यथासे संतप्त हो उठती है। उत्कण्ठिता नायिका और विप्रलब्धा नायिका, दोनों ही प्रियतमकी प्रतीक्षा करती हैं और प्रतीक्षारत होनेके कारण ये दोनों नायिकाएँ अश्रुमोचन करती हैं, चिन्ता करती हैं, नाना प्रकारके तर्क-वितर्क करती हैं, परंतु उत्कण्ठिता नायिकाकी प्रतीक्षामें मिलनकी आशा पूर्णरूपेण है और विप्रलब्धा नायिकाकी प्रतीक्षामें मिलनकी आशा अस्तोन्मुखी है। विप्रलब्धा नायिकामें प्रियतमसे मिलनेकी आशा समाप्तिके बिन्दुपर होती है, अतः उसका हृदय निर्वेद, खेद आदिसे परिपूर्ण रहता है और खिन्नताकी अधिकतामें मूर्च्छा भी आ जाती है। रस-ग्रन्थोंमें श्रीरंगदेवीजीको उत्कण्ठिता-भावका मूर्तिमान स्वरूप माना गया है, परंतु काष्ठ मौनकी अवधिमें बाबाकी लीलानुभूति इससे भिन्न है। उत्कण्ठिता नायिका और विप्रलब्धा नायिकाकी भावदशाका जो सम्मिलन-बिन्दु हो सकता है, उस भाव-बिन्दुका मूर्तिमान स्वरूप श्रीरंगदेवीजी हैं। जिस प्रतीक्षामें पूर्ण आशा और पूर्ण निराशाके युगल बिन्दु एक दूसरेका स्पर्श कर रहे हों, ऐसी अद्भुत भाव-दशाका मूर्तिमान स्वरूप श्रीरंगदेवीजी हैं। यही कारण है कि श्रीरंगदेवीजीके कुञ्जकी लताओं-पौधों (मालती-जूही) आदिके पत्ते अत्यधिक चञ्चल हैं। अपने निजी लीलाराज्यके इस अद्भुत सत्यके सम्बन्धमें

बाबा सदा कहते रहते थे कि यह एक बड़ी विचित्र भावदशा है और वैसी विचित्रताके कारण उस भावदशाका मैं कोई नवीन नामकरण नहीं कर पाया। बाबाको कोई ऐसा उपयुक्त शब्द नहीं मिल पाया, जिसका प्रयोग उस भाव-दशाकी संज्ञाके रूपमें कर सकें। बाबाने यह भी बतलाया कि ऐसी विचित्र भावदशाके कारण कई आचार्योंने श्रीरंगदेवीजीको प्रधान सखीके रूपमें स्वीकार किया है। महावाणीकार श्रीहरिव्यासदेवजीने श्रीरंगदेवीजीको ही सर्वप्रथम स्मरण-वन्दन किया है।

* * * * *

त्रि-मासीय रविवार

बाबाके लिये भाद्रमास एक अनोखा भावोद्वेलन लिये हुए प्रत्येक वर्ष ही आता रहा है। वर्षका प्रत्येक मास किसी-न-किसी भगवल्लीलासे सम्बन्धित होनेके कारण उद्दीपनका कार्य करता है, पर भाद्रमास तो बाबाकी भावनाओंको विशेष प्रकारसे उद्दीप्त कर देता था। बाबाका भावराज्य और भावराज्यकी मधुर लीलाएँ वस्तुतः अद्भुत हैं। कृष्ण पक्षमें श्रीकृष्ण-जन्मोत्सव तथा शुक्ल पक्षमें श्रीराधा-जन्मोत्सवके कारण भाद्रमासका विशेष महत्त्व है। कृष्ण पक्षमें श्रीकृष्ण-जन्मोत्सव नंदगाँवमें मनाया जाता है, पर श्रीनंदरायजी नहीं मनाते। बरसानेसे श्रीवृषभानुजी अपने समस्त स्वजनोंके साथ पक्षके आरम्भमें ही नंदगाँव पधारते हैं तथा अकल्पनीय उत्साहके साथ सम्पूर्ण पक्ष श्रीकृष्ण-जन्मोत्सवका आयोजन और संचालन करते हैं। इसी प्रकार शुक्ल पक्षके आरम्भमें श्रीनंदरायजी सकल परिवार-परिजन-परिकर-सहित बरसाने पधारते हैं और श्रीराधा-जन्मोत्सव सम्पूर्ण पक्ष अचिन्त्य उमंगके साथ मनाते हैं। प्रीतिकी रीति विचित्र है, तभी तो नंदगाँवमें और बरसानेमें, श्रीनंदरायजीमें और श्रीवृषभानुजीमें, परस्परमें एक-दूसरेको सुख-दानकी भावना और क्रियामें होड़-सी लगी रहती है।

सं. २०१४ वि. (अर्थात् सन् १९५७) की बात है। बाबूजी और बाबा रतनगढ़ नगरमें थे और रतनगढ़में ही श्रीराधाष्टमी-महोत्सव मनाया गया था। सं. २०१४ वि. की यह श्रीराधाष्टमी १ सितम्बर १९५७ रविवारको पड़ी थी। हम साधारण जीवोंका रविवार तो रविवारीय सूर्योदयसे

आरम्भ होकर अगले सूर्योदयके साथ-साथ समाप्त हो गया, पर बाबाके लिये तो यह 'रविवार' तीन मासतक बना रहा। हम लोगोंका रविवारीय सूर्योदय सोमवारीय सूर्योदयमें परिणत हो गया, पर बाबाके उस 'रविवारीय सूर्योदय' का तीन मासतक सूर्यास्त आया ही नहीं। लौकिक दृष्टिसे बाबा इस लोकमें ही रहे और उनके शरीरके कार्य यन्त्रवत् होते रहे, पर वे इस शरीरमें थे ही नहीं। वे तो वस्तुतः तीन मासतक श्रीराधा-जन्मोत्सवकी दिव्य लीलामें लहराते रहे। श्रीरामचरितमानसमें गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने लिखा है कि भगवान श्रीरामचन्द्रजीके प्राकट्यके समय 'मास दिवस कर दिवस भा मरम न जानइ कोइ', पर यहाँ तो तीन मासका एक दिवस हो गया।

बाबा तीन मासतक उस श्रीराधाजन्मोत्सवको देखते रहे, जो दिव्य लीला राज्यमें मात्र एक दिन रविवारको मनाया गया। भाद्र शुक्ल अष्टमीका आगमन होते ही प्रियतम श्रीकृष्णने बाबासे कहा – "प्रियतमे राधे! देखो तो सही! आज वृषभानुपुरमें तुम्हारा वार्षिक शुभ जन्मोत्सव हो रहा है। अहा, क्या ही रम्य मनोहर दृश्य है।"

और प्रियतम श्रीकृष्णके साथ बाबा जन्मोत्सव देख रहे हैं। यह भी कैसी विचित्र बात है कि स्वयंका उत्सव और स्वयंके द्वारा दर्शन, एक वपुसे दृश्य और एक वपुसे द्रष्टा। जब रविवारको रतनगढ़की हवेलीमें उत्सव मनाया जा रहा था, तब बाबूजी बाबाको उत्सवमें लिवा लाये थे और बाबा उत्सवमें बैठे हुए थे, पर क्या वे यहाँ थे? भले वे शरीरसे उत्सवके मध्य विराजित थे, पर वे वस्तुतः थे अपने प्रियतमके साथ उस दिव्य लीला राज्यमें एक दर्शकके रूपमें। दिन-पर-दिन बीतते चले जा रहे थे, पर पता नहीं कि कब सूरज और चन्दा आये और गये। तीन मासतक बाबाको बाह्य सुधि बहुत कम रही। शौच-स्नान-भिक्षा आदिके कार्य यन्त्रवत् सम्पन्न होते रहते। बाबाने जो जन्मोत्सव देखा, वह 'किशोरीका स्वप्न विलास'में वर्णित है और यह वर्णन 'चलौ री आज ब्रजराज मुख निरखिये'* में प्रकाशित हो चुका है।

* * * * *

---

*'चलौ री आज ब्रजराज मुख निरखिये' पुस्तक 'श्रीराधामाधव सेवा संस्थान' पो. गीतावाटिका, जि. गोरखपुर पिन २७३००६ से प्रकाशित है।

रसोपासना-मन्त्रों की दिव्योपलब्धि

यह पहले बतलाया जा चुका है कि सन् १९५७ की श्रीराधाष्टमी रविवारको थी। भाद्र शुक्ल अष्टमीका यह रविवार बाबाके भाव-राज्यमें तीन मासकी अवधिवाला हो गया। इस त्रि-मासीय रविवारकी अवधिकी एक लीला सर्वथा अनोखी है। इस लीलाके माध्यमसे बाबाको रसोपासनाके दिव्य मन्त्रोंकी उपलब्धि हुई।

इस दिव्योपलब्धिका सांकेतिक विवरण बाबाने श्रीमहाराजजीको सुनाया था। यह पारस्परिक रसमयी चर्चा १० अक्टूबर १९७६ को हुई थी और यह रस-चर्चा एक-डेढ़ घण्टेतक चलती रही। इस रसमयी चर्चाका एक संक्षिप्त अंश ज्यों-का-त्यों आगे दिया जा रहा है –

रससे संसिक्त हो जानेके मार्गमें जो अवरोध आता है, उसकी ओर संकेत करते हुए बाबाने श्रीमहाराजजीसे कहा – उस रसराज श्रीकृष्णमें एक बड़ा ऐब है। उसे कृत्रिमता पसन्द नहीं तथा उसे दूजा पसन्द नहीं। श्रीकृष्ण तो व्याकुल हैं किसीको भी रसमें डुबा देनेके लिये, पर डुबायेंगे उसे, जिसमें कृत्रिमता नहीं। जिनमें कृत्रिमता है अथवा कृत्रिमताकी कणिकाके प्रति किञ्चित् भी आकर्षण है अथवा जिनके जीवनमें श्रीप्रिया-प्रियतमसे अलग किसी अन्य वस्तु या व्यक्तिके लिये कुछ या अधिक स्थान है, वे इसमें डूब नहीं पाते, अन्यथा यह भाव-सागर तो परम सुलभ है, सर्व-गम्य है।

कुछ रुककर फिर बाबाने कहा – किसी प्रकार तुम सागरके तटपर तो आ जावो। एक-न-एक दिन उस सागरकी लहरें तुमको बहा ले जायेंगी। तीर्थ-यात्रामें हमलोग वेदारण्यम् नामक स्थानपर गये थे। समुद्र-तटपर यह एक नगर है। वहाँके लोगोंने बताया कि तीन-चार मास पहले तीन भीषण लहरें आयीं। पहले तो दिनभर पानी बरसता रहा। फिर एक ऐसी लहर आयी जो रेलवे-स्टेशनकी छतसे भी ऊपर थी। नगरके तथा आस-पासके क्षेत्रोंके लोगोंको और पशुओंको बहा ले गयी। दूसरी लहर आयी, जो पहलेसे भी ऊँची थी, उसने और भी विध्वंस किया। तीसरी लहर दूसरी लहरसे भी ऊँची थी, बड़ी विशाल थी, उसने बड़े-बड़े पेड़ोंको भी उखाड़ दिया, छोटे-मोटे पेड़ोंकी तो बात ही क्या? चारों ओर था विध्वंस-ही-विध्वंस, हर ओर था विनाशके ताण्डवका नृत्य। बहुत दिनोंतक

जल बना रहा। यातायात बन्द रहा। इसको सुनकर मेरे मनमें आया कि प्रकृतिके राज्यमें जब ऐसी लहर आ सकती है, जो सब कुछ बहा ले जाय, तब एक दिन महाभाव-सागरकी कोई ऐसी विशाल लहर भी आयेगी, जो तटपर स्थित व्यक्तिको बहा ले जायेगी और उसे सागरमें डुबा देगी, परन्तु इतनी अपेक्षा तो है ही कि सागरके तटपर आ जावो, सागरके तटपर खड़े रहो।

अपना उदाहरण देते हुए बाबा कहने लगे — मैं तो पहले 'शिवोऽहम्', 'शिवोऽहम्' कहता था। इसका कट्टर अनुयायी था, पर परिवर्तन हुआ तो एक क्षणमें सारा बदल गया।

इसपर बड़ा रसमय और बड़ा भावमय विनोद करते हुए श्रीमहाराजजीने कहा — अब तो है 'साहम्', 'साहम्'।

इस विनोदपर बाबा रीझ गये, बह गये तथा वे कहने लगे — इसकी एक लीला है। अभी-अभी आपने जो कहा, उसी भाव-धारासे सम्बन्धित है। इस लीलामें श्रीराधा एवं श्रीकृष्णकी भावाभिव्यक्ति है। श्रीराधाजी कहती हैं 'श्रीकृष्णोऽहम्', 'सोऽहम्' तथा श्रीकृष्ण कहते हैं 'राधाहम्', 'साहम्'। प्रियतम श्रीकृष्ण प्राणेश्वरी श्रीराधाका रसमन्त्रोपचारोंसे सरस पूजन करनेके पूर्व उनके चिन्मय स्वरूपका स्मरण करते हुए कहते हैं —

अलक-दृगञ्चल-ललितं, रंग-तरंग-सलिलितम्।
संविद्-गगन-समुदितं, भज मुख-विधुमकलुषितम्।।

इसी प्रकार प्रियतमा श्रीराधा प्राणवल्लभ श्रीकृष्णका रस-मन्त्रोपचारसे सरस पूजन करनेके पूर्व उनके चिन्मय स्वरूपका स्मरण करके कहती हैं —

नील-सरोरुह-वरणं, नियुत-रमामति-हरणम्।
स्मर-विरहोदधि-तरणं, मुखमर्बुद-रति-शरणम्।।

पारस्परिक रस पूजनका परिणाम यह होता है कि पारस्परिक स्वरूपका परिवर्तन हो जाता है और श्रीराधाजी कहती है 'श्रीकृष्णोऽहम्' 'श्रीकृष्णोऽहम्' तथा श्रीकृष्ण कहते है 'राधाऽहम्' 'राधाऽहम्'। इस रस-पूजनके रस-मन्त्रोंकी उपलब्धि मुझे किसी अचिन्त्य एवं अलौकिक विधिसे हुई है, जिसे अव्यक्त रहने देनेमें ही मंगल है।

श्रीमहाराजजीने तो 'साहम्' कहकर मात्र भावपूर्ण विनोद किया था, परन्तु इस विनोदके निमित्तसे एक महान तथ्य प्रकाशित हो उठा। इस वर्णनको सुनकर महाराजजीका अन्तर आह्लादसे आप्लावित हो उठा।

प्रियतम से प्रेम-कलह

एक बार बाबाका प्रियतमसे प्रेम-कलह भी हुआ। यह प्रेम-कलह हुआ पूतना और कैकेयीको लेकर। पूतना और कैकेयी, दोनों सगी माँ नहीं थीं, एक ने मातृत्वका स्वांग रचा था और एक परिस्थितिसे सौतेली माँ थी, पर दोनों हैं मातृ-स्थानीया। आँचलको और आँचलके दूधको, चाहे वह आँचल किसीका भी हो और चाहे वह दूध कैसा भी हो, उसको सदा-सदा प्रणाम करनेवाले बाबाने प्रियतम श्रीकृष्णको उपालम्भ दिया – यह तुमने कौन-सा उत्तम कार्य किया कि जो माँ बनकर आयी थी, उस पूतनाके प्राण ले लिये? मान लिया कि वह कपट-माँ थी और उसने मातृत्वका स्वांग रचा था, पर इतना तो सत्य ही है कि उसने मातृ-भावसे भावित होकर तुम्हारे मुखमें स्तन दिया था, फिर उस माँका प्राणहरण कर लेना क्या श्रेष्ठ कार्य है?

प्रियतम श्रीकृष्णने पूछा – मुझे क्या करना उचित था?

बाबाने कहा – ज्यों ही पूतनाने शिशुको गोदमें लिया, शिशुके स्पर्श मात्रसे उसमें दिव्य भावका संचार हो जाना चाहिये था। स्पर्श मात्रसे वह उन्मादिनी बन जाती और उन्मादिनी पूतनाको स्तन-पान करानेकी स्मृति ही नहीं रहती। वह आजीवन उन्मादिनी ही रहती और मधुपुरीमें कंसके पास यही समाचार पहुँचता कि जो पूतना बाल-हत्याके लिये गयी थी, वह तो उन्मादिनी हो गयी है। यह तो तुम्हारे स्पर्शका प्रभाव होना ही चाहिये था।

प्रियतम श्रीकृष्णने कहा – प्राणेश्वरी! किसी कल्पमें ऐसी लीला भी हो जायेगी।

फिर बाबाने कैकेयीके बारेमें कहा – माँ कैकेयीने तो तुमको अपने पुत्र भरतसे भी अधिक प्यार किया। कैकेयीका रामके प्रति वात्सल्य विश्वविख्यात है। कैकेयीके रामानुरागको देखकर माँ कौशल्या भी विस्मित होती थी और कैकेयीके कारण रामकी ओरसे निश्चिन्त थी। जो माँ कैकेयी ऐसी महावात्सल्यमयी थी, उस उत्सर्गमूर्तिके मुखपर ऐसी कालिख लगा दी कि जन्म-जन्मके लिये, युग-युगके लिये वह कलंकित हो गयी। वह किसीको मुख दिखलाने लायक नहीं रही। विश्वकी आँखोंसे वह सदाके लिये ऐसी गिर गयी कि कोई भी अपनी बेटीका नाम कैकेयी

नहीं रखेगा। जिसने तुमको अपने प्राणोंका निर्मलतम प्यार दिया, उसीको मलिनताकी मूर्ति और कालुष्यकी कोठरीके रूपमें अपकीर्तित करवा दिया। यह क्या अनुमोदनीय है?

इसपर प्रियतम श्रीकृष्ण बोले – सारा संसार यशके लिये मरता है, पर माँ कैकेयीकी बात तो सर्वथा निरुपम है। माँ कैकेयीका वात्सल्य इतना महान है कि अपने वात्सल्यास्पदके मनकी बातको रखनेके लिये उसने अपने यशकी भी बलि चढ़ा दी। संसार उसकी सराहना करता, तभी वह महान होती क्या? संसारके साधारण प्राणी भले उसे न जान पायें और जानकर भी भले उसे न समझ पायें, पर वह तो स्वतः ही स्वयंकी महिमासे सदाके लिये महिमान्वित है। अपने प्रियका प्रिय कार्य करनेके लिये अपने यशका ईमानदारी पूर्वक पूर्ण त्याग किस प्रकार किया जा सकता है, इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण माँ कैकेयी है। माँ कैकेयीके उत्सर्गकी यह गरिमा सर्वथा अनिर्वचनीय, सर्वथा कल्पनातीत है।

प्रियतम श्रीकृष्णकी बातको सुनकर बाबाको चुप हो जाना पड़ा। बाबाने मनसे स्वीकार कर लिया कि प्रियतम श्रीकृष्ण उचित कह रहे हैं।

* * *

इसी काष्ठ मौनकी अवधिमें कीर-लीलाके दर्शन हुए। कीर-लीलामें अन्तरके अनवरत आँसुओंकी आह है। उधर प्रियतम श्रीकृष्ण मथुरासे द्वारका चले गये और इधर व्रजमें वृषभानुनन्दिनी श्रीराधा अत्यधिक विरह व्यथिता हैं। श्रीप्रियाकी विरह-व्यथा द्वारका स्थित प्रियतम श्रीकृष्णके हृदयमें प्रतिध्वनित हो उठती है और वे अपना प्रीति-संदेश निजी कीरके द्वारा व्रज भेजते हैं। कीरके अतिरिक्त वहाँ अन्य कोई भी ऐसा नहीं, जो मर्मकी बात वहाँतक पहुँचा दे। कीरके लिये अपने जीवनेश्वरका वियोग एक क्षणके लिये भी सम्भव नहीं। क्या व्रज, क्या मथुरा और क्या द्वारका, वह सदैव साथ-साथ रहा है, पर अब अपने जीवनसर्वस्वकी आज्ञाका अनादर भी तो सम्भव नहीं। अपने जीवनधनसे वियुक्त होते ही वह अपने स्थूल शरीरका परित्याग कर देता है और अपने स्वामीकी आज्ञाका पालन करनेके लिये सूक्ष्म शरीरसे व्रज आता है। वृषभानुनन्दिनी श्रीराधा अपने प्राणप्रियतमके नित्य सेवक-सहचर कीरको पहचान लेती हैं

और उसके सूक्ष्म शरीरके रहस्यको जानकर अत्यधिक व्यथित हो उठती हैं।

'राधा संदेश' और 'चातक संदेश'की भाँति बाबा जब 'कीर संदेश' लिखनेकी बात अपने मनमें सोचने लगे तो प्राणप्रियतम श्रीकृष्णने थोड़ा अंकुश लगा दिया, इसीलिये कि उन गम्भीर एवं अन्तरंग भावोंकी निर्मलताको ये जागतिक लोग हृदयंगम नहीं कर पायेंगे। इस संकेतके अनुसार कीर लीलाके अनेक प्रसंग संक्षिप्त कर दिये गये।

* * * * *

लोकोत्तर भावपूर्ण प्रसंग

सन् १९५८ के अप्रैल मासमें बाबूजीको पूज्य श्रीसेठजीके आग्रहपर रतनगढ़से गोरखपुर आ जाना पड़ा। इन दिनों बाबाकी अन्तर्मुखता अपनी पराकाष्ठापर थी। बाबाके एकान्तमें किसी प्रकारकी बाधा उपस्थित न हो, एतदर्थ बाबूजीने बाबाकी कुटियाके चारों ओर ईंटकी दीवालका एक घेरा बनवा दिया। यह घेरा भूमिसे लगभग सात फीट ऊँचा होना चाहिये। इस बाड़ेके बन जानेसे व्यवधानकी सम्भावना अत्यधिक न्यून हो गयी। बाबाकी जैसी भावमयी स्थिति चल रही थी, उसको देखते हुए बाड़ेका निर्माण आवश्यक था। केवल भगतजी और रामसनेहीजी बाड़ेके भीतर जाते थे, पर वे जाते थे समय-समयकी सेवाको सम्पन्न करनेके लिये। बाड़ेके भीतर बाबूजी, माँजी तथा बाईके अतिरिक्त अन्य कोई जा ही नहीं सकता था। केवल वही जा सकता था, जिसे बाबूजी अपने साथ लेकर जायें बाबाका दर्शन करानेके लिये। बाई दोपहरके समय जल पिलाने जाया करती थी और सूर्यास्तके समय माँ भिक्षा कराने जाया करती थीं। बाबूजी भी बाबाके पास जाया करते थे, परंतु बाबूजी बाबाकी ही रुचिका आदर किया करते थे। बाबूजीके द्वारा यह प्रयास कभी नहीं हुआ कि बाबा मुझसे बात करें। बाबा शौच जानेके लिये बाड़ेसे बाहर निकलते थे, पर उनकी दृष्टि भूमिपर लगी रहती थी। बाबाके बाड़ेके पास ही श्रीमोतीजी महाराजकी एक कुटिया थी और कुटियाके सामने एक टिन-शेड था। इस छोटेसे टिन-शेडमें अनेक लोग बैठे रहते थे इस प्रतीक्षामें कि कब बाबा शौचालयके लिये बाड़ेसे बाहर निकलें और कब उनका पावन दर्शन मिले। प्रतीक्षामें खड़े लोगोंकी ओर बाबाकी दृष्टि जाती ही नहीं थी। बाबा कुटियाके बाड़ेसे बाहर

निकलकर सीधे शौचालय चले जाते थे। उन्हें भला क्या पता कि कितने लोग खड़े हैं, वे कौन-कौन हैं और क्यों खड़े हैं।

उन अन्तरंग लीलाओंका जो दर्शन कर रहा हो और उन लीलाओंमें जो सम्मिलित हो, उसे अवकाश कहाँ है इस प्रापञ्चिक धरातलकी ओर दृष्टि उठानेके लिये। निकुञ्जकी अन्तरंग लीलाओंमें मात्र श्रीप्रिया-प्रियतम हैं और वहाँ हैं रसिक युगलकी सतत सेवामें संलग्न सखियाँ-मञ्जरियाँ। कुञ्ज-निकुञ्जकी दिव्य लीला और सखियों-मञ्जरियोंकी दिव्य संनिधिकी सरसतामें सदा निमग्न रहनेके कारण बाबाको पुरुष मात्रका दर्शन बड़ा विचित्र लगा करता था। शौचालय जाते समय यदि अचानक कभी दृष्टि ऊपर उठ गयी और यदि संयोगसे कभी कोई मूँछ-दाढ़ी वाला पुरुष दिखलायी पड़ जाता था तो बाबा मन-ही-मन सोचा करते – मैं कहाँ हूँ? मुझे यह सब क्या दिखलायी दे रहा है? ये पुरुष कहाँसे आ गये? यह कौन-सा देश है?

हमारे प्रापञ्चिक जगतके पुरुषोंकी आकृति-प्रकृति-परिधान बाबाको बड़े विचित्र लगा करते थे। प्रियतमके सखाओंके दर्शन बाबाको यमुना-तटपर, गिरिराज-परिसरमें, वन-उपवनमें होते थे, पर वे तो बड़े सुन्दर वस्त्र धारण करते हैं, उनकी मुखाकृति बड़ी सौम्य होती है, ऐसे सुन्दर वस्त्र और सौम्य आकृतिके स्थानपर अन्यका दर्शन हो तो बाबाको अटपटा लगना स्वाभाविक ही है।

एक बार बाबा अपनी कुटियाके बाड़ेके भीतर खुले स्थानपर विराज रहे थे। आकाशमें बादल घिर आये और वर्षा आरम्भ हो गयी। कब नभ मेघाच्छन्न हुआ और कब वे मेघ बरसने लगे, इसकी जानकारी भी बाबाको नहीं हुई। भावोंकी लहरोंपर लहरानेसे उत्पन्न जो मस्ती थी, उस तन्मयतामें शरीरकी सुधि भला कहाँ? श्रीप्रिया-प्रियतमके और सखियों-मञ्जरियोंके 'अवलोकनि, बोलनि, मिलनि, प्रीति, परस्पर हास' में सर्वथा निमग्न मन तो बाह्य जगतको छोड़ चुका था।

* * *

एक बार बाबा बाबूजीके साथ ट्रेनमें यात्रा कर रहे थे। बाबा बर्थपर लेटे अथवा बैठे हुए थे। बाबूजीके मनमें आया कि बाबाको जल पीनेके

बारेमें पूछना चाहिये। बाबाके पास जाकर बाबूजीने कहा – ऐ बाबा! ऐ बाबा! ऐ बाबा! आप जल पी लें।

काफी देर बाद बाबाने बहिर्मुख होकर बाबूजीसे कुछ दृष्टि मिलायी। नेत्र आधे खुले थे, दृष्टिमें शून्यता थी, मुखकी रेखाएँ अन्य-मनस्कता व्यक्त कर रही थीं। बाबाने गर्दनको तनिक-सा हिलाकर संकेत कर दिया कि जलकी इच्छा नहीं है। बाबाका संसार ही दूसरा था।

* * *

ट्रेनकी एक और घटना कृष्णजीने बतलायी –

बाबा और बाबूजी प्रथम श्रेणीके डिब्बेमें यात्रा कर रहे थे। बाबा ऊपरी बर्थपर सोये हुए थे। बाबाको लघुशंकाका वेग हुआ। वेग इतना तीव्र था कि वस्त्रोंके खराब हो जानेकी आशंका थी। बाबा ऊपरी बर्थसे उतरकर नीचे आना चाहते थे, परंतु गम्भीर अन्तर्मुखताके कारण उनको न सूझ पड़ रहा था और न समझमें आ रहा था कि नीचे कैसे उतरा जाय। ज्यों-ज्यों क्षण व्यतीत हो रहे थे, त्यों-त्यों उलझन बढ़ती चली जा रही थी। एक ओर वेगकी तीव्रता और दूसरी ओर समझकी अस्तव्यस्तता, इस उलझनमें पड़े बाबा किंकर्तव्य-विमूढ़ हो रहे थे। कृष्णजी भी उसी डिब्बेमें थे। किसी अचिन्त्य प्रेरणासे बाबाको सँभालनेकी बात उनके मनमें उभरी। वे नीचे बैठे थे और उठकर तुरन्त खड़े हो गये। कृष्णजीने कहा – बाबा! क्या बात है? आपको लघुशंकाके लिये जाना है क्या?

बाबा तो मौन थे, पर कृष्णजीने अनुमान लगा लिया और उन्होंने बाबासे पुनः कहा – आप इस ओरसे और इस प्रकारसे उतर आइये।

कृष्णजीके खड़े हो जानेसे सारी बात बन गयी।

* * *

एक बार बाबा और बाबूजी स्वर्गाश्रम गये हुए थे। ग्रीष्म ऋतु होनेके कारण गर्मी खूब पड़ रही थी। बाबा अपनी कुटियामें विराज रहे थे और निमग्न थे अपनी मस्तीमें। जगतका कुछ भी भान नहीं था और भावधारामें बहते हुए कुछ गुनगुना रहे थे। बाबाने प्रातःकालसे जल नहीं पीया था, अतः जल पिलानेके लिये माँ गयी। माँने जाकर कुटियाका

दरवाजा खटखटाया तथा पुकारा भी, पर भीतरसे कोई प्रत्युत्तर नहीं मिला। बाबा जागतिक धरातलपर होते तो उत्तर देते। उन्हें अपने शरीरकी ही स्मृति जब नहीं थी, तब माँके आगमनका भान कैसे हो पाता! माँने कुछ देरतक प्रतीक्षा की, पर जब कुटियाका द्वार नहीं खुला तो माँने मनमें यही सोचा – अभी बाबा अपनी मस्तीमें हैं। व्यवधान डालना ठीक नहीं। थोड़ी देर बादमें आकर जल पिला दूँगी।

माँ वापस आयी। वह चली तो आयी, पर मनमें रह-रह करके याद उभरती रहती थी कि बाबाने जल नहीं पीया है। थोड़ी देर बाद माँ फिर गयी और फिर उनको असफल होकर वापस लौट आना पड़ा। जब माँको तीसरी और चौथी बार भी वापस लौट आना पड़ा, तब उनको विशेष चिन्ता हुई और उन्होंने वस्तुस्थितिकी सूचना बाबूजीको दी। बाबूजी तत्काल बाबाकी कुटियाके पास आये। उन्होंने आते ही न द्वार खटखटाया और न पुकारा, अपितु द्वारके फाटकके पास कान लगाकर खड़े हो गये। वे बहुत देरतक खड़े रहे और खड़े-खड़े गुनगुनाहटकी स्वरलहरीको सुनते रहे। इसके बाद बाबूजीने स्वयं ही कुटियाका फाटक खोला और कुटियाके भीतर गये। वे भीतर गये हृदयकी सरसता और नेत्रोंकी सजलताको लिये-लिये। उस स्वर-लहरीको सुनकर बाबूजीका मन भी भाव-धारामें बहने लगा था।

बाबूजी बाबाके पास आये और अपनी दोनों हथेलीको आबद्ध करके और आबद्ध हथेलीको बाबाकी ग्रीवापर झुला करके बड़ी प्यार भरी मीठी-मीठी वाणीमें कहने लगे – बाबा! थोड़ा जल पी लीजिये।

और फिर बाबाको बाबूजीने जल पिलाया। बाबाके जल पी लेनेसे माँको बड़ा संतोष हुआ।

* * *

बाबाके दर्शन हेतु एवं उनको प्रणाम करनेके लिये व्यक्ति-व्यक्ति उत्सुक रहा करता था। काष्ठ मौन लेनेके बाद दो-तीन सालतक तो ऐसी गम्भीर अन्तर्मुखता थी कि बाबूजी किसीको भी बाबाके पास नहीं ले जाते थे। तब श्रीबनारसी नाई मासमें एक बार बाबाकी कुटियाके भीतर जाया करता था उनका केश-मुण्डन करनेके लिये। जब वह शीशके सारे केशोंको उतारकर कुटियाके बाहर आता था, तब न जाने कितने बड़े-बड़े लोग

श्रीबनारसी नाईके चरणोंपर मस्तक रखकर प्रणाम किया करते थे और मन-ही-मन कहा करते थे कि यह कितना सौभाग्यशाली है, जो महाभाव-निमग्न बाबाका स्पर्श करके आ रहा है।

* * *

स्थान जितना जन-शून्य और वायुमण्डल जितना रव-शून्य रहेगा, बाबाके लिये उतनी ही अधिक अनुकूलता रहेगी, अतः बाबूजीने कह रखा था कि कुटियाके पास न कोई जाये और न कोई हल्ला करे। इस प्रकारका स्थायी निर्देश होनेके कारण कुटियाके चारों ओरका वातावरण बड़ा शान्त रहा करता था।

एक बारकी बात है, श्रीठाकुरजी बाबाकी कुटियाके पासवाली पगडंडीसे होते हुए अपनी कुटियापर जा रहे थे। उन दिनों ठाकुरजी जिस कुटियामें ठहरा करते थे, वह बाबाकी कुटियाके पीछेकी ओर बनी हुई थी। वे पगडंडीपर चलते-चलते स्वामी श्रीहरिदासजी महाराजका एक पद अपनी मस्तीमें गाने लगे। वह पद है –

तू रिस छाड़ि री राधे राधे।
ज्यौं ज्यौं तोकों गहरु त्यौं त्यौं मोकों बिथा री साधे साधे।।
प्राननि कों पोषत हैं री तेरे बचन सुनियत आधे आधे।
श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा तेरी प्रीति बाँधे बाँधे।।

ठाकुरजी मात्र गुनगुना नहीं रहे थे, अपितु उच्च स्वरसे गा रहे थे। पद गाते-गाते अपनी कुटियापर पहुँचे। पहुँचकर भी पदका गायन होता रहा। अब बैठकर अपनी मस्तीमें गाने लगे। नीरव और एकान्त वातावरण होनेसे वे और भी उच्च स्वरसे गाने लगे। ठाकुरजी अपने आपको भूल गये। स्वरकी आलापचारीमें तथा गायनके आरोहावरोहमें ठाकुरजीको समयका ज्ञान नहीं रहा। वे इस पदको लगभग डेढ़-दो घंटे तक गाते रहे।

इसी बीच बाबूजी बाबाके पास आये। मध्याह्नका समय था। ऐसा लगता है कि आज किसी कारणसे जल पिलानेके लिये बाई नहीं आयी, अतः बाबूजी आये। बाबूजीने बाड़ेका कपाट धीरेसे खोला। खोलते ही जो दृश्य देखा, उससे बाबूजी तो अवाक् रह गये। बाबाकी कुटियाके सामने बाड़ेके भीतर लीचीका एक पेड़ है। पेड़की एक डालको दोनों हाथसे पकड़े

हुए बाबा खड़े हैं, कुछ लटकते हुए-से खड़े हैं और खड़े-खड़े अपनी मस्तीमें झूम रहे हैं। यों कह लीजिये कि वे डालको पकड़े-पकड़े झूल रहे हैं। बाड़ेके भीतर आ करके और कपाटको बन्द करके बाबूजी चुपचाप खड़े हो गये और खड़े-खड़े देरतक बाबाकी मस्तीभरी स्थिति देखते रहे। बाबाको पता नहीं चला कि बाबूजी बाड़ेके भीतर आ गये हैं और उनको देख रहे हैं। बाबूजीको भी खड़े-खड़े बहुत देर हो गयी। फिर बाबूजीने बाबाको सम्बोधित करके पुकारा। बाबूजीके स्वरको सुनते ही बाबाने मुड़कर देखा और धम्मसे वहीं भूमिपर बैठ गये। स्वयं बैठ गये और वहींपर बाबूजीको भी बैठा लिया तथा कहने लगे – पता नहीं, यह बात कैसे बन गयी कि आज यह ठाकुर उसी भावका पद गाने लग गया, जिसमें मैं बह रहा था। मेरा मन मानकी भाव-धारामें डूबा हुआ था। नित्य निकुञ्जेश्वरी श्रीराधाकिशोरीके मानके विमोचनके लिये नित्यनिकुञ्जेश्वर श्रीकृष्ण जैसा अनुनय और मनुहार करते हैं, उसी भावका पद यह ठाकुर गाने लगा। इस ठाकुरको भला क्या पता कि मेरी भावदशा क्या है, पर इसने मेरी मनकी स्थितिके अनुकूल पद गाया। आज इसके गायनसे बड़ा सुख मिला।

इस विवरणको सुनकर बाबूजीको भी बड़ा सुख मिला। बाबूजीने बाबाको जल पिलाया ही, उन एकान्त क्षणोंमें मानकी चर्चा भी बहुत देरतक चलती रही।

* * *

एक बार बाबा अपने बाड़ेके भीतर इतने अधिक भावाविष्ट हो उठे कि केवल एक शब्द 'तुम' को बार-बार बहुत देरतक गाते रहे। 'तुम-तुम-तुम-तुम-तुम-तुम-तुम-तुम' का अनवरत गायन करना और इसीके साथ बाड़ेके उस नितान्त एकान्तमें उन्मुक्त भावसे नृत्य करना, बाबाकी यह मधुर लीला बहुत देरतक चलती रही। इस नितान्त एकान्तमें न कोई वहाँ देखनेवाला था और न बाबाके भीतर दिखावेकी कोई स्फुरणा थी। यह भावोच्छलन तो हृष्ट लीलाका एक सहज परिणाम था। वह लीला थी श्रीप्रिया-प्रियतमके एकान्त झूलनकी। कदम्बके वृक्षपर झूला पड़ा हुआ है और श्रीप्रिया-प्रियतम झूल रहे हैं। झूलते-झूलते श्रीप्रियाजीको कदम्ब वृक्षके पत्ते-पत्तेमें ऐसा दिखलायी देने लगा कि श्रीप्रिया-प्रियतम झूल रहे हैं। इस

छविको देखकर श्रीप्रियाजी भ्रमित हो उठीं। वे सोचने लगीं कि हम सत्य हैं अथवा पात-पातमें दिखलायी देनेवाले श्रीप्रिया-प्रियतम सत्य हैं। श्रीप्रियाजी इस भ्रमसे अत्यधिक अभिभूत हो उठीं। उसी समय श्रीप्रिया-प्रियतमके चरण-युगलसे शुक और सारिकाका आविर्भाव होता है और वे गा-गा करके बतलाने लगते हैं और सत्यकी ओर संकेत करने लगते हैं कि 'तुम-तुम-तुम-तुम'। शुक-सारिकाके गायनको सुनकर बाबा अपनी चौकीके बिस्तरपरसे नीचे उतरकर स्वयं गाने लगे और नृत्य करने लगे।

जिस समय बाबा हमलोगोंके सामने इस लीलाका वर्णन कर रहे थे, वे वर्णन करते-करते 'तुम-तुम-तुम-तुम'का गायन करने लगे। कभी जल्दी-जल्दी बोलकर, कभी धीरे-धीरे उच्चारण कर और कभी मीठे-मीठे गा कर बाबाने उस निकुञ्ज लीलाकी जो एक मधुर झलक दिखलायी, वह बड़ी ही मनभावनी लग रही थी।

जिस प्रकार बाबा बाड़ेके भीतर एक बार 'तुम-तुम' बहुत देरतक गाते रहे, इसी प्रकार एक बार 'निया-कप्पा-पिया-कप्पा' गाते रहे। 'निया-कप्पा' माने नीला कपड़ा और 'पिया कप्पा' माने पीला कपड़ा। श्रीप्रिया-प्रियतमके नीलाम्बर और पीताम्बरकी मनोहर छविसे मन इतना अधिक अभिभूत हो उठा कि बाबा उन वस्त्रोंका ही गीत गाने लगे। यह स्वाभाविक ही है। वे वस्त्र भी उस चिन्मय राज्यकी वस्तु होनेके कारण चिन्मय और दिव्य हैं। थोड़ी देरके लिये नहीं, यह गायन कई घंटेतक चलता रहा। बाबा अपने आसनपर कभी बैठ जाते, कभी लेट जाते और कभी खड़े हो जाते। बाबाकी मस्तीकी सीमा नहीं थी। वह झूम अपने ही ढंगकी थी। कोई देखता तो यही कहता कि क्या यह व्यक्ति पागल है? वास्तविकता यह है कि जगतके साधारण व्यक्तिके लिये समझना तो दूर रहा, वे कल्पना भी नहीं कर सकते कि महाभावका सागर जब लहराने लगता है, तब उसकी उत्ताल तरंगोंका स्वरूप क्या होता है और उन लहरोंपर नृत्य करनेवालेका जीवन क्या-से-क्या हो जाया करता है।

* * * * *

काष्ठ-मौनावधिमें गम्भीर अन्तर्मुखता

बाबाको भिक्षा करानेके लिये माँ जाया करती थी। भिक्षा करनेके लिये माँने पत्तल परोस दी है, पर पत्तलकी वस्तुओंको बाबाकी वृत्ति ग्रहण नहीं कर पा रही है। माँको भिक्षाके समय अनेक बार बतलाना पड़ता था कि यह रोटी है, यह भात है, यह दाल है, यह शाक है। एक बार भिक्षा कराते समय माँने बाबासे कहा – यह शाक है, इसे आप खा लीजिये।

माँके कहते ही बाबा वह शाक खा गये। सारा-का-सारा शाक खा गये। भिक्षा हो चुकनेके बाद जब अन्य लोगोंने वह शाक खाया तो वह खाया नहीं जा सका। उस शाकमें मिर्च बहुत ज्यादा थी। मिर्चकी भीषणताको देखकर चकित स्वरमें माँ कहने लगी – हे राम! बाबाने यह शाक कैसे खाया होगा? उनको तो तनिक-सी भी मिर्च सह्य नहीं। इस शाकको खाकर उन्हें तो बड़ा कष्ट हुआ होगा।

वास्तविकता तो यह है कि बाबा कष्टानुभूतिके धरातलसे बहुत दूर थे। 'बिनु मन तन दुख सुख सुधि केही'। भावराज्यमें प्रवेश करनेके बाद बाबा पाञ्चभौतिक आवरण (अर्थात् शरीर) से इतना अधिक अतीत हो गये थे कि भीषण मिर्चकी तिक्तताकी अनुभूति भी उस भाव-निमग्नताकी स्थितिको प्रभावित नहीं कर सकी। खट्टा-मीठा-तीखा-तीताकी अनुभूति और स्मृति तभीतक है, जबतक शरीरसे सम्बद्धता बनी रहती है।

इसी तरह रतनगढ़का एक प्रसंग और है। प्रायः सूर्यास्तके समय बाबाको भिक्षा माँ करवाया करती थी और मध्याह्नके समय जल पिलानेके लिये बाबूजी जाया करते थे। एक बार बाबूजी जल पिलानेके लिये हवेलीके छतवाले कमरेमें गये। इसी एकान्त कमरेमें बाबा रहा करते थे। बाबाको किसी प्रकारका व्यवधान नहीं हो, इसीलिये छतके एकान्त कमरेमें रहनेकी व्यवस्था की गयी थी। बाबूजीने देखा कि बाबा कमरेमें नहीं हैं। बाबूजी सोचने लगे कि क्या बाबा शौचके लिये गये हैं, पर इस समय तो वे प्रायः नहीं जाया करते हैं। उसी समय बाबूजीको दिखलायी दिया कि बाबा छतपर खड़े हैं। उनके शरीरपर मात्र कौपीन है। गर्मीके दिन होनेसे धूप इतनी कड़ी थी कि छतपर पैर रखते ही तलवा जलने लगता था। ऐसी कड़कड़ाती धूपमें तपती छतपर बाबाको खड़े देखकर बाबूजीको बड़ा कष्ट हुआ। बाबा तो एकदम शान्त खड़े

थे। अन्तर्मुख बाबाको शरीरका भान नहीं था और न थी छतके तपनकी अनुभूति। बाबूजीने जाकर बाबाका हाथ पकड़ा और वे उन्हें कमरेमें ले आये। थोड़ा समय बीत जानेपर तथा ऊष्माके शमित हो जानेपर बाबूजीने बाबाको जल पिलाया।

* * *

उन दिनों बाबाकी निजी सेवामें रामसनेहीजी और राधेश्याम भगतजी रहा करते थे। बाबाकी भाव-दशाका वर्णन करते हुए एक बार रामसनेहीजीने बतलाया था – बाबा इतने भाव-निमग्न रहा करते थे कि भिक्षा करते समय भोजनकी सुधि नहीं रहा करती थी। उन्होंने एक कौर मुखमें ले लिया, परंतु कौरको चबाने और निगलनेकी विस्मृति हो गयी। लीलाराज्यमें गहरे चले जाते ही मन तनसे अलग हो गया। अन-मन होते ही शारीरिक क्रियाओंका व्यापार स्वतः कुण्ठित हो गया। बाबाको भिक्षा करानेके लिये माँको बहुत-बहुत देरतक बैठे रहना पड़ता था। थोड़ी-थोड़ी देर बाद ग्रासको उठानेके लिये अथवा चबानेके लिये अथवा निगलनेके लिये याद दिलाना पड़ता था। याद दिलानेपर मन जब कुछ प्रकृत धरातलपर आता था, तब ग्रासका चबाया जाना और निगलना हो पाता था। बाबाके भिक्षा करनेमें प्रायः एक-डेढ़ घंटे लग जाया करते थे। बाबाको प्रायः देह-भान नहीं रहा करता था। काष्ठ मौनके समय बाबा यदि खड़े हैं तो चार-चार घंटेतक लगातार एक स्थानपर खड़े ही रह जाते। वे किस भावधारामें बह रहे हैं, यह तो वे ही जानें, पर देखने वालेके लिये तो वे एक पाषाणस्तम्भके समान दिखलायी देते थे।

काष्ठ मौन व्रत लेनेके बाद डेढ़-दो वर्षतक बाबाकी अन्तर्मुखता अपनी पराकाष्ठापर थी। इस अवधिमें किसीकी ओर दृष्टि उठाकर भी उन्होंने नहीं देखा। जब बाबाको एक स्थानसे दूसरे स्थानपर जाना होता था तो वे बाबूजीके साथ जाया करते थे और जाते समय या तो बाबूजी बाबाका हाथ पकड़े रहते थे अथवा बाबाकी दृष्टि बाबूजीके कुरतेके आँचलपर रहा करती थी। पीठकी ओर लटकते हुए कुरतेके अन्तिम छोरको दृष्टिसे 'पकड़े' हुए बाबा चला करते थे।

संतों और शास्त्रोंका कथन है कि लीलासिन्धुमें नितान्त निमग्नताका यह सहज और स्वाभाविक परिणाम है। जन-साधारणकी भाँति वह न बोलता है, न चलता है और न हिलता है। उसकी शब्दरहितता-गतिरहितता-स्पन्दनरहितता ही परिचायिका बन जाती है अबाध रसास्वादन और अगाध रसावगाहन वाली दिव्य लोकोत्तर स्थितिकी। देवर्षि नारदने कहा है कि 'उसे' जान करके और प्राप्त करके वह

सिद्ध प्रेमी 'न रमते, नोत्साही भवति, मत्तो भवति, स्तब्धो भवति, आत्मारामो भवति' और 'तत्प्राप्य तदेवावलोकयति तदेव चिन्तयति'। वह अनासक्त-अनुत्साही-मत्त-स्तब्ध-आत्माराम प्रेमी उसीका अवलोकन करता है और उसीका चिन्तन करता है। श्रीमद्भागवत महापुराणमें स्पष्ट रूपसे कहा गया है 'विक्रीडतोऽमृताम्भोधौ'। अर्थात् हरिभक्त अमृतके सागरमें क्रीड़ा करता है। प्रेमराज्यकी यह परमावस्था है ही ऐसी, जहाँ रस-सिद्ध-प्रेमी रस-सागरकी लहरोंपर सदा संतरण करता रहता है। अपने अनुभवके आधारपर बाबूजीने भी उस अनिर्वचनीय और अचिन्त्य स्थितिकी ओर संकेत करते हुए कहा है —

अन्तरमें हो रहा खेल अति मधुर विलक्षण।
बाहर कैसे दीखे वह निश्शब्द अलक्षण।
कौन बताये? किसे? वहाँके कैसे अनुभव?
आ न सके पल एक छोड़कर वह रस नित नव॥
बाहर आते समय रोक देती वह लीला।
भीतर ही है रमा रही वह चारु सुशीला॥
उस लीलाका त्याग बड़ा ही कठिन, असम्भव।
इसीलिये बन रहा नहीं बाहर कुछ सम्भव॥
मधुर मनोहर सुधामयी लीला नित होती।
जगी उसमें वृत्ति, बाह्य जगमें वह सोती॥
मन-इन्द्रिय सब अंग बुद्धि उसमें ही तन्मय।
हुए इसीसे बाह्य बुद्धिके कार्य सभी लय॥

सभी बाह्य कार्योंका 'विराम' ही संकेत कर रहा है कि उस लीला-निमग्नके मन-इन्द्रिय-बुद्धि आदि कहाँ तन्मय हो रहे हैं। बाबाकी जगतके प्रति घोर उपरामता और शरीरके प्रति घोर उदासीनता, इस प्रकार मम-परकी नितान्त विस्मृति ही उस अनिर्वचनीय स्थितिकी ओर संकेत कर रही है कि बाबा प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधवके दिव्य महान नामामृत-रूपामृत-प्रेमामृत-लीलामृत-गुणामृत-स्वरूपामृतके रस-सागरमें सतत और सर्वथा निमग्न हैं।

बाबाने इस प्रकारके भाव कई बार व्यक्त किये कि काष्ठ मौनकी अवधिमें कई बार भावोंका प्रवाह इतना तीव्र रहता था कि माथा भन्ना उठता

था। ऐसा लगता था कि माथा फट जायेगा। वह भाव-प्रवाह है चिन्मय राज्यकी वस्तु और उस दिव्य वस्तुके भारको यह शरीर वहन करनेमें असमर्थताका अनुभव करने लगता है। भावोद्वेलनका आधिक्य भी तो शारीरिक रुग्णताका एक कारण है और इससे शरीरमें कई प्रकारके विकार उत्पन्न हो जाते हैं। बाबाके सिरमें कभी-कभी पीड़ा होने लगती थी। जब ऐसी दशा उपस्थित होती और जब स्थिति सहनकी सीमाका अतिक्रमण करने लगती तो बाबा कुटियाके बाहर आकर नभके विस्तारको, वृक्षोंकी हरियालीको, लताओंके पुष्पोंको देखने लगते, जिससे भाव किंचित् शमित हो और इन प्राकृतिक दृश्योंको देखनेका परिणाम अनुकूल होता था। एक दो घंटा व्यतीत होनेके बाद शारीरिक स्थिति कुछ ठीक हो पाती थी।

* * *

एक और प्रसंग ध्यान देने योग्य है। बाबाके काष्ठ मौनके बाद बाबाके अनेक दायित्वोंको बाबूजीने अपने ऊपर ले लिया। पहले जब बाबा सक्रिय थे तो अनेक आत्मीय जनोंके हितका चिन्तन और सम्पादन वे स्वयं ही किया करते थे, किन्तु कठोर मौन व्रतके बाद बाबाकी घोर अन्तर्मुखतासे बाबूजीके उत्तरदायित्वकी परिधि बहुत विस्तृत हो गयी। ठाकुर श्रीघनश्यामजी काफी रुग्ण हो गये थे, अतः ठाकुरजीकी चिकित्सा करानेके लिये बाबूजीने उन्हें वृन्दावनसे रतनगढ़ बुला लिया।

चिकित्सासे ठाकुरजीको क्रमशः स्वास्थ्य लाभ होने लगा। एक दिन ठाकुरजी अपने कमरेमें सारंगी बजाने लगे। वे सारंगीपर पीलू राग बजा रहे थे। इसी समय बाबा अपने कमरेसे निकलकर शौचालय गये। ठाकुरजीका कमरा इतनी दूरीपर था कि वहाँसे सारंगीकी स्वरलहरी बाबाके शौचालयतक भली प्रकार पहुँच रही थी। इधर ठाकुरजी अपनी मस्तीमें बजा रहे थे और उधर बाबा पीलूरागकी लहरीमें मस्त हो रहे थे। बाबाकी एक रचना है, जिसमें वृषभानुनन्दिनी श्रीराधा शुभ्र एवं मृदुल बालुकामय पुलिनपर घुटने टेककर बैठी हुई है और यमुनाजीसे विनम्र प्रार्थना कर रही है – 'मेरे साँवर उतरेंगे पार, कालिन्दी धीरे बहो'। यह पंक्ति पीलू रागमें ही गायी जाती है। पीलू रागकी लहरीमें लहराते हुए लीला-निमग्न बाबाको समय-ज्ञान भूल गया। विमुग्ध बाबा तीन घंटेसे अधिक समयतक शौचालयमें ही रहे।

बाबाको क्या पता कि बाहर क्या हो रहा है? परिचर्या-रत

श्रीरामसनेहीजी और श्रीभगतजी बड़े चिन्तित हो रहे थे कि क्या हो गया? बाबा कभी इतनी देरतक शौचालयमें नहीं रहा करते थे। अधिक-से-अधिक आधा घंटातक, पर आज तो तीन घंटासे भी अधिक समय हो गया। श्रीरामसनेहीजीने जाकर सारी बात बाबूजीको बतलायी। बाबूजी तत्काल शौचालयकी ओर आये। आते ही उनके कानमें सारंगीकी स्वरलहरी पड़ी। बाबूजी तुरंत समझ गये कि सारंगी-वादनके मादक प्रभावके कारण बाबाको स्वयंकी सुधि नहीं है। बाबाको सँभालनेका कार्य तो बादमें होगा, बाबूजी पहले ठाकुरजीके कमरेमें गये। बाबूजीको सामने देखते ही ठाकुरजीने हड़बड़ा करके सारंगीका बजाना बन्द कर दिया और वे हाथ जोड़कर खड़े हो गये। ठाकुरजीके कंधेपर हाथ रखकर बाबूजीने कहा — भइया! बाबाको तन्तु-वाद्य बड़े प्रिय हैं और उनमें भी उन्हें सारंगी तो बहुत अधिक प्रिय है। एक बात और, रागोंमें भी पीलू रागसे बड़ा भावोद्दीपन होता है। सारंगीपर बजाये गये पीलू रागका बाबापर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उनको स्वयंकी स्मृति नहीं रही। बाबाको शौचालय गये साढ़े तीन घंटे हो गये और अभीतक वे बाहर नहीं निकले। तीन घंटेसे उन्हें अपनी सुध-बुध नहीं है।

ठाकुरजी समझ नहीं पा रहे थे कि इसे मैं सारंगी-वादनकी सराहना कहूँ अथवा सारंगी-वादनसे निवारण मानूँ। बाबूजीके मुखसे यह सुनकर ठाकुरजीको संकोच तो हो रहा था, पर साथ ही प्रसन्नता भी। बाबा अपनी भावभरी मस्तीमें हैं, इसे सुनकर प्रसन्नता; किन्तु बाबाको साढ़े तीन घंटे शौचालयमें रहना पड़ा, इससे ठाकुरजीको संकोच भी कम नहीं हुआ। ठाकुरजीके पाससे बाबूजी बाबाके पास गये और उनसे शौचालयसे बाहर आनेके लिये कहा।

* * * * *

'जय जय प्रियतम' काव्य

'जय जय प्रियतम' काव्यकी रचनाकी स्फुरणा सर्वप्रथम व्रज-भूमिमें हुई। नवम्बर १९५६ से अप्रैल १९५८ तक बाबा और बाबूजी रतनगढ़में रहे। इसी १९५८ के जनवरी मासमें बाबा और बाबूजी रतनगढ़से व्रजभूमि गये थे श्रीगिरिराज भगवानकी परिक्रमा लगानेके लिये। साथमें भक्तोंका भी समुदाय था, जो भिन्न-भिन्न स्थानोंसे परिक्रमा हेतु वहाँ आ गया था। सभीके

ठहरनेका प्रबन्ध किया गया था बिड़ला-मन्दिरमें, जो वृन्दावन और मथुराके मध्य स्थित है। इन दिनों बाबाका अति कठोर काष्ठ-मौन-व्रत चल रहा था, अतः इसी बिड़ला-मन्दिरके एक कमरेमें बाबाके नितान्त एकान्त आवासकी व्यवस्था की गयी थी।

एक बार बाबा इस बिड़ला मन्दिरके एक खुले स्थानमें श्रीधाम वृन्दावनकी ओर मुख करके बैठे हुए थे। तभी अचानक नेत्रोंसे अश्रुका प्रवाह बह चला, साधारण नहीं, अनर्गल प्रवाह। कोई हेतु नहीं, फिर भी अनर्गल अश्रु-प्रवाह बाबाके कपोलोंको रह-रह करके संसिक्त कर रहा था। उसी समय बाबाने एक मयूरको नृत्य करते हुए देखा। इससे और अधिक भावोद्दीपन हुआ। फिर भावोंका वेग इतना अधिक बढ़ चला कि समक्ष स्थित वृन्दावन और व्रजभूमिका दिखलायी देना बन्द हो गया। स्थूल वृन्दावन तिरोहित हो गया और बाबाके दृष्टि-पथपर अवतरित हो उठा दिव्य चिन्मय वृन्दावन, केवल दिव्य चिन्मय वृन्दावन ही नहीं, अपितु वहाँकी दिव्य रसीली लीलाकी अद्भुत-अभिनव अवली। तभी लीलाके प्रसंग और भाव, काव्यके छन्दोंमें ढलने लग गये।

इन छन्दोंकी रचनामें कोई क्रम नहीं था, पर उस क्रमबद्धताके अभावोंमेंसे एक अद्भुत भवितव्यकी सम्भावना उभरकर सामने उपस्थित हो गयी। ऐसा लगता है कि इस अद्भुत भवितव्यको बाबाके समक्ष प्रस्तुत करनेके लिये किसी अचिन्त्य विधानसे छन्दोंकी रचनामें क्रमबद्धताका समावेश नहीं हो पाया। इस समय जिस प्रकारसे पंक्तियोंकी रचना हुई, उससे बाबाको अनुमान हो गया कि जिस काव्यकी भविष्यमें रचना होनेवाली है, उसके कुल ग्यारह शतक होंगे। प्रथम शतककी आठ पंक्तियाँ, द्वितीय शतककी चार अथवा आठ पंक्तियाँ, इस प्रकार प्रत्येक शतककी चार अथवा आठ अथवा सोलह पंक्तियोंकी रचना हो गयी। ग्यारह शतकोंकी आरम्भिक पंक्तियोंकी रचना उसी बिड़ला मन्दिरमें तत्काल हो गयी। क्रमकी विशृंखलताने ही संकेत दे दिया कि कुल ग्यारह शतकोंकी रचना होगी।

ज्यों ही महाभाव-भावित बाबाको यह आभास हुआ कि ग्यारह शतकोंवाले किसी भावी काव्यकी रचनाके ये पूर्व-संकेत हैं, त्यों ही उन्होंने प्रियतम श्रीकृष्णसे किंचित् उपालम्भ-मिश्रित स्वरमें कहा – जो अबतक अनेक भक्त कवियों द्वारा लिखा जा चुका है. वही सब मेरे द्वारा पुनः

लिखवानेसे क्या लाभ?

बाबा तो श्रीराधा-भावमें थे। बड़े प्यार भरे शब्दोंमें परम ऐकान्तिक सम्बोधन करते हुए प्रियतम श्रीकृष्णने कहा – प्राणेश्वरि! तुम रचना करो तो सही।

बाबाने पुनः उसी स्वरमें कहा – वह रचना पिष्ट-पेषण मात्र ही तो होगी। मुझसे व्यर्थ श्रम क्यों करवा रहे हो? यदि रचना करवानी ही हो तो कुछ ऐसी करवाओ, जो आजतक हुई ही नहीं हो। वह एक नवीन रचना हो।

अपने अनुरोधमें और अधिक माधुर्य घोलते हुए प्रियतम श्रीकृष्णने कहा – प्राणाधिके! तुम्हारी भावनाके अनुरूप ही रचना होगी।

प्राणाधिक प्रियतम श्रीकृष्णने जब बाबाकी भावनाका अनुमोदन कर दिया, तब और कुछ कहनेके लिये रह ही क्या गया था। बाबाका मन श्रीप्रिया-प्रियतमके लीला-सिन्धुमें निमग्न था ही, तभी मनकी ऊर्मिल भावनाएँ अनायास और अचानक काव्यकी पंक्तियोंके साँचेमें ढलने लग गयीं। इसके पहले बाबाने कभी भी काव्य-रचना नहीं की थी। काव्य-रचनाका प्रयास भी बाबाके द्वारा नहीं हुआ था। बाबाको न कवि कहलानेका चाव था और न काव्य-जगतमें किसी प्रकारकी प्रतिष्ठा पानेकी चाह थी। कविताको और पदको सुननेकी उमंग तो बाबाके मनमें रहा करती थी, पर कविता रचनेकी स्फुरणा उनके मनमें कभी उदित हुई ही नहीं। यह सर्वप्रथम अवसर था, जब बाबाके अन्तस्तलमें काव्य-धारा स्वतः प्रस्फुटित हो पड़ी। कविके हृदयके संगीतको ही कविता कहते हैं। हृदयके कोमल भावोंकी मधुरताका आधिक्य जब सीमाको पार करने लगता है, तब वह आश्रय पाना चाहता है कान्त-कलित पदावलीके लालित्यकी मृदुल परिधिमें। बाबाके अन्तरके भावोंकी वह ऊर्मिलता न जाने कितनी सुन्दर, कितनी मधुर रही होगी कि वह ढलने लग गयी काव्यकी सुन्दर-सुन्दर शब्दावलीमें। लोगोंको भला क्या पता कि बाबाके भीतर-ही-भीतर क्या चल रहा है। कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था कि उन एकान्त क्षणोंमें कविताके धरातलपर भावोंकी ऊर्मिलताके अवतरणका शुभारम्भ हो गया है।

काष्ठमौनकी कठोरताके कारण कागज-कलम माँगा जाना सम्भव नहीं था और जो-जो दिव्य लीलाएँ दृष्टि-पथपर आतीं, उनकी अभिव्यक्तिके

क्रमका शुभारम्भ बिड़ला मन्दिरसे ही हो चुका था, अतः कई वर्षोंतक यह काव्य बाबाकी स्मृतिमें सुरक्षित रहा। जब यह व्रत शिथिल हुआ, तब बाबाने इसे बाई (श्रीसावित्रीबाई फोगला) को लिखवाया। बाबा बोलते जाते थे तथा बाई लिखती जाती थी। इस लेखन-कार्यमें बाईके अतिरिक्त बाबूजीने भी सहयोग दिया। मौनव्रतके शिथिल होनेपर भी काव्य-सृजनमें विराम आया नहीं। अन्य प्रकारके काव्यकी रचनाका क्रम चलता रहा। यह आवश्यक नहीं कि जिस समय काव्य-रचना हो रही हो, उस समय बाई अथवा बाबूजी उपस्थित रहे। अनेकों पंक्तियोंकी रचना हो जाती और जब बाई आती, तब फिर बाबा बाईको लिखनेके लिये कहते। इसमें अनेक बार ऐसा भी हुआ है कि उन विविध काव्योंकी रचित पंक्तियाँ विस्मृत हो जातीं और जो विस्मृत हो गयीं, वे सदाके लिये विलुप्त हो गयीं।

ग्यारह शतकों वाला यह काव्य कहलाया 'जय जय प्रियतम' काव्य। इस काव्यकी प्रत्येक पंक्तिके अन्तमें 'प्रियतम' शब्द आता है और यह 'प्रियतम' शब्द सम्बोधनात्मक शब्द है। प्रत्येक पंक्तिमें वह सम्बोधन इसलिये है कि अपने प्रियतमको सुनाते हुए ही प्रत्येक पंक्तिकी रचना प्राणप्रिया द्वारा हो रही है। यह काव्य आद्यन्त तुकान्त नहीं है। रचनाके प्रवाहमें तुक बैठ गया तो उत्तम, अन्यथा तुक बैठानेका आग्रह मनमें नहीं था। रचित काव्यमें न तो संशोधन करना था और न परिवर्तन। पंक्तियोंमें जो भाव ढल गये और जिस प्रकारसे ढल गये, वही स्वीकार्य था। हाँ, एक स्थानपर एक परिवर्तन बाबाने नहीं किया, अपितु बाबासे प्रियतम श्रीकृष्णने करवाया। जब काव्य-रचना होती थी तो बाबाके सामने उपस्थित रहते थे प्रियतम श्रीकृष्ण। प्रथम शतकके आरम्भमें एक स्थानपर एक पंक्ति आयी है 'गोबर मिट्टीसे यद्यपि थी अवनी लीपी पोती प्रियतम'। पहले 'गोबर' शब्द नहीं था। बाबाने रचना करते समय प्रयोग किया था 'गैरिक' शब्द। प्रियतम श्रीकृष्णने कहा — 'गैरिक' शब्दका प्रयोग मत करो।

प्रियतम श्रीकृष्णका ऐसा संकेत मिलते ही बाबाने शब्दका परिवर्तन कर दिया और 'गैरिक' शब्द के स्थानपर 'गोबर' शब्दका प्रयोग किया।

इसी प्रकार एक बार एक चरणकी पूर्ति स्वयं प्रियतम श्रीकृष्णने की। बाबाके द्वारा छन्दके तीन चरणोंकी रचना हो गयी, पर चौथा चरण उभरकर सामने नहीं आया। जब पर्याप्त विलम्ब होने लगा तो चौथे

चरणको पूर्ण करते हुए प्रियतम श्रीकृष्णने कहा – ''प्राणोंका सौदा होता है क्षणमें कुछ ऐसे ही प्रियतम''। यह चरण-पूर्ति चतुर्थ शतकके छन्द क्रमांक ३२४ में है।

'जय जय प्रियतम' काव्यके चौथे शतककी इस चरण-पूर्तिके सम्बन्धमें एक बार बाबाने बतलाया था – यह पंक्ति कोई साधारण वाक्य नहीं है, अपितु मन्त्र है।

'जय जय प्रियतम' काव्यसे सम्बन्धित अनेक तथ्य प्रकाशित पुस्तककी भूमिकामें उल्लिखित हो चुके हैं। उनकी आवृत्ति करना उचित नहीं। इस काव्यके कुछ छन्द बानगीके रूपमें यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं। प्रियतम श्रीकृष्ण श्रीअक्रूरके साथ मथुरा चले गये। विरह-विकला प्रेम-प्रतिमा वृषभानुनन्दिनीको जीवन नितान्त भार-स्वरूप लगता है। वे स्वयंको श्रीयमुनाजीके शीतल प्रवाहमें विसर्जित कर देना चाहती हैं। आत्म-विसर्जनके पूर्व उनके हृदयस्पर्शी मर्म भरे उद्‌गार हैं –

मस्तकपर वारि बिखेर, अहो! बोली वह सरितासे, प्रियतम!
''री बहिन! आज मैं आयी हूँ तेरे समीप रोने, प्रियतम!
देगी तू मुझे उरस्थलकी किञ्चित् शीतलता क्या? प्रियतम!
जल रहे प्राण-तन हैं मेरे, क्षणभर शीतल ये हों, प्रियतम!
मैंने तेरा अपराध किया, मैं गर्व भरी तब थी, प्रियतम!
साँवरको नित्य साथ पाकर फिरती इठलाती थी, प्रियतम!
अधिकार नील तनपर करके मेरी मति बौरायी, प्रियतम!
कितनी ही बार तुझे पदसे मैंने ठुकराया है, प्रियतम!
नीला श्रीमुख दृगमें रखकर तेरी परवाह न की, प्रियतम!
नीला कर अहो! कण्ठमें था, गिनती न तुझे मैं थी, प्रियतम!
नीले तन-सौरभसे माती आयी न पास तेरे, प्रियतम!
नीले तरुपर समुदित फलका रस पी न मिली तुझसे, प्रियतम!
नीले मुखका मधु रव सुनती, कल-कल न सुना तेरा, प्रियतम!
नीला था अङ्क मिला, तेरी गोदी न सुहाती थी, प्रियतम!
नीले कर सेते थे पदको, सेवा न रुची तेरी, प्रियतम!
नीली वह अलकावलि हरती श्रमकण, भूली तुझको, प्रियतम!

मेरी निधि वह छिन गयी किंतु, हूँ अब भिखारिणी मैं, प्रियतम!
जो सत्य महारानी कल थी इन सब निकुञ्ज वनकी, प्रियतम!
मेरा सब गर्व चूर होकर, हूँ बनी आज दीना, प्रियतम!
सोने अब आयी हूँ तेरी शीतल गोदीमें ही, प्रियतम!

तू मुझे निराश नहीं करना, तू मुझे न ठुकराना, प्रियतम!
मुझसे जो हुआ अनादर है, उसको बिसार देना, प्रियतम!
अपनी अप्रतिम शीलतासे, निस्सीम अनुग्रहसे, प्रियतम!
तू ठौर मुझे देना अपने नीले, शीतल उरमें, प्रियतम!

* * * * *

शिमलापालकी यात्रा

सन् १९६० के मार्च मासमें पूज्य श्रीसेठजी (पूज्य श्रीजयदयालजी गोयन्दका) की आँखोंके मोतियाबिन्दका ऑपरेशन बाँकुड़ामें हुआ। उस अवसरपर पूज्य बाबूजी, पूज्या माँजी और पूज्य बाबा बाँकुड़ा गये थे। परम सम्मान्य श्रीजयदयालजी डालमिया भी साथ हो लिये थे। उनकी आँखका ऑपरेशन करनेवाले डाक्टर साहब भी उसी गाड़ीमें साथ गये थे। ऑपरेशनका कार्य जब भली प्रकारसे पूर्ण हो गया तो कुछ लोगोंके मनमें शिमलापाल चलनेकी बात उभरने लगी और जानेका कार्यक्रम भी बन गया।

यहाँ शिमलापालका थोड़ा परिचय देना आवश्यक लग रहा है। शिमलापाल बाँकुड़े जिलेके भीतरी भागमें एक छोटा-सा ग्राम है, जो बाँकुड़ासे २४ मील दूर पड़ता है। यह वही शिमलापाल ग्राम है, जहाँ अँग्रेजी सरकारने बाबूजीको इक्कीस मासतक नजरबन्द रखा था। बाबूजी योगिराज अरविन्दकी तरह पहले राजनैतिक कार्योंमें भाग लिया करते थे। भारतसे अँग्रेजी राज्यकी सत्ताको उखाड़ फेकनेके लिये बाबूजीका सक्रिय सहयोग क्रान्तिकारियोंको प्राप्त था। क्रान्तिकारियोंने रोड्डा एण्ड कम्पनीसे कारतूस और पिस्तौलकी पेटियाँ, जो जर्मनीसे आयी थीं, उनको गायब कर दिया और उनमेंसे कुछ पेटियाँ बाबूजीने अपने यहाँ छिपाकर रखी थीं। बाबूजी बिना किसी भयके देश-सेवाके कार्यक्रमोंमें भाग लिया करते थे। गुप्त समितिमें भाग लेनेके कारण तथा क्रान्तिकारियोंके मुकादमोंकी पैरवीमें सहयोग देनेके कारण बाबूजीका नाम पुलिसकी डायरीमें नोटकर लिया गया था। पुलिस बाबूजीकी गतिविधिका निरीक्षण करने लगी। किसीका सक्रिय सहयोग

भला कैसे छिपा रह सकता है ? बन्दी होनेके एक मास पूर्व बाबूजीको सूचना मिल गयी थी कि सरकार उन्हें बन्दी बनानेके लिये प्रयत्नशील है। सूचना मिलनेके बाद भी बाबूजी न तो कहीं भागकर छिपे और न अपने कार्यक्रमोंसे विरत हुए। अभी इनका विवाह हुए तीन मास भी नहीं हुए थे कि २० जुलाई १९१६ को अँग्रेजी सरकारने बाबूजीको गिरफ्तार लिया। पहले तो सरकारने कुछ दिन जेलमें रखा, फिर शिमलापाल ग्राममें नजरबन्द कर दिया। इक्कीस मासकी नजरबन्दीके बाद मुक्ति मिली और बाबूजीको सरकारी आदेशके अनुसार बंगाल छोड़ देना पड़ा।

शिमलापाल ग्रामका नाम बाबूजीके जीवनके साथ जुड़ा हुआ है। राजनैतिक जीवन तथा आध्यात्मिक जीवन, दोनोंकी दृष्टिसे शिमलापालका महत्त्व है। राजनैतिक जीवनके बाद आध्यात्मिक जीवनका शुभारम्भ शिमलापालसे ही होता है। इसी शिमलापालकी नजरबन्दीमें बाबूजीने कठोर साधना की और उनकी आरम्भिक साधनाका स्वरूप था नामका जप, ध्यानका अभ्यास और ग्रन्थोंका स्वाध्याय।

बाबूजीकी नजरबन्दीके दिनोंमें शिमलापाल जानेके लिये पक्की सड़क नहीं थी। बैलगाड़ीसे ही यात्रा करनी होती थी। उन दिनों पूज्य श्रीसेठजीको बाबूजीके पास जो डाक चिट्ठी या अन्य आवश्यक सामान भेजना होता था, वह सब बाँकुड़ासे उधर जानेवाली बैलगाड़ीसे वे भेजा करते थे। अब तो सड़क बन गयी है। सभी लोग मोटरसे शिमलापाल गये।

शिमलापाल पहुँचते ही एक बड़ा भावपूर्ण दृश्य देखनेको मिला। आज बाबाका हृदय बड़ा उमड़ रहा था। वहाँ पहुँचते ही बाबा वहाँके चैराहेकी धूलमें लोटने लगे। बाबाका सारा शरीर धूल-धूसरित हो उठा। बाबाके अन्तरका आह्लाद उनके नेत्रोंमें उमड़ रहा था। इसके बाद बाबूजी वहाँकी जिस नदीमें प्रतिदिन स्नान किया करते थे, वहाँ सभीने स्नान किया।

सरकारने बाबूजीके रहनेका प्रबन्ध श्रीअधरचन्द मण्डलके घरपर कर रखा था। बाबूजीने श्रीअधरचन्द्रजीके घरमें ही इक्कीस मास बिताये थे। सब लोग उनके घरपर गये। उस घरकी जिस कोठरीके दीवालपर बाबूजीने 'श्रीनृत्य गोपाल' लिख रखा था, वह इतने वर्षोंके बाद भी उसी प्रकार लिखा हुआ था। बाबूजीने वह 'श्रीनृत्य गोपाल' दिखलाया। नजरबन्दीके मध्यमें सरकारने बाबूजीके पास पत्नीको जाने और रहनेकी अनुमति दे दी थी और वे आकर रही भी थीं। इस यात्रामें पूज्या माँ भी साथ-साथ आयी थी। वे बताने लगी कि यहाँ रसोई बनती थी, यहाँ स्नान होता था और यहाँ विश्राम होता था। यह वर्णन सुनकर बड़ा अच्छा लग

रहा था। पूज्या माँजीने वे सब प्रसंग सुनाये कि कैसे फूलोंके पौधे लगाये तथा कैसे लोगोंकी होमियोपैथिक चिकित्सा की जाती थी और उससे स्थानीय लोगोंको कितना लाभ हुआ। एक गूँगा और बहरा व्यक्ति होमियोपैथिक दवाके लिये आया और जिद्द करके बैठ गया कि वह दवा लिये बिना नही जायेगा। बात टालनेके लिये उसके लक्षण अफीमचीकी तरह देखकर बाबूजीने उसको होमियोपैथिक 'ओपियम' दे दिया। भगवानकी ऐसी कृपा हुई कि उसीसे वह बोलनेमें और सुननेमें सक्षम हो गया। इस घटनासे बाबूजी सभीके लिये बड़े आदरणीय-विश्वसनीय बन गये थे।

शिमलापालमें एक जगह धान सूख रहा था। बाबाने उसको भाड़में भुनवाया। उस धानकी लाईको बाबाने अपनी झोलीमें भरकर ले लिया। जितने लोग साथमें थे, सबको एक-एक दाना प्रसादके रूपमें दिया। जिसका धान था, बाबाने उसे धानके मूल्यसे कई गुना अधिक मूल्य दिलवाया। शिमलापालसे विदा होते समय सभीने उस पवित्र भूमिको बार-बार प्रणाम किया।

* * * * *

षोडश गीत

श्रीराधा-माधवके दिव्य प्रेमके रस-सागरकी सुधामयी लहरोंपर कभी संतरण करना और कभी अतल तलमें डूब जाना, यही बाबूजीके आन्तरिक जीवनका स्वाभाविक स्वरूप बन गया था। स्थिति साधारण हो अथवा असाधारण, श्रीराधा-माधवके लीला-रसका आस्वादन करना, वह भी जगतकी दृष्टिसे स्वयंको बचाते हुए निरन्तर आस्वादन करना, उनके सागरसे गम्भीर व्यक्तित्वका सुगुप्त अंग था। रस-सागरमें लहराते-लहराते जब रसानुभूति प्रगाढ़ हो जाती, तब तो उनके सब लौकिक कार्य-व्यापार हठात् बंद हो जाते और शरीर निस्स्पन्द हो जाता। इस मूर्तिवत् निस्स्पन्दावस्थामें एक मात्र श्वास-प्रश्वासके अतिरिक्त चेतनाके कोई अन्य लक्षण बाहर दिखलायी नहीं देते थे। इस स्थितिमें बाबूजी, केवल थोड़ी देरके लिये नहीं, घंटों-घंटों निश्चल-निश्चेष्ट पड़े रहते थे। अपनी इस गम्भीर भाव-समाधिकी स्थितिको लोगोंसे छिपाये रखनेके लिये बाबूजीने एक अच्छी शब्दावली गढ़ ली थी कि 'माथा खराब' हो गया है। भाव-समाधिकी स्थितिमें श्रीप्रिया-प्रियतमकी उत्तरोत्तर अभिवृद्ध होनेवाली एक-से-एक सुन्दर छवि, एक-से-एक मधुर उद्गार, एक-से-एक ललित लीलाएँ, एक-से-एक

अनुपम दृश्य बाबूजीके समक्ष प्रत्यक्ष होते और उन अनेकानेक दिव्यातिदिव्य प्रसंगोंमेंसे किसी-किसीको बाबूजी स्वान्तः सुखाय शब्द-बद्ध कर लिया करते थे। यह शाब्दिक अभिव्यक्ति कभी गद्यमें और कभी पद्यमें होती थी। अपने इन स्व-रचित पदोंको एक नोटबुकमें बाबूजी लिख लिया करते थे और वे इस नोटबुकको सदा छिपा कर रखते थे। यह नोटबुक एक सुगुप्त मंजूषा थी कतिपय दिव्य-सरस-प्रत्यक्ष प्रसंगोंकी।

सम्भवतः सन् १९६० ई. के श्रीराधाष्टमी-महोत्सवकी बात है। महोत्सवकी विशद तैयारी चल रही थी। प्राकट्य-दिवसके चार-पाँच दिन पहले एकान्तके क्षणोंमें प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधवकी कोई अनूठी लीला बाबूजीके समक्ष आविर्भूत हुई। आत्म-निवेदनके भावपूर्ण दृश्योंका दर्शन एवं रसपूर्ण उद्गारोंका श्रवण तो पहले भी हुआ था, परंतु आजकी झाँकी तो अनिर्वचनीय रूपसे अभूतपूर्व थी। आज एक दूसरेके प्रति पूर्ण आत्म-निवेदन करते हुए उन महाभाव-रसराज श्रीराधा-माधवके पारस्परिक संलापकी वह झाँकी सर्वथा लोकोत्तर तथा सीमातीत मधुर थी। उस असाधारण माधुर्यके रससे बाबूजीका तन-मन अत्यन्त सराबोर था, अत्यधिक विभोर था। उस असाधारण स्थितिके किंचित् शमित होनेपर बाबूजीने अपनी नोटबुक उठायी तथा लिखे गये पदोंके संग्रहमेंसे उन्होंने सोलह पद अपनी रसानुभूतिके अनुरूप छाँट लिये, आठ पद प्रेम-प्रतिमा प्रिया श्रीराधाके भावोद्गारोंके और आठ पद प्रेम-मूर्ति प्रियतम श्रीकृष्णके भावोद्गारोंके। छाँटे हुए सोलह पदोंका क्रम उस दृष्ट झाँकीके अनुसार इस रीतिसे सजाया गया कि सर्वप्रथम पदमें प्रियतम श्रीकृष्ण अपने प्रेमोद्गार प्राणाराध्या श्रीराधाके प्रति निवेदित करते हैं और तदुपरान्त द्वितीय पदमें प्रियतमा श्रीराधा अपने प्रेमोद्गार प्राणाराध्य श्रीकृष्णके प्रति। प्राण-प्रिया श्रीराधाके प्रेमोद्गारको सुनकर प्राण-प्रियतम श्रीकृष्ण तृतीय पदमें पुनः प्रेमोद्गार व्यक्त करते हैं और चतुर्थ पदमें पुनः प्रेम-प्रतिमा श्रीराधा आत्म-निवेदन करती हैं। इस क्रमसे दोनों परम प्रेमी-प्रेमास्पद एक दूसरेके प्रति अपने-अपने प्रेमोद्गारोंका पारस्परिक निवेदन करते हैं। इन सोलह पदोंमें प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधवका पारस्परिक वार्तालाप है, जिसमें काम-गन्ध-शून्य तत्सुखमयी प्रीतिके अनूठे रूपका दर्शन मिलता है। निवेदित प्रेमोद्गारोंमें भावका स्तर क्रमशः गहनसे गहनतर, गहनतरसे और अधिक गहनतर होता चला जाता है। अधिकाधिक गहनतर होते-होते अन्तिम सोलहवें पदमें परमोज्ज्वल प्रीतिका ऐसा चिन्मय स्वरूप उद्भासित हो

उठता है, जो 'महाभाव'की स्थितिका दुर्लभ उदाहरण है।

उस श्रीराधाष्टमी-महोत्सवके अवसरपर वृन्दावनधामसे कई भक्त गायक भी पधारे थे। बाबूजीके निर्देशानुसार एक विशिष्ट कार्यक्रम आयोजित हुआ। प्रेम-प्रतिमा श्रीराधाका एक अति विशाल चित्र एक स्थानपर खड़ा कर दिया गया तथा कुछ हटकर दूसरे स्थानपर खड़ा कर दिया गया प्रेम-मूर्ति श्रीकृष्णका भी एक वैसा ही अति विशाल चित्र। एक गायकको नन्दनन्दन श्रीकृष्णके चित्रके पीछे तथा एक गायकको वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाके चित्रके पीछे बैठा दिया गया। कार्यक्रमके आरम्भ होनेपर सोलह पदोंके बंधानके अनुसार पहले श्रीकृष्ण-चित्रके पार्श्व-गायकको पद-गान करना था, इसके बाद श्रीराधा-चित्रके पार्श्व-गायकको। इस प्रकार बारी-बारीसे सोलह पदोंका गायन होना था।

निर्धारित समयपर बाबूजी कार्यक्रममें पधारे तथा बाबूजीके साथ-साथ बाबा भी। भक्तगण तो कार्यक्रममें पहलेसे ही विराजित थे। बाबा-बाबूजीके आसन ग्रहण करनेपर सोलह गीतोंके गायनका कार्यक्रम आरम्भ हुआ। पूर्व-प्रदत्त निर्देशके अनुसार एक-एक करके सोलह पद गाये गये। सोलहों पदोंके गायनसे सुख तो सभी उपस्थित भक्तोंको मिला, पर बाबाकी स्थिति तो दूसरी ही थी। 'थकित बचन लोचन सजल पुलक पल्लवित देह'। इन पदोंको सुनकर बाबा तो स्तम्भित रह गये। हीरेकी पहचान और परख जौहरी ही कर पाता है। विवेचनातीत एवं मात्र-भाव-गम्य भाव-राज्यके अचिन्त्य-अनिर्वचनीय उच्च भावोंकी सरल भाषामें इतनी सरस अभिव्यक्तिको देखकर बाबाके आनन्द और आश्चर्यकी सीमा नहीं थी।

सोलह गीतोंके गायनका कार्यक्रम पूर्ण हो गया और उस वर्षकी श्रीराधाष्टमीका महोत्सव भी सानन्द सम्पन्न हो गया। बादमें बाबाने बाबूजीसे कहा – वन्दना और पुष्पिकाकी आप और रचना कर दें। सोलह पदोंके आरम्भमें वन्दना और अन्तमें पुष्पिकाको जोड़ दें। वन्दना-पुष्पिकासे इन सोलह पदोंको सम्पुटित करके आप इसे छपवा दें और फिर मुझे दे दें।

बाबूजीने वैसा ही किया। वन्दनाके पाँच दोहोंकी और पुष्पिकाके पाँच दोहोंकी रचना करके बाबूजीने सोलह पदोंके आरम्भमें वन्दनाको तथा अन्तमें पुष्पिकाको जोड़ दिया। वन्दना-पुष्पिका-सहित सोलह पदोंकी पुस्तिकाका नाम रखा गया 'श्रीराधा-माधव-रस-सुधा'। गीताप्रेससे प्रकाशित इस पुस्तिकाको लोग षोडश गीतके नामसे ही जानते हैं।

बाबाके मनमें रह-रहकर ऐसे भाव उठ रहे थे कि यह कैसा संयोग

घटित हो गया कि अत्यन्त दुर्लभ वस्तु आज हस्तगत है। भगवत्कृपाका यह अप्रतिम उदाहरण है। जगतके लोग भले ही षोडश गीतकी गरिमाको नहीं समझ पायें, परंतु इससे क्या हुआ? वस्तुका वस्तु-गुण समझ या सम्मानकी अपेक्षा नहीं रखता। अपने वस्तु-गुणके कारण यह षोडश गीत तो स्वयंकी गरिमासे गरिमान्वित है। बाबा यही चाहते थे कि इस षोडश गीतका अधिक-से-अधिक प्रचार हो, प्रचार हो इसलिये कि जगतको ज्ञात हो सके कि प्रिया-प्रियतम श्रीराधाकृष्णका प्रेम कितना शुचितम, कितना अनुपम, कितना दिव्य, कितना समर्पणपूर्ण है और प्रचार हो इसलिये भी कि प्रेमके इस आदर्श रूपको अपने सामने रखकर प्रेम-पथके साधक अपनी साधनामें प्रवृत्त हों तथा दिव्य भगवत्प्रेमकी प्राप्ति कर सकें।

प्रेम-पथके साधकोंको विशेष प्रकाश मिले तथा प्रेमासव-छके रसिकोंको विशेष सुख मिले, इस दृष्टिसे बाबाने षोडश गीतके पाठको बड़ा महत्त्व प्रदान किया। मध्य रात्रिके उपरान्त दो बजेसे लेकर साढ़े चार बजेतककी समयावधिके सम्बन्धमें ऐसा कहा जाता है कि यह दिव्य वेला सिद्ध संतोंके गुप्त रूपसे विचरण करनेकी, अधिकारी-जनोंपर अनुग्रहकी वर्षा करनेकी तथा एकाग्र मनसे ईश्वरका स्मरण करनेकी होती है। बाबाके मनमें यह स्फुरणा उदित हुई कि कोई मुझे इस दिव्य वेलामें दो बजेसे लेकर साढ़े-चार बजेतक अर्थात् कुल अढ़ाई घंटेतक प्रतिदिन षोडश गीत सुनाया करे। भाई श्रीनटवरलालजी गोस्वामी (साधु श्रीकृष्णप्रेमजी महाराज) को यह सौभाग्य प्राप्त हुआ और कई वर्षोंतक वे नित्य-निरन्तर निष्ठापूर्वक निशान्त वेलामें बाबाको षोडश गीत सुनाते रहे। इस प्रसंगसे प्रेरणा लेकर कई साधकोंने इस दिव्य वेलामें अढ़ाई घंटेतक षोडश गीतके पाठका नित्य-नियम ले रखा है।

षोडश गीतके प्रचारके लिये बाबाने अनेक कार्यक्रम अपनाये तथा उनको मूर्त रूप प्रदान करनेके लिये अपूर्व प्रयास किया। भारतके कोने-कोनेमें षोडश गीत पहुँच सके, इसके लिये बाबाने अनेक विद्वानोंद्वारा षोडश गीतका कई भाषाओंमें अनुवाद करवाया। संस्कृत, उड़िया, तमिल, तेलुगू, मलयालम, कन्नड़, सिंधी, उर्दू आदि अनेक भाषाओंमें षोडशगीतका अनुवाद हुआ ही; अँगरेजी, जर्मन, फ्रेंच तथा रशियन भाषाओंमें भी अनुवाद करवाया गया, जिससे षोडशगीतका प्रचार भारतकी सीमाके बाहर भी हो सके। षोडशगीतका पद्यात्मक अनुवाद संस्कृत भाषामें

हुआ, जिससे अहिन्दी भाषा-भाषी लोग, जो संस्कृत समझते हैं, वे अर्थ समझते हुए षोडशगीतका गायन कर सकें और प्रीति-रसकी मधु धारामें बह सकें।

विदेशी भाषाओंमें हुए अनुवादका भारतके बाहर सम्मान भी हुआ। अमेरिकामें कैलिफोर्नियाके विलयर-लेक-हाई-लैंड स्थित दी फ्री काम्युनियन चर्च (THE FREE COMMUNION CHURCH) में ईसाई मतावलम्बी बन्धु स्वयं-प्रेरणासे षोडशगीतके अँगरेजी अनुवादका उपयोग अपनी उपासनामें करते हैं। अपने एक पत्रमें इन ईसाई बन्धुओंने षोडशगीतके रचयिताके जीवनके बारेमें जिज्ञासा व्यक्त की थी। इसी पत्रमें उन्होंने बाबूजीके 'गोपी प्रेम' नामक पुस्तकके अँगरेजी अनुवादके मुद्रणकी अनुमति प्राप्त करनी चाही थी। इसी प्रकार जर्मनीके एक प्रकाशकने अपने देश जर्मनीमें ही षोडशगीतके जर्मन अनुवादको स्वेच्छासे पुनः मुद्रित किया।

षोडशगीतका जिस प्रकार अनेक भाषाओंमें गद्यात्मक-पद्यात्मक अनुवाद हुआ, उसी प्रकार उसपर व्याख्यात्मक साहित्य भी लिखा गया। बाबाने पद्यात्मक व्याख्याको लिखवानेका शुभारम्भ ग्यारहवें पदसे किया है, षोडशगीतके प्रारम्भसे नहीं। सर्वप्रथम ग्यारहवें पदकी ही व्याख्या क्यों की गयी, इसके पीछे एक विशेष कारण है, जिसका उल्लेख आगे आयेगा। चार-चार पंक्तियोंका एक-एक चौपदा, इस प्रकारके अढ़ाई सौ चौपदोंमें बाबाने व्याख्या लिखवायी है। बाबाके मनमें जितने भाव उमड़ते थे, वे सब भाव इन अढ़ाई सौ चौपदोंमें नहीं सिमट पाये। एक बार बाबाने बताया था कि यदि अढ़ाई सौ चौपदोंकी एक इकाई मान ली जाये तो इस प्रकारकी सत्तरह-अट्ठारह इकाइयोंकी रचना हो सकती थी। ग्यारहवें पदकी व्याख्या हो जानेके बाद सम्पूर्ण षोडशगीतकी व्याख्या करनेकी बात बाबाके मनमें उभरी, अतः वे आरम्भसे व्याख्या लिखवाने लगे। षोडशगीतके आरम्भमें वन्दनाके पाँच दोहे हैं। शायद दो-तीन दोहोंकी व्याख्या लिखवायी होगी कि फिर लिखवाना स्थगित हो गया। बाबूजीका स्वास्थ्य अत्यधिक खराब हो जानेसे बाबाका अधिक समय उनकी परिचर्या तथा चिकित्साकी सँभालमें जाने लगा। जब बाबूजी नित्य-लीलामें लीन हो गये, तब तो उसके बाद लिखवानेका

भाव ही सर्वथा विसर्जित हो गया।

षोडशगीत-मन्दिरकी स्थापना करना बाबाकी अपनी सूझ थी। षोडशगीतके अट्ठारह पदोंको बाबाने एक विशेष धातुके पत्रपर उत्कीर्ण करवाया। साढ़े-अट्ठारह इंच लम्बे तथा ग्यारह इंच चौड़े, इस आकारके तेरह धातु-पत्रोंपर बड़ी कलात्मक रीतिसे सम्पूर्ण षोडशगीत खुदवाये गये। उत्कीर्ण होकर जब ये षोडशगीत गोरखपुर आये तो इनको बाबूजीके कमरेमें ससम्मान विराजित किया गया। प्रत्येक धातु-पत्रको अलग-अलग पीत वस्त्रसे आवेष्टित किया गया। बाबूजीके पावन कमरेसे धातु-पत्रोत्कीर्ण षोडशगीतकी शोभा-यात्रा निकली। पीत-वस्त्र-आवेष्टित एक-एक धातु-पत्र एक-एक भक्तके शीशपर विराजित था। इस शोभा-यात्रामें युगल रसिक संत बाबा-बाबूजी साथ-साथ चल रहे थे। हरिनाम संकीर्तनके मधुर स्वरसे तथा वाद्योंके मधुर नादसे सारा वातावरण गुञ्जित हो रहा था। बाबूजीके कमरेसे यह शोभा-यात्रा चलकर गीतावाटिकाके समक्ष स्थित नयी कोठीकी छतपर उस कमरेमें आयी, जहाँ इन षोडशगीत-धातु-पत्रोंको पधराना था। अति सुन्दर काष्ठ-आलमारीमें षोडशगीतके तेरह धातु-पत्रोंको आदरसहित प्रस्थापित किया गया तथा इनका सविधि पूजन हुआ। षोडशगीत-मन्दिरमें इन धातु-पत्रोंकी विग्रह रूपमें प्रतिष्ठा सम्भवतः सन् १९६३ ई. में हुई। कुछ भक्तोंने ताम्र-पत्रोंपर उत्कीर्ण कराकर तथा विग्रह रूपमें पधराकर षोडशगीतको अपनी नित्य अर्चनामें स्थान दे रखा है।

कई स्थानोंपर षोडशगीतको संगमरमर पत्थरपर खुदवाकर दीवालोंपर लगवाया गया। भारतके चार प्रधान धामोंमेंसे पूर्व दिशामें स्थित श्रीजगन्नाथपुरीके मुख्य मन्दिर श्रीजगन्नाथमन्दिरमें उड़िया अनुवाद सहित मूल पद लगे हुए हैं। इसी प्रकार वृन्दावनके अति विख्यात श्रीराधारमणमन्दिरमें ब्रजभाषा अनुवाद सहित मूल पद लगे हुए हैं। बाबाके प्रयाससे ही उक्त मन्दिरोंके अधिकारियोंसे षोडशगीतके संगमरमर पत्थरोंको लगवानेकी अनुमति प्राप्त हो सकी। इसके अतिरिक्त और भी कई स्थानोंपर ये पद पत्थरपर खुदवा करके लगवाये गये। बाबा जहाँ श्रीगिरिराजजीकी नित्य परिक्रमा करते थे, वहाँ भी घेरेकी दीवालपरके पत्थरपर ये षोडशगीत उत्कीर्ण हैं।

श्रीराधाष्टमी-महोत्सवके अवसरपर षोडशगीतको बाबाने जब सर्वप्रथम सुना था, तब श्रीराधा एवं श्रीकृष्णके विशाल चित्रोंके पीछे बैठे हुए पार्श्व गायकोंने गाकर सुनाया था। इस गायनको और भी अधिक स्वाभाविकता प्रदान करनेके लिये, इतना ही नहीं, इस षोडशगीतमें 'प्राण-प्रतिष्ठा' कर देनेके लिये बाबाने सन् १९६३ ई. में ही एक और विशेष आयोजन किया। बाबाकी रुचिके अनुसार वृन्दावनधामके श्रीश्रीरामजी शर्माकी रासमण्डलीको आमन्त्रित किया गया और उनकी रासमण्डलीके द्वारा षोडशगीतकी बड़ी सुन्दर रासलीला अभिनीत हुई। 'प्राण-प्रतिष्ठा' की यह पद्धति बड़ी अद्‌भुत है और अपने ढंगकी अकेली है। इस प्रकारसे प्राण-प्रतिष्ठाका विधान तो पहली बार ही देखने-सुननेको मिला। जब कोई नया मन्दिर बनता है तो उसमें नवीन मूर्ति स्थापित की जाती है और फिर शास्त्रानुमोदित विस्तृत पूजन-प्रणालीके द्वारा उसमें भगवत्ताकी प्रतिष्ठा की जाती है, जिससे वे विग्रह भगवद्विग्रहके रूपमें जन-जन द्वारा पूजित हो सकें और भक्तोंकी मनोकामना पूर्ण कर सकें। इसी प्रकार बाबाने षोडशगीतकी रासलीलामें चन्द्रिका एवं मोरमुकुट-मुरली-धारी श्रीप्रिया-प्रियतम द्वारा इन पदोंका गायन करवा करके प्राण-प्रतिष्ठाका विधान ही पूर्ण किया है। यदि वह विधान शास्त्रानुमोदित है तो यह विधान संतानुमोदित है। परम सिद्ध संत बाबूजीकी कृति होनेसे ये षोडशगीत स्वतः सिद्ध पद हैं। इन पदोंमें बाबूजीकी परम सिद्ध वाणी है, अतः इस प्रकारके विधानकी कोई आवश्यकता नहीं थी, मात्र जन-जनकी आस्थाको परिपुष्ट करनेके लिये बाबाने इस विधानका आश्रय लिया।

षोडशगीतकी सुन्दर रासलीलाका क्रम चार दिनतक चला। रासलीला-स्थलीपर चारों दिन दीपावली मनायी गयी। चतुर्दिक् पथको वन्दनवारसे सजाया गया था। पथके दोनों ओर गुलालसे चौक पूरे गये थे और दोनों ओर शुद्ध घृतके शत-शत दीपक जलाये गये थे। वृक्षोंकी-पौधोंकी डाल-डालमें और प्रसरित लताओंकी शाखाओंमें विद्युत प्रकाशकी झालरें लटक रही थीं, उनका टिमटिमाता हुआ रंग-बिरंगा प्रकाश बड़ा आकर्षक लग रहा था। प्रत्येक दिन चार-चार पदका गायन

हुआ। वन्दना और पुष्पिकाके पदोंका गायन तो सखियों एवं समाजियोंद्वारा हुआ, परंतु मूल पदोंका गायन श्रीप्रिया-प्रियतमके द्वारा हुआ। श्रीप्रिया अथवा श्रीप्रियतमके द्वारा पदका गान हो चुकनेके उपरान्त गोस्वामीपाद श्रीचिम्मनलालजीके द्वारा उन पदोंका अर्थ व्रजभाषामें कहा जाता था। लीला-मंचके सामनेका स्थान दर्शकोंसे तो भरा ही पड़ा था, परंतु इस रासलीलाके तो प्रधान रसिक दर्शक थे श्रीबाबा-बाबूजी। षोडशगीतकी रासलीलाके आरम्भ होनेपर जब श्रीप्रिया-प्रियतम हाव-भाव सहित ललित कण्ठसे षोडशगीतका पद गाते, उस समय मानो रसका सागर उमड़ने लगता। चार दिनतक ऐसा लगता रहा मानो नित्य धामकी निकुञ्ज लीला यहीं अवतरित हो उठी है। इन चारों दिनों एक खुमारी-सी दर्शकोंपर छायी रही। जब साधारण दर्शकोंकी यह स्थिति थी, तब अनुपम-रस-रसिक-युगल श्रीबाबा-बाबूजीका कहना ही क्या? भीतर-बाहर-सर्वत्र अनोखी सरसता परिव्याप्त हो रही थी। अपनी-अपनी पात्रताके अनुसार सभी रस-मग्न थे। सारा कार्यक्रम बड़ा सरस और स्वाभाविक लग रहा था। इसमें तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं कि 'वह सोभा समाज सुख कहत न बनइ खगेस'।

* * *

षोडशगीतसे सम्बन्धित एक विशेष प्रसंग बाबाके जीवनमें घटित हुआ, यहाँ उसका उल्लेख कर देना आवश्यक है, जिससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि षोडशगीतके ग्यारहवें पदको बाबा क्यों अधिक महत्त्व प्रदान करते हैं? एक बारकी बात है कि बाबा अपने भाव-राज्यमें दिव्य महाभाव-श्रीराधाभावसे गहरे भावित थे। न जाने ऐसी कौन-सी बात भावराज्यमें घटित हो गयी थी कि बाबा 'मान'की स्थितिमें प्रतिष्ठित हो गये। बाबाके मनमें और नयनमें प्राणप्रियतम श्रीव्रजेन्द्रनन्दनके प्रति घना उपालम्भ था। उपालम्भके भावोंमें लहराते हुए बाबा शौचालय गये। शौचालयकी ओर जाते समय और वहाँसे लौटते समय भी बाबा रह-रह करके प्राणप्रियतम व्रजेन्द्रनन्दनको घना उपालम्भ दे रहे थे, केवल मन-ही-मन नहीं, वे कभी-कभी बोल भी पड़ते थे। शौचालयसे आनेके बाद स्नान करके बाबाने अपने कुटीरमें

प्रवेश किया।

बाबाका कुटीर तो नितान्त निर्जन एवं नीरव स्थलपर है ही, पर उस कुटीरके भीतर एक और एकान्त कक्ष है। इस एकान्त कक्षमें किसीका प्रवेश नहीं। बाबाके निजी परिचारक श्रीभगतजी और श्रीरामस्नेहीजी अवश्य उस कक्षमें जाते हैं, पर वह भी केवल स्वच्छ करनेके लिये। इन दो निजी परिकरोंके अतिरिक्त अन्य किसीका भी प्रवेश उस कक्षमें है ही नहीं। इसी एकान्त कक्षमें पूजावाली एक चौकोर चौकी है, जिसपर बाबा बैठा करते थे। बाबाने कक्षके अन्दर ज्यों ही पैर रखा, बाबाने देखा कि उस पूजावाली चौकीपर षोडशगीत पुस्तिकाका ग्यारहवाँ पद खोलकर रखा हुआ है। यह देखकर बाबाके आश्चर्यकी सीमा नहीं रही। बाबा खड़े-के-खड़े रह गये। खड़े-खड़े बाबा चकित दृष्टिसे यही सोचने लगे कि षोडशगीत पुस्तिकाको खोलकर और उसका ग्यारहवाँ पद निकालकर यहाँ किसने रखा? इस कक्षमें किसीका भी प्रवेश नहीं है। कक्षमें प्रवेशका अधिकार केवल श्रीभगतजी और श्रीरामस्नेहीजीको है, परंतु वे दोनों ऐसा कर सकते नहीं, करनेकी वे सोच ही नहीं सकते। फिर ऐसा किसने किया? किसने इस ग्यारहवें पदको खोलकर चौकीपर रखा है?

बाबा मूर्तिवत् खड़े-खड़े बहुत अधिक उधेड़-बुनमें पड़े हुए थे। अधिकाधिक चिन्तनके साथ-साथ बाबाके मनकी उलझन अधिकाधिक बढ़ती चली जा रही थी। बहुत-बहुत सोचनेपर भी कोई समाधान नहीं मिल पा रहा था, तभी बाबाके सामने प्राणप्रियतम श्रीव्रजेन्द्रनन्दन प्रकट हो गये। बाबासे उनकी दृष्टि चार हुई। वे बाबासे वीणा-विनिन्दित स्वरमें कहने लगे – प्राणाधिके! इस ग्यारहवें पदको देखो तो सही।

अब रहस्य, रहस्य नहीं रह गया था। सारी उलझन समाप्त हो गयी थी तथा अब बात स्पष्ट थी कि पूजावाली चौकीपर षोडशगीत पुस्तिकाका ग्यारहवाँ पद कैसे खुला रखा था। बाबाने उत्तर दिया – मैं क्या देखूँ?

बाबाके शब्दोंमें कुछ क्षोभ था। मनमें जो उपालम्भ था, उस भाव-प्रवाहकी क्षुब्धता बाबाके स्वरको आच्छादित किये हुए थी। बाबाके स्वरमें जितना क्षोभ था, प्राणप्रियतम श्रीव्रजेन्द्रनन्दनके स्वरमें उतना

माधुर्य। बड़े मधुर स्वरमें मनुहार करते हुए प्राणप्रियतमने कहा – तनिक देखो तो सही।

प्राणप्रियतमके प्यारभरे अनुरोधको स्वीकार करना ही था। अनुरोधके अनुसार बाबा ग्यारहवाँ पद पढ़ने लगे – मेरा तन-मन सब तेरा ही, तू ही सदा स्वामिनी एक।

दिव्य राधा-भाव-भावित बाबाको ऐसा लगने लगा मानो इस पदके मिससे मेरे प्राणप्रियतम श्रीव्रजेन्द्रनन्दन अपनी प्रीति-परवशता व्यक्त कर रहे हैं। इतना ही नहीं, अपना अनन्त प्यार उड़ेलते चले जा रहे हैं। पदका वाचन करते-करते बाबाके मनका सारा उपालम्भ तुरंत उड़ गया और पदके समाप्त होते-होते बाबाका सारा अस्तित्व ही उस दिव्य प्यारकी अनन्त लहरियोंमें बह चला।

पदके समाप्त होते ही बाबाने सरस हृदयसे और सजल नयनसे तुरंत गाया – हौं तो दासी नित्य तिहारी।

यह षोडशगीतका दूसरा पद है। अब थी न तो मानकी स्थिति और न उस स्थितिकी स्मृति। वहाँ तो अब उमड़ रहा था प्यारका अद्‍भुत सागर। बाबाके जीवन-कालमें जब भी दशमी तिथिको परिक्रमाके समय षोडशगीतका पाठ होता था, तो सम्पूर्ण षोडशगीतका पाठ हो जानेके बाद सबसे अन्तमें पुनः ग्यारहवें पदका, तदुपरान्त द्वितीय पदका पाठ किया जाता था। इन दोनों पदोंके पुनः पाठ किये जानेके पीछे हेतु यही था और है कि बाबाके जीवनके इस दिव्य प्रसंगके कारण इन दोनों पदोंका विशेष महत्त्व है और यही कारण था कि बाबाने व्याख्या लिखवानेके कार्यका आरम्भ ग्यारहवें पदसे किया।

षोडश गीतोंमें जिन भावोंकी अभिव्यक्ति हुई है, उन भावोंका उद्‍भव बाबूजीकी भाव-समाधिकी दशामें होनेके कारण षोडशगीतकी महिमा अनन्त है और बाबाके जीवनकी प्रत्यक्ष घटनासे सम्बद्ध होनेके कारण यह अनन्त महिमा अनन्तानन्त गरिमासे मण्डित हो गयी है। ऐसे महिमामय षोडशगीतका गायन-श्रवण, चिन्तन-मनन जितना ही हो, उतना ही उत्तम है, जिससे उस परमानन्दपूर्ण प्रेमकी दिव्य झाँकी मिल सके और उस परमानन्दपूर्ण प्रेमके दिव्य प्रदेशमें प्रवेश मिल सके।

* * * * *

गुरुजनों को वन्दन

पूज्य बाबूजी किसी कार्यसे कलकत्ता गये हुए थे। वापसी यात्राके समयका यह प्रसंग हावड़ा स्टेशनके प्लेटफार्मका है। बाबूजीके साथ बाबा गोरखपुर आ रहे थे। स्टेशनपर आनेके बाद बाबाको ट्रेनके वातानुकूलित डिब्बेमें बैठा दिया गया। प्लेटफार्मपर उन लोगोंकी बड़ी भीड़ थी, जो बाबूजी-बाबाको विदा करनेके लिये आये थे। आये हुए लोगोंमें धनी-गरीब, सभ्रांत-साधारण सभी प्रकारके लोग थे। उस भीड़को चीरकर कोई सामान्य वेष-भूषावाला व्यक्ति वातानुकूलित डिब्बेतक आनेकी बात सोच ही नहीं सकता था। जिसमें बाबा बैठे हुए थे, उस डिब्बेमें काँचके बड़े-बड़े शीशे लगे थे। अचानक बाबाकी दृष्टि दूर खड़े एक व्यक्तिपर पड़ी। वे थे बाबाके भाई। वे आयुमें बड़े थे और बाबाके लिये पूज्य थे। बाबा अपनी बर्थपरसे उठे तथा डिब्बेके दरवाजेकी ओर बढ़े। बाबाका दरवाजेसे नीचे उतरना सबके लिये बड़े कौतूहलका विषय हो गया कि बाबा क्यों उतरे हैं तथा किधर जा रहे हैं। बाबा उतरकर सीधे उनकी ओर बढ़ने लगे। सभीने बाबाके लिये मार्ग दे दिया। उनके पास जाकर बाबाने श्रीचरणोंपर मस्तक रखकर प्रणाम किया। प्यारके मारे वे बड़े भाईजी कुछ बोल न सके, उनके नेत्र सजल हो गये। ट्रेनके चलनेमें अभी दस मिनट बाकी थे। बाबाने उनका हाथ पकड़ा और हाथ पकड़े-पकड़े वातानुकूलित डिब्बेकी ओर बढ़े।

बाबा उनको अपने साथ ले आये और वातानुकूलित डिब्बेमें बर्थपर बैठाया। वे (बड़े भाई) इतने अधिक भावाभिभूत हो गये थे कि बोल नहीं पा रहे थे। उनकी आँखोंसे आँसुओंका प्रवाह झर-झर बह रहा था। जबतक वे बर्थपर रहे, बाबा ही उनके सम्मानमें बोलते रहे। प्यारके आवेगमें बोलना उनके लिये असम्भव-सा हो रहा था, पर वत्सलतासे भरा हुआ उनका हाथ बाबाकी पीठपर फिर रहा था। बाबाका व्यक्तित्व चाहे जितना महान हो, वे भले एक सिद्ध संत हों, पर उनके लिये तो अपने छोटे भाई ही थे और वात्सल्याधिक्यमें उनकी फिरती हुई अँगुलियाँ तथा उनकी झरती हुई आँखें क्षण-प्रति-क्षण कह रही थीं – यह कितने गौरवकी बात है कि मेरा भाई अध्यात्म-जगतका एक उज्ज्वल रत्न है और महान होकर भी वह मुझे नहीं भूला नहीं है। मेरा भाई अधिक-से-अधिक आध्यात्मिक उन्नति करे, समुन्नत होते-होते सर्वोच्च सफलता प्राप्त करे, यही मेरे अन्तरकी अन्तरतम मंगल

कामना है।

दस मिनटके बीतते क्या देर लगती है। इंजनके सीटी देनेपर वे ट्रेनसे नीचे उतरे। बाबाने उनका पुनः अभिवादन किया।

इस प्रसंगको सुनाकर बाबा कहा करते थे – बड़ोंका आशीर्वाद जीवनमें बड़ा काम करता है। उनके आशीर्वादसे जीवनके कठिनतम कार्य सरल हो जाते हैं। गुरुजनोंके प्रति किये गये वन्दनने ही महाभारतके युद्धमें युधिष्ठिरको विजय दिला दी। अपनी मर्यादा, अपनी परम्परा, अपने सदाचार, अपने शिष्टाचारको कभी नहीं छोड़ना चाहिये। पश्चिमी सभ्यताके प्रभावमें आर्य-परम्परादिकी जो अवहेलना आज हो रही है, वह तो आत्मघाती नीति-रीति है।

* * * * *

कमली मैया

कमली मैयाका बाबाके प्रति पुत्र-भाव था। वह बड़ी भोली थी, बड़ी सरल थी। सचमुच, उसे छल-छद्म-छिद्र छू नहीं गया था। उसकी बाबाके प्रति ऐसी श्रद्धा, ऐसी आत्मीयता उमड़ी कि वह अपने पुत्रोंको छोड़कर, परिवारकी सुख-सुविधाको छोड़कर बाबाके पास यहीं गीतावाटिकामें ही रहने लग गयी।

गीतावाटिकामें रहते समय कमली मैयाने एक नियम-सा बना लिया था। दोपहरके समय जब बाबा शौचके लिये जाते तो वह देखनेके लिये आ जाती। उस समय बाबा अपनी पुरानी कुटियामें रहते थे। पुरानी कुटियासे मेरा प्रयोजन उस कुटियासे है, जिसमें बाबा, बाबूजीके महाप्रस्थानके पूर्व रहा करते थे। बाबूजीके नित्यलीलामें लीन हो जानेके बाद बाबाने उस कुटियामें प्रवेश किया ही नहीं। फिर तो बाबा एक वृक्षके नीचे खुली कुटियामें रहने लगे। कमली मैया वाली बात उस समयकी है, जब बाबाका निवास पुरानी कुटियामें था। इस पुरानी कुटियाके पास ही २० –२५ गजकी दूरीपर एक टिनशेड था। कमली मैया प्रतिदिन दोपहरके समय आती और इसी टिनशेडमें बैठ जाती। बाबा शौचके लिये कुटियासे कब निकलेंगे, यह समय निश्चित तो था नहीं। वे निकलते थे कभी बारह बजे, कभी साढ़े-बारह बजे और कभी एक बजे, पर कमली मैया बारह बजेके पहले ही आकर बैठ जाती और तबतक बैठी रहती, जबतक बाबा शौचके लिये चले नहीं जाते। बाबाको यह

पता भी नहीं रहता था कि वह आकर बैठी है। बाबा अपनी कुटियासे निकलते, आँखें नीची किये हुए चलते, धीरे-धीरे चलते हुए शौचालय जाते और फिर शौचादिसे निवृत्त होकर अपनी कुटियामें लौट आते। एक दिन बाबाने देख लिया कि कमली मैया बैठी है। बाबाने उससे पूछा तो पता चला कि वह नित्य दोपहरके समय दर्शन करनेके लिये आती है। यह सुनकर किंचित् उपालम्भ देते हुए बाबाने कहा – अरी मैया! यदि तू मुझे तनिक भी आभास दे देती कि तू नित्य मेरे लिये आकर बैठती है तो मैं दृष्टि उठाकर तुझे देख लिया करता।

तब कमली मैयाने कहा – बाबा! मैं केवल तुम्हारे लिये ही थोड़े आती हूँ। मैं तो एक और मतलबसे आती हूँ।

बाबाने पूछा – तेरा और क्या मतलब है, जिसके लिये तू आती है?

वह नितान्त-निरीह-मति अत्यधिक-सरल-हृदया मैया अपने सहज ढंगसे कहने लगी – बाबा! जब तुम शौचके लिये जाते हो न, तब तुम्हारे पीछे-पीछे बड़ा सुन्दर-सा, बड़ा सलोना-सा एक छोटा नीला बालक चलता रहता है। उसके सिरके लहरदार बाल, उसके पैरोंकी पायजेब, उसके चलनेका ढंग, उसके शरीरका रंग, उसके कमरकी तागड़ी, उसके हाथका हिलना, ये सब आँखोंको- कानोंको बड़े ही प्यारे-प्यारे लगते हैं। मैं तो उस नन्हें-से बालकको देखनेके लिये आती हूँ।

कमली मैयाकी बात सुनकर बाबा तो चकित रह गये। यह तो एक उदाहरण है। उसको ऐसी अनुभूतियाँ सदा ही होती रहती थीं। स्वयं मुझसे उसकी बात हुई है। एक बारकी बात है। दोपहरके समय वह टिनशेडके नीचे बैठी थी। मैंने उससे विनोद करना आरम्भ कर दिया – मैया! तू आजकल कृपण हो गयी है, कुछ खिलाती-पिलाती नहीं।

कुछ देरतक ऐसे ही विनोद चलता रहा, फिर पारस्परिक बातचीतने सरस रूप ले लिया। वह मुझसे कहने लगी – बेटा! देख! यह पेड़ है न! इस पेड़के पत्ते-पत्तेमें राधाकृष्ण हैं। वे तुमको दिखलायी नहीं देते क्या? मुझे तो दीख रहे हैं।

* * *

कमली मैयाकी एक बेटी थी आशा। प्रयत्न करनेके बाद भी आशाकी

सगाई कहीं हो नहीं पा रही थी। एक दिन उसने बाबासे कहा – बाबा! आशाकी सगाई नहीं होगी?

बाबाने उत्तर दिया – मैं तेरा बेटा अभी जीवित हूँ, तब तू क्यों चिन्ता करती है?

बाबाके मुखसे ऐसे शब्द निकलते ही कमली मैयाने कहा – अब मैं बेफिक्र हो गयी।

और सचमुच ही वह निश्चिन्त हो गयी। इसके बाद विधिने ऐसी बात बनायी कि इस प्रकार आश्वासन दिये जानेके लगभग चार-पाँच दिन बाद ही आशाबाईकी सगाई गाजीपुर शहरमें हो गयी। सगाई हो जानेके कुछ दिन बाद विवाहकी तिथि भी निश्चित हो गयी। आशाबाईका विवाह गोरखपुरमें नहीं, कलकत्तेमें हुआ था। विवाहकी तिथि समीप आनेपर कमली मैयाने बाबासे एक दिन कहा – बाबा! क्या आप आशाके विवाहमें नहीं आइयेगा?

बाबाने कहा – मैया! मैं आऊँगा तो जरूर, पर मैं यह नहीं कह सकता कि तू मुझे देख पायेगी अथवा नहीं। यदि तेरे पास 'वे आँखें' होंगी तो मुझे देख भी लेगी।

सौभाग्याकांक्षिणी आशाका विवाह हुआ कलकत्तेमें और बाबा थे गोरखपुरमें। जब गोरखपुरसे बाबूजी ही नहीं गये, तब बाबाका जाना होता ही कैसे? बाबूजी जाते तो उनके साथ बाबाका जाना हो पाता। विवाह हो जानेके बाद कमली मैया गोरखपुर आयी और बाबासे कहने लगी – बाबा! विवाहवाले दिन आप भी पधारे और भाईजी भी पधारे। भात भरनेका समय था। मैंने देखा कि आप आये हैं तथा एक स्थानपर आसन लगाकर बैठ गये हैं। भात दोपहरके समय भरा गया था और आप दोपहरके बादसे तबतक बैठे रहे, जबतक वर-वधूके फेरोंका काम पूरा नहीं हो गया। भात भरनेसे लेकर भाँवर देनेके समयतक आप मुझे बैठे हुए दिखलायी देते रहे। इसी प्रकार भाईजी आये, भाईजी और आप दोनों ही साथ-साथ आये थे। श्रीभाईजीने भात भरनेके समय मुझको चुनरी ओढ़ाई, बहुत बढ़िया चुनरी और फेरोंके कामतक विराजे रहकर विवाहके कार्यमें सहयोग देते रहे।

कमली मैयाको यह अनुभूति हुई, कोई एक मिनट या दो मिनटके लिये नहीं, अपितु लगातार अपराह्न कालसे लेकर मध्य रात्रितक। इन्हीं कमली मैयाका सन् १९६१ ई. के मई मासमें देहान्त हो गया।

'सुमन माल जिमि कंठ ते गिरत न जानइ नाग', उसी तरह वह

पाञ्चभौतिक शरीरका परित्याग करके इस संसारसे विदा हो गयी। शामके समय बाबाकी भिक्षाके लिये चावलोंको चुग रही थी, चावलोंसे भरी थाली अपने हाथमें लिये कंकड़-कचरा साफ कर रही थी, उसी समय उसके पेटमें हलका-सा दर्द हुआ। हाथकी थाली नीचे रखकर वह कमरेकी जमीनपर ही लेट गयी। लेटनेके कुछ देर बाद ही उसने सदाके लिये विदाई ले ली। उसके लेटते ही डाक्टर बुलाया गया, डाक्टर साहब पहुँच पायें, इसके पहले ही जा चुकी थी। यह सूर्यास्तका समय था। उसके जाते ही गीतावाटिकामें शोक छा गया।

बाबूजी और बाबा एक कार्यसे प्रयाग गये हुए थे। जिस समय कमली मैयाका देहान्त हुआ, उसी समय वे प्रयागसे प्रस्थान करनेवाले थे। तुरंत प्रयाग फोन किया गया। पता चला कि वे लोग ट्रेन द्वारा प्रयागसे प्रस्थान कर चुके हैं। ट्रेन प्रयागसे चलकर वाराणसी होते हुए गोरखपुर आती है। ट्रेनके वाराणसी पहुँचनेमें अभी कुछ देर थी। तुरंत ही वाराणसीमें एक व्यक्तिको फोन करके कहा गया – आप वाराणसी स्टेशनपर जाकर ट्रेनमें बाबा-बाबूजीसे मिलें और उनको कमली मैयाके निधनका समाचार दें। फिर यह बतायें कि हमलोग शव लेकर गोरखपुरसे वाराणसी पहुँच रहे हैं, बाबा-बाबूजी वाराणसी उतर जायें और कलकत्तेसे कमली मैयाके लड़के वाराणसी आ जायेंगे। फिर बाबा-बाबूजीकी उपस्थितिमें श्रीगंगाजीके तटपर मैयाका अन्तिम संस्कार उनके पुत्रके हाथों वाराणसीमें हो जायेगा। बाबा-बाबूजीसे बात कर चुकनेके बाद हमलोगोंको फोनसे उनकी सहमतिकी सूचना तुरन्त दें।

हम लोगोंका फोन पाकर वे व्यक्ति तुरन्त वाराणसी स्टेशनपर गये। वे वहाँ ट्रेनपर बाबा-बाबूजीसे मिले तथा उन्हें सारी बातें बतायी। बाबाने उनसे कहा – आप तुरन्त गोरखपुर फोन कर दें कि शवको वाराणसी नहीं लाना है। अन्तिम संस्कार गोरखपुरमें ही होगा। हमलोग इसी ट्रेनसे सबेरे गोरखपुर पहुँच रहे हैं।

उन व्यक्तिने वाराणसीसे फोन करके यह समाचार हमलोगोंको बता दिया। समाचार सुनकर हमलोगोंको आश्चर्य हो रहा था, आश्चर्य इसलिये कि कमली मैयाके परिवारके लोग कलकत्तेसे वाराणसी बहुत आसानीसे प्रातःकालतक पहुँच जाते, किंतु गोरखपुर पहुँच सकना किसी भी प्रकारसे

सम्भव नहीं था। बाबाका यह निर्णय हमलोगोंको बड़ा अटपटा लग रहा था और मन-ही-मन कह रहे थे कि बाबाका खेल बड़ा विचित्र है। अस्तु, सबेरे बाबा-बाबूजी गीतावाटिका पहुँचे। शव-यात्राकी तैयारी होने लगी। अब प्रश्न था कि चितामें अग्नि कौन देगा। बाबाने कहा – मैं दूँगा।

यह सुनते ही बाबूजी क्षुब्ध हो गये और क्षुब्ध स्वरमें ही बोले – यह कौन-सा धर्म है कि संन्यासी अग्निका स्पर्श करे और इससे भी आगे बढ़कर किसीकी चितामें अग्नि दे?

बाबाने बड़े शान्त स्वरमें कहा – आद्य शंकराचार्यजीने भी तो अपनी माँकी चितामें अग्नि दी थी।

बाबूजीने कहा – वह तो उनकी जन्मदात्री माँ थी, पर यह क्या आपकी जन्मदात्री माँ है? फिर उनके द्वारा जो अग्नि दी गयी, वह प्रदत्त वचनके अनुसार असाधारण परिस्थितिमें उनके लिये एक विशेष धर्म था। क्या असाधारण परिस्थितिकी बातको साधारण स्तरपर उतार लाना चाहिये?

बाबाने फिर उसी शान्त स्वरमें कहा – विशेष धर्म नहीं, परम-विशेष-धर्मके अनुसार यह मेरी जन्मदात्री माँसे भी बढ़कर है।

बाबूजीने निराश स्वरमें कहा – आपको समझा सकना कठिन है।

इस प्रेम-कलहका स्वरूप था बड़ा अनोखा। बाबा अपने प्रेम-धर्मका निर्वाह करनेके लिये प्रीतिकी वेदीपर अपनी प्रतिष्ठा, अपनी मर्यादा, अपने सर्वस्वकी बलि चढ़ानेके लिये कटि-बद्ध थे। अब अर्थ लगा कि बाबाने शवको वाराणसी लानेसे क्यों मना कर दिया था। इसके साथ ही बाबूजीके मनमें भी अपनी धर्म-बहिन कमली मैयाके प्रति स्नेहकी एक धारा प्रवाहित हो रही थी, जो प्रच्छन्न थी। शवके साथ बाबा तथा बाबूजी श्मशान भूमि राजघाट गये। बाबाने चिताको अग्नि दी और बाबाके साथ-साथ बाबूजीने भी अग्नि दी, बाबाने चरणोंकी ओरसे और बाबूजीने मस्तककी ओरसे। जबतक शव पूर्णतः भस्मीभूत नहीं हो गया, तबतक अर्थात् तीन घंटेसे भी बहुत अधिक समयतक बाबूजी और बाबा, दोनों ही राजघाटपर रहे। बाबूजी तथा बाबा, दोनोंने अपने-अपने ढंगसे प्रेम-धर्मका निर्वाह किया।

गोस्वामी तुलसीदासजीने ठीक ही कहा है –

'प्रीति कि रीति न जाति बखानी'।

* * * * *

दधि-कर्दमोत्सव का उल्लास

गीतावाटिकामें जो श्रीराधाष्टमी महोत्सव मनाया जाता है, उसमें अष्टमी तिथिको श्रीराधा-जन्म एवं नौमी तिथिको दधि-कर्दमका उल्लास रहता है। प्रसंग सम्भवतः सन् १९६२ का है। दधि-कर्दमोत्सव वस्तुतः बधाई दिवस है, जिस दिन सभी व्रजवासी वृषभानुनन्दिनीके प्राकट्यपर अपने अन्तरके आह्लादको व्यक्त करते हैं। गीतावाटिकामें बाबा द्वारा मनाये जानेवाले श्रीराधाष्टमी महोत्सवमें श्रीबजरंगलालजी बजाज पद गाकर बधाई दिया करते थे। उन्हें बाबाका ढाढ़ी कहना चाहिये। जबतक उनका शरीर रहा, वे ही मुख्य ढाढ़ी होते थे।

श्रीबजरंगजी जबलपुरके रहनेवाले थे। घर-गृहस्थीका सारा दायित्व अपने बालकोंको सौंपकर आप स्थायी रूपसे बाबूजीके पास गीतावाटिका चले आये थे। श्रीराधा-सुधा-निधिका वे सदा पाठ किया करते थे। उनका हृदय इतना रसार्द्र था कि श्रीप्रिया-प्रियतमके लीला-पदोंको सुनते समय उनके नेत्रोंसे अश्रुकी धारा बह चलती थी। जबतक पदोंका सरस गायन होता, उनके कपोल भीगते ही रहते थे। आपका बाबूजीके प्रति सख्य-भाव था। बाबूजीके हितका चिन्तन और उनके सुखका संयोजन-सम्पादन, यही श्रीबजरंगजीकी सभी चेष्टाओंका प्रेरक तत्त्व था। बाबूजी जब कभी गम्भीर हुआ करते थे तो उनको प्रफुल्ल बनानेका श्रेय श्रीबजरंगजीको ही मिलता था। गम्भीर स्वभाववाले बाबूजीको कमरेका एकान्त अधिक अच्छा लगा करता था, पर कमरेके उस गम्भीर एकान्तसे उत्सवके उल्लासके मध्य बाबूजीको ले आनेका कार्य अनेक बार श्रीबजरंगजी ही कर पाते थे। श्रीबजरंगजी दधि-काँदोके दिन ढोलक बजाकर और ढाढ़ीके पद गाकर बधाई दिया करते थे, अतः लोगोंने उनको 'ढोलकियाजी' कहना आरम्भ कर दिया था। इतना ही नहीं, बाबाके अधिकांश परम ऐकान्तिक कार्यक्रमोंमें ढोलकियाजीकी उपस्थिति रहा करती थी और उनका काम था उन परम ऐकान्तिक गायन-कार्यक्रमोंमें ढोलक बजाकर ठेका देना।

किंचित् आवश्यक था, अतः बीचमें श्रीबजरंगजीका परिचय देना पड़ गया। बाबूजीकी बड़ी चाह रहा करती थी कि श्रीराधाष्टमी महोत्सव

सुन्दर प्रकारसे मनाया जाये, जिससे सच्चे भावग्राही और नखशिख रसमय बाबाको परम सुख मिले। अबतक नौमी तिथिको दधि-कर्दमोत्सवमें कोई भी गायक किसी प्रकारका भी अवसरोयुक्त बाह्य वेष धारण नहीं किया करता था, साधारण वेषमें ही पद-गायन कर दिया जाया करता था। उस समयतक रासमण्डलीका श्रीराधाष्टमी महोत्सवपर कभी आना हुआ ही नहीं था। इस बार नयी बात यह हुई कि उत्सवके एक-दो दिन पहले बाबूजीने ठाकुर श्रीघनश्यामजीको बुलाकर कहा — नौमी तिथिको बजरंगजी ढाढ़ीके रूपमें खड़े होकर बधाईवाले पद गायेंगे, उनको पदके भावानुकूल वस्त्र पहना देना। उस वेषमें पद-गान करनेसे भावोद्दीपन अधिकाधिक होगा और बाबाके मनको बड़ा भायेगा।

बाबूजीका इतना संकेत पर्याप्त था। ठाकुरजी बाजार गये तथा कई व्यक्तियोंको धारण कराने योग्य शृङ्गारका आवश्यक सामान खरीद लाये। इस वर्ष श्रीराधाष्टमीपर श्रीहरिवल्लभजी तथा श्रीश्रीरामजी भी आये थे। श्रीबजरंगजी थे मुख्य ढाढ़ी, उनके साथमें श्रीहरिवल्लभजी और श्रीश्रीरामजी ढाढ़ीके रूपमें खड़े थे और ठाकुरजी बने ढाढ़ीके बालक। नौमी तिथिको दधि-काँदोके उत्सवमें ये सभी लोग उचित शृंगार धारण करके मण्डपमें आये। वेष धारण करके उत्सवमें आनेका यह सर्वप्रथम अवसर था। वेष-सहित आने भरकी देर थी, फिर क्या कहना? उत्सवमें रंग आ गया। रंग केवल आ ही नहीं गया, अपितु रंग उमड़ने लगा, रंग बहने लगा। मण्डपमें खड़े होकर ढाढ़ी लोग बधाईके पद गाने लगे। उपस्थित भक्त लोग तो यह दृश्य पहली बार देख रहे थे, देख-देख करके आश्चर्य कर रहे थे कि आज क्या हो रहा है। आश्चर्य-चकित भक्तगण रस-रंगके प्रवाहमें बहे जा रहे थे। 'परम प्रेम लोचन न अघाता'। मंचपर बैठे हुए बाबूजीके आनन्दकी सीमा नहीं थी। बाबा तो बाबूजीके पार्श्वमें नेत्र बन्द किये हुए निस्स्पन्द ध्यानस्थ बैठे हुए थे।

ढाढ़ी-बालक (ठाकुर श्रीघनश्यामजी) के मनमें आज उमंग उफन रहा था, उसके मनमें चुलबुली मची हुई थी, पर उसके अन्तरको चैन कहाँ? बाबा जबतक नेत्र बन्द किये ही बैठे रहेंगे, तबतक तो सारा

आनन्द ही फीका है। जबतक इस नवीन दृश्यको बाबा अपनी आँखोंसे देख न लें और देखकर भावमें बह न जायें, तबतक तो सारा सुख ही ओछा है, ओछा ही नहीं, सर्वथा थोथा है। ढाढ़ी-बालकने सोचा कि आज मजा तब आये, जब बाबाके हाथसे बधाई मिले। इस विचारके मनमें आते ही ढाढ़ी-बालक मंचपर चढ़ गया और बाबाको प्रणाम करके बोला – बाबा! बाबा! ओ बाबा! दण्डोत। बधाई है! बधाई है!!

बाबा 'भीतर'से 'बाहर' आये और फिर उन्होंने अपने नेत्र खोले। नेत्र खोलकर कुछ विस्मय, कुछ जिज्ञासा, कुछ कौतूहल भरी दृष्टिसे देखने लगे कि यह कौन-सा बालक मेरे पास आकर खड़ा हो गया है और बधाई दे रहा है। ढाढ़ी बालकने मूँछ लगा रखी थी, अतः बाबा पहचान नहीं सके। बाबूजी समझ गये कि बाबा पहचान नहीं पाये हैं। बाबासे बाबूजीने कहा – बाबा! यह अपना घनश्याम है न!

फिर तो बाबा ठठाकर हँस पड़े और प्यारमें अत्यधिक उमड़कर उसी क्षण एक प्यारभरी चपत ढाढ़ी-बालकके गालपर लगा दी।

ढाढ़ी-बालकने कहा – बाबा! इस गालपर भी।

बाबाने फिर दूसरे गालपर भी मीठी-सी चपत लगा दी। जिन-जिनने यह दृश्य देखा, उनका हृदय भर आया, उनकी आँखें भर आयीं।

'प्रेम प्रबाह बिलोचन बाढ़े'।

ढाढ़ी-बालक तुरंत मंचपरसे उतरकर अपने ढाढ़ी-परिवारमें सम्मिलित हो गया और लगा नाच-नाच करके रिझाने। बाबाके मनमें भी आह्लाद इतना उमड़ा कि वे उठकर खड़े हो गये। बाबाको मंचपर खड़े देखकर ढाढ़ी-परिवारको अपार आनन्द हुआ, उनके हृदयका उल्लास जितना और जैसा उमड़ा, उसको शब्दोंमें व्यक्त कर सकना सर्वथा असम्भव है। उनके उल्लासका सागर आज अमर्यादित रूपसे चंचल हो उठा था। वे झूम-झूम कर, नाच-नाच कर, मटक-मटक कर बधाईके पद गा रहे थे। सारा दृश्य विचित्रसे विचित्र होता चला जा रहा था। 'अति विचित्र कहि जात सो नाहीं'। बाबाके अन्तरका भावाह्लाद रह-रह करके कभी हास्य, कभी मुस्कान, कभी जय-जय स्वर, कभी बाहूत्तोलनके रूपमें व्यक्त हो रहा था। ढाढ़ी-बालक पुनः मंचपर आया और मटक कर बाबासे कहने लगा – लाली जायी है न!

उसकी बधाई दो। केवल प्यारभरी चपतसे काम नहीं चलेगा।

मंचपर व्रज-मण्डलकी रचना बनायी गयी थी। उसमें तुलसी-कानन भी बनाया गया था। बाबाने तुरंत झुककर कई तुलसी-दल तोड़ लिये। ढाढ़ी-बालकने अपना मुँह खोल दिया और उसके मुँहमें बाबाने तुलसी-दल अपने हाथसे डाल दिया। बाबाने फिर तुलसी-दल श्रीबजरंगजी, श्रीहरिवल्लभजी और श्रीश्रीरामजीको भी दिया। बाबासे प्राप्त तुलसी-दलको चाँदीके थालमें रखकर और उस थालको हाथपर रखकर ढाढ़ी-बालकने आज एक निराला ही नृत्य प्रस्तुत किया। दर्शकगण चकित हो रहे थे कि आज यह क्या देखनेको मिल रहा है। किसीको सुध-बुध नहीं थी कि हम कहाँ बैठे हैं। सभी गीतावाटिकाको, यहाँतक कि स्वयंको भी विस्मृत कर चुके थे। आजकी रसमयता वस्तुतः वर्णनातीत है। 'कहिअ काह कहि जाइ न बाता'।

इसी बीच एक और नवीन बात घटित हो गयी। अपनी सेवा-परायणता, अन्तर्मुखी प्रवृत्ति, संकोची प्रकृति, मित-भाषिता आदिके कारण रामसनेहीजी हम सभीके लिये बड़े आदरणीय हैं। ऐसे गम्भीर स्वभाववाले रामसनेहीजी पंडालमें एक किनारे बैठे हुए यह सब देख रहे थे। बाबाको मंचपर खड़े देखकर वे बहुत अधिक भावोर्मिल हो उठे। बाबा तो सदा ही मंचपर ध्यानस्थ बैठे रहा करते थे, यह तो पहला ही प्रसंग है कि बाबा मंचपर खड़े हुए हों और उनके हृदयका आह्लाद उछल रहा हो। भाव-सागरकी इन दिव्य तरंगोंपर रामसनेहीजीका सारा अस्तित्व लहराने लगा। भाव-विभोर रामसनेहीजी अपने स्थानपरसे उठे और बैठे हुए भक्तोंकी भीड़को चीरते हुए मंचकी ओर बढ़ने लगे। लोगोंको बड़ा कौतूहल हो रहा था कि प्रकृतिसे अति गम्भीर रामसनेहीजी आज क्या करने जा रहे हैं। लोगोंकी दृष्टि रामसनेहीजीपर टिक गयी। रामसनेहीजीने मंचपर जाकर बाबाके कर-पल्लवको थाम लिया और विनम्र वाणीमें उन्होंने अनुरोध किया — आप मंचसे उतरकर नीचे ढाढ़ी-परिवारके बीच नृत्य-मण्डलमें पधारें।

रामसनेहीजीके इस अनुरोधको सभी लोग बड़ी चकित दृष्टिसे देख रहे थे। बाबा भली-भाँति समझ रहे थे कि रामसनेहीजी इस समय 'दूसरे राज्य' में हैं, अतः प्यारसे थपथपा करके उन्हें अपने पास ही बिठा लिया।

रामसनेहीजीकी इस भावमयताने वातावरणकी रसमयताको और अधिक घनीभूत बना दिया। गायन एवं नृत्यका उल्लास ढाढ़ी-परिवारमें बढ़ता ही चला जा रहा था। बाबाके पास ही श्रीपरमेश्वरप्रसादजी फोगला बैठे हुए थे। बाबाने उनके हाथकी कलाई-घड़ी उतरवाकर बधाईकी न्योछावरके रूपमें दे दी। पंडालका सम्पूर्ण वातावरण जयकारकी ध्वनिसे भर आया। बाबाको इतनेसे ही संतोष नहीं हुआ। बाबाने माँसे एक स्वर्ण-चूड़ी माँग ली। माँने अपनी कलाईमेंसे स्वर्ण-चूड़ी उतारकर बाबूजीके हाथपर रख दी और बाबाने बाबूजीके द्वारा ही वह स्वर्ण-चूड़ी बधाईमें मुख्य ढाढ़ीको दिलवा दी। अब जय-जयकारका तुमुल नाद पंडालमें चारों ओर फूट पड़ा। न तो ढाढ़ी-परिवारका बधाई-उल्लास कम हो रहा था और न बाबाकी उमंग घट रही थी। बाबाके पास ही बाबूजी भी खड़े थे। बाबाने बाबूजीकी धोतीका अगला भाग अपनी ओर खींच लिया और उस धोतीका लगभग दो-तीन अँगुल छोर फाड़कर हरिवल्लभजीको दे दिया। उस छोरकी माला बनाकर हरिवल्लभजीने उसे अपने गलेमें पहन लिया। ऐसी ही छोर-प्रसादी सभी ढाढ़ियोंको भी मिली।

छोर-प्रसादी पानेवालोंके सौभाग्यकी सराहना एक-एक व्यक्ति मुक्त कण्ठसे कर रहा था। दधि-काँदोके बाद जब ठाकुरजी बाबासे मिले तो बाबाने कहा – ठाकुर! आज तो लोकातीत दिव्य दृश्य उपस्थित हो गया था। पन्द्रह-बीस साल पहलेकी मेरी भावनाको आज श्रीपोद्दार महाराजने मूर्त रूप प्रदान कर दिया। जो बात बीस साल पहले मैं सोचा करता था, वही आज मेरे सामने प्रत्यक्ष थी। एक बात और, पोद्दार महाराजकी धोतीका जो छोर मिला है, उसे तू साधारण मत समझना। वह छोर परम दिव्य वस्तु है।

फिर बाबाने उस छोरपर एक छन्द बनाकर ठाकुरजीको सुनाया। वह छन्द इस प्रकार है –

साँवर सुन्दरकी धोतीकी वह एक किनारी फाड़ी है।
तुम तुच्छ न वस्तु उसे समझो, उसमें व्रज-रसकी खाड़ी है।।
राधा-करसे खोदी, उसके कण-कणमें कृष्ण खिलाड़ी है।
अवगाहन मत्त सहित उसके जो पहरे नीली साड़ी है।।

इस प्रकार कुटियाके एकान्त स्थलमें बाबासे ठाकुरजीकी बातचीत

होती रही। ठाकुरजीने बाबाको सारा वृत्त बताया कि किस प्रकार बाबूजीने बाजारसे वस्त्र खरीदनेके लिये प्रेरित किया था। इसके बाद ठाकुरजीने बाबासे कहा – बाबा! हमलोग तो युगल निधिके उपासक हैं।

बाबाने पूछा – तुम्हारे इस कथनका अर्थ क्या?

ठाकुरजीने कहा – बाबा! जिस प्रकार हमें बाबूजीके वस्त्रकी छोर-प्रसादी मिली, उसी प्रकारसे हमें आपके वस्त्रकी भी प्रसादी मिलनी चाहिये।

बाबाने कहा – ठाकुर! तू भला कहाँ अवसर चूकनेवाला है?

बाबाने फिर अपनी भी वस्त्र-प्रसादी प्रदान की। यह दुर्लभ वस्त्र-प्रसादी श्रीबजरंगजी, श्रीहरिवल्लभजी तथा ठाकुरजीको मिली।

* * * * *

स्विटजरलैंड निवासी श्रीरूडोल्फ सुएस

स्विटजरलैंडके ल्यूजर्न नगर निवासी श्रीरुडोल्फ सुएस (Shri Rudolf Suess) के जीवनके आरम्भसे ही हृदयमें आध्यात्मिक पिपासा भरी हुई थी, अतः चौबीस वर्षकी आयुमें ये छोटी मोटर कार द्वारा अपने देशसे भारत-यात्राके लिये निकल पड़े तथा मार्गमें पड़नेवाले कई देशोंकी सीमाओंको पार करते हुए आप १९६३ की १७ मार्चको गीतावाटिका पहुँचे।

श्रीसुएस हिन्दी भाषा तो जानते ही नहीं थे। उनका जर्मन, स्विस तथा फ्रेंच भाषापर अच्छा अधिकार था। अँग्रेजी भाषाका ज्ञान साधारण स्तरका कहा जा सकता है। प्रथम बातचीतके बीच उन्होंने बतलाया – मैं ऐसे व्यक्तिकी खोजमें भारत आया हूँ, जो मुझे भगवत्प्राप्ति करा दे या मुझे आत्मसाक्षात्कार करा दे।

मैं उनको बाबाके पास ले गया। तब बाबा अपनी पुरानी कुटियामें रहते थे। बाबाने बड़े सम्मान सहित उनसे आसन ग्रहण करनेके लिये कहा। इतना ही नहीं, श्रीसुएसका हाथ अपने हाथमें लेकर वन्दन भी किया।

बाबाका दर्शन करते ही श्रीसुएसकी विचित्र भावदशा हो गयी।

बाबासे उनकी बहुत देरतक बातचीत होती रही। बाबाके पाससे आनेके बाद श्रीसुएसने बतलाया था –

Now I know I have found this man, Swami Chakradharaji is the personification of the highest aim, every human being is searching for and at the same time he is the personification of the path, that leads to this aim. I have found, what I have been yearning for and at this moment my yearning is stilled. I feel complete harmony and I am put into a blessed state, beyond all words. The hour, that I was permitted to spend with Swamiji, belongs to the deepest experiences of my life.

(जिसकी खोज थी, वह व्यक्ति मुझे प्राप्त हो गया है। मानव मात्रके लिये जो उच्चतम प्राप्तव्य लक्ष्य हो सकता है, उसके साकार स्वरूप स्वामी श्रीचक्रधरजी हैं। इतना ही नहीं, उस प्राप्तव्यकी प्राप्ति करा देनेवाले साधनपथके भी साकार स्वरूप हैं। जिस वस्तुकी मुझे तीव्राभिलाषा थी, वह मुझे मिल गयी है। मेरी लालसा अब शान्त है। मैं अनुभव कर रहा हूँ कि मैं एक अनिर्वचनीय दिव्यानन्दमें निमग्न हूँ।)

श्रीसुएस इस पहली भेंटमें बाबाके पास लगभग एक घण्टा रहे। बाबासे अंग्रेजी भाषामें जो आध्यात्मिक बातचीत हुई तथा उनकी जो भावमयी संनिधि मिली, वे श्रीसुएसके जीवनके लिये स्मरणीय क्षण थे। इस पहली भेटमें ही बाबाने उनसे कहा था – मैं जानता था कि आप मुझे मिलेंगे।

इस भेंटसे श्रीसुएस इतने भाव विभोर थे कि रात्रिके समय उन्हें निद्रा नहीं आ सकी। दूसरे दिन १८ मार्चको बाबासे विदाई लेकर श्रीसुएस नेपालकी ओर चले गये। चलते-चलते उन्होंने बाबासे सम्बन्धित एक वाक्य अपनी डायरीमें लिख लिया – 'I shall never forget him.' अर्थात् मैं उन्हें कभी नहीं भूलूँगा। गीतावाटिका आकर उनको अपार आनन्द हुआ, किन्तु यहाँके आध्यात्मिक वातावरणसे विदाई लेते समय उन्हें व्यथा भी कम नहीं हुई।

श्रीसुएस १७ मार्च १९६३ को आये और एक दिन बाद १८ मार्चको यहाँसे नेपालके लिये चले गये। १८ मार्चसे लेकर ७

नवम्बरतक वे नेपाल तथा भारतके विभिन्न स्थानोंका भ्रमण करते रहे।

अब उन्हें स्वदेश स्विटजरलैंड जाना था। जानेके पहले पुनः बाबाके दर्शनार्थ वे गोरखपुर आये। आये ८ नवम्बर १९६३ को। संयोगसे इस दिन छोटी श्रीराधाष्टमी थी।

एक कमरेमें सामान रखकर तथा स्नानादिसे निवृत्त होकर श्रीसुएस बाबाके पास आये। उन्होंने बाबाको भारतीय रीतिसे प्रणाम किया। बाबाने बैठनेके लिये आसन दिया। श्रीसुएससे सारी बातचीत अँगरेजी भाषामें हुई। बातचीतमें बाबाने श्रीसुएससे कई बार कहा – मैं और आप एक ही हैं। मैं आपके साथ हूँ, आपके भीतर हूँ। आपके प्रत्येक अणु-अणुमें हूँ।

इस वाक्यको अनेक बार कहनेका प्रयोजन यही था कि इस तथ्यपर उनका मन टिक जाय और उनके मनमें विश्वास स्थिर हो जाय। बातचीत करते-करते बाबा अपने आसनसे उठे, अपनी कुटियाके भीतर गये और एक छोटी-सी पोटली उठा लाये। उस पोटलीको खोलकर बारह छोटे-छोटे पूजा-वस्त्र निकाले। उन पूजा-वस्त्रोंको रुमाल कहा जा सकता है। उन बारहों रुमालोंपर कम या अधिक संख्यामें कुमकुमके चिह्न थे। उन पूजा-वस्त्रोंको क्रम-क्रमसे बाबाने फैला दिया तथा श्रीसुएससे कहा – इन बारहोंमेंसे किसी एकको चुन लें।

ज्यों ही एक पूजा-वस्त्र श्रीसुएसने उठाया, बाबाने प्रसन्न मनसे सराहना करते हुए कहा – आपने चुनाव बड़ा सुन्दर और सही किया है। इसे सुरक्षित रखियेगा। इसको सुरक्षित रखना अनेक प्रकारसे उपयोगी सिद्ध होगा। यह पूजा-वस्त्र आपके आध्यात्मिक जीवनके लिये बड़ा महत्त्वपूर्ण है।

सचमुच यह पूजा-वस्त्र श्रीसुएसकी जीवननिधि बन गया। इस पूजा-वस्त्रको वे सदा साथ रखते। भविष्यमें वे जब-जब भारत आये, इसे अपने साथ लाये। यह पूजा-वस्त्र उनके लिये बाबाकी संनिधिका एक प्रतीक था।

आज श्रीराधाष्टमी है, अतः बाबाने अपने कर-कमलसे प्रसादका एक कौर श्रीसुएसको खिलाया। श्रीसुएसके आनन्दकी सीमा नहीं थी। आनन्दातिरेकमें आज रातको भी नींद नहीं आ सकी। अगले दिन ९ नवम्बरको सारे दिन श्रीसुएस बाबाके समीप रहे। सारे दिन आनन्दकी

लहरोंपर उतराते-बहते रहे। वह आनन्द वर्णनातीत है। उस दिन शामको उन्हें विदा होना था। विदाईके प्रसंगने उनके भीतर एक टीस उत्पन्न कर दी। तब उन्हें आश्वस्त कर देनेके लिये बाबाने कहा – हम दोनों फिर मिलेंगे।

उत्सुकतापूर्वक श्रीसुएसने पूछा – कब?

बाबाने कहा – उचित समयके आते ही आपको स्वतः जानकारी हो जायेगी।

जब श्रीसुएसने विदाई ली तो बाबाने एक हिन्दी गीतके भाव बतलाये। वह इस प्रकार है –

तू मेरे स्मितकी आभा अपने साथ लेता जा।

तू मेरे चिन्तनका नवनीत अपने साथ लेता जा। क्या तुमने देखा नहीं है कि रात्रिके घोर अन्धकारकी तनिक भी परवाह न करते हुए लघु-लघु सितारे मुस्कुराते रहते हैं? तब तुम बतलाओ कि तुम्हारे किसलयके समान कोमल अधरोंका उल्लास कुण्ठाकी जड़तासे विदलित क्यों है? यदि तुमको निर्जन पथपर चलना पड़ रहा है तो भयान्वित क्यों हो रहे हो? मार्ग-दर्शनके लिये तू मेरे जीवनकी ज्योति अपने साथ लेता जा।

तू मेरे स्मितकी आभा अपने साथ लेता जा।

तू मेरे अन्तरका सौरभ अपने साथ लेता जा। यदि मार्गमें चलते-चलते तेरे हाथका पथ-प्रकाशक दीपक अचानक बुझ जाता है और निशान्धकारकी सघनतामें पथानुसन्धान नहीं मिल पानेसे तेरे चरण स्तम्भित हो जाते हैं, तो तुम बतलाओ कि इस प्रतिकूलतामें भी तुम्हारी आस्था विचलित और तुम्हारे चरण विकलित क्यों हो रहे हैं? भले घनी निराशाकी कालिमाने तुमको पूर्णावृत कर लिया है, पर विश्वास करो, तिमिराच्छन्न मार्गमें जहाँ तुम्हारे चरण ठहर गये हैं, उसी स्थानपर मंजिल अपने आप आ जायेगी। लक्ष्य-सिद्धिके लिये तू मेरे आशीर्वादकी निधि अपने साथ लेता जा।

तू मेरे स्मितकी आभा अपने साथ लेता जा।

दिव्य और भव्य भावोंकी यह निधि श्रीसुएसके जीवनकी अलौकिक वस्तु थी। इसे प्राप्त करके श्रीसुएस अपने भाग्यकी सराहना करने लगे। उन्होंने बड़े भारी मनसे बाबासे विदाई ली। बाबा अपनी कुटियाके द्वारपर

खड़े रहे और तबतक खड़े रहे, जबतक श्रीसुएस दिखलायी देते रहे। श्रीसुएस बम्बई होते हुए अपने देश स्विटजरलैंड चले गये।

सन् १९६३ में श्रीसुएसकी बाबासे भेंट दो बार हुई। इसके बाद श्रीसुएस अपने देशसे बाबासे मिलनेके लिये सन् १९८९ और १९९१ में आये। वे बाबाके तिरोधान होनेके बाद भी १९९३ के फरवरी मासमें भाव-भरा हृदय लिये हुए आये। सम्भवतः सन् २००० के आस-पास श्रीसुएसका निधन हो गया। फिर श्रीसुएसकी धर्मपत्नी सन् २००२ में स्विटजरलैंडसे बाबाके श्रीविग्रहको प्रणाम करनेके लिये गीतावाटिका आयीं।

* * * * *

भगवती श्रीविष्णुप्रिया जन्मोत्सव

सं. २०२० वि. वसंत पंचमी, अर्थात् १९ जनवरी १९६४ के दिन बाबाने नदियाविहारी शचीनन्दन श्रीनिमाई पण्डितकी प्राणनिधि भगवती श्रीविष्णुप्रियाजीका जन्मोत्सव बड़े भावपूर्वक मनाया था। भगवती श्रीविष्णुप्रियाजीके प्रति श्रीजयदयालजी डालमियाका अत्यधिक भक्तिभाव है। प्रभुपाद श्रीहरिदासजी गोस्वामीने महाप्रभु श्रीचैतन्यदेवपर, श्रीलक्ष्मीप्रियापर, श्रीविष्णुप्रियापर तथा विष्णुप्रिया-निमाईपर प्रभूत साहित्यकी रचना की है। इन्हींकी बंगला भाषामें एक श्रेष्ठ रचना 'श्रीविष्णुप्रिया नाटक' है। इस नाटकके हिन्दी अनुवादकी पाण्डुलिपिका पूजन भी इसी वसंत पंचमीको हुआ। मेरा अनुमान है कि इस नाटकका बंगला भाषासे हिन्दीमें रूपान्तर स्वयं श्रीडालमियाजीने किया है, भले अनुवादका किंचित् संशोधन किसी अन्यसे करवाया गया हो। मेरा यह भी अनुमान है कि जिस प्रकार बाबाने 'सनातन शिक्षा'के अनुवाद और प्रकाशनके लिये श्रीडालमियाजीको प्रोत्साहित किया, उसी प्रकार 'श्रीविष्णुप्रिया नाटक'के अनुवाद और प्रकाशनका कार्य बाबा द्वारा श्रीडालमियाजीको सौंपा गया होगा। इस नाटकका पुस्तकाकार प्रकाशन तो सं. २०२१ वि. की रासपूर्णिमाको हुआ, पर जब इसके हिन्दी अनुवादकी पाण्डुलिपि तैयार हो गयी, उस समयकी बात है।

पाण्डुलिपिके तैयार होते ही बाबाने निश्चय कर लिया कि

सं. २०२० वि. की वसंत पंचमीके दिन भगवती श्रीविष्णुप्रियाजीका और इस ग्रन्थका पूजन करना है तथा यह पूजन श्रीडालमियाजीसे करवाना है। वसंत पंचमी तो आयेगी दस-ग्यारह मास बाद, पर बाबाकी ओरसे अग्रिम तैयारी अभी से आरम्भ हो गयी। वसंत पंचमीसे आठ-नौ मास पूर्व एक दिन बाबाने मुझको बुलाया और मुझसे कहने लगे – आपको एक कविता लिखनी है। उसकी वर्ण्य-वस्तु तथा कथा-प्रवाह क्या होगा, वह मैं आपको अभी बतलाऊँगा। मेरे बतलाते समय आप न कोई प्रश्न पूछियेगा और न कोई जिज्ञासा करियेगा। मेरी बतलायी हुई बातोंमेंसे जितना स्मरण रह जाय, उतना पर्याप्त है। मेरे वर्णनके आधारपर जो कविता आप लिखें, उसे वसंत पंचमीके पूर्वतक कभी भी मुझे दिखलाइयेगा मत और यदि कविताकी रचना आपके द्वारा नहीं हो सके तो मनमें ग्लानि भी मत करियेगा। यदि आपने कविताकी रचना कर ली तो वसंत पंचमीके दिन अपनी कुटियाके एकान्तमें जयदयालजीको सुनवाऊँगा।

इस प्रकार अनेक प्रतिबन्ध लगाकर बाबा लगभग एक-डेढ़ घंटेतक लगातार बोलते-बतलाते रहे। मैं दत्त-चित्त होकर सुन रहा था, पर कितना स्मरण रख पाता। सुनी हुई बातोंमेंसे जितना मुझे स्मरण रह सका, वह भी दो-तीन मासमें विस्मृतिके गर्भमें चला गया। अभी तो बहुत समय है – ऐसा सोचकर तुरन्त रचना की नहीं और समयके व्यतीत होनेके साथ-साथ स्मृति अधिकाधिक धूमिल होती चली गयी। छः-सात मास बाद तो कुछ भी याद नहीं आ रहा था। बाबा द्वारा वर्णित सम्पूर्ण कथा-प्रवाह ही पूर्णतः विस्मृत हो चुका था। मेरा मन बड़ा खिन्न हो गया। निराश और निर्बलका आधार प्रार्थना ही है। मैं मन-ही-मन भगवती श्रीविष्णुप्रियाजीकी बार-बार वन्दना करके उनसे प्रार्थना करने लगा। चार-पाँच सप्ताहकी सतत वन्दना-प्रार्थनाके उपरान्त जो भाव मनमें उभरे, वे ही कविताकी पंक्तियोंमें ढल गये। अपने प्रमाद और विस्मृतिपर मुझे बड़ी शर्म आ रही थी, पर अब मैं इसी बातसे ही सन्तोष कर रहा था कि साधारण स्तरकी कविताकी रचनाके हो जानेसे बाबाके सामने रिक्त-हस्त जानेवाली स्थिति नहीं रही।

बाबाके मनमें एक बहुत बड़ी समस्या थी श्रीविष्णुप्रियाजीके समक्ष निवेदित किये जानेवाले नैवेद्यके सम्बन्धमें। सब जानते हैं कि वे प्रातःकालीन दैनन्दिन पूजनादिके बाद एक पात्रमें कुछ चावल अपने सामने रखकर बैठती थीं और सोलह नामवाले मन्त्रको एक बार जप करके

चावलका एक दाना दूसरे पात्रमें डाल देती थीं। चावलके दानोंके साथ उनका यह जप अपराह्न काल तक चलता रहता। इस रीतिसे दूसरे पात्रमें जितने चावल संचित हो जाते, उसका ही रन्धन किया जाता और फिर वे सिद्ध भातसे अपने प्राणनाथ श्रीचैतन्यदेवको भोग लगाती थीं। इसमेंसे वे थोड़ा-सा प्रसादी भात स्वयं पातीं, शेष प्रसादान्न भक्तोंमें बाँट दिया जाता था। जिन भगवती श्रीविष्णुप्रियाजीका समर्पित जीवन कठोर तपका, महान उत्सर्गका, दिव्य भावका मूर्तिमान स्वरूप था, उनके समक्ष निवेदित किया जानेवाला नैवेद्य भी तो परमातिपरम शुद्ध सात्त्विक होना चाहिये। इसके लिये बाबाको आवश्यकता थी परम पवित्र धनकी, जिससे नैवेद्य-निर्माणके लिये सामग्री खरीदी जा सके।

बाबाने अपने निकट आनेवाले प्रत्येक धनपतिसे कमाये गये धनकी शुद्धताके बारेमें पूछा तो बाबाको बड़ी निराशा मिली। सभी धनपतियोंने स्पष्ट रूपसे स्वीकार किया कि *द्रव्यार्जनमें असत्य अथवा असद्भावका* किंचित् भी आश्रय लिया ही नहीं गया, ऐसा नहीं कहा जा सकता। जो व्यापारी अथवा उद्योगपति आयकरकी चोरी नहीं करते, उनके द्वारा भी अपने कर्मचारियोंके प्रति कभी अन्यथा व्यवहार नहीं हुआ हो, यह स्वीकार करना सर्वथा असम्भव था। बाबाकी इस कसौटीको देखकर सारे धनपति स्वजनोंने अपनी-अपनी विवशता व्यक्त कर दी। जो सरकारी कार्यालयोंके साधु कर्मचारी थे अथवा नगरके महाविद्यालयके सुयोग्य प्राध्यापक थे, उन्होंने भी बाबासे अनुरोध किया। उन सभीसे बाबाका प्रश्न था कि क्या वे लोग डटकर-खटकर-जमकर पूरे समय अपना कार्य सदा करते रहे हैं। बाबाके प्रश्नोंकी झड़ीके सामने वे लोग भी विवशताका अनुभव करने लगे। बाबा हृदयसे चाहते थे कि भगवती श्रीविष्णुप्रियाजीके लिये जो नैवेद्य बने, उस नैवेद्यकी सामग्रीको परम पवित्र रीतिसे कमाये गये अत्यधिक शुद्ध रुपयोंसे खरीदा जाय।

बाबाकी परेशानीको देखकर गोस्वामीजी (श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी) ने उनसे कहा – क्या आप मेरा वेतन इस पवित्र काममें ले सकते हैं?

गोस्वामीजीकी बात सुनकर बाबा कुछ देर तक मौन रहे और फिर बोले – आपके धनकी शुद्धता और पवित्रताके बारेमें संदेह करनेके लिये स्थान ही नहीं है। 'कल्याण-कल्पतरु' पत्रिकाका सम्पादन-कार्य स्वरूपतः

परम श्रेष्ठ कार्य है। आपके जीवनमें असत्यका अंश नहीं। आप छः घंटेके स्थानपर तेरह-चौदह घंटे कार्य प्रतिदिन करते हैं, यहाँतक कि आप रविवारको भी अवकाश नहीं लेते। अबतक मैंने जितने भी व्यक्तियोंसे बात की है, उन सभीमें आपका स्थान सर्वोपरि है। इतना होकर भी यहाँ मेरे लिये एक तथ्य विचारणीय है। पत्रिकाके सम्पादन-कार्यके द्वारा आप समाजमें ज्ञानका वितरण करते हैं और इस कार्यको करनेके बदलेमें आप मासिक वेतन लेते हैं। अब विचारणीय तथ्य यह है कि किसी ब्राह्मणके द्वारा ऐसा किया जाना क्या अनुमोदनीय है? अपने भारतवर्षके हिन्दू धर्म और हिन्दू संस्कृतिके अनुसार समाजको ज्ञानका दान करनेवाले ऋषि तो आकाश-वृत्तिसे जीवन व्यतीत किया करते थे। कुछ देकर बदलेमें कुछ लेना, यह लेन-देन तो वणिक् वृत्ति है और अपने ऋषियोंका जीवन तो वणिक् वृत्तिसे सर्वथा शून्य रहा है। वे ज्ञानका दान निरपेक्ष भावसे करते थे। यदि आप वैश्य होते तो मैं आपका पवित्र धन सहर्ष स्वीकार कर लेता, किन्तु आप ब्राह्मण हैं, अतः अब मुझे सोचना पड़ रहा है कि आप द्वारा उपार्जित धन स्वीकार करूँ अथवा नहीं।

बाबाकी बात सुनकर गोस्वामीजी मौन हो गये। वैश्यके द्वारा उपार्जित धनको स्वीकार किया जा सकता है, यह सुनकर मैंने कुछ निवेदन करनेके लिये साहस किया। विनम्र शब्दोंमें मैंने बाबासे कहा – बाबा! मैं भी कुछ निवेदन करना चाहता हूँ।

बाबा श्रीविष्णुप्रियाजीकी अर्चनाके लिये जिस प्रकारका परम पवित्र धन चाह रहे थे और पद-पदपर जैसी निराशा मिल रही थी, ऐसी विषम मनस्थितिमें मेरे द्वारा कुछ भी निवेदन किया जाना एक दुस्साहस ही था, यह जानते हुए भी मुझसे निवेदन किये बिना रहा नहीं गया। मेरी बात सुनकर बाबाने पूछा – क्या कहना चाहते हैं?

बाबाने मुझसे पूछा ऐसे स्वरमें, जिसमें कुछ निराशा और कुछ उदासीनता थी। उनके स्वरमें चिरपरिचित सरसता न देखकर मैं साहस बटोर करके डरते-डरते अपनी बात कहने लगा। मैंने धीरे-धीरे कहना आरम्भ किया – बाबा! जब मैं सरदारशहरमें पढ़ाया करता था, तब कई वर्षतक मैं अपने हाथसे चरखे द्वारा सूत कातता रहा हूँ। मैं अपना कमरा बन्द कर लेता था। श्रीरासपञ्चाध्यायीका पाठ बोल-बोलकर करता रहता और सूत कातता जाता। इसमें प्रतिदिन लगभग ४५ मिनट लगते।

अभीतक मैंने किसीको बतलाया नहीं और बतलानेका साहस भी नहीं हुआ, पर सूत कातनेके पीछे भावना यह थी कि इस कते हुए सूतका वस्त्र बने और वह वस्त्र आपके धारण करनेके काममें आये। वह सारा सूत अभीतक मेरे पास पड़ा हुआ है। यह श्रम तो मैंने किया है और परम सात्त्विक उद्देश्यसे किया है। मेरा ऐसा अनुमान है कि इस सूतको बेचकर जो पैसा मिले, वह तो इस पूजनके कार्यमें आ ही सकना चाहिये।

बाबाने मुझसे पूछा — जिस कालेजमें आप पढ़ाते थे, वहाँ नियुक्ति-प्राप्तिके लिये क्या आपने किसीसे सिफारिश करवायी थी, जिसके फलस्वरूप कालेजमें कार्य करनेका अवसर आपको मिल गया और आपसे अधिक योग्य व्यक्ति निराश होकर चला गया?

मैंने पुनः कहा — बाबा! कम-से-कम मैं आपके सामने सत्य बोलूँगा। मैंने किसीसे भी सिफारिश नहीं करवायी थी। कालेजके प्रबन्धकों द्वारा समाचारपत्रमें रिक्त स्थानको विज्ञापित करवाया गया था। मैंने अपना प्रार्थना-पत्र भेज दिया और मुझे साक्षात्कारके लिये बुलवाया गया। मैं उनके लिये और वे मेरे लिये सर्वथा नवीन व्यक्ति थे। और भी कई व्यक्ति आये थे, पर उन लोगोंने नियुक्ति-पत्र अपनी स्वेच्छासे मुझे दिया।

इस विवरणसे बाबाको पूर्ण समाधान हो गया। बाबासे अनुमति मिलते ही सारा सूत एक स्वजनको बेच दिया गया। बेचनेसे जितना रुपया मिला, उसमेंसे रूईका मूल्य निकाल दिया गया। शेष पाँच-छः रुपये बचे। इन्हीं रुपयोंसे नैवेद्य-निर्माणके लिये चावल, बेसन, दही, नमक, हल्दी, जीरा, घी, कोयला आदि खरीदा गया और पूजनके लिये नैवेद्य निर्माणकी तैयारी होने लगी।

चावलको खरीदनेके बाद अब चावलके एक-एक दानेको सोलह नामवाले महामन्त्रसे अभिमन्त्रित करना था। सभी चाहते थे कि इस कार्यमें मुझे भी भाग लेनेका अवसर मिले, पर इस कार्यको करनेकी दृष्टिसे भी बाबाने मन-ही-मन एक विशेष निर्णय ले रखा था। जिसके हृदयमें महातपस्विनी भगवती श्रीविष्णुप्रियाजीके त्रयतापहारी श्रीचरणोंमें सच्ची निष्ठा हो और जिसकी मति-रति उन परम विश्ववन्दनीयाके महोत्सर्ग और महानुरागपर बार-बार बलिहारी जा रही हो, उन्हींके द्वारा अभिमन्त्रित करनेका कार्य होना चाहिये और ऐसा सोचकर बाबाने इस कार्यको करनेका सम्पूर्ण सौभाग्य श्रीडालमिया-दम्पतिको प्रदान किया। कुछ लोगोंने बाबासे

निवेदन किया — श्रीजयदयालजी और उनकी जीवनसंगिनी, ये दोनों मिलकर एक दिनमें चावलके कितने दाने अभिमन्त्रित कर पायेंगे?

बाबाने तत्काल उत्तर दिया — इस रीतिसे भले सौ दाने ही अभिमन्त्रित किये जा सकें, पर मुझे तो केवल ये ही सौ दाने चाहियें।

बाबाके उत्तरसे सभीके अधर मौन हो गये। परमादरणीया चाचीजी (डालमियाजीकी धर्मपत्नी) तथा डालमियाजी, दोनोंने स्नान करके शुद्ध देशी वस्त्र धारण किये और पवित्र आसनपर बैठ करके "हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।" का जप करते हुए वे चावलके एक-एक दानेको अभिमन्त्रित करने लगे। प्रातःकालसे लेकर दोपहरके लगभग एक-दो बजे तक जप करनेसे जितने दाने अभिमन्त्रित किये जा सके, उनको ही सिद्ध किया गया। जहाँ रन्धन किया गया, उस स्थानकी शुचिताके बारेमें भी बाबा बड़े सावधान थे। सारी भूमिको गायके गोबरसे लीपा गया था। कुछ-कुछ ऐसा याद आ रहा है कि रन्धनका कार्य सम्पन्न हुआ था गोस्वामीजीकी धर्मपत्नीके द्वारा। आज बाबा पद-पदपर सावधान थे, जिससे कठोर-व्रती, महा-साध्वी भगवती श्रीविष्णुप्रियाजीके भावोंके अनुरूप कार्य हो सके।

दो नयी चौकीपर विश्वपावनी भगवती श्रीविष्णुप्रियाजीका और विश्वप्रेरक श्रीविष्णुप्रिया नाटकका सविधि पूजन हुआ। एक ब्राह्मण दम्पतिका बड़े भाव पूर्वक पूजन किया गया और भोजन कराकर उन्हें पर्याप्त वस्त्र एवं द्रव्य दिया गया। बाबाने यह सारी पूजा श्रीडालमियाजीके द्वारा करवायी। कीर्तनके बोल तो मुझे स्मरण नहीं, परंतु पूजनके बाद भगवती श्रीविष्णुप्रियाजी एवं महाप्रभु श्रीचैतन्यदेवके नामका बहुत देरतक तुमुल कीर्तन होता रहा। इसके बाद वह परम दिव्य प्रसाद सबके मध्य वितरित किया गया। मात्र कुछ कण ही सभीको मिल पाये। वह प्रसाद था अति दुर्लभ और परम प्रभावकारी। कुटियाके आस-पासका वातावरण बड़ा भावमय हो रहा था। बाबा आज विशेष रूपसे भावाविष्ट थे। बाबाने पहले भी कई बार कहा है और पूजनके समय भी कहा — क्रन्दन ही मेरा जीवन है। सच पूछा जाय तो आज 'क्रन्दन' का उत्सव था। श्रीविष्णुप्रियाजी तो क्रन्दनकी साक्षात् प्रतीक हैं।

रात्रिके समय जगरेके पास बाबाने वह कविता श्रीडालमियाजीको सुनवायी। जाड़ेके दिन थे और कुटियाके बाहर धूनी जल रही थी।

वहींपर बाबाने श्रीडालमियाजीको बैठाया। कुछ और स्वजन भी स्वेच्छासे आ गये और उनको भी बाबाने बैठनेका अवसर दिया। बाबाकी चाह तो पूर्ण एकान्तकी थी, पर वैसी बात बन नहीं पायी। सभीके सामने वह कविता पढ़ी गयी। कविताको सुनकर बाबाने बड़ा साधुवाद दिया और कहने लगे – श्रीगंगाजीमें पापी-तापी-शापीको मुक्ति प्रदान करनेकी जो क्षमता है, उस क्षमतामें और श्रीगंगाजीकी सम्पूर्ण सत्तामें प्रेमकी प्रतिष्ठा करनेके लिये, इतना ही नहीं, उस मुक्ति-प्रदायिनी सत्ताके कण-कणमें प्रेमोद्भूत क्रन्दनकी ज्वाला भरनेके लिये श्रीराधाकृष्णने व्रजका यमुनातट छोड़कर नवद्वीपमें गंगातटपर अवतार लिया, इस तथ्यकी अभिव्यक्ति बड़ी सुन्दर रीतिसे हुई है। मैं सही-सही कह रहा हूँ कि मेरा भावराज्य रुपयेमें बारह आना इस कवितामें उतर आया है।

मैंने विनम्र शब्दोंमें कहा – आठ-नौ मास पहले आपने जो बताया था, वह मैं सर्वथा भूल गया। मैंने रचना करनेमें बड़ी देर कर दी। जब कविता लिखनेके लिये बैठा तो कुछ भी याद नहीं आ रहा था। फिर मैं भगवती श्रीविष्णुप्रियाजीसे मन-ही-मन प्रार्थना करने लगा। उनकी कृपासे जो स्फुरित हुआ, वही इस कवितामें लिखा गया है।

बाबाने कहा – जो लिखा गया है, वह एक अद्भुत वस्तु है।

फिर बाबाने श्रीडालमियाजीसे कहा – आप इस कविताको छपवा दें।

श्रीडालमियाजी तो छपवानेकी बात सोच ही रहे थे, अब तो बाबाने भी निर्देश दे दिया। वह कविता भी इस विवरणके अन्तमें दी जा रही है।

उस कते हुए सूतके सम्बन्धमें भी एक तथ्यको इस विवरण-क्रममें लिख देनेकी स्फुरणा मनमें हो रही है। जिनको वह कता हुआ सूत बेचा गया था, वे अपने ही एक आत्मीय जन थे और वह सूत उनके पास पूर्णरूपेण सुरक्षित रखा हुआ था। उस कते हुए सूतका वस्त्र यहाँके खादी भण्डारने बनवा दिया और क्या ही सुन्दर बात बन गयी कि ठीक श्रीराधाष्टमीके दिन बाबाने उस वस्त्रको धारण किया। जैसा मैं वस्तुतः चाह रहा था, वैसा घटना-क्रमके अनुसार क्रमशः अपने आप हो गया। मैं इसके बारेमें कुछ कहने या करनेका साहस नहीं कर पा रहा था, पर परम कृपालु भगवानने स्वतः वह ढंग बैठा दिया, जिससे मेरी एक अभिलाषा पूर्ण हो सकी।

सूतको कातने तथा बेचनेका और कविताको रचने तथा सुनानेका जो प्रसंग ऊपर लिखा है, यह सब यहाँ प्रस्तुत करते हुए मुझे बड़ा संकोच हो रहा है। अपनी बात अपने मुँहसे बताना और अपनी कलमसे लिखना कोई अच्छी बात नहीं है। ऐसा होकर भी मैंने लिखनेकी धृष्टता की है। इस लिखनेके पीछे सचमुच मूल प्रेरणा है बाबाके सत्यपरायण जीवनकी एक झाँकी प्रस्तुत करना। बाबा किसी बातकी कितनी अधिक गहराईमें उतरते थे, किसी बातको कितना अधिक परखते थे, किसी बातकी तहतक पहुँचनेके लिये कितनी अधिक खोज-बीन करते थे और शुद्धता-पवित्रता-सत्यताके प्रति कितना अधिक आग्रह रखते थे, इन सबको जाननेके लिये यह प्रसंग एक उदाहरण है। इस प्रसंगके साथ मेरा नाम जुड़ा रहनेसे मुझे वस्तुतः बड़ा संकोच हो रहा है, पर संकोचके भारको मनने सहन किया यही सोचकर कि इससे बाबाके व्यक्तित्वका एक गौरवपूर्ण पक्ष उद्‌घाटित होगा।

वसंत पञ्चमी, सं. २०२० वि. के दिन गीतावाटिका, गोरखपुरमें पढ़ा गया श्रीश्रीविष्णुप्रिया स्तवन

नीरव दिशि-दिशि नीरव निशीथ, नीरव था नभका तारक दल।
नीरव नभ-गंगाके कण-कण, नीरव था नभका नीलाञ्चल॥
उस नीरवतामें था स्पन्दित, नीरव संलाप मृदुल अविरल।
निशिका निशीशका नेह छके, दो हृदयोंका अतिशय निश्छल॥

दो अधर हिले चुपचाप खुले, नभ-गंगाके नव पनघटपर।
दो हृदय इधर उन्मुक्त खिले, नवद्वीप-पार्श्विनीके तटपर॥
था सजा शयन गृह, शय्यापर विकसित पुष्पोंकी नव चादर।
शय्यापर पुष्पोंका वितान, शय्यापर पुष्पोंकी झालर॥

धूप-गंधसे शुचि शोभासे, मुखरित था शयनागार सकल।
शोभाकी शोभा बढ़ी और पा विमल स्नेहकी सुरभि विमल॥
दो स्नेही हृदयोंसे विकसित जो स्नेह लहरियाँ थीं निर्मल।
उनकी सुषमासे शयन-कक्षकी शोभा थी बोझिल प्रतिपल॥

उस शयन-कक्षकी शय्यापर थे परम सुशोभित नित्य युगल।
श्रीविष्णुप्रिया चैतन्य गौर, प्रेमी-प्रेमास्पद नित्य नवल॥

दोनों ही दोनोंमें डूबे, दोनों ही सुखदाता अविरल।
थीं पैर दबाती विष्णुप्रिया, चैतन्य हृदय पुलकित पल-पल।।

कुछ कौतूहल, कुछ उत्सुकता, कुछ जिज्ञासाकी मधुर लहर।
उभरी धीरे-से मन्द-मन्द श्रीविष्णुप्रिया-मुख-मण्डलपर।।
उस नीरवतामें छलक पड़ा भीना-भीना-सा नीरव स्वर।
प्राणोंने पूछा मौन-मौन – "क्या मैं ही राधा हूँ? प्रियवर"।।

प्राणोंका नीरव प्रश्न सुना – नवद्वीप-पार्श्विनी सुरसरिने।
उस शयन-कक्षके कण-कणने चैतन्य गौरके अन्तरने।।
मौन प्रश्नका दिया मौन उत्तर था अधर-अरुणिमाने।
चैतन्य गौरके अधर-विहारी, नित्य विलासी मधु स्मितने।।

'प्रियतमे! भूल क्या गयी स्वयंको, मुझको, इतनी भोली तुम?
हम नित्य सङ्ग सम्बन्ध नित्य, मैं माधव हूँ, हो राधा तुम'।।
प्राणोंने पूछा पुनः प्रश्न – 'फिर कहाँ तरणिजा-धार परम?
त्यागी क्यों वह स्नेहिल यमुना? सुरसरिता-तीर बसे क्यों हम'?

मूक प्रश्नका मूकोत्तर था तुरत दिया फिर मधु स्मितने।
'पायी मुक्ति परम दुर्लभतम, सुरतरंगिणीसे जगने।।
उस मुक्तिदायिनी सत्ताके कण-कणमें आये हैं भरने।
क्रन्दन-ज्वाला, जिसमें जल-जल नित ज्वलित ज्वालके स्नेह सने'।।

'तो क्या मुझको जलना होगा क्रन्दनकी ज्वालामें? प्रियतम!
क्या मुझको अब बहना होगा, आँसूकी धारामें हरदम'?
"हम तुम एक, अतः प्राणाधिक प्रियतमे! जलो क्यों केवल तुम?
क्रन्दन ज्वालामें साथ-साथ अनवरत जलेंगे दोनों हम'।।

शब्दातीत सरल जिज्ञासा व्यक्त हुई जो बिना शब्द ही।
सरस गरलमय समाधान भी प्राप्त हुआ जो अनायास ही।।
सुना शयनगृहने, शय्याने, सुरसरिने अन्दर-अन्दर ही।
निशि-निशीश, नभ-गंगा, नभके नीलाञ्चलने मौन-मौन ही।।

* * *

जाने कितने तारे टूटे नभके विस्तृत नीलाञ्चल से।
जाने कितने अश्रु बह गये, सुरतरंगिणीके कपोलसे॥
जाने क्यों कहता फिरता है, व्यथित समीरण अपने मुखसे।
व्यथा-तप्त करुणार्द्र कहानी, दो विरही हृदयोंकी जगसे॥

नीलाचलमें नील उदधिके नील तीर पर व्यथित विराजित।
सुध-बुध सभी गौर सुन्दरकी, नील-धारमें बही अपरिमित॥
नीलकृष्णके एक चरणपर, सुख-दुख सब हो गया समर्पित।
'कृष्ण', 'कृष्ण' के करुण रुदनसे दिशा-दिशा हो गयी निनादित॥

रुदन कण्ठमें, रुदन रोममें, रुदन नयनकी हर हलचलमें।
धधक उठी क्रन्दनकी ज्वाला गौर-हृदयके प्रति स्पन्दनमें॥
कृष्णान्वेषण दिनमें, निशिमें, जलमें, नभमें, जड़-चेतनमें।
कृष्ण-विरहकी चिता जल गयी व्यथित गौरके अङ्ग-अङ्गमें॥

एक बह चला सजा चिताको, नीलाचलकी नील धारमें।
एक गयी सम्पूर्ण डूब, अपने आँसूके गहन उदधिमें॥
गौर-हृदयकी नितविहारिणी, जली गौरके विरह-ज्वालमें।
जल-जल बुझना, बुझ-बुझ जलना, शेष यही था उस जीवनमें॥

कितने आँसू हुए प्रवाहित विष्णुप्रियाके तृषित नयन से?
कितनी भीगी साड़ी उतरी, गौर-विरहमें दग्ध बदनसे?
कबसे हो रहा संगमन, सुरतरंगिणीकी धारासे?
सरस्वती-यमुनाका अविरल, निकल-निकलकर शून्य नयनसे?

कैसी चाह मिलनकी भीषण, जली प्रियाके हृदय सदनमें?
कैसा हाहाकार मचा था, तनमें, मनमें और नयनमें?
'हा-हा' भीतर, 'हा-हा' बाहर, भीतर-बाहरके कण-कणमें।
'हा-हा' का रव व्याप्त हो गया, जलमें, थलमें और गगनमें॥

हाहाकार भरे घरमें था कहीं न कुछ भी स्वरका स्पन्दन।
सूनी आँखें, सूना जीवन, सूना घरका सारा आँगन॥
नीरव प्राङ्गणमें बैठी थी, विष्णुप्रिया अति ही नीरव मन।
नमित नयनकी व्यथित अश्रु-धाराने पूछा — "हे जीवन-धन"॥

तुरत गौर सुन्दरकी मनहर गौर कान्तिसे नित संस्पर्शित।
नील लहरियोंसे ध्वनि आयी-''कहो प्रियतमे! क्या अभिवाञ्छित?''
स्वप्न देशके वीणा-रव-सी, नीरव ध्वनि सुन हुई विकम्पित।
अश्रु-धारकी परमाकुलता मौन-मौन ही हुई निवेदित॥

''कब तक मुझको बहना होगा? क्या सत्य एक यह क्रन्दन है?
जलना-बुझना, बुझना-जलना, क्या यही एक बस जीवन है?
कब तक ये गीले नयन गलें? क्यों दूर हृदयका चन्दन है?
क्या आशा करूँ न दर्शनकी? क्या दासी पूर्ण अभागिन है?''

नील लहरियोंकी नीरव ध्वनि हुई ध्वनित नीरव प्राङ्गणमें।
''हम तुम एक, सदा सङ्गी हैं दुसह विरहके भी प्रसङ्गमें॥
विरह मिलनका पोषक, हम-तुम जलें और भी, प्राणप्रियतमे।
क्रन्दन और हास्यसे ऊपर पुनः मिलन होगा निकुञ्जमें॥

आशा छूटी, बिजली टूटी कलित बेल पर गौर मिलनके।
सम्बल छूटा, तारा टूटे पूर्ण तिमिरमय नीलाम्बरके॥
धीरज छूटा, बन्धन टूटे भग्न हृदयके, नयन-कोषके।
टूट-टूटकर आँसू बिखरे, आँगनमें सम्पूर्ण विश्वके॥

डूब गया वसुधाका आँगन, डूब गया नभका नीलाञ्चल।
डूब गया नवद्वीप-पार्श्विनी सुरतरंगिणीका भी आँचल॥
आँचलकी सारी सत्ता भी डूब गयी आँसूमें गल-गल।
बची समयके दो कपोल पर शुभ्र अश्रुकी धार अनर्गल॥

वही समय साक्षी है जगमें, शुभ्र अश्रुकी शुभ धाराका।
वही समय साक्षी है अब भी, नव निकुञ्जकी शुभ शोभाका॥
जहाँ छिटकता शुभ प्रकाश है, पीली-नीली ललित शिखाका।
जिसके शुभ्रालोक-पुञ्जमें, डूबा कण-कण है अग-जगका॥

* * * * *

कालती बुढ़िया का श्राद्ध-दिवस

बाबूजीके घरमें झाडू लगाने, बरतन माँजने आदि कार्यके लिये एक बुढ़िया काम किया करती थी। वह अत्यधिक श्याम वर्णा थी, अतः उसका नाम ही पड़ गया था कालती बुढ़िया। उसका घर गोरखपुर शहरके पास एक देहातमें था, किन्तु वह गीतावाटिकामें ही रहा करती थी। यहाँ काम करते हुए उसे बहुत समय हो गया था।

सम्भवतः सन् १९६४ में उसका देहान्त हो गया। उसके घरवालोंने शवका अग्नि-संस्कार पारिवारिक परम्पराके अनुसार गोरखपुरके किनारे बहनेवाली राप्ती नदीके राजघाटपर किया। उसके परिवारवालोंने अपने घरपर उसका श्राद्ध-कर्म किस प्रकारसे सोलहवें दिन किया, यह मुझे पता नहीं, परन्तु गीतावाटिकामें बाबाने जो श्राद्ध-दिवस मनाया, वह अपने ही ढंगका था।

बाबाने चार-पाँच निज जनोंको अपनी (पुरानीवाली) कुटियाके सामने खुले आकाशमें बैठाया। बिछी हुई दरीके ऊपर ये सभी निज जन बैठे हुए थे। इन लोगोंके पास हरिनाम संकीर्तन करनेके लिये हारमोनियम, झाँझ, ढोलक आदि वाद्य रखे हुए थे। फिर बाबाने इन लोगोंसे षोडश नामात्मक महामन्त्रका कीर्तन आरम्भ करवा दिया। इस हरिनाम संकीर्तनमें बाबाके निर्देशानुसार प्रत्येक बारह मिनटपर एक वाक्य उच्च स्वरसे बोलना पड़ता था। हरिनाम संकीर्तनका शुभारम्भ सूर्योदयके समय हुआ। बाबाने जैसा कहा था, उसके अनुसार वह वाक्य मुझे ही कहना पड़ता था। बारह मिनट बीतनेपर मुझे ही विराम करनेके लिये संकेत देना होता था। श्रीहरिनाम संकीर्तनके विराम होते ही, जैसा बाबाने लिखवा करके दिया था, मुझे बोलना पड़ता था – 'कल्याण' सम्पादक श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके घरमें मातृहृदया कालती बुढ़ियाका आवरण स्वीकार करके झाडू-बहारू आदिकी सेवा करनेवाले नन्दनन्दन श्रीकृष्णकी सदा ही जय हो, जय हो, जय हो।

इतना बोल चुकनेके बाद पुनः महामन्त्रका सुमधुर और पावन संकीर्तन शुरू हो जाता था। संकीर्तनके मध्य हर बारह मिनटपर जय-जयकार बोला जानेवाला यह शुभानुष्ठान लगभग अपराह्न कालतक चलता रहा। कुटियाके वातावरणमें अद्भुत दिव्यता समायी हुई थी। इसके

बाद गीतावाटिकाके सभी नौकरोंको भोजन करवाया गया। भोजन कर रहे थे सेवा करनेवाले नौकर लोग और परोस रहे थे सेवा लेनेवाले मालिक लोग। बाबाकी कुटियाके सामने सम्पन्न होनेवाले श्राद्ध-भोजका यह दृश्य बड़ा ही अनुपम था और सभीके मनपर एक स्थायी और अनोखी छाप छोड़ गया।

* * * * *

पूज्य सेठजीका महाप्रयाण

श्रीसेठजी (पूज्य श्रीजयदयालजी गोयन्दका) के प्रति बाबाके भावोद्‌गार हैं—

वैकुण्ठ नामकी नगरी थी, ज्ञानी थे एक वहाँ प्रियतम!
राजा विदेहके सदृश भला प्रेमी रघुकुलमणिके प्रियतम!
आदर्श चरित्रोंके वे थे, 'जय सीताराम' तथा प्रियतम!
'नारायण' नाम अधिक उनको प्रिय था ऐसा लगता प्रियतम!

जीवनमें उनके छाया थी उस तुलाधारकी भी प्रियतम!
थे अतिशय सरल, दक्षपर थे जगके व्यवहारोंमें प्रियतम!
देखा था उनको मैंनें जब आकाशचारिणी थी प्रियतम!
होती थी सुनकर फुल्ल सदा प्रवचन पवित्र उनका प्रियतम!

(श्रीसेठजी परम ज्ञानी थे और वे भावात्मक रूपसे वैकुण्ठ अर्थात् विष्णुलोकमें नित्य निवास करते थे। भगवान विष्णु उनके उपास्य थे। वे भगवान विष्णुकी उपासनाके लिये प्रेरणा दिया करते थे। मिथिला पति श्रीविदेहराजके समान वे परम विरक्त और परम तत्त्वज्ञ थे। उनका चरित्र आदर्श था। वे भगवान श्रीराघवेन्द्रके बड़े प्रेमी थे। उनको 'जय सीताराम' और 'नारायण' बड़ा प्रिय था और वे इसीका कीर्तन करवाया करते थे। वैश्यकुलमें उत्पन्न श्रीसेठजीके जीवनमें परम भक्त तुलाधारके समान अति सरलता और अति दक्षता थी। जागतिक व्यवहारमें वे बड़े पटु थे। जब मैं उनके सानिध्यमें आया, तब उनके आध्यात्मिक प्रवचनोंको सुनकर बड़ा प्रफुल्ल हो उठता था।)

सन् १९३६ में बाबा श्रीसेठजीके सम्पर्कमें आये। यद्यपि बाबा श्रीसेठजीके सगुण-साकार-उपासना सम्बन्धित मान्यतासे सहमत नहीं थे,

परन्तु वे मुग्ध थे श्रीसेठजीके निर्गुण-निराकार-तत्त्व सम्बन्धित चिन्तन-मननपर। बाबाके जीवनमें श्रीमद्भगवद्गीताका स्थान अति महत्त्वपूर्ण रहा है और श्रीसेठजीके प्रवचनोंमें श्रीमद्भगवद्गीताके गम्भीर तत्त्वोंका सहज रीतिसे सुन्दर प्रतिपादन देखकर बाबाका अन्तर प्रफुल्लतासे भर जाता था। यही कारण था कि बाबाने श्रीमद्भगवद्गीताकी विशद् टीकाको लिखवानेमें श्रीसेठजीको अपना भरपूर सहयोग दिया। गीताप्रेससे श्रीमद्भगवद्गीताकी विशद् टीका 'गीता तत्त्व विवेचनी'के नामसे प्रकाशित है। इस ग्रन्थमें मूलतःबाबाने अपने हाथसे लिखी है और इस ग्रन्थमें भाव और विचार श्रीसेठजीके हैं, इस सारी टीकाको मूलतः बाबाने अपने हाथसे लिखी है और इस ग्रन्थमें सारी टिप्पणी और सारा संशोधन बाबूजीका किया हुआ है। इस विशद् टीकाको लिखनेमें लगभग तीन साल लग गये।

इस तीन सालकी अवधिमें श्रीसेठजीके बाबाकी कितनी सेवा-सँभाल की और कितना सम्मान दिया, इसकी सराहना करते हुए बाबा थकते नहीं थे। बाबाने स्वयं एक स्थानपर अपनी लेखनीसे लिखा है—

'मै तो श्रीजयदयालजी (श्रीसेठजी) के चरणोंकी जूती बनकर भी उनका ऋण नहीं चुका सकता, क्योंकि तीन साल अपने पास रखकर उन्होंने मुझे इस लायक बनाया कि मैं भाईजीके पास रहनेकी योग्यता प्राप्त कर सकूँ।'

प्रसंगानुरोधसे पूर्व-पृष्ठोंमें वर्णित एक-दो प्रसंगोंकी सांकेतिक आवृत्ति आवश्यक लग रही है। श्रीगीताजीकी टीकाके लेखनका कार्य पूर्ण होनेके बाद श्रीसेठजीकी चाह थी कि बाबा सदा मेरे साथ रहें श्रीमद्भगवद्गीताके संदेशको चारों दिशाओंमें गुँजा देनेके लिये। यह चाह थी श्रीसेठजीकी, परन्तु भगवान श्रीकृष्णकी योजना इससे अलग थी और भगवदीय योजनानुसार बाबा नित्य-संगका संकल्प लेकर बाबूजीके साथ रहने लगे। इस तथ्यपर टिप्पणी करते हुए बाबाने स्वयं लिखा है—

(मेरा श्रीसेठजीके साथ रहना नहीं हो पाया।) मैं क्या करूँ? मेरा मन भाईजीके प्रति ही अधिक खिचता है। इसलिये उनके (श्रीसेठजीके) चरणोंमें सब प्रकारसे न्योछावर होनेकी चाहना करनेपर भी 'किसी खास विशेष पारमार्थिक कारणसे उनकी (श्रीसेठजीकी) बात नहीं मान सकता। वे (श्रीसेठजी) मुझे बहुत प्यारे हैं और मैं निःसंकोच कह सकता हूँ कि उनके चरणोंमें भक्ति रखनेवाले घनश्यामजी, रामसुखदासजी आदिके चरणोंकी रजको मैं हृदयसे आदर करता हूँ।

जितना आन्तरिक लगाव बाबाका श्रीसेठजीके प्रति था, वैसा ही गहरा लगाव था श्रीसेठजीका बाबाके प्रति। भगवान श्रीकृष्णकी भगवदीय योजनाके अनुसार बाबा नित्य-साथका संकल्प लेकर बाबूजीके साथ गीतावाटिकामें रहने लगे। एक बार परिस्थितिने अनचाहा मोड़ ले लिया। मोड़ ले लिया, इसके स्थानपर यह कहना चाहिये कि मन्थरा-स्वभाववाले एक व्यक्तिने श्रीसेठजी और बाबाके बीच दरार डालनेका कुप्रयास किया। उसको कुछ हद तक अपने कारनामोंमें सफलता भी मिल गयी। उसने कुछ तथ्योंको भद्दे रूपसे तोड़-मरोड़-जोड़ करके और श्रीसेठजीके कथनको अन्यथा अर्थ लगा करके बातोंको इस ढंगसे प्रस्तुत किया कि परिस्थितिने अत्यधिक विकृत रूप ले लिया। इसके फलस्वरूप बाबाके मनमें यह विचार उठने लगा कि यदि श्रीसेठजीको गीतावाटिकामें मेरे रहना उचित नहीं लग रहा है, तो भाईजी (पूज्य श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) से आज्ञा लेकर मुझे गोरखपुरसे वृन्दावन चले जाना चाहिये।

ज्यों ही मलिन मनोवृत्ति वाले व्यक्तिके काले कारनामोंकी कलई खुली और उसके कुप्रयासका असली रूप सामने आया और ज्यों ही श्रीसेठजीको बिगड़ी परिस्थितिके यथार्थ स्वरूपकी जानकारी मिली, वे गीतावाटिका आये और बाबासे कहने लगे— मैंने ये कब कहा कि स्वामीजी हम लोगोंको छोड़कर चले जायँ। आपके चले जानेके लिये मैंने कभी कहा ही नहीं इतना ही नहीं, इस बातसे सम्बन्धित कोई स्फुरणा मेरे मनमें उदित कभी उदित हुई ही नहीं। मैं तो भगवानसे यहाँतक प्रार्थना करता हूँ कि यदि मेरे प्रसुप्त मनमें इस प्रकारकी कोई बात हो तो वे उसकी छायाको तुरन्त मिटा दें।

श्रीसेठजीके इस उद्‌गारोंको सुनकर बाबाका मन निर्मल प्यारके प्रवाहमें बह चला। यथार्थ सत्यके प्रखर सूर्यके सामने खल-प्रयासका धुन्ध भला कबतक टिक पाता। अब गीतावाटिकाके वातावरणमें व्याप्त थी दैवीय भावोंकी भगवदीय सुरभि।

श्रीसेठजी चाहते थे कि बाबा नित्य मेरे साथ रहें और बाबा नित्य श्रीसेठजीके साथ रहे, परन्तु प्रकारान्तरसे साथ रहे भगवान श्रीकृष्णकी भगवदीय योजनाके अनुसार। बाबा नित्य साथ रहे बाबूजीके साथ और बाबूजीका नित्य संग बना रहा श्रीसेठजीके साथ। प्रकारान्तरसे बाबा श्रीसेठजीके सदा साथ रहे।

श्रीसेठजी चाहते थे कि श्रीमद्भगवद्गीताके भगवदीय सन्देशके प्रचार-प्रसारके लिये बाबाका सहयोग मिलता रहे और बाबाका सहयोग परोक्ष रूपसे मिलता रहा। श्रीसेठजीके प्रवचनोंमें जिन सिद्धान्तोंका प्रतिपादन होता था, उन सिध्दान्तोंके प्रत्यक्ष प्रमाणके रूपमें सबके सामने उपस्थित था बाबाका वन्दनीय संन्यासी जीवन। यह सर्व विदित है कि गीताप्रेसका आधार एवं प्राण है श्रीसेठजीका आध्यात्मिक जीवन। इस गीताप्रेससे प्रकाशित होनेवाली हिन्दी पत्रिका 'कल्याण' और अंग्रेजी पत्रिका 'कल्याण कल्पतरु'के सम्पादन कार्यमें तथा गीताप्रेससे मुद्रित होनेवाले आर्षग्रन्थ तथा विविध साहित्यके प्रकाशन-कार्यमें बाबाका सहयोग, वह सहयोग जो समाजके नजरोंसे छिपे रहकर दिया गया है, उस सहयोगकी जानकारी केवल कतिपय अन्तरंग जनोंको है। यथार्थ सत्य यह है कि बाबूजीके माध्यमसे जीवनके अन्ततक श्रीसेठजीका और बाबाका नित्य साथ और नित्य सहयोग बना रहा।

सन् ६३-६४ की अवधिमें इन्हीं महान आध्यात्मिक विभूति श्रीसेठजीका स्वास्थ्य सतत कार्य-परायणताके कारण क्रमशः अधिकाधिक शिथिल होता चला गया। सन् १९६५ के आरम्भमें ऐसा लगने लगा कि जीवनका अन्तिम क्षण अब निकटसे निकटतर होता चला जा रहा है। इन दिनों श्रीसेठजी बाँकुड़ा नगरमें थे। यदि शरीरका अवशान होना ही है तो वह माँ गंगाके तटपर हो, ऐसे विचारोंके उठते ही श्रीसेठजी बाँकुड़ासे प्रस्थान करके ३१ मार्च १९६५ को स्वर्गाश्रम स्थित गीताभवन पहुँच गये।

अकस्मात बाबूजीको गोरखपुरमें यह समाचार मिला कि सेठजीके स्वास्थ्यकी दशा चिन्ताजनक है। इस समाचारके मिलते ही बाबूजी, बाबा और माँजी गोरखपुरसे वायुयान द्वारा रवाना होकर लखनऊ आये और फिर ट्रेनसे चलकर ६ अप्रैल १९६५ को स्वर्गाश्रम पहुँच गये। ज्यों-ज्यों शरीरकी चिन्ता जनित स्थितिका अप्रिय समाचार फैलने लगा, श्रद्धालु और आत्मीयजनोंकी भीड़ गीताभवनमें बढ़ने लगी। १५ अप्रैलको स्वास्थ्यने खतरनाक मोड़ ले लिया। बाबूजी तुरन्त बाबाको साथ लेकर श्रीसेठजीके पास पहुँच गया। स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज वहींपर थे ही। बाबा लगातार दो घण्टेतक श्रीसेठजीके पास बैठे रहे और निरन्तर

नाड़ी देखते रहे। १५ अप्रैल और १६ अप्रैलका दिन अति कष्टमें बीता। इस भीषण कष्टकी स्थितिमें भी नाम-जप लगातार हो रहा था। अधरोंका हिलना और अंगुलियोंकी पोरोंपर अँगुठेका फिरना तथ्यकी साक्षी दे रहे थे। दर्शनार्थ आनेवाले जनोंको प्रणाम करते देखकर श्रीसेठजी बदलेमें सबको संकेतसे राम-राम कहते। १७ अप्रैल १९६५ के अपराह्णकालमें पार्थिव शरीरसे 'हंस' ने 'विदाई' ली और उड़कर अपने देश चला गया।

इस विदाईकी वेलामें बाबा श्रीसेठजीके समीप ही थे। उन्होंने देखा– अद्वैत सिद्धान्तका सूर्य अस्ताचलको चला गया, संतोंसे आध्यात्म ज्ञानकी चर्चा करनेवाला चला गया। साधकोंको पथ बतलानेवाला सिद्ध संत चला गया, अभावसे ग्रस्त जनोंका सच्चा अभिभावक चला गया, धार्मिक संस्था गीताप्रेसका महान संस्थापक चला गया और चल रही थी अश्रुजलकी दो धाराएँ बाबाके दोनों कपोलोंपर। बाबाके नयनोंसे अविरल अश्रुप्रवाह हो रहा था और वे उस पावन पार्थिव शरीरपर रह-रह करके हाथ फेर रहे थे।

शव-यात्रामें बालक-वृद्ध, मालिक-नौकर, गृहस्थ-संन्यासी, मूर्ख-पण्डित, छोटे-बड़े सभी थे। ठीक वट वृक्षके सामने और ठीक भगवती गंगाके तटपर सजी हुई चिताको वह पावन पार्थिव शरीर सौंप दिया गया और चिताके लपटोंको क्या देर लगी उसे आत्मसात् करनेमें। यह सारा दृश्य बाबा अपने शोकाकुल नयनोंसे देख रहे थे और मन-ही-मन जय जयकार कह रहे थे उस महान आध्यात्मिक विभूतिकी।

* * * * *

पण्डित नेहरू के सूक्ष्म-देह से बातचीत

मृत्युके बाद जीवकी क्या गति होती है तथा स्थूल-शरीर, सूक्ष्म-शरीर और कारण शरीरका पारस्परिक सम्बन्ध क्या है, इसीपर बाबा कुछ बातें अपने अनुभव और अध्ययनके आधारपर बता रहे थे। शव माने है वह स्थूल-शरीर, जिसका सूक्ष्म और कारण शरीरसे सम्बन्ध-विच्छेद हो चुका हो। यह सम्बन्ध-विच्छेद ही मृत्यु है। मृत्यु होते ही सूक्ष्म-शरीर कर्म फलके अनुसार तुरन्त अन्य लोक या अन्य शरीरमें चला नहीं जाता। यदि शव-रूपात्मक स्थूल-शरीर पड़ा हुआ है तो वह

सूक्ष्म-शरीर आसक्तिके वशीभूत होकर अपने मोहकी तीव्रताके अनुपातमें इस बातके लिये प्रयास करता है कि वह पुनः उस स्थूल-शरीरमें प्रवेश करे, पर सम्बन्ध-सूत्रके विच्छिन्न हो जानेके कारण प्रवेश नहीं कर पाता और स्थूल-शरीरके आस-पास मँडराता रहता है। आस-पास मँडरानेकी अवधि अधिकतम छत्तीस घण्टे होती है। स्थूल-शरीरमें रहते हुए सूक्ष्म शरीरका जिन-जिनसे सम्बन्ध या सम्पर्क हुआ था, उन सभीको वह शवके पास देखता है और पूर्वकी भाँति उन सबसे मिलना-जुलना, बात करना चाहता है, पर अब असहाय है। बाबाने बताया – जब पण्डित श्रीजवाहरलाल नेहरूकी मृत्यु हुई, उनके शवका दाह-संस्कार लगभग तीस घण्टे बाद हुआ था। दोपहरके लगभग उनका शरीरान्त हुआ था और निधनके दूसरे दिन सूर्यास्तके आस-पास चिता प्रज्वलित हुई। जिस दिन चिता जली, उस दिन प्रातः काल अर्थात् उनकी मृत्युके लगभग अट्ठारह-उन्नीस घण्टे बादकी बात है। गोरखपुरकी गीतावाटिकामें स्थित मैं अपनी कुटियामें बैठा था। अचानक मेरे सूक्ष्म-शरीरको दिल्लीमें पण्डित नेहरूके शवके पास पहुँचा दिया गया। मेरा स्थूल-शरीर तो गोरखपुरकी गीतावाटिकाकी कुटियामें ही था। सूक्ष्म-शरीरसे वहाँ पहुँचनेपर यह दिखलायी दिया कि पण्डित नेहरूका सूक्ष्म-शरीर अपने शव-रूपात्मक शरीरके आस-पास मँडरा रहा है। मेरी (अर्थात् मेरे सूक्ष्म-रूपात्मक शरीरकी) उनसे (अर्थात् उनके सूक्ष्म-रूपात्मक शरीरसे) लगभग दो अढ़ाई मिनट बात हुई होगी। मैंने उनसे पूछा – क्या आप ईश्वरके अस्तित्वमें विश्वास करते हैं?

मेरे ऐसे पूछनेका एक विशेष हेतु था। अब न तो वे भारतके प्रधानमन्त्री थे और न अब इन्दिराके पिता थे। प्रधानमन्त्री-पदका सारा रोबदाब समाप्त हो चुका था और निज जनोंसे सारा सम्बन्ध छिन्न हो चुका था, ऐसी स्थितिमें उनकी आस्थाके धरातलको मैं जानना चाहता था। जानना इसलिये चाहता था कि उस धरातलमें यदि आस्तिकताके अणु होंगे तो यह आस्तिकता उनके निधनोत्तर जीवनमें सहायक सिद्ध होगी। पण्डित नेहरूके सूक्ष्म-शरीरने उत्तर दिया – हाँ, मैं ईश्वरके अस्तित्वमें विश्वास करता हूँ।

उनसे यह उत्तर पाकर मुझे प्रसन्नता हुई। इसके बाद मैंने दूसरा

प्रश्न किया – क्या आप प्रसन्न हैं?

इस प्रश्नके उत्तरमें उन्होंने कहा – नहीं, मैं प्रसन्न नहीं हूँ।

इसके बाद उनसे और भी कई बातें हुईं, जिनको मैं यहाँ बता नहीं सकता। दो-अढ़ाई मिनटके बाद मैं पुनः गीतावाटिकाकी कुटियामें पहुँचा दिया गया। उन्होंने जो कहा कि मैं प्रसन्न नहीं हूँ, वह ठीक ही कहा। प्रसन्न वही हो सकता है और वही रह सकता है, जिसके मानव शरीरमें कर्म श्रेष्ठ रहे होंगे। उस सूक्ष्म-शरीरमें अब प्रधानमन्त्रीपनेका रोबदाब काम तो करेगा नहीं। वह तो इस मृत्यु लोकसे परेका जगत है, जहाँ खरे सत्यका साम्राज्य है। हाँ, इतना जरूर है कि उनके सूक्ष्म-शरीरकी किरणें उत्तम कोटि की थीं। उनके जीवनमें अनेक गुण थे। यही कारण था कि उनके चतुर्दिक् व्याप्त प्रभा-मण्डल भी उत्तम कोटिका था।

बाबाने बतलाया – मेरा सम्पर्क राष्ट्रपति डा. श्रीराजेन्द्र प्रसादजीसे भी रहा है। श्रीलालबहादुर शास्त्रीसे भी मैं प्रभावित हूँ। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक उच्चस्तरीय नेताओंसे मेरी निकटता रही है, पर इस प्रकारकी बातचीत (अर्थात् उस नेताके निधनके बाद उनके सूक्ष्म-शरीरसे बातचीत) केवल पण्डित नेहरूके साथ ही हो सकी।

* * * * *

रसकी बूँदें

एक बार बाबूजी और बाबा दिल्ली पधारे और ये ठहरे आदरणीय श्रीरामकृष्णजी डालमियाके निवास स्थानपर। बाबूजी तो अपने किसी विशेष कार्यसे अन्य स्थानपर चले गये थे, पर इधर बाबाके समीप आध्यात्मिक सांनिध्यकी प्यास लिये अनेक व्यक्ति बैठे हुए थे।

इसी समय आदरणीया श्रीद्रौपदीबाई रायजादा अपने साथ तरबूजका एक टोकरा लेकर आयीं और बड़े भक्ति-भाव पूर्वक बाबाको प्रणाम किया। स्नेहसनी भाषामें बाईका सम्मान करते हुए बाबाने पूछा – टोकरा लिये हुए यह व्यक्ति तुम्हारे साथ आया है क्या?

श्रीद्रौपदीबाई – हाँ, बाबा! यह व्यक्ति अपना ही है और ये

तरबूज मैं आपके लिये लायी हूँ। घरपर एक छोटी बगीची है, उसीमें ये लगे थे।

बाबा – अच्छा, तो इन तरबूजोंको बिनारो-सुधारो और बैठे हुए इन सभी लोगोंको खिलाओ।

यह तो श्रीद्रौपदीबाईके मनकी बात थी। उनका मन प्रसन्नतासे भर गया। उन्होंने अपने व्यक्तिसे चाकू मँगवाया और तरबूजको बिनारकर-सुधारकर उसकी फाँके बाबाको देने लगीं। बाबा फाँकोंको अपने हाथसे उपस्थित लोगोंको खानेके लिये देते जा रहे थे। बाबा द्वारा वितरण तथा स्वजनों द्वारा आस्वादन, इससे वहाँका वातावरण बड़ा ही उल्लासभरा-प्यारभरा हो रहा था। बाबा अपने हाथसे तरबूजकी फाँकें दे रहे हैं, यह दृश्य ही सबको प्रीतिकी धारामें बहाये ले जा रहा था। तरबूज भी बड़ा स्वादिष्ट था और उसके बिनारने- सुधारने-देने-खानेके रसमें निमग्न रहनेसे किसीको भी भान रहा ही नहीं कि वह टोकरा कब खाली हो गया। प्यारके प्रवाहमें ऐसा ध्यान रख सकना सम्भव था भी नहीं। जब टोकरेके तरबूज समाप्त हो गये तो श्रीद्रौपदीबाईने अपने हाथका चाकू भूमिपर रख दिया। बाबा तो इस आशामें थे कि वितरणके लिये तरबूजकी फाँकें और मिलेंगी, पर चाकूको भूमिपर रखते हुए देखकर विस्मयके स्वरमें बाबाने पूछा – क्या टोकरा खाली हो गया?

श्रीद्रौपदीबाईके अधर तो मौन रहे, पर उनके दो नेत्रोंने बता दिया कि आपका कथन यथार्थ है। इस तथ्यका आभास मिलते ही बाबाको एक खेद हुआ और उस खेदको व्यक्त करते हुए वे बाईसे बोल पड़े – अरे, तेरे लिये तो बचा ही नहीं!

भले ही श्रीद्रौपदीबाईने बोलकर उत्तर नहीं दिया, पर उनका मन बार-बार यही कह रहा था कि इन लोगोंके मुखसे मैंने ही खाया है और यह क्या मेरे लिये कम सौभाग्यकी बात है कि तरबूजकी फाँकोंका वितरण आपके कर-पल्लवसे हुआ। यह आन्तरिक समाधान श्रीद्रौपदीबाईके अन्तरका था, पर बाबाका आतुर अन्तर आकुल था कि बाईको कुछ-न-कुछ मिलना ही चाहिये। बाबाने उसी समय बाईसे कहा – तुम यह चाकू कुछ ऊपरसे मेरी हथेलीपर रख दो।

उपस्थित लोगोकी कौतूहल और जिज्ञासासे भरी दृष्टि बाबापर

ठहर गयी और दृष्टिको टिकाये-टिकाये वे लोग सोचने लगे – तरबूज तो समाप्त हो गये हैं और अब चाकू लेकर बाबा क्या करेंगे?

सभीका कौतूहल-भरा चिन्तन अपने-अपने ढंगका था, पर किसीमें यह पूछनेका साहस नहीं था कि अब आप चाकू लेकर क्या करेंगे। बस, सब दृष्टि गड़ाये बाबाकी ओर देख रहे थे। सबने देखा यह कि बाबाने चाकूसे काछ करके अपनी हथेलीपर लगे रसको इकट्ठा किया और चाकूपरसे रसकी बूँदोंको अपनी अँगुलीपर लेकर श्रीद्रौपदीबाईसे कहा – अपनी हथेली पसार।

श्रीद्रौपदीबाईने अपनी हथेली पसार दी और बाबाने इकट्ठे किये हुए चार-पाँच बूँदोंको उसकी हथेलीपर चुआकर कहा – बाई! ये बूँदें ही तुम्हारा भाग हैं।

बाबाके ऐसा करते ही बाईकी आँखें भर आयीं और भरे-भरे मनसे उन्होंने इन बूँदोंको अपने अधरोंपर रख लिया। उपस्थित लोग बाबाके प्यारकी इस निराली रीतिको देख रहे थे और उन लोगोंमेंसे कोई सरस हो रहा था, कोई सजल हो रहा था, कोई सराह रहा था और कोई सिहर रहा था।

श्रीद्रौपदीबाई जब-जब उस प्रसंगकी चर्चा करती हैं, तब-तब वे रसकी बूँदें उनकी आँखोंके कोनोंमें छलकने लगती है। रसकी वे दो-चार बूँदें सरस नयनोंकी असंख्य बूँदोंके रूपमें ढलकर न जाने कितने-कितने सहृदयोंको प्यारका रसास्वादन कलतक कराती रही हैं और सदा कराती रहेंगी।

* * * * *

व्रज-रस के पदों का गायन

बाबाका कठोर काष्ठ मौन व्रत सन् १९६२ के आते-आतेतक बहुत शिथिल हो गया था। इसके एक या दो वर्षके बाद सम्भवतः १९६४ की बात है। बाबाने चार व्यक्तियोंसे कहा – आप लोग मेरे पास यहाँ गीतावाटिकामें रहें और यहाँ रहते हुए व्रजभावके पद मुझे सुना दिया करें।

ये चार व्यक्ति थे श्रीहरिवल्लभजी, श्रीठाकुरजी, श्रीवल्लभजी और

श्रीअबीरचन्दजी। इन चारों व्यक्तियोंके साथ भाई श्रीनटवरजीका नाम भी पाँचवें व्यक्तिके रूपमें जोड़ा जा सकता है, जो श्रीवल्लभजी और श्रीअबीरचन्दजीके गायन-वादनमें सहायक थे। गायनके क्रमकी व्यवस्था निर्धारित करते समय हुआ यह कि श्रीहरिवल्लभजी और श्रीठाकुरजीका एक जोड़ा बन गया और श्रीवल्लभजी और श्रीअबीरचन्दजीका दूसरा जोड़ा। जिस समय पद-गायनकी व्यवस्था हुई थी, उस समय ठाकुरजी गीतावाटिकामें लगातार चार माहतक रहे थे। जिस दिन ध्रुपद-धमारके पद होते थे, उस दिन चारों व्यक्ति साथ बैठते थे। ध्रुपद-धमारके पद चाहे वे वसन्तके हों या होलीके या झूलनके, इनमें समय और श्रम अधिक लगता था, अतः उन चारों लोगोंका साथ बैठना आवश्यक था। बाबा कुटियाके बाहर आकर ठीक समयसे बैठ जाया करते थे और गायकोंके लिये अलग लम्बे-लम्बे पाटे बिछा दिये जाते थे। कुटियाके बाहर केलेके बड़े-बड़े पेड़ थे। यह हरी-भरी कदली कुञ्ज बड़ी लुभावनी बड़ी सुहावनी लगती थी। इसी कदली कुञ्जमें इन पदोंका गायन हुआ करता था। पदोंका गायन प्रातः नौ बजेसे ग्यारह बजेतक अर्थात् दो घण्टे हुआ करता था।

बाबाको पद सुनानेके ढंगमें अनेक बार कई प्रकारके परिवर्तन हुए। एक बार ऐसा क्रम बना कि प्रातःकाल पदोंका गायन आरम्भ होता और वह गायन अपराह्ण कालतक चलता रहता। सारे दिन पदोंके गायनमें गायक ये ही पाँच थे। प्रातःकाल गायनका आरम्भ करते थे श्रीवल्लभजी और श्रीअबीरचन्दजी। कुटियाके पास उन दिनों एक विचित्र-सा वृन्दावनी रसमयताका वातावरण बना रहता था।

* * *

एक बार ऐसा हुआ कि ठाकुरजी अपने हाथमें तानपूरा लेकर इस प्रकार बजा रहे थे मानो सितार बजा रहे हों। वे तानपूराके तारोंको सितार सरीखे बजाते हुए टुन-टुनका मधुर स्वर निकाल रहे थे। श्रीठाकुरजीकी इस चेष्टाको बाबा दूरसे एकटक देख रहे थे और वे बहुत देरतक देखते रहे। तभी बाबाके मनमें यह भाव उभरा कि वीणा मँगवानी चाहिये। उसी समय बाबाने चिम्मनलालजी गोस्वामीको बुलवाया

और कहा – गोस्वामिपाद! आप कलकत्ता श्रीफोगलाजीके पास एक पत्र लिख दें कि वे एक उत्कृष्ट वीणा खरीद करके इस मासके अन्ततक यहाँ गीतावाटिका भिजवा दें।

गोस्वामीजीने कलकत्ते पत्र लिख दिया। कलकत्तेसे उत्तर यह आया कि वीणा मुख्यतः तीन प्रकारकी होती है। सरस्वती वीणा, रुद्र वीणा और विचित्र वीणा, इन तीनोंमेंसे कौन-सी वीणा चाहिये। इसे सुनकर बाबाने कहा – सर्वोत्तम सरस्वती वीणा है और इसीको मँगवाना है।

गोस्वामीजीने सरस्वती वीणा भिजवानेके लिये कलकत्ते श्रीफोगलाजीके पास पत्र लिख दिया। वह सरस्वती वीणा तुरन्त नहीं आ सकी। उसके आनेमें विलम्ब तो हुआ, पर आ गयी। वह बड़ी विशाल वीणा थी। इसके दोनों ओर बहुत बड़े-बड़े तुम्बे लगे हुए थे। प्रत्येक तुम्बेकी गोलाईका व्यास लगभग डेढ़ फीट होना चाहिये। यह वीणा लगभग पाँच फीट लम्बी थी। एक दिन शुभ मुहूर्तमें बाबाने उस सरस्वती वीणाका पूजन किया। उस दिन उन्होंने उसपर जो चन्दन चढ़ाया, वह आजतक उस वीणापर सुशोभित है। फिर बाबाने ठाकुरजीसे कहा – अब तुम बजाकर सुनाओ।

ठाकुरजीको सारंगी बजाना आता था, किन्तु उनको वीणा-वादनका अभ्यास नहीं था। श्रीठाकुरजीने दबे स्वरमें कहा – बाबा! मुझे वीणा बजानी नहीं आती।

बाबाने कहा – तुम संकोचको छोड़कर बजाओ। यह मेरा अपना 'खेल' है और अपने ही ढंगका है। किसी अन्यको नहीं सुनाना है। मैं तो अपने आनन्दके लिये सुनना चाहता हूँ।

ठाकुरजीने श्रीसरस्वती वीणाको मस्तक टेककर प्रणाम किया और फिर वे बजानेके लिये बैठ गये। तन्तु वाद्य बाबाको स्वभावतः प्रिय हैं। ज्यों ही श्रीठाकुरजीने उसके तारोंको छेड़ा और छेड़नेसे जो स्वर-लहरी प्रवाहित हुई, वह लहरी बाबाको न जाने कहाँ-से-कहाँ बहा ले गयी। बाबाको बड़ा सुख मिला। उन्होंने ठाकुरजीसे कहा – तुम प्रत्येक राधाष्टमीको यह वीणा सुना दिया करो, भले पाँच मिनट ही सुनाओ।

एक दिन एक और विचित्र घटना हो गयी। जब व्रजभावके पद

गाये जा रहे थे, तब वहाँ कोई व्यक्ति बालूपर 'राधा' नाम लिखकर चला गया। कुटियाके सामने बालू फैली हुई थी और उसी बालूपर उसने अपनी अँगुलीसे लिख दिया था। पद-गानके कार्यक्रमके बाद बाबाकी उसपर दृष्टि गयी। दृष्टि-पथमें आते ही बाबा उसके पास बैठ गये और विचार मग्न हो गये। ठाकुरजी सोचने लगे कि अचानक क्या समस्या उपस्थित हो गयी अथवा क्या बात बिगड़ गयी, जो बाबा यहाँ बैठ गये। ठाकुरजीने उनसे पूछा – बाबा! क्या बात हो गयी?

बाबाने कहा – ठाकुर! क्या बतलाऊँ? एक बड़ी उलझन सामने आ गयी है।

ठाकुरजी – क्या हुआ?

बाबा – देखो। किसीने यहाँ बालूपर 'राधा' नाम लिख दिया है और लिख करके चल दिया। अब यदि किसीका पैर इसपर पड़ जायेगा तो कितना बुरा होगा। जिसने लिखा, उसको इस नामके महत्त्वकी जानकारी नहीं। उसकी असावधानीमें या प्रमादसे कितना अनुचित कार्य हो गया। जबतक मैं इसकी कोई व्यवस्था न कर दूँ, तबतक मैं यहाँ बैठा रहूँगा।

ठाकुरजी – बाबा! क्या मैं बैठ जाऊँ यहाँपर?

बाबाने कुछ झुँझलाये स्वरमें कहा – तुम्हारे बैठनेसे क्या बात बन जायेगी? तुम्हारे बैठनेसे क्या होनेवाला है? तुम कबतक बैठे रहोगे? केवल बैठना कोई हल तो है नहीं।

अब ठाकुरजी चुप और बाबा भी चुप थे। कुछ देरतक दोनों चुपचाप रहे। इसके बाद बाबाने अपना उत्तरीय फैलाया। उन्होंने अपने उत्तरीयके आँचलमें वह सारी बालू, जहाँ 'राधा' नाम लिखा था, उसको बिटोर करके रख लिया। फिर उसे लेकर वे अपनी कुटियाके बाड़ेके भीतर गये। वहाँ तुलसीजीका एक गमला था। बाबा तुलसीजीका पूजन और वन्दन नित्य किया करते थे। उस गमलेके चारों ओर बाबाने उस बालूको फैला दिया। बाबाकी इस राधा-नाम-निष्ठाको देखकर श्रीठाकुरजीका हृदय बड़ा विह्वल हो रहा था और वे मन-ही-मन सराहना कर रहे थे।

श्रीसरस्वती वीणा और राधानामकी चर्चा बीचमें आवश्यक होनेसे आ गयी। बाबाकी कुटियाके सामने व्रजभावके पद जब ये गायक लोग गाया करते थे, तब वहाँ निकुञ्जका भावराज्य अवतरित हो उठता था।

जो-जो इस कार्यक्रमको सुननेके लिये बैठते थे, उनके अन्तरमें व्रजभावकी सरिता लहराती रहती थी और उनके मानस-पटलपर प्रिया-प्रियतम श्रीराधामाधवकी लीला चलती रहती थी। अहर्निश एक नशा छाया रहता था। सांसारिकता नामकी कोई चीज है, इसका भान ही नहीं होता था। चित्तकी वृत्ति जागतिक धरातलसे उठकर, बहुत अधिक ऊपर उठकर निरन्तर दिव्य लीला राज्यमें विहरण करती रहती थी। पदोंके गायनसे दिव्य रंगका सागर ऐसा उमड़ता रहता था कि मन-मस्तिष्क उसीसे संसिक्त रहते थे।

एक दिन होलीका रंगभरा उल्लास पदोंके गायनके माध्यमसे गीतावाटिकाके कदली कुञ्जमें छलक रहा था, तभी एक अनचाही परिस्थिति सामने आ गयी। एक सज्जन थे, जिनको ऐसा लगा कि इस प्रकारके उन्मुक्त हास-विलासका गायन तो बड़ा अनुचित है। उसकी चर्चा ही जब अनुचित है, तब उसका गायन तो सर्वथा वर्जनीय है। जो चीज वस्तुतः आलोचनीय है, उसीको यहाँपर खुले रूपमें सारे संकोच और सारी मर्यादाको किनारे रखकर गाया जा रहा है। जिस गीतावाटिकाके हाथमें धार्मिकताका ध्वज है, उस ध्वजके नीचे यह सब होना ही नहीं चाहिये। उन्होंने जाकर बाबूजीसे शिकायत की। थोड़ी देर बाद बाबूजीने बाबासे कहा – लोगोंका स्तर एक-सा नहीं होता। मानसिक धरातल भिन्न-भिन्न होनेसे समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। सामान्य लोगोंकी पात्रता ऐसी नहीं होती कि व्रजभावके गम्भीर पदोंको यथार्थ रूपमें ग्रहण कर सकें, अतः इस प्रकारकी अपचर्चाको उठने और फैलनेके लिये अवसर ही क्यों दिया जाय?

बाबूजीने यह बात ज्यों ही कही, उसी समय बाबाने गायन-वादनके सारे कार्यक्रमको एकदम विराम दे दिया। प्रातःकालसे जो पदगान हो रहा था, वह दोपहरतक हो पाया होगा कि सब विसर्जित हो गया। तुरन्त पूर्णतः विराम दे देनेसे सारा वातावरण ऐसा गमगीन हो गया मानो किसी कोमल लतिकापर घोर हिमपात हो गया हो। बाबाको तो बाबूजीकी रुचिके अनुसार करना है। भावुक भक्तोंको यह विराम बड़ा चुभ रहा था, पर विवशता थी। पदोंके गायनका यह कार्यक्रम केवल चार मासतक चल पाया। इसके बाद सभी गायक लोग अपने-अपने स्थानको चले गये।

* * * * *

प्रीतिरसावतार महाभावनिमग्न

श्रीराधा बाबा

(द्वितीय भाग)

पृष्ठ संख्या
101-200
तक

राधेश्याम बंका

बरसाने के मन्दिर में

सन् १९६५ की ११ फरवरीके दिन मथुरामें श्रीकृष्ण जन्मभूमिपर भागवत भवनका शिलान्यास हुआ। इसीके निमित्तसे बाबूजी गोरखपुरसे मथुरा गये थे। शिलान्यासका उत्सव बहुत विशाल रूपसे मनाया गया था। तब बाबूजी मथुरामें तीन सप्ताह तक रहे। वहाँ समय-समयपर व्रजमण्डलके अनेक महान संतोंके पास जा-जा करके उन्होंने उनके दर्शन किये। बाबूजीके साथ बाबा तो रहते ही थे।

इस तीन सप्ताहकी अवधिमें एक बार बरसाना जानेका भी कार्यक्रम बन गया। इस दिन श्रीश्रीजीके मन्दिरमें सभी भक्तोंने प्रसाद पाया। अनुमानतः सात-आठ सौ भक्तोंने छक करके प्रसाद पाया होगा। प्रसादकी व्यवस्था और व्ययका सारा भार श्रीजयदयालजी डालमियाने अपने ऊपर ले लिया था। बाबा तथा बाबूजी तो बरसाना कारसे गये थे, बाकी सब लोग बससे गये थे। श्रीश्रीजीके मन्दिरमें भोग लगे, इसके बहुत पहले ही भक्त लोग वहाँ पहुँच गये थे। श्रीश्रीजीका दर्शन पाकर सभी भक्तोंको बड़ी प्रसन्नता हुई।

श्रीश्रीजीके मन्दिरके गर्भ-गृहकी जो चौखट है, उसके पास लकड़ीका एक बड़ा और मजबूत घेरा है। यह घेरा चौखटसे लगभग चार-पाँच फीटकी दूरीपर है। यह घेरा इसलिये है कि इसके अन्दर पुजारीजी खड़े रह सकें, कोई उनका स्पर्श न कर सके तथा वे सुविधा पूर्वक अमनिया नैवेद्य लोगोंसे ग्रहण कर सकें और भक्तोंको प्रसाद दे सकें।

बाबूजी और बाबा मन्दिरमें काफी पहले आ गये थे। मन्दिरमें आकर उन्होंने युगल सरकारके दिव्य श्रीविग्रहका दर्शन किया। दर्शन करके बाबूजी तो एक किनारे बैठ गये, पर बाबा उसी घेरेका सहारा लेकर खड़े हो गये। बाबाने अपने शरीरका सारा भार काठके उस घेरेपर अपने दोनों हाथोंके द्वारा छोड़ रखा था और उनकी दोनों आँखें श्रीश्रीजीके विग्रहपर टिकी हुई थीं। हम कई लोग बाबाके आस-पास खड़े थे केवल इस बातकी सावधानीके लिये कि किसी स्त्रीसे अथवा उसके वस्त्रसे बाबाका स्पर्श न हो जाय। वे घेरेके सहारे खड़े-खड़े कुछ-कुछ नहीं, बहुत बोल रहे थे। उनके अधर खूब हिल रहे थे और उनकी आवाज हमारे कानोंमें साफ-साफ पड़

रही थी, पर हम लोग यह नहीं समझ पा रहे थे कि वे क्या बोल रहे हैं। उनकी भाषा वे ही जानें, परन्तु यह स्पष्ट लग रहा था कि वे अपनी 'किसी भाषा'में श्रीश्रीजीसे वार्तालाप कर रहे हैं। इसके साथ ही बाबा द्वारा एक और चेष्टा लगातार हो रही थी। उनके दोनों हाथ तो घेरेपर टिके हुए थे, किन्तु वे रह-रह करके अपने पैरको कभी उठाते और गिराते थे। कभी दाहिना पैर और कभी बाँया पैर उठाने-गिरानेका क्रम चलता रहा। शरीरका भार तो घेरेपर था ही, किन्तु जब बाँयें पैरका घुटना मुड़ता तो बाँयी एड़ी बाँयें जंघेतक आ जाती और इसी प्रकारकी बात दाहिने पैरके साथ थी, अर्थात् कभी दाहिनी एड़ी दाहिने जंघेतक आ जाती। यह भावमयी स्थिति लगभग पौन घंटेतक बनी रही।

बाबाकी इस भावमयी स्थितिकी ओर बहुत लोगोंका ध्यान आकृष्ट हो गया। अनेक लोग बाबाके पास, परन्तु कुछ हटकर बैठ गये और उनकी इस भावमयी स्थितिको देखते रहे। इन दर्शकोंमें सम्मान्य लाला श्रीहरगूलालजी भी थे, जो वृन्दावनके अति विख्यात रसिक और रसज्ञ हैं। श्रीडालमियाजीके आत्मीयता भरे अनुरोधपर सम्मान्य लालाजी श्रीजीके मन्दिरमें भोगकी तथा भक्तोंके भोजनकी सारी व्यवस्था सँभालनेके लिये वृन्दावनसे बरसाना आये थे। बाबाकी इस भावमयी स्थितिको देखकर वे भी परम विस्मयान्वित हो रहे थे।

सम्मान्य श्रीलालाजी इस दृश्यसे इतने अधिक प्रभावित हुए थे कि उन्होंने अपना एक ग्रन्थ 'प्रान-पुष्पांजलि' बाबाको बादमें भेंट स्वरूप प्रदान किया, बादमें माने कुछ साल बाद। इस ग्रन्थमें प्रियाप्रियतम श्रीराधाकृष्णके एकान्त निकुञ्जकी अन्तरंग केलिका वर्णन है। यह अन्तरंग केलि सार्वजनिक वस्तु नहीं है, अपितु मात्र सुयोग्य अधिकारीके लिये अवलोकनीय है। यह वस्तु एक मात्र अधिकारीके हाथ लगे, इसलिये ऐसा सुननेमें आया कि सम्मान्य लालाजीने 'प्रान-पुष्पांजलि' ग्रंथकी केवल दो सौ प्रतियाँ ही आर्ट पेपरपर छपवायी थी, उसीमेंसे उन्होंने एक प्रति बाबाके पास भेंट स्वरूप भेजी थी।

प्रसंगानुरोधसे प्रान-पुष्पांजलिकी चर्चा बीचमें आ गयी इसीलिये कि सम्मान्य लालाजी बाबाकी उस भावमयी स्थितिपर बार-बार बलिहार जा रहे थे। बाबा घेरेका सहारा लिये हुए श्रीश्रीजीके समक्ष बहुत देरतक खड़े रहे।

भोगका समय हो जानेपर श्रीश्रीजीके मन्दिरमें पट आ गया। पटके बन्द होनेके बाद भी बाबा उसी प्रकार कुछ देरतक खड़े रहे। थोड़ी देर बाद इनके लिये एक आसन घेरेसे हटकर लगाया गया और बाबूजीने बाबाको वहाँ बैठाया।

* * * * *

मंगल-प्रवाहिणी भगवती गंगा

प्रयाग-निवासी मानस-कथावाचक पण्डित श्रीओंकारनाथजी मिश्र जब भी गोरखपुर आते थे, तब बाबाके दर्शनार्थ गीतावाटिका पधारते ही थे। उनके पधारनेपर बाबा उनसे कुछ-न-कुछ सुनते ही थे, भले ही वे केवल बारह-पन्द्रह मिनट ही कथा सुनायें। आदरणीय श्रीमिश्रजीने जब अपना आसन ग्रहण किया तो बाबाने कुशल समाचार पूछ लेनेके बाद कुछ हरिकथा सुनानेके लिये उनसे प्रार्थना की। आदरणीय श्रीमिश्रजीने कहा – मेरे पास अपना है ही क्या, जो मैं बोलूँ? जो आप मेरे हृदयमें भरते हैं, वही मेरे अधरोंसे बाहर निकल पड़ता है। मैं तो प्रतिध्वनि मात्र हूँ। आप ही मुझपर कृपा करें। मेरे उर-प्रेरक और उर-परिपूरक आप ही हैं।

बाबाने कहा – आपका यह दैन्य आपके संत-स्वभावका परिचायक है, परंतु सबके ही हैं 'उर-प्रेरक रघुबीर'। घाट हो चाहे हरिद्वारका अथवा कानपुरका अथवा वाराणसीका अथवा पटनाका, परंतु सभी स्थानोंकी गंगाजीमें जल गंगोत्रीसे ही आता है। सभीके हृदयमें प्रेरणा वे भगवान श्रीरघुवीर ही करते हैं। सबको भाव और भाषाका दान भगवानसे ही मिलता है।

बाबाने तो अपनी बात समझानेके लिये श्रीगंगाजीका उदाहरण मात्र दिया था, परंतु इसीपर बाबाने आदरणीय श्रीमिश्रजीको अपने जीवनके दो प्रसंग सुना दिये –

बाबा तथा बाबूजी एक बार स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश) गये हुए थे। ठहरे थे डालमियाकोठीमें, जो एकदम श्रीगंगाजीके तटपर ही थी और है। एक दिन बाबा गंगा-स्नान करनेके लिये धीरे-धीरे चलते हुए चले जा रहे थे, तभी बाबूजी घबराये हुए-से आये और चिन्तापूर्ण भाषामें कहने लगे – जयहरि (सम्मान्य श्रीजयदयालजी डालमियाका बालक) नहीं मिल रहा है। जयदयालकी ओरसे और हमलोगोंकी ओरसे बहुत देरसे खोज हो रही है। जयहरिके नहीं मिलनेसे

लोग मनमें भाँति-भाँतिकी आशंका कर रहे हैं कि कहीं गंगाजीमें डूब न गया हो, उसका पैर फिसल गया हो और बह गया हो। उसकी खोजमें लोग यत्र-तत्र दौड़-धूप कर ही रहे हैं।

बाबाने बाबूजीकी बात सुन ली तथा पूर्ववत् शान्त भावसे चलते-चलते गंगाजीके किनारे आये और तटपर बैठ गये। बाबाको यह प्रिय नहीं कि तुरन्त स्नान करके तुरन्त वापस लौट चलें। वे कुछ देरतक गंगातटपर बैठते तथा बैठकर धाराका दर्शन करते हुए माँ गंगासे कुछ बातें करते। अपने उसी अभ्यासके अनुसार बाबा गंगातटपर आकर बैठ गये। थोड़ी देर बाद बाबाने भगवती श्रीगंगाके प्रवाहमें प्रवेश किया और कटितक जलमें पहुँचकर खड़े हो गये। आनेके पूर्व बाबूजीने जयहरिके खो जानेवाली बात सुनायी ही थी, उस बातकी स्मृति आते ही बाबाने माँ गंगासे प्रार्थना की – माँ! श्रीजयदयालजीका पुत्र जयहरि नहीं मिल रहा है। उसकी बड़ी खोज हो रही है। क्या वह तेरे अन्दर है? यदि तेरे अन्दर हो तो बता दे।

इसके बादकी घटनाका वर्णन करते हुए बाबा बताने लगे – मेरे द्वारा ऐसी प्रार्थना होते ही बड़ी मधुर ध्वनि सुनायी दी। मेरे समक्ष प्रत्यक्ष रूपमें न कोई थी और न कोई था। मुझे कोई भी दिखलायी नहीं दिया, परंतु धाराकी लहरोंसे निकलकर आती हुई एक अति मधुर ध्वनि सुनायी दी कि 'मेरे लाल! वह मेरे अन्दर नहीं है'।

यह सुनते ही बाबाका जी भर आया कि आज माँ गंगाकी वाणी सुननेको मिली। वे जल-प्रवाहसे तुरन्त बाहर निकलकर शीघ्रतापूर्वक बाबूजीके पास गये और कहने लगे – जयहरि श्रीगंगाजीके अन्दर तो नहीं है। अब वह जहाँ कहीं भी हो, उसकी आप खोज करवाइये, पर यह निश्चित है कि वह गंगाजीके अन्दर नहीं है।

* * *

बाबाने अपना दूसरा प्रसंग सुनाया –

गंगादशहराका दिन था। सूर्यास्तके समय बाबा गंगातटके एक एकान्त स्थानपर बैठे हुए थे। गंगादशहराका दिन होनेके कारण भक्तोंने गंगाजीको दीप-दान किया था। वे दीप गंगाजीकी लहरियोंपर बहते हुए बड़े भले लग रहे थे। लहरियोंके ऊपर दीपोंके लहरानेका दृश्य बड़ा ही मनोहारी था। ये दीपक लहरियोंके साथ खेल करते हुए बहते चले जा रहे थे। इस दृश्यको देखकर

बाबाके मनमें यह भाव आया — मैं भी माँ गंगाकी अर्चना करूँ, पर यह हो कैसे? मैं तो एक भिक्षुक संन्यासी हूँ। मेरे पास तो ऐसी कोई वस्तु नहीं, जिससे माँकी अर्चना सम्पन्न हो सके।

अर्चनाकी स्फुरणा उदित होनेपर बाबाने माँ गंगासे प्रार्थना की — माँ! मैं तेरा वत्स हूँ। तू मेरी माँ है। तेरी वस्तु मेरी ही है। लहरोंपर इतने दीपक बह रहे हैं, एक दीपक मुझको दे दे। मेरे पास एक दीपक भेज दे। उस दीपकको लेकर, फिर उसी दीपकसे तेरी अर्चना करके मैं उसे तेरी धाराको अर्पित कर दूँगा। मानसिक रूपसे जो स्तवन-अर्चन-वन्दन मुझे करना है, वह तो होगा ही, पर तू मुझे एक दीपक दे दे।

बाबाके द्वारा ऐसी प्रार्थनाके होते ही आश्चर्य यह हुआ कि दूर धारामें जो कई दीपक बह रहे थे, उनमेंसे एक दीपक बाबाकी ओर लहरियोंपर नाचता हुआ अग्रसर होने लगा। लहरियोंके मस्तकपर उस दीपकका नाचना भी अनोखा था। कभी दाहिने झुकता हुआ, कभी बाँयें झूमता हुआ, कभी ऊपर उठता हुआ, कभी नीचे ढरकता हुआ, कभी इस ओर अर्द्ध गोलाकार चक्कर काटता हुआ, कभी उस ओर अर्द्ध गोलाकार सहज बहता हुआ, इस प्रकार नर्तन करता हुआ वह दीपक बाबाकी ओर बढ़ने लगा। वे लहरियाँ, सचमुच लहरियाँ नहीं थीं, अपितु वे थीं माँ गंगाकी कर-वल्लरी। माँ अपने हाथोंसे ही वह दीपक बाबाको दे रही थी। वह दीपक इतना समीप आ गया था कि कठिनतासे एक हाथकी दूरीपर होगा। कहाँ तो वह तब था बहुत अधिक दूर धारामें बहता हुआ और कहाँ वह अब है इतने अधिक समीप किनारेपर लगा हुआ! बाबाने वह दीपक अपने हाथपर ले लिया। भाव भरे मनसे बाबाने माँकी अर्चना और स्तुति की और फिर माँके चरणोंमें वह दीपक अर्पित कर दिया।

* * * * *

'श्रीकृष्ण चरितामृत' पर शुभाशंसन

परम सम्मान्य पण्डित श्रीतारादत्तजी मिश्रको विधाताने श्रीराधाबाबाके सहोदर अग्रज कहलानेका सौभाग्य प्रदान कर रखा है। आप हृदयसे भक्त हैं। भक्तिकी निधि तो आपको अपने धर्म-परायण कुलसे धरोहरके रूपमें मिली है। प्रौढ़ावस्थामें पण्डितजीकी भक्ति-भावनामें बाढ़ आ गयी। भगवान श्रीकृष्णकी लीलाओंमें उनका मन रमने लगा। लीला-चिन्तनसे उत्पन्न होनेवाली रस-धारा

उनके तन-मन-जीवनको भाव-विभोर बनाये रहती। उनके अन्तरकी भावोद्रेकता कविताके रूपमें बहने लगी। पण्डित श्रीतारादत्तजीने ललित भाषामें जो लीला काव्य लिखा है, उसका नाम है 'श्रीकृष्ण चरितामृत'। श्रीकृष्ण चरितामृतका प्रणयन जब पूर्ण हो गया, तब उसकी पाण्डुलिपि पण्डित श्रीतारादत्तजीने अपने गाँवसे गोरखपुर बाबूजीके पास भेज दी। मेरा अनुमान है कि यह प्रसंग सन् १९६५ के आस-पासका होना चाहिये। पाण्डुलिपि भेजकर उन्होंने यह अनुरोध किया कि जब अनुकूल और प्रसन्न अवसर मिले, तब यह काव्य स्वामीजीको सुना दिया जाय।

पण्डित श्रीतारादत्तजीके अनुरोधको आज्ञा मानकर बाबूजीने यह काव्य बाबाको सुनाया। पण्डित श्रीतारादत्तजी मिश्र द्वारा रचित 'श्रीकृष्ण चरितामृत' काव्यको सुनकर बाबाको बड़ा सुख मिला। उस सुखानुभूतिको उन्होंने चार छन्दोंमें व्यक्त किया। इन छन्दोंमें श्रीकृष्णलीलाके गायनकी सराहना की गयी है तो उसके साथ ही यह भी संकेतित हुआ है कि उनकी रुचिके अनुसार अपने जीवनको ढाल देनेमें ही सुन्दरता है।

वे चार छन्द इस प्रकार हैं —

सुन्दर इस निज चरित्र छविको मेरे उरपर लिखना, प्रियतम!
लिखते लिखते जब कर-पल्लव हो जाय अधिक चिकना प्रियतम!
लेना तुम पोंछ उसे अपने पीले दुकूलमें ही, प्रियतम!
देखूँगी मैं उन चिह्नोंपर सहचरियोंका बिकना प्रियतम!

रजनीको जब विराम देने आयेगी उषा सखी प्रियतम!
आयेंगी तब वे भी निकुञ्ज वातायनके समीप प्रियतम!
होगा फिर द्वार मुक्त भीतर होंगी अपलक सब वे प्रियतम!
बाहर अलिसे मुखरित होगा, फूलोंसे लदा नीप प्रियतम!

मंगल नीराजन होनेपर बाहर लायेंगी वे प्रियतम!
हम दोनोंको उनके पीछे पीछे चलना होगा प्रियतम!
कालिन्दीकी उन लहरों में हमको नहलायेंगी प्रियतम!
उनकी रुचि के साँचे में ही हमको ढलना होगा प्रियतम!

अतएव अभी से सच तुमको इंगित कर देती हूँ प्रियतम!
मैं नित्य अहो रंगस्थलकी जो नित्य नटी ठहरी प्रियतम!

हो नहीं समयसे पहले ही झंकृत यह रंग मंच प्रियतम!
इसलिये बनी बैठी हूँ मैं गूँगी एवं बहरी प्रियतम!

इन चार छन्दोंके अर्थ गम्भीर भी हैं और साधारण भी। गम्भीर अर्थमें बाबा निकुञ्ज लीलामें तन्मय होकर कह रहे हैं निकुञ्जेश्वर प्रियतम श्रीकृष्णसे। नित्य निकुञ्जेश्वर प्रियतम श्रीकृष्णने परम पवित्र चिन्मय लीलाका एक प्रस्ताव रखा और उसे सुनकर निकुञ्जेश्वरी श्रीराधा कह रही हैं— वहाँ उस निकुञ्ज-भित्तिपर पुष्प-वृन्तसे और मृगमदके अनुलेपनसे चित्र मत बनाओ भला! यह इसलिये कि उन चित्रोंको चित्रांकित करते-करते तुम आत्म-विस्मृत हो जाओगे और मैं भी आत्म-विस्मृत हो जाऊँगी। वह चित्र मेरी सखियोंके लिये, मञ्जरियोंके लिये, सहचरियोंके लिये परम आह्लादका विषय बनेगा अवश्य, किन्तु मुझे उससे संकोच होगा। तुम्हारे उद्देश्यकी पूर्ति भी नहीं होगी। इसीलिये कहती हूँ कि लिखना ही हो तो इन विविध रसमय चित्रोंको विहंगमका रूप देकर, लता-वल्लरियोंका रूप देकर, उनके अन्तरालसे व्यक्त होते हुए उन व्यक्त भावोंको मूर्त रूप देकर मेरे वक्षस्थलपर ही उसकी रचना करो। उसे मैं आवृत कर लूँगी। मेरी सखियों-सहचरियों-मञ्जरियोंका आह्लाद तो अक्षुण्ण रहेगा ही, साथ ही मेरे लिये निरर्थक संकोचका प्रश्न नहीं रहेगा। 'सुन्दर इस निज चरित्र छविको मेरे उर पर लिखना प्रियतम'।

तुम्हारे कर-पल्लव अनुलेपनकी मसृणता लेकर ऐसे मसृण बन जायँ कि तूलिका चले ही नहीं, तब उसे मेरे नील अरुण परिधानोंमें न पोंछकर अपने पीले दुकूलमें ही पोंछ लेना। बनाये हुए चित्र तो आवृत हो ही जायेंगे, परन्तु चित्र बननेके उपकरण स्वरूप अनुलेपनके पोंछनेका चिह्न तुम्हारे पिंगल दुकूलपर वर्तमान रहेगा। उसे मेरी सखियाँ-सहचरियाँ-मञ्जरियाँ अवश्य देख लेंगी और उन चिह्नोंपर ही वे अपने आपको न्योछावर कर देंगी। देखो, ऊषा होने जा रही है, परन्तु मैं ठीक निर्णय नहीं कर सकती हूँ कि अभी कितनी देर है। कदाचित् रजनी अभी कुछ शेष रही हो, पर ऊषा आयेगी और रजनी अन्तर्हित होगी ही। श्रान्त रजनी मेरी सेवा करते-करते थक गयी है। इसे विश्राम देनेके लिये ही ऊषा आती है भला। वह मेरी अत्यन्त प्रिय सहचरी है। उसके लिये मैंने एक ही सेवा दे रखी है, अथवा मैं भूल गयी हूँ। प्रतिदिन कोई-न-कोई सेवा बतला देती हूँ और मैं समझती हूँ कि इसके लिये मैंने एक ही सेवा सौंपी है। कुछ भी हो, वह रजनीको विश्राम देनेकी सेवा तो करेगी ही। और देखो, जैसे

ही वह आयी कि उसके साथ मेरी सखियाँ-सहचरियाँ और मञ्जरियाँ अवश्य आयेंगी, पर वे भीतर सहसा प्रविष्ट नहीं होंगी भला। निकुञ्ज वातायनके समीप अवस्थित होकर वे हम दोनोंकी गतिविधियोंको देखेंगी। कुछ देर रस लेनेके अनन्तर ही उनमेंसे एक निकुञ्जका द्वार उन्मुक्त कर देगी और सब-की-सब अन्तर भागमें प्रविष्ट हो जायेंगी। आह्लादके कारण उनकी आँखें अपलक हो जायेंगी। उनका कण्ठ तो अवरुद्ध हो ही जायेगा, किन्तु निकुञ्जके बाहर पुष्पित-नीप-द्रुमावली भ्रमरोंके गुञ्जनसे गुञ्जित होकर यह सम्पूर्ण निकुञ्ज परिसर मुखरित हो उठेगा। वे सखियाँ-सहचरियाँ-मञ्जरियाँ हम दोनोंका सर्वप्रथम मंगल नीराजन करेंगी, फिर शत-शत प्रेमिल मनुहारसे मुझे और तुम्हें बाहर चलनेके लिये विवश कर देंगी। हम दोनोंको ठीक उनका ही अनुसरण करना पड़ेगा भला। कलिन्दनन्दिनीकी लहरोंमें वे हम दोनोंको नहलायेंगी और न जाने क्या-क्या हम दोनोंसे करवायेंगी। उनकी रुचिके साँचेमें ही हम दोनोंको अपने प्राणोंको मिला देना है भला। अतएव अभीसे मैं तुम्हें सारी बात समझा दे रही हूँ। समझा दे रही हूँ इसलिये कि यदि तुम उन सखियों-सहचरियों-मञ्जरियोंके सामने मुझसे कुछ पूछोगे तो मुझे संकोच होगा। पहलेसे ही सारी व्यवस्थाकी बात स्पष्ट कर दे रही हूँ, क्योंकि जब तुम नट बनकर आनेके लिये और रंगस्थलपर कूद पड़नेके लिये प्रस्तुत हो जाओगे तो फिर विवश होकर मुझे तुम्हारे सम्पूर्ण खेलकी व्यवस्था करनी ही पड़ेगी। पता नहीं कितने दिन बीत गये, युग-युगान्तर बीत गये होंगे, तबसे रंगस्थलका निर्देशन-कार्य मुझे ही करना पड़ता है। तुम बार-बार पूछते हो कि ऐसा क्यों, ऐसा क्यों। इन प्रश्नोंको सुनकर मुझे तुम्हारी सरलतापर हँसी आती है। हँसी आती है इसीलिये कि सब जानते रहनेपर भी तुम ऐसे निरर्थक प्रश्न करते रहते हो। तुम्हारा स्वभाव ही है मुझे छेड़ते रहनेका। तुम्हें पता नहीं है, ऐसी बात तो है नहीं। तुम तो जिद कर बैठते हो और यदि निर्धारित समयसे पहले ही मेरी नूपुर बज गयी एवं मेरी साँसका एक स्वर भी रंगस्थलके मंचपर ध्वनिके आभासका संकेत कर बैठा तो रंगमंच झंकृत हो उठेगा। सखियों- सहचरियों-मञ्जरियोंके कर्णपुटोंमें मेरी साँसकी वह स्वर-लहरी बैखरी बनकर मूर्त हो जायेगी और फिर कोलाहल हो उठेगा, इसीलिये तो मैं गूँगी और बहरी बनी रहती हूँ, न बोलती हूँ और न सुनती हूँ।

* * * * *

श्रीमद्भागवत पुराण का लेखन

बाबाके मनमें ऐसी चाह थी कि सम्पूर्ण श्रीमद्भागवत पुराणको हाथसे लिखवाया जाये और वह हस्तलिखित ग्रन्थ स्वयंमें इतना गरिमामय हो कि उसका दर्शन मात्र लाभकारी हो। लेखकके रूपमें श्रीमोतीलालजी पारीक जैसा सात्त्विकजीवन भक्तहृदय श्रेष्ठब्राह्मण और कहाँ मिलता? बाबाने इसकी चर्चा श्रीमोतीजीके सामने की। संकेत मिलते ही बाबाकी भावनाके अनुसार श्रीमोतीजीने श्रीमद्भागवत महापुराणका लिखना प्रारम्भ कर दिया। श्रीमद्भागवत पुराणको कागजके जिन पत्रोंपर लिखा गया है, वे हस्तनिर्मित हैं तथा वे इतने मजबूत हैं कि जलवायुके प्रभावसे वे जल्दी नष्ट नहीं होंगे। कागज-निर्माताने ऐसा आश्वासन दिया है कि वे कई सौ वर्षतक टिके रहेंगे। लिखनेके लिये बाबाने स्याही भी विशेष रूपसे बनवायी थी। केलेका रस, आँवलेका रस, गंगाजल आदि-आदिके मिश्रणसे परम पवित्र स्याही बनवायी, जो भावकी दृष्टिसे तथा वस्तु-पदार्थकी दृष्टिसे पूर्ण सात्त्विक हो। स्याही भी ऐसी है कि उसके अक्षर न तो जलसे मिट पायेंगे और न कभी धूमिल होंगे, अपितु समयके व्यतीत होनेके साथ-साथ उन अक्षरोंमें चमक अधिकाधिक बढ़ती चली जायेगी।

सम्पूर्ण श्रीमद्भागवतको लिखनेमें श्रीमोतीजीको कुल तीन वर्ष लगे। हस्तलेखन कार्यके पूर्ण हो जानेके बाद उसके संशोधनकी व्यवस्था बाबाने की। श्रीगोस्वामीजीके नेतृत्वमें पं. श्रीरामनारायणदत्त शास्त्री तथा पं. श्रीरामजीलालजी शर्माने, इन तीनों व्यक्तियोंने साथ-साथ बैठकर भागवत-ग्रन्थको आदिसे अंततक पढ़ा तथा लेखनकी जहाँ-जहाँ अशुद्धियाँ थीं, उन सबका संशोधन किया। इस प्रकार शुद्ध हो जानेके बाद बाबाने खुले पन्नोंवाले इस हस्तलिखित श्रीमद्भागवत महापुराण ग्रन्थकी पञ्चोपचार पद्धतिसे शत वर्षीय पूजा करवायी। तदुपरान्त बाबाने कहा – जो भी इस श्रीमद्भागवत महापुराण ग्रन्थका दर्शन करेगा, वन्दन करेगा, उस व्यक्तिमें व्रजभावका बीजारोपण हो जायेगा। अब यह बीज कब (अर्थात् किस जन्ममें किस रूपमें किस विधिसे) फूलेगा-फलेगा, यह बात दूसरी है, पर उसे कभी-न-कभी, 'व्रज-भाव-जीवन'की प्राप्ति अवश्य होगी।

यह श्रीमद्भागवत महापुराण ग्रन्थ काठकी जालीदार पेटीके अन्दर

सुरक्षित है। आजकल श्रीमद्भागवत पुराणकी पेटी श्रीराधा-कृष्ण-साधना-मन्दिरमें रखी हुई है।

* * * * *

श्रीगिरिराज परिक्रमा का शुभारम्भ

सं. २०१२ वि. आश्विन कृष्ण १२, बुधवार, २२-९-१९६५ के दिन बाबूजीका पावन जन्मदिवस था। ऐसा निश्चित किया गया कि बाबाकी कुटियाके सामने बाड़ेके बाहर जन्मदिवस मनाया जाय। उस अवसरपर क्या-क्या होगा, यह सारा कार्यक्रम बाबाके निर्देशानुसार बना लिया गया। बाबूजी स्वभावतः बड़े संकोची हैं, अतः यह भी तय किया गया कि केवल श्रीनटवरजी ही बाबूजीकी पुष्प-चन्दन-मालासे अर्चना करके प्रणाम कर लेंगे और अन्य सभी लोग बैठे-बैठे यही भावना कर लेंगे कि श्रीनटवरजी द्वारा की गयी अर्चना मेरे द्वारा ही हो रही है।

जब बाबूजीको कार्यक्रममें आनेके लिये अनुरोध किया गया तो उन्होंने स्पष्ट रूपसे अस्वीकार कर दिया। 'मेरा जन्मोत्सव मनाया जाय' यह उनको प्रिय था ही नहीं। गम्भीर अनिच्छा होनेके बाद भी येन-केन-प्रकारेण उनको जन्मोत्सवमें पधारनेके लिये मना लिया गया। निर्धारित समयपर बाबूजी कार्यक्रममें पधारे।

बाबूजीके आते ही उच्च जयकारके साथ भगवन्नाम संकीर्त्तन आरम्भ हुआ। फिर बाबाने ठाकुरजीसे नृत्य करवाया। उनके कलापूर्ण सुन्दर नृत्यसे वातावरणमें सरसता व्याप्त होने लगी। उस सरसताको घनीभूत बना दिया भावपूर्ण पदोंके गायनने। सघन-सघनतर होती हुई सरसताने बाबूजीपर बड़ा प्रभाव डाला और वे विशेष रूपसे अन्तर्मुख हो गये।

देहातीतावस्थामें निमग्न होते हुए बाबूजीको अधिक समयतक बैठाये रखना बाबाने उचित नहीं समझा, अतः उन्होंने संकेत द्वारा श्रीनटवरजीसे अर्चना करनेके लिये कहा। श्रीनटवरजीने बाबूजीके भालपर तिलक किया, फूलोंकी माला पहनायी तथा भूमिपर लेटकर साष्टांग प्रणाम किया। सभी उपस्थित लोग बड़े भक्ति-भावसे यह अर्चना देख रहे थे।

उपस्थित लोगोंके बीच बैठे थे एक भक्त महात्मा भी। उनका भावुक

हृदय कुछ अधिक ही भावाप्लावित हो उठा और उनके उल्लासाधिक्यने रसकी बाढ़में बाधा डाल दी। कार्यक्रमकी पूर्व निर्धारित सुनिश्चित प्रक्रियाका यथावत् पालन न होनेसे उपस्थित भक्तोंको तो अच्छा लगा ही नहीं, बाबाका भी मन खिन्न हो गया।

अब बाबाके सामने प्रश्न यह था कि इस भावपूर्ण कार्यक्रममें आकस्मिक रूपसे उत्पन्न भावदोषके परिहारके लिये क्या किया जाय, जो मंगलकारी हो। भावदोषके परिमार्जनके लिये बाबाने निश्चित कर लिया कि मुझे सदाके लिये श्रीगिरिराजजीकी तरहटीमें निवास करना चाहिये।

इस निश्चयसे तुरन्त एक धर्म-संकटकी स्थितिका उद्‌भव हो गया। यदि बाबा श्रीगिरिराज तरहटीमें निवास करनेके लिये गोरखपुरसे गोवर्धन जाते हैं तो क्या बाबूजी भी सदाके लिये वहाँ जायेंगे? बाबूजीके कन्धोंपर जो विविध प्रकारके एवं अनेक स्तरके गुरुतर दायित्व हैं, उनको देखते हुए बाबूजीका गोवर्धन जा सकना सम्भव है ही नहीं। तो क्या बाबूजीके नित्य सांनिध्यमें अहर्निश निवास करनेवाले संकल्पको बाबा विसर्जित कर देंगे? यह भी सर्वथा असम्भव था। इस धर्म-संकटके निवारणके लिये यह हल निकाला गया कि गीतावाटिकाके श्रीगिरिराजजीकी तरहटीमें बाबा निवास करें।

गीतावाटिकामें विराजित श्रीगिरिराज भगवानकी स्थापनाका एक संक्षिप्त वृत्त है। सन् १९६३ में बाबाने श्रीषोडशगीतकी रासलीला करवायी थी, जिसमें श्रीप्रिया-प्रियतमने इन सोलह पदोंका गायन किया था। इस सारे कार्यक्रमका एक विशेष प्रयोजन था। इस रासलीलामें चन्द्रिका और मोरमुकुटधारी श्रीप्रिया-प्रियतम द्वारा इन पदोंका गायन करवा करके बाबाने षोडशगीतमें दिव्य भावोंकी 'प्राण-प्रतिष्ठा'का विधान भाव-विधिसे सम्पन्न किया था। यह लीला रेलवे कालोनीमें स्थित बाल्टी कारखानेके प्रांगणमें हुई थी। बाबा चाहते थे कि लीलाके समय यहाँ श्रीगिरिराज भगवानकी उपस्थिति रहे। उस कारखानेके एक कोनेमें कुछ रोड़े-पत्थर पड़े हुए थे। बाबाने उन्हीं रोड़े-पत्थरोंमें श्रीगिरिराज भगवानकी भावना कर ली और भावात्मक रूपसे उनकी अर्चना भी कर दी। लीलाके आयोजनके सम्पन्न हो जानेके कई माह बाद उन रोड़े-पत्थरोंको हटानेकी आवश्यकता हुई। यह प्रश्न बाबाके सामने आया। बाबाने कहा – उनको यों ही नहीं फेंक देना

चाहिये। इनकी अर्चना मैं श्रीगिरिराजजीके रूपमें कर चुका हूँ। यदि उन रोड़े-पत्थरोंको वहाँसे हटाना ही है तो उन रोड़े-पत्थरोंको ट्रकपर रखकर गीतावाटिका लाया जाय और मेरी कुटियाके सामने पधरा दिया जाय।

बाबाके निर्देशानुसार कार्य किया गया। बाबा इस बारेमें बड़े सावधान थे कि श्रीगिरिराज-भाव-भावित उन रोड़े-पत्थरोंको उचित स्थान और उचित सम्मान मिलना ही चाहिये।

गीतावाटिकामें श्रीगिरिराजजीके विराजित होनेका यह संक्षिप्त वृत्त है। बाबाके सामने जो धर्म-संकट आ गया था, उसका निवारण करनेके लिये जो सुन्दर हल उभर करके सामने आया, वह यह था कि जो गिरिराजजी कुटियाके सामने विराज रहे हैं, इनकी तरहटीमें निवास करते हुए बाबा श्रीगिरिराजजीकी नित्य परिक्रमा लगाया करें। यह हल सर्व-प्रिय था। इस हलके अनुसार बाबाकी कुटियाके सामने स्थित श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमाका शुभारम्भ इसी पावन जन्म-दिवसपर हुआ। व्रजभूमिके श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमामें आनेवाले स्थान श्रीराधाकुण्ड, श्रीआन्योर, श्रीपूँछरी, श्रीजतीपुरा, श्रीगोवर्धनग्रामकी स्थापना कहाँ की जाय, इसके बारेमें बाबाने श्रीठाकुरजीसे कहा — ठाकुर! तुम जो कहोगे, मैं वही मान लूँगा। केवल मैं ही नहीं, मेरे प्रियतम श्रीनीलसुन्दर भी ज्यों-के-त्यों उसे स्वीकार कर लेंगे।

थोड़ी देर बाद बाबाने इतना अवश्य कहा कि मेरी कुटियामें बरसाना ग्रामकी भावना करके अन्य स्थानोंकी भावात्मकता पूर्वक अवधारणा करना। उसी समय ठाकुर श्रीघनश्यामदासजीके सुझावानुसार राधाकुण्ड, गोवर्धन, आन्योर, जतीपुरा आदि स्थलोंका निर्धारण हुआ। श्रीगिरिराजजीकी एक परिक्रमा १३ मीलकी होनेसे यह भी तय हुआ कि एक सप्ताहमें बाबाकी दो परिक्रमा पूर्ण हो जाया करे।

बाबाकी कुटियाके समक्ष स्थित स्थापित श्रीगिरिराजजीकी परिधिको नापनेसे यह ज्ञात हुआ कि ४७ परिक्रमा देनेसे एक मीलकी दूरी तय होती है। इन सब बातोंका निर्धारण करके बाबाने श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा आरम्भ की। क्षीण स्मृतिके अनुसार ऐसा स्मरण हो रहा है कि रातको ग्यारह बजकर सैंतालिस मिनटपर बाबाने परिक्रमा लगाना आरम्भ कर दिया था। बुधवारका दिन होनेसे इसका शुभारम्भ श्रीराधाकुण्डसे हुआ और कुल ४७ × ३ = १४१

फेरी लगायी गयी अर्थात् बाबा राधाकुण्डसे गोवर्धनतक तीन मील चलकर आये और गोवर्धन ग्राममें विश्राम किया।

अतः परिक्रमाका क्रम इस प्रकार निश्चित किया गया –

गुरुवार	गोवर्धनसे आन्योर	२ मील
शुक्रवार	आन्योरसे जतीपुरा	३ मील
शनिवार	जतीपुरासे राधाकुण्ड	५ मील
रविवार	राधाकुण्डसे आन्योर	५ मील
सोमवार	आन्योरसे जतीपुरा	३ मील
मंगलवार	जतीपुरासे राधाकुण्ड	५ मील
बुधवार	राधाकुण्डसे गोवर्धन	३ मील
		२६ मील

जब परिक्रमाके क्रमका शुभारम्भ हुआ, तब पद-गान तथा संकीर्तन नहीं होता था। यह क्रम तो बादमें परिक्रमाके साथ जुड़ गया। पद-गान तथा 'कृष्ण गोविन्द गोविन्द गोपाल नन्दलाल' के कीर्तनका क्रम जुड़नेके साथ-साथ श्रीगिरिराजजीके नित्य पूजन एवं भोग-रागका भी विस्तार होता गया।

* * *

सन् १९६५ में इन श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमाके शुभारम्भ होनेके बाद सन् १९७१ में बाबूजीकी चिता-वेदीका निर्माण भी इसी श्रीगिरिराज-परिसरमें हुआ। आजकल जहाँ प्रस्तर-निर्मित चौकी है, वहाँ पहले काठकी चौकी थी। इसे स्थायी रूप देनेके लिये उसके स्थानपर प्रस्तर चौकी बनवा दी गयी और यह बनवायी गयी सं. २०३४ वि. ज्येष्ठ कृष्ण ९, बुधवार, ११-५-१९७७ के दिन। जब प्रस्तर चौकीका निर्माण हुआ, तब रात्रिमें विशेष रूपसे हरिनाम संकीर्तन तथा प्रसाद-वितरण हुआ। अब तो प्रायः ही श्रीगिरिराज भगवानके समक्ष सविधि पूजन सहित अन्नकूटोत्सव मनाया जाता है। श्रीगिरिराज भगवानके चतुर्दिक् जो परिक्रमा पथ है तथा परिसर है, वह आज गीतावाटिकाका एक प्रमुख उपासना स्थल है।

परवर्ती कालमें बाबाका शरीर जब बहुत अस्वस्थ रहने लगा तब वे कुर्सीपर बैठकर श्रीगिरिराजजीकी पाँच परिक्रमा लगाया करते थे, परन्तु इसके पहले तो परिक्रमाके समय उनके चलनेकी स्फूर्ति देखते ही बनती थी। परिक्रमा आरम्भ करनेके पूर्व बाबा श्रीगिरिराजजीकी चौकीपर अपनी गुदड़ी रख दिया करते थे और फिर उस गुदड़ीपर अपना दाहिना हाथ टिकाकर बहुत देरतक नेत्र बन्द किये हुए बैठे रहते थे। परिक्रमा स्थलीमें बैठे हुए भक्तजन बाबाको एकटक निहारते रहते थे। एक दिन एक व्यक्तिने अवसर देखकर प्रश्न कर लिया – बाबा! आप गुदड़ीपर हाथ रखकर नेत्र बन्द किये हुए क्या किया करते हैं?

समाधान प्रस्तुत करते हुए बाबाने बतलाया – मुझसे कई हजार व्यक्ति जुड़े हैं। इन व्यक्तियोंके मनका धरातल बड़ा निम्न है। वे मायामें इतने अधिक लिप्त हैं कि उनके पास भगवत्स्मरणके लिये समयका अभाव है। उनका अपने परमार्थकी ओर ध्यान नहीं। कुछ-एक लोगोंकी बात तो अलग है, पर अधिकांश लोग तो सांसारिकतामें सीमातीत रूपमें निमग्न हैं। मैं आँख मूँदे-मूँदे उन माया-निमग्न व्यक्तियोंकी ओरसे भगवानकी प्रार्थना-अर्चना कर लिया करता हूँ। मुझको मेरे लिये कुछ नहीं चाहिये। मेरे जीवनसर्वस्व श्रीनीलसुन्दर नित्य मेरे साथ हैं। मेरे लिये क्या याद करना और क्या प्रार्थना करना, मैं तो उन व्यक्तियोंकी ओरसे भगवानको याद करता हूँ।

बाबाके श्रीमुखसे भावपूर्ण समाधान सुनकर वे भाई बहुत विभोर हो उठे।

* * * * *

सरिता और सागर

अष्टछापके विख्यात भक्त-कवि श्रीनन्ददासजीके एक पदकी दो पंक्तियाँ हैं—

बेसर कौन की अति नीकी।
होड़ परो प्रीतम अरु प्यारी, अपने-अपने जीकी।

वृषभानुनन्दिनी श्रीराधा और नन्दनन्दन श्रीकृष्ण बैठे-बैठे परस्परमें प्रेम-सनी चर्चा कर रहे थे, तभी बेसरकी सुन्दरतापर बात चल पड़ी। पारस्परिक बातचीतके मध्य दोनों ही अपनी-अपनी बेसरको सुन्दरतर बतला रहे थे और बतलाते-बतलाते दोनों पक्षोंको अपनी-अपनी समझका आग्रह हो गया।

इसी प्रकारका आग्रह एक बार सन् १९६६ में बाबा और बाबूजीको अपनी-अपनी भावनाका हो गया था। प्रसंग गीता-भवन (स्वर्गाश्रम) का है, जो ऋषिकेशके उस पार गंगाजीके तटपर स्थित है। एक बहिन अपने कमरेमें बैठी हुई श्रीगंगाजीकी धाराको देख रही थी। उसका कमरा एकदम गंगाजीके तटपर ही था। हिमालयके शिखरसे उतरकर और घाटियोंको पीछे छोड़कर उसका जल-प्रवाह निरन्तर आगे मैदानी भागकी ओर तीव्र गतिसे बहता चला जा रहा है। पर्वतीय घाटियोंसे उतरकर आनेके कारण उस जल-प्रवाहमें बहुत वेग है। उस अविरल प्रवाहको देखकर वह बहिन मन-ही-मन कहने लगी— यह भी कैसी बात है कि यह सरिता सागरकी ओर सदा-सदा बहती ही रहती है। कभी एक क्षण ठहरनेका नाम भी नहीं लेती।

निरन्तर बहते रहनेकी भावनासे वह बहिन इतनी अभिभूत हुई कि उसने अपने मनके भावोंको बाबाके समक्ष व्यक्त किया। बाबाने इन भावोंकी बड़ी सराहना की और वे उस बहिनसे कहने लगे— यही तो राधा-भाव है। सिन्धु अत्यन्त खारा है, परंतु सिन्धु-पक्षकी इस न्यूनताकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते हुए सरिता निरन्तर सागरकी ओर बहती ही रहती है। सरिता तो समर्पणकी साक्षात् प्रतीक है। प्रेमास्पदके गुण-अवगुणकी ओर तनिक भी दृष्टिपात न करते हुए प्रेमास्पदके प्रति प्रेमीका सर्व समर्पण, यही राधा-भाव है। प्रेमकी पाठशालाका यही प्रथम और यही अन्तिम पाठ है। अविरल प्रवाहके अन्तरालसे सरिताके समर्पणकी जो झलक तुमको

मिली है, वह सर्वथा प्रशंसाके योग्य है।

बाबाने उन बहिनकी भाव-धाराकी सराहना हृदयसे की थी। इस सराहनासे उत्साहित होकर एक-दो दिन बाद अनुकूल अवसर मिलनेपर उस बहिनने वही बात बाबूजीसे भी कह दी, जो उसने बाबासे कही थी। बाबूजीसे उसने यह भी बता दिया कि बाबा तो श्रीगंगाजीके निरन्तर बहते रहनेकी बड़ी महिमा बता रहे थे और वे यह भी कह रहे थे कि भक्तकी भाव-धारा बस, इसी प्रकार भगवानके प्रति होनी चाहिये।

उस बहिनके द्वारा ऐसा कह दिये जानेपर बाबूजीने बाबाके विचारोंका अनुमोदन तो किया ही, पर फिर बाबूजी सागरका पक्ष लेकर कहने लगे— उस सागरको भी तो देखो, जो युग-युगसे सरिताकी राह देख रहा है, निरन्तर प्रतीक्षा कर रहा है।

यदि सरिताका पक्ष लिया बाबाने तो बाबूजीने लिया सागरका पक्ष। उसी दिन बाबूजीने तो गीताभवनके सत्संगमें प्रवचन देते हुए इसी बातकी चर्चा छेड़ दी। उन्होंने सागरकी प्रशंसा की और कहने लगे— सागरके दर्शनकी आकुलतामें यदि सरिता निरन्तर बहती रहती है तो सरितासे मिलनकी आतुरता लिये सागर निरन्तर उमड़ता रहता है। सरिताकी आकुलता अनन्त है तो सागरकी आतुरता भी अनन्त है। तटोंका सहारा लेकर यदि सरिता सदा बढ़ती रहती है तो कभी-कभी तट-रेखाका अतिक्रमण करके आगे बढ़कर लहरोंका हाथ उठाये सागर सदा प्रतीक्षा करता रहता है। सरिताका कल-कल क्रन्दन यदि असीम है तो सागरका हा-हा गर्जन भी अनन्त है। सरिताकी प्रतीक्षामें रात-दिन लहरोंके रूपमें अपने हाथ उठाये-उठाये हाहाकार करनेवाले अनन्त सागरकी आतुरता किसी भी प्रकार न उपेक्षणीय है और न किसी प्रकार न्यून है। जगतके साधारण प्राणी कभी अनुमान कर ही नहीं सकते कि सच्चे प्रेमीके लिये भगवानके हृदयमें कैसी अनन्त आतुरता और कैसी अनवरत प्रतीक्षा बनी रहती है।

सरिता और सागरका, प्रेमी तथा प्रेमास्पदका, भक्त और भगवानका यह रसमय विवाद कई दिनतक चलता रहा। विवादके स्थानपर इसे संवाद कहना चाहिये। यह सरस संवाद था अभूतपूर्व और इसका आस्वादन भी था लोकोत्तर।

प्रेमी और प्रेमास्पदके परस्पराकर्षणका बड़ा सुन्दर चित्रण एक स्थानपर बाबूजीने किया है। महाभावमयी श्रीराधाके श्रीमुखके उद्गारोंको शब्द-बद्ध करते हुए बाबूजीने बताया–

होता जब वियोग, तब उठती तीव्र मिलन-आकांक्षा जाग।
पल-अमिलन होता असह्य तब, लगती हृदय दहकने आग।।
चलती मैं रस-सरि उन्मादिनी विह्वल, विकल तुम्हारी ओर।
चलते उमड़ मिलाने निजमें तुम भी रस-समुद्र तज छोर।।

(जब वियोग होता है, तब अत्यन्त तीव्र मिलनाकांक्षाका उदय हो जाता है, फिर एक-एक पलका अमिलन असह्य हो उठता है और हृदयमें ज्वाला धधक उठती है। उस समय मैं रस-सरिता उन्मादिनी और विह्वल-विकल होकर तुम्हारी ओर चल पड़ती हूँ, उधर तुम रस-समुद्र कूल-किनारा त्यागकर मुझे अपनेमें मिला लेनेके लिये उमड़ चलते हो।)

'प्रेमी पक्ष'की भाव-धारापर उन दिनों एक कविताकी रचना हुई थी। यह रचना तो भावग्राही बाबाको अत्यन्त प्रिय लगी ही, 'प्रेमास्पद-पक्ष'का समर्थन करनेवाले बाबूजीका रसमय हृदय भी इस रचनापर बहुत अधिक रीझ गया था। वह कविता इस प्रकार है–

अनुपम धारा सुर-सरिताकी।
प्यार भरी अतुलित गति अविरल, सागर-लक्ष्य स्नेह-भरिताकी।।
कहा शिलाने– 'तुम मधु-सलिला और पुञ्ज वह खारेपनका।
सोचो तनिक, तुली हो क्यों तुम करने शेष मधुर जीवनका'?
कहा तटोंने– 'कहाँ चली तुम? क्या पाओगी उससे मिलकर?
क्यों खोती अस्तित्व स्वयंका, नाम-रूपका सिन्धु-चरणपर'?
शिला खण्डको, युगल तटोंको, मिला न कुछ सरिताका उत्तर।
सुना तनिक-सा कल-कल स्वरमें विकल हृदयका कल क्रन्दन वर।।
'कितनी दूर अभी बहना है? कितनी दूर सिन्धुका तट है?
दूर भला क्यों मिलन घड़ी है? मधुर मिलन क्यों नहीं निकट है'?
पथके पत्थर रोक न पाये सरिताकी उस धार प्रखरको।
विविध प्रश्न भी मोड़ न पाये, विरत न कर पाये पल भरको।।

भले क्षारमय उसे कहें सब, सिन्धु रूप बस, बसा नयनमें।
एक निरन्तर सिन्धु-मिलनकी छायी बस, उत्कण्ठा मनमें।।
सिन्धु-पुलिनका बस, अन्वेषण, एक साध्य बस, सिन्धु-देश है।
अविरल बहना, बहते जाना, बहना ही बस, कार्य शेष है।।

* * * * *

भगवान श्रीविष्णु से संभाषण

बाबाकी कुटियाके बाड़ेके भीतर अमरूदका एक पेड़ है। बाबा भगवती त्रिपुरसुन्दरीकी पूजा कर चुकनेके बाद निर्माल्य जहाँ रख दिया करते थे, उसी स्थानपर निर्माल्यमेंसे यह अमरूद-वृक्ष उग आया। बाबा अपनी कुटियाके बाहर, पर बाड़ेके भीतर खड़े थे कि उस अमरूद वृक्षके ऊपर आकाशमें भगवान श्रीविष्णु शंख, चक्र, गदा और पद्म लिये हुए प्रकट हो गये। बाबाने मस्तक झुकाकर प्रणाम किया। भगवान श्रीविष्णुका मुखमण्डल अत्यधिक प्रसन्न था। भगवान श्रीविष्णुने बाबासे कहा – तुम माता देवहूतिकी भूमिकाको स्वीकार कर लो।

माता देवहूतिके गर्भसे प्रकट हुए थे सांख्य-शास्त्रके प्रवर्तक आचार्य कपिल, जिनकी गणना चौबीस अवतारोंमें भी की जाती है। सांख्य-शास्त्रमें ज्ञान-तत्त्वका विशेष विवेचन और प्रतिपादन हुआ है। माता देवहूतिकी स्थितिको स्वीकार करनेका अर्थ होता है 'प्रेम' से 'ज्ञान' को श्रेष्ठतर और फिर सर्वोपरि मान लेना, किन्तु बाबा तो श्रीराधाभावमें प्रतिष्ठित थे, जहाँ प्रेम-ही-प्रेम है। भगवान श्रीविष्णुके वचनोंसे प्रेरणा पाकर वे बाबा, जो अपने दिव्यस्वरूपमें प्रतिष्ठित थे, उन्होंने एक माँग उनके सामने रखी। माँगको सुनकर भगवान श्रीविष्णुने कहा – अभी काल (समय) अनुकूल नहीं है।

बाबाने कहा – पर आप तो सर्वसमर्थ हैं। कालके नियामक एवं नियन्त्रक भी तो आप ही हैं। अनुकूल कालका निर्माण आपके लिये कठिन कार्य नहीं है।

बाबाके ऐसा कहते ही भगवान श्रीविष्णु अन्तर्धान हो गये। उस पुरातन प्रसंगको सुनाकर बाबा बता रहे थे – भले भगवान श्रीविष्णुने

उस समय 'तथास्तु' नहीं कहा, पर उनके सामने मेरी अर्जी तो आ ही गयी है। रह-रह करके उनको मेरी अर्जीपर विचार करना पड़ता है ही।

बाबाने यह नहीं बताया कि उन्होंने भगवान श्रीविष्णुके सामने क्या माँग रखी थी।

* * * * *

'राधा-सुधा-निधि' की कथा

अजमेर-यात्रामें रसिक-संत श्रीसनम साहबके भाव-शिष्य राजवैद्य पण्डित श्रीलक्ष्मीनारायणजी बाबाके सम्पर्कमें आये। आप 'श्रीराधा-सुधा-निधि' नामक रस-ग्रन्थके अच्छे मर्मज्ञ थे। उदयपुरसे आप नित्य निवासके लिये श्रीवृन्दावन चले आये थे। श्रीसनम साहब भले मुसलमान थे, पर थे श्रीराधाजीके परम भक्त। हितकुलावतंस गोस्वामी श्रीहितहरिवंशजी महाप्रभुके सेव्य श्रीराधावल्लभलालजी ही श्रीसनम साहबके उपास्य थे।

श्रीसनम साहबके 'पधार' जानेके बादकी दो घटनाएँ उल्लेखनीय हैं।

एक बार वैद्य श्रीलक्ष्मीनारायणजीको एक पत्र एक संतने राधाकुण्डसे आकर दिया। पत्रके अन्तमें 'सनम सखी'के हस्ताक्षर थे और राधाकुण्डपर उस संतको श्रीसनम साहबने दिया था वैद्य श्रीलक्ष्मीनारायणजीको दे देनेके लिये।

इसी प्रकार वृन्दावनके सेवाकुञ्जमें श्रीसनम साहबने सखी रूपमें श्रीवैद्यजीको दर्शन दिये थे और कहा था कि वे षष्ठी-उत्सवमें श्रीवैद्यजीके घर आयेंगे। श्रीसनम साहबकी उत्कट भक्तिका प्रभाव वैद्य श्रीलक्ष्मीनारायणजीपर पड़ा और उनकी जीवन-धारा श्रीप्रिया-प्रियतमकी रसमयी उपासनाकी दिशामें बह चली।

श्रीवैद्यजी और बाबाकी निकटता क्रमशः बढ़ती ही चली गयी। श्रीवैद्यजी सन् १९६५ ई.में गीतावाटिकामें बहुत दिनोंतक रहे तथा प्रतिदिन डेढ़-दो घंटा 'श्रीराधा-सुधा-निधि'की सरस कथा बाबाको सुनाया करते थे। कई मासतक श्रीराधा-रस-सुधाका पावन प्रवाह स्वच्छन्द रूपसे बहता रहा। इस सरस कथाके पावन प्रवाहने बाबाको बड़ा सुख प्रदान किया। २७० श्लोकोंवाला यह रसमय ग्रन्थ रसिक भक्तोंका कण्ठहार है।

स्वजन काव्य गोष्ठी

अलमस्त संतकी भीतरी मौज कब और क्या रूप ले लेगी, इसे कोई साधारण व्यक्ति अनुमान भी नहीं कर सकता। अगला प्रसंग कबका है, इसे बतला सकना कठिन है, परन्तु अनुमानतः कहा जा सकता है कि सन् १९६६ के आस-पासका होना चाहिये। एक बार बाबा अपनी पुरानीवाली कुटियाके बाहर बैठे हुए थे और उनके पास बैठे हुए थे गीतावाटिकाके ही निज जन जैसे गोस्वामीपाद श्रीचिम्मनलालजी महाराज, परमादरणीया श्रीसावित्रीबाई फोगला, भाई श्रीकृष्णचन्द्रजी अग्रवाल, श्रीभीमसेनजी चोपड़ा आदि-आदि। स्वजनोंका यह सामीप्य ही स्वजन काव्य गोष्ठीके रूपमें परिणत हो गया। कैसे परिणत हो गया? परिणत होना कोई कठिन बात थोड़े ही है। बाबाके मनकी मौजका यह परिणाम था। बाबाने उपस्थित सभी निज जनोंसे कहा— जो-जो यहाँ बैठे हैं, सभी एक-एक कविता या गीत या श्लोक या शायरी बोलें। जिसको जो याद हो, जैसा भी याद हो, वह उसे ही बोले।

बाबाकी यह मौज देखकर सभीके अधरोंपर हर्षकी कान्ति उभर आयी और इस स्वजन काव्य गोष्ठीका शुभारम्भ हुआ श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीके द्वारा। जिसने-जिसने जो जो सुनाया, वह नीचे दिया जा रहा है।

१— पूज्य श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी

ध्यानाभ्यासवशीकृतेन मनसा तन्निर्गुणं निष्क्रियं
ज्योतिः किञ्चन योगिनो यदि परं पश्यन्ति पश्यन्तु ते।
अस्माकं तु तदेव लोचनचमत्काराय भूयाच्चिरं
कालिन्दीपुलिनेषु यत्किमपि तन्नीलं महो धावति।।

(ध्यानाभ्याससे मनको स्ववश करके योगीजन यदि किसी प्रसिद्ध निर्गुण निष्क्रिय परमज्योतिको देखते हैं तो वे उसे भले ही देखें; परन्तु हमारे लिये तो श्रीयमुनाजीके तटपर जो कृष्णनामवाली वह अलौकिक नील ज्योति दौड़ती फिरती है, वही चिरकालतक लोचनोंको चकाचौंधमें डालनेवाली हो।)

२– आदरणीया मैया (प्रयागवाली मैया, श्रीजजसाहबकी सहधर्मिणी)

कब दुखदाई होयगो मोंको बिरह अपार।
रोइ रोइ उठि धाइहौं कहि कहि नंदकुमार।।

३– श्रीरामप्रसादजी दीक्षित (सम्मान्य श्रीजज साहब)

He prayeth best who loveth best,
All things both great and small,
For the dear God who made us,
He made and loveth all.

(सबसे श्रेष्ठ प्रार्थना उसकी जिसका प्रेम पूत परमोत्तम।
सकल वस्तुके प्रति हो चाहे गुरु महान या तुच्छ लघुत्तम।।
क्यों कि स्नेहमय ईश्वरने ही है हम सबको रचा बनाया।
नहीं रचा ही केवल, निज वत्सलताका भी पात्र बनाया।।)

४– ठाकुर श्रीघनश्यामदासजी शर्मा

राधाकरावचितपल्लववल्लरीके,
राधापदाङ्कविलसन्मधुरस्थलीके।
राधायशोमुखरमत्तखगावलीके,
राधाविहारविपिने रमतां मनो मे।।

(जहाँके पल्लव और मञ्जरी श्रीराधिकाजीके हाथोंसे चुने गये हैं, जहाँकी मनोहर भूमि श्रीराधिकाजीके चरणचिह्नोंसे सुशोभित हो रही है और जहाँके पक्षीगण श्रीराधिकाजीके यशोगानमें ही मस्त हैं, ऐसे श्रीराधिकाजीके क्रीडावन वृन्दावनमें मेरा मन विहरण करे।)

५– श्रीहरिवल्लभजी शर्मा

बेसर कौन की अति नीकी।
होड़ परी प्रीतम अरु प्यारी अपने अपने जी की।।
न्याय परौ ललिता के आगे कौन सरस को फीकी।
नंददास प्रभु बिलगि जिन मानो कछु इक सरस लली की।।

६– स्टेशन मास्टर श्रीशंकरलालजी

इस कदर मश्के तसव्वुर हो मेरी आँखों में।
कुछ नजर आये न यार की सूरत के सिवा।।

* * * * *

आपकी याद का चुभ जाये जो दिल में काँटा।
हम कसम खाते हैं फूलू का नजारा न करें।।
आपके दर्द दी दौलत अगर हमको हो नसीब।
हम कभी दुनिया की राहत को पुकारा न करें।।

* * * * *

मोहब्बत में इक ऐसा वक्त भी आता हैं इन्साँ पर।
कि तारों की चमक से चोट लगती है रगे जाँ पर।।

* * * * *

तेरी मखमूर आँखों ने मुझे मस्ती अदा की है।
नही तो गैर-मुमकिन था मेरा बेहोश हो जाना।।

* * * * *

इस कदर तेरा तसव्वुर मुझे बढ़ जाता है।
आइना देखता हूँ मुँह तेरा नजर आता है।।

* * * * *

आँखें हों और तुम न हो आँखों के सामने।
मंजूर वह नजर व नजारा न मुझको।।

७– बहिन श्रीसावित्रीबाई फोगला

काहू के बल भजन को काहू के आचार।
व्यास भरोसे कुँवरि के सोवें पाँव पसार।।

८– बहिन कमलजी

सर बसजूद है मगर अज्म में पुख्तगी नहीं।
कायले बन्दगी तो हूँ काबिले बन्दगी नहीं।।

कौन सुनेगा तेरे सिवा पेशे नजर कभी तो आ।
सिज्दा करूँ किसे बता जब तू ही सामने नहीं।।
माना कि मैं गरीब हूँ माना कि मैं हकीर हूँ।
मुझसे न ऐसे रूठिये जैसे मेरा कोई नहीं।।

(मेरा मस्तक तो झुका हुआ है, परन्तु मेरे संकल्पमें दृढ़ता नहीं है। यह तो मानती हूँ कि उपासना करनी चाहिये, परन्तु मुझमें उपासना करनेकी योग्यता नहीं है। तेरे सिवा मेरी पुकारको कौन सुनेगा? कभी तो मेरी आँखोंके सामने आ। जब तू ही सामने नहीं है तो बता, मैं किसे प्रणाम करूँ? यह तो मैं स्वीकार करती हूँ कि मैं गरीब हूँ और अत्यन्त तुच्छ हूँ, परन्तु मुझपरसे तुम अपनी नजर इस भाँति न हटा लो, मानो मेरा कोई नहीं हो।)

९– पानकी नानी

सीताराम सीताराम बोल सुवा।
सुवा ने खुवा द्यौ माल पुवा।।
राधेश्याम राधेश्याम बोल चिड़ी।
चिड़ी ने खुवा द्यौ खीर पुड़ी।।

१०– श्रीगुलाबचन्दजी बोथरा

अय मेरे जख्मे जिगर नासूर बनना है तो बन।
क्या करूँ, इस जख्म पर मरहम लगाना है मना।।
मकतबे इश्क का देखा अजब दस्तूर।
उसे छुट्टी न मिली जिसे सबक याद हुआ।।

११– श्रीकृष्णचन्द्रजी अग्रवाल

आमि त तोमारे चाहिनि
तुमि आमागोरे चेयेछो।
आमि ना डाकिते हृदय माँझारे
निजे एसे देखा दियेछो।।
चिर आदरेर विनिमये लाड़िली
चिर अवहेला पेयेछो।

(मैंने तो जीवनमें तुम्हें चाहा नहीं, तुमने ही मुझ अभागेको चाहा

है। मैंने तो कभी तुम्हें पुकारा नहीं, पर फिर भी स्वयं तुमने ही मेरे हृदय-देशमें आकर दर्शन दिया है। हे लाड़िली! तुमने मुझे चिर आदर दिया, पर मेरे द्वारा उस आदरके बदलेमें चिर अवहेलना ही हुई है।)

१२— श्रीमाधवशरणजी श्रीवास्तव

हृदयमें पीर नयनमें नीर।
यही मम जीवनकी तस्वीर॥

* * * * *

हृदय बेपीर नयनमें तीर।
यही जीवनधनकी तस्वीर॥

१३— श्रीभीमसेनजी चोपड़ा

असु अमी सुखाने पत्थर पायातील।
मन्दिर उभविणे हेच आमुचे शील॥
वृक्षाचा शाखा उँचनि भाँतरि जावो।
विश्रान्ति सुखाने विहग वृन्द ते घेवो॥
हे दैवच आमुचे ध्येय मन्दिरातील।
असु अमी सुखाने पत्थर पायातील॥

(मेरा सुख इसीमें है कि मैं मन्दिरकी चौखटका पत्थर बन सकूँ। मन्दिरका निर्माण हो जाना चाहिये, यही मेरा शील है। मुझे उसका कलश बननेकी अकांक्षा नहीं है। मन्दिरके प्रांगणके वृक्षकी शाखायें खूब फूलें-फलें और ऊँची उठती जायें, जिससे उसपर विहग-वृन्द सुखसे विश्राम कर सकें। हे देव! मेरा सुख तो उस ध्येय मन्दिरकी नींवका पत्थर बन जानेमें ही है।)

* * * * *

गोरक्षा आन्दोलन में गोपनीय सहयोग

धर्मप्राण भारतमें गोवंशकी हत्या देशके लिये एक कलंक है। गोवध-बन्दीके लिये समय-समयपर अपने देशमें अनेक प्रयत्न हुए, किन्तु इन सभी प्रयत्नोंमें 'सर्वदलीय गोरक्षा महाभियान समिति' द्वारा संचालित सन् १९६६ के नवम्बर-दिसम्बर वाले आन्दोलनका विशेष स्थान है। इस आन्दोलनसे सारे देशमें गोरक्षाके लिये अभूतपूर्व लहर फैल गयी थी, किन्तु कँाग्रेसी सरकारकी मुस्लिम संतुष्टीकरण वाली नीतिके कारण आन्दोलन असफल हो गया। ७ नवम्बरके दिन दिल्लीमें अति विराट जुलूसका निकलना, परमपूज्य श्रीपुरीशंकराचार्यजी और श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीका अनशन व्रतपर बैठना, सत्याग्रहियों द्वारा जेलोंका भर दिया जाना, ये सब उस आन्दोलनकी महत्त्वपूर्ण और ऐतिहासिक बातें हैं।

'सर्वदलीय गोरक्षा महाभियान समिति' का संचालन करनेवाली 'सर्वोच्च समिति' के सात सदस्योंमेंसे एक सदस्य बाबूजी भी थे। बाबूजीके द्वारा ही इस आन्दोलनका बीजारोपण स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश) में हुआ था। पूज्य स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज तथा पूज्य श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीके बीच जो पारस्परिक गतिरोध था, उस गतिरोधको मिटा करके उनको एक मंचपर ले आनेका और आन्दोलनके संकल्प-पत्रपर दोनों विभूतियोंका प्रसन्न मनसे हस्ताक्षर करवा लेनेका श्रेय बाबूजीको ही है और हस्ताक्षरके रूपमें इस आन्दोलनकी नींव स्वर्गाश्रममें पड़ी। फिर आन्दोलनके काममें खूब तेजी आयी। कार्य-विस्तारके समय अथवा नीति-निर्धारणके समय आन्दोलनके शीर्ष नेताओंके मध्य जब-जब कोई गतिरोध उत्पन्न हुआ, तब-तब वह विषमता, कभी आंशिक रूपमें और कभी पूर्ण रूपमें दूर हो सकी बाबूजीके प्रयाससे। उन्होंने अपनी 'कल्याण' मासिक पत्रिकाके माध्यमसे विशाल जनमत तैयार किया। पत्रिकाके पन्ने गोरक्षाकी बातोंसे भरे रहते थे। अपनी पत्रिका तो अपनी थी, अतः उसको तो इस कार्यमें झोंक ही दिया, इसके अलावा विभिन्न समाचार पत्र-पत्रिकाओंको वक्तव्य भेजकर, नेताओं-महापुरुषोंके पास पत्र लिखकर, यत्र-तत्र सार्वजनिक सभाओंमें भाषण देकर, जेलमें सत्याग्रहियोंसे तथा आश्रमोंमें साधु-संतोंसे मिलकर, अपने व्यक्तियोंको

स्थान-स्थानपर कार्य करनेके लिये भेजकर, इस प्रकार विविध रीतिसे उन्होंने आन्दोलनको सफल बनानेका अथक प्रयास किया। किसी भी आन्दोलनको चलानेके लिये धनकी पदे-पदे जरूरत होती है। बाबूजी कोषाध्यक्ष थे और आवश्यक धन-संग्रह भी उनके द्वारा हुआ।

बाबूजी द्वारा होनेवाला यह सारा कार्य ऐसा था, जिसे समाज अपनी आँखोंसे देख रहा था तथा देख-देख करके बाबूजीको वन्दन कर रहा था, पर कुछ ऐसे भी सुगुप्त प्रयास थे, जिसकी जानकारी समाजको मिल ही नहीं पायी। बाबूजीके साथ बाबा नित्य रहते ही थे। उनका भी हृदय गोहत्यासे व्यथित था। वे भी हृदयसे चाहते थे कि गोहत्या बन्द होनी ही चाहिये, इसमें बाबाका प्रयास कम नहीं रहा, भले वह लोगोंके सामने प्रकाकशमें नहीं आ सका।

जब ७ नवम्बर १९६६ को विशाल जुलूस निकलनेवाला था, तब बाबूजी और बाबा दिल्लीमें ही थे। गोरक्षार्थ निकलनेवाले उस जुलूसको और उस विराट आन्दोलनको कुचल देनेके लिये इन्दिरा सरकारने कमर कस रखी थी। दिल्लीमें प्रधानमंत्री श्रीइन्दिराजीका जो निवास-स्थान था, वहाँ कब-कब और क्या-क्या चर्चा होती है, इसकी जानकारी प्राप्त करनेके लिये बाबाने अपना ढंग बैठा रखा था। अपने विद्यार्थी जीवनमें बाबाने देशको स्वतन्त्र करानेवाली क्रान्तिकारी गतिविधियोंमें खूब भाग लिया था। उस क्रान्तिकारी जीवनका अनुभव होनेके कारण उनको भीतरी बातोंको पता लगा लेनेवाले 'तरीकों'की जानकारी थी। वह पुरानी जानकारी अब गोरक्षाके निमित्त काम आयी। प्रधानमन्त्रीके निवासस्थान तीन-मूर्ति भवनकी अनेक बातोंकी जानकारी प्राप्त करके वे बाबूजीको बतला दिया करते थे। तीन-मूर्ति-भवनकी तरह कुछ और भी महत्त्वपूर्ण 'चर्चा केन्द्र' थे। उन-उन स्थानोंकी अनेक आवश्यक बातोंकी जानकारी प्राप्त करके आप बाबूजीको पूर्ण सूचना दे दिया करते थे।

धन-संग्रहमें भी बाबाका कम योगदान नहीं रहा। जितने भी धनपति बाबासे मिलनेके लिये आते थे, आप उनको प्रेरणा देते थे कि गोरक्षाके लिये जितना रुपया दे सकते हैं, आप लोग अवश्य दें और आप श्रीपोद्दार महाराजकी थैली भर दें। गो-ब्राह्मण-मन्दिर-तीर्थ आदिकी सेवामें जो धन लग जाता है, वह दान अमोघ होता है।

बाबूजीको उन्होंने समय-समयपर जो सही परामर्श तथा उचित

सुझाव दिया, यह कार्य तो सदा परम गोपनीय रहा।

बाबाको तो अपने जीवनकी परवाह रहती ही नहीं थी। समयपर वे अपने निज जनोंके जीवनको भी दाँवपर लगा दिया करते थे। इन्दिरा सरकारकी कूटनीतिके कारण जो धक्कामुक्की, पथराव, आगजनी, अश्रु-गैस, फायरिंग आदि हुई, उसके फलस्वरूप ७ नवम्बर वाला विराट जुलूस विफल हो गया। दिल्लीमें पंजाब, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, मध्य प्रदेश, राजस्थान, गुजरातसे हजारों गोभक्त सैकड़ों बसोंके द्वारा आये थे। ये बसें लाल किला मैदान और सुभाष पार्कमें थीं। जुलूसके विफल होते ही पुलिस अपने डंडेके बलपर उन बसोंको अपने-अपने स्थानपर वापस भेजने लगी। लाल किलेके सामनेवाले मैदानमें सेना मार्च कर रही थी।

८ नवम्बरको दिल्लीके वातावरणमें बड़ी सनसनी थी। बाबाको इसका अखबारी समाचार नहीं, सही आँखों-देखा समाचार चाहिये था। उन्होंने तुरन्त चोपड़ाजीसे कहा — आप लाल किला और सुभाष पार्क जाइये और वहाँका सारा समाचार लाइये। डरियेगा नहीं। देश-धर्मके लिये जानको हथेलीपर रखना चाहिये। हाँ, एक बात और। आपको अकेले नहीं भेजूँगा। आपके साथ बंकाजी भी जायेंगे।

बाबाकी प्रेरणासे चोपड़ाजी गये और उनके साथ मैं था। वहाँ हम दोनों गये और वहाँका सारा समाचार लाकर बाबाको दिया।

मैं यहाँ कहना यह चाहता हूँ कि गोरक्षामें बाबूजी तो पूर्ण सक्रिय थे ही, परन्तु बाबूजीके साथ बाबा भी थे, भले वे बाबा ऊपरसे देखनेमें पूर्ण निष्क्रिय दिखलायी देते थे। निष्क्रिय दिखलायी देनेवाले बाबा गोरक्षाके लिये कितने सक्रिय थे, यह रहस्य केवल वे जानते हैं, जो उन दिनों उनके पास थे।

* * * * *

एक छिपे भक्त

एक बार राजस्थानकी बात चल रही थी, अतः बाबाने राजस्थानके एक मारवाड़ी गुप्त भक्तकी गाथा सुनानी आरम्भ की। यह घटना बाबूजीके महाप्रस्थानसे कुछ साल पहलेकी है। एक मारवाड़ी सज्जन बाबूजीके पास आये। सिरपर खूब बड़ी पगड़ी थी। वे ऐसा

बोलते थे, मानो खड़ी बोली बोलना जानते ही नहीं हों। एकदम मारवाड़ी भाषामें बात करते। वे गीतावाटिका आकर बाबूजीके कमरेमें गये तथा कहा – मैं तो बाबासे मिलना चाहता हूँ।

बाबूजीकी दृष्टि बड़ी पैनी थी। उन्होंने उस व्यक्तिमें कुछ देखा, अतः किसीके साथ उन बहुत प्रौढ़ मारवाड़ी सज्जनको बाबाके पास भेज दिया। बाबा अपनी कुटियाके बाड़ेसे बाहर निकलकर उनके पास बैठ गये। वे अपनी बात सुनाने लगे। उन मारवाड़ी सज्जनने बताया – मैं एक बार बीमार पड़ा। घरवालोंने चिकित्सा की, पर कुछ लाभ नहीं हुआ। हालत दिन-प्रति-दिन बिगड़ती चली गयी। एक दिन तो मरणासन्न स्थिति हो गयी। मुझे कुछ क्षणोंका मेहमान मानकर घरवालोंने खाटपरसे उतारकर जमीनपर सुला दिया। जमीनपर सुलानेके बाद मुझे तो होश रहा नहीं, पर मैंने देखा कि एक बड़ा सुन्दर-सा छोरा मेरे पास बैठा है। होठोंपर अँगुली लगा रखी है और मेरी ओर एकटक देख रहा है। उस छोरेके शरीरका रंग नीला-नीला है। उसकी सुन्दरताकी सीमा नहीं है। उसकी बड़ी ही प्यारी-प्यारी, भोली-भोली सूरत है। मुझे शरीरका तनिक भी भान नहीं था। मैं उसे देख रहा था और वह छोटा-सा छोरा मुझे देख रहा था। मुझे तो पता नहीं, पर घरवालोंने कहा कि उस बेहोशीकी हालतमें मैं दस दिनतक पड़ा रहा। जब दस दिनतक मेरे प्राण बचे रहे तो मेरे घरवालोंने मुझे पुनः खाटपर लिटा दिया। दस दिनके बाद उस छोरेका दिखलायी देना बन्द हो गया। उसका दिखना तो बन्द हो गया, पर उसकी मीठी-मीठी आवाज सुनायी देती रही। इस आवाजका सुनना कभी बन्द नहीं हुआ। वह आवाज इतनी मीठी है कि क्या कहूँ? उस मिठासका बखान सम्भव नहीं। उसके सुननेसे मन भरता ही नहीं है, पर एक आश्चर्य यह कि उसकी मीठी आवाज केवल मुझको ही सुनायी देती थी। पासके किसी भी व्यक्तिको यह आवाज सुनायी नहीं देती। अब तो मैं उससे रोज बात करने लगा। धीरे-धीरे मेरी तबियत ठीक होने लगी और मैं चलने फिरने लगा। समय बीतनेपर मैं एकदम ठीक हो गया, पर उससे बात करनेकी चाह हमेशा बनी रहती। उससे बात करनेका सिलसिला सदा बना रहा। वह जो कहता, उसको मैं कभी टालता नहीं था। एक उदाहरण लें। घरवालोंने मुझे पीनेके लिये दूध दिया। दूध पीनेके

लिये मैंने ज्यों ही गिलास हाथमें लिया, त्यों ही यदि उसने कह दिया कि दूध मत पीओ तो मैं दूध नहीं पीता था। मैं दूधका गिलास वहीं रख देता था। कभी आधा पीनेके बाद मना करता तो दूध पीना बन्द कर देता। वह जैसे कहता, वही मैं करता। यही बात भोजनके बारेमें अथवा कहीं जानेके बारेमें थी। मैं चौराहेपर यदि दाहिनी ओर मुड़कर जाना चाहता हूँ, पर यदि उसने कह दिया कि सामनेकी ओर चले चलो तो फिर मैं सामने ही जाता था। धीरे-धीरे उससे संकोच हट गया। मैं उससे व्यापार सम्बन्धी बातें भी पूछने लगा कि क्या मैं अमुक सौदा कर लूँ। वह जब हाँ कहता, तभी मैं वह सौदा करता। उस सौदेके करनेसे इतना लाभ हो जाता कि घर-गृहस्थीका खर्च निकल जाता। यह सब तो ठीक है, पर एक बातका बड़ा दुख है कि वह दिखलायी नहीं देता। बस, यह चाह होती है, बहुत अधिक चाह होती है कि वह दिखलायी दे। मुझे तो आपसे यही पूछना है कि वह छोरा मुझे कब दिखलायी देगा, कैसे दिखलायी देगा।

वे मारवाड़ी सज्जन बाबाको बड़े भाव भरे ढंगसे यह सारी गाथा सुना रहे थे और उनके स्वरमें बड़ी उत्सुकता थी कि उस छोरेका दर्शन होना चाहिये। बाबाने उनसे कहा – मृत्युसे पहले आपको दर्शन हो जायेंगे।

यह उत्तर सुनकर वे बड़े उद्विग्न हो उठे और ठेठ मारवाड़ी भाषामें क्षुब्ध हृदयसे कहने लगे – मृत्युके समय दर्शन हुआ तो क्या हुआ? क्या वह दर्शन भी कोई दर्शन है? दर्शनका मजा तो जल्दी-से-जल्दी होनेमें है। जिस तरह उस छोरेसे बात करनेका मजा मिलता रहता है, वैसे ही उसको देखनेका मजा भी मिलता रहे। उससे बात करनेका तथा देखनेका मजा हमेशा मिलता रहे। बस, आप तो यह बतायें कि जल्दी-से-जल्दी उसका दर्शन कब होगा।

वे निपट मारवाड़ी सज्जन बाबासे चिपट ही गये। बाबाने बतलाया – यदि वे श्रीपोद्दारमहाराजके भेजे हुए मेरे पास नहीं आये होते तो मैं कभीका बहला-फुसलाकर उन्हें विदा कर दिया होता। मैं जितना-ही-जितना उनसे कतराता, वे उतना-ही-उतना अधिक मुझपर हावी होते।

बाबासे उन्होंने कहा – मैंने आपकी बड़ी प्रशंसा सुनी है। आप बहुत ऊँचे संत है। बड़ी आशासे मैं आपके पास आया हूँ। आप मेरी बात बना दें कि मुझे उस छोरेके दर्शन होने लग जाये।

उनसे पल्ला छुड़ानेके लिये बाबाने कहा – अच्छा मृत्युसे पर्याप्त समय पहले आपको उस छोरेका दर्शन हो जायेगा।

तब वे मारवाड़ी सज्जन बोले – मैं पढ़ा लिखा नहीं हूँ। मैं हिन्दी नहीं जानता। 'पर्याप्त' माने क्या होता है? आप पर्याप्तका भाव समझाइये।

तब बाबाने कहा – मृत्युके बहुत पहले।

यह सुनकर उन मारवाड़ी सज्जनने कहा – अच्छा, निरा पहले, बहुत अच्छा।

इतनी बात करके वे मारवाड़ी सज्जन उठकर चले गये और बाबा अपनी कुटियाके बाड़ेकी ओर चले। कुटियाके एकदम समीप एक बिल्व वृक्ष है। जब वे मारवाड़ी सज्जन बिल्व वृक्षके पास पहुँचे तो वे उस छोरेसे पूछते हैं – अरे, तू यह बात बता कि यह साधु जो बात कह रहा है, वह सही कह रहा है क्या?

उस छोरेने रोष भरी वाणीमें झिड़कते हुए कहा – पहले तो तू वहाँ गया ही क्यों और यदि गया तो फिर उस साधुके कहनेपर संदेह क्यों किया?

उस छोरेकी बात सुनकर उन मारवाड़ी सज्जनकी भावनाओंको बड़ा धक्का लगा कि मुझसे एक बड़ा अपराध हो गया है। अपराध-बोधकी भावनाके उदित होते ही वे बाबाकी कुटियाके बाड़ेकी ओर बढ़े। बाबा अपने बाड़ेका द्वार बन्द कर चुके थे। वे द्वारपर आकर बाड़ेका फाटक थपथपाने लगे तथा कहने लगे – ओ बाबा! ओ बाबा! बस, एक बार और खोल दें। बस, एक मिनटके लिये खोल दें। ओ बाबा! बस, एक बार। बस, एक बार।

बाबा लौटकर वापस आये तथा द्वार खोलकर खड़े हो गये। तब उन मारवाड़ी सज्जनने वह सब बात बाबाको बतायी, जो उस नीले छोरेसे विल्व वृक्षके पास हुई थी। यह सब कहकर और हाथ जोड़कर वे बाबासे क्षमा याचना करने लगे – मेरी गलती माफ कर दें। मेरा संदेह मिट गया। आपकी बात जरूर सच होगी।

इसके बाद वे मारवाड़ी सज्जन चले गये। इस भेंटके लगभग एक-डेढ़ साल बाद वे फिर आये, बड़े प्यारसे बड़ी श्रद्धा पूर्वक मिले तथा कहने लगे – बाबा, अब तो उस छोरेके दर्शन होने लग गये हैं! इतना ही नहीं, उसकी लीलाओंके भी दर्शन होते हैं। मै तो निहाल हो गया।

ये सब बातें वे अपनी सरल मारवाड़ी भाषामें बड़ी भोली रीतिसे कह रहे थे। उनके द्वारा ऐसा सब बता दिये जानेके बाद बाबाने उनसे पूछा – एक बात बताइये। क्या आपकी यह घटना मैं किसीके सामने कह सकता हूँ?

मेरे ऐसा कहते ही वे बिगड़ उठे – बस, आप साधुओंमें यही खोट है कि किसीकी बातको पचा नहीं सकते, छिपा नहीं सकते। आपको पूज्य मानकर यह सब बताया तो क्या इसलिये बताया कि आप लोगोंको बताते फिरें?

यह सुनकर बाबाने कहा – मैं यह वचन तो नहीं देता कि मैं नहीं बताऊँगा, पर यदि बताऊँगा तो आपकी हानि नहीं होगी। कोई यह नहीं जान पायेगा कि यह घटना किसके जीवनकी है।

यह प्रसंग सुनाते-सुनाते हम लोगोंको बाबाने बतलाया – फिर वे मेरे पाससे चले गये। अब पता नहीं कि उनका शरीर है या नहीं। उन मारवाड़ी सज्जनके हृदयमें अप्रकट रहनेकी जो भावना थी, वह स्वाभाविक थी। जो वस्तुतः श्रीकृष्णानुरागमें छका रहता है, वह भक्त तो अपनी भक्ति-भावनाको सुगुप्त ही रखना चाहेगा।

* * * * *

गैरिक वस्त्र की मर्यादा

१९५६ में बाबाने काष्ठ मौन व्रत ले लिया। काष्ठ मौनके बाद बाबाके नियमोंमें काफी कठोरता आ गयी। सही-सही समय बतला सकना कठिन है, परन्तु सम्भवतः सन् १९६६ में पण्डित श्रीतारादत्तजी मिश्र अपने चतुर्थाश्रमी सहोदर भाई अर्थात् बाबासे मिलनेके लिये गोरखपुर आये। जहाँतक पारिवारिक जनोंसे मिलनेकी बात है, बाबाके नियमानुवर्तितामें बड़ी कठोरता थी। उस कठोरताके कारण यह सम्भव ही नहीं लग रहा था कि बाबा अपने परिवारके किसी भी व्यक्तिसे, जिससे

रक्त-सम्बन्ध हो, उससे मिल लेना चाहेंगे। मिल लेनेकी बात तो दूर रही, उन कौटुम्बिक जनोंकी समीप-स्थिति भी बाबाको अभीष्ट नहीं थी। इसी कारण बाबूजीने पण्डित श्रीतारादत्तजीको गीतावाटिकाके बाहर श्रीजगदीशजी शर्माके घरपर ही ठहराया। बाबूजी नहीं चाहते थे कि बाबाके नियम-निर्वाहमें किसी प्रकारकी कोई बाधा या विघ्न उपस्थित हो।

बाबूजीको ज्ञात था कि बाबासे मिलनेके लिये ही पण्डित श्रीतारादत्तजी आये हैं और उन्होंने बाबाको उनके आनेकी सूचना देकर यह बतलाया कि वे आपसे मिलना चाहते हैं। इस समाचारको सुनकर बाबाने बाबूजीके माध्यमसे काव्यात्मक शैलीमें अभिव्यक्त एक संदेश पण्डितजीको दिया, जिसमें स्पष्ट संकेत है कि अब हम दोनोंका मिलन यहाँकी काँटों-भरी अटवीमें नहीं होगा। अब तो मिलन होगा उस व्रजपुरमें, जहाँके पशु-पक्षी, पत्र-पुष्प पल-पल हमारी प्रतीक्षा कर रहे हैं और जहाँ दिव्य रास-विलासका रस-सिन्धु नित्य उच्छलित रहता है। बाबाद्वारा प्रणीत वह काव्यात्मक संदेश नीचे दिया जा रहा है –

है पथ तुलसी वन जोह रहा हम दोनोंका पल पल प्रियतम!
नीली सरिता हो व्याकुल है कर रही शब्द कल कल प्रियतम!
हैं अपलक बाट निहार रहीं वे वल्लरियाँ फूली, प्रियतम!
सुस्पष्ट दे रही है इंगित सारी शुकपर झूली प्रियतम!

नश्वर तनकी पगडंडीपर ठहरो मत तुम प्यारी प्रियतम!
चलती जाओ चलते जाओ रहकर गुमसुम प्यारी प्रियतम!
कँाटोंकी अटवीमें मिलकर देरी न करो प्यारी प्रियतम!
चेरीपर चरण-सरोरुह की अविलम्ब ढरो प्यारी प्रियतम!

अतएव ध्यान रखना ही है हमको इस विनतीका प्रियतम!
एवं अपने पद चालनके तालोंकी गिनती का प्रियतम!
पहली दूसरी नृत्य थेई आयी सम पर ज्यों ही प्रियतम!
अग्रज को देगा डुबा सिन्धु रस महाभाव त्यों ही प्रियतम!

जो कहीं अनुज अधिकारी रुचि या महीपाल मतिका प्रियतम!
आदर कर परिचय देता जग सम्बद्ध नेह गतिका प्रियतम!
वे पहुँच नहीं पाते अबतक सच्चिन्मय मंजिलपर प्रियतम!
मायाका ताप नहीं मिटता मिलता न कृष्ण तरुवर प्रियतम!

अग्रजके दृश्य अनुज तनसे जिनका नाता था, है प्रियतम!
वे पहुँचेंगे ही नित्य जहाँ कान्हा गाता था, है प्रियतम!
है अतः नियम अमिलन जिससे सबकी अन्तिम घाटी प्रियतम!
हो सुखद अतीव लगे मिलने माटीमें जब माटी प्रियतम!

इसीलिये विश्वास, किये रहो अविचल अहो।
व्रजपुर नित्य निवास, कुंजस्थलपर दृग रहे।।
उपवनके उस पार, हम सब ही मिल जायँगे।
माया सरित कगार, पर मिलनेमें हानि है।।

यह संदेश पण्डित श्रीतारादत्तजीके जीवनका कण्ठहार बन गया। वे सदा इसे गाया करते थे। उनके श्रीमुखसे हमलोगोंको भी यह संदेश सुननेका सौभाग्य मिला है। वे बहुत ही सुललित और सुस्वर ढंगसे सुनाया करते थे।

यह संदेश बाबाकी ओरसे दिया गया। बाबाकी दृष्टिमें केवल श्रीकृष्ण-ही-श्रीकृष्ण थे। संदेशमें अभिव्यक्त यह तथ्य ही एक प्रमाण है कि उनके व्यक्तित्वमें मात्र महाभावकी सत्ताका अस्तित्व था। उनकी ओरसे संदेश भले किसीको भी दिया जाय, किन्तु उसका अर्थ यही है कि महाभाव स्वरूपा श्रीराधा अपने प्रियतम जीवनेश्वर श्रीकृष्णको संदेश दे रही है।

पद्यात्मक संदेशका संक्षेपमें भावार्थ इस प्रकार है –

नित्य निकुञ्जेश्वरी श्रीराधाको ऐसा अनुभव होता है कि प्रियतम श्रीकृष्णके हृदयमें मिलनाभिलाषा है। उसका उत्तर संकेतमें देती हुई कृष्णप्रिया श्रीराधा कह रही है – वृन्दावनमें मिलूँगी। वृन्दावन हम दोनोंकी प्रतीक्षा कर रहा है। वृन्दावनमें यमुनाके किनारे मैं उस स्थलपर मिलूँगी, जहाँ लहरें कल-कल शब्द करती हुई हमदोनोंको बुला रही हैं। वह देखो, पुष्पित वल्लरियाँ अपलक होकर हमलोगोंकी बाट देख रही हैं। इतना ही नहीं, उस कदम्बके वृक्षपर बैठी हुई सारिका अपनी ग्रीवा शुककी ओर झुकाये हुए है और ग्रीवा झुकाये-झुकाये सारिका मुझको और तुमको एक संकेत कर रही है। सुन लो कि वह क्या कह रही है। उसके संकेतका तात्पर्य यही है कि हे प्यारी राधे! हे प्रियतम श्रीकृष्ण! इस नश्वर तनरूपी पगडंडीपर बिल्कुल मत ठहरो। पगडंडीके दोनों ओर खड़े हुए व्यक्तियोंकी

किसी भी बातपर ध्यान मत दो। बस, चुप रहकर गुम-सुम रहकर चलती जाओ, चलते जाओ। काँटोंके वनमें मिलकर व्यर्थ विलम्ब मत करो। यह इसलिये कि उस काँटों भरे वनमें ठहरना तो है ही नहीं। हे प्यारी राधे! मैं सारिका तुम्हारे चरण-सरोरुहकी चेरी हूँ। तुम मुझपर कृपा करो और अविलम्ब ढर जाओ।

अब तुम तो परम खिलाड़ी हो, इसीलिये मैं तुम्हें सावधान कर दे रही हूँ कि हम दोनोंको सारिकाकी इस विनतीपर ध्यान रखना ही पड़ेगा और साथ-ही-साथ अपने पद-विन्यासकी तालोंकी गिनतीपर भी ध्यान रखना भला। मैंने तो आजतक कभी नृत्यमें भूल की नहीं, किन्तु तुम जान-बूझकर ताल बिगाड़ देते हो। अतएव मुझसे मिलना यदि सचुमच अभिप्रेत हो तो ताल मत बिगाड़ना भला। पहली अथवा दूसरी नृत्य-थेई जैसे ही समपर आयी कि बस, तत्क्षण महाभाव रस-सिन्धु, तुम जो एक गौर वर्णका चोला पहनकर अग्रजका अभिनय कर रहे हो, उस चोलेको वह महाभाव रससिन्धु तत्क्षण डुबा देगा और अपनेमें ही मिला लेगा। महाभाव-रससिन्धुका अर्थ समझ गये न? नहीं समझे हो तो समझ लो। इसका अर्थ है अनुज रूपी चोला।

एक खेल था भला, जहाँ तुमने अग्रजका चोला पहना था और मैंने जो चोला पहना था, उसका पता तुम्हें है ही। स्पष्ट फिरसे करवाना चाहते हो तो उस चोलेका नाम था अनुज। अब सोचो, उस प्राचीन खेलको स्मरण करो। स्मृति है न महीपाल-लीलाकी? उस लीलाको भूल गये हो तो याद कर लेना और यदि याद न आवे तो कोई बात नहीं, परन्तु 'महीपाल' की एक रुचि थी, उस रुचिको यदि स्वीकार करके वह अनुजरूपी चोला लौकिक सम्बन्धका आदर करते हुए संसारसे सम्बद्ध प्रीतिका ही परिचय देता तो अबतक 'अधिकारिणी और महीपाल' अपने सच्चिन्मय मंजिलपर पहुँच ही नहीं पाते। मायाका ताप, जो सारे विश्वको जला रहा है और जो उनको भी जला रहा था, वह ताप नहीं मिटता और कृष्ण-तरुवरकी छाँह उन्हें नहीं मिलती। 'कृष्ण तरुवर' समझ गये न कि क्या वस्तु होती है? नहीं समझते हो तो मैं खोलकर कहूँगी नहीं।

एक बात और है। अग्रजके चोलेका निर्माण जब दर्जीने किया और फिर जब अनुजके चोलेका निर्माण किया तो एक खेल हो गया था। अब उसे भूल गये हो तो कोई उपाय नहीं। याद कर लो, पर ये दोनों चोले दो

स्थानपर रख दिये गये थे। अब दोनों चोलोंको दो स्थानपर रखकर ही खेल चल रहा था और चल रहा है, पर अनुजरूपी चोलेका एक खेल यह भी है कि अनुजरूपी चोलेसे जिन-जिनने नाता जोड़ रखा है, वे अन्तमें मरते-पचते वहीं पहुँचेंगे, जहाँपर कन्हैया नामका एक अहीर गाता रहता है। अब प्रश्न होता है कि अनुजरूपी चोला और अग्रजरूपी चोला, ये दोनों अलग-अलग क्यों रखे जाते हैं और क्यों नहीं उनको मिलने दिया जाता है? उसका सीधा उत्तर यह है कि सबके लिये एक अन्तिम घाटी पार करना अत्यन्त आवश्यक है। उस घाटीको पार किये बिना कोई आगे बढ़ ही नहीं सकता। वह घाटी है साँस छूटनेकी घाटी, जो सबको पार करनी ही पड़ेगी। उस घाटीको पार करते समय वह घाटी सबको अत्यन्त सुखद प्रतीत हो, माटीमें माटीके मिलनेका जब ठीक प्रश्न उपस्थित हो, उस समय वह घाटी भयानक न बनकर आह्लादजनक बन जाय, इसीके लिये दोनों चोले परस्पर न मिलें, यह विधान किया गया है।

इसीलिये विश्वासको अविचल रखो। आँख टिकी रहे व्रजपुरके नित्य निवास स्थलपर। यह नितान्त सत्य है कि इस उपवनके उसपार हम सभी मिल ही जायेंगे और कहीं जिद कर बैठोगे कि माया-सरिताके तटपर ही हम मिल जायँ तो इसमें हानि है।

* * *

यह संक्षिप्त भावार्थ है बाबा द्वारा दिये गये संदेशका। पूज्य पण्डित श्रीतारादत्तजी बाबासे बिना मिले अपने गाँव लौट गये। उनके साथ बहिन आयी थीं, वे भी बिना मिले लौट गयीं। बाबासे उनका मिलन नहीं हो पाया, इसके लिये उनके मनके कोनेमें कुछ खिन्नता अवश्य थी, परन्तु मनमें यह भाव भी बहुत प्रबल था कि भाई (अर्थात् बाबा) की आध्यात्मिक उन्नतिमें हम बाधक क्यों बनें। पण्डित श्रीशिवनाथजी दुबे, जो कल्याणके सम्पादकीय विभागके एक सम्माननीय सदस्य थे, उन्होंने उचित अवसर देखकर अत्यन्त दुखी मनसे बाबासे कहा — इतने दिनों बाद ये लोग आपसे मिलनेके लिये आये थे, किन्तु आपने मिलनेसे सर्वथा इंकार कर दिया। आप सबसे तो मिलते ही हैं। उनसे भी मिल लेते तो कौन-सी बात बिगड़ जाती?

श्रीदुबेजीकी बात सुनकर बाबाने अपने हाथमें पेंसिल ली और

स्लेटपर लिखकर बताने लगे – देखिये दुबेजी! मैं सबसे मिल सकता हूँ, किंतु उनसे ही नहीं मिल सकता। इस बहिनने मुझे गोदमें खिलाया है और मेरा मल-मूत्र भी साफ किया है। इस प्रकार यह मेरी बहिन ही नहीं, मेरी माँ भी है और भैयाके बारेमें क्या कहूँ? भैयाका भी कम ऋण मुझपर नहीं है। गाँवमें रात्रिके समय जब रामलीला होती थी तो भैया मुझे रामलीला दिखानेके लिये साथ ले जाते थे। रामलीला देखते-देखते मैं सो जाता था और लौटते समय भैया मुझे अपने कंधेपर लादे हुए घर ले आते थे।

इतना बताते-बताते बाबाके नेत्र सजल हो उठे। क्या वह सजलता दिखानेके लिये थी? या वह यों ही छलक आयी थी? नहीं, यह बात नहीं है। गोरखपुरमें रहते हुए भी गाँववाले बचपनके दिन याद आ गये थे। मनमें प्राचीन स्मृतियोंकी आँधी चल उठी थी। भावोंका ज्वार कुछ अधिक ही था। कुछ ठहरकर बाबाने स्लेटपर धीरे-धीरे लिखना आरम्भ किया – आज बड़ा कठिन समय आ गया है। यह युग बड़ा विकट है। हिन्दू जातिकी अत्यन्त दुरवस्था है। आजके प्रख्यात साधु और संन्यासी व्याख्यान तो बड़ा सुन्दर दे लेते हैं और अच्छी-अच्छी पुस्तकें भी लिख लेते हैं। उनसे वेदान्त और ब्रह्मज्ञानकी ऊँची-ऊँची बातें जितनी चाहिये, उतनी सुन लीजिये, किन्तु जीवनमें वह चीज अत्यल्प दिखलायी देती है, जो एक सच्चे संन्यासीके लिये आवश्यक है। आप मेरा अहंकार न मानें। मैं सर्वथा सत्य कह रहा हूँ कि मेरी दृष्टिमें प्रसूतिगृहके मंगलदीपमें और श्मशानकी प्रज्वलित चिताग्निमें कोई अन्तर नहीं है। सुगन्धपूर्ण चन्दन एवं दुर्गन्धपूरित पुरीषमें तथा विद्वान ब्राह्मण एवं क्षुद्र कीटमें, सबमें एक ही प्रभुकी चिरन्तन सत्य सत्ता विद्यमान है। प्रभुके अतिरिक्त कहीं कुछ है ही नहीं, किन्तु संन्यास धर्मकी और इस गैरिक वस्त्रकी भी कुछ मर्यादा है और इसी कारण उस मर्यादाकी रक्षा करनेके लिये मैं अपने पूर्वाश्रमकी सहोदरा बहिन और सहोदर भाईसे नहीं मिल सका। इतना ही नहीं, इस जीवनमें अपने रक्तसे सम्बन्धित किसी व्यक्तिसे मिलूँगा भी नहीं। इस गैरिक वस्त्रकी गरिमा और मर्यादाकी रक्षा करनी ही है।

अब श्रीदुबेजीके पास कहनेके लिये कुछ था ही नहीं। वे नत मस्तक थे।

* * * * *

एक आदर्श विवाह

किसी वय-प्राप्त कन्याका सम्बन्ध कहीं पर निश्चित करते समय दोनों पक्षोंके मध्य लेन-देनकी जो बात आजकल प्रायः चलती है, यह चर्चा बाबाको अत्यधिक अप्रिय थी। दहेजके रूपमें कन्याका पिता विवाहके अवसरपर अपने सामर्थ्यके अनुसार प्रसन्न मनसे जो दे, उसके लिये बाबाके मनमें कोई आपत्ति नहीं थी, किन्तु वर-पक्षकी ओरसे कुछ माँग रखी जाय और उस माँगके स्वीकृत होनेपर ही सम्बन्ध निश्चित हो, यह सब उनको बड़ा अनुचित लगता था। बाबाकी इच्छा यह रहा करती थी कि लेन-देनके स्थान पर सहज प्रीतिका राज्य हो और दोनों पक्षोंकी ओरसे हार्दिक उल्लासका ही आदान-प्रदान रहे।

जजसाहब (सम्माननीय श्रीरामप्रसादजी दीक्षित) के सबसे छोटे पुत्रका नाम जगदम्बाप्रसाद दीक्षित है। जब जगदम्बाप्रसादकी आयु विवाहके योग्य हो गयी तो श्रीजजसाहबके सामने उसके सम्बन्धके बारेमें प्रस्ताव आने लगे। जजसाहब विवाहके सम्बन्धमें बाबाकी रुचि जानना चाहते थे। जजसाहबका तन-मन-जीवन सब कुछ बाबूजी एवं बाबाके श्रीचरणोंपर समर्पित था। इतना ही नहीं, उनके सम्पूर्ण परिवारकी बाबाके प्रति अगाध श्रद्धा थी। बाबासे पूछे जानेपर उन्होंने कहा – यदि आप मेरी रुचि जानना चाहते हैं तो मेरा यही निवेदन है कि प्रिय जगदम्बाका विवाह आदर्श रूपमें हो। वह आदर्श समाजके लिये एक उदाहरण बन जाय। प्रायः देखने-सुननेमें आता है कि माता-पिताके पास धनकी कमी है अथवा अभाव है, परन्तु लोकाचारके कारण लेन-देनमें, बाजे-गाजेमें, साज-सजावटमें, स्वागत-सत्कारमें शक्तिसे अधिक व्यय करना पड़ता है और उनको भारी ऋणके भारके नीचे दब जाना पड़ता है। मैं चाहता हूँ कि प्रिय जगदम्बाका विवाह लोगोंके लिये एक प्रेरणा प्रदायक उदाहरण बन जाये।

जजसाहबने विनम्र स्वरमें कहा – आपको इतना अधिक कहने-बतलानेकी आवश्यकता है ही नहीं। आपकी रुचि ही मेरे लिये महत्त्वपूर्ण है। प्रिय जगदम्बा और उसकी माँ तथा परिवारके अन्य लोग यही चाहते हैं कि जैसा बाबा कहें, वैसा ही हो।

जजसाहबके उत्तरसे बाबाको आन्तरिक प्रसन्नता हुई। बाबाके एक

निज जन थे परमादरणीय श्रीचन्द्रशेखरजी पाण्डेय। श्रीपाण्डेयजी पहले 'कल्याण' मासिक पत्रिकाके सम्पादकीय विभागमें कार्य करते थे और गीतावाटिकासे लगभग डेढ़ मीलकी दूरीपर पालड़ी बाजार ग्राममें रहते थे। सन् १९४५ में बाबाने गीतावाटिकामें सर्व प्रथम श्रीराधाजन्माष्टमीका उत्सव मनाया था और सन् १९४६ में कुछ विशेष परिस्थितिके उत्पन्न हो जानेपर यह गीतावाटिकामें नहीं मनाया गया, बल्कि पालड़ी बाजार ग्राममें श्रीपाण्डेयजीके घरपर श्रीराधाजन्मोत्सवके कार्यक्रम संक्षिप्त रूपमें सम्पन्न हुए। कुछ समय बाद श्रीपाण्डेयजी गोरखपुरसे बम्बई चले गये।

(यहाँ मैं उनका एक विशेष परिचय और देना चाहता हूँ। सम्मान्य श्रीरामानन्दजी सागर द्वारा रामायण सीरियलका निर्माण हुआ है, जिसको सारे भारतने टी.वी. पर देखा है। इस रामायण सीरियलकी देश-विदेशमें बड़ी विख्याति हुई। इस सीरियलके निर्माण-कालमें श्रीपाण्डेयजीका सराहनीय योगदान रहा है।)

पाण्डयेजीकी लाडली पुत्री लाडली पद्मा सयानी हो गयी थी। पाण्डेयजीसे भी बाबाने वही बात कही, जो उन्होंने जजसाहबसे कही थी। वे तो बाबाके निज जन थे ही। उन्होंने भी सारी बातें सहर्ष स्वीकार कर ली और लाडली पद्माका सम्बन्ध प्रिय जगदम्बासे निश्चित हो गया। निर्णय यह भी हुआ कि विवाह गोरखपुरमें बाबा एवं बाबूजीके सामने ही होगा।

विवाहके समय जजसाहबके परिवारके सभी लोग इलाहाबादसे गोरखपुर आ गये। पाण्डेयजीका परिवार भी बम्बईसे गोरखपुर आ गया और उनके परिवारको ठहराया गया भाई श्रीदूलीचन्दजीके मकानमें। विवाहके दिन दुजारी भवनमें कोई साज-सजावट नहीं थी। दूल्हा जगदम्बाके साथ बरातीके रूपमें दीक्षित परिवारके सदस्य और गीतावाटिकाके हमलोग थे। बाजा-गाजा भी नहीं था, अपितु बाजेके स्थानपर बाबाके प्रिय कीर्तनिया श्रीहरिवल्लभजी पैदल चलते हुए हारमोनियमपर उच्च स्वरसे श्रीहरिनाम-संकीर्तन करवा रहे थे और हमलोग उनके पीछे-पीछे बोल रहे थे। ३० जनवरी १९६७ के दिन शुभ मुहूर्तमें यह विवाह सनातन शास्त्रीय पद्धतिसे सम्पन्न हुआ, किन्तु वैवाहिक कार्यक्रमोंमें न कोई आडम्बर था और न कोई लेन-देन था। इस विवाहकी आदर्श सम्पन्नतापर बाबाको आन्तरिक संतोष था और हम सभी लोगोंका मन सात्त्विक उल्लाससे भरा

हुआ था।

बाबूजीका मन भी परम सात्त्विक उल्लाससे भरा हुआ था और उन्होंने निज जनोंके मध्य कहा – हिन्दू धर्ममें विवाह एक पवित्र धार्मिक संस्कार है। अन्य मतावलम्बियोंके लिये यह एक शर्तनामा (Contract) हो सकता है, परन्तु हिन्दूके लिये विवाह एक आध्यात्मिक साधना है, जिसका लक्ष्य है धर्मपूर्वक अर्थ और कामका सेवन करते हुए मोक्षकी प्राप्ति। हिन्दू जीवनमें विवाह वह संगीत है, जिसकी स्वर-लहरी युगलके विचार और व्यवहारमें मधुरता भर देती है। विवाहोल्लास वस्तुतः है समर्पण-महोत्सव, जहाँ दो मिलकर एक हो जाते हैं। यह एकात्म भाव ही हिन्दू विवाहकी विशिष्टता है।

* * *

प्रसंगानुरोधसे एक और घटना स्मृतिमें उभर रही है और वह कथनीय भी है। मेरे परमादरणीय आत्मीयजन श्रीअष्टभुजाप्रसादजी मल्लकी सुपुत्री लाडली नीरजाका मंगल परिणय गोरखपुरमें ही हुआ। वर-पक्ष कहाँका था और बरात कहाँसे आयी थी, यह मुझे याद नहीं आ रहा है, परन्तु पूर्व निर्णयके अनुसार यह मांगलिक कृत्य गोरखपुरमें सम्पन्न हुआ। लाडली नीरजा क्षत्रिय-नरेश-कुलोत्पन्ना राजपुत्री है और अधिकांश रजवाड़ोंमें ऐसी परम्परा है कि बरातियोंके मनोरंजनके लिये रात्रिमें वह महफिल जमे, जिसमें वेश्या-नृत्य हो।

बाबा इस नीति-रीतिमें भी सुधार चाहते थे और उनके प्रयाससे एक आदर्श सुधारकी प्रतिष्ठा हुई। बरातियोंके सम्मान और मनोरंजनके लिये रातके समय महफिल जमी, परन्तु उसे महफिल न कहकर कहना चाहिये एक भव्य समारोह। इस समारोहमें श्रीकृष्णलीलाका प्रस्तुतीकरण हुआ और लीला अभिनीत हुई रासमण्डलीके द्वारा। बाबाके निर्देशपर वृन्दावनसे श्रीश्रीरामफतेहकृष्णजीकी रासमण्डली यहाँ आयी थी। बाबा तो सामाजिक जीवनमें पदे-पदे स्नेह और सादगीको, सात्त्विकता और सहजताको प्रतिष्ठित देखना चाहते थे और उस दृष्टिसे ये कुछ उल्लेखनीय प्रसंग हैं।

* * * * *

द्वितीय काष्ठमौन पर प्रवचन

बाबा समय-समयपर अल्प अवधि अथवा दीर्घ अवधिके लिये मौन व्रत लेते रहते थे। बाबाने ७ अप्रैल १९६७ की मध्य रात्रिके कुछ समय उपरान्त जब दूसरी बार काष्ठ मौन लिया, इसके पाँच-छः घंटे बाद ८ अप्रैलको अपने प्रातःकालीन प्रवचनमें बाबूजीने बाबाकी भाव-स्थितिपर पर्याप्त प्रकाश डालते हुए कहा –

स्वामीजीका मौन व्रत आजसे आरम्भ हो गया। इन दिनों स्वामीजीके पास जो लोग बहुत आये-गये, जिन लोगोंसे स्वामीजीने बड़ी स्वच्छन्दतासे बात-चीत की, बहुत प्रेमका स्नेहसना व्यवहार किया, बड़ा अमृत उडेला, अब उन लोगोंके मनमें स्वामीजीके न बोलनेकी स्थिति उत्पन्न हो जानेसे क्षोभ होना स्वाभाविक है। अभीकी बात है कि मेरे घरके लोग, इतना ही नहीं, बच्चे और बूढ़े-बूढ़े लोग भी मेरे पास आये और रोने लगे। यह स्वाभाविक ही है। जिनसे लाभ मिला, जिनसे प्यार मिला, जिनसे स्नेह मिला, जिनसे अमृत मिला, उसका स्रोत यदि कहीं बन्द होता-सा दिखलायी दे तो स्वाभाविक ही मनमें क्षोभ होता है। पर स्वामीजीका यह मौन असलमें नया नहीं है। जो लोग बिलकुल नये नहीं हैं, वे जानते हैं कि लगभग दस वर्ष पहले इसी पंडालमें काष्ठमौनकी घोषणा स्वामीजीने की थी।

काष्ठमौनका अर्थ केवल वाणीका मौन नहीं होता, अपितु 'जगतकी और शरीरकी सारी क्रियाओंसे सर्वथा अपनेको हटा लेना, सबसे मौन हो जाना' – यह होता है काष्ठमौन। उसका विधान इस प्रकार है कि जो काष्ठमौन व्रत ले, वह सब कुछ परित्याग करके घरसे चल दे, कुटियासे चल दे हिमालयकी ओर। चलनेके लिये चल दे। उसके मनमें कहींपर विश्राम करनेके लिये अथवा ठहरनेके लिये संकल्प न हो। चलते-चलते दैवकी प्रेरणासे रास्तेमें कोई कुछ खिला दे तो खा ले, कोई कुछ पिला दे तो पी ले। जहाँ शरीर अशक्त होकर गिर जाये, वहाँ नींद ले ले। फिर उठकर चल दे। इस प्रकार चलते-चलते जहाँ अन्तिम रूपमें शरीर गिर जाये, वहाँ गिर जाये। उस दिन इसी पंडालमें काष्ठमौनका यही अर्थ स्वामीजीने समझाया था। उन्होंने कहा था कि इसीको लक्ष्य

करके मैंने काष्ठ-मौनका मनमें विचार किया था और यही विचार है, परंतु इस प्रकारसे इतना कड़ा व्रत कुछ ठीक नहीं रहता। इसलिये किसीकी ओर न देखना, किसी प्रकारका संकल्प न करना, इशारेसे भी किसी बातका किसी तरह उत्तर न देना, ऐसा व्रत उन्होंने लिया और कई वर्षोंतक उन्होंने किसीकी ओर देखातक नहीं। आगे चलकर कुछ ऐसी कठिन समस्याएँ सामने आयीं कि उनके मौन व्रतमें कुछ शिथिलता आयी। वह शिथिलता भी, उनके स्वरूपमें शिथिलता नहीं, अपितु पद्धतिमें शिथिलता आयी। क्रमशः शिथिलता बढ़ती गयी। फिर उस शिथिलताको विराम देनेके लिये पुनः यह कलवाला रूप सामने आ गया।

कुछ भीतरी बातें ऐसी हैं, जिनको मैं संकेत रूपसे ही कह सकता हूँ। सब बात तो कहना उचित नहीं। काष्ठमौनमें और स्वामीजीके काष्ठमौनमें थोड़ा-सा अन्तर है। ये सब साधनाके क्षेत्रमें सिद्धांतकी बातें हैं। एक होता है रस-मार्ग और दूसरा ज्ञान-मार्ग। दोनों मार्गोंमें ही तत्त्वज्ञान अपेक्षित है। रस-मार्गका सिद्ध पुरुष तत्त्वज्ञानसे रहित नहीं होता और तत्त्वज्ञानीमें तत्त्वज्ञान रहता ही है, रस चाहे न हो। दोनोंमें इतना-सा अन्तर है। तत्त्वज्ञानीमें रस चाहे न हो, पर वह तत्त्वमें स्थित होता है, ब्रह्मनिष्ठ होता है, मुक्त होता है। इसी प्रकार रस-सिद्ध पुरुष भी तत्त्वज्ञानी होते ही हैं। उनकी दृष्टिमें जगत वैसा नहीं रहता, जैसा हम सांसारिक लोगोंकी दृष्टिमें है। वे जगतसे मुक्त हो जाते हैं, परंतु उनमें एक प्रकारके रसका आविर्भाव होता है, जो आगे जाकर समुद्र बन जाता है। उस महासमुद्रमें अनन्त तरंगें उठती हैं और उन तरंगोंमें वह लहराता है। कभी-कभी वह उस समुद्रके तटपर आता है तो बाहर दिखलायी देता है, अन्यथा वह उन्हीं तरंगोंमें रहता है। इस प्रकारसे समुद्रमें डूबे हुए लोगोंके उदाहरणस्वरूप वर्तमानमें हमारे सामने थे श्रीचैतन्य महाप्रभु। अन्तिम गम्भीरा लीलाके समय वे इस रस-समुद्रके तटपर भी नहीं आये, उसीमें डूबे रहे। उसी प्रकारसे स्वामीजीका जो काष्ठमौन था, वह काष्ठमौन केवल तत्त्वज्ञानमें स्थितिजनित पंचम भूमिकातक वाला नहीं, क्रियाके अभावके स्वरूपवाला नहीं, अपितु रस-समुद्रके लहरानेके स्वरूपवाला है। बस, इतना इसमें और उसमें अन्तर है। यह काष्ठमौन रसका है और वह काष्ठमौन तत्त्वज्ञानका है।

पहले ये श्रीराजेन्द्रबाबूजीके साथ राजनैतिक क्षेत्रमें काम करते थे। वे उम्रमें कुछ बड़े थे और ये छोटे थे, पर उनके साथ बिहारमें काम करते थे। ये स्कूलसे निकलकर जेल गये और जेलमें कई दिनोंतक रहे। भगवानकी लीला विचित्र होती है। मनुष्यको पतातक नहीं लगता कि भगवान किसको कैसे किस मार्गमें ले जाना चाहते हैं, पर वे ले जाते हैं। राजनैतिक क्षेत्रमें कार्य करते-करते उसी जेलमें इनके मनमें कुछ दूसरे प्रकारके भाव आये। जेलमें ही और जेलसे निकलनेके बाद इन्होंने अध्ययन किया। शुरूसे ही ये बड़े प्रतिभाशाली थे। कालेजसे पहले ही स्कूलमें ही इनकी प्रतिभाका ज्ञान अध्यापकोंको और अधिकारियोंको हो चुका था। इन्होंने अद्वैत तत्त्वका अन्वेषण, अध्ययन और साधन किया और ये उसमें बहुत आगे बढ़ गये। कलकत्तेमें ये बड़े विरक्त भावसे रहते, कभी फुटपाथपर पड़े रहते। कहीं खानेको मिल गया, खा लेते और जो मिल गया, ले लेते।

श्रीसेठजी (श्रीजयदयालजी गोयन्दका) का गीतापर विवेचन बड़ा सुन्दर हुआ करता था। इनके मनमें उनके पास जानेकी इच्छा जाग्रत् हुई। ये चले गये बाँकुड़ा। बाँकुड़ा जाकर ये श्रीसेठजीके पास रहे। यह जो गीता-तत्त्व-विवेचनी टीका है, इसमें भाव श्रीसेठजीके हैं, पर इस सारी टीकाको मूलतः इन्होंने अपने हाथसे लिखी है और इसमें टिप्पणी और सारा संशोधन मेरा किया हुआ है। वहाँ ये श्रीसेठजीके पास रहने लगे। ये बड़े कट्टर निर्गुणवादी थे। श्रीसेठजी यद्यपि अद्वैत निर्गुण तत्त्वके ही परिपोषक थे, इसपर भी वे साधनाके क्षेत्रमें सगुण तत्त्वका भी निरूपण किया करते थे और ये उसे माया कहकर खण्डन कर देते थे। इनका आपसमें तर्क-वितर्क चलता। तर्क-वितर्कमें कहीं कटुता नहीं आती। यह होता बड़ा सुन्दर और आनन्दपूर्ण, पर तर्क-वितर्कमें एक-दूसरेको समझा सकें, ऐसी स्थिति नहीं आयी। श्रीसेठजीके पास अनुभव था, पर गीताके अतिरिक्त अन्य शास्त्र नहीं था और इनके पास बड़ा भारी अध्ययन था। जब ब्रह्मसूत्रके सूत्रोंको लेकर और उपनिषदोंके मन्त्रोंको लेकर ये अपने मतको पुष्ट करने लगते, तब श्रीसेठजी सिद्धान्तकी बात तो कह देते, पर वे उत्तरका प्रत्युत्तर नहीं दे पाते। श्रीसेठजी उस प्रकारकी शास्त्रीय भाषामें अपने मतका प्रतिपादन नहीं कर पाते थे। एक दिन श्रीसेठजीने

कहा — स्वामीजी! आप भाई हनुमानके पास चले जाइये।

श्रीसेठजी मेरे बड़े मौसेरे भाई लगते थे। मैं उनसे छोटा था, अतः वे मुझे हनुमान ही कहते थे। श्रीसेठजीके ऐसा कहनेपर स्वामीजीने कहा — वहाँ जाकर क्या करना है?

श्रीसेठजीने कहा — आप एक बार हो तो आइये।

उन्होंने टिकट कटवा दी और ये यहाँ आ गये। उस समय यहाँ साल भरका अखण्ड हरिनाम-संकीर्तन चल रहा था। अखण्ड कीर्तनके साधकोंके लिये घासकी बहुत-सी कुटियाएँ यहाँ बनी हुई थीं, इनको एक छोटी-सी कुटिया रहनेके लिये दे दी गयी। इन्होंने मुझसे बतलाया कि मैं किसलिये आया हूँ। मैंने कहा कि मैं तो कुछ जानता हूँ नहीं, पर आप रहिये।

यहाँ आनेके पश्चात् ये बिलकुल बदल गये। बदलते-बदलते ये रस-तत्त्वमें प्रवेश करके व्रज-रसके उपासक बन गये। दो चीज होती है। रस-तत्त्ववाले अद्धैतके विरोधी होते हैं और अद्धैत-तत्त्ववाले रस-तत्त्वको अज्ञानकी भूमिकामें मानते हैं। अद्धैत मतावलम्बी सम्प्रदायमें कुछ ऐसे भी हैं, जो भगवानको भी मायाकी वस्तु मानते हैं और कहते हैं कि ईश्वर मायोपाधिक हैं तथा जीव अविद्योपाधिक है। अविद्या और मायाका निरसन हुआ कि न जीव है और न ईश्वर है। वे ईश्वरकी सत्ता भी तत्त्वतः स्वीकार नहीं करते। बस, साधनकालमें ईश्वरका उपयोग करना मानते हैं। वे अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये ईश्वरका स्तवन करना, पूजन करना आवश्यक मानते हैं। इसलिये वे कहते हैं कि साधनाकालमें उपासना भी बड़ी लाभदायक होती है, पर उपास्य ईश्वर कोई तत्त्वकी वस्तु नहीं, अपितु वह तो साधनाकी चीज है। इसी तरहसे रस-तत्त्वके लोग भी अद्धैत-तत्त्वका बड़ा मखौल उड़ाया करते हैं और इसे जड़ तथा आकाशकी भाँति शून्य कहकर उपहास किया करते हैं। वह उपहास कुछ तो उनका विनोद होता है (और विनोदमें तो कोई आपत्ति नहीं), कुछ वह शास्त्रार्थके लिये हठ होता है, कुछ वह दुराग्रह होता है, (जो अच्छा नहीं) और कुछ तो वह अज्ञान ही होता है, जिसका दोनों ओरसे निरसन ही होना चाहिये। ये कुछ सिद्धान्तकी बातें हैं। अद्वैत-तत्त्वमें स्वामीजीकी निष्ठा होते हुए भी रस-तत्त्वमें इनका प्रवेश हुआ और वह प्रवेश उत्तरोत्तर वर्धित होता चला

गया। जो इनके अन्तरंग जीवनके सम्पर्कमें आये हैं, उनको मालूम है कि महाभावकी जो अगले स्तरकी चीज है, जिसकी रूप-रेखा शायद जीव गोस्वामीजी तकने भी नहीं खींची, वैसी चीज इनमें व्यक्त हुई, इनके अनुभवमें आयी। वे व्रज-रसके उपासक बन गये और उसकी उत्तरोत्तर पुष्टि होती गयी और उसीका परिणाम था इनका पूर्वका काष्ठमौन। इस प्रकारसे इनका काष्ठमौन असलमें इनका रस-समुद्रमें निमज्जन है और रस-सागरमें जो भावतरंगें उठा करती हैं, सम्भव है, वे इनके जीवनमें उठें। कैसे उठें, क्या उठें, तरंगोंका कुछ पता नहीं चलता। इसलिये इनकी यह वस्तु आजकी कोई नयी नहीं, पुरानी चीज है और अवश्य ही साधनाके क्षेत्रमें यह एक बड़ी विलक्षण वस्तु है कि जहाँ रस-तत्त्व और ब्रह्म-तत्त्व एक-दूसरेके अ-प्रतिद्वन्द्वी होकर एक साथ एक रूपमें रहते हों। ये रहे हैं पहले। ऐसा नारदादिमें था। भगवान शंकराचार्यमें भी ऐसा माना जाता है, लेकिन ये उदाहरण विरल होते हैं, बहुत कम होते हैं। इससे लोगोंको शिक्षा लेनी चाहिये।

जो लोग ऐसा समझते हैं कि स्वामीजीके मौन हो जानेसे अब हम लाभसे वंचित हो गये, यह उनकी भूल है। असली बात तो यह है कि लाभसे वंचित होता है भावसे रहित व्यक्ति। शास्त्रोंमें संतकी महिमा तो यहाँतक कही गयी है कि यदि किसी देशमें संतका अस्तित्व है, भले वह किसीसे बोलता नहीं, मिलता नहीं, वह बातचीत तो करता ही नहीं, कोई उसे जानता नहीं, किंतु यदि उसका अस्तित्व है तो उस अस्तित्वसे ही जितने अंशतक उस संतमें प्रागल्भ्य है, जितना उसका तेज है, उसके अनुपातसे जगतको लाभ अपने आप होता है। जैसे कहीं बर्फ ढकी हुई रखी हो और हमको दिखलायी नहीं दे, भले न दीखे, पर उसकी ठण्ड हमें मिलेगी ही। इसी प्रकारसे संतका रहना जगतमें लाभदायक है।

दूसरी बात यह है कि यदि किसी संतमें किसी व्यक्तिकी वास्तविक श्रद्धा, विश्वास या प्रेम-प्रीति है, तो संतके अंदर जो भाव हैं, उन भावोंका संक्रमण उस प्रेमीमें अपने आप होता रहेगा। वह संत न मिले, न बातचीत करे तो कोई बात नहीं, पर उन भावोंका संक्रमण अपने आप होता रहेगा।

तीसरी बात इससे भी और अधिक आवश्यक है संतकी सेवाके विषयमें। यह बड़ा सुन्दर है और सराहनीय है कि उनके न बोलनेके कारण हमें बोलीके वियोगमें दुःख होता है, पर जो उनकी सेवा करना चाहते हैं, उनके लिये उचित यह है कि हमने उनसे जो सीखा है, उन्होंने विभिन्न प्रकारसे जो शिक्षा दी है और इन दिनोंमें आने-जानेवाले लोगोंसे जिसके लिये जो उन्होंने कहा है, जैसे तुम सत्य बोला करो, तुम गरीबकी सेवा किया करो, तुम अमुक नामका इतना जप किया करो, तुम इतना पाठ किया करो, उसे अपने जीवनका व्रत मानकर अपने जीवनमें उतार लें। उनकी रुचिके अनुसार जीवन बनानेसे सच्ची सेवा होगी और उनके द्वारा लाभ प्राप्त करनेका यह बड़ा माध्यम सिद्ध होगा।

स्वामीजी आज मौन हो गये। उनका मौन होना बड़ा मंगलमय! वे यदि रस-समुद्रमें डूबें और डूब जायें हमेशाके लिये तो स्वाभाविक ही उसके कुछ कण हमलोगोंको मिलेंगे ही। उनका डूबना बड़ा अच्छा!

* * * * *

बात-बात में सँभाल

बाबाने दूसरी बार काष्ठ मौन व्रत लिया। व्रत लेते ही अन्तर्मुखताकी गम्भीर स्थितिमें बाबाके सँभालकी आवश्यकता बहुत बढ़ गयी और बाबूजी बहुत अधिक ध्यान रखने लगे। बाबूजीके साथ नित्य रहनेके कारण गोरखपुरसे बाहर जानेका अवसर बाबाके सामने अनेक बार आया है। बाहर जानेपर बाबूजी ही बाबाको अपने साथ लेकर चलते थे। किस रास्तेसे जाना है, किस दिशामें जाना है, सीढ़ीपर चढ़ना है या उतरना है, मोटरमें चढ़ना है या क्या करना है, यह बाबाको भला क्या पता? रास्ते भर बाबूजी ही बाबाकी सँभाल रखते थे। इस सँभालकी क्या कहीं कोई तुलना हो सकती है?

जब बाबा पुरानीवाली कुटियामें रहा करते थे, तब कई बार बाबा आनेवाले, मिलनेवाले सज्जनोंको प्रणाम किया करते थे। बाबाकी दृष्टिमें सभी भगवान श्रीकृष्ण ही हैं। बाबाके पास आनेवाले लोग संख्यामें बहुत अधिक हुआ करते थे। जबतक वे आगन्तुक सज्जन

बाबाको प्रणाम करते, तबतक बाबा भी उनको प्रणाम करते रहते थे, अतः यह क्रम बहुत देरतक चलता रहता था। जमीनपर बार-बार माथा टेकते-टेकते बाबाके ललाटमें सूजन हो जाया करती थी। इस सूजनको देखकर बाबूजीका अन्तर व्यथित हो उठता। तब बाबूजी बाबाके ललाटपर अपनी हथेली लगा दिया करते थे, इसलिये कि लोगोंको प्रणाम करते समय जमीनकी रगड़ बाबाके ललाटपर न लगे। जब बाबूजी हथेली लगाते, तब बाबाको भान होता कि उनके द्वारा कोई ऐसी क्रिया हो रही है, जिसे बाबूजी उचित नहीं समझते। उसी समय बाबाके मनमें यह बात आती कि फिर मेरे द्वारा वह क्रिया हो ही क्यों, जिसे बाबूजी अभीष्ट नहीं समझते। बाबाके मनमें यह बात उठती, पर फिर जब बाबा देखते कि कोई मुझे प्रणाम कर रहा है तो बाबा भी सामनेवालोंको प्रणाम करने लगते। ऐसी स्थितिमें बाबूजी ही सामनेवाले लोगोंको मना करते कि आप प्रणाम न करें, अन्यथा बाबा द्वारा प्रणाम किया जाना बन्द नहीं होगा।

बाबाकी सँभाल बाबूजी बात-बातमें किया करते थे। बाबाके सुख-दुखके बारेमें बाबूजीका मन सदैव सावधान रहा करता था।

* * * * *

परिक्रमा के समय दिव्यानुभूति

परमादरणीया बहिन श्रीदेवकीजी मानवीय कोमलताकी साक्षात् स्वरूप थीं। उनकी मनोविज्ञान शास्त्रमें गहरी पैठ थी। परदुःख-कातरता तो उनके रोम-रोममें समायी हुई थी। नखशिख सत्त्वसम्पन्ना बहिन श्रीदेवकीजीके महान संतोचित व्यक्तित्त्वका निर्माण हो पाया था 'मानव सेवा संघ' संस्थाके संस्थापक परमपूज्य स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराजके चरणाश्रयमें रहनेसे। बहिनजी श्रीस्वामीजी महाराजके आनुगत्यमें रहकर अपने जीवनको सफल बना रही थीं।

श्रीस्वामीजी महाराजके महाप्रयाणके उपरान्त बहिनजीके ऊपर ही मानव सेवा संघके संचालनका सारा दायित्व आ गया था।

श्रीस्वामीजी महाराज ग्रीष्म ऋतुमें स्वर्गाश्रम आ जाया करते थे

और गीता भवनमें उनका नित्य प्रवचन हुआ करता था।

एक बार श्रीस्वामीजी महाराजके सांनिध्यका लाभ उठानेकी भावनासे परमादरणीया बहिन श्रीदेवकीजी स्वर्गाश्रम आयीं और वे गीताभवनमें ठहरी हुई थीं। फिर वे गीताभवनसे डालमिया कोठी बाबूजीका दर्शन करनेके लिये गयीं। यह संयोगकी बात है कि उस समय बाबा डालमिया कोठीमें घेरेके भीतर श्रीगिरिराज भगवानकी परिक्रमा लगा रहे थे। बहिनजी खड़ी होकर परिक्रमाका दर्शन करने लगीं और उस समय उन्हें बड़ा दिव्यानुभव हुआ। बहिनजी डालमिया कोठीसे विदा होकर जब श्रीस्वामीजी महाराजके पास गयीं तो अपने दिव्यानुभवका वर्णन करते हुए कहने लगीं — जब मैं डालमिया कोठीमें पहुँची तो बाबा परिक्रमा लगा रहे थे। उस समय मुझे ऐसा लगा मानो धरतीसे प्यार उभर रहा है, आकाशसे प्यार बरस रहा है, हर दिशासे प्यार उमड़ रहा है और मैं प्यारकी लहरोंके आवर्तमें हूँ। प्यारकी तरंगें मेरे शरीरका स्पर्श कर रही हैं। वे तरंगें मेरे हृदयमें भरती चली जा रही हैं। मेरे भीतर-बाहर, ऊपर-नीचे, दायें-बायें, सर्वत्र प्यार-ही-प्यार परिव्याप्त हो रहा है। यह मेरे लिये एक दिव्यानुभव था।

इस दिव्यानुभवको सुनकर श्रीस्वामीजी महाराजने कहा — अरे! यह तो स्वाभाविक बात है। तुम तो मनोवैज्ञानिक क्रिया-प्रतिक्रियाकी प्रक्रियाको भलीभाँति समझती हो। जो वस्तु व्यक्तिके भीतर होती है, वही बाहर विस्फुटित-वितरित होती है। राधाभावापन्न बाबा तो प्यारकी प्रतिमा हैं। उनके समीप तुमको ऐसा अनुभव हो तो इसमें विस्मयकी भला क्या बात है?

बहिन देवकीजी मौन और नतमस्तक थीं।

* * * * *

भावोच्छलन और जडिमा-भाव

प्रसंग २९ मई १९६८ का है और है स्वर्गाश्रमका। ऋषिकेशसे लगभग तीन मील दूर भगवती गंगाके उसपार स्वर्गाश्रम नामक स्थान है और वहीं गंगाजीके पावन प्रवाहके तटपर ही गीताभवन है, जहाँ सत्संग और संत-समागमकी सुन्दर व्यवस्था है। बाबूजी गोरखपुरसे चैत्र

मासमें स्वर्गाश्रम चले आया करते थे और डालमिया कोठीमें ठहरा करते थे। डालमिया कोठी भी भगवती गंगाके तटपर ही है। यदि गंगाजीके पावन प्रवाहके साथ-साथ हम चलें तो पहले डालमिया कोठी है, इसके बाद बूबना भवन है, इसके बाद गीता भवन है और इसके बाद परमार्थ निकेतन आदि अनेक भवन आश्रम हैं। ये सभी गंगाजीके तटपर ही हैं। बाबूजी तो डालमिया कोठीमें ठहरा करते थे। डालमिया कोठीके भीतर एक छोटा-सा बाड़ा था। बाड़ेके भीतर एक छोटा-सा भवन था, जिसे हम लोग अपनी ऐकान्तिक भाषामें 'राधा कुञ्ज' कहा करते थे। यह राधा कुञ्ज दो मञ्जिल वाला है, नीचे मंजिलमें एक कमरा और ऊपर मंजिलमें एक कमरा। राधा कुञ्जके ऊपरवाले कमरेमें बाबाका निवास रहा करता था और उस निवास कक्षका दर्शन सहज ही मिल जाया करता था उन लोगोंको, जो बगलवाले बूबना भवनकी दूसरी मंजिलपर स्थित सात-आठ कमरोंमें रहा करते थे। इन सात-आठ कमरोंमेंसे एक कमरा, जिसका नम्बर अस्सी था, उस कमरेमें भाई श्रीनटवरजी गोस्वामी (स्वामी श्रीकृष्णप्रेमजी) ठहरे हुए थे। २९ मई १९६८ को भाई नटवरजीने अपने आत्मीयजनोंको इकट्ठा करके हरिनाम संकीर्तनका शुभारम्भ किया। शुभारम्भ दोपहरके दो बजे हुआ। भाई नटवरजीने अपने हाथमें हारमोनियम लिया और कोई ढोलक तथा कोई मजीरा लेकर बैठ गया। श्रीप्रिया-प्रियतमकी जयकारके साथ श्रीहरिनाम संकीर्तनका श्रीगणेश हुआ। सभी स्वरमें स्वर मिलाकर सुमधुर रीतिसे कीर्तन कर रहे थे और उच्च स्वरसे बोल रहे थे—

राधिका रमण अम्बुज नयन नन्दनन्दन नाथ हे।
गोपिका प्राण मन्मथ मथन विश्व रञ्जन कृष्ण हे।।

प्रिया-प्रियतम श्रीराधामाधवके नाम-रसकी लहरीमें भाई नटवरजी अपनी सुध-बुध खो रहे थे और यह नाम-खुमारी भी छूतका एक रोग है। सभी उपस्थित आत्मीयजन उस रस-धारामें डूब-उतरा रहे थे। उसी समय भाई नटवरजीने हितकुलावतंस श्रीहितहरिवंशजी महाराज द्वारा रचित रास-विहारके एक पदका गायन किया।

आज गुपाल रास रस खेलत पुलिन कल्पतरु तीर री सजनी।
सरद बिमल नभ चंद बिराजत रोचक त्रिबिध समीर री सजनी।।

चले चलनेके लिये उन्होंने मन्द स्वरमें कहा, पर इस अनुरोधका न कोई प्रभाव पड़ा और न कोई प्रतिक्रिया हुई। बाबा जगतके प्रकृत धरातलपर होते, तभी तो उस अनुरोधकी कुछ सुनवायी हो पाती। जब भगतजी असफल हो गये तो वे माँको बुला लाये। बुला लानेमें भी पन्द्रह-बीस मिनट लग गये, पर बाबा पूर्ववत् जड़वत् खड़े रहे। माँने आकर अनुरोध किया। 'बाबा' 'बाबा' कहकर कई बार मीठे स्वरमें पुकारा। माँका सतत प्रयास यह था कि बाबाको कुछ चेतना आ जाय तो वे कमरेके भीतर चल चलें, पर उनके प्रयास भी सफल नहीं हुए। फिर माँका संकेत पानेपर श्रीभगतजी बाबूजीको बुला लाये। उन्होंने आकर देखा कि बाबा आधा-आधा हाथ उठाये हुए खड़े हैं, जेठ मासके तपते सूर्यकी गर्म-गर्म किरणें उनके गौर शरीरपर सीधी पड़ रही हैं और पैरोंके नीचे छत भी तप रही है। न जाने कैसे उनका कोमल शरीर जेठ मासके इस कठिन तापको सह रहा होगा! बाबूजीका हृदय भर आया। वे आगे आये और अपनी दोनों भुजाओंके बीच उनके काष्ठवत् शरीरको ले लिया। फिर धीरे-धीरे, किंतु बड़ी कठिनाईसे कमरेके भीतर उनको ले गये। भीतर जाकर बाबूजीने उनको गैरिक बिस्तरपर लिटा दिया। उनका कोमल शरीर भावावेगके कारण काष्ठवत् ही हो रहा था। बाबूजी उनके पास बैठ गये और उनके काष्ठवत् शरीरको धीरे-धीरे सहलाने लगे। बाबूजीद्वारा सहलाया जाना कोई साधारण बात थी क्या? उस सहलाये जानेके माध्यमसे न जाने किन-किन लोकोत्तर भाव-तरंगोंका रहस्यमय आदान-प्रदान हो रहा था। उस पारस्परिक आदान-प्रदानको हम साधारण जन भला क्या जानें और क्या समझें? बाबूजी बहुत देरतक बैठे हुए सहलाते रहे। जब बाबाका वह भावोच्छलन कुछ-कुछ प्रशमित हो गया, तभी वे प्रकृत धरातलपर आ पाये।

हमें यह पता नहीं है कि श्रीराधाभावापन्न बाबाके भावराज्यकी कौन-सी दिव्य लीला वहाँ विलसित हो रही थी और हमें यह भी पता नहीं है कि बाबाके अन्तरमें उभरा और उमड़ा हुआ वह भावोच्छलन कितना विस्तृत और विशाल था, पर यह तो स्पष्ट दिखलायी दे रहा था कि उस दिव्य लीलाके विस्तृत-विशाल भावोच्छलनने किस सीमातक बाबाके गौर और कोमल वपुको पाषाणके समान जड़वत् बना दिया था, जिसे न तापका अनुभव था, जिसपर न थकानका प्रभाव था और जहाँ न शब्दका श्रवण था। २९ मई १९६८ के दिन जिन-जिन भक्तोंको बाबाके गौर वपुमें

आविर्भूत जड़िमा-भावके दर्शनका शुभ अवसर मिला, वे सभी भाग्यशाली थे।

अन्तमें एक बात और कहनी है। बाबाकी इस स्थितिपर टिप्पणी करते हुए बाबूजीने कहा था – महाभावस्वरूपा श्रीराधारानीके दिव्य जड़िमा-भावका किंचिदंशमें यह प्रकाश था।

* * * * *

उच्छिष्ट कणों का प्रभाव

एक अमेरिकन माताजी थीं। उनका नाम था श्रीईरीन। वे बाबाके सम्पर्कमें आयीं तब, जब १९६५ में श्रीभागवत भवनका मथुरामें शिलान्यास हुआ था। शिलान्यासके निमित्तसे ही बाबूजी और बाबा गोरखपुरसे मथुरा गये थे और मथुरा-वृन्दावनके मध्य बिड़ला मन्दिरमें ठहरे थे। बाबा तो सर्वथा मौन रहते थे। उनके मौनमें कोई बाधा उपस्थित न हो, इसलिये उनका कमरा एकदम अलग था, पर कभी-कभी वे बाहर निकलते ही थे। बस, इसी अवसरकी ताकमें वे माताजी रहा करती थीं और जब भी दर्शन मिलता, वे बाबाको एकटक निहारती रहतीं और आसुओंकी धारसे अपने कपोलोंको भिगोती रहतीं। इन माताजीने किसीसे संन्यासकी दीक्षा ले ली थी और नया नाम था श्रीसत्यप्रेमानन्दजी। इनका एक नाम मञ्जुश्री भी था। वे भारतमें आध्यात्मिक उद्देश्यको लेकर आयी थीं और अनेक आश्रमों और संतोंके पास गयीं, किन्तु उनका मन कहीं भी न रम पाया और न टिक सका। वे तो उन्मुक्त स्वरसे कहती थीं – मुझे गीतावाटिकाके श्रीराधा बाबा जैसा खरा संत अभीतक मिला ही नहीं।

बाबाके प्रति उनकी श्रद्धा अगाध थी। यह श्रद्धा भावना इतनी अधिक बढ़ गयी थी कि वे बाबाके पत्तलके उच्छिष्टको प्रसाद रूपमें पानेके लिये गहरी चाह करने लगीं। वे देखती रहती थीं कि बाबाकी भिक्षा हो जानेके बाद उनके अनन्य सेवक श्रीभगतजी जूठी पत्तल कहाँ फेंका करते हैं। उन्होंने देख लिया कि श्रीभगतजी जूठी पत्तलको एक कोनेमें फेंक आया करते थे। वे ताकमें तो थीं ही कि बाबाका कोई उच्छिष्ट पदार्थ पानेको मिले। एक बार जूठी पत्तल चुपचाप चोरी-चोरी प्राप्त करनेमें उन्हें सफलता मिल गयी। श्रीभगतजीद्वारा फेंकी गयी पत्तलमें यहाँ-वहाँ कुछ उच्छिष्ट कण

तो चिपके हुए थे ही। श्रीमञ्जुश्रीने उन कुछ उच्छिष्ट कणोंको बड़ी श्रद्धा पूर्वक पा लिया। उन कणोंको खाते ही उनमें भीतर-ही-भीतर विस्मयकारी परिवर्तन होने लगा और विचित्र अनुभूतियाँ होने लगीं। जो कुछ भी उनके अनुभवमें आया, उन सबको उन्होंने स्वयं ही बाबाको बतलाया। उनकी बात सुनकर बाबाने उनसे कहा – आपके सारे षट्-चक्र सक्रिय हो गये और अनोखी-अनोखी अनुभूतियाँ होने लगीं, यह सब पत्तलके उच्छिष्ट कणोंके सेवनका प्रभाव नहीं है, अपितु आपकी श्रद्धाका परिणाम है।

बाबाने भले ऐसा कहा, पर श्रीमञ्जुश्री माताजी इसे माननेके लिये तैयार नहीं थीं। उनकी भावना यही थी – बाबा स्वयंको छिपाये रखनेके लिये ऐसा कह रहे हैं। यदि मेरी श्रद्धाका परिणाम है तो उच्छिष्ट कण ग्रहण करनेके पूर्व ऐसा क्यों नहीं हुआ और उन उच्छिष्ट कणोंको ग्रहण करते ही यह विस्मयकारी परिवर्तन कैसे और क्यों हो गया?

उनकी सुदृढ़ मान्यता थी कि जिनके उच्छिष्ट कणोंका यह प्रभाव है, वे स्वयंमें न जाने कितने महान होंगे!

* * * * *

एक घायल कौवा

सन १९७० ई. की श्रीराधाष्टमीके कुछ दिनों बादकी बात है। बाबाके शौचालयके पीछे एक कौवेको बन्दरोंने नोच डाला। उसकी छातीपर, गर्दनमें एवं पीठके पिछले भागमें गहरे घाव हो गये। उसका एक डैना टूट गया था। प्रातःकाल बाबा जब शौचके लिये उधर गये तो उन्हें वह कौवा दिखायी पड़ा। जीवमात्रको भगवत्स्वरूप माननेवाले बाबा कौवेके कष्टसे पीड़ित हो उठे। वे उसके उपचारमें लग गये। सेवकगण जुट गये। कौवेको उठाया गया। उसपर थोड़ा गंगाजल डाला गया, जिससे उसके घावोंपर लगी हुई मिट्टी घुल जाय, पानीके कारण उसमें ताजगी आ जाय तथा उसकी बेहोशी दूर हो जाय। गंगाजलसे धोनेसे कौवा कुछ होशमें आया। डा. चक्रवर्ती, जो बाबूजीके पारिवारिक चिकित्सक हैं, उनको फोन किया गया। वे तुरन्त घरसे चल पड़े। घरसे चलनेसे पूर्व उन्होंने बताया – उसे कोरामिनकी १५ बूँद, थोड़ा ग्लूकोज एवं जल दे दिया जाय।

तीनों चीजों मिलाकर चम्मचसे उसके मुँहमें डाली गयीं। कौवा पंख

फड़- फड़ाकर होशमें आ गया, पर एक डैना बुरी तरहसे टूट जानेसे वह उड़ नहीं पा रहा था। इतनेमें डाक्टर चक्रवर्ती आ गये। उन्होंने कौवेके घावोंको देखकर कहा – इसे बुरी तरह नोचा गया है।

घावोंपर सीवाजल पाउडर छिड़का गया। इतना उपचार पानेपर कौवा कुछ सँभल गया। डाक्टर साहबने कहा – मैं शामको या कल आकर फिर ड्रेसिंग कर दूँगा।

अब बाबाको चिन्ता हुई कि इसकी रक्षा कैसे हो। कहीं बन्दर फिरसे इस कौवेपर हमला न कर दें, नेवला-सियार-कुत्ता-बिल्ली उसे अपना भोजन न बना लें, चींटी-मकोड़े उसके घावको न खरोंच डालें, उसके परिवारके दूसरे कौवे आ-आ करके उसको ले जानेका असफल प्रयास न करें, ऐसी कई समस्याओंका समाधान करना था। बाबा स्वयं जुट गये इस व्यवस्थामें। वे मौन हैं, अतः बोल करके या संकेत करके अपना मनोभाव व्यक्त नहीं कर सकते। स्वयं उठकर जब कोई चीज वे उठाने लगते हैं या खोजते हैं तो उनकी चेष्टाओंसे अनुमान लगाया जाता है कि वे इस या उस चीजको चाहते हैं। तत्काल वह चीज जुटायी जाती। एक जालीदार पिंजड़ा आया, जो लगभग नौ इंच ऊँचा था। उसके भीतर पुवाल बिछाया गया। उसपर उस कौवेको लिटाया गया। पासमें एक परईमें पानी और दूसरी परईमें रोटीके टुकड़े रखे गये। अब पिंजड़ेके चारों ओरकी सुरक्षाकी व्यवस्था हुई। चारों ओर ईटोंको जोड़ा गया, जिससे कोई नेवला या सियार या कुत्ता या बिल्ली भीतर न घुस सके। चीटियोंसे बचाव करनेके लिये पिंजड़ेके चारों ओर पर्याप्त गैमेक्सिन पाउडर छिड़का गया। कोई पिंजड़ा खोल न दे, इसके लिये पिंजड़ेके कुण्डा लगवाया गया और उसमें ताला लगाकर चाबी सुरक्षित स्थानपर रखी गयी। पिंजड़ेमें हवा आनेकी पूरी व्यवस्था थी। साथ ही इस बातकी भी व्यवस्था की गयी कि वर्षा आते ही उसे ढक दिया जाय और वर्षाका पानी पिंजड़ेमें न जाय, पर पर्याप्त हवा भीतरतक पहुँचती रहे। इतनी व्यवस्थामें लगभग तीन-चार घंटे बाबाको लग गये। इतनी व्यवस्था करनेके पश्चात् बाबा अपनी कुटियामें गये।

कई सेवकोंने जिम्मेदारी ली है उसकी बराबर सँभाल करनेकी। थोड़ी-थोड़ी देरमें सेवकगण सँभाल करते रहे। कौवा प्रसन्न था, पर बाबाको कहाँ चैन! वे भी जब-जब कुटियासे बाहर आते हैं, तब-तब स्वयं पिंजड़ेके पास जाते हैं और कौवेकी सँभाल करते हैं। कौवेकी परईकी रोटी बदली

गयी कि नहीं, पानी नया रखा गया कि नहीं, इसकी उन्हें बड़ी चिन्ता रहती। इस प्रकार लगभग दो दिन वह जीवित रहा। उसकी सार-सँभालको देखकर एक सज्जनने कहा – इतनी सँभाल तो कोई अपने सगे पिताकी भी न करता, पर बाबाके लिये वह कौवा साक्षात् भगवत्स्वरूप है। यह सेवा भगवानकी अर्चना है, अतएव इसकी तुलना लौकिक सेवासे कैसे हो सकती है?

कौवेके प्राण पखेरु उड़ जानेपर बाबाने उसकी अन्त्येष्टिकी व्यवस्था की। उन्होंने श्रीगोस्वामीजी महाराज, श्रीनन्दबाबा, श्रीमोतीजी, श्रीदूबेजी आदि वरिष्ठ सात्त्विक पण्डितोंको बुलाया, कौवेको स्वयं अपने हाथों गंगाजलसे स्नान कराया, अपनी धोतीका कपड़ा मँगवाकर उसे पोंछा, उसके मस्तकपर शरीरपर चन्दन लगाया, तुलसीदल एवं गंगाजल उसके मुँहमें डाला और तुलसीदल उसके शरीरपर चढ़ाया। फिर अपनी गैरिक धोतीके कपड़ेमें उसे लपेटकर बाबाने उसे अपनी गोदमें ले लिया। इतना करके उस कौवेको लिये-लिये उन्होंने गिरिराजजीकी पाँच प्रदक्षिणा की। इसके बाद उन्होंने पण्डित समाजके साथ कीर्तन करते हुए अपने शौचालयके सामने, जहाँ वे इससे पूर्व कई जीवोंको समाधि दे चुके थे, उस कौवा महाराजको समाधि दी। जमीनको गहरा खुदवा करके और चारों ओर ईंट लगा करके बीचमें उसके शवको रखा गया तथा पुष्प आदि रखकर उसे मिट्टिसे ढक दिया गया। इस प्रकार कीर्तनके साथ उसकी अन्त्येष्टि सम्पन्न हुई। अब सब पण्डितोंको सचैल स्नानका आदेश हुआ। ऐसी अन्त्येष्टिके द्वारा बाबाने प्यारका एक ऐसा अनुपम आदर्श उपस्थित कर दिया, जिसकी स्मृति मात्रसे हृदय पवित्र हो जाता है। भगवदीय प्यार क्या वस्तु है, उसकी कुछ झलक इस प्रसंगसे मिलती है।

* * * * *

बाबूजी का 'लीला-प्रवेश'

कैंसर रोग ही बाबूजीकी जीवन लीलाके लिये विघातक सिद्ध हुआ। सन् १९६९ के अप्रैल मासमें झटका आया उदर-शूलके रूपमें। तब किसीको भी यह अनुमान नहीं हो पाया कि इस उदर-शूलके रूपमें कैंसर ही अपना जाल फैला रहा है। अनुमान तो एक-डेढ़ साल बाद हो पाया।

बाबूजीकी रुग्णताको देखकर स्वास्थ्य-लाभके लिये बाबाने, परिवारके निज जनोंने तथा सभी आत्मीय जनोंने चिकित्सा-परिचर्याके रूपमें क्या नहीं किया, पर इस भीषण व्याधिके समक्ष सारे प्रयास असफल ही रहे।

बाबूजीने २२ मार्चको महाप्रयाण किया था। निधनके ७ दिन पहले बाबूजीकी स्थिति नाजुक हो गयी थी और ऐसा लगने लगा कि शायद वे अपने पाञ्चभौतिक कलेवरका परित्याग कर दें। इस सम्भावनासे सभी पारिवारिक जन अत्यधिक विकल हो उठे। भावी कुपरिणामकी कल्पनासे सभी बेचैन थे।

बाबूजीके महाप्रस्थानसे दो दिन पहले अर्थात् २० मार्चकी बात है। शौच-स्नान आदिसे निवृत्त होनेके लिये बाबा उनके कमरेसे, जिसे आजकल पावन-कक्ष कहा जाता है, उस कमरेसे बाहर निकले। भवनकी सीढ़ियोंसे उतरकर बाबा अपनी कुटियाकी ओर चले जा रहे थे। अपनी कुटियाके बाड़ेका दरवाजा खोलकर जब बाबाने कुटियामें प्रवेश किया तो उन्हें बाबूजीका अत्यन्त मीठा स्वर सुनाई दिया। बाबूजीने कहा – अब मेरे 'जानेका' समय हो गया है।

यह सुनकर बाबाने कहा – आपको जिसमें अधिकसे अधिक सुख हो, आप वही करें। आपके सुखमें ही मुझे सुख है।

बाबूजीने २० मार्चके प्रातःकाल अपने 'जानेका' संकेत बाबाको दे दिया था और अपने 'जाने' के लिये अनुमति भी ले ली थी।

अब २२ मार्चके प्रातःकालकी बात है। बाबाने मन-ही-मन उनसे कहा – देखिये, मैं परिक्रमा करने जा रहा हूँ। यदि आपको यही अभीष्ट हो कि मेरी अनुपस्थितिमें आप जायें तो चले जाइयेगा।

यह कहकर बाबा जल्दीसे कुटियापर आये और शौचसे निवृत्त हुए। फिर बिना स्नान किये ही बाबा तुरन्त श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा करने लगे। जल्दी-जल्दी परिक्रमा पूरी करके बाबा तुरन्त बाबूजीके पास गये। उनका कमरा बन्द था। अन्दर परिवारके लोग बैठे थे। बाबाने दरवाजेपर बड़ी हल्की थाप दी, पर दरवाजा नहीं खुला। तब बाबाने फिर उनसे मन-ही-मन कहा – देखिये, मैं अपनी कुटियापर स्नान करने जा रहा हूँ। यदि आपको मेरी अनुपस्थितिमें ही जाना अभीष्ट हो तो आपकी जैसी इच्छा।

इतना कहकर बाबा अपनी कुटियापर आये। जल्दीसे स्नान करके

तुरन्त बाबूजीके कमरेमें गये। बाबा बाबूजीके सिरहाने बैठ गये। बैठनेके पाँच-छः मिनट बाद ही उनको रक्तका वमन हुआ। फिर चेहरेकी आकृति और श्वासकी गति ऐसी लगने लगी मानो वे अब जानेवाले हैं। बाबा तुरन्त उठ खड़े हुए और बोले – जल्दीसे नीचे उतारो।

बिस्तरका छोर पकड़कर बिस्तर सहित बाबूजीको उठाया गया और उन्हें नीचे उतार लिया गया। उतारते ही ७ बजकर ५५ मिनटपर उन्होंने 'प्रस्थान' कर दिया।

हजारोंकी संख्यामें जन समूह गीतावाटिकामें एकत्रित था। सबके नेत्र बरस रहे थे। स्नानादि विविध कृत्योंकी सम्पन्नताके उपरान्त पार्थिव देहको अर्थीपर विराजित किया गया और अन्त्येष्टि-क्रिया गीतावाटिकाके गिरिराज परिसरमें पूर्ण हुई।

* * * * *

गीतावाटिका में समाधि

एक बार बाबासे बड़ी ही भावभरी रसमयी चर्चा चल रही थी। चर्चा करते-करते और अपने भावोंको सुनाते-सुनाते बाबा बहुत अधिक भाव-विह्वल हो रहे थे। गीतावाटिकामें जहाँ समाधि है, वहीं बाबूजीका अन्तिम अग्नि-संस्कार हुआ था। गीतावाटिकामें चिता-निर्माणकी कथा भावराज्यकी एक रसमयी और रहस्यमयी गाथा है।

११ मई १९३९ को बाबाने बाबूजीके साथ नित्य रहनेका संकल्प लिया था तो उसी संकल्पका यह भी एक उप-संकल्प था कि यदि बाबाके पहले उनका शरीर चला गया तो जहाँ उनकी चिता सजेगी, वहीं बाबा रहेंगे। यदि गोरखपुरमें राप्ती नदीके किनारे राजघाटपर चिता सजती तो बाबा वहीं रहते, पर श्रद्धालुओंको यह स्वीकार ही नहीं था कि श्रद्धेय बाबा उस मरघटके बीरानेमें भीषण प्रतिकूल परिस्थितियोंसे संघर्ष करते हुए अपने शेष जीवनको व्यतीत करें। फिर प्रश्न हुआ कि क्या किया जाय। लोगोंने सुझाव दिया कि श्रीकृष्ण निकेतनमें रहनेकी सुविधा है, अतः श्रीकृष्ण निकेतनमें चिता सजायी जाय। यह बात ठीक थी, पर श्रीकृष्ण निकेतन तो था बाई (श्रीसावित्री बाई फोगला)का, जो है बाबूजीकी सुपुत्री। बेटीकी जमीनपर पिताका शव-दाह नहीं हो सकता। इस बाधाका निवारण

करनेके लिये यह सोचा गया कि बाई अपना श्रीकृष्ण निकेतन श्रीराधामाधव संस्थानको दान कर दे और फिर श्रीकृष्ण-निकेतनकी भूमिपर अग्नि-संस्कार करनेमें कोई आपत्ति नहीं रहेगी। बाई एवं जीजाजी, दोनों तत्काल दान कर देनेके लिये प्रस्तुत हो गये। उसी क्षण चाचाजी श्रीजयदयालजी डालमियाके मनमें एक विचार अचानक कौंध गया कि यदि चिता राजघाटके मरघटपर न होकर श्रीकृष्ण निकेतनमें सजायी जा सकती है तो फिर उसका सजाना गीतावाटिकामें ही क्यों न हो? उनके मनमें उभरा हुआ यह विचार क्रमशः प्रबल होता चला गया। उन्होंने अपना विचार बाबाके सामने रखकर पूछा — यहाँ गीतावाटिकामें चिता सजानेमें आपको कोई आपत्ति है क्या?

बाबाने कहा — गीतावाटिका गीताप्रेसकी है। इस सम्बन्धमें मैं अपना कोई अभिमत नहीं दे सकता।

फिर श्रीडालमियाजीने गीताप्रेसके ट्रस्टियोंसे बात की। वे लोग वहाँ गीतावाटिकामें उपस्थित थे। उनकी सहमति मिलते ही फिर सरकारसे भी आज्ञा प्राप्त करनेके लिये प्रयास होने लगा। सरकारसे भी आज्ञा मिल गयी। फिर प्रश्न उठा कि चिता गीतावाटिकामें कहाँ सजायी जाय। कोई कहीं और कोई कहीं बता रहा था। अन्तमें तय हुआ कि चिता बाबाकी कुटियाके द्वारपर ही सजायी जाय और वैसा ही हुआ। बहुत लोगोंके मध्य बहुत अधिक चिन्तन-मन्थन होनेके उपरान्त यही तथ्य उभरकर इतिहासका एक प्रसंग बन गया कि बाबूजीका अन्तिम अग्निसंस्कार गीतावाटिकामें बाबाकी कुटियाके सामने हुआ। कुटियाके द्वारपर जो चिता सजायी गयी, इसे देखकर बाबाके आश्चर्यकी सीमा नहीं थी।

इसके बारेमें बाबाने भावभरे उद्‌गार व्यक्त करते हुए कहा था — श्रीपोद्दार महाराजकी चिता सजी गीतावाटिकामें मेरी कुटियाके एकदम सामने, एकदम समीप और गिरिराज परिसरमें। जगत इसे एक मात्र संयोग कह सकता है, पर जगतके लोग जान नहीं सकते और जानकर भी विश्वास नहीं कर सकते कि भावराज्यकी भावमयी प्रक्रियाएँ कैसी अनोखी होती हैं और उन प्रक्रियाओंका प्रतिफलन कैसा अद्‌भुत होता है? गीतावाटिकामें चिताका सजना भावराज्यकी अति सुगुप्त एवं अति समर्थ प्रक्रियाओंका एक अति सबल प्रमाण है और आस्थावानके लिये एक अति अद्‌भुत उदाहरण है। यह रहस्यमयी प्रक्रिया जगतके लोगोंके लिये अगम्य

ही रहेगी। श्रीपोद्दार महाराजका सम्पूर्ण जीवन तत्सुख-सुखी-भावका मूर्तिमान स्वरूप था। वे कहा करते थे – 'एक तुम्हारे मनकी हो, बस, स्वार्थ यही परमार्थ यही'। श्रीपोद्दार महाराजने महाप्रस्थानके उपरान्त मन-ही-मन यही सोचा और यही कहा कि बाबा! क्यों आप मेरे लिये कष्ट उठायें और क्यों आप राजघाटके मरघटपर जायें। आपको कहीं जानेकी जरूरत नहीं है। मैं ही आपके पास आ जाता हूँ। ऐसा निश्चय करके श्रीपोद्दार महाराजने सबसे पहले इस विचारको स्फुरित किया अपने अत्यन्त अभिन्न जन श्रीडालमियाजीके मनमें, जिनका विचार सभीके लिये आदरणीय होता था। फिर लोगोंके मध्य विचारोंका मन्थन और सुझावोंका प्रवाह ऐसा चला कि सर्वान्तमें होनेवाले निर्णयके अनुसार चिता मेरी कुटियाके सामने श्रीगिरिराज परिसरमें सजायी गयी। इन सारे विचारोंको और सुझावोंको परोक्ष रूपसे प्रेरित और नियन्त्रित करते हुए श्रीपोद्दार महाराजने घटनाओंका संचालन-सूत्र अपने हाथमें ले रखा था।

एक बात और है। मेरा निश्चय था कि मुझे आजीवन श्रीगिरिराजकी तरहटीमें रहना है। अतः श्रीपोद्दार महाराजने गीतावाटिकामें कहीं अन्यत्र चिता सजने ही नहीं दी। उनका सशक्त संचालन-सूत्र इतना प्रभावशाली था कि उनकी परोक्ष प्रेरणासे लोगोंने यही निर्णय लिया कि गिरिराज परिसरमें चिता सजायी जाय और इस निर्णयसे मेरे नियमके निर्वाहका सुन्दर ढंग बन गया। मैं न तो अपना विचार प्रकट कर रहा था और न किसीके चिन्तनका समर्थन अथवा प्रतिवाद कर रहा था। बस, घटनाके प्रवाहको देख-देख करके विस्मयमें डूब रहा था और रह-रह करके श्रीपोद्दार महाराजके तत्सुख-सुखी-भावकी और उनकी सुगुप्त-सशक्त प्रक्रियाकी मन-ही-मन जय-जयकार बोल रहा था।

इसी प्रसंगको देखनेका एक पक्ष और है। श्रीपोद्दार महाराजको सदा यही प्रिय था कि उनके द्वारा जो कार्य हो, वह सुगुप्त रूपसे हो। इस चिताको यहाँ सजवानेका कार्य भी उन्होंने सम्पन्न किया, पर आदिसे अन्ततक स्वयंको सर्वथा-सर्वथा छिपाये रखकर, सर्वांशमें स्वयंको अव्यक्त रखकर। श्रीपोद्दार महाराजकी इस संगोपन-प्रियताकी और तत्सुख-सुखी-भावकी बार-बार बलिहारी।

* * * * *

पूजा-पाठ का विसर्जन

पूर्व पृष्ठोंमें यह बतलाया जा चुका है और प्रसंगानुरोधसे पुनः लिखना पड़ रहा है कि २२ मार्चके प्रातःकाल बाबूजीकी स्थिति अति गम्भीर थी। बाबूजीके कमरेसे बाबा अपनी कुटियापर आये और श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमाको शीघ्रतासे करके तुरन्त बाबूजीके पास गये। उनका कमरा बन्द था। अन्दर कुछ लोग बैठे हुए थे। उन लोगोंने किसी विशेष उद्देश्यसे कमरेका दरवाजा बन्द कर रखा था। बाबाने दरवाजेपर बहुत हल्की रीतिसे एक-दो थाप दी, पर दरवाजा नहीं खुला। फिर बाबाने उनसे मन-ही-मन कहा– देखिये, मैं अपनी कुटियापर स्नान करनेके लिये जा रहा हूँ। यदि आपको मेरी अनुपस्थितिमें ही जाना अभीष्ट हो तो आपकी जैसी इच्छा।

इस प्रकार निवेदन करके बाबा अपनी कुटियाकी ओर जाने लगे। कमरेके द्वारसे चले आनेके बाद सीढ़ियोंपर उतरते समय उन्होंने श्रीठाकुरजी (श्रीघनश्यामदासजी ठाकुर) को अपने साथ ले लिया, जो वहींपर खड़े हुए थे। उनको साथ लेकर बाबा अपनी कुटियापर आये और कुटियाके बाहर उनको खड़ा करके कहा– तुम यहीं रहो, मैं अभी तुरन्त आता हूँ।

इतना कहकर बाबा अपनी कुटियाके भीतर गये और पूजावाली चौकीपर बैठ गये। बाहर खड़े हुए श्रीठाकुरजी बाबाकी हर चेष्टाको एकटक देख रहे थे। खिड़कीसे सारा दिखलायी दे रहा था। ठाकुरजीने देखा कि बाबाने अपने दोनों कर-पल्लव इस ढंगसे जोड़ लिये हैं मानो अञ्जलिमें पुष्प हों और फिर उन्होंने ऐसी चेष्टा की कि मानो पुष्पार्पण कर रहे हों। फिर बाबाने जल्दीसे स्नान किया और वस्त्र धारण करके बाबूजीके पास चले आये। बाबाके पहुँचनेके कुछ मिनट बाद ही बाबूजी नित्य लीलामें सदाके लिये लीन हो गये।

बाबूजीके महाप्रस्थान करते ही सभी करुणार्द्र हो उठे। वातावरणमें गम्भीर रूपसे शोक परिव्याप्त हो गया। थोड़ी देर बाद बाबा वहाँसे श्रीगिरिराजजीके पास आये और उनके समक्ष खड़े हो गये। बाबा पुनः कर-पल्लवको जोड़कर ऐसा करने लगे मानो श्रीगिरिराज भगवानके श्रीचरणोंमें पुष्पार्पण कर रहे हों।

अपनी कुटियामें और फिर श्रीगिरिराज भगवानके श्रीचरणोंमें बाबाने जो पुष्पाञ्जलि समर्पित की, उस समय तो कोई आभास भी नहीं लगा पाया कि उनके द्वारा क्या हो रहा है, पर बादमें ज्ञात हुआ कि इस प्रक्रियाके द्वारा उन्होंने अपनी सम्पूर्ण पूजा और सभी पाठका विसर्जन कर दिया है।

छलछलाये हुए नेत्रोंसे बाबा कहा करते थे– अब मैं पूर्णतः खाली हो गया हूँ। श्रीपोद्दार महाराजके जाते ही मेरे पास एक मात्र रिक्तता ही रह गयी है।

उन दिनों ऐसा कई बार देखनेमें आया कि नेत्रोंकी सजलतासे भीगे हुए शब्दोंमें ये भावोद्‌गार जब-जब बाबाके श्रीमुखसे सुननेको मिलते थे, तब-तब उनका अन्तर आकुलताका आगार बन जाया करता था।

* * * * *

प्रीति की वेदी पर

बाबूजीके नित्य-लीलामें लीन होनेके बादसे बाबाने अपनी उस पुरानी कुटियाका सर्वथा परित्याग कर दिया। उन्होंने निश्चय कर लिया कि अब उस कुटियाकी चार दिवालके भीतर नहीं रहना है। अब शीत-वर्षासे कुछ बचाव हो सके, एतदर्थ एक छोटा-सा टिन शेड गीतावाटिकाकी उत्तरी चहारदिवारीके पास बनवा दिया गया। यह टिन शेड उत्तर-पूर्व-दक्षिण, इन तीन दिशाओंकी ओरसे सर्वथा खुला हुआ था। केवल पश्चिमकी ओर साधारण स्तरकी एक छोटी दिवाल थी। टिन शेडके दक्षिणकी ओर ठीक सामने बाबूजीकी चिता-स्थली थी। टिन शेडके नीचे बैठे रहनेसे चिता-समाधिका दर्शन सहज ही होता रहता था।

मैं जो कहना चाहता हूँ, उसको लिखनेके पूर्व एक अन्य प्रसंगका उल्लेख करना आवश्यक लग रहा है। जब मैं कालेजमें पढ़ता था, तब मैंने किसी मासिक पत्रिकामें एक कहानी पढ़ी थी। वह कहानी पूर्ण रूपसे याद नहीं है, परन्तु उसका कथानक संक्षेपमें इस प्रकार है। एक प्रेमी युगल था। प्रेमी-प्रेमिकाका परस्परमें बड़ा प्यार था। प्यार इतना अधिक था कि कुछ समयके लिये एकसे दूसरेका अलगाव भी असह्य लगने लगता था। दुर्भाग्यसे प्रेमिकाका निधन हो गया। प्रेमिकाके शोकमें डूबे हुए प्रेमीके आँसू

सूखते ही नहीं थे। उस प्रेमिकाने अपने प्रेमीको एक बार आम खिलाया था। खिलानेके बाद उस प्रेमिकाने आमकी गुठलीको बगीचेमें बो दिया था। उस गुठलीसे एक आमका पौधा उग आया और धीरे-धीरे बहुत बड़ा हो गया। अब प्रेमिकाके निधनके बाद प्रेमकी पीरसे पीड़ित वह विरही प्रेमी अपने नयनोंके नीरसे उस वृक्षको सींचता रहा और उसने अपनी सारी जिन्दगी उस आमके पेड़के नीचे बिता दी। उसने उसकी छायामें अपना जीवन बिता दिया, इसीलिये कि इस पेड़के बीजको उसकी प्रेमिकाने बोया था और आमका वह पेड़ उस प्रेमिकाकी याद दिलाता रहता था।

यह कहानीका स्थूल कथानक है। इस कहानीको पत्रिकाके पाठकोंके लिये मनोरञ्जनार्थ लिखा गया था। यह कहानी पूर्णतः कल्पना-प्रसूत है और सर्वथा लौकिक है। अब थोड़ी देरके लिये विचारकी धाराको दूसरी दिशा दे दीजिये और चिन्तनके स्वरूपमें किञ्चित् निखार लाइये। इस कहानीके कथानकमें जो काल्पनिकता और लौकिकता है, एक बार उसकी उपेक्षा कर दीजिये। कहानीमें मनोरञ्जनात्मकता, काल्पनिकता और लौकिकताका जो अंश है, यदि उस धरातलसे ऊपर उठकर तनिक विवेचन किया जाय तो यह बात स्पष्ट रूपसे दिखलायी देती है कि इस कथानकके माध्यमसे प्रेमराज्यके एक महान आदर्शका चित्रण हुआ है। मुक्त स्वरसे स्वीकार करना पड़ता है कि उस प्रेमीने प्रेमकी टेकका निर्वाह किया है। मेरी दृष्टि इसी प्रेमादर्शपर है। कहानीमें उस प्रेमादर्शका वर्णन भले वह लोकरञ्जनार्थ हुआ हो, पर वह प्रेमादर्श है प्रेमराज्यका एक महान सत्य।

कहानीके इस महान मर्मको समझ लेनेके बाद गीतावाटिकाके उस महान मार्मिक सत्यको सहज रूपसे हृदयंगम किया जा सकता है, जो इस वाटिकाकी महान भावात्मक निधि है। इस कहानीमें जिस प्रेमादर्शका वर्णन हुआ है, वह गीतावाटिकाका एक यथार्थ सत्य है। वह ऐसा गौरवशाली सत्य है, जिसमें काल्पनिकता और लौकिकता है ही नहीं, उसका कणांश भी नहीं है, अपितु काल्पनिकता-लौकिकता-शून्य उस प्रीति-प्रसंगमें एकमात्र आध्यात्मिकता है। प्रेमकी इस टेकके निर्वाहमें आरम्भसे अन्ततक आध्यात्मिकता-ही-आध्यात्मिकता है। गीतावाटिकाकी यह विशिष्ट घटना प्रीतिकी रीतिका एक सदैव स्मरणीय एवं वन्दनीय प्रसंग है और इस घटनाको एक वाक्यमें इस प्रकार कहा जा सकता है कि बाबाने अपने प्रेमास्पदकी चिता-स्थलीपर अपना सारा जीवन बिता दिया और बिता दिया

भीगे नेत्रोंसे उस चिताको निहारते हुए। बाबा अपनी अन्तिम साँसतक उस चिता-स्थलीपर ही रहे।

* * * * *

अधिकारकी सार्थकता

बाबा अपनी कुटियाके समीप पनियालेके वृक्षके नीचे बैठे हुए समागत लोगोंसे भगवच्चर्चा कर रहे थे। वृक्षपर पनियालेके फल पके हुए थे। संयोग ऐसा बना कि पनियालेके वृक्षसे टपककर दो फल सहज ही उनके हाथमें आ गये। लोगोंके मध्य बैठा हुआ तीन-चार वर्षका एक बालक बाबाके हाथमें रखे उन फलोंको ललचायी दृष्टिसे देखने लगा। पूज्य बाबा उस बच्चेके मनोभावोंको सहज समझ गये। उन्होंने श्रीजगदीशप्रसादजी शर्माको कहा – जरा दौड़कर जावो और माँजीसे (पूज्य श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी सहधर्मिणीसे) पूछकर आवो कि बाबा पनियालेके दो फल एक बच्चेको देना चाहते हैं, उनकी अनुमति हो तो वे दे दें।

वे दौड़कर गये। वात्सल्यमयी माँजी भला अनुमति कैसे नहीं देती! उन्होंने बहुत ही स्नेहसे कहा – बाबो तो खेल कर ह, बई तो मालिक है (बाबा तो खेल करते हैं, वे ही तो मालिक हैं)।

श्रीजगदीशजीने लौटकर बाबाको बताया – पूजनीया माँजीने अनुमति दे दी है।

अब बाबाने बहुत ही स्नेहसे वे फल उस बालकको दे दिये।

थोड़ी देर बाद वहाँ उपस्थित सभी लोग विदा हो गये। श्रीजगदीशजीने सहज जिज्ञासावशात् बाबासे पूछा – बाबा! आप तो जानते हैं कि इतनी छोटी-सी चीजकी तो बात ही क्या, बड़ी-से-बड़ी चीजके लिये भी आपको कोई मना नहीं करता। इतना ही नहीं, यदि किसीसे कुछ आप कह देते हैं तो वह निहाल हो जाता है और अपना सौभाग्य समझता है। फिर भी आपने उस बच्चेको पनियालेके दो फलोंके लिये, भले दो मिनटके लिये ही सही, प्रतीक्षा करवायी।

बाबा गम्भीर हो गये और बोले – भैया! मैं इसे छोटी-सी बात नहीं मानता। इतने वर्षोंसे मैं यहाँ हूँ, मैं यहाँके सूखे पत्तोंपर भी अपना अधिकार नहीं मानता। जबतक गीतावाटिका गीताप्रेसकी सम्पत्ति थी,

तबतक वहाँके अधिकारियोंसे और अब, जब गीतावाटिका 'समिति' की सम्पत्ति हो गयी है, पूजनीया माँजी (हनुमानप्रसाद पोद्दार स्मारक समितिकी तत्कालीन अध्यक्षा) की बिना पूर्वानुमतिके मैंने किसी वस्तुका प्रयोग नहीं किया है।

श्रीजगदीशजीकी जिज्ञासा शान्त नहीं हुई, पर वे चुप बैठे रहे। तभी बाबा स्वयं बोल पड़े – देखो, संन्यासी समाजके नियमोंके नियामक होते हैं। इस गैरिक वस्त्रकी अपनी कुछ मर्यादाएँ हैं। आज मैं इन फलोंपर अपना अधिकार मानूँगा तो तुम्हारे लिये इस वृक्षपर अधिकार माननेका मार्ग प्रशस्त हो जायेगा। मेरी भावनाओंकी यह पवित्रता इस गैरिक परिवेशमें रहनेवाले साधुओं- साधकोंके लिये आवश्यक 'अधिकार-शून्यता' वाले भावको अवश्य बल देगी।

फिर बाबाने एक कथा सुनाई – दो स्मृतिकार भाई-भाई थे। एकने दूसरेकी अनुमति लिये बिना ही दूसरेके बागसे भगवानको अर्पित करनेके लिये कुछ पुष्प ले लिये। पुष्प तो चुन लिये, पर तुरन्त यह बात मनमें आयी कि यह तो चोरी है। वे राजाके पास गये और उन्होंने राजासे अपने हाथको कटवा देनेका दण्ड विधान माँगा। हाथको काट देनेकी राजाज्ञा हो गयी और वह काट भी दिया गया। सायंकाल वे गंगाके तटपर संध्या करने बैठे। उस समय गंगा माँकी कृपासे संध्या करते समय पुनः उनके हाथ पूर्ववत् हो गये।

यह कथा सुनाकर बाबा बड़े ही स्नेहसे श्रीजगदीशजीके कंधेपर हाथ रखकर कहने लगे – पूर्वाश्रमके स्वजनोंपर एवं वहाँकी घर-सम्पत्तिपर अधिकार छोड़कर इस वाटिकाके पत्तों और फलोंपर अधिकार जमाना तो घाटेका सौदा है रे! अधिकारकी सार्थकता तो साक्षात नन्द-नन्दनपर अधिकार माननेसे होती है। यदि मेरा कहीं अधिकार है तो एक मात्र उन्हींपर।

* * * * *

लिखित अक्षरों का समादर

बाबूजीके महाप्रस्थानके बाद उनकी आलमारीमें कुछ ऐसे कागज मिले, जिसमें सांकेतिक रूपसे यह लिखा था कि किससे कितना धन कब मिला और वह धन कहाँ दिया गया? बाबाको यह सब दिखलाया गया। देखते ही बाबाने कहा – सेवा-सहायता सम्बन्धी विवरण जिन-जिन कागजोंमें हैं, उनको सर्वथा नहीं रखना चाहिये।

यह विवरण था ही ऐसा कि वस्तुतः कई कारणोंसे इनको रखना पूर्णतः उचित नहीं था। तब बाबासे पूछा गया – क्या इन कागजोंको जलाकर अथवा फाड़कर नष्ट कर दिया जाये?

जलाने अथवा फाड़नेकी बात बाबाको बिल्कुल पसन्द नहीं आयी। बाबाने उन सब कागजोंको अपने पास मँगवा लिया। इन कागजोंके अक्षर एक महासिद्ध संतकी अँगुलियोंसे लिखे गये थे। महासिद्ध संत और प्राणोंसे भी बढ़कर परमात्मीय, उन श्रीपोद्दार महाराजकी लेखनीसे लिखे गये अक्षरोंका रंच मात्र भी अनादर हो, यह भला कैसे सम्भव था! अनादरका तो प्रश्न ही नहीं, परम समादर हो, एतदर्थ बाबाने उन कागजोंके सभी अक्षरोंको गंगाजलसे धो-धोकर साफ किया। उस घुले हुए काजल-सम जलको बाबा अपने मस्तकपर लगाते जाते थे। जब सारे अक्षर गंगाजलसे धोकर मिटा दिये गये, तब उन कागजोंकी लुगदी (अर्थात् सने हुए आटेके समान) बनाकर उस लुगदीको अपनी कुटियाके पास एक बहुत गहरे गड्ढेमें गड़वा दिया। बाबूजीके प्रति परम आत्मीयता और परम श्रद्धाका यह अनोखा उदाहरण है। इस श्रद्धा-प्रेरित प्रीति-पूर्ण कार्यके लिये बाबाने पाइपका स्वच्छ जल अथवा कुएँका शुद्ध जल नहीं, गंगाजीका पवित्र जल प्रयोगमें लिया।

* * * * *

कलाईमें चोट

सन् १९७१ के अगस्त मासकी बात है। सूर्यास्त होनेवाला था। लगभग छः बजे बाबा पैरके फिसल जानेसे गिर पड़े। उनके बायें हाथकी कलाईमें गहरी चोट आयी। भाई श्रीकृष्णचन्द्रजी तथा श्रीरामसनेहीजी घरमें

ही पानी से जमायी हुई बर्फ ले आये। वह बर्फ एक बहुत बड़े टोपियेमें डाल दी गयी। बाबा उस बर्फ भरे टोपियेमें अपना हाथ डालकर बैठ गये।

पूज्या माँको जब बाबाके चोट लगनेकी सूचना मिली तो वे बहुत अधीर हो उठीं। वे तुरन्त बाबाको देखने पहुँच गयीं। उनको पूर्ण सम्मान देते हुए बाबाने उनसे कहा – मैया! जितनी चोट लगनी चाहिये थी, उसका बीसवाँ अंश भी नहीं लगा। आजसे चार दिन पूर्व मेरे सामने एक दृश्य उपस्थित किया गया था। उसमें मेरे दोनों हाथोंकी कलाइयोंमें कपड़ेकी पट्टी बँधी हुई थी। मैं तो इसके लिये तैयार बैठा था। मैया! कितना ही कष्ट क्यों न हो और कैसी भी परिस्थिति क्यों न हो, मेरे मनमें यह भाव उदय ही नहीं होता कि यह कष्ट क्यों आया और उसका परिवर्तन होना चाहिये। मेरे मनमें यह चाह ही नहीं होती कि इसका शमन होना चाहिये। मैया! तुम्हारी कृपासे श्रीकृष्णके अतिरिक्त किसी अन्यकी सत्ताका भान ही अब नहीं होता। जब सर्वत्र सब कुछ वे-ही-वे हैं, तब दर्द कहाँसे आवे। यह बात मैं कहना नहीं चाहता था, किन्तु तुम्हारे प्यारने मुझसे बुलवा लिया।

इस भीषण कष्टमें भी बाबाके इन उद्‌गारोंको सुनकर और उनके मुख-मण्डलको प्रसन्न देखकर पूज्या माँकी दोनों आँखोंमें आश्चर्य भरा हुआ था।

* * * * *

कथन सहैतुक था

सन् १९७१ ई.को गीतावाटिकाके लिये अशुभ वर्ष कहा जाय तो सम्भवतः अत्युक्ति नहीं होगी। इस वर्ष चैत्र मासमें बाबूजीने अपनी इह-लीलाका संवरण किया और इसी वर्ष आश्विन मासमें बाबाके पैरकी हड्डी टूट गयी थी। हड्डीके टूटनेके बाद भी बाबाने श्रीगिरिराज-परिक्रमा स्थगित नहीं की। वे अपने नियम-पालनमें बड़े कट्टर थे। उनका निश्चय था कि किसी भी दशामें श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा करनी ही है। बाबा अपने नियम-पालनमें अत्यधिक तत्पर थे, परन्तु पैरकी हड्डी टूट जानेके कारण परिक्रमा कर सकना बड़ा कठिन पड़ रहा था। परिक्रमा करते समय एक सहायककी आवश्यकता थी। एतदर्थ वृन्दावनसे श्रीठाकुरजी (सम्मान्य

श्रीघनश्यामदासजी शर्मा) को बुला लिया गया।

श्रीठाकुरजीके आ जानेसे बाबाको बड़ा सहारा मिला। उनका सहारा मिलनेसे परिक्रमाके नियम-निर्वाहमें पर्याप्त सुविधा मिली। ज्यों-ज्यों पैरकी हड्डी जुड़ने लगी, त्यों-त्यों कठिनाई कम होने लगी। धीरे-धीरे स्थिति ऐसी हो गयी थी कि अब बाबा बिना सहाराके भी परिक्रमा कर सकते थे। २९ सितम्बर १९७१ के दिन मातृ-नौमी थी। इस दिन सबेरे बाबाने श्रीठाकुरजीसे कहा – अब पैरकी स्थिति ऐसी हो गयी है कि मैं अकेले परिक्रमा कर ले सकता हूँ। आजके बादसे तुम्हारी आवश्यकता नहीं रहेगी।

बाबाके अधरोंसे निकले हुए इन शब्दोंको सुनकर श्रीठाकुरजी थोड़ा चिन्तित हुए और वे सोचने लगे – क्या मेरी सेवा छूट जायेगी? क्या बाबाकी सेवासे वंचित होना पड़ेगा?

श्रीठाकुरजीके मनमें उथल-पुथल ज्यादा थी, परन्तु उनके मनमें एक समाधान भी था – मैं बाबाको मना लूँगा। कम-से-कम आज तो परिक्रमामें बाबाके साथ रहूँगा ही। कलकी बात कल देखी जायेगी।

सबेरे बाबाने श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा लगाते समय श्रीठाकुरजीको अपने साथ रखा। परिक्रमाके पूर्ण होनेके थोड़ी देर बाद ही श्रीठाकुरजीके लिये अलीगढ़से बड़े भाई श्रीश्रीरामजी शर्माका फोन आ गया – माँकी स्थिति नाजुक है और पता नहीं, कब 'विदा' हो जाय। तुरन्त तुम वापस चले आवो।

बाबाको ज्यों ही यह समाचार मिला कि उन्होंने श्रीठाकुरजीके घर वापस जानेकी व्यवस्था तत्काल कर दी। गीतावाटिकासे प्रस्थान करते समय श्रीठाकुरजीने बतलाया – ज्यों ही सबेरे बाबाने कहा कि अब परिक्रमामें तुम्हारी आवश्यकता नहीं रहेगी, तभी मेरा माथा ठनक गया था। उस समय मुझे भला क्या पता था कि वस्तुतः किसी एक विशेष हेतुसे यह सेवा बन्द होनी ही है। बाबाने जो कहा था, वह घटित हो ही गया। इतना तो सत्य है ही कि भले हमें जानकारी नहीं हो, परन्तु बाबाके कथन सहैतुक हुआ करते हैं।

* * * * *

कैंसर अस्पताल

बाबूजीको अपने लिये कुछ भी अपेक्षित नहीं था, अतः उनको अपने लिये किसी स्मारककी अपेक्षा क्यों हो, परन्तु हमें अपेक्षा थी कि उनकी पावन स्मृतिका कोई केन्द्र-बिन्दु हमारे सामने सतत रहे, जिससे हम अपनी श्रद्धाके सुमन उनके प्रति समर्पित कर सकें। इस दृष्टिकोणको सामने रखकर विनीत भावसे सन् १९७४ ई. में हनुमानप्रसाद पोद्दार स्मारक समितिका गठन हुआ। बाबूजीका पार्थिव शरीर कैंसर रोगसे ग्रस्त होकर ही पञ्च तत्त्वमें विलीन हुआ था, अतः बाबाकी प्रेरणासे प्रेरित होकर हनुमानप्रसाद पोद्दार स्मारक समितिने वसंत पंचमी (१६ फरवरी १९७५) को बाबूजीकी पुनीत स्मृतिमें एक विराट कैंसर अस्पतालके निर्माणका संकल्प किया।

इस निर्णयको सभी दिशाओंसे समर्थन और सहयोग मिला। उत्तर प्रदेशके पूर्वाञ्चलकी जनता आर्थिक दृष्टिसे विपन्न है और कैंसर जैसे सर्वाधिक व्ययसाध्य रोगकी चिकित्सा अभाव-ग्रस्त रोगियोंको भी सुलभ हो सके, इस भावसे भावित होकर नगरके प्रमुख चिकित्सकोंने, प्रशासनिक पदाधिकारियोंने, गोरखपुर विश्वविद्यालयके विद्वान प्राध्यापकोंने, समाजके जन-सेवा-व्रती महज्जनोंने और भारतके धनपतियोंने मुक्त मनसे सहयोग दिया। सन् १९८३ ई. में व्यासनन्दन श्रीशुकदेव स्वरूप पूज्य श्रीडोंगरेजी महाराजने कैंसर अस्पतालके सहायतार्थ श्रीमद्भागवत पुराणकी कथा मुम्बई शहरमें कही थी।

इसीका परिणाम है कि गोरखपुर नगरका हनुमानप्रसाद पोद्दार कैंसर अस्पताल आज भारतका एक प्रमुख चिकित्सालय है। इस कैंसर अस्पतालके निदान-विभाग, विकिरण चिकित्सा विभाग, शल्य चिकित्सा विभाग, एक्स-रे विभाग आदि मुख्य अंग हैं।

* * * * *

सरकारी धनकी वापसी

श्रीधर्मेन्द्र मोहनजी सिन्हा, आई.ए.एस, उस समय उत्तर प्रदेश सरकारके नियुक्ति-विभागके आयुक्त एवं सचिव थे। उत्तर प्रदेश सरकारकी ओरसे विभिन्न स्थानोंपर दौरा करनेके लिये उनको कार मिली हुई थी। वे किसी सरकारी दौरेपर गोरखपुर आये थे। समय मिलनेपर वे अपनी सरकारी कारसे बाबाका दर्शन करनेके लिये गीतावाटिका पधारे। जैसे ही वे कुटियापर पहुँचे, भीषण वर्षा एवं अन्धड़ शुरू हो गया। बाबा उस समय एक भक्तके स्वास्थ्यके बारेमें जाननेके लिये उत्सुक थे। वे भक्त काफी अस्वस्थ थे। बाबाने श्रीजगदीशजीको निर्देश दिया – तुम जाकर उस भक्तके स्वास्थ्यके समाचारकी जानकारी प्राप्त करो और फिर सोनेसे पहले मुझे सूचित करो।

बाबाने आदेश तो दे दिया, पर प्रश्न यह था कि श्रीजगदीशजी जायें कैसे? मौसम एकदम खराब हो चुका था। इस उलझनको सुनकर श्रीसिन्हा साहबने निवेदन किया – मैं कारसे आया हूँ। मैं डाक बँगले पहुँचकर कार श्रीजगदीशजीको दे दूँगा। श्रीजगदीशजी उस भक्तके घर जाकर उनके स्वास्थ्यकी जानकारी प्राप्त कर लेंगे।

बाबाने यह निवेदन सहज स्वीकार कर लिया। जब श्रीजगदीशजी लौटकर आये तो उन्होंने देखा कि बाबाका मुख म्लान है। उस भक्तके सारे समाचार जाननेके बाद बाबा कहने लगे – आज असावधानीसे एक अपराध घटित हो गया। श्रीसिन्हा साहबके प्रति मेरे मनमें आदर है। उनके निवेदनको मैंने स्वीकार कर लिया और इसके फलस्वरूप मेरे द्वारा सरकारी वाहनके दुरुपयोगका अपराध घटित हो गया। सरकारी वाहनको निजी कार्यमें प्रयोग करनेका मुझे कोई अधिकार नहीं है। अब समस्या यह है कि इस अपराधका मार्जन कैसे हो?

समस्याका हल ढूढनेके लिये पंचायत जुटायी गयी। वाटिकाके कई प्रमुख व्यक्ति बाबाके सामने बैठे हुए थे। सभी अपना-अपना सुझाव दे रहे थे। सभीके बीच पंचायतमें बैठे हुए श्रीलखपतरायजीने पंचके रूपमें एक उपाय बताया – यदि सरकारी स्टाम्प खरीदकर उसे बिना उपयोग किये नष्ट कर दिया जाय तो यह धन उत्तर प्रदेश सरकारके खजानेमें वापस

चला जायेगा।

बाबाको यह सुझाव मान्य हो गया। पैसेका स्पर्श न करनेवाले बाबाने भिक्षा माँगकर धन इकट्ठा करना आरम्भ किया। भक्तका हाल-चाल जाननेके लिये उपयोगमें ले ली गयी कारमें जितने रुपयोंका पेट्रोल लगा, उससे चार गुना अधिक मूल्यकी धनराशि एकत्रित की गयी तथा रैवेन्यू स्टाम्प खरीदकर उन धनराशिको वापस उत्तर प्रदेश सरकारको लौटा दिया गया। वे खरीदे गये स्टाम्प तो नष्ट कर ही दिये गये।

* * * * *

पाँच पदों का गायन

दिनांक २५ जनवरी १९७५ के दिन अपराह्न कालकी बात है। बाबा टिन शेडके नीचे चौकीपर बैठे हुए थे। पासमें ठाकुरजी और कीर्तनिया हरिवल्लभजी भी थे। इसी समय रासमण्डलीके स्वामी श्रीरामजी शर्मा बम्बईसे आये। वे बम्बईसे अपने साथ हारमोनियमकी नयी पेटी लाये थे। वे लाये थे बाबाके निर्देशानुसार और वह पेटी बाबा हरिवल्लभजीको भेंट स्वरूप प्रदान करनेवाले थे। गोरखपुर स्टेशनसे आकर श्रीरामजीने गीतावाटिकामें ज्यों ही प्रवेश किया, त्यों ही वे बाबाको प्रणाम करनेके लिये बाबाके पास सीधे चले आये। वे अपने साथ वह नयी पेटी भी लेते आये। इसे मात्र संयोग कहना चाहिये कि उस समय ठाकुरजी और हरिवल्लभजी बाबाके पास बैठे हुए थे। नयी पेटीको देखकर बाबाने उसी समय अपने सामने ही उसको देखना-जाँचना और उसका परीक्षण करवाना चाहा।

बाबाके संकेतके अनुसार श्रीरामजीने हारमोनियमकी वह नयी पेटी बक्सेसे बाहर निकाली। पेटीको देखकर बाबाको बड़ी प्रसन्नता हुई। फिर श्रीश्रीरामजीने बाबाको प्रिय लगनेवाले पाँच पद गाकर सुनाये। वे पद थे –

(१)

राधिका आज आनंद में डोले!
साँवरे चंद गोविंद के रस भरी,
दूसरी कोकिला मधुर स्वर बोलै।।
पहिर तन नील पट कनक हारावली,

हाथ लै आरसी रूप को तोलै।।
कहत श्रीभट्ट ब्रजनारि नागरि बनी,
कृष्ण के सील की ग्रंथिका खोलै।।

(२)

आजु नीकी बनी राधिका नागरी।
ब्रज-जुवति जूथ में रूप अरु चतुरई,
सील सिंगार गुन सबन ते आगरी।।
कमल दक्षिण भुजा बाम भुज अंस सखि,
गावति सरस मिलि मधुर स्वर राग री।।
सकल विद्या विदित रहसि हरिवंस हित,
मिलत नव कुंज वर श्याम बड़ भाग री।।

(३)

भाग्यवान वृषभानु सुता सी को तिय त्रिभुवन माहीं।
जाको पति त्रिभुवन मन मोहन दिए रहत गलबाहीं।।
है अधीन सँग ही सँग डोलत जहाँ कुँवरि चलि जाहीं।
रसिक लख्यौ जो सुख वृंदाबन सो त्रिभुवन में नाहीं।।

(४)

बैठे हरि राधा संग कुंज भवन अपने रंग
कर मुरली अधर धरे सारँग मुख गाई।
मोहन अति ही सुजान परम चतुर गुन निधान
जान बूझि एक तान चूक कै बजाई।।
प्यारी जब गह्यौ बीन सकल कला गुन प्रबीन
अति नवीन रूप सहित तान वह सुनाई।
बल्लभ गिरिधरन लाल रीझि दई अंक माल
कहत भले भले लाल सुंदर सुखदाई।।

(५)

आज इन दोउन पै बलि जैयै।
रोम रोम सों छबि बरसति है निरखत नैन सिरैयै।।
रूप रास मृदु हास ललित मुख उपमा देत लजैयै।
नारायण या गौर स्याम को हिये निकुंज बसैयै।।

इन पदोंको श्रीरामजीने बड़े भावपूर्ण ढंगसे गाया। गायनमें हरिवल्लभजी और ठाकुरजी आलापचारी करते हुए बीच-बीचमें सहयोग दे रहे थे। एक अनोखा समाँ बँध गया। वहाँका वातावरण कुछसे कुछ और ही हो गया। इन पदोंमें श्रीप्रिया-प्रियतमकी हृदयस्पर्शी लीलाओंका सुन्दर वर्णन है। इन पाँच पदोंके गायनने बाबाके कोमल भावोंको स्पर्श कर लिया और वे पूर्णतः अन्तर्मुख हो गये। यह अन्तर्मुखता मध्य रात्रितक प्रशमित नहीं हो पायी। मध्य रात्रिके समय बाबाको भिक्षा बड़ी कठिनाईसे करवायी जा सकी।

अगले दिन २६ जनवरी १९७५ की बात है। प्रातःकालके समय बाबा स्नान करके अपनी चौकीपर बैठे हुए थे। पासमें ही श्रीरामजी, ठाकुरजी, हरिवल्लभजी आदि-आदि कई व्यक्ति बैठे हुए थे। कल अपराह्नकालके समय श्रीरामजी द्वारा जिन रसमय लीला-पदोंका गायन हुआ, उसकी चर्चा करते हुए बाबाने कहा – शराबीको शराब पीनेकी आदत होती है। आदत होनेके कारण थोड़ी-थोड़ी शराब पीते रहनेके बाद भी शराबीका होश-हवास बना रहता है और उसका सांसारिक व्यवहार कुछ-कुछ ठीक प्रकारसे चलता रहता है, किन्तु जिस क्षण शराब अधिक ढल जाती है, तब उसके द्वारा सांसारिक व्यवहारका निर्वाह ठीक प्रकारसे नहीं हो पाता। शराबीका तो मैंने उदाहरण अपनी बातको समझानेके लिये कहा है। जब तुम लोग वृन्दावनसे यहाँ आते हो, तब व्रजभावके सुन्दर पद सुनाते हो। उससे भाव-विभोरता होती है और उस विभोरावस्थामें भी व्यवहार कुछ-कुछ निभता रहता है, किन्तु उन लीला-पदोंमें जब घने सरस और गहरे मार्मिक प्रसंग आते हैं, उस समय चित्तकी वृत्ति बाह्य जगतको छोड़ देती है। श्रीपोद्दार महाराजके महाप्रयाणके पहले मैं उस कुटियामें रहता था, जो उनकी समाधिके पास है। जब कभी ऐसी भावमयी स्थिति होती थी, तब उस स्थितिमें मैं अपनी कुटियाके भीतर पड़ा रहता था और उस गम्भीर स्थितिका शमन अपने-आप धीरे-धीरे सहज रीतिसे हो जाता था। जब उस गम्भीर भावमयी स्थितिसे उत्पन्न पागलपन बहुत अधिक बढ़ जाता था, तब मैं कुटियाके बाहर आकर खड़ा हो जाता था। खड़ा होता था इसलिये कि वृक्षोंको-लताओंको-पक्षियोंको अर्थात् बाह्य जगतके दृश्योंको देखकर किसी प्रकार इस भावमयी स्थितिका परिशमन हो। बात यह है कि वह दिव्य भावधारा है चिन्मय राज्यकी दिव्य वस्तु और यह देह है पाञ्चभौतिक जगतकी जड़ वस्तु। यह पाञ्चभौतिक देह उस चिन्मय भावकी धाराके वेगको सहन नहीं कर पाती।

जब-जब ऐसी दशा होती है, तब-तब सिरमें भयंकर पीड़ा होती है। उस पीड़ाकी आपलोग कल्पना नहीं कर सकते।

भाव-विभोरताकी बात कहते-कहते चर्चाका प्रवाह कुछ बदला और बाबा श्रीरामचरितमानसकी कथाके अनुभव सुनाने लगे। कथावाचकोंकी चर्चा करते हुए बाबाने कहा – श्रीदीनजी नामक एक रामायणी थे, जो श्रीरामचरितमानसकी बड़ी सुन्दर कथा कहा करते थे। उनकी कथा इतनी भावपूर्ण होती थी कि कथा कहते-कहते स्वयं उनमें ही भावोदयकी ओर संकेत करनेवाले सात्त्विक विकार व्यक्त हो उठते थे। उनकी कथाको सुनकर मेरा मन जागतिक धरातलको छोड़ देता था। रामायणी श्रीदीनजीकी मानस-कथा सुनकर जैसा प्रभाव मुझपर पड़ता था, उससे भी अधिक गहरा प्रभाव श्रीकृपाशंकरजीकी मानस-कथा सुननेसे होता है। लोगोंकी मान्यताके अनुसार श्रीकृपाशंकरजी हैं तो साधारण स्तरके कथावाचक, परन्तु न जाने क्यों उनके मुखसे मानस-कथाको सुनकर मुझे बहुत अधिक भावोद्दीपन होता है और मन उस चिन्मय भावराज्यकी ओर भाग चलता है।

जब ऐसी अन्तर्मुखी भावमयी स्थिति हो, तब छूना-छेड़ना नहीं चाहिये। तब यदि किसी व्यक्तिकी ओरसे कुछ छेडछाड़की किञ्चित् भी क्रियाके द्वारा मुझे बहिर्मुखी बनाये जानेकी कोई चेष्टा होती है, अर्थात् कोई मुझसे मिलना चाहता है अथवा कुछ कहना चाहता है तो उस समय मनकी धाराको बलात् मोड़नेके कारण शरीरपर बड़ी बुरी प्रतिक्रिया होती है। जिस तरह पूर्णिमाके दिन चन्द्रमाको देखकर सागर उद्वेलित हो उठता है, इसी प्रकार पदोंके गायनसे अन्तरके भावोंको उद्दीपन मिलता है। भाव-सागरके उद्वेलित हो उठनेपर चित्तकी वृत्ति अत्यधिक अन्तर्मुखी हो जाती है। उस समय यदि कोई व्यक्ति मिलकर चित्तकी वृत्तिको बहिर्मुख बनानेका प्रयास करता है, तब बहुत आन्तरिक संघर्ष होता है। उस अन्तर्मुखताकी स्थितिमें मिलने-कहने-सुननेकी बात तो अलग रही, यदि कोई केवल प्रणाम ही करना चाहता है तो उस समय भी बड़े संघर्षका अनुभव होता है।

इस प्रकारकी भावमयी चर्चा करते-करते बाबाने श्रीरामजीके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए कहा – भैया श्रीराम! कल वे पाँच पद

सुनाकर तुमने जो लोकोत्तर सुख प्रदान किया, उसका प्रतिदान करनेके लिये मुझ अकिञ्चनके पास कुछ भी नहीं है।

* * * * *

सिखावनकी अनोखी रीति

संत अपने पासमें आनेवाले व्यक्तियोंको सुन्दर शिक्षा दिया करते हैं, पर शिक्षा देनेकी पद्धति हर संतकी एक-सी नहीं होती और सदा मधुर नहीं होती। संत यही चाहते हैं कि सम्पर्कमें आनेवाले व्यक्ति अपनी मर्यादामें रहते हुए भगवदुन्मुखी जीवन व्यतीत करें। करनीसे, कथनीसे और रहनीसे प्रत्येक संतकी सिखावन यही होती है कि जीवन आस्तिक-सात्त्विक-संयमित-मर्यादित हो, पर हर संतकी सिखावन देनेकी रीति भिन्न-भिन्न प्रकारकी हुआ करती हैं। एक प्रसंग बाबाकी एक अटपटी पद्धतिका एक अनोखा उदाहरण हैं।

यह प्रसंग उस समयका है, जब समाधिपर स्मारक नहीं बना था। खुले अकाशके नीचे समाधि थी। समाधिपर स्मारक तो बहुत बादमें बना। समाधिके पास बैठे हुए बाबा किसी साधकसे कोई आवश्यक बात कर रहे थे तथा साधना सम्बन्धी ऐकान्तिक परामर्श दे रहे थे, तभी कलकत्तेके कुछ धनिक व्यक्ति बाबाके पास आकर बैठ गये। उन धनिक व्यक्तियोंके आ जानेसे पहलेसे चल रही बातचीतका क्रम खण्डित हो गया तथा ऐकान्तिक परामर्शका कार्य अधूरा रह गया। अब नये विषयपर बात चल पड़ी।

इन दिनों श्रीरामचन्दजी दम्माणी कलकत्तेसे आये हुए थे। श्रीदम्माणीजीके मनमें बाबाके प्रति अगाध श्रद्धा तथा अमाप्य आत्मीयता थी। बाबाकेपास कई व्यक्तियोंको बैठे हुए देखकर उनके मनमें आया कि यह कोई प्राइवेट मिटिंग तो है नहीं। कई व्यक्ति बाबाके पास बैठे हुए हैं, ऐसी परिस्थितिमें क्यों न पूज्य श्रीबाबाके सान्निध्यका लाभ उठाया जाय। ऐसा सोचकर श्रीदम्माणीजी बड़ी श्रद्धा, बड़े उल्लासके साथ बाबाके पास गये तथा उन व्यक्तियोंके साथ बैठ गये, पर यह क्या हुआ? श्रीदम्माणीजीके सारे उल्लासपर वज्रपात हो गया। बाबाने श्रीदम्माणीजीको

डाँटना आरम्भ कर दिया – आप यहाँ इस समय क्यों आये? क्या इस समय मैंने आपको आनेके लिये कह रखा था? क्या यह समय आपसे बातचीत करनेके लिये निश्चित था? क्या आपको अपने वैभवका, अपने धनका, अपनी प्रतिष्ठाका, अपनी योग्यताका इतना घमण्ड हो गया है कि आप जब चाहें तब और जहाँ चाहे वहाँ चले जाते हैं? क्या आपको बड़प्पनका इतना मद हो गया है कि आप दूसरोंकी ओर देखना ही नहीं चाहते? कोई दूसरा बात कर रहा हो और अपनी कुछ व्यक्तिगत बातें पूछ रहा हो, पर उसका भी अभिमानमें डूबे हुए आप ख्याल नहीं करते?

उस समय श्रीदम्माणीजीकी हालत बड़ी नाजुक थी। बार-बार स्वयंको कोस रहे थे कि हाय, मैं क्यों आया? इस समय यदि हटूँ भी तो कैसे हटूँ? मन- ही-मन कह रहे थे कि अब बाबाके पास भूलकर भी बिना बुलाये नहीं आऊँगा। यदि आऊँगा तो तभी आऊँगा, जब मिलनका समय पूर्व निश्चित रहेगा। जितना ही पूज्य श्रीबाबा डाँटते जा रहे थे, उतना ही, अपितु उससे भी अधिक श्रीदम्माणीजी आत्म-भर्त्सना कर रहे थे। किसी प्रकार बाबाका बोलना बन्द हुआ और फिर वह बैठक विसर्जित हो गयी।

यह प्रसंग दिनमें पूर्वाह्नके समयका था। वहाँसे हटते ही खिन्न मन श्रीदम्माणीजी अपने कमरेमें आ गये। दिन भर रहा मन बहुत खिन्न, चेहरा बेहद उदास, भावनाएँ एकदम घायल। बाबाके डाँटनेका इतना अधिक असर हुआ कि सारा दिन मृतवत् व्यतीत हुआ। शामके समय किसी कामसे श्रीदम्माणीजी समाधिके पास गये। बाबाकी कुटियाकी ओर जायें अथवा बाबाकी कुटियाकी ओर झाँकें, इसका तो प्रश्न ही नहीं था। बाबाने भी उस डाँटनेके बादसे दिन भर श्रीदम्माणीजीको नहीं देखा था। बाबा भी टोहमें थे कि श्रीदम्माणीजी दिखें तो बुलाकर पूछूँ कि क्या हाल-चाल है, कैसी मनस्थिति है। श्रीदम्माणीजी ज्यों ही समाधिके पास आये, त्यों ही बाबाने उनको देख लिया तथा अपने पास बुलाया। श्रीदम्माणीजीके मनमें बाबाके पास जानेके लिये उल्लास नहीं था, पर अब न चाहते हुए भी जाना था। निकट बैठाकर बाबाने किञ्चित् वक्रता पूर्वक पूछा – क्यों, श्रद्धा डिग गयी क्या? आज दिन भर आप दिखलायी नहीं दिये, इधर झाँकने भी नहीं आये। आप भी क्या सोचते होंगे कि यह कैसा संन्यासी है, जो अकारण डाँटता है और आवश्यकतासे अधिक, अधिक नहीं, अत्यधिक डाँटता है?

श्रीदम्माणीजीने विनम्र स्वरमें कहा – बाबा! सचमुच गलती मेरी ही थी। बिना बुलाये मेरा आना सर्वथा अनुचित था। मेरी भूलोंको आप ही तो बतायेंगे। मुझे अपनी भूलके लिये दुःख है।

बाबाने कहा – आप जो कह रहे हैं, इसे मैं मान रहा हूँ, पर आपके स्वरमें वह प्रेम, वह उल्लास नहीं है, जो होना चाहिये। क्या एक ही डाँटमें उस सारेपर पानी फिर गया? हो सकता आप न कहें, पर आप मन-ही-मन कह रहें होंगे कि भले गलती तो थी, पर बाबाको इस प्रकारसे सबके सामने नहीं डाँटना चाहिये था और यदि डाँटना ही था तो इतना अधिक डाँटना नहीं चाहिये था।

इतना कहकर बाबा एक-दो मिनट चुप रहे तथा श्रीदम्माणीजीके चेहरेको देखते रहे, चेहरेके ऊपर उभरते भावोंकी रेखाओंको पढ़ते रहे। फिर स्वरमें नितान्त मिठास भरकर बाबाने तथ्यको बतलाना आरम्भ किया – पर अब आपको एक बात बताऊँ! क्या आप मेरी बातपर विश्वास कर सकेंगे? आप जानते हैं कि उस समय कलकत्तेके कुछ सेठ मेरे पास बैठे थे और जिस प्रकार आप आकर बैठ गये थे, उसी प्रकार वे भी आपसे पहले आकर बैठ गये। वे आकर बैठ गये थे अपने धनिकपनेके अहंकारमें डूबे-डूबे। उनके आनेसे वह ऐकान्तिक साधनात्मक चर्चा बन्द हो गयी, जो पहले हो रही थी। मुझे डाँटना उनको था, पर सीधे उनको डाँट नहीं सकता था। तभी आप आकर बैठे। आपके रूपमें भगवानने मुझे एक अवसर दिया। आप तो मेरे-से-मेरे हैं। आप मेरे हैं अतः आपको डाँट सकता था, पर उनको नहीं। अब आपको डाँट बतानेके बहाने उन धनिकोंको मैं डाँट रहा था। शिक्षा उनको देनी थी, पर माध्यम आपको बनाया।

बाबाकी यह बात सुनकर श्रीदम्माणीजीके भीतरकी सारी खिन्नता, सारी उदासी, सारी मलिनता तिरोहित हो गयी। बाबाकी यह आत्मीयता देखकर श्रीदम्माणीजीकी आँखें सजल हो गयीं। आँसुओंकी धारा कपोलोंपर बह चली। कहा नहीं जा सकता कि संत किसी व्यक्तिको या किसी परिस्थितिको अनुशासित करनेके लिये कौन-सी रीति अंगीकार कर लेगा।

* * * * *

स्मारक का निर्माण

बाबाकी भावनाके अनुसार चिता-स्थलीपर स्मारकके निर्माणके कार्यका शुभारम्भ सं. २०३२ वि. की श्रीराधाजन्माष्टमीके परम पावन दिवसपर हुआ। इस वर्ष १३ सितम्बर १९७५ के दिन श्रीराधा- जन्माष्टमी थी। प्रातः काल साढ़े आठ बजे श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा हो गयी। इसके बाद माँ बाबाके पास गयीं और कहा – आजसे स्मारकके बननेका काम शुरू होगा। आप उसकी नींवमें अपने हाथसे थोड़ी गिट्टी रख दीजिये। यदि गिट्टी रखनेमें कोई अड़चन मनके भीतर उमड़-घुमड़ रही हो तो पूजाके रूपमें गुलाबके दो फूल रख दीजिये।

बाबाने भरी-भरी आँखोंसे माँको देखते हुए भरे-भरे स्वरसे कहा – मैया! मैं अपनी ओरसे अन्तिम अर्चना उसी दिन कर चुका, जिस दिन उन्होंने 'विदाई' ली थी।

इसके आगे बाबा स्वर रुद्ध होनेसे कुछ बोल नहीं पाये। सभी बाबाके स्वरकी विस्वरताको और मुखाकृतिकी विवर्णताको एकटक निहार रहे थे।

सो दसा देखत समय तेहि बिसरी सबहि सुधि देह की।
तुलसी सराहत सकल सादर सीवँ सहज सनेह की।

इसके बाद माँ जब स्मारकका शिलान्यास करनेके लिये चलने लगी तो उसने बाबासे साथ चलनेके लिये आग्रह करते हुए कहा – आप कुछ मत करियेगा। बस, आप वहाँ नींवके किनारे खड़े रहियेगा।

माँके आग्रहको स्वीकार करके बाबा साथ-साथ चले आये। बड़ी भव्यताके साथ शिलान्यासका कार्य सम्पन्न हुआ। सर्वप्रथम पूज्या माँने गिट्टी डाली। इसके बाद अनेकों भाई-बहिनोंने अपने-अपने हाथोंसे स्मारककी नींवमें गिट्टी डाली।

स्मारकके निर्माणमें एक वर्षका समय लग गया। निर्माणका अन्तिमांश था स्मारकके ऊपर शिखरका लगाया जाना। शिखरका निर्माण संगमरमरके पत्थरसे राजस्थानमें हुआ। यह शिखर पाँच खण्डोंमें निर्मित हुआ है और इसका कुल वजन लगभग चार टन है। बाबाके निज जन श्रीरामचन्द्र सिंहजी खीची रहे। खीचीसाहब रेलवेमें इंजीनियर थे।

खीचीसाहबके प्रयाससे रेलवेके पुल विभागके कुशल और कर्मठ कर्मचारियोंने पञ्च खण्डीय शिखरको चढ़ाने और ठीकसे बैठाकर लगानेका कार्य किया। जिस समय अन्तिम पाँचवाँ खण्ड चढ़ाया जा रहा था, उसे देखकर बाबाकी आँखें रह-रह करके भर आती थीं। बाबूजीकी संनिधिकी-साहचर्यकी-प्रीतिकी एक-एक झाँकी और एक-एक छवि उभर-उभर करके उनके अन्तरको आप्लावित-आलोलित-आन्दोलित-आनन्दित कर रही थी। शिखरके चढ़ाये जानेका सारा कार्य सं. २०३३ वि. भाद्र शुक्ल १, गुरुवार, २६ अगस्त १९७६ के दिन पूर्ण हुआ।

आज बाबाके हर्षोल्लासकी सीमा नहीं थी। कार्यके पूर्ण होते ही बाबाका भावोन्मादी हर्षोल्लास जन-जनमें कण-कणमें परिव्याप्त हो गया। 'श्रीगिरिराज महाराजकी जय', 'श्रीगिरिराज धरणकी जय', 'श्रीराधामाधवकी जय', 'पूज्य बाबूजीकी जय', 'पूज्य भाईजीकी जय' के तुमुल नादसे सारा वातावरण गूँज उठा।

इन दिनों गीतावाटिकामें लगभग दो सौ मजदूर काम कर रहे थे। सब मजदूरोंके लिये हलुआ-पूड़ी-साग बनवाया गया। बाबा स्वयं खड़े रहे और बाबूजीकी एक मात्र सुपुत्री परमादरणीया बाईके हाथसे सब मजदूरोंको हलुआ-पूड़ी-सागसे भरी पत्तल दी गयी। पत्तलोंको परोस-परोस करके सभी मजदूरोंको एवं अन्य जनोंको देनेमें लगभग पाँच घंटे लग गये और बाबा पाँच घंटेतक लगातार खड़े रहे।

शिखर सहित सारे स्मारककी ऊँचाई ४९ फीट है। वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाकिशोरीकी आठ सखियाँ हैं और प्रत्येक सखीके भावके छः स्तर हैं। इसके अतिरिक्त एक सामान्य स्तर है। इस प्रकार कुल हुए ८ × ६ = ४८ + १ = ४९। इसी संख्याकी प्रतीक है स्मारककी ऊँचाई। इसी स्मारकपर पञ्च देवोंके पाँच प्रतीक भी प्रतिष्ठित हैं। भगवान श्रीगणेश, भगवती श्रीशक्ति, भगवान श्रीशिव, भगवान श्रीसूर्यदेव एवं भगवान श्रीविष्णु, इन पञ्च देवताओंके पञ्च प्रतीक स्मारकके ऊपर पश्चिमकी ओर अंकित किये गये हैं। अपने प्रेमास्पदकी चिता-स्थलीपर स्मारकके निर्माण कार्यको भली प्रकारसे पूर्ण देखकर बाबाका अन्तर कितना अधिक आनन्दित हुआ, यह हमारे अनुमानसे परेका स्तर है और इसके बाद बाबाका जीवन था इस चिताके स्मारकको देखते रहना और प्रेमास्पदकी

मीठी यादमें डूबे रहना। वे चिताको एवं चितापर निर्मित स्मारकको भीगी निगाहोंसे देख-देख करके विभोर होते रहते थे तथा भावाधिक्यमें यदा-कदा बाबूजीकी अगाध-अपार प्रीतिकी सच्चर्चा अपने निज जनोंके मध्य करते रहते थे।

* * * * *

तरु-लताओंके प्रति आत्मभाव

सृष्टिके सम्पूर्ण प्राणियोंमें ही नहीं, अपितु तरु-लता-वल्लरियोंके प्रति भी बाबाकी अत्यधिक आत्मीयता थी। पेड़-पौधोंके प्रति उनका जो आत्मभाव था, उसके अनेक भावपूर्ण प्रसंग तब देखनेमें आये हैं, जब बाबूजीकी समाधिपर संगमरमरके विशाल स्मारकका निर्माण हो रहा था। स्मारक निर्माणके समय बाबाने सावधान किया था कि हरे-भरे वृक्षोंको नष्ट न किया जाय। समाधिके पास यत्र-तत्र अनेक पेड़-पौधे लगे हुए थे। जो पौधे जड़ सहित उखाड़कर दूसरी जगह लगाये जा सकते थे, केवल वे ही पौधे उखाड़े गये, सारे वृक्ष ज्यों-के-त्यों खड़े रहे। जो पौधे उखाड़कर यहाँसे कहीं अन्यत्र लगाये गये, इस स्थानान्तरणकी प्रक्रियामें पौधोंको जो आघात पहुँचता, उसके लिये बाबाने उपवासके रूपमें कई बार प्रायश्चित किया है। हरे वृक्षकी डाल काटना, भले उसकी प्रेरणा सुन्दरीकरण-योजना हो, यह बाबाको सह्य था ही नहीं। बाबाके द्वारा सावधान किये जानेपर भी एक व्यक्तिने एक वृक्षकी डाल कटवा दी। जब बाबाकी दृष्टिमें यह बात आयी, तब उनका हृदय पीड़ासे भर गया। उस पीड़ाकी गहरी रेखाएँ उनके खिन्न चेहरेपर उतर आयी थीं। वे बार-बार कह रहे थे – पता नहीं, क्यों मेरे निर्देशकी उपेक्षा हो रही है। कार्य करनेवाले लोगोंको कैसे समझाऊँ कि यहाँकी सभी लताओं और पौधोंके साथ दिव्य केलिकी कुछ भावनाएँ जुड़ी हुई हैं।

बाबाने इसके लिये कठोर प्रायश्चित इस रूपमें किया कि वे निर्जल-निराहार रहकर सूर्योदयसे सूर्यास्ततक लगातार खड़े रहे। 'घायलकी गति घायल जाने'।

ऐसा ही एक मार्मिक प्रसंग और है। बाबूजीके महाप्रयाणके पश्चात्

बाबा पनियालेके वृक्षके नीचे उस कुटियामें रहने लगे थे, जो तीन ओरसे खुली है। वे कुटियामें अपनी चौकीपर बैठे हुए थे। अचानक वे अपनी चौकीपरसे उठे और आकाशकी ओर शून्यमें ध्यान पूर्वक देखते हुए कुछ सुननेका वे प्रयास भी कर रहे थे। वे देख भी रहे थे, कुछ सुन भी रहे थे और धीरे-धीरे आगे बढ़ भी रहे थे। कुटियाके पास जितने वृक्ष थे, एक-एक वृक्षके पास जाते, उसपर आँख गड़ाते और फिर आगे बढ़ जाते। भाई श्रीकृष्णचन्द्रजी तथा और भी एक-दो लोग उनके साथ थे। साथके सभी लोग केवल साथ-साथ चल रहे थे, पर वे लोग समझ नहीं पा रहे थे कि बाबा क्या चाहते हैं और क्यों एक-एक वृक्षके पास जा रहे हैं। मौन व्रत होनेके कारण बाबाने कुछ भी नहीं बतलाया, किन्तु उनके चलनेके, उनके देखनेके और उनके खोजनेके ढंगसे क्रमशः ऐसा समझमें आने लगा कि किसीकी कराहटका स्वर उनके कानमें पड़ रहा है और वही स्वर ही उनका अनुसन्धान-सूत्र है, जिसके सहारे वे किसी विशिष्ट बातका पता लगाना चाह रहे थे।

अन्ततः सफलता मिल ही गयी। कुछ देरतक खोजते-खोजते बाबा एक बहुत बड़े वृक्षके पास आकर ठहर गये। वह विशाल वृक्ष उनकी कुटियाके पास ही था। वृक्षके चारों ओर चक्कर लगाकर देखते हुए उनको दिखलायी दे गया कि उसके तनेमें एक बड़ी मोटी लोहेकी कील धँसी पड़ी है। बाबा उसे पकड़कर निकालनेका प्रयत्न करने लगे। एक ओर बाबा थे अत्यन्त कृशकाय और दूसरी ओर वह कील थी बहुत धँसी हुई, अतः बाबाके प्रयत्नसे यह कील हिलनेका नाम ही नहीं ले रही थी। भाई कृष्णचन्द्रजीको बाबाका मन्तव्य समझमें आ गया। उन्होंने कोई बढ़ई बुलवाया और उसने तनेमेंसे लोहेकी मोटी कीलको बाहर निकाला।

कीलके धँसनेसे तनेका वह भाग सड़कर काला हो गया था। बाबाने उसे स्वयं साफ किया और उसे स्वच्छ जलसे धोया। फिर उसमें गोबर भर दिया। यह गोबर ही उस घावका मलहम था। ऐसा लग रहा था मानो वृक्षके उस भागका ऑपरेशन व बैंडेज किया गया हो।

यह सारी बात हो जानेके बाद लोगोंके समझमें आ गया कि हमलोग वृक्षकी उस कराहटको नहीं सुन पा रहे थे, जिसको बाबाने अपनी चौकीपर बैठे-बैठे सुन लिया था और वे चौकीसे उठकर अचानक चल पड़े

थे। संत- जगतकी सूक्ष्म बातें बड़ी विचित्र होती हैं, जो स्थूल-स्तरपर स्थित साधारण मानवके लिये सहज बोधगम्य नहीं हो पातीं। गोबरकी मलहम लग जानेके बाद बाबाके नेत्रोंमें अमृतवर्षिणी शान्ति और चित्ताकर्षिणी कान्ति परिव्याप्त थी। इसके अनन्तर बाबा अपने आसनपर आकर बैठ गये और नेत्र बन्द करके ध्यान मग्न हो गये। बाबाके साथमें जो लोग थे, वे सभी ही वृक्षोंके प्रति होनेवाले उनके आत्मभावको देखकर चकित थे। संत मलूकदासने संत-स्वरूपका बखान करते हुए कहा था –

मलुका सोई पीर है, जो जाने पर पीर।
जो पर पीर न जानहीं, ते काफिर बेपीर।।

* * * * *

हरिनाम कीर्तन माधुरी

परम बाबूजीका तिरोभाव चैत्र कृष्ण दशमीके दिन हुआ था, अतः प्रत्येक दशमी तिथिको उनकी पावन समाधिके पास श्रीरामचरितमानसका अखण्ड पाठ हुआ करता है। २४ फरवरी १९७६ के दिन फाल्गुन मासके कृष्ण पक्षकी दशमी तिथि थी। सबेरे बारह बजे दशमीके कार्यक्रमके लिये श्रीरामचरितमानसके अखण्ड पाठकी तैयारी हुई। पूज्य श्रीमोतीजी महाराज पूजा करवानेके लिये आनेवाले थे। अभी उनके आनेमें कुछ देर थी। खाली समय देखकर भाई श्रीमुकुन्दजी गोस्वामीके सुपुत्र प्रिय संजीवने महामन्त्रका कीर्तन आरम्भ कर दिया।

हरे राम रहे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।।

इस महामन्त्रके कीर्तनकी सुमधुर ध्वनि श्रीनारायणचन्द्रजी गोस्वामीके कानमें पड़ी, जो उन दिनों गीतावाटिकाके अखण्ड भगवन्नाम संकीर्तनके सर्व प्रधान कीर्तनिया थे। आप उधरसे निकल रहे थे। ज्यों ही कानमें कीर्तनकी सुमधुर ध्वनि पड़ी, त्यों ही वे वहाँ बैठ गये और वे अपने हाथमें हारमोनियमकी पेटी लेकर महामन्त्रका कीर्तन करने लगे। प्रिय संजीव ढोलक बजाकर उनका साथ देने लगा।

भगवानकी कृपासे वह कीर्तन खूब जमा। कीर्तनका मधुमय स्वर

चारों ओर फैलकर वातावरणमें छा गया। बाबा अपनी कुटियापर गहरी नींदमें सोये हुए थे। वे उस मधुर स्वरको सुनकर जग गये। इतना ही नहीं, जैसे ही बाबाने वह मधुर ध्वनि सुनी, वे उठकर खिचें हुए चले आये। वे आकर श्रीगिरिराज परिसरमें खड़े हो गये और तल्लीन होकर कीर्तन सुनते रहे। श्रीनारायणचन्द्रजी गोस्वामी और प्रिय संजीव, इन दोनोंको पता ही न चला कि बाबा खड़े-खड़े कीर्तन सुन रहे हैं। वे दोनों बड़े भावके साथ कीर्तन करते रहे और बाबा कीतर्नको सुनकर अपनी मस्तीमें डूबे रहे। जिन भक्तोंको पता चला, वे भी खिचें-खिचें चले आये और दूर खड़े होकर बाबाकी भाव-विमुग्ध-दशाका दर्शन करते रहे। लगभग एक घण्टेतक रसकी मधुर सरिता बहती रही।

श्रीरामचरितमानसके अखण्ड पाठमें विलम्ब होता हुआ देखकर उस मधुर कीर्तनको विराम देना पड़ा। सायंकाल भिक्षाके समय बाबाने कहा — आज दोपहरके समय महामन्त्रका संकीर्तन अत्यधिक मधुर और भावपूर्ण था। जीवनमें ऐसा कीर्तन कभी-कभी ही सुननेको मिलता है।

* * * * *

दूसरी कोकिला मधुर स्वर बोले

२५ अप्रैल १९७७ के प्रातः कालका समय है। श्रीगिरिराज परिसरमें बैठे हुए भक्तजन प्रतीक्षा कर रहे हैं श्रीबाबाकी। कई व्यक्तियोंकी दृष्टि बार-बार बाबाके कुटीरकी ओर उठ जाती है, यह देखनेके लिये कि बाबा आ रहे हैं अथवा नहीं। बाबा यदि परिक्रमा स्थलीमें आ जाते तो परिक्रमा आरम्भ हो जाती। इस भक्त समुदायमें विश्वविद्यालयके प्राध्यापक तथा सरकारी कार्यालयोंके कर्मचारी आदि को विशेष उतावली और उत्सुकता है। इन लोगोंको अपने कार्यपर जाना है और इन सबकी इच्छा है कि कार्यपर जानेसे पूर्व कम-से-कम परिक्रमा करते हुए बाबाके दर्शन ही मिल जायें, भले परिक्रमामें पूरे समयतक बैठनेका अवसर नहीं मिले।

थोड़ी देर बाद इस प्रतीक्षा-रत भक्त समुदायको यह सूचना मिली कि बाबाकी तबीयत ज्यादा खराब है, अतः वे अभी विश्राम कर रहे हैं। परिक्रमा कब होगी, यह अनिश्चित है। इस सूचनाके मिलते ही वह

समुदाय बिखर गया। दूकानदार, अध्यापक, कर्मचारी, चिकित्सक आदि लोग अपने-अपने कार्यपर चले गये। अन्य लोग भी अपने-अपने कार्यमें लग गये, परन्तु परिक्रमामें नित्य बैठनेका जिनका नियम था, वे सभी विराजे रहे।

तबीयतके कुछ ठीक होनेपर लगभग मध्याह्नके समय बाबा परिक्रमा करने हेतु गिरिराज परिसरमें पधारे। भक्त समुदाय भी एकत्रित हो गया। बाबाने अपनी गुदड़ी रखकर अर्चना की और उसके बाद उन्होंने श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा लगानी आरम्भ कर दी।

अब नित्यके क्रमके अनुसार सरस-हृदय कीर्तनिया श्रीहरिवल्लभजीने पद-गान आरम्भ किया। आज उपस्थित भक्तोंकी संख्या भी कम ही है और वातावरण अत्यधिक शांत है। ऐसा अनुकूल अवसर देखकर श्रीहरिवल्लभजीने गम्भीर भावोंके पदोंका गायन आरम्भ किया। आरम्भ किया रसिक शेखर स्वामी श्रीहरिदासजीके भावभरे पदसे –

सौंधे न्हाय बैठी पहिरि पट सुंदरी जहँ फुलवारी तहँ सुखवति अलकैं।
कर नख सोभा कल केस सँवारति मानो नवघन में उडगन झलकैं।।
बिबिध सिंगार लिये आगै ठाढ़ी प्रिय सखी भयौ भरु आनि रतिपति दल दलकैं।
श्रीहरिदासके स्वामी स्यामा कुंजबिहारी छबि निरखत लागत नाहीं पलकैं।।

श्रीहरिवल्लभजी आज बड़े चावके साथ गा रहे हैं। कभी पदकी पूरी पंक्तिको, कभी पंक्तिके अर्धांशको, कभी कतिपय शब्द समूहको दुहरा-दुहरा करके, कई बार आवृत्ति कर-करके गा रहे हैं। वे इतने ललित स्वरमें, ललित रीतिसे गा रहे हैं कि पदमें वर्णित छवि मनकी आँखोंके सामने स्वतः नृत्य करने लगती है। श्रीहरिवल्लभजीके अन्तरका अनुराग और कण्ठका राग क्रमशः प्रस्तुत करता जा रहा है उस दिव्य भावराज्यकी एक-एक उमंगको, एक-एक भंगिमाको, एक-एक छविको। स्नानार्थ प्रस्तुत है सुवास-पूर्ण जल। वह सुवास है नेहमयी सखियोंके हृदयका साक्षात् प्रतीक। ऐसे सुवासित जलसे प्रातः स्नान करके और स्नानोपरान्त परिधान धारण करके शृंगारोत्सुका नित्यनिकुञ्जेश्वरी श्रीश्यामाजीकी चिन्मय छवि अद्भुत है। नख-शिख रूपवती श्रीश्यामाजी विराजमान हैं पुष्पवाटिकामें। जिन पुष्पोंकी समस्त सुषमा उन अद्वितीय शोभामयीकी नख-कान्तिपर प्रणत है और जिन पुष्पोंकी समस्त सुगन्ध

उन अद्वितीय सुसौरभाके पद-पद्मोंपर समर्पित है, ऐसी अद्वितीय सुन्दरी श्रीश्यामाजी उस सदा सुन्दर पुष्पवाटिकामें बैठी अपने सिलसिले केशोंको फैलाये हुए सुखा रही हैं। उनके काले और कुञ्चित केश, उनके चिकने व चमकदार केश, उनके सुदीर्घ एवं सघन केश, उन सुन्दर केशोंका फैलाव ऐसा है, जिसपर श्याम मेघोंकी सघनता-श्यामलता बलि-बलि जाती है। उन विस्तृत केशोंके मध्य सुखाने और सुलझानेके लिये संचरण हो रहा है कोमल-कोमल, पतली-पतली, गोरी-गोरी अँगुलियोंका। उसीके साथ सर्वाकर्षिका छवि शोभित है ग्रीवाकी लटकनकी। उन काले-काले केशोंके मध्य कर-नखकी कान्तिकी झलकनकी छवि ऐसी अनोखी है मानो बादलोंकी ओटसे तारागण झाँक रहे हों। इस प्रकार छवि-पर-छवि, अनेक छवियोंके दृश्य, ज्यों-ज्यों श्रीहरिवल्लभजी भावसहित गाते जा रहे थे, त्यों-त्यों उस चिन्मय छविके अनेक दृश्य मानसिक नेत्रोंके सामने मूर्तिमान होते जा रहे थे। और इस गायनका अनोखा प्रभाव था बाबापर। तन कहीं और, मन कहीं और। तनसे दूर मन, बहुत दूर, बहुत-बहुत दूर उस चिन्मय भावराज्यमें। आज तो 'बाहर' और 'भीतर'में मेल नहीं। बाहर यही दीख रहा है कि बाबा परिक्रमा लगा रहे हैं, पर शरीरके अंगोंपर छायी हुई मस्ती संकेत कर रही है, संकेत नहीं, स्पष्ट रूपसे कह रही है कि बाबा परिक्रमा नहीं लगा रहे हैं, अपितु भावसागरमें लहरा रहे हैं। बाबाकी यह मस्ती श्रीहरिवल्लभजीको और भी मस्तानी रीतिसे गायनकी प्रेरणा दे रही है।

वातावरणमें रसमयता-मदमयता बढ़ती जा रही थी कि अचानक रंगमें भंग हो गया। सारा मजा किरकिरा हो गया। बाबाका जी मिचलाने लगा। प्रातः तबीयत तो खराब थी ही। बाबा परिक्रमा पथसे एक ओर दूर हटकर वमन करने लगे। बाबाको वमन करते देखकर श्रीगुरुचरणजी दौड़े, धूपसे बचाव करनेके लिये छाता लेकर श्रीचोपड़ाजी दौड़े, मुख-प्रक्षालनेके लिये जल भरा कमण्डलु लेकर श्रीभगतजी दौड़े। बाबाको काफी वमन हुआ। कुल्ला करके तथा मुँह धो करके बाबा परिक्रमा करनेके लिये पुनः उपस्थित हुए। उनके मुखकी श्रान्ति देखकर वातावरणमें खिन्नता छा गयी। वमन-जनित क्लान्ति उनके

मुख-मण्डलपर व्याप्त थी।

भले शरीरपर कुछ भी आ पड़े, भले इस शरीरको किसी भी प्रकारका कष्ट-क्लेश भोगना पड़े, पर परिक्रमा तो करनी ही है। इस प्रकारके दृढ़ निश्चयी बाबाने अपनी परिक्रमा पूर्ववत् आरम्भ कर दी। परिक्रमाके आरम्भ होते ही पद-गान भी आरम्भ हो गया। भले वही पद है, वही राग है, वही स्थान है और वे ही गायक हैं, पर उपस्थित लोगोंका मन यही सोच रहा था कि अब वह रंग नहीं आयेगा, जो पहले था। ऐसा सोचना स्वाभाविक था। प्रथम तो वमन-जनित क्लान्ति, द्वितीय वैशाखके मध्याह्नकी तप्त बेला और तृतीय गर्मीमें परिक्रमा करनेका श्रम, अतः ऐसा लगता था कि वह रंग नहीं जम पायेगा। वह रंग तो तिरोहित हो चुका। बाबाके कष्टको देखकर सब यही सोच रहे थे कि वह रस, वह रंग अब उमड़ेगा ही नहीं, पर हुआ इस सम्भावनाके विपरीत। कुछ क्षणके बाद ही बाबाके मुख-मण्डलकी सारी क्लान्ति, सारी श्रान्ति न जाने कहाँ तिरोहित हो गयी। ऐसी तिरोहित हो गयी, मानो कुछ हुआ ही नहीं था। बाबाके मुख-मण्डलपर अब क्लान्ति नहीं, कान्तिका राज्य था। उनके अंग-अंगमें अब श्रान्ति नहीं, स्फूर्ति थी। बाबाके शरीरकी स्फूर्ति, उनके नेत्रोंकी दमक, उनके मुखकी आभा, उनके अधरोंकी मुस्कान रह-रह करके बता रही थी कि बाबा शरीर नहीं, शरीरसे बहुत ऊपर हैं। उनके तनका अनुगामी मन नहीं, बल्कि उनके मनका अनुगामी तन है। उनके मनकी सरसता, उनके भीतरकी उमंग उनके तनके अंग-अंगसे झाँक रही थी, पोर-पोरसे झर रही थी। श्रीहरिवल्लभजीके भावमय गायनसे बाबाके भीतर भाव-सागर लहराने लगा था। उसकी रसमयी तरंगें भीतरकी सीमाको पार करके बाहर आ-आ करके तनको छू रही थीं और रससिक्त तनकी रसमयी-चेष्टाएँ-भंगिमाएँ बना रही थीं गिरिराज परिसरके सम्पूर्ण वातावरणको अत्यधिक रसमय।

वातावरणकी ऐसी रसमयता श्रीहरिवल्लभजीको अधिकाधिक प्रभावित करती जा रही थी। उन्होंने नित्यनिकुञ्जेश्वरी श्रीश्यामाजीकी रूप-माधुरीका जो पहला पद गाया था, उसके बाद तो रूप-माधुरीके और भी पद प्रस्तुत किये। इन पदोंमें था सौन्दर्य-लावण्य-माधुर्य-सदना

श्रीश्यामाजीके दिव्य रूपका अनोखा वर्णन; अरुणिम कपोलोंपर अंकित चित्रावलीका वर्णन, विविध वर्णके पुष्पोंसे मण्डित वेणीका वर्णन, सुकुमार गौर वदनपर नील परिधानका वर्णन, मणिमुक्तामय स्वर्णिम आभरणोंसे भूषित अंगांगोंका वर्णन – इस प्रकार अनोखे वर्णनोंकी सुदीर्घ श्रृंखलाका आरोह-अवरोह-लसित राग-रागिनिओंके ललित माध्यमसे मधुमय प्रस्तुतीकरण; यह सारा कुछ बड़ी विचित्र रीतिसे होता जा रहा था। इस सरस वातावरणको देखकर मनमें यही प्रश्न उठ रहा था कि आश्चर्यमें डूबें अथवा आनन्दमें?

बाबाकी तन्मयता भी अनोखी थी। वे कभी तो हाथसे ताली बजाते, कभी फुदकते हुए चलते, कभी भुजा-वल्लरियोंका प्रसारण-संकुचन करते, कभी श्रीहरिवल्लभजीके सामने खड़े होकर स्वरमें स्वर मिलाते, कभी आलाप भरते, कभी चलते-चलते कमर लचकाते। उनकी अदाएँ विचित्र-विचित्र थीं। इतना सारा कह करके भी यह सर्वांशमें सत्य है कि बाबाकी उस भावमयी, नहीं-नहीं महाभावमयी स्थितिकी क्षीणतम झाँकी भी प्रस्तुत नहीं हो पा रही है। संसारसे दूर, बहुत दूर, शरीरके सुख-दुःखसे कल्पनातीत दूर, जहाँ न शरीर है, न जगत है, न जगतके मम-परात्मक द्वन्द्व हैं; जहाँ है एक मात्र दिव्य रूपका चिन्मय आकर्षण, जहाँ है एकमात्र दिव्य लीलाका चिन्मय विलास, जहाँ है एकमात्र दिव्य महाभावोदधिका चिन्मय उद्वेलन, जहाँ है एकमात्र दिव्य आनन्दका चिन्मय उच्छलन; ऐसे लोकातीत-शब्दातीत महाभावमें निमग्न बाबाकी चेष्टाओंका चित्र यह लौकिक लेखनी शब्दोंमें भला कैसे अंकित कर पायेगी? एकदम स्पष्ट लग रहा था कि बाबा अपने उस वास्तविक स्वरूपमें (महाभाव स्वरूपमें) स्थित होकर इस पद-लालित्यका रसास्वादन कर रहे हैं। इतना ही नहीं, यह भी साफ-साफ भान हो रहा था कि वह उमड़ता हुआ आनन्द, भीतरका वह असीम-अगाध आनन्द बाहर बह पड़नेके लिये अकुला रहा है।

पद-गानकी सम्पन्नताके उपरान्त नित्य नियमके अनुसार 'कृष्ण गोविन्द गोविन्द गोपाल नन्दलाल' का कीर्तन प्रारम्भ हुआ, पर बाबाका भावोद्वेलन अभी वैसा ही है, इस टिप्पणीके स्थानपर अपितु यह कहना अधिक समीचीन होगा कि वह मस्ती बढ़ती ही जा रही है। बाबाका

फुदक-फुदक करके परिक्रमा लगाना, नृत्यमयी गतिसे थिरक-थिरक करके चलना, नेत्रोंकी पुतलियोंको नचाना, अधरोंका कभी मुस्कुराना कभी विहसना, हथेलीको कभी खोलना कभी बंद करना, गर्दनको कभी इधर कभी उधर लचकाना, कभी श्रीहरिवललभजीके स्वरमें स्वर मिलाना, कभी अलाप भरना, इस प्रकार आज सब भंगिमाएँ विचित्र-विचित्र हैं। आज एक-से-एक अनोखी-से-अनोखी चेष्टाएँ हो रही थीं।

बाबाकी ऐसी रसमयी, ऐसी महाभावमयी स्थिति देखकर श्रीहरिवल्लभजीसे नहीं रहा गया। भाव-विभोर श्रीहरिवल्लभजीका ललित कण्ठ गाने लगा पद, नाम-संकीर्तनके स्थानपर एक चिर-परिचित पद। इस समय नाम-संकीर्तन हो रहा था और पदगानका क्रम कभीका पूरा हो चुका था, फिर भी भाव-विभोर श्रीहरिवल्लभजी बाबाकी ओर लक्ष्य करके सत्यको अनावृत्त करते हुए गाने लगे। उनसे गाये बिना नहीं रहा गया और वे गाने लगे –

''साँवरे चंद गोबिन्द के रसभरी दूसरी कोकिला मधुर स्वर बोले''

इस पंक्तिका गाया जाना क्या था, पूज्य बाबाका रहा-सहा बन्धन भी छिन्न-भिन्न हो गया। बाबा झूम उठे। उनके भीतरका महाभावसागर, उनकी बाह्य चेष्टाओंमें भी खुलकर लहराने लगा। बाबाके रसप्लावित तनकी मुखर चेष्टाएँ उद्घोषित कर रही थीं, उनकी पुतलियोंका लास्य श्रीहरिवल्लभजीकी सांकेतिक उक्तिको अनुमोदित कर रही थीं – वस्तुतः साँवरे चन्द गोविन्दके रससे भरी दूसरी कोकिला, महाभाव-स्वरूपा श्यामा ही मधुर स्वर भरती हुई प्रत्यक्ष विलसित हो रही हैं।

आज बाबाका अंग-अंग झूम रहा था, भक्तोंका तन-मन झूम रहा था, परिसरका कण-कण झूम रहा था और वृक्षोंका पत्ता-पत्ता झूम रहा था। इस पावन प्रसंगको और इस पावन परिसरको पुनः पुनः प्रणाम।

अब ४ मई १९७७ के दिन किसे पता था कि दस दिन पूर्व वाले सरस प्रसंगका दिव्य दर्शन पुनः उसी पावन परिसरमें शीघ्र ही प्राप्त हो जायेगा? यह परम सौभाग्यकी बात है कि २५-४-७७ के दस दिन बाद ही ४-५-७७ को बाबाकी वैसी ही रसमयी मस्तीके

दर्शनका अवसर फिरसे सुलभ हुआ।

आज आकाशमें बादल छाये हुए हैं। बादल सघन हैं। समीर तीव्र नहीं है, पर मन्द भी नहीं है। कहीं वर्षा हो चुकी है, अतः पवनमें पर्याप्त शीतलता है। ठण्डी-ठण्डी पुरवैयाके झोंकोंमें वाटिकाके वृक्ष झूम रहे हैं और लताएँ नृत्य कर रही हैं। कोयलकी कूक, मधुर कूक इस सुहावने मौसमको और भी अधिक लुभावनी बना रही है। भले ये दिन गर्मीके हैं और मास ज्येष्ठका है, पर इस जेठ मासमें ही सावनका समा बँधा हुआ है। उद्दीपनकी ऐसी सामग्री प्रस्तुत हो, ऐसा लुभावना वातावरण उपस्थित हो और श्रीहरिवल्लभजी इससे असंपृक्त- अप्रभावित रह जायें, यह कैसे सम्भव है? ज्यों ही बाबाने श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा प्रारम्भ की, श्रीहरिवल्लभजीने मल्हारकी तान छेड़ दी। उन्होंने मल्हार रागमें मौसमके अनुकूल ही पद उठाया। उस दिनकी तरह आज भी श्रीहरिवल्लभजीने सर्व प्रथम गाया रसिक-शेखर स्वामी श्रीहरिदासजीका भावभरा पद, जिसमें वर्षा ऋतुका मनोहर वर्णन है —

ऐसी रितु सदा सर्वदा जो रहै बोलत मोरनि।
नीके बादर नीके धनुष चहुँ दिस नीकौ श्रीवृन्दाबन आछी
नीकी मेघनि की घोरनि॥
आछी नीकी भूमि हरी हरी आछी नीकी बूढ़निकी
रेंगनि काम किरोरनि।
श्रीहरिदासके स्वामी स्यामाके मिलि गावत राग
मलार जम्यौ किसोर किसोरनि॥

क्या ही सुन्दर हो, यदि ऐसी सुन्दर और सुहावनी ऋतु सदा-सर्वदा बनी रहें, जहाँ मयूर मेघको देख-देख करके नृत्य कर रहे हों और मेघोंकी गर्जनसे स्वर मिलाकर वे कुहक रहे हों। एक ओर ऊपर नभमें सघन श्यामल मेघोंके मध्य सतरंगी धनुषकी वह मनभावनी शोभा है तो दूसरी ओर नीचे पृथ्वीपर हरी-हरी दूब और हरे-हरे पत्तोंसे आच्छादित भूमिकी यह नयनाकर्षिणी सुषमा है। अम्बरकी मनभावनी शोभा और अवनीकी नयनाकर्षिणी सुषमा उन नित्य किशोरी-किशोरमें किलोलकी कामना उद्दीप्त कर देती है और वे नित्य युगल उमंगमें भरकर मल्हार राग अलापने लगते हैं।

श्रीहरिवल्लभजीके पदगायनसे रंग जमता गया, अपितु रंग गहरा होता गया। कभी-कभी यह भ्रम होता कि हम लोग इस वाटिकामें हैं अथवा उस वृन्दावनमें हैं? ज्यों-ज्यों श्रीहरिवल्लभजी इस पदको ललित स्वरमें गाते, त्यों-त्यों ऐसा लगता मानो वृन्दावनके श्रावण मासकी वह मनोहारिणी हरीतिमा और हरीतिमा-विहारी वे नित्य युगल इस वाटिकाके परिसरमें ही अवतरित हो गये हैं। यह असम्भव-सी बात आज सम्भव कैसे लग रही है? क्या इस अवतरणका श्रेय स्वामी श्रीहरिदासजीके भावमय पदको दें? अथवा इस अवतरणका हेतु श्रीहरिवल्लभजीका ललित गायन ही है? ये बातें कुछ अंशतक सत्य कही जा सकती हैं, पर असली हेतु तो कुछ और ही है और वह है बाबाके भीतरका 'दिव्य वृन्दावन'। बाबाका वह 'दिव्य वृन्दावन' ही परिसरके वातावरणको दिव्यता प्रदान कर रहा है और इस दिव्यतासे प्रभावित परिसर-वातावरण उपस्थित भक्त-समुदायको दिव्य भावोंसे भावित कर रहा है।

श्रीहरिवल्लभजीके गायनके संग-संग बाबा अपनी भावमयी भंगिमाओंके साथ परिक्रमा भी करते चले जा रहे हैं। परिक्रमा करते-करते कभी हाथका फैलाना, कभी हथेलीसे ताली बजाना, कभी मृंदगको बजानेकी-सी चेष्टा करना, कभी स्वरमें स्वर मिलाकर आलाप लेना, कभी अँगुलियोंको नचाना, ये सभी चेष्टाएँ बाबाकी रसमयताकी झाँकी प्रस्तुत कर रही हैं और उनकी रसमयता सारे परिसरको रसमय बना रही है।

अवसरके अनुकूल श्रीहरिवल्लभजीने तीन-चार पद गाये, पर अन्तिम पद गाया —

कदम तर ठाढ़े हैं पिय प्यारी।
मोहन के सिर मुकुट बिराजत इत लहरिया की सारी।।
मंद मंद बरसत चहुँ दिसि ते चमकत बीजु छटा री।
मुरली बजावत श्रीनँदनंदन गावत राग मल्हारी।।
लेत तान हरि के सँग राधा रंग होत अति भारी।
श्री विट्ठल गिरिधर को रिझवत श्रीवृषभानु दुलारी।।

इस पदके गायनसे इतना भावोद्रेक हुआ कि पूज्य बाबाको

अपनी सुधिकी विस्मृति-सी हो गयी। प्रथम तो पदमें वर्णित भावोंका लालित्य और फिर गायनमें स्वरके आरोहावरोहका लालित्य, इन दोनों लालित्यने परिक्रमामें बाबाकी गतिको, उनके चरणोंके उत्थापन-संस्थापनको लास्यमय बना दिया। ऐसा भान हो रहा था, मानो यह परिक्रमा-स्थली नहीं, रास-स्थली है। इस पदको गाते-गाते जब श्रीहरिवल्लभजीने पाँचवीं पंक्ति *'लेत तान हरि के संग राधा, रंग होत अति भारी'* यह पंक्ति गायी, उस समय बाबा देखते-देखते, इशारे-ही-इशारेमें एक बड़ा गम्भीर और भावपूर्ण संकेत ढुलका गये। जब श्रीहरिवल्लभजी आलाप लेते तो संग-संग बाबा भी आलाप लेते ही थे। बाबा श्रीहरिवल्लभजीके साथ रह-रह करके तानमें तान मिलाते ही थे। ज्यों ही श्रीहरिवल्लभजीने पाँचवीं पंक्ति *'लेत तान हरि के संग राधा'* गायी, त्यों ही बाबाने अपने चितवनकी कोरसे आभास दे दिया कि समक्ष स्थित 'हरि'के संग यह 'महाभाव-स्वरूपा राधा' तान ले रही है। बाबाके महाभावमय नयनोंके रसमय कगारोंसे इस संकेतके ढुलकते ही, जो अति भारी रंगका प्रवाह बह चला, रंगके उस उमड़नका आस्वादन वे ही कर पाये, जो उस क्षण उस भारी रंगमें लहरा रहे थे। नयनोंका वह नर्तन, संकेतकी वह ढुलकन, रंगकी वह उमड़न, भावुकोंका वह आस्वादन, यह सब एक-से-एक बढ़कर था, एक-से-एक अनोखा था। कौन कहेगा कि बाबा संन्यासी हैं? अथवा यों कहना अधिक उपयुक्त होगा कि बाबाने संन्यासके प्रतीक स्वरूप गेरुए रंगका गैरिक वस्त्र इसलिये धारणकर रखा है कि उनके जीवनके अन्तरंग रंगपर एक आवरण पड़ा रहे और उनके जीवनका वास्तविक स्वरूप जगतकी दृष्टिसे ओझल रहे।

जब इस पदके गायनको विराम देनेका क्षण आया, उस समय तो और भी गजब हो गया। सारे पदको गा चुकनेपर श्रीहरिवल्लभजीने पदकी आरम्भिक दो पंक्तियाँ समाप्तिके रूपमें गाया। वे (श्रीहरिवल्लभजी) भी इस रंगके प्रबल प्रवाहमें लहरा रहे थे और लहर-लहर करके गा रहे थे। इस पदकी *'मोहन के सिर मुकुट बिराजत, इत लहरिया की सारी'* पंक्तिको श्रीहरिवल्लभजीने ज्यों ही गाया और 'इत लहरिया की सारी' यह पंक्ति कर्ण-कुहरोंको गुञ्जित

करती हुई ज्यों ही बाबाके दिव्य मानसमें ध्वनित हुई; उस ध्वनिकी प्रतिध्वनि बाबाकी दोनों अँगुलियोंपर छा गयी। बाबाने अपने बायें हाथकी अँगुलियोंसे अपने गैरिक वस्त्रके अंचलका एक छोर पकड़ा और दूसरा छोर पकड़ा अपने दाहिने हाथकी अँगुलियोंसे। दोनों हाथोंकी अँगुलियोंमें आँचलके दोनों छोरको पकड़ना, अँगुलियोंसे आँचलका तानना, तने आँचलमें अपने आप कुछ लहरियोंका पड़ जाना, इसके बाद आँचलको कुछ हिला करके, ग्रीवाको कुछ लटका करके, नेत्रोंको कुछ बन्द करके और कुछ मन्द मुस्कुरा करके देखना – कितना भावपूर्ण वह दृश्य था, कितनी रसमयी वह झाँकी थी? 'इत लहरिया की सारी' का भाव आँखोंके सामने एकदम साकार हो उठा था। 'लहरिया की सारी' से सुशोभित महाभावमयी श्यामाजीकी रसमयी झाँकी 'इत' परिसरमें प्रत्यक्ष थी। श्रीहरिवल्लभजीसे नहीं रहा गया और 'इत लहरिया की सारी' के स्थानपर वे गा बैठे, बिके-बिके हृदयसे, बहके-बहके नयनोंसे, बलि-बलि स्वरसे वे गा बैठे – 'इत अरुन रँग की सारी'।

हे विधाता! तुमसे यही याचना है, 'ए हो बिधिना तो सौं अँचरा पसार माँगौ', बस, तू यही कामना पूर्ण कर दे – 'इत अरुन रँग की सारी' की अनोखी-अद्‌भुत छवि सदैव तन-मन-नयनमें रमी रहे।

* * * * *

भावुक-भक्त श्रीकृष्णचन्द्रजी श्रीवास्तव

१४-७-१९७६ के दिन भावुक भक्त श्रीकृष्णचन्द्रजी श्रीवास्तवके दर्शनका सौभाग्य मिला। श्रीवास्तवजीके जीवनकी एक भाव-भरित फलक प्रस्तुत करनेके पूर्व उनके परम श्रद्धेय संत श्रीरघुजीका संक्षिप्त परिचय देना आवश्यक लग रहा है। संत श्रीरघुजीका नाम था श्रीठाकुरदासजी उदेशी। जन्म संवत् १९६४ माघ मासमें रानीपुर, सिन्धमें हुआ था। इनकी जाति भाटिया थी। इनके पूर्वज दस-बारह पीढ़ी पहले जैसलमेरसे उठकर सिन्धमें आ बसे थे। आपके पिताका नाम श्रीवल्लभदासजी उदेशी है, जो कराचीमें रहते थे। स्त्रीका देहान्त पचीस वर्षकी आयुमें हो गया था। माता-पिताके बहुत आग्रह करनेपर भी आपने पुनः विवाह नहीं किया। कराचीमें इण्टरमीडियेट तक पढ़नेके बाद तीन वर्षतक बम्बईमें पढ़े और वहाँ

बी.कॉम. की परीक्षा देकर कराची लौट गये। बम्बईमें किसी महापुरुषके संगसे आप भगवान श्रीरामकी उपासना करने लगे। उपासनाकी बड़ी लगन लग गयी। भगवान श्रीरामके ध्यान और नाम स्मरणका अभ्यास उत्तरोत्तर बढ़ता गया। बोलना-चालना कम हो गया, धीरे-धीरे भगवानके नाम और गुण सुनकर हृदय द्रवित होने लगा। तदनन्तर किसी मित्रसे कुछ सुनकर आप गोरखपुर आ गये। यहाँ कुछ दिन रहकर फिर कराची लौटे। पिताजीने काम-धंधेकी बात की, पर इनका मन दूसरी ओर जाता ही न था। इसलिये उन्होंने अखण्ड मौन धारण कर लिया, जो जीवनके अन्ततक रहा। इसके बाद फिर वे गोरखपुर चले आये। यहाँसे बीचमें कुछ दिनोंमें लिये क्रमशः अयोध्या, चित्रकूट और प्रयाग गये थे। फिर अन्ततक यहीं रहे और निरन्तर विरह भावसे भावित रहे।

श्रीरघुजीकी विरह-दशा तो अति विचित्र थी। स्तम्भ, कम्प, अश्रु, स्वरभंग, वैवर्ण्य, पुलक आदि प्रेम-लक्षणोंका मानो श्रीरघुजीसे स्थायी सम्बन्ध हो गया था। आँसू तो उनके सूखते ही नहीं थे। बाबूजीने किसी-किसी समय बीस-बीस घंटेतक उनको रोते ही देखा है। उनकी नासिकाके दोनों ओरके कपोलोंपर अश्रु-प्रवाहके निशान पड़ गये थे। अविरल अश्रु-प्रवाहके कारण प्रवाह-पथ लगभग गल-से गये थे। वे सदा भावावेशकी-सी अवस्थामें ही रहते थे। सत्संगकी बात तो वे सुनते थे, परंतु अन्य कोई भी चर्चा पास बैठे हुए भी नहीं सुनते थे। वे किसी अन्य ही राज्यमें विचरण करते थे।

वे भगवान श्रीरामके अनन्य उपासक थे और भगवान श्रीरामके एक चित्रपटकी पूजा करते थे। वह चित्र उनके लिये बहुमूल्य वस्तु था। वे इसमें साक्षात् भगवानको देखते थे। इनका दर्शन वे किसीको नहीं कराते थे। कङ्गालके धनकी भाँति सदा उन्हें छिपाये रखते थे। अनुनय-विनय करनेके बाद भी अपने श्रीविग्रहका दर्शन रघुजी नहीं कराते थे। कई बार बाबूजीद्वारा अनुरोध किये जानेपर एक बार उन्हें रघुजी अपने कमरेमें ले गये, अपने उपास्य चित्रपटकी केवल तनिक झाँकी करायी और तब इतना ही बोले – 'मैं तो प्रेम दिवानी मेरो दर्द न जाने कोय'। दिन-रात 'रघु' नामका उच्चारण मन और वाणीसे करते थे, इसलिये उनका नाम 'रघुजी' पड़ गया।

उन्होंने रामनवमीका उत्सव मनाया, एकादशीका निर्जल व्रत किया। रातको नियमानुसार स्वाध्याय करते रहे। एक साधकको बुलाकर जटायुकृत अन्तकालकी स्तुति दो बार सुनी और द्वादशीके प्रातःकाल प्रयाण कर गये। शरीरत्यागके पहले दिनतक उन्होंने स्वयं कुँएसे जल निकालकर अपनी नित्य क्रिया की। न किसीसे सेवा करवायी, न प्रणाम कराया। बड़े ही सच्चे भक्त थे।

१४-७-१९७६ के दिन जिन भावुक-भक्तके दर्शन हुए, वे श्रीकृष्णचन्द्रजी श्रीवास्तव इन्हीं श्रीरघुजीके भक्त थे। श्रीरघुजीके प्रति वे गुरु-भाव रखते थे। बाबाने ऐसा बताया है कि जब श्रीरघुजीने अपनी देहका विसर्जन कर दिया तो कुछ समय बाद उन्होंने श्रीश्रीवास्तवजीको स्वप्नमें दर्शन देकर कहा कि श्रीरघुनाथजीके जिस श्रीचित्रपटका मैं पूजन किया करता था, वह तुम श्रीभाईजीसे माँग लाओ। बाबूजीने उनको दे भी दिया।

श्रीश्रीवास्तवजीने अनेक जिलोंमें जिलान्यायाधीशके पद पर कार्य किया है। वहाँसे फिर वे दिल्ली स्थित सुप्रीमकोर्टमें चले गये। सुप्रीमकोर्टमें कार्य करते हुए आप रिटायर हो गये। काफी वृद्ध हो जानेसे वे गठिया और कुष्ठसे पीड़ित थे। उनके हाथोंकी सभी अँगुलियाँ टेढ़े-मेढ़े ढंगसे मुड़-मुड़ करके बड़ी बुरी रीतिसे विकृत हो गयी थीं। दोनो पैरोंकी सभी अँगुलियोंपर पट्टी बँधी थी, जो घाव-ग्रस्त होनेकी सूचना दे रही थी। आँखोंसे कम दीखता था, कानोंसे बहुत कम सुनता था। शरीरसे हिलना-डुलना-चलना-फिरना सम्भव नहीं। उनकी विकलाङ्गता और रुग्णताको देखकर कोई सोच भी नहीं सकता कि ऐसे आवरणके भीतर एक महान संतात्माका निवास है।

बाबूजीके पारिवारिक चिकित्सक थे डा० श्रीचक्रवर्ती। श्रीश्रीवास्तवजीने डा. चक्रवर्तीके सामने बाबाके दर्शनकी अभिलाषा व्यक्त की। बहुत पहले वे बाबूजीके साथ बाबाको देख चुके थे, मिल चुके थे। डा० श्रीचक्रवर्तीने बाबासे मिलकर दिन निश्चित कर लिया। बाबाने कार भिजवायी, साथमें दो व्यक्ति भेजे, जो उन्हें उठाकर कारमें बैठा सकें। उनके लड़केने श्रीश्रीवास्तवजीसे कहा – बाबाजीके व्यक्ति आपको लिवा लानेके लिये आये हैं।

इतना सुनते ही उनको रोमाञ्च हो आया। उनके नेत्रोंसे आँसू बह

चले, बाबाकी जय-जयकार करने लगे और अपने बेटेसे कहा —बेटा! इन भक्तोंकी चरण-रज मेरे मस्तकपर लगा दो।

श्रीश्रीवास्तवजीको कारमें बैठाकर गीतावाटिका लाया गया। कारसे उतार करके, फिर कुर्सी पर बैठाकरके उनको बाबातक ले जाया गया। बाबाके पास पहुँचनेके बाद उनसे कहा गया —बाबा आपके सामने हैं।

इतना सुनते ही 'बाबा, बाबा, बाबा, बाबा' जोर-जोरसे कहकर रोने लगे। फिर अपने उपास्य संतका नाम ले लेकर, 'रघु, रघु, रघु, रघु' कह-कहकर जिस प्रकारसे अपने कपोल गीले कर लिये, वह एक विचित्र दशा थी। बाबाने उनको अपने गलेसे चिपका लिया। वह परस्परालिङ्गन भी एक अनोखा दृश्य था। दोनों परस्पर आलिङ्गन किये बहुत देर तक खड़े रहे। भाव-सरिताका भाव-सिन्धुसे मिलन, इस सम्मिलनको देखकर कई लोगोंका मन द्रवित होने लग गया। 'मनहुँ प्रेमु परमारथु दोऊ। मिलत धरें तन कह सबु कोऊ।।' वे अपने साथ पुष्प-माला लाये थे। बाबाको उन्होंने पुष्प-माला पहनायी, फिर कपूरसे आरती उतारी, फिर भावभरे स्वरमें अनेक श्लोकोंके द्वारा बाबाकी स्तुति-वन्दना करते रहे। फिर उन्होंने अपने बेटेसे कहा —बेटा! बाबाकी चरणरज मेरे मस्तकपर लगा दो।

बाबा इस प्रसङ्गको टालते रहे। कई ढङ्गसे निवारण करते रहे, पर उनकी विह्वलता सीमातीत थी। बाबाको ही झुकना पड़ा और अब इतना झुक गये कि उन्होंने कहा —आपका बेटा क्या लगायेगा, मैं ही लगा देता हूँ।

बाबाने अपनी हथेली अपने तलवोंपर फेरकर उनके मस्तपर लगा दी। श्रीश्रीवास्तवजीकी बड़ी इच्छा थी कि बाबाके श्रीचरणोंका स्पर्श करूँ, पर वे लाचार थे। श्रीश्रीवास्तवजी द्वारा निवेदन किये जानेपर बाबाने अपने चरणोंको उठाकर स्वयं ही उनकी अँगुलियोंसे स्पर्श करा दिया। फिर भावभरी आध्यात्मिक चर्चा परस्परमें चलती रही। श्रीश्रीवास्तवजीका श्रीरघुजीके प्रति समर्पण-भाव वस्तुतः आदर्श है। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि जिस श्रद्धेय संतके प्रति कोई साधक समर्पित होता है, उस श्रद्धेय संतके तिरोधानके बाद साधककी श्रद्धा शिथिल होने लगती है और कभी-कभी तो श्रद्धापर घना आवरण आ जाता है। श्रीरघुजीको गये लगभग चालीस वर्ष हो गये, पर उन श्रीरघुजीके प्रति श्रीश्रीवास्तवजीकी श्रद्धा,

उनका समर्पण अनोखा था। वे रह-रहकरके श्रीरघुजीको स्मरण करते थे और रोते थे। बाबाने उनको आश्वासन दिया – आप विश्वास करें, आपको अवध-वास अवश्य मिलेगा। आपको लिवा जानेके लिये श्रीरघुजी और उनके आराध्य श्रीरघुनाथजी आयेंगे।

बाबाने उनकी आर्थिक स्थितिके बारेमें उनसे पूछा। हालत तो गड़बड़ थी ही। कभी पापपूर्ण पैसा तो कमाया नहीं। इसका उन्हें न कोई खेद था और न कोई कष्ट। वे कह रहे थे – बाबा! अब तो मैं हर दृष्टिसे लाचार हूँ। तनसे लाचार, धनसे लाचार और अब जगतके लिये बेकार, सर्वथा बेकार। यह भगवान्‌की बहुत बड़ी कृपा। अब भजन खूब होता है। आँख-कान-हाथ-पैर, शरीरके सभी अङ्ग बेकार हो चले हैं, अतः कौन मेरे पास आये? यह विकलाङ्गता तो मेरे लिये वरदान बन गयी है। इस विकलाङ्गताको मैं प्रभुकी बड़ी कृपा मानता हूँ। किसीके नहीं आनेसे पूर्ण एकान्त मिलता है और उस एकान्तमें अब खूब भजन होता है।

उनके उद्‌गारोंको सुन-सुनकर सभीके मस्तक नत हो गये। उनका प्रभु- विश्वास, उनका भजन-उत्साह, उनकी संत-परायणता, उनकी आस्तिक मति आदिकी कितनी सराहना की जाये? 'जो कुछ कहिअ थोर सबु तासू।'

गीता वाटिकासे जाते समय तो उनका हृदय बह चला। करुण कण्ठसे भर्राये स्वरमें अपने बेटेसे कहा – बेटा! पहले तो तू इनके चरणोंमें प्रणाम कर, फिर इनकी चरणरज मेरे मस्तकपर लगा दे।

श्रीश्रीवास्तवजीकी भावमयताने सबको भावमें डुबा दिया। बाबाने बड़ी भावभीनी बिदाई दी। जानेके पूर्व श्रीश्रीवास्तवजीने समाधिको प्रणाम किया, फिर वही भाव-विभोरता उनके मुखपर वाणीमें उभर आयी और उन्होंने कहा – समाधिको मेरा बार-बार प्रणाम।

अब उन्होंने रोदनभरे स्वरमें रट लगा दी – बगीचेके आदमी-आदमीको प्रणाम। बगीचेके पेड़-पेड़को प्रणाम। बगीचेके एक-एक कणको प्रणाम। बगीचेकी एक-एक ईंटको प्रणाम। बगीचेके एक-एक जीवको प्रणाम। बार-बार प्रणाम। बार-बार प्रणाम।

उनके जानेके बाद बाबा अपने भावमें डूबे रहे। शहरके कुछ लोग उनके पास कुछ बात करने आये थे, परन्तु उनकी जागतिक चर्चाको

बाबाका मन- मस्तिष्क पकड़ नहीं पा रहा था। अन्तमें बात हो ही नहीं पायी। जो लोग श्रीश्रीवास्तवजीको लानेके लिये तथा पहुँचानेके लिये गये थे, बाबा उनके सौभाग्यकी बार-बार सराहना कर रहे थे। श्रीश्रीवास्तवजीके बारेमें बाबाने कहा – ऐसे संत-निष्ठ भक्तके दर्शन आजकल कहाँ हो पाते हैं? मैं तो इनकी संत- निष्ठाके समक्ष बार-बार विनत हूँ।

वस्तुतः जहाँ संत निवास करते हैं, वहाँ उनकी उपस्थितिसे एक ऐसी सुवास परिव्याप्त हो जाती है, जो तन-मनको अनिर्वचनीय सुख एवं अलौकिक शीतलता प्रदान करती है।

दिनांक १४-७-७६ को जब वे आये थे, तब वे स्वयंकी प्रेरणासे बाबाके दर्शनकी उत्कट लालसा लिये हुए आये थे, इस बार तो बाबाने ही उनको बुलाया था। पिछली बार बाबाने उनकी आर्थिक स्थितिके बारेमें जिज्ञासा व्यक्त की थी। वे ऋण-ग्रस्त थे और वे रुपया चुकाना चाहते थे। वे गोरखपुरमें लगभग पाँच-छः माससे थे। उनका घर इलाहाबादमें था। गोरखपुरमें उनकी कुछ पैतृक सम्पत्ति थी, उसीको बेचकर वे अपना देय चुका देना चाहते थे, परन्तु कुछ लोग अड़चन डाल रहे थे। इन सब बातोंकी जानकारी प्राप्त करनेके लिये बाबाने उनको बुलाया था, जिससे कि बाबा उनके कार्यमें कुछ सहयोग दिलवा दें।

श्रीश्रीवास्तवजीके आनेपर बाबाकी ओरसे श्रीजजसाहब (श्रीरामप्रसादजी दीक्षित) ने बातचीत की। लगभग सात-आठ दिनसे बाबाकी तबीयत बहुत ही खराब चल रही थी। कंठके बगलमें कानके पास ऐसी तीक्ष्ण वेदना थी मानो रह-रहकर तीखी सुई चुभ रही हो। श्रीश्रीवास्तवजीको बहुत कम सुनता है और बाबा अपनी रुग्णता एवं दुर्बलताके कारण उच्च स्वरसे बोल नहीं सकते, अतः श्रीजजसाहबने आज बातचीत की।

ज्यों ही श्रीश्रीवास्तवजीको कुर्सीपर बैठा करके लाया गया, कुर्सीपर बैठे-बैठे ही उन्होंने बाबाको प्रणाम किया। फिर श्रीश्रीवास्तवजीने पूछा – यहाँ ये लोग क्यों इकट्ठे हैं? क्या कीर्तनका कार्यक्रम है? चलिये, कीर्तन किया जाये।

श्रीश्रीवास्तवजीको आज बुलानेका विशेष उद्देश्य था, अतः

विषयान्तरको बचानेके लिये श्रीजजसाहबने प्रयोजनकी बात आरम्भ कर दी। थोड़ी देर बात होनेके बाद श्रीश्रीवास्तवजीने अपने कई दिव्य अनुभव सुनाये। फिर वे श्रीजजसाहबसे कहने लगे – आप तो बाबासे मेरी ओरसे यही प्रार्थना कर दें कि मेरे द्वारा निरन्तर भजन हो। भगवान् श्रीसीतारामजीमें अविचल भक्ति हो। यह सांसारिक झंझट मेरे लिये कोई झंझट नहीं है। बस, किसी प्रकार श्रीरघुनाथजीमें रति हो जाये।

बाबा अपने बिस्तरपर आधे लेटे हुए श्रीश्रीवास्तवजीके वे सब अनुभव सुन रहे थे तथा श्रीजजसाहबके माध्यमसे किया गया निवेदन भी सुन रहे थे। उनकी प्रार्थनाकी सच्चाईने बाबाको अपनी ओर खींच लिया। भले वे सांसारिक परिस्थितिमें उलझे हैं, पर उस उलझनसे क्या? उस उलझनसे उनकी उपरामता तथा प्रार्थनाकी सच्चाईने बाबाको बोलनेके लिये बाध्य कर दिया। बाबाकी अस्वस्थता बाबाके लिये नगण्य हो गयी। श्रीश्रीवास्तवजीके पास आकर बाबाने कहा – बस, आप तो सदा यही कहते रहें, रटते रहें कि 'रामचंद्र चंद्र तू चकोर मोहिं कीजै'।

पंक्तिके शब्दोंको श्रीश्रीवास्तवजी ठीक प्रकारसे सुन नहीं पाये। अतः बाबाने जोर-जोरसे बोलकर एक-एक शब्द सुनाया तथा याद करवाया। श्रीश्रीवास्तवजीने कहा – बाबा! अब तो ऐसी कृपा करें कि मन जगतमें न जाये, सदा श्रीसीतारामजीमें लगा रहे।

जोरि पानि बर माँगहु एहू। सीय राम पद सहज सनेहू।।
बिषय बारि मन मीन भिन्न नहिं होत कबहुँ पल एक।
ताते बिपति सहौं अति दारुन जनमत जोनि अनेक।।
कृपा डोरि बंसी पद अंकुस परम प्रेम मृदु चारो।
एहि बिधि बेधि हरहुँ दुख मेरो, कौतुक राम तिहारो।।

बस, बाबा! अब आप ऐसी ही कृपा कर दें।

तब बाबा उनके कानके पास अपना मुँह लगाकर ऊँचे स्वरसे कहने लगे – क्या आपको विश्वास नहीं मेरी बातपर, जो आपको पिछली बार कही थी? उससे बड़ी कृपा और क्या हो सकती है? आप विश्वास करें, चाहे सूर्य अपने पथसे टल जाये, चाहे चन्द्रमा अपने पथसे टल जाये, कलके बजाय आज टल जाये, पर मेरी बात मिथ्या नहीं हो

सकती। आपकी मृत्युके समय भगवान श्रीरामचन्द्रजी आपको लेने अवश्य आयेंगे।

श्रीश्रीवास्तवजीके इस सौभाग्यको देखकर हम सभी आश्चर्य करने लगे। पर आश्चर्य भी क्या किया जाये? जिनने विरही संत श्रीरघुजी जैसे सच्चे भगवत्प्रेमीको अपने जीवनका सर्वस्व माना, जिनने भगवच्चरणारविन्दवत् संत-चरणोंकी आजीवन सेवा की, उन पूत आत्माको ऐसा आशीर्वाद मिले तो क्या आश्चर्य? यह आशीर्वाद तो पिछली बार ही मिल चुका था, अब तो उसपर और भी पक्की मोहर लग गयी। ऐसे आशीर्वादको पाकर श्रीश्रीवास्तवजीका हृदय गद्‌गद हो गया। उन्होंने भाव-भरे हृदयसे पूर्वकी भाँति ही बाबाको पुष्प माला पहनायी, आरती उतारी, धूप प्रदर्शित की तथा श्लोकोंसे वन्दना की। इसके बाद वे बाबाके चरणोदकके लिये आग्रह करने लगे। वे अपने साथ जल-पात्र लाये थे। बाबाने कहा – आप चरणोदक क्या लेंगे? पिछली बार ही आपके रोम-रोमको ऐसा अमृतोदक पिला दिया है कि फिर-फिर पीनेकी जरूरत ही नहीं।

श्रीश्रीवास्तवजीने अपने आग्रहको छोड़ दिया। अब वे घर वापस जानेवाले हैं। उन्होंने पूछा – जिस कटोरीसे कपूरकी आरती उतारी थी, वह कटोरी कहाँ है?

श्रीजजसाहबने प्रश्न किया – क्यों?

श्रीश्रीवास्तवजीने श्रद्धाभरे स्वरमें कहा – उसमें काजल है। बाबाको की गयी आरतीका काजल है। वह मैं लगाऊँगा।

उनकी इस संत-निष्ठाको देखकर हमलोग मन-ही-मन उनकी सराहना करने लगे। बाबा बोले तो धीरेसे, पर हमारे कानोंमें भनक पड़ गयी – इसे भावमयता कहते हैं।

श्रीश्रीवास्तवजीने वह काजल अपनी पंगु अँगुलीसे अपनी आँखोंमें आँजा और कहने लगे –

जथा सुअंजन अंजि दृग साधक सिद्ध सुजान।
कौतुक देखत सैल बन भूतल भूरि निधान।।

फिर एक विनोदकी बात हुई। श्रीश्रीवास्तवजी श्रीजजसाहबसे

कहने लगे – देखिये, अब इस काजलकी एक बिंदी अपने ललाटपर भी लगा रहा हूँ। बाबासे इतनी बड़ी सम्पत्ति मिली है, कोई नजर न लगा दे।

इस पर सभी हँस पड़े। बाबाने उनसे फिर कहा – आप तो बार-बार यही कहें कि 'रामचंद्र चंद्र तू, चकोर मोहिं कीजै।' यह पंक्ति गोस्वामी तुलसीदासजीकी है।

श्रीश्रीवास्तवजीने इस पंक्तिको कई बार कहा। कहा ही नहीं, उच्च स्वरसे इस पंक्तिका कीर्तन करने लगे।

बाबाके पाससे विदा होकर उन्होंने समाधिके पास चलनेकी इच्छा व्यक्त की। कुर्सीपर बैठे-बैठे उनको समाधिके पास लाया गया। उन्होंने समाधिकी आरती उतारी, धूप खेया, पुष्प-माला अर्पित की तथा दो परिक्रमा दी। इसी प्रकार जिस कमरेमें विरही संत श्रीरघुजी रहा करते थे, उस कमरेका दर्शन किया, उसकी आरती उतारी, धूप खेया और उसे प्रणाम किया।

उनके जानेके पहले मैंने उनसे पूछा – आपको श्रीरघुजीके सर्व प्रथम दर्शन कब हुए थे?

उन्होंने बताया – मैं देवरिया शहरमें काम करता था। श्रीभाईजी (रस-घन-मूर्ति पूज्य श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) का संदेश मेरे पास पहुँचा कि श्रीरघुजी गोरखपुरसे चित्रकूट जा रहे हैं, रेलगाड़ी देवरिया होते हुए जायेगी, अतः आप चाहें तो रेलगाड़ीपर उनका दर्शन कर लें। मैं स्टेशन गया तथा आग्रह करके रेलगाड़ीसे उतार कर अपने घर ले आया। देवरिया उतरनेका कोई कार्यक्रम नहीं था, उन्होंने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली, यह मेरा सौभाग्य था।

मैंनें फिर पूछा – श्रीरघुजी द्वारा पूजित श्रीचित्रपटकी पूजा आजकल कौन करता है?

उन्होंने कहा – अब तो घरपर बहू ही करती हैं। घरपर वही है। पूजा घरमें तो अनेक विग्रहोंकी पूजा होती है।

मैंने पूछा – यह चित्रपट आपको कैसे मिला?

उन्होंने बताया – मैं वाराणसीमें काम करता था। तब श्रीभाईजी राजस्थानके रतनगढ़ शहरमें रह रहे थे। उधर श्रीरघुजीने स्वप्नमें उनसे निवेदन किया कि श्रीरामचतुष्टयका चित्र मेरे पास पहुँच दिया जाये।

इधर मुझे स्वप्न हुआ कि वे कम्बलपर बैठे हुए हैं, आँखोंसे अविरल अश्रुधार बह रही है और कह रहे हैं कि श्रीरामचतुष्टयका श्रीचित्रपट श्रीभाईजीके पाससे मँगाकर अपनी पूजामें रख लो। ज्यों ही श्रीभाईजीको स्वप्न हुआ, उन्होंने एक विशेष व्यक्तिके हाथ वह चित्रपट तुरंत मेरे पास वाराणसी भेज दिया। हम दोनों पूजा किया करते थे, पर अब पत्नी तो रही नहीं तथा मैं पंगु हो गया। घरमें पूजा बच्चे सब किया करते हैं।

* * * * *

लकवा का झटका

सन् १९७७ की २० अगस्तको शनिवार था। श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमाको नियमके अनुसार शनिवारके दिन बाबाको जतीपुरासे राधाकुण्ड तककी पाँच मीलकी परिक्रमा करनी थी। इन दिनों शारीरिक दुर्बलताके कारण बाबाको पाँच मीलकी परिक्रमाके दो भाग करने पड़ते थे। तीन मील सबेरे तथा शेष दो मील सूर्यास्तके बाद, इस प्रकार बाबा पाँच मीलकी परिक्रमा पूरी करते थे।

२० अगस्त शनिवारकी रातमें बाबाने श्रीगिरिराजजीकी शेष दो मीलकी परिक्रमा लगानी आरम्भ की। तीन मीलकी परिक्रमा बाबा प्रातःकाल कर चुके थे। शेष दो मीलकी परिक्रमाको रात्रिके समय सम्पन्न कर रहे थे। परिक्रमा लगाते-लगाते बाबाको ऐसा लगा कि दाहिना पैर शून्यतासे ग्रस्त होता जा रहा है। शून्यताकी तीव्र अनुभूति होनेके बाद भी अपने आत्मबलके सहारे बाबा परिक्रमा पूर्ववत् देते रहे। दो फेरी और लगा चुकनेके बाद उनको ऐसा लगा मानो कमरसे नीचेका भाग शरीरसे अलग हो गया है और कमरसे ऊपरका भाग नीचे पृथ्वीकी ओर बलात् खिंचता चला जा रहा है। ठीक आगे दो कदमपर दीवाल थी। बाबाने सोचा कि दीवालका सहारा ले लूँ, पर तभी धम्मसे गिर पड़े। परिक्रमा-स्थलीमें उपस्थित लोगोंने सोचा कि सिरमें चक्कर आ गया है, अतः बाबा बैठ गये हैं, पर यह भ्रम कबतक बना रहता? ज्यों ही लोगोंको पता चला कि बाबाके दाहिने पैरको लकवा मार गया है, सभीका मन खिन्नतासे भर गया। परिक्रमा विसर्जित कर दी गयी। गम्भीर उदासीसे वाटिकाका सारा वातावरण ऐसा आच्छादित हो गया कि क्या

कहा जाये?

उस परिस्थितिमें भी बाबाके मुखमण्डलपर वही सहज हास्य था, वही सहज उल्लास था, पर उनका वह उन्मुक्त उल्लास भी वातावरणमें व्याप्त उदासीकी सघनताको न हटा सका, न घटा सका। दूसरे दिन, तीसरे दिन, चौथे दिन, मिलनेवालोंका ताँता लगा रहा।

आत्मीय जनोंकी अत्यधिक क्लान्तिको देखकर बाबाने भिक्षाके अतिरिक्त थोड़ा दूध लेना आरम्भ कर दिया तथा मदार-धतूरा आदिके पत्तोंसे सेक करवा लेने लगे। आहारमें भी कुछ परिवर्तन कर देनेके लिये अनुमति प्रदान कर दी। बात-बातके बीचमें बाबा तो कई बार कह जाते थे – मेरा मन सर्वथा संकल्पशून्य है। न तो यही स्फुरणा है कि यह रोग क्यों हुआ और न यही कामना है कि रोगसे मुक्त होऊँ। रोगके रूपमें भगवान ही पधारे हैं।

बाबाके यतिधर्मको ध्यानमें रखते हुए विविध उपचार हो रहे थे, पर अपेक्षित सुधार दिखलायी नहीं दे रहा था। सभी स्वजनोंका चित्त बड़ा व्याकुल था, पर वह व्याकुलता विवशताके घेरेमें घुट-घुट करके चुपचाप आँसू बहाती रहती थी।

इस व्याकुलताको थोड़ी राहत मिली श्रीमहाराजजीके शुभागमनसे। स्वयं महाराजजीके मनमें बाबाके समीप पहुँचनेकी चटपटी लगी हुई थी। महाराजजी वृन्दावनसे गीतावाटिका १४ सितम्बरको पधारे और ऐसा उद्घोषित करनेके लिये मेरी भावना बार-बार उमड़ रही है कि महाराजजीके पदार्पणके रूपमें बाबाके स्वास्थ्यका शुभागमन हुआ। मैं नहीं जानता कि परोक्ष स्तरपर क्या तथ्य है और क्या सत्य है, पर प्रत्यक्ष रूपमें इतना तो सही ही है कि जिस दिन महाराजजी पधारे, उसी दिनसे बाबाके स्वास्थ्यमें आशातीत सुधार आरम्भ हो गया। इस सुधारका सारा श्रेय तो चल रही चिकित्सा-पद्धतिको मिल गया, पर प्रश्न उठता है कि यह श्रेय महाराजजीके आगमनसे पहले उसे क्यों नहीं मिल पाया? बुद्धिका विलास तो इस प्रश्नका उत्तर नहीं दे पायेगा, परन्तु श्रद्धाकी निरीहता इस प्रश्नको प्रश्न मानती ही नहीं। संत-जगतमें लोकातीत स्तरवाली जो प्रक्रिया सक्रिय रहती है, उसकी गतिविधि बड़ी विचित्र होती है और वह मात्र अनुभव गम्य है। जो भी हो, बाबाके स्वास्थ्यमें सुधारसे सभीकी भावनाओंको बड़ा विश्राम मिला। बाबाके स्वास्थ्यकी

चिन्ताजनक स्थितिने सबके मनमें एक उलझन खड़ी कर दी थी कि आगामी श्रीराधाष्टमीमें भावपरिपोषक महोत्सवका स्वरूप न जाने कैसा रहेगा और न जाने कैसी खिन्नताके वातावरणमें महोत्सवके कार्यक्रम सम्पन्न होंगे, पर स्वास्थ्य-सुधारकी प्रगतिने सुगति दे दी सभीकी भावनाओंको। महाराजजीके शुभागमनके बाद बाबाके स्वास्थ्यमें जैसा सुधार आया, उससे गीतावाटिकामें क्रमशः अधिकाधिक प्रसन्नता परिव्याप्त होने लग गयी। बाबा तो अपनी कुटियामें ही विराजे रहे, पर महाराजजी उत्सव-पण्डालमें पधारे और श्रीराधाष्टमी-महोत्सव २०-९-१९७७ को सोत्साह मनाया गया था।

* * * * *

नियमानुवर्तन में सीमातीत तत्परता

संन्यास लेते ही बाबाने एक बड़ा ही कठोर व्रत ले लिया कि अब जीवनमें स्त्री-स्पर्श एवं द्रव्य-स्पर्श करना ही नहीं है। यदि स्पर्श हो गया तो प्रायश्चित रूपमें चौबीस घंटेका उपवास करना है। सन् १९५६ में तीनों धामोंकी पावन यात्रा ट्रेन द्वारा की गयी थी। ट्रेनमें लगभग छ या सात सौ तीर्थ-यात्री थे। तीर्थ-यात्रियोंमें स्त्री-पुरुष दोनों ही थे। देव-दर्शनके लिये यत्र-तत्र आना-जाना पड़ता ही था। बहुत सावधान रहनेके बाद भी वे अप्रिय प्रसंग घटित हो गये, जिससे बाबाको उपवास करना आवश्यक हो गया और क्रम-क्रमसे बाबापर नब्बे उपवास चढ़ गये। तीर्थ-यात्राकी भाग-दौड़में उपवास सम्भव नहीं हो पाया। तीर्थ-यात्रासे लौटनेके बाद उन सारे उपवासोंको एक-एक करके बाबाने चुकाया। कुछ दिनोंका अन्तर दे-दे करके बाबाने नब्बे दिन उपवास किया।

नियमानुर्वतनके प्रति बाबा सदैव तत्पर रहा करते थे। २२ नवम्बर १९७८ के दिनका एक प्रसंग है। प्रातःकाल बाबा अपनी चौकीपर बैठे हुए थे। बाबाके पास ठाकुरजी भी थे। तभी एक अनचाहा प्रसंग घटित हो गया। बिहार प्रदेशसे आये हुए एक साधुने श्रद्धावशात् बाबाके चरणोंपर पाँच रुपयेका एक नोट चढ़ा दिया। उन साधुको बाबाके कठोर नियमका पता नहीं था कि द्रव्यका या स्त्रीका स्पर्श होते ही चौबीस घंटेका उपवास करते हैं। उस नोटसे स्पर्श होते ही बाबाके लिये तो

प्रीतिरसावतार महाभावनिमग्न
श्रीराधा बाबा
(द्वितीय भाग)

राधेश्याम बंका

उपवास हो गया। किसी कारणसे कल बाबाने भिक्षा नहीं की थी, इससे सभीका मन खिन्न था और अब द्रव्य-स्पर्शसे पुनः लगातार उपवास हो गया। इससे व्यक्ति-व्यक्तिके मनमें बड़ी व्यथा थी, पर इसका कोई निवारण नहीं था। कठोर-व्रती बाबा अपने निश्चयमें शिथिलता नहीं आने देते। सभी मूक दर्शक बने हुए थे। मैं बाबाके पास बैठा हुआ था। तभी जिज्ञासाके रूपमें मैंने बाबासे पूछा – बाबा! आप रुपया या सिक्का या कागजके नोटका स्पर्श नहीं करते। क्या इसी प्रकार ड्राफ्ट या चेकका भी स्पर्श नहीं करते?

बाबाने बताया – यदि चेक या ड्राफ्टका स्पर्श हो जाय तो उसके लिये भी मुझे चौबीस घंटेका उपवास करना पड़ेगा। साधारण कागज तथा चेक या ड्राफ्ट, ये सभी ही कागज हैं, पर चेक या ड्राफ्ट तो रुपयेके रूपमें सम्मानित है, स्वीकृत है, समकक्ष है, अतः वह एक प्रकारसे रुपया ही है।

पुनः एक और जिज्ञासा – पहले ताँबेके छोटे ढेलेके टुकड़े सिक्केके रूपमें व्यवहृत होते थे। उनको सरकारने अब अमान्य कर दिया है। अब वे रुपयेके रूपमें नहीं, धातु-खण्डके रूपमें समझे जाते हैं। क्या उनका भी स्पर्श हो जानेसे आप उपवास करेंगे?

बाबाने कहा – अरे, धातु होते हुए भी कभी तो वे रुपयेके रूपमें माने जाते थे। उनका स्पर्श भी मेरे लिये द्रव्य स्पर्शके समान है। भूलसे भी यदि द्रव्य या स्त्रीका स्पर्श हो जाय तो मुझे उपवास करना ही है।

बाबाकी उक्तिको सुनकर मैं मौन था, पर मैं मन-ही-मन कह रहा था कि बाबा कितने अधिक कठोर व्रती हैं। स्वयंकी बात तो अलग रही बाबा तो यहाँतक सोचते और चाहते थे कि मेरे निजजनोंके जीवनकी चादरपर भी कोई भी दाग न रहे और न लगे।

* * *

उपर्युक्त घटनासे लगभग दस मास पहले २६ जनवरी १९७८ का एक प्रसंग है –

गीतावाटिकाकी कोठीके बरामदेमें दो बहिनोंके बीच वाद-विवाद छिड़ गया। पारस्परिक विवाद जब बढ़ने लगा तो परिस्थितिको शान्त करनेके लिये श्रीरामसनेहीजीने एक बहिनका हाथ पकड़ करके किनारे

कर दिया। श्रीरामसनेहीजीके बीच-बचाव करनेसे वातावरण शान्त हो गया। फिर यह बात सरकते-सरकते बाबाके सामने आयी। बाबा गम्भीर हो गये। श्रीरामसनेहीजी बाबाके चरणाश्रित जन हैं। चरणाश्रित जनके द्वारा होनेवाली चूक मेरी चूक है, ऐसा मानकर बाबाने दिनभर निर्जल रहनेका संकल्प कर लिया और निर्जल-व्रतकी जानकारी निज जनोंको दे दी।

* * * * *

सुखद और दुखद क्षण

सन् १९७८ ई. में श्रीयमुनाजीमें भीषण बाढ़के कारण श्रीमहाराजजी चाह करके भी वृन्दावनसे गोरखपुरके लिये प्रस्थान नहीं कर पाये। भाद्र शुक्ल अष्टमी-नौमीको गीतावाटिकामें श्रीराधाष्टमी-महोत्सव भलीभाँति सम्पन्न हो गया और उत्सवके बारह-तेरह दिन बाद शनिवार २३-९-७८ को गोरखपुर पहुँचे श्रीमहाराजजी। साथमें ठाकुरजी आदि भी थे। श्रीमहाराजजीके पधारनेपर दो संतोंके सम्मिलनका वह दृश्य भी अद्भुत भावमय रहा। बाबाकी वासस्थलीके आस-पास कोलाहलशून्य जनशून्य प्रशान्त वातावरण है, यह वातावरण वृक्षों और पौधोंकी हरियालीसे बड़ा सुन्दर लग रहा था। बाबा हाथ जोड़े हुए खड़े थे स्वागत करनेके लिये। महाराजजीको समीप आते देखकर बाबाके नेत्रोंमें परम प्रसन्नता छा गयी। बाबा चाहते थे कि एक पद आगे बढ़कर अति पास आये हुए महाराजजीके हाथोंको अपने हाथोंमें ले लूँ, पर ज्यों ही महाराजजीने भूमिपर माथा टेककर प्रणाम किया, बाबाने भी भूमिपर माथा टेककर प्रणाम किया। दोनों संतोंके मस्तक भूमिपर टिके हुए थे और इस छविको हमलोग बड़ी देरतक देखते रहे। बादमें बाबाने ही महाराजजीको उठाया तथा उनका हाथ पकड़े-पकड़े अपने आसनतक ले गये। महाराजजीको एक ऊँचे आसनपर बैठाकर बाबा अपने आसनपर विराजे।

दो संतोंके आमने-सामने बैठनेका यह दृश्य भी कितना भावपूर्ण था! कोई कुछ भी नहीं बोल पा रहा था। महाराजजी कभी बाबाकी हथेलियोंको अपनी हथेलीमें ले लेते थे और कभी महाराजजीकी हथेलियाँ कर-बद्ध मुद्रामें हो जाती थीं। रह-रह करके महाराजजी अपने उत्तरीय छोरसे नेत्रोंकी-नासिकाकी आर्द्रताको पोंछ रहे थे। भावोद्रेकके कारण बाबाकी मुखाकृति भी कुछ और प्रकारकी हो गयी थी। चाह करके भी

परस्परमें संभाषण सम्भव नहीं हो पा रहा था। बहुत-बहुत देर बाद मन्द एवं अस्पष्ट स्वरमें बाबाने अपने पास ही बैठे हुए ठाकुरजीसे पूछा — महाराजजीका स्वास्थ्य कैसा है?

ठाकुरजीने यही कहा — इस समय कोई परेशानी नहीं है।

कुछ क्षणके बाद श्रीमहाराजजीकी ओर उन्मुख होकर बाबाने कहा — मेरी राधाष्टमी तो आज मनायी जा रही है।

कल्पनातीत आत्मीयतासे अति संसिक्त इन शब्दोंको सुनकर महाराजजीके भाव उमड़ चले। सभी उपस्थित लोग बह पड़े। आन्तरिक विह्वलताके किंचित् शमित होनेपर थोड़ी देर बाद बाबाने फिर कहा — आप जानते हैं, मैं श्रीराधाष्टमी पण्डालमें आठ वर्षोंसे नहीं जाता। इस वर्ष श्रीराधाष्टमीका उत्सव पण्डालमें मनाया जा रहा था, पर मैं तो अपने इसी एकान्त स्थानपर इसी आसनपर बैठे-बैठे आपका ध्यान कर रहा था।

इतना सुनकर गद्‌गद वाणीमें महाराजजीने कहा — हम अपनी बात भी क्या बतायें? तन तो अवश्य श्रीवृन्दावन धाममें था, पर मन तो इसी स्थानपर आपके पास था। रह-रह करके आपका ध्यान हो रहा था कि आप ऐसे विराज रहे होंगे, आप इस प्रकार बोल रहे होंगे, आप इस प्रकारसे लोगोंसे मिल रहे होंगे।

इस वर्णनने तो सभीकी विभोरता बढ़ा दी। चित्तके सुस्थिर होनेपर महाराजजीने बाबाको आजानुलम्बित माला पहनायी, प्रसादी फूलोंसे बाबाके मस्तकपर वर्षा की। श्रीबाँकेबिहारीजीकी प्रसादी माला तथा प्रसादी फूल महाराजजी अपने साथ लाये थे। फिर ठाकुरजीने प्रसादी माला पहनायी। उन्हीं अवशिष्ट प्रसादी फूलोंसे बाबाने महाराजजीका पुष्पार्चन किया। ठाकुरजीने बाबाको प्रसादी बीरी दी। थोड़ी देर बाद बाबाने महाराजजीसे निवास-कुटीरमें पधारनेके लिये अनुरोध किया। बाबा स्वयं ही निवास-कुटीरतक महाराजजीको पहुँचाने गये। हाथमें हाथ लिये मार्गमें श्रीराधाकिशोरीके दिव्य भावोंकी चर्चा भी करते जा रहे थे। निवास-कुटीरकी विश्रामशय्यातक पहुँचा करके ही बाबा वापस लौटे।

अपने स्थानपर वापस लौटकर आसनपर बैठते-बैठते बाबा कहने लगे — महाराजजी तो प्यारकी मूर्ति हैं। उनके पधारनेसे आनन्दका सागर उमड़ने लगा। जबतक महाराजजी यहाँ रहेंगे, तबतक यह सागर उमड़ता ही

रहेगा। तो क्या इसका अर्थ यह है कि अबतक मेरे आनन्दका सागर नहीं उमड़ रहा था? वह उमड़ रहा था भीतर-ही-भीतर, पर जिस प्रकार पूनोंके चन्दाका दर्शन सागरको उद्वेलित कर देता है, उसी प्रकार मेरे आनन्दका सागर अब केवल भीतर ही नहीं, व्यक्त स्तरपर भी लहराता रहेगा।

महाराजजी गीतावाटिका पधारे थे २३.९.१९७८ के दिन और एक अनचाहा प्रसंग घटित हो गया तीन दिन बाद। बाबा प्रातःकाल टहल रहे थे। लकवेके कारण दाहिना पैर पहलेसे ही पूरी तरह काम नहीं कर रहा था। टहलते-टहलते ऊँची-नीची जगहमें पैर पड़ जानेके कारण पैर लड़खड़ा गया, बाबा एकदमसे गिर पड़े और दाहिने कंधेके पासकी हड्डी टूट गयी। वेदना भीषण, पर मुखपर वही चिर-सुलभ मुस्कान, चिर-उन्मुक्त हास्य। सारा बगीचा उमड़ पड़ा। पूज्या मैया ऊपरसे नीचे आयीं। महाराजजी आकर पासमें बैठ गये। सबकी भावनाएँ विकल थीं, नेत्र सजल थे, पर बाबा उस वेदनामें भी सूरदासजीके पद (जाको मन लाग्यो गोपाल सौं, ताहि और क्यों भावै हो) और हरीचन्दजीके पद (अहो हरि वे हू दिन कब ऐहैं) गा-गाकर महाराजजीको, ठाकुरजीको, उपस्थित आत्मीय जनोंको सुना रहे थे। बीच-बीचमें कहते भी जा रहे थे – इस प्रतिकूलताके रूपमें भी श्रीहरि ही पधारे हैं, उनका हार्दिक उल्लासके साथ स्वागत है। यह प्रतिकूलता भी श्रीहरिका मधुमय विलास है।

बाबा चौबीस घंटेमें एक बार माँके दर्शनार्थ जाया करते थे, अब माँ ही प्रतिदिन ऊपरसे नीचे उतरकर बाबाके पास चली आया करती थीं। ४-१०-७८ बुधवारकी बात है। हड्डीके टूटे नौ दिन हो चुके। इतने दिनोंमें कष्टमें कमी आ जानी चाहिये थी, पर वेदना बहुत बढ़ी हुई थी। कष्टको देखकर सबका जी भीतर-ही-भीतर घुटता रहता था, पर क्या किया जाये? महाराजजी अपने निवास कुटीरके पास न जाने कितनी बार खड़े रह करके दूरसे बाबाको देखते रहा करते थे। बाबा कह रहे थे कि आज शरीरके पोर-पोरमें सीमातीत पीड़ा है और प्रातःसे ही यह पीड़ा बनी हुई है। संध्याके समय जब बाबा भिक्षा कर रहे थे, तीन-चार कौर ले पाये होंगे कि भिक्षा करते-करते बाबा समाधिस्थ हो गये। शरीरका कष्ट शरीरके साथ, पर बाबा अब कहीं अन्यत्र थे। एक बार वृत्ति कुछ नीचे उतरी तो आप पूछने लगे – यह भीड़ क्यों है? क्यों, कोई उत्सव है क्या?

इतना कष्ट होनेके बाद भी आनेवाले अतिथियोंसे बाबा हँसकर जब बात करते थे, निज जनोंको जब परामर्श देते थे, परिक्रमा देते समय श्रीहरिवल्लभजीके साथ प्रसन्न वदनसे जब आलापचारी करते थे, तब ऐसे क्षणोंमें उनकी मुखाकृतिको देखकर कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था कि बाबा भीषण कष्ट झेल रहे हैं। उनका उत्फुल्ल वदन और उन्मुक्त संलाप लोगोंको भ्रममें डाल देता, पर कष्ट तो कष्ट ही था।

* * *

हड्डी टूटनेके दूसरे दिन २७-९-७८ का एक प्रसंग है। बाबा शौचालय गये। शौचालयका द्वार बाहरसे ढाल दिया गया। बाबाने अपना कटिवस्त्र खोलना चाहा, पर वे खोल नहीं पाये। हड्डी टूटनेके कारण दाहिना हाथ तो बेकार था ही, पीड़ाकी अधिकताके कारण शरीर भी न पर्याप्त हिल सकता था और न अधिक झुक सकता था। बाँये हाथसे कटिवस्त्र खोलनेका प्रयास किया, पर सफलता नहीं मिली। ऐसा लगता है कि कटिवस्त्रका छोर कहीं किसी प्रकार अटक अथवा उलझ गया था। बाबाने खोलनेका प्रयास एक बार और किया, किंतु पुनः असफलता। पुनः प्रयास किया, पर प्रयासको व्यर्थ देखकर बाबा निराश मनसे खड़े हो गये, लगे देखने 'उनकी' ओर। 'वे' बाबाकी ओर देख रहे थे और बाबा 'उनकी' ओर। वे माने भगवान श्रीकृष्ण। कितनी देर तक परस्परावलोकन होता रहा, इसका निर्णय कठिन है, पर जब उधरसे ध्यान हटा तो बाबाने देखा कि कटिवस्त्र खुला पड़ा है। उनके प्रति बाबाका मन प्यारसे भर गया। बाबा कहने लगे — तुम्हारे अतिरिक्त मेरा है कौन? क्या तुम यह सब भी करते हो? सच है, तुमको कोई भी कार्य करनेमें संकोच नहीं होता।

हड्डी टूटनेपर बाबा एक और बात कहा करते थे — जब कभी कोई कष्ट शरीरपर आनेवाला होता था तो उसकी पूर्व-सूचना मिल जाया करती थी। हृदयाराध्य वे श्रीकृष्ण स्वयं आकर बता जाया करते थे, पर इस बार कोई पूर्व-सूचना नहीं मिली और यह तो उनके अतिशय प्यारका परिचायक है कि उन्होंने सूचना देनेकी आवश्यकता समझी ही नहीं।

* * * * *

तृतीय काष्ठ मौन व्रत

लगभग एक वर्ष पूर्व बाबाने कह दिया था कि ७ दिसम्बरको मैं मौन-व्रत धारण कर लूँगा। जिस समय यह बात हमलोगोंके कानमें पड़ी थी, उस समय तो कुछ ध्यान दिया नहीं गया। बस, यही सोचा जाता था कि ७ दिसम्बर १९७८ की तिथि, एक-दो माहकी तो बात ही क्या, अभी तो कई महीनोंके बाद है, अभीसे क्या सोचना-विचारना? पर सुखके ये क्षण पलक मारते-मारते बीत गये और उस तिथिमें अब केवल दो-अढ़ाई मास शेष रह गये थे। 'बाबा अब मौन ले रहे हैं और इस व्रतकी अवधि अनिश्चित है, अतः बाबासे अवश्य मिल लेना चाहिये' — इस प्रकारकी विकल भावनासे भावित लोगोंका गीतावाटिकामें आना आरम्भ हो गया। सितम्बर ७८ के अन्तिम सप्ताहमें बाबाके हाथके मूल भागकी हड्डी टूटी थी, तभीसे मिलनेवाले लोगोंके आनेका क्रम आरम्भ हो गया था। आनेवाले लोगोंकी यह शृंखला ६ दिसम्बरतक कभी खण्डित हुई ही नहीं। कहाँ-कहाँसे लोग नहीं आये? आनेवालोंकी संख्याको देखकर ऐसा भी कह सकते हैं कि भीड़की सँभाल और भोजनकी व्यवस्थाकी दृष्टिसे श्रीराधाष्टमी-महोत्सवका लघु-रूप ही उपस्थित हो गया था। जो लोग आते थे, उनसे मिलकर बाबा उन्हें वापस भेज देते थे। यदि सभी अन्तिम ६, ७ दिसम्बरतक टिकते, तब तो भीड़ बहुत ही अधिक हो जाती। जिन-जिनको भी बाबाने विदाई दी, उन सभीको अपने रोम-रोमके प्यारसे आप्यायित करके विदाई दी।

न जाने कितने सहस्र व्यक्ति बाबासे जुड़े हुए हैं, यह जुड़ना भी तो आध्यात्मिकताको लेकर ही है। भगवदीय जीवन, आध्यात्मिक प्रकाश, साधनात्मक पथप्रदर्शन, संत-चरणाश्रय, महदाश्वासनकी लालसा लिये हुए ही तो लोग दूर-दूरसे आये थे। जो जिस भावसे आया, उसको वही मिला। बाबाकी अहैतुकी कृपाका द्वार इस समय पूर्ण उन्मुक्त था, बाबाका करुणा-विगलित हृदय इस समय परम उदार था। जिनके अस्तित्वका आधार प्रीति ही है, जिनके व्यक्तित्वकी रचना प्रीतिसे हुई है, जिनमें शिखसे नखतक प्रीति-ही-प्रीति है, प्रीतिका दान ही जिनके जीवनका कार्य है, ऐसे प्रीतिरसावतार बाबासे मिलकर ऐसा कौन है जो सुतृप्त तथा संसिक्त नहीं

हुआ? जिस-जिसने अपनी जो-जो समस्या बाबाके सामने रखी, वह समस्या चाहे लौकिक हो, या पारलौकिक हो, या पारमार्थिक हो, सभी समस्याओंका समाधान बाबाने अपने स्वरूपमें स्थित रहते हुए दिया। मिलनेवाले लोगोंमें व्यक्ति सभी स्तरके थे। कोई संत तो कोई सांसारिक, कोई श्रेष्ठसाधक तो कोई साधारणसाधक, कोई आस्तिक तो कोई नास्तिक, कोई धनिक तो कोई निर्धन, कोई शिक्षित तो कोई अशिक्षित, कोई विनम्र तो कोई उद्धत, कोई शिष्ट तो कोई धृष्ट और इन सभी मिलनेवाले लोगोंके व्यवहार अपने-अपने स्तरके अनुरूप हुए, पर इससे बाबाको क्या? बाबा तो अपने स्वरूपसे अच्युत थे। बाबा अपने स्वरूपमें स्थित रहते हुए ही सभीसे प्यारपूर्वक मिलते रहे।

एक व्यक्ति, जिसने बातोंकी सही और पूरी जानकारीके अभावमें अनेक भ्रान्त धारणाएँ बना रखी थी, वह व्यक्ति तो बाबाको शारीरिक दृष्टिसे आघात पहुँचानेकी अभद्र भावना लिये हुए आया था, पर बाबा उससे भी मिले, कई बार मिले और आश्चर्यकी बात यह कि वह व्यक्ति भी वापस लौटा प्यारमें पगा हुआ। सांसारिक लोग अपनी संसारपरक समस्या लेकर, साधक लोग अपनी साधना-परक उलझन लेकर और संत लोग अपनी ईश्वरानुराग-परक चर्चा लेकर बाबाके पास आये। जो कोई भी आया, बाबाने सभीको पर्याप्त समय दिया, भले ही लोगोंसे मिलते-मिलते और बातें करते-करते बाबाके शरीर और वाणीकी स्थिति चिन्तनीय बन जाये। स्वास्थ्यको देखते हुए भिक्षा ग्रहण कर लेनेका कार्य सूर्यास्तके पूर्व हो जाना चहिये था, पर अब भिक्षा रातको प्रायः आठ-नौ बजे होने लग गयी।

बाबाको केवल ६ दिसम्बरतक बोलना था, अतः बाबाने अक्टूबर मासमें ही कह दिया था – आगन्तुक स्वजनोंसे जगत-सम्बन्धी चर्चा केवल ३० नवम्बरतक करूँगा, ३० नवम्बरतक ही किसीको उसके व्यावहारिक जीवन सम्बन्धी सुझाव दे सकूँगा, इसके बाद मात्र शुद्ध पारमार्थिक भगवच्चर्चा होगी।

बाबाको अन्य कुछ भी स्वीकार नहीं था। वे मात्र पारमार्थिक चर्चा, साधन-साध्यचर्चा, भगवच्चर्चा करना चाहते थे। इस कारण एक विचित्र प्रकारका वातावरण सृष्ट हो गया था। लोगोंको मानो यही लग रहा था कि बाबाके मौन होनेकी तिथि ७ दिसम्बर नहीं, ३० नवम्बर ही है। लोगोंको

ऐसा लग रहा था मानो अब प्रकट स्तरपर ३० नवम्बरको ही बाबासे सम्पर्क विच्छिन्न हो रहा है। 'बाबा यदि बोलेंगे तो न जाने कब बोलेंगे, यह सब अंधकारमें है!' —इस प्रकारके भावके प्रवाहमें बहते हुए सब और अधिक करुणाविष्ट हो गये।

इसी ३० नवम्बरको रासमण्डलीके स्वामी श्रीफतेहकृष्णजीके अन्तरकी दर्द-भरी तानसे तो करुणाका सागर ऐसा उफन पड़ा कि सब उसमें बह गये, यहाँतक कि बाबाके लिये भी अश्रु-संगोपन कठिन हो गया। बाबाके भीतर एक विचित्र आकर्षण था, उनके व्यक्तित्वमें एक ऐसी अद्भुत सम्मोहिनी शक्ति थी कि कोई भी सहृदय अपने-आप खिंचा चला आता था। बाबाके इसी चुम्बकीय आकर्षणसे खिंचकर ही तो एक-दो दिन पहले प्रणाम निवेदन करनेके लिये श्रीफतेहकृष्णजी वृन्दावनसे अकेले चले आये थे, उसी तरह चले आये थे, जिस प्रकार ये अन्य भक्तगण आये थे। श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा ३० नवम्बरको सूर्यास्तके समय हुई। सभी भक्तगण श्रीगिरिराज-परिसरमें बैठे थे। बाबा परिक्रमा लगा रहे थे, ठीक इसी समय बाबाके चुम्बकीय आकर्षणको मिससे व्यक्त करनेके लिये श्रीफतेहकृष्णजीने एक गजल गायी —

शमा जलती है तो परवाने चले आते हैं,
सर के बल इश्क के दिवाने चले आते हैं।
अब न रोके से रुकेगी ये दिल की लगी,
लोग बेकार में समझाने चले आते हैं।।

फतेहकृष्णजीने ठीक ही गाया कि इधर-उधरके अनेक जागतिक कार्योंमें फँसे रहनेके कारण मुझे फुरसत कहाँ कि मैं तुम्हारे पास आ सकूँ? इस पर भी यदि तुम मुझे अपने पास खींच लो तो मैं क्या करूँ? मैं आया नहीं हूँ, आकृष्ट किया गया हूँ। मैं सामान्य स्तरका अति साधारण प्राणी भला क्या जानूँ कि भगवत्प्रीति किसे कहते हैं और प्रीतिका प्रवाह और उसका प्रभाव कैसा होता है, पर यदि तुम ही अपनी अहैतुक आत्मीयतावशात् प्रीतिकी पाठशालामें मेरा नाम लिखा दो तो मैं क्या करूँ? प्रीतिका पाठ मैं पढ़ना नहीं चाहता, पर यदि तुम ही अपने सहज स्वभावसे परवश हुए मुझे पढ़ाओ तो मैं क्या करूँ?

श्रीफतेहकृष्णजीने दूसरी गजल गायी –

मुझे सब जानते हैं मैं शराबी नहीं,
एक कतरा भी पीने की आदत नहीं।
जाम से जो पीऊँ तो गुनहगार होऊँ,
वो नजर से पिलायें तो मैं क्या करूँ?

इतने लोगोंको आकृष्ट करके, सबको स्नेह-सूत्रमें बाँध करके और सभीसे आन्तरिक घनिष्ठता स्थापित करके अब अलग होनेका इरादा तुमने कर लिया, तुम्हीं सोचो, यह कहाँतक उचित है? इस स्थितिपर अब तुम ही विचार करो। तुम्हें अच्छी तरह पता है कि अनेकोंकी मति मूर्च्छित हो रही है, अनेकोंकी भावनाएँ बिलख रही हैं, अनेकोंका दिल दहल रहा है, फिर भी तुम मौन ले रहे हो? सब जान करके भी कठोर मौनका तुम इरादा कर रहे हो?

श्रीफतेहकृष्णजीने अपनी अन्तिम गजल गायी –

रुख से पर्दा हटा ले जरा साकिया,
रंग महफिल का एकदम बदल जायेगा।
जो कि बेहोश हैं होश में आयेंगे,
गिरनेवाला है वो भी सँभल जायेगा।।

अपने पर्दे का रखना है जो कुछ भरम,
सामने आना जाना मुनासिब नहीं।
एक बहशी से छेड़ अच्छी नहीं,
क्या करोगे अगर दिल मचल जायेगा।।

मेरा दामन तो जल ही चुका है मगर,
आँच तुम पै भी आये ये गवारा नहीं।
मेरे आँसू न पोंछो खुदा के लिये,
वरना दामन तुम्हारा भी जल जायेगा।।

बागवाँ! फूल तोड़े तो तोड़ इस कदर,
शाख हिलने न पाये ना आवाज हो।
वरना फिर ना चमन में बहार आयेगी,
हर कली का कलेजा दहल जायेगा।।

सिर्फ बैठे रहो, कुछ तसल्ली न दो,
वक्त मरने का कुछ मेरा टल जायेगा।।
ये क्या कम है मसीहा के रहने ही से,
मौत का भी इरादा बदल जायेगा।।

श्रीफतेहकृष्णजी गाते जा रहे थे और उनकी आँखोंसे आँसू झरते जा रहे थे। ये आँसू क्या केवल उन्हीं फतेहकृष्णजीके ही थे ? नहीं, सर्वथा नहीं। न जाने कितने-कितने हृदयोंके प्रतिनिधि बने हुए वे अश्रु-कण सबकी मूक व्यथाको वाणी प्रदान कर रहे थे। उन आँसुओंमें एक गहरी व्यथा थी और एक सच्चा प्रतिनिधित्व था – इस तथ्यकी साक्षी बन रही थीं अनेकोंकी संतप्त भावनाएँ, अनेकोंकी विकल अश्रु-धारा, अनेकोंकी आकुल सिसकियाँ। और इस सिसकते वातावरणने परिक्रमा-स्थलीमें खड़े बाबाके नयनोंको भी सजल बना दिया। सिसकते वातावरणकी वह शाम भी ढल गयी, फिर वह रात भी बीत गयी और फिर सिसकते-सिसकते एक-एक करके शेष छः दिन भी व्यतीत होने लगे।

इन छः दिनोंमें बाबा लोगोंसे अकेलेमें मिलते तो थे, पर कहाँतक मिलें ? जिन लोगोंको बाबाने विदाई दे दी थी, उनमेंसे कई दुबारा आ गये बाबाके प्यारमें खिंचे-खिंचे। बाबा तो एक और मिलनेवाले अनेक, अतः एक मध्यम मार्ग यह निकाला गया कि परिक्रमाके बाद बाबा सभी आगन्तुक लोगोंके सामने सामूहिक रूपसे अपना संदेश दें। दूसरे, तीसरे, चौथे, पाँचवें और छठवें दिनांकोंको बाबाने अपनी अमृत वाणीद्वारा सभीको दिव्योपदेश दिया। उसका सार यही था –

मानव जीवन भगवानका अद्भुत वरदान है। इस मानव शरीरके कारण ही पशु-पक्षी-कीट-पतंग आदि-आदि योनियोंसे हमारी श्रेष्ठता है। इस अद्भुत वरदानकी हम उपेक्षा न करें। अब और अधिक भोग-परायण न बनें। कुछ तो भगवानकी ओर उन्मुख हों। भगवानके आश्रयसे सर्वसम्भव है। हम कैसे भी अपराधी-दीन-पतित क्यों न हों, भगवानका द्वार हमारे लिये सदा खुला हुआ है। भगवान कभी नाराज होते ही नहीं। उनके जितना सुहृद् भी कोई है ही नहीं। मैं अपने जीवनके अनुभवके आधारपर कह रहा हूँ कि भगवानपर निर्भर होनेवालेका कोई काम अटकता ही नहीं। वे लौकिक कार्य, जो प्रतिकूलताओंके जमघटके कारण सर्वथा असम्भव कहे जा सकते हैं, भगवत्कृपाका आश्रय लेते ही सभी पूर्ण रूपसे सम्भव हो जाते हैं। भगवानकी स्मृति सारे अमङ्गलोंको विनष्ट करती है, परम शान्ति प्रदान करती है,

जीवनको पवित्र बनाती है और अन्तमें भगवानकी प्राप्ति कराती है। भगवत्स्मरणका फल सद्यः मिलता है, एक बार भगवानकी ओर उन्मुख होकर तो देखें। भगवानपर निर्भर रहनेवाले आस्तिकके जीवनमें प्रभु-विश्वास एक ऐसी अनोखी वस्तु है, जो जीवनमें असम्भव-से लगनेवाले कार्योंको भी सम्भव कर देती है।

इन छः दिनोंमें प्रतिदिन बाबा लोगोंसे अकेलेमें अलग मिलकर भी परामर्श देते रहे, पर दो दिसम्बरसे पाँच दिसम्बरतक, इन चार दिनोंमें सामूहिक रूपसे जो बातें बाबाने बतायीं, उन सब बातोंसे भी परेकी कोई विशेष बात, अपने जीवनकी कोई लोकातीत विशेष बात बाबा अन्तिम दिवस ६ दिसम्बरको सबके समक्ष कहना चाहते थे, किन्तु प्रश्न यह था कि बतायें किस प्रकारसे? और पंजाबकी एक श्रेष्ठ विभूतिके बड़े ही दर्दीले प्रसङ्गके बहाने बाबाने अपनी वह अति विशेष लोकोत्तर बात संकेत रूपमें कह दी।

अपना दिव्य संदेश प्रदान करनेके लिये बाबाने जिन श्रेष्ठ विभूतिके जीवन-प्रसंगका उदाहरण दिया, प्रसंगानुरोधसे उनके एक पूर्वजका अति संक्षिप्त परिचय देना समुचित रहेगा। पंजाबके भाई श्रीपरमानन्दजीको प्रखर देशभक्ति, प्रबल धर्मभक्ति और प्रवर प्रभुभक्ति अपने पूर्वजोंसे मिली थी। गुरु श्रीगोविन्द सिंहजीके पिताश्री गुरु श्रीतेगबहादुर सिंहजीको धर्म-मदान्ध विदेशी-विधर्मी मुसलमान शासक औरंगजेबने आदेश दिया – आप अपना हिन्दू धर्म त्याग करके इस्लाम धर्म स्वीकार कर लें, नहीं तो आपका सिर कत्ल कर दिया जायेगा।

जब इनके साथी भाई श्रीमतिदासजीने सुना तो उन्होंने बादशाह औरंगजेबसे कहा – यह कार्य आप मुझसे आरम्भ करें।

भाई श्रीमतिदासजीसे जब विदेशी मजहब स्वीकार करनेके लिये कहा गया तो उन्होंने अपने मुँहका थूक बाहर फेंकते हुए केवल इतना ही कहा – आप मेरे हिन्दू धर्मका अपमान नहीं कर सकते, भले ही आप और कुछ कर लें।

मजहबी जुनूनमें डूबे हुए मुगल बादशाहको बड़ा तिरस्कार-बोध हुआ। इसके फलस्वरूप बादशाहने यह आदेश दिया कि मतिदासको चाँदनी चौकमें खड़ा करके चीर दिया जाये। दिल्लीके चाँदनी चौकमें आरा सिरपर रखकर भाई श्रीमतिदासजीकी खोपड़ीके दो भाग कर दिये गये वैसे ही, जैसे

खरबूजेके दो टुकड़े बराबर-बराबर कर दिये जाते हैं। चीरे जाते समय आरा ज्यों-ज्यों देहमें बढ़ता जाता, त्यों-त्यों 'राम-राम' की ध्वनि ऊँची होती जाती।

वीर शिरोमणि भाई श्रीमतिदासजीके वंशज थे भाई श्रीपरमानन्दजी, जिन्हें राष्ट्रभक्तिके कारण अँगरेजी सरकारसे पहले फाँसीकी सजा मिली और बादमें उसे बदल करके काला पानी अर्थात् आजीवन कारावासके दण्डके रूपमें कर दिया गया। इन्हीं श्रीपरमानन्दजीके भाई श्रीबालमुकुन्दजी और उनकी धर्मपत्नीके जीवनका उदाहरण देते हुए ६ दिसम्बर १९७८ को बाबाने परिक्रमा-स्थलीमें उपस्थित सभी भक्तोंके सामने कहा —

पंजाबके विख्यात देशभक्त हो गये हैं भाई श्रीपरमानन्दजी। अपनी देशभक्तिके कारण श्रीपरमानन्दजीको कालेपानीकी कठोर जेल-यातना भी भुगतनी पड़ी। इन्हींके एक सहोदर भाई थे श्रीबालमुकुन्द। भाई श्रीबालमुकुन्दके हृदयमें बचपनसे ही देशप्रेमकी आग लगी हुई थी। वे बचपनसे ही बड़े विरक्त थे। मन-ही-मन वे अपने प्राणोंको देशकी बलिवेदीपर न्यौछावर कर चुके थे। वे चाहते थे कि भले मेरे प्राण चले जायें, पर मेरा देश भारत स्वतन्त्र हो जाये। प्रभु-प्रदत्त अपनी यत्किंचित् क्षमता और योग्यताके अनुसार इस दिशामें जितना प्रयास वे कर सकते थे, सतत करते रहते थे। बालमुकुन्दजीके इस रवैयेको देखकर घरवालोंने उनका विवाह कर दिया, जिससे कि बालमुकुन्दका ध्यान बँट जाये और मन संसारमें फँस जाये। उनकी पत्नीका नाम था रामरिक्खीबाई। रामरिक्खीबाई थी बड़ी सुन्दर, बड़ी सुशीला, बड़ी सद्गुणसम्पन्ना, बड़ी अनुगता, बड़ी पति-परायणा, इतना होकर भी वह रामरिक्खीबाई पति बालमुकुन्दको अपने मोह-पाशमें बाँध नहीं पायी। विवाह हो जानेके बाद भी श्रीबालमुकुन्दके हृदयमें देशभक्तिकी वह आग न घटी, न मिटी। अपनी धुनके पक्के बालमुकुन्दजी अपने ढंगसे देशसेवाके कार्यमें पूर्ववत् संलग्न रहे। बात शायद सन् १९११ की है। वह जमाना कठोर अँगरेजी शासनका था। किसी बम-काण्डमें अँगरेजी सरकारने बालमुकुन्दजीको पकड़ लिया और जेलमें डाल दिया। भाई श्रीपरमानन्दजी सतत प्रयत्नशील थे कि मेरा सहोदर भाई जेलसे छूट जाये। घरमें अकेली रामरिक्खीबाईको भी पता चल गया कि मेरे पति जेलमें हैं। उधर बालमुकुन्दजीको जेलकी चहारदिवारीमें बन्द कर दिया गया था और इधर रामरिक्खीबाईने कमरेकी चार दीवालके भीतर स्वयंको बन्द कर लिया। उसने जानना चाहा कि मेरे पतिको जेलमें कैसा भोजन मिलता है। जब उसे यह ज्ञात हुआ कि उनको तो

धूलि-सनी आटेकी रोटियाँ और धूलि-मिली दाल खानेको मिलती है तो उनका कलेजा काँप उठा। अब जब भी रामरिक्खीबाई भोजन करती, अपनी रोटी-दालमें रेत मिला लिया करती। कोई पूछता कि तुम यह क्या करती हो तो वह रामरिक्खीबाई यही कहती – वे तो जेलमें धूलिभरा भोजन करते हैं और फिर क्या मैं यहाँ सुन्दर भोजन करूँ?

भाई श्रीपरमानन्दजीके अथक प्रयासके बाद भी श्रीबालमुकुन्दजी अपराधसे विमुक्त नहीं हो सके। अँगरेजी सरकारने बालमुकुन्दको प्राण-दण्डकी सजा सुना दी और उनको फाँसीके तख्तेपर लटका दिया गया। उन दिनों राष्ट्रवीरोंके शवको अँगरेजी सरकार नहीं दिया करती थी। शोक-निमग्न परमानन्दजी आये घरपर, पर किस प्रकार यह करुण समाचार अपनी अनुजवधू रामरिक्खीबाईको दिया जाय। उनको खिन्न देखकर रामरिक्खीबाईने पूछा – भइयाजी! आज आप इतने उदास, अत्यन्त उदास क्यों हैं? क्या बात है, सच-सच बता दीजिये।

भाई परमानन्दजी बड़ी कठिनाईके साथ इतना ही कह सके – भाई बालमुकुन्द इस संसारमें अब नहीं रहे।

इतना सुनना था कि रामरिक्खीबाई पागल-सी हो गयी। वह पलथी मार करके बैठी हुई थी, उसने अपने हाथ जोड़ लिये और पागलिनीकी तरह प्रलाप करती हुई बोलने लगी – 'प्रभो! क्षमा कर दो, थोड़ी देरी हो गयी। प्रभो! क्षमा कर दो, थोड़ी देर हो गयी' ऐसा उसने कई एक बार कहा और उसका शरीर काँपने लगा। कहते-कहते रामरिक्खीबाईने अपना मस्तक नीचे किया और फिर वह नत-मस्तक कभी उठा ही नहीं। उसकी आत्मा अपने परमात्माके पास थी और उसकी मिट्टी इस धरतीपर। इस धरतीवाले उस प्राणशून्य शरीरका संस्कार करते रहे।

भारत-भूमिके इतिहासके पृष्ठ इस प्रकारके प्राणोत्सर्गकी दिव्य गाथाओंसे भरे पड़े हैं। देशप्रेमकी, धर्मप्रेमकी, पतिप्रेमकी आग अनोखी होती है और इससे भी बढ़कर अनोखी होती है भगवत्प्रेमकी आग।

भगवत्प्रेमकी आग कैसी महदद्भुत होती है, इसे अनुभव कर पाता है कोई महाभाग्यशाली मानव ही। हमलोग कल्पना ही नहीं कर सकते कि भगवत्प्रेमकी आग जल जानेपर उस भाग्यशालीकी कैसी दशा हो जाती है। भगवानके प्रेमके आवेशमें जब कोई पागल हो उठता है तब उस प्राणोन्मादी पवित्र आगमें जलनेवालोंकी स्थिति बड़ी विचित्र होती है। मैं चाहता था कि

यदि आज भी एक-दो-चार लोग भगवत्प्रेमकी ओर अपना कदम बढ़ाते तो प्रत्यक्ष हो जाता कि यह कितनी श्रेष्ठ वस्तु है, पर अधिकांशका जीवन व्यर्थ जा रहा है। भगवत्प्रेमकी दिशाकी ओर चलनेपर तथा भगवत्प्रेमके राज्यमें पहुँचनेपर कितनी प्रसन्नता कितनी शान्ति कितनी शुचिता कितनी सरसता मिलती है, यह तो मात्र-अनुभवगम्य है, मात्र-स्वसंवेद्य है। जिसके जीवनमें भगवत्प्रेमकी आग प्रज्वलित है, उसपर भगवानकी अपार कृपा है। यह ऐसा विषय है, जिसे वाणीद्वारा समझाया ही नहीं जा सकता।

अब कुछ घंटोंके बाद ही मैं मौन हो जाऊँगा। किस कामके लिये मैं निमन्त्रित किया गया हूँ, मुझे पता नहीं है। इस मौनके लिये भगवानने निमन्त्रण क्यों दिया है, हो सकता है कि मौन लेनेके बाद एक-दो दिनमें ज्ञात हो जाये, पर मैं तो वापस आऊँगा नहीं हेतुको कहनेके लिये। इस विदाईकी वेलामें मैं सभीसे क्षमा-याचना करता हूँ। मेरा भरसक प्रयत्न रहा है कि मैं किसीका जी नहीं दुखाऊँ, पर यदि मेरेद्वारा कोई ऐसी क्रिया हो गयी हो तो उसके लिये बारम्बार क्षमा-याचना है। एक बात ऐसी है कि जिसपर शायद आप लोग विश्वास नहीं करेंगे। सच्ची बात यह है कि वह क्रिया मेरे द्वारा नहीं हुई है। कोई मेरे अन्दर है, वह मेरे अन्दर था, है और रहेगा भी, उसीने मेरे द्वारा वैसी क्रिया करवायी है। क्रियाका कर्ता कोई और है, पर हो रहा है मेरा नाम कि बाबाने ऐसा किया, बाबाने ऐसा कहा। अस्तु, ऐसी जो भी क्रिया मेरे द्वारा हुई हो, उसके लिये बार-बार क्षमा-प्रार्थना है। जीवनमें कभी भी किसी प्रकारसे भी यदि किसीका मेरे द्वारा जी दुखा हो तो मैं उस व्यक्तिसे, वह व्यक्ति चाहे दूर हो चाहे पास हो, हाथ जोड़कर, उसके चरणोंकी अनन्त वन्दना करते हुए मैं उससे क्षमा चाहता हूँ। बस, इतना ही मुझे कहना है।

* * *

परिक्रमाका वातावरण कितना सकरुण था, कितना गम्भीर था, यह बतलाना कठिन है। परिक्रमा-स्थलीसे बाबा अपनी कुटियापर आये। बाबूजीका निधन सन् १९७१ में हुआ था, तबसे लेकर अबतक इन साढ़े सात वर्षोंमें अनेक आवश्यक पत्र-पुस्तक-कागज आदि बाबाके पास इकट्ठे हो गये थे। पुस्तकें यथा-योग्य व्यक्तियोंको दे दी गयीं, अधिकांश कागज-पत्र जला दिये गये तथा अत्यन्त आवश्यक कागज-पत्र भाई श्रीकृष्णचन्द्रजीको दे दिये गये। इस कार्यको अपनी उपस्थितिमें सम्पन्न करवाकर बाबा माँके पास

गये। वहाँ बहुत देर रहे। इसके बाद स्नान तथा भिक्षा की। यह करते-करते रात्रिके डेढ़ बज गये। भक्तोंका, अतिथियोंका, नगरके व्यक्तियोंका, वाटिकावासियोंका समुदाय ज्यों-का-त्यों बाबाकी कुटियाके सामने उपस्थित था और बाबाकी हर क्रियाको एकटक दृष्टिसे निहार रहा था। भिक्षाके बाद बाबा चार-पाँच व्यक्तियोंसे अन्तिम बार मिले। सबसे अन्तमें बाई तथा जीजाजी (परमादरणीया श्रीसावित्रीबाई फोगला और श्रीपरमेश्वरप्रसादजी फोगला) से मिले, फिर शौच गये।

शौचसे निवृत्त होते-होते सवा तीन बज गये। बाबा अब सबके सामने खड़े हैं और सबको अन्तिम प्रणाम कर रहे हैं। अपने कुटीरके पास खड़े हैं बाबा सिक्त-नेत्र, प्रीति-विह्वल, मूक-अधर, कर-बद्ध, नत-मस्तक और उनके सामने खड़ा है सारा समुदाय व्यथित-नेत्र, मथित-हृदय, रुद्ध-कण्ठ, शब्द-रहित, स्पन्दन-शून्य, प्रतिमा-समान। इस समयका वर्णनका न करना ही उत्तम है।

श्रीहरिवल्लभजीने सकरुण स्वरमें अन्तिम विनती की –

भरोसो दृढ़ इन चरनन केरो।
श्रीवल्लभ नख चन्द्र छटा बिनु सब जग माँहि अँधेरो।।
साधन और नहीं या कलि में, जासों होय निबेरो।
सूर कहा कहै, दुबिध आँधरो, बिना मोल को चेरो।।

और ७ दिसम्बर गुरुवारकी ब्राह्म-वेलामें बाबाने अपना मौन व्रत ले लिया।

* * * * *

श्रीगिरिराज-परिक्रमा के नियम

बाबाने जब दिसम्बर १९७८ में काष्ठ मौन लिया था, तब श्रीगिरिराज-परिक्रमाके नियमके निर्वाहके बारेमें कुछ व्यवस्था सम्बन्धी बातें उनसे पूछी गयी थीं। उस समय बाबाने अनेक तथ्योंकी चर्चा करते हुए कहा था – मैं तो नित्य श्रीगिरिराज परिसरमें निवास करता हूँ। श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा लगानेके नियमका निर्वाह भी तबतक होता ही रहेगा, जबतक मेरी स्मृति ठीक है। इसका एक विशेष कारण है। जब मैंने यहाँ गीतावाटिकामें श्रीगिरिराजजीकी स्थापना करके परिक्रमा लगानी आरम्भ की थी, तब प्रियतम नीलसुन्दरने अत्यधिक ऐकान्तिक सम्बोधनसे सम्बोधित करते हुए

मुझसे कहा था कि तुम्हारे परिक्रमाके नियमसे अन्योंको लाभ होगा। जो भी इन श्रीगिरिराजजीका दर्शन-वन्दन-अर्चन करेंगे और परिक्रमा लगायेंगे, उनकी व्रजभावकी ओर गति होगी तथा उनके जीवनमें व्रजभावका उन्मेष होगा। प्रियतमके ये उद्‌गार मेरे लिये महत्त्व रखते हैं। जहाँतक परिक्रमाके नियम निर्वाहका प्रश्न है, परिक्रमाका करना या न करना, ये दोनों बातें मेरे लिये समान अर्थ रखती हैं। जिस उद्देश्यकी सिद्धिके लिये लोग श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा लगाया करते हैं, वे नीलसुन्दर तो नित्य मेरे पास रहते हैं, अतः परिक्रमाके नियमका अनुशासन मुझपर नहीं है। ऐसा होकर भी नीलसुन्दरके वचनका अनुपालन करनेके लिये मुझे परिक्रमा सदैव करनी ही है।

इस नियमके निर्वाहमें बाधाएँ कम नहीं आयीं। कभी अत्यधिक अस्वस्थता, कभी घोर अन्तर्मुखता और कभी नितान्त व्यस्तता, इस प्रकार समय-समयपर कठिन प्रतिकूलताएँ सामने आयीं, परन्तु इन सारी विकट परिस्थितियोंके मध्य नियमका निर्वाह अखण्ड रूपसे होता रहा और इस अखण्ड निर्वाहने गीतावाटिकाके आध्यात्मिक वातावरणका कल्पनातीत रीतिसे परिपोषण किया है। श्रीगिरिराज-परिक्रमा बाबाके लिये 'भाव-वितरण' का एक सशक्त माध्यम बन गया था। बाबा परिक्रमा लगा चुकनेके बाद सभी उपस्थित भक्तोंपर दृष्टि-पात किया करते थे। इस दृष्टि-पातको वस्तुतः कहना चाहिये 'भाव-दान'। इस प्रक्रियासे बाबा सबको भावका दान किया करते थे।

* * * * *

परिवर्तन के प्रति अरुचि

बाबाने ७ दिसम्बर १९७८ को जब काष्ठ-मौन व्रत लिया, तब व्रत लेनेके पूर्व उन्होंने यही कहा था कि मेरी सेवामें केवल तीन व्यक्ति रहेंगे रामसनेहीजी, भगतजी और गुरुचरणजी। उनके इस आदेशको सुनकर कई लोगोंका मन बड़ा व्यथित हुआ कि उनके शरीरकी जैसी स्थिति है तथा जिस प्रकारका ऐकान्तिक जीवन वे व्यतीत करना चाहते हैं, उसको देखते हुए सबको यही लग रहा था कि केवल तीन व्यक्तियोंसे काम नहीं चल पायेगा। सेवा-कार्यकी आवश्यकताको देखते हुए सब चाह रहे थे कि कम-से-कम डा. लालदेव सिंह तथा भीमसेनजी चोपड़ाको सेवा करनेके लिये अनुमति मिलनी ही चाहिये। निकटवर्ती आत्मीय जनोंकी भावनाओंको वाणी दी

ठाकुरजी (घनश्यामजी शर्मा) ने। ठाकुरजीके काफी प्रयासके बाद बात बन गयी और डाक्टर साहब तथा चोपड़ाजीको सेवा-कार्य करनेके लिये अनुमति मिल गयी। अब बाबाकी सेवामें पाँच व्यक्ति रहने लगे।

मौन व्रत ले लेनेके कुछ दिन बादकी बात है। इन दिनों बाबाके शरीरको दबानेकी सेवा डाक्टर साहब और चोपड़ाजी किया करते थे। एक दिन किसी अन्य काममें लगे रहनेके कारण चोपड़ाजी पैर नहीं दबा पाये। चोपड़ाजीके स्थानपर रामसनेहीजी पैर दबाने लगे। मौन व्रतके पहले रामसनेहीजी बाबाके पैर दबाया ही करते थे, अतः वे दबाने लगे तो कोई बड़ी या नयी बात नहीं थी। बाबा यही समझ रहे थे कि चोपड़ाजी पैर दबा रहे हैं। ज्यों ही उनको यह पता चला कि रामसनेहीजी दबा रहे हैं, उन्होंने अपना पैर समेट लिया। इतना ही नहीं, अब शरीर दबवाना भी उन्होंने बन्द कर दिया। सबको बड़ा दुःख हुआ, पर विवशता थी। तनिकसे परिवर्तनके कारण शरीर दबवानेकी सेवा बन्द हो गयी। किसीने कोई प्रमाद नहीं किया और मर्यादाका अतिक्रमण नहीं किया, इसके बाद भी तथ्य यह था कि बाबाको कोई परिवर्तन रुचिकर नहीं। कुछ प्रयास किया गया, पर वह सफल न हो सका।

कई सप्ताह बीत गये। सन् १९७९ के मार्च मासमें टब-स्नान कराते समय डाक्टर साहबको और चोपड़ाजीको यह दिखलायी दिया कि बाबाका दाहिना पैर बायें पैरकी अपेक्षा दुबला हो गया है। इसी दाहिने पैरमें लकवेका झटका आया था। इन दिनों जब बाबा परिक्रमाके लिये आते थे तो इस ढंगसे चलते थे, मानो अब गिरे, तब गिरे। वे एक-एक कदम बहुत सँभाल-सँभालकर रखते थे। हम सभीको आश्चर्य होता था कि यह क्या हो गया। इस दुबलेपनको देखकर डाक्टर साहबने कहा – इस पैरकी नसें सूखती जा रही हैं और इसी कारण दाहिना पैर शरीरके भारको सँभाल नहीं पा रहा है, अतः बाबाको बहुत सँभल-सँभल करके कदम रखना पड़ता है।

अब प्रश्न यह था कि इसका इलाज क्या है? चोपड़ाजीने कहा – प्राकृतिक चिकित्सक डा. श्रीहीरालालजी जिस प्रकार मालिश किया करते थे, उस प्रकारसे मालिश हो तो शायद पैरोंकी नसोंमें सक्रियता बढ़े, पर अब तो बाबाने शरीर दबवाना ही बन्द कर दिया है।

बड़ी उलझन थी कि बात किस प्रकार बने। चोपड़ाजीने साहस करके बाबासे कहा – आपके दाहिने पैरकी स्थिति नाजुक है। पैरकी नसें सूखती

चली जा रही हैं। मालिश करनेसे सुधारकी आशा है। आप मालिश करनेके लिये आज्ञा प्रदान करें। मालिश केवल डाक्टर साहब किया करेंगे और कोई दूसरा मालिश नहीं करेगा। मालिश करनेसे सूखापन दूर होगा।

थोड़ी देर अनुनय-आग्रह करनेके बाद बाबाने अनुमति प्रदान कर दी, किन्तु अनुमति दी केवल पाँच मिनट मालिश करनेके लिये।

श्रीचोपड़ाजीको बड़ी प्रसन्नता हुई कि मालिश करनेके लिये अनुमति मिल गयी। उनको विश्वास था कि यदि स्वास्थ्यमें सुधार दिखलायी दिया तो बादमें कह-सुनकर मालिश करनेकी अवधि बढ़वायी जा सकती है।

* * * * *

ग्रन्थावलोकन में निमग्नता

बाबाने ७ दिसम्बर १९७८ को तीसरी बार जो काष्ठ-मौनका व्रत लिया, इसमें वैसी कठोरता नहीं थी, जैसी पहले लिये हुए व्रतोंमें थी। टिन-शेडके रूपमें तीन ओरसे सर्वथा खुली हुई यह नयी कुटिया ही बाबाकी निवास-स्थली थी। इस निवास-स्थलीके चारों ओर पर्याप्त खुला स्थान छोड़कर एक घेरा बना दिया गया, जिससे कोई व्यक्ति घेरेके भीतर अचानक जा न सके। घेरेके भीतर केवल वे ही जाते थे, जिनको समय-समयपर कोई सेवा करनी होती थी।

७ दिसम्बरके एक सप्ताह बादकी बात है। मैं बाबाकी कुटियाकी ओर गया। घेरेके बाहरसे ही मैंने उनको प्रणाम किया और खड़े-खड़े उनका दर्शन करता रहा। मैंने देखा कि कुटियामें चौकीके ऊपर जो गैरिक बिस्तर बिछा हुआ है, उसपर बाबा सहजासनसे बैठे हुए हैं और कोई पुस्तक हाथमें लेकर देख रहे हैं। भगतजीसे पूछनेपर पता चला कि वे श्रीकृष्णलीला चिन्तन ग्रन्थको पढ़ रहे हैं। बाबा ग्रन्थावलोकनमें निमग्न थे।

श्रीरामचरितमानसकी एक चौपाई है —

जीवन मुक्त महामुनि जेऊ।
हरि गुन सुनहिं निरंतर तेऊ॥

इस चौपाईमें 'सुनहिं' शब्द आया है। 'सुनहिं' शब्दके स्थानपर थोड़ी देरके लिये 'पढ़हिं' शब्द कर दिया जाय तो भी इस चौपाईके भावार्थमें कोई अन्तर नहीं आयेगा। इस चौपाईका भावार्थ आज साकार रूपमें मेरे सामने

विद्यमान था।

काष्ठ मौनके उपरान्त यह एकान्त वातावरण और ये रसमय ग्रन्थ बाबाको और भी अधिक गहरे लीला सिन्धुमें उतार देते होंगे। ग्रन्थावलोकनमें निमग्न बाबाको भला क्या पता कि कोई भरी-भरी आँखोंसे मुझे निहार रहा है अपने हृदयमें भर लेनेके लिये। मैं बहुत देरतक खड़े-खड़े वह छवि निहारता रहा।

* * * * *

मधुराष्टक का गायन

काष्ठ मौनका व्रत लेनेके बाद बाबाके पास नितान्त एकान्त-ही-एकान्त था। व्रत लेनेके पहले उनके पास मिलनेवालोंकी भीड़ लगी रहती थी। वे लोग बाबाके सामने अपनी सांसारिक-पारिवारिक समस्याओंको रखा करते थे, जिससे कोई हल प्राप्त हो सके। इन सब तरहकी बातोंसे घिरे रहनेके कारण वे कई बार कहा करते थे कि मुझे एकान्त मिल पाता है एक मात्र शौचालयमें, पर अब स्थिति सर्वथा दूसरी थी। अब एकान्तमें वे अपने भावराज्यमें रहते थे और इसपर भी यदि तनिक-सा अनुकूल उद्दीपन मिल जाय तो उनके अन्तरका भाव-सागर तुरन्त लहराने लगता था। यही बात मंगलवार सन् १९७९ के २० मार्चको हुई।

इन दिनों परिक्रमाके समय श्रीहेमचन्द्रजी जोशी ही पदगान तथा नाम-कीर्तनकी सेवा करते थे। किसी कार्य-विशेषसे श्रीजोशीजी बाहर चले गये, अतः उपर्युक्त मंगलवारके दिन बहिन कमल और मुन्नीने परिक्रमाके समय पदगान और नाम-कीर्तन किया। उन्होंने पुष्टिमार्गके प्रवर्तक आद्याचार्य श्रीवल्लभाचार्यजी महाराज द्वारा रचित मधुराष्टकको बड़े सुललित स्वरमें सुनाया। जब यह मधुराष्टक गाया जा रहा था, बाबाके लिये परिक्रमाके नियमको पूर्ण करना भी कठिन हो गया। उनकी आँखें रह-रह करके भर आती थीं और नासिका-द्वार अवरुद्ध हो जाते थे। वे बार-बार अपने उत्तरीयसे अपने नेत्र और अपनी नासिकाको पोंछ रहे थे। बाबाके नेत्रोंमें मोतियाबिन्द होनेसे उनकी नेत्र-दृष्टि कुछ धूमिल थी, किन्तु मधुराष्टकके गायनसे नेत्रोंमें जो सजलता परिव्याप्त हुई, इस सजलताने उस धूमिलताको और भी बढ़ा दिया। परिक्रमा लगाते समय पथका दिखलायी देना बन्द हो गया। बाबाको परिक्रमा पथपर आगे पैर रखनेमें बड़ी कठिनाई हो रही थी।

इस भावोद्वेलनकी सीमा केवल परिक्रमातक ही नहीं रही। मधुराष्टकका गायन पूरा होकर नाम-संकीर्तन भी हो गया और गिरिराज-परिक्रमाका नियम भी पूर्ण हो गया, परन्तु बाबाका भाव-सागर उसी प्रकार उमड़ता-छलकता रहा। परिक्रमाके बाद उन्होंने टब-बाथ लिया, उस समय भी उनके कपोल बार-बार गीले हो रहे थे और उनके हाथकी रुमाल बार-बार उस गीलेपनको पोंछ रही थी। कपोलोंका गीला होना और उस गीलेपनको पोंछते रहना, इसका क्रम आज दिनभर चलता रहा। सारे दिन वे 'बाह्य धरातल' पर रहे ही नहीं, गहन गम्भीरता बनी रही।

* * * * *

खाँसी और पोस्ता

सन् १९७९ के अप्रैल मासकी बात है। इन दिनों बाबाको बहुत ज्यादा खाँसी थी। खाँसी इतनी ज्यादा था कि न दिनको चैन और न रातको आराम। हमलोग समझ नहीं पाते थे कि क्या उपचार किया जाय। बाबाकी सेवामें श्रीभगतजी, श्रीचोपड़ाजी, श्रीअमीचन्दजी आदि लोग थे, इन सेवापरायण लोगोंको सारी रात बैठे-बैठे बीत जाती थी। खाँसीसे बाबाका सारा पञ्जर हिल उठता था और ऐसा लगता था मानो आँतें बाहर आ जायेंगी। बाबाके भीषण कष्टको देखकर श्रीचोपड़ाजीने उनसे अनुरोध किया — बाबा! आपको खाँसी बहुत ज्यादा है। यदि आप अपने भिक्षामें पोस्ताका सेवन करें तो काफी आराम मिल सकता है।

बाबाने कहा — चोपड़ा प्रभु! पोस्तासे अफीम बनता है। जिसने संन्यास ले रखा है, उसके लिये यही उचित है कि गैरिक वस्त्रोंकी लज्जाको बचाये रखनेके लिये कभी पोस्ता स्वीकार न करे।

श्रीचोपड़ाजीने विनम्र स्वरमें निवेदन किया — बाबा! आपका कष्ट देखा नहीं जाता। आपके कष्टको देखकर मनमें बड़ी पीड़ा होती है। मैं आपको अफीम लेनेके लिये नहीं कह रहा हूँ। अफीम तो मानव द्वारा निर्मित वस्तु है। भले ही पोस्तासे उसका निर्माण होता है, पर पोस्ता तो एक प्राकृतिक स्वरूपमें प्रकृति प्रदत्त सहज वस्तु है। पोस्ताको अफीम नहीं कहा जा सकता, अतः पोस्ता लेनेमें किसी प्रकारकी हानि नहीं है।

पास बैठे हुए सभी लोग श्रीचोपड़ाजीको मन-ही-मन साधुवाद दे रहे थे और मन-ही-मन कह रहे थे कि बड़ी सुन्दर रीतिसे इन्होंने बाबाको समझानेका प्रयास किया है।

श्रीचोपड़ाजीकी बात सुनकर बाबाने दृढ़ता भरे स्वरोंमें कहा – खाँसीके कारण चाहे शरीरका अन्त ही हो जाय, परन्तु पोस्ता तो नहीं ही लूँगा।

श्रीचोपड़ाजी मन मारकर चुपचाप बैठ गये।

* * * * *

श्रीजज साहब का निधन

परमादरणीय श्रीजजसाहब (सम्माननीय श्रीरामप्रसादजी दीक्षित) का निधन १५ मई १९७९ को हो गया। उनके निधनसे गीतावाटिकाकी एक विभूति तिरोहित हो गयी।

जजसाहबका जीवन एक सच्चे साधकका जीवन रहा। उनका कोमल हृदय, उनका संत स्वभाव, उनकी श्रद्धा भावना, यह सब हम सभीके लिये प्रेरणाकी वस्तु रही। इतना ही नहीं, सरकारी नौकरी करते समय भी जजसाहबका निर्मल-निर्दोष-निःस्वार्थ-निष्कलंक-निष्पक्ष कार्य सरकारी अधिकारियों द्वारा सदैव ही स्तुत्य रहा। विगत तीस-पैंतीस वर्षोंमें जजसाहबकी जैसी कहनी-करनी-रहनी रही, उससे स्पष्ट है कि बाबा और बाबूजी, इन युगल संतके अतिरिक्त उन्होंने किसी अन्यको न जाना और न माना। इन्हीं जजसाहबको मलद्वारके पास कैंसरका रोग हो गया। बाबाने ७ दिसम्बरको मौन लिया और मौनके १८ दिन बाद जजसाहबके शरीरमें २५ दिसम्बरको आपरेशन करके नवीन मल-मार्गका निर्माण कर दिया गया। स्थिति दिन-प्रति-दिन गिरती ही गयी। अपने परिवारवालोंके दबावमें आकर इन्हें १६ जनवरीको अपने घर प्रयाग चला जाना पड़ा। उनका शरीर अब कंकाल मात्र रह गया था। शय्यापर पड़े-पड़े कुछ दिन और निकल रहे थे। किसी भी क्षण जीवन-लीलाकी समाप्ति हो सकती थी।

मेरा अनुमान है कि जजसाहब जैसे समर्पित भक्तकी इन बातोंने अवश्य ही बाबाके अन्तरको प्रभावित किया होगा और उन्मुख बनाया होगा यत्किंचित् बहिर्मुखताकी ओर, जिससे कि जजसाहबके समाचारोंकी जानकारी हो सके। बहिर्मुखतासे मेरा तात्पर्य है – घेरेके भीतर बाबा अपने मनोभावोंकी

अभिव्यक्ति करते थे कभी संकेतके द्वारा, कभी अँगुलियोंसे लिखकर, कभी मुद्राके द्वारा, कभी अस्पष्ट और कभी स्पष्ट शब्दोच्चारके द्वारा। जो हो, घेरेकी सीमित परिधिके भीतर बाबा द्वारा भावाभिव्यक्ति होनेसे उन लोगोंको बड़ी सुविधा हो गयी, जो उनकी सेवामें संलग्न रहे। वे अब समझ सकते थे कि बाबाको कब क्या तथा किस प्रकारकी सेवा या उपचारकी आवश्यकता है। इन दिनों बाबाके मौन व्रतमें जो थोड़ी-बहुत शिथिलता दिखलाई दी, वह क्रमशः अधिकाधिक बढ़ती ही चली गयी। उनका करुणा विगलित अन्तर अपने चरणाश्रित जनोंके लिये सदैव बहता ही रहता था।

बाबा-बाबूजीके प्रति समर्पित हो जानेके बाद जजसाहबने एक नियम ले रखा था – एक मासके भीतर एक बार अवश्य बाबा-बाबूजीका दर्शन करना। जबतक जजसाहब सरकारी नौकरीमें रहे, प्रत्येक मासमें एक बार बाबा-बाबूजीके दर्शनार्थ आते रहे, चाहे वे अथवा बाबा-बाबूजी भारतमें कहीं भी रहें। न्यायालयकी नौकरी करते हुए इस नियमके निर्वाहमें कभी भी व्यतिक्रम नहीं आया। बाबा-बाबूजीके दर्शनार्थ वे प्रत्येक मास पहुँच ही जाया करते थे।

न्यायाधीशके रूपमें एक बार उन्होंने एक हत्यापराधीको फाँसीकी सजा दे दी। बाबाको ज्यों ही पता चला, इसको बाबाने उचित नहीं बताया। किसीको हम जीवन नहीं दे सकते तो किसीका जीवन ले लेना कहाँतक उचित है? बाबाकी प्रेरणानुसार फिर भविष्यमें किसीको, हत्याके अभियुक्तको भी मृत्यु-दण्ड जजसाहबने दिया ही नहीं; हाँ, कानूनन ऐसे अभियुक्तको आजीवन कारावासका दण्ड देना अलग बात है।

* * *

जब जजसाहब मुजफ्फरनगरमें सन् १९५३ से १९५५ तक जिला न्यायाधीशके पदपर थे, इस अवधिके बीचका प्रसंग है। एक बार बाबा और बाबूजी दिल्लीसे ऋषिकेश जा रहे थे। मार्गमें मुजफ्फरनगर पड़ता था। बाबाको न जाने क्या सूझी, वे बाबूजीके सहित सीधे न्यायालयमें पहुँच गये जजसाहबसे मिलनेके लिये।

न्यायाधीशकी कुर्सीपर बैठे हुए जजसाहबने देखा कि बाबा-बाबूजी मेरे कमरेमें प्रवेश कर रहे हैं। उनको आते हुए देखकर जजसाहबको बड़ा आश्चर्य हुआ कि बिना किसी पूर्व सूचनाके अचानक इनका शुभागमन कैसे हो गया! जजसाहब उसी समय अपनी कुर्सीसे उठे। न्यायालयकी परम्पराके अनुसार

न्यायाधीशके आने-जानेका मार्ग न्यायालयमें पीछेकी ओरसे होता है, सामनेसे नहीं, पर इस परम्पराकी सर्वथा उपेक्षा करते हुए जजसाहब सामनेके मार्गसे नीचे उतरकर आये और न्यायाधीशका वेष धारण किये ही अभियुक्त-वकील आदि सबके सामने ही भूमिपर लोटकर बाबा-बाबूजीको साष्टांग प्रणिपात किया। यह देखकर बाबाका हृदय भर आया। बाबा कई बार जजसाहबकी श्रद्धा-भावनाकी सराहना करते थे।

२ मईके प्रातःकाल बाबाने यहाँ गीतावाटिकामें एक स्वप्न देखा कि भगवती गंगाका विस्तृत विशाल निर्मल प्रवाह मन्थर गतिसे बह रहा है। तट सुन्दर संगमरमरका बना हुआ है तथा उस सुन्दर तटपर कुछ दूर खड़े हुए जजसाहब बाबाकी ओर देख रहे हैं। जजसाहबके नेत्रोंमें समर्पणकी भावना है एवं कृपाकी याचना है। स्वप्न देखनेके बाद प्रातःकाल बाबाने कहा – जजसाहबका शरीर अब अधिक दिन नहीं रह पायेगा।

प्रयागसे टेलीफोनपर १५ मईको साढ़े नौ बजे बातचीत हुई ही थी। बातचीतके बाद जजसाहबकी मरणासन्न स्थितिका समाचार बाबाको तुरंत सुना दिया गया। सब हाल सुनकर बाबाने बहिन कमलके पास संदेश भिजवाया कि समाधिके पास बैठकर जजसाहबके लिये सवा घंटे श्रीहरिनामका संकीर्तन कर दो। उसी समय बाई (श्रीसावित्रीबाई फोगला)ने आकर बाबाको जजसाहबके निधनकी सूचना दी। जजसाहबका निधन दस बजे हुआ और निधन-सूचना टेलीफोन द्वारा गोरखपुर पाँच मिनटके भीतर-भीतर आ गयी थी। बाईके मुखसे इस शोक-संवादको सुनकर शोकार्त बाबाने कहा – जजसाहबके निधनसे मैं पंगु-सा हो गया।

थोड़ी देर मौन रहनेके बाद जजसाहबके सद्गुणोंकी चर्चा करते-करते बाबाने कहा – जजसाहबकी जैसी सुन्दर गति हुई है, उसे देखते हुए कुछ करने-करानेकी आवश्यकता नहीं है, फिर भी उनके लिये सवा घंटा श्रीहरिनाम संकीर्तन समाधिपर हो ही रहा है।

* * * * *

रुग्ण होकर भी रुग्णातीत

बाबाके नियमोंकी मर्यादाओंको देखते हुए जितना संभव हो पाता था, बाह्योपचार किया जाता था। प्राकृतिक चिकित्सक श्रीहीरालालजी भी समय-समयपर गोरखपुर आ जाया करते थे और समयोचित परामर्श भी दे दिया करते थे। इससे लाभ ही होता था।

इस रुग्णताके बाद भी कभी-कभी कुछ ऐसे प्रसंग देखनेको मिल जाते थे कि जिनसे मन आह्लादित हो उठता था। नवम्बर १९७९ में एक दिन भाई भीमसेनजी चोपड़ाने 'विरहिणी राधा' नामक पुस्तिका पढ़कर बाबाको सुनायी। आदरणीय श्रीअवधविहारीलालजी कपूर द्वारा लिखित यह पुस्तिका श्रीकृष्ण-जन्म-भूमि, मथुरासे प्रकाशित है। अपनी कुटियाके एकान्त वातावरणमें इस पुस्तिकाको सुनते-सुनते बाबाकी तो विचित्र स्थिति हो गयी थी। कपोलोंपर बहती हुई अश्रु-धाराका विराम होता ही नहीं था। चोपड़ाजीने जब हमलोगोंको यह बताया तो हम सभी चकित रह गये।

अगला प्रसंग दिसम्बर १९७९ का है। नवद्वीपसे आयी हुई एक संकीर्तन मण्डलीने बाबाको 'पाला कीर्तन' सुनाया। पाला कीर्तन बंगालकी एक विशिष्ट गायन शैली है, जिसके द्वारा भगवान श्रीकृष्णकी और श्रीचैतन्य महाप्रभुकी लीलाओंको गा-गा करके सुनाया जाता है। लगभग एक सप्ताहतक यह कार्यक्रम चला और २१-१२-७९ को समाप्त हुआ। बाबा कीर्तनके समक्ष लगातार तीन घंटेतक बैठे रहते और कीर्तनके सम्पन्न होनेके बाद भी बाबा प्रायः 'अन्यलोक'में ही रहते।

बाबाकी रुग्णताको देखकर हमलोगोंको कष्ट होता था, पर उनकी विचित्र रुग्णातीतावस्थाको देखकर विस्मय भी होता था। जब-जब ऐसे भावपूर्ण प्रसंग आते थे, तब-तब यही देखनेको मिलता था कि बाबा शरीरसे कितने असंपृक्त रहे।

* * * * *

प्रिय विष्णुकी तीर्थ-यात्रा

सन् १९८० ई. के अगस्त-सितम्बर मासमें श्रीधाम अयोध्याके आचार्य श्रीकृपाशंकरजी रामायणी महाराजके नेतृत्वमें तीर्थ-यात्रा ट्रेन चली थी। श्रीजगन्नाथपुरी, श्रीरामेश्वरम्, श्रीद्वारका आदि मुख्य-मुख्य धामोंकी यात्रा

करनेमें लगभग दो मास लग गये थे। इस तीर्थ-यात्रा-ट्रेनमें गोरखपुरके प्रिय श्रीविष्णुप्रसादजी जालान भी अपनी धर्मपत्नीके साथ गये थे। सात्त्विकता-साधुता- सरलता-धार्मिकताकी दृष्टिसे प्रिय विष्णुका व्यक्तित्व सराहनीय हैं।

यात्रामें जानेके पहले प्रिय विष्णु बाबाके पास आशीर्वाद लेनेके लिये आया, जिससे तीर्थ-यात्रा सफलतापूर्वक सानन्द पूर्ण हो सके। बाबाने बड़े प्रसन्न मनसे अपनी अनुमति प्रदान की, परन्तु साथ ही यह भी कहा- क्या तुमने श्रीकृपाशंकरजी महाराजसे भी आज्ञा प्राप्त कर ली है ?

प्रिय विष्णुने विनम्र रीतिसे निवेदन किया- मैं तो सर्वप्रथम आपके पास ही आया हूँ।

बाबाने प्यारपूर्वक कहा – उनके पास जाना, उन्हें प्रणाम करना और उनसे आज्ञा लेना तथा आशीर्वादके लिये विनती करना।

यह संयोगकी ही बात है कि उस समय पूज्य श्रीकृपाशंकरजी महाराज गोरखपुरमें ही विराज रहे थे। प्रिय विष्णु उनके पास गया और उन्हें प्रणाम करके वह सारा वृत्त सुना दिया, जो बाबाके साथ हुआ था। यह सुनते ही श्रीकृपाशंकरजी महाराज गद्गद हो गये। वे भरे-भरे मनसे कहने लगे- पूज्य बाबा तो सर्वप्रकारसे समर्थ हैं, किन्तु अपने छोटे जनोंको सम्मान देना उनका स्वभाव है, इसीलिये मुझ तुच्छ व्यक्तिके प्रति आदर व्यक्त करते हुए उन्होंने तुमको मेरे पास भेजा है। तुम मेरे साथ तीर्थ-यात्रा-ट्रेनमें अवश्य चलो।

ऐसा कहकर और प्यारमें भरकर वे प्रिय विष्णुकी पीठपर हाथ फेरने लगे। प्रिय विष्णु उनके साथ तीर्थ-यात्रामें गया। उसकी तीर्थ-यात्रा पूर्ण हुई २ अक्टूबर १९८० के दिन। अगले दिन ३ अक्टूबरको अपराह्णकालमें वह अपनी धर्मपत्नी सहित गीतावाटिका आया बाबाको प्रणाम करनेके लिये। श्रद्धापूरित मनसे बार-बार प्रणाम करते हुए प्रिय विष्णुने कहा – बाबा! आपका ही कृपा-प्रसाद था कि यात्रा सुन्दर रीतिसे पूर्ण हुई। यह सारी यात्रा बाधा-रहित रीतिसे इतनी सुन्दर रही कि उसका वर्णन सम्भव नहीं। न कहीं धूप-वर्षाका सामना करना पड़ा और न कहीं तबीयत खराब हुई। यात्रामें आगे-से-आगे ऐसी-ऐसी अनुकूलता मिलती चली गयी कि सभी स्थानोंपर दर्शन ठीक प्रकारसे मिलते गये। मुझे आशा नहीं थी कि ब्रज-यात्राके समय बरसानेमें श्रीराधाष्टमीका उत्सव देखनेको मिलेगा, पर वह भी सौभाग्य सुलभ हुआ।

बाबा उसकी यात्राका वर्णन सुनते भी जा रहे थे और बीच-बीचमें उसके स्वभावकी सात्त्विकता, हृदयकी निर्मलता, अन्तरकी आस्तिकता और भावोंकी उर्मिलताकी सराहना भी करते जा रहे थे। उसकी धर्मपत्नीको बार-बार बेटी कह-कह करके बाबा उसकी कोमलता और उसकी सरलताकी प्रशंसा कर रहे थे। बाबाने प्रिय विष्णुसे कहा – तुमने जगह-जगहसे जो पत्र पोष्ट किये थे, वे सारे पत्र मुझे मिल गये थे।

बात यह थी कि प्रिय विष्णुने इस यात्राके बीच मुख्य-मुख्य तीर्थ-स्थानोंसे बाबाके पास पत्र लिखे थे और उन पत्रोंका विषय था बाबाके प्रति प्रणामका निवेदन, कृपाकी याचना तथा कृतज्ञताकी अभिव्यक्ति। उन पत्रोंकी पंक्ति-पंक्तिमें उसका हृदय बोल रहा था कि इस सुखद और सफल यात्राका सारा श्रेय बाबाकी अहैतुकी कृपाको है। इन पत्रोंके सम्बन्धमें ही चर्चा करते हुए बाबा प्रिय श्रीविष्णुसे कहने लगे – जगह-जगहसे भेजे गये तुम्हारे जितने भी पत्र मेरे पास आये, उन सब पत्रोंको मैं अपने सिरहाने तकियेके नीचे रखता था। केवल कुछ क्षणोंके लिये नहीं, बल्कि तीन दिनतक रखता था। अपने महज्जनोंने तथा शास्त्रोंने तीर्थ-यात्रीके लिये एक विशेष निर्देश दे रखा है कि यात्रीको तीर्थमें तीन दिन और तीन राततक वास करना चाहिये। मैं जानता था कि तुम ट्रेनमें यात्रा कर रहे हो, अतः निर्दिष्ट विधानके अनुसार तीन दिन और तीन रातकी अवधिके लिये किसी तीर्थमें वास करना तुम्हारे लिये सम्भव नहीं है। तुम्हारे लिये यह एक विवशता थी। अब अपने तकियेके नीचे उन पत्रोंको तीन दिन और तीन रात रख करके मैं यह मान लेता था कि तुमने उस निर्दिष्ट विधानका पालन कर लिया और तीन दिनके वासके बाद तुमने अगले तीर्थके लिये प्रस्थान कर दिया है। यही कारण था कि तुम्हारे पत्रोंको मैं सिरहाने तीन दिनतक रखता था और फिर उनको विसर्जित कर दिया करता था।

बाबाकी प्यारसे सनी इन बातोंको सुनकर तथा जिस तरहसे बाबाने उन पत्रोंको सम्मान दिया, उनके इस प्रेमिल स्वभावको देखकर प्रिय विष्णुका अन्तर बड़ा विह्वल हो रहा था। बाबाके पास प्रिय विष्णु लगभग एक घण्टा रहा। बातचीतके मध्य बाबाने उसे यह भी बताया कि तीर्थ-यात्रासे लौटे हो, अतः ब्राह्मण-भोजन अवश्य करा देना। इस संकेतको तो प्रिय विष्णुने आदेशवत् ही स्वीकार किया।

* * * * *

श्रीगिरिराज परिक्रमा

प्रतिवर्षकी भाँति सन् १९८० ई. में भी भाद्र शुक्ल पक्षकी षष्ठी तिथिसे लेकर त्रयोदशी तिथितक श्रीराधाष्टमी-महोत्सव उत्साहके साथ मनाया गया, जिसमें अष्टमी और नौमी तिथियाँ मुख्य थीं ही। हम लोगोंकी आँखोंके सामने उत्सवका आयोजन रहा षष्ठीसे लेकर त्रयोदशीतक और उस अवधिमें भी जितनी देरतक कोई कार्यक्रम चलता रहा, बस उतनी देरतकके लिये ही, किन्तु बाबाके भावराज्यकी तो बात ही दूसरी थी। उनके भावराज्यके अनुसार तो श्रीराधाष्टमी-महोत्सवका शुभारम्भ भाद्र मासके शुक्ल पक्षको प्रतिपदा तिथिसे ही पन्द्रह दिनके लिये हो जाता है, जब नन्दग्रामसे यशोदा मैया तथा नन्दबाबा बरसाने पधारते हैं श्रीवृषभानुनन्दिनीका जन्मोत्सव मनानेके लिये। भले ही हम लोगोंके चर्म-चक्षुओंको वह दिव्य उत्सवोल्लास दिखलायी न दे, पर बाबा तो प्रतिपदा तिथिसे उसी उत्सवमें संलग्न रहते हैं और उसी उल्लासमें निमग्न रहते हैं। अवश्य ही, बाबाकी उस संलग्नताको और उस निमग्नताको हम 'दृष्टि-विहीन' लोग देख नहीं पाते। देखना तो दूर रहा, उसका आभासतक हम लोगोंको नहीं मिल पाता। यदि कभी आत्मीयतावशात् बाबा हम लोगोंको कुछ बतलाते भी थे तो उसे हम लोग हृदयंगम नहीं कर पाते थे। बस, उत्सवायोजनके रूपमें षष्ठीसे त्रयोदशीतक जो दृश्य इन चर्म-चक्षुओंको दिखलायी देते थे तथा जो शब्द इन कर्ण-कुहरोंमें पड़ते थे, केवल उतना ही हम लोग देख-सुन-समझ पाते थे।

श्रीललिता षष्ठी १५ सितम्बर सोमवारको थी तथा श्रीराधाष्टमी १७ सितम्बर बुधवारको। जतीपुरासे श्रीहरिवल्लभजी १३ सितम्बर शनिवारकी शामको यहाँ पहुँचे तथा श्रीमहाराजजी अपने परिकर सहित १४ सितम्बर रविवारके प्रातःकाल गीतावाटिका पधारे। मोटरकारसे उतरकर महाराजजी सीधे बाबाकी कुटियाकी ओर शीघ्रतासे बढ़ने लगे। बाबाने उनको आते हुए देख लिया। बाबा भी अपनी शिथिल गतिसे उनकी ओर अग्रसर हुए। बाबा अब लकवा-ग्रस्त नहीं थे, पर वह रोग अपना प्रभाव शरीरपर किसी अंशमें छोड़ ही गया था। उस प्रभावके कारण बाबाकी गतिमें वह त्वरा नहीं रह गयी, जो कभी पहले थी, फिर भी जितना सम्भव

था, बाबा अपने पदोंको जल्दी-जल्दी उठाते-रखते हुए महाराजजीकी ओर अग्रसर हो रहे थे। मार्गके बीचमें ही हुआ सम्मिलन। इसे सम्मिलन कहा जाये अथवा स्नेह-द्वन्द्व? महाराजजी चाहते थे और उनकी चेष्टा थी कि बाबाके चरणोंको स्पर्श कर लूँ, पर यह भला क्या बाबा होने देते? महाराजजीके दोनों कर-पल्लवोंको बाबाने अपने कर-पल्लवोंसे पकड़ लिया और उनके हाथोंको अपने हाथोंमें थामे हुए ही वहीं भूमिपर बैठ गये। महाराजजीकी आँखें मुँद गयीं, पर हमलोग खुली आँखोंसे देख रहे थे कि महाराजजी न जाने कहाँसे कहाँ बहे चले जा रहे थे। सचमुच, वे अपने आँसुओंके साथ बहे चले जा रहे थे। यह तो अच्छा हुआ कि बाबाने उनका हाथ अपने हाथमें थाम रखा था, अन्यथा वे न जाने कहाँ डूब जाते। वातावरण गम्भीर रूपसे प्रशान्त था। महाराजजीको बहिर्मुख करनेके लिये बाबाने विविध प्रकारके कुशल-प्रश्न करना आरम्भ कर दिया। महाराजजी जब कुछ प्रकृतिस्थ हुए तो उनसे बाबाने कहा — मैं एक अपराध कर रहा हूँ। मैं बार-बार इधर-उधरकी बातें कह-कह करके आपके भाव-प्रवाहमें बाधा डाल रहा हूँ। भावके गहरे आवर्त कहीं गम्भीर रूपसे उपस्थित न हो जावें, इसीलिये यह अपराध कर रहा हूँ, अन्यथा होता यह कि भावके गम्भीर प्रवाहमें आप मुझे देखते रहते और मैं आपको देखता रहता। हम दोनों न जाने किन-किन उर्मिल भाव-लहरियोंमें डूबते-उतराते रहते। फिर होता यह कि ये उपस्थित जन चुपचाप खड़े रहते तथा मौन नेत्रोंसे हमें निहारते रहते। इन उपस्थित जनोंके सुखके लिये ही आपके भाव-प्रवाहमें बाधा डालकर वातावरणको हलका बनाये हुए हूँ। आपको बहिर्मुख बनाये रखनेका अपराध मेरे द्वारा अवश्य हो रहा है, पर यह क्रिया सोद्देश्य ही है।

थोड़ी देर रुककर पुनः महाराजजीसे बाबाने कहा — ऐसा दिन कदाचित् ही हुआ हो, जब मैं आपको स्मरण नहीं करता होऊँ। व्रजके दो संतोंकी स्मृति मुझे सदा ही बनी रहती है, एक आपकी और दूसरे पण्डित श्रीगयाप्रसादजी महाराजकी।

पासमें हरिवल्लभजी बैठे हुए थे। तुरन्त उनकी ओर उन्मुख होकर बाबाने कहा — दादा! तुमने यह तो बताया ही नहीं कि क्या यहाँ आनेसे पहले पण्डित श्रीगयाप्रसादजी महाराजसे मिलकर आये हो या नहीं?

हरिवल्लभजी द्वारा 'हाँ' कहे जानेपर बाबाने फिर पूछा — क्यों, वे

सानन्द हैं न?

पुनः हरिवल्लभजीसे 'हाँ' का उत्तर मिलनेपर बाबाने हरिवल्लभजीसे कहा – दादा! तुम पण्डितजीसे मिलकर आये हो, अतः अपना हाथ मेरे मस्तकपर रख दो।

ऐसा कहकर बाबाने चाहा कि हरिवल्लभजीका हाथ अपने मस्तकपर रख लूँ, किन्तु विनयाधिक्यसे हरिवल्लभजीने अपना हाथ संकुचित कर लिया। फिर प्यारमें भरकर बाबा महाराजजीसे बोले – जब मेरा सौभाग्य, परम सौभाग्य उदित होता है, तब आपका यहाँ शुभागमन होता है। दो बात बड़ी महत्त्वपूर्ण है। हरिवल्लभजी जब यहाँ आते हैं तो व्रजभूमिके संगीताचार्यका पद यहाँ विराजित हो जाता है और जब आप यहाँ पधारते हैं तो व्रज-मण्डलका संत-समाज यहाँ मूर्तिमान हो उठता है।

भाव-मग्न महाराजजी रस-सिक्त स्वरमें इतना ही कह पाये – आपकी उपस्थितिसे दुर्लभ दर्शन भी सहज सुलभ हैं। बस, आप सदा-सर्वदा इसी प्रकारसे दर्शन देते रहें।

थोड़ी देर बाद ही बाबाकी परिक्रमाका समय हो गया। इन दिनों प्रतिदिन ही परिक्रमा-पथका तथा श्रीगिरिराजजीका पुष्पोंसे सुन्दर शृंगार होता। वाटिकाकी श्रद्धालु बहिनें ही परस्परमें हिल-मिल करके इस शृंगार-सेवाको सम्पन्न करती थीं। ऐसा लगता मानो उन बहिनोंका श्रद्धा-पूरित सुन्दर मन ही सुमनोंके रूपमें श्रीगिरिराजजीकी शोभा बढ़ा रहा है और परिक्रमा-पथका सुन्दर आच्छादन बना हुआ है। महाराजजीने पधार करके परिक्रमा-स्थलीमें अपना स्थान ग्रहण कर लिया। श्रीराधाष्टमी महोत्सवके कारण अनेक भक्तगण दूर-दूर स्थानोंसे आये हुए थे। समाधि-परिसर इन भक्तोंसे भरा हुआ था। भीड़ थी, पर साथ ही पूर्ण शान्ति भी थी। परिक्रमाके लिये बाबाने परिक्रमा-स्थलीमें प्रवेश किया। बाबाने खड़े-खड़े श्रीगिरिराजजीकी वन्दना की और तदुपरान्त आरम्भ कर दी उन्होंने परिक्रमा। हरिवल्लभजी महाराजजीके पार्श्वमें बैठे हुए अपने सुमधुर कण्ठसे पद-गान कर रहे थे। परिक्रमा लगाते-लगाते जब भी बाबा हरिवल्लभजीके पास आते, वे श्रीहरिवल्लभजीके साथ-साथ आलापचारी करते तथा उनके स्वरमें स्वर मिलाते। यह बात केवल एक बारकी नहीं, अपितु बार-बारकी बात थी कि परिक्रमा लगाते-लगाते बाबा ज्यों ही

हरिवल्लभजीके सामने आते, त्यों ही बाबा उनके साथ-साथ गायन करने लगते। पिछले दिनों बाबा प्रतिदिन ही मौन रहते हुए चुपचाप परिक्रमा लगाया करते थे, पर आज तो बहुत ही प्रसन्न वदन और बहुत ही बहिर्मुख हैं। आज बाबा बड़ी उमंगमें हैं, अपितु बहुत ही बह रहे हैं। वे गा रहे हैं श्रीहरिवल्लभजीके साथ-साथ, परंतु वस्तुतः सच बात यह है कि वे आमोदित-आह्लादित करना चाह रहे हैं समीपस्थ महाराजजीको। हरिवल्लभजीके साथ उमंग भरे मनसे बाबाको गाते हुए देखकर मुझे तो रसिक-शेखर स्वामी श्रीहरिदासजी महाराजका एक पद मन-ही-मन स्फुरित होने लगा – 'नाचत मोरनि संग स्याम मुदित स्यामाहिं रिझावत।' जो परिक्रमा प्रतिदिन आधा घण्टामें पूर्ण हुआ करती थी, आज उसमें डेढ़ घण्टेसे भी अधिक लग गया।

श्रीराधाष्टमी महोत्सवके बाद भी, जबतक महाराजजी गीतावाटिकामें विराजित रहे, परिक्रमाका यह उमंगोल्लास सदा बना रहा। हरिवल्लभजीका समयोचित गायन परिक्रमाके राग-रंगको और भी गहरा बना देता। परिक्रमाके समय कई बार ऐसा होता कि महाराजजी बाबाको कभी पुष्प-माला पहनाते और कभी उनके कर-पल्लवपर पाटल-पुष्प रखते और कभी दोनों करते। एक बार महाराजजी जब पुष्प-माला पहना रहे थे, तभी गाये जाते हुए पदको रोककर, बीचमें ही हरिवल्लभजीने एक नवीन पद गाना आरम्भ कर दिया – 'ऐसे ही देखत रहौं, जनम सुफल करि मानौं'।

महाराजजी जिस पुष्प-मालाको पहनाते, उस पुष्प-मालासे लटकते सुमेरुको बाबा अपने वक्षःस्थलसे लगाते, अपने मस्तकसे लगाते और अपने नेत्रोंसे लगाते। इसके बाद बाबा उस पुष्प-मालाको अपने गलेमेंसे उतारकर अपने दाहिने हाथकी कलाईमें वलयाकार लपेट लेते। एक अन्य दिवसकी घटना है। अपने गलेसे पुष्प-मालाको उतारकर ज्यों ही बाबाने अपनी कलाईमें वलयाकार लपेटा, त्यों ही उनके शरीरातीत- लोकातीत-त्रिगुणातीत महाशुद्धसत्त्वमय दिव्य स्वरूपकी स्मृतिसे भावित हुए हरिवल्लभजी गा पड़े –

बनी री तेरे चारि चारि चूरी करनि।
कंठसिरी दुलरी हीरनि की नासा मुक्ता ढरनि।।

एक दिन महाराजजी बाबाको पाटल-पुष्प प्रदान कर रहे थे, उस समय उनकी भावमयी मुद्राको देखकर हरिवल्लभजी गाने लगे –

चतुर कछु नैननि में बतरात।
वृन्दावन हित रूप रसिक पिय यह छबि हिय न समात।।

हरिवल्लभजी जिन पंक्तियोंको गाते, प्रसंगानुरोधसे उनमें अर्थ-गाम्भीर्य रहता। पदकी पंक्तिका अर्थ कुछ और होता था और उस अर्थका भी अर्थ कुछ और ही होता था तथा इस और-ही-औरमें एक लोकोत्तर स्तरके भावोच्छलनकी अद्भुत सृष्टि हो जाती थी। इस प्रकारके रसमय प्रसंग नित्य ही देखने-सुननेको मिल जाते थे।

ऐसे तो कई मधुर प्रसंग ध्यानमें आ रहे हैं, उनमेंसे परिक्रमाके एक और प्रसंगको लिखनेकी भावना बार-बार उभर रही है। एक दिन, सम्भवतः आश्विन कृष्ण एकादशीको परिक्रमामें हरिवल्लभजीने दानलीलाका प्रसंग छेड़ दिया और श्रीरसिकरायजू द्वारा रचित 'गोबरधनकी सिखर तें मोहन दीनी है टेर', इस लम्बे पदको वे गाने लगे। इस पदमें वर्णित लीला बाबाके लिये बहुत अधिक भावोद्दीपनका कार्य करती थी। उद्दीप्त भावोंकी प्रबलताके कारण बाबा आज बहुत गम्भीर हैं। आज बाबा यन्त्रवत् परिक्रमा-पथपर चल रहे हैं। बाबाकी मुखाकृति बतला रही है कि आज वे गहरे रूपसे अन्तर्मुख हैं। परिक्रमा-नियमके पूर्ण होनेपर बाबा अपनी कुटियापर गये। साथमें थे ठाकुरजी भी।

भावके किञ्चित् शमित होनेपर ठाकुरजीसे बाबाने कहा – इस पदमें जो-जो वर्णित हुआ है, उसे श्रीरसिकरायजीने प्रत्यक्ष देखकर लिखा है। वे स्वयं ही पदके अन्तमें कहते हैं 'निरखत लीला रसिक जू जहाँ दान मानकी ठौर'। व्रजभूमिके इन प्रत्यक्ष-लीला-दर्शी संतोंकी कितनी कृपा है कि जो इन अचिन्त्य-अगम्य लीलाओंको सरल रीतिसे वर्णन करके हम लोगोंको सहज-सुलभ करा रहे हैं।

* * * * *

स्व-दृष्ट पूतनालीला का वर्णन

ठाकुरजीसे भगवल्लीलाकी अचिन्त्यता-अगम्यताकी बात चल रही थी। बाबा अपनी एक स्व-दृष्ट लीलाका वर्णन करते हुए कहने लगे – बड़ी सरस और बड़ी मधुर लीलाओंकी बात एक बार एक किनारे रख दो, पूतना-लीलाकी ही बात लो। पूतना-लीलाको लीला-चिन्तनकी दृष्टिसे प्रायः

कोई वरेण्य नहीं मानता, परंतु किसी अकारण कृपाके फलस्वरूप मेरे समक्ष पूतना-लीला जिस प्रकारसे आविर्भूत हुई, उसका वर्णन किस प्रकार करूँ? जब निशाचरी पूतना नीलसुन्दर शिशुको अपने वक्षःस्थलपर लिये-लिये उड़ चली, उस समय गोपियोंमें हाहाकार मच गया, सब एक साथ चीत्कार कर पड़ीं। यशोदा मैया तो तत्काल मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं। पूतनाके साथ-साथ गोपियाँ दौड़ पड़ीं। एक नहीं, दौड़ पड़ीं सब-की-सब। पूतना उड़ रही थी ऊपर आकाशमें और गोपियाँ दौड़ रही थीं नीचे पृथ्वीपर। गोपियोंकी दृष्टि पथपर नहीं, नभमें थी, नभमें पूतनाके वक्षःस्थलसे चिपके हुए नीलसुन्दर शिशुपर। क्या आकाशकी ओर दृष्टि होनेसे दौड़ती हुई गोपियाँ नन्दग्रामके भवनोंसे टकरा गयीं? क्या वनकी लताओंने-वृक्षोंने गोपियोंके मार्गमें अवरोध उपस्थित किया? नहीं, कदापि नहीं। वे भवन, वे विटप, वे वल्लरियाँ जड़ थोड़े ही हैं। श्रीकृष्ण-लीलामें सहयोग देनेके लिये उन सबने जड़ावरण वरण कर रखा है। वहाँके जड़-चेतन, स्थावर-जंगम, वहाँकी सम्पूर्ण प्रकृति चिन्मय है। उन सबने स्वतः ही दौड़ती-भागती सभी गोपियोंको अवकाश दे दिया, मार्ग दे दिया। मार्गमें किसी प्रकारका अवरोध उपस्थित न होने पाये, एतदर्थ वे सभी यथावश्यकता सिमट गये, संकुचित हो गये, सीधे हो गये। यही बात कालको लेकर है। यह कभी सम्भव ही नहीं कि यातुधानी पूतनाके उड़नेकी गतिकी समान गतिसे गोपियाँ दौड़ सकें। तुरन्त काल भी संकुचित हो गया और पूतनाके गिरनेके साथ-साथ ही गोपियाँ वहाँ पहुँच गयीं। और वह सलोना शिशु भी कितना भाव-ग्राही है! सभी-की-सभी गोपियोंकी भीषण अन्तर्वेदनाको उसने अनुभव किया। किसी एकने नहीं, सारी गोपियोंने अलग-अलग यही अनुभव किया कि पूतनाके वक्षःस्थलसे लालाको मैंने ही उठाया है और मैंने ही लाकर मूर्च्छित यशोदाकी गोदमें दिया है, जिससे यशोदाके कण्ठगत प्राणोंकी रक्षा हो सकी। वहाँके चिन्मय भवनोंकी, वनोंकी, वीथियोंकी, वृक्षोंकी, वल्लरियोंकी, वामाङ्गनाओंकी मति-रति-गति हम साधारण जनोंके लिये अगम्य है, अचिन्त्य है, अकल्पनीय है।

* * * * *

सन्निपात का प्रकोप

बाबाको तो अपने शरीरका ध्यान रहता ही नहीं। पर-दुःखकातरता इतनी थी कि अपने शरीरका मूल्य देकर भी आगत जनोंके दुःख-दर्दको सुनना चाहते थे तथा उस दुःख-दर्दको दूर करना चाहते थे। शीत ऋतु होनेसे परिक्रमा प्रातःकाल साढ़े आठ बजेसे पौने नौ बजेतक हुआ करती थी। शुक्रवार ११-१-८० के प्रातः परिक्रमा लगाकर जब बाबा अपनी कुटियापर पहुँचे, उसके थोड़ी देर बाद ही लोग मिलनेके लिये पहुँच गये। कुटियाके चारों ओर पर्याप्त स्थान छोड़ करके एक घेरा बना हुआ था। उस घेरेके द्वारपर बाबा बैठ गये तथा लोगोंसे मिलने लगे। एकके बाद दूसरेसे, दूसरेके बाद तीसरेसे, इस प्रकार बाबा मिले, पर आजका यह मिलना प्राणघाती हो गया। पेड़के नीचे धूपका अभाव, घोर शीत तथा रह-रह करके बाबाके शरीरपरसे वस्त्रोंका सरक जाना; बस, बाबाको भीषण रूपसे सर्दी लग गयी। इसके बाद फिर नग्न शरीरसे शौच गये। वहाँ शरीरमें इतनी अधिक कँपकँपी थी कि प्रक्षालनार्थ शौचालयके पात्रको पकड़ सकना भी सम्भव नहीं हो सका। यह कल्पना किसीको भी नहीं थी कि उनके फेफड़े बहुत ही अधिक कफाक्रान्त हो चुके हैं। इसी क्रममें प्रतिदिनके अभ्यासके अनुसार बाबाने टब-बाथ ले लिया। टब-बाथ क्या लिया, रही-सही 'कमी' भी पूरी हो गयी और बाबा बेहोशीकी स्थितिमें हो गये। टब-बाथके बाद बाबा भिक्षा किया करते थे, पर अब भिक्षा क्या होती?

बाबाको तुरन्त लिटा दिया गया। रातको बाबा जब कुछ असम्बद्ध बोलने लगे, तब प्रातःकाल अनुमान हुआ कि सम्भवतः बाबाको सन्निपात हो गया है। तुरन्त डाक्टरको बुलाया गया। डाक्टरने देखते ही कहा – स्थिति सांघातिक है। मैं तुरन्त इंजेक्शन देना चाहता हूँ, अन्यथा कहीं ऐसा न हो कि आप लोग बाबाको खो दें।

परस्परमें विचार-विनिमयके बाद यही तय किया गया कि ऐलोपैथिक दवा बाबाने कभी नहीं ली, अतः इंजेक्शन नहीं देना चाहिये। हाँ, आयुर्वेदिक औषधि अवश्य देनी चाहिये। नगरके श्रेष्ठ वैद्यराज श्रीश्रीपतिजीको बुलाकर आयुर्वेदिक चिकित्सा आरम्भ हो गयी। नगरके तथा मेडिकल कालेजके अनेक डाक्टर बिना बुलाये ही प्रीतिवशात् आ-आ करके बाबाको देखने लग गये। सभी बार-बार स्थितिकी गम्भीरताकी ओर संकेत कर रहे थे। डा.एल.डी.सिंह

तथा डा.एम.एन.शर्मा तो निरन्तर बाबाकी सेवामें लगे रहे। इनकी सेवाकी सराहनाके लिये शब्द नहीं।

११-१-८० शुक्रवारके अपराह्न कालसे शनिवारके सूर्यास्ततक स्थिति बड़ी गम्भीर रही। एक बार तो बाबाकी नेत्र-पुतली स्थिर हो गयी थी। यह देखकर हम सभी लोग काँप उठे। शनिवारकी संध्याके समय लगभग सात बजे बाबाको थोड़ी चेतनता हुई। इससे हम सभी लोगोंको कुछ धीरज बँधा। रातमें बाबाको थोड़ी नींद आयी। प्रातः बाबा बड़े प्रसन्न रहे। पहले जो ज्वर १०५ डिग्री था, वह रविवारको १०२ डिग्री और सोमवारको प्रातः १०० डिग्री रहा। औषधिने काम किया। स्थिति अब पूर्णतः सुधारकी ओर थी।

११-१-८० शुक्रवारको तो प्रातः परिक्रमा हो गयी थी। शनिवारको तथा रविवारको अपराह्न कालमें आराम कुर्सीपर लिटाकर बाबाको परिक्रमा हेतु गिरिराज-परिसरमें लाया गया। उनके चरणोंका भूमिसे स्पर्श करा दिया गया। इसके बाद कुर्सीपर लिटाये-लिटाये एक परिक्रमा करा करके बाबाको वापस कुटियापर ले जाया गया।

* * * * *

श्रीरामचरितमानस का प्रतिपाद्य

सन् १९८० के मध्यकी बात होनी चाहिये। सूर्यास्त हो चुका था। बाबा स्नान करके भिक्षा करनेके लिये अपने आसनपर विराज चुके थे। पत्तलमें भिक्षाके परोसनेकी तैयारी हो रही थी। उस समय लगभग दस-पन्द्रह व्यक्ति बाबाके पास बैठे हुए थे। उनके शान्त और प्रसन्न मुख मण्डलको देखकर एक व्यक्तिने हाथ जोड़कर निवेदन किया – बाबा! मेरे मनमें एक जिज्ञासा है।

बाबाने कहा – पूछिये, क्या जानना चाहते हैं?

उन सज्जनने कहा – बाबा! तुलसीकृत श्रीरामचरितमानसका प्रतिपाद्य तथ्य क्या है?

इस प्रश्नको सुनकर बाबा थोड़े चौंके। प्रश्न तो जटिल अवश्य था, किन्तु था बहुत सुन्दर। प्रश्नकर्ताका परिचय प्राप्त करनेकी भावनासे बाबाने पूछा – आपका परिचय क्या है, आप क्या करते हैं?

उन सज्जनने हाथ जोड़े हुए विनम्रता पूर्वक कहा – मैं इलाहाबादका रहनेवाला हूँ और श्रीरामचरितमानसकी कथा कहा करता हूँ।

वे आगे कुछ बोलें, उनको रोककर बीचमें ही बाबा बोल पड़े – यह तो बड़ी अटपटी बात है। श्रीरामचरितमानसकी कथा कहनेवाले पण्डितजीको मानसके प्रतिपाद्यका ज्ञान नहीं हो, यह बात समझमें नहीं आती!

उन कथावाचकजीने कहा – यह बात आपकी या किसीकी समझमें भले न आये, पर सचमुच मेरे मनमें यह प्रश्न बहुत दिनोंसे बना हुआ है।

बाबाने एकदम सीधा प्रश्न किया – जैसे अन्य कई कथावाचक अपने पाण्डित्यका प्रदर्शन करनेके लिये कुछ प्रश्न करते हैं, कुछ कुरेदते हैं, कुछ कहते हैं, क्या आप भी वही कर रहे हैं?

कथावाचकजीने पुनः कहा – बाबा! सचमुच मैं वह प्रतिपाद्य जानना चाहता हूँ, इसीलिये ऐसा प्रश्न किया है।

बाबा तो उनके मनकी भीतरी बात जानना चाहते थे, अतः उन्होंने फिर पूछा – क्या आप मेरी परीक्षा ले रहे हैं?

कथावाचकजीने कहा – परीक्षा नहीं, शिक्षा लेने आया हूँ।

बाबाने पुनः उलटकर तीखे स्वरमें प्रश्न किया – क्या आप मेरी वंचना कर रहे हैं?

उन कथावाचकजीने विनम्रता पूर्वक कहा – मैं एक साधारण ब्राह्मण हूँ। मानसकी कथा कहकर अपने परिवारका भरण-पोषण करता हूँ। अब आप सोचें कि क्या कथा कहनेवाला एक साधारण ब्राह्मण किसी तपस्वी संन्यासीकी वंचना करनेका साहस कर सकता है? यदि मुझे वंचना ही करनी थी तो मैं किसी अन्यकी करता। आपकी वंचना करके मुझे कहाँ ठहरनेकी ठौर मिल पायेगी? क्या मैं आपकी वंचना करनेकी बात कभी सोच सकता हूँ? मैंने आपकी कीर्ति सुनी है। आपके संतत्वपर मेरा पूरा विश्वास है। मुझे मेरी जिज्ञासाका सही-सही समाधान मिलेगा, यह आशा लेकर मैं आपके श्रीचरणोंके समीप आया हूँ। आप विश्वास करें, मैं आपकी न वंचना करने आया हूँ और न परीक्षा लेने आया हूँ, अपितु मैं अपना वह प्रश्न आपके समक्ष रख रहा हूँ, जिसका उत्तर मुझे कहीं मिल नहीं पाया है। मेरे साथ तो दीपक तले अँधेरावाली उक्ति चरितार्थ हो रही है।

उन कथावाचकजीके सरल और सत्य निवेदनसे बाबा द्रवित हो उठे। सच्चे और सरल प्रश्नका संत सदैव स्वागत किया करते हैं। बाबाने कहा – सर्वप्रथम, आपकी सच्चाईकी मैं हृदयसे जय-जयकार मनाता हूँ। अब जो भी समझमें आ रहा है, उसे बतलानेका प्रयास कर रहा हूँ। यह बात सिद्धान्ततः सही है कि मरते समय व्यक्ति झूठ नहीं बोलता। अन्तिम क्षणोंमें उसके भीतर

सत्यके लिये आग्रह रहता है। अब गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजके श्रीरामचरितमानसके अन्तिम काण्ड अर्थात् उत्तरकाण्डके एकदम अन्तिम अंशको देखें। उत्तरकाण्डके एकदम अन्तमें गोस्वामीजीने तीन कवित्त लिखे हैं। इन तीन कवित्तोंके बाद उन्होंने दो दोहे लिखे हैं –

मो सम दीन न दीन हित तुम्ह समान रघुबीर।
अस बिचारि रघुबंस मनि हरहु बिषम भव भीर।।
कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम।।

इन दो दोहोंमें श्रीगोस्वामीजीने अपने जीवनाराध्य भगवान श्रीसीतारामजीसे अपनी आन्तरिक प्रार्थना और वास्तविक कामनाका निवेदन किया है। वह आराध्य और आराधकके मध्य होनेवाले व्यक्तिगत और आन्तरिक सम्बन्धकी बात है। इन दो दोहोंमें गोस्वामीजीने अपनी निजी भावनाका उल्लेख किया है। इन दो दोहोंसे पहले जो तीन कवित्त लिखे गये हैं, उनमें तीन बातें कही गयी हैं।

प्रथम कवित्त है –

पाई न केहि गति पतित पावन राम भजि सुनु सठ मना।
गनिका अजामिल ब्याध गीध गजादि खल तारे घना।।
आभीर जमन किरात खस स्वपचादि अति अघ रूप जे।
कहि नाम बारक तेपि पावन होहिं राम नमामि ते।।

इस प्रथम कवित्तमें भगवानके नामकी महिमा बतलायी गयी है। जिसने भी भगवन्नामका आश्रय लिया, चाहे वह कोई हो और कैसा भी हो, उसकी सारी बात बन गयी और उसके लोक-परलोक-परमार्थ सभी सुधर गये। भगवन्नामके आश्रयसे नितान्त पतित भी परम पावन हो जाता है।

अब दूसरा कवित्त है –

रघुबंस भूषन चरित यह नर कहहिं सुनहिं जे गावहीं।
कलिमल मनोमल धोइ बिनु श्रम राम धाम सिधावहीं।।
सत पंच चौपाईं मनोहर जानि जो नर उर धरै।
दारुन अबिद्या पंच जनित बिकार श्रीरघुबर हरै।।

इस दूसरे कवित्तमें भगवानके चरित्रकी महिमा बतलायी गयी

है। जो मनुष्य भगवानकी लीलाका कथन-श्रवण-गायन करते हैं, उनके मनकी सारी मलिनता दूर हो जाती है, पाँचों प्रकारकी अविद्याके विकार नष्ट हो जाते हैं और अन्तमें उसे भगवानके परम धामकी प्राप्ति होती है। तीसरा कवित्त है –

सुंदर सुजान कृपा निधान अनाथ पर कर प्रीति जो।
सो एक राम अकाम हित निर्बानप्रद सम आन को॥
जाकी कृपा लवलेस ते मतिमंद तुलसीदासहूँ।
पायो परम बिश्रामु राम समान प्रभु नाहीं कहूँ॥

इस तीसरे कवित्तमें भगवानकी कृपाकी महिमा बतलायी गयी है। दयासिंधु भगवानकी अनाथोंपर बड़ी प्रीति होती है। उन कृपा-मूर्ति भगवानकी कृपाके बिंदु मात्रसे संसार-सिंधु ही सूख जाता है और मुक्ति सहज सुलभ हो जाती है। उन सदा निष्काम और पूर्ण कृपाधामकी कृपाका आश्रय लेनेसे परम विश्राम मिलता है।

बाबा बड़े प्यार भरे शब्दोंमें उन कथावाचकजी महाराजको मानसका मर्म बतलाते जा रहे थे। बाबाने कहा – प्रथम कवित्तमें भगवन्नाम, दूसरे कवित्तमें भगवल्लीला और तीसरे कवित्तमें भगवत्कृपाकी महिमाका वर्णन है। बस, यही भगवन्नाम, भगवल्लीला और भगवत्कृपा ही श्रीरामचरितमानसका प्रतिपाद्य है और विभिन्न रीतिसे इन तीनोंकी महिमाका बखान करते हुए मानसमें यही कहा गया है कि इनका आश्रय लेनेसे मानव-जीवनको पूर्ण सफल और पूर्ण सुन्दर बनाया जा सकता है। मानसके सभी पात्र, चाहे वे सुन्दर हों या असुन्दर, निकृष्ट हों या उत्कृष्ट, सभी इसी तथ्यका अपनी क्रियाओंसे परिपोषण करते हैं। श्रीरामचरितमानसके सारे पात्रोंका, सभी संवादोंका और आद्यन्त कथाप्रवाहका एक मात्र यही संदेश है कि भगवन्नाम-भगवल्लीला-भगवत्कृपा, इन तीनोंके आश्रयसे जीवनमें ऊँची-से-ऊँची वस्तुकी प्राप्ति सहज सम्भव है और श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ आध्यात्मिक स्थितिकी भी उपलब्धि हो सकती है।

इस सारे निवेदनको हाथ जोड़े हुए वे कथावाचकजी दत्त-चित्त होकर सुन रहे थे। उनके दोनों कपोलोंपर उभरती हुई भाव-रेखाएँ तथा उनके दोनों नेत्रोंकी भीगती हुई स्थिर-पुतलियाँ उनके परम संतोष,

उनके परम आनन्द और उनकी परम तृप्तिको व्यक्त कर रही थीं।

ये तीनों कवित्त हमारे मानस-पाठके मध्य नित्य आते हैं और सदा सभीके सामने रहते हैं, पर सदा सामने रहकर भी उनका मर्म अव्यक्त ही रहता था। व्यक्त रह करके भी अव्यक्त रहना, ऐसे रहस्यात्मक भ्रमको दूर कर पाता है कोई मर्मी ही। उस अव्यक्त रहस्यका मर्मोद्‌घाटन हो पाता है उसके द्वारा, जिसे उस मर्मकी पहचान हो और जिसकी उस रहस्यतक पहुँच हो। बाबाके श्रीमुखसे श्रीरामचरितमानसके प्रतिपाद्यको सुनकर सभी विस्मित थे, पुलकित थे और आनन्दित थे।

* * * * *

चातकी निष्ठा

जनवरी मासकी बात है। बाबा प्रतिदिन प्रातःकाल नवद्वीपके श्रीबड़ेबाबाजी (पूज्य श्रीराधारमणचरणदासजी महाशय) का जीवन वृत्त सुना करते थे। यह जीवन वृत्त 'चरित सुधा'के नामसे छः भागोंमें प्रकाशित है। वृत्त सुननेका यह क्रम बहुत दिनोंसे चल रहा था। २५ जनवरीके प्रातःकाल कुछ ऐसा प्रसंग आया, जिसका प्रतिपाद्य यही था कि भक्त सर्वदा संसारसे विमुख रहकर सर्वथा ईश्वरोन्मुखी रहता है। बाबा इसी भावमें बह रहे थे। बहते-बहते ऐसा लगने लगा कि उनकी वृत्ति कहीं अन्यत्र डूब जाना चाहती है। तभी बाबाने ये श्लोक कहे –

ऐहिकामुष्मिकी चिन्ता नैव कार्या कदाचन।
ऐहिक तु सदा भाव्यं पूर्वाचरितकर्मणा।।
आमुष्मिकं $\frac{\text{प्रियः}}{\text{प्रभुः}}$ कृष्णः स्वयमेव करिष्यति।
सरःसमुद्रनद्यादीन्विहाय चातको यथा।।
तृषितो म्रियते चापि याचते वै पयोधरम्।
एवमेव प्रयत्नेन साधनानि विचिन्तयेत्।।

ये श्लोक पद्मपुराणके हैं। बाबाको ये अत्यन्त प्रिय रहे। कभी-कभी इन श्लोकोंके बारेमें बाबा कहते थे – इन श्लोकोंकी रचना करते समय भगवान् श्रीवेदव्यासजी महाराजकी न जाने कैसी भावमयी

स्थिति रही होगी। जब-जब इन श्लोकोंकी स्मृति होती है, तब-तब भावका स्रोत केवल बहता नहीं, उसका प्रबल प्रवाह उमड़ पड़ता है।

चातककी निष्ठा बाबाके लिये सदा ही भावोद्दीपक रही है। जब भी चातककी एक-निष्ठताका प्रसंग आता, बाबाकी गति-मति-स्थिति कुछ और ही हो जाया करती थी। वही बात आज हुई। भगवान वेदव्यासजी द्वारा रचित इन तीनों श्लोकोंको कहनेके बाद बाबाने मन्द स्वरमें कहा – 'पी कहाँ? पी कहाँ? कुछ देर मौन रहकर फिर बाबाने करुण स्वरमें कहा – 'पी कहाँ? पी कहाँ?' थोड़ी देर बाद फिर इसी प्रकारसे कहा और कहकर फिर मौन ही नहीं हुए, सर्वथा अन्तर्मुख हो गये। बाबा तो अपने आसनपर बैठे हुए थे, पर अपने ही कन्धेका सहारा लेनेके लिये उनकी गर्दन एक ओर लटक गयी। पास बैठे हुए लोग एकटक उनकी निःस्पन्द-निश्चेष्ट मुखाकृतिकी ओर देखने लगे।

बहुत देरतक ऐसी स्थिति बनी रही। परिक्रमाका समय हो रहा था। बाबाको प्रकृतिस्थ करनेके लिये उनसे अनुरोध किया गया – बाबा! अभी मंजन करना है न?

यह अनुरोध अनसुना रह गया। थोड़ी देर बाद पुनः अनुरोध किया गया। यह अनुरोध भी निष्फल रहा। बाबाकी यह स्थिति याद दिला देती है पहले कभी सुनी हुई एक बातकी। पहले कई बार ऐसा हुआ है कि प्रबल भावावेगके कारण बाबाको शरीरकी सुधि नहीं रहती थी। पूज्या माँ बाबाको भिक्षा कराने बैठी हैं। बाबाके सामने पत्तल है तथा पत्तलमें माँने रोटी-शाक-दाल परोस दिया है, पर भिक्षा करनेकी सुधि बाबाको नहीं। तब माँ कहती – बाबा! रोटीका टुकड़ा तोड़िये। टुकड़ेके साथ शाक भी लें।

कई बार मुखका ग्रास मुखमें और हाथका ग्रास हाथमें ही रह जाता। बार-बार स्मरण कराना पड़ता कि ग्रास खा लें। जिस प्रकार एक बालकको भोजन कराया जाता है, पूर्णतः उसी भाँति भिक्षा करानी पड़ती।

आज भी बाबाकी अन्तर्मुखता कम नहीं थी। किंचित् प्रयासके बाद बाबा थोड़े बहिर्मुख हुए। आसनपरसे उठाकर बाबाको धीरे-धीरे लाया गया। शारीरिक अशक्तताके कारण उठने-बैठने-चलनेके समय बाबाको थोड़े सहारेकी आवश्यकता पड़ा करती थी, पर इस समय तो

केवल अशक्तता नहीं, भाव-निमग्नताके कारण शरीरमें शिथिलता भी पर्याप्त थी। कुछ दूरीपर स्थित पाटेपर जब बाबाको मंजन करनेके लिये बैठाया गया, वहाँ बैठते ही बाबा पुनः अन्तर्मुख हो गये। रह-रह करके बाबाको स्मरण दिलाना पड़ रहा था कि आप मंजन कर लें। मंजन-स्नानादिसे निवृत्त होकर बाबा परिक्रमाके लिये पधारे अवश्य, पर शरीरमें शिथिलता होनेके कारण चलनेकी क्रिया प्रयास और सावधानीके उपरान्त सम्पन्न हो पा रही थी।

कुछ दिनों पहलेकी एक बात है। बाबासे सहज रूपसे बातचीत हो रही थी। बातचीतके प्रवाहमें प्रसंगानुरोधसे मैं बाबाको विभिन्न संतों-भक्तोंके भिन्न-भिन्न आदर्श सुनाने लगा। केरलके एक संत हैं, जिनके जीवनका आदर्श है वृक्षसे टूटकर नीचे गिरा हुआ सूखा पत्ता। उस सूखे पत्तेको पवन जहाँ चाहे, वहाँ ले जाये। इसी प्रकार भगवत्कृपा मुझे जहाँ चाहे, वहाँ ले जाये; जैसे चाहे, वैसे रखे। अपना कोई आग्रह अथवा अनुरोध नहीं।

व्रजमण्डलके एक संत थे, जिनका आदर्श था कन्दुक। क्रीड़ारत प्रिया जब कन्दुक उछालती हैं तो प्रियतम अपने हाथमें थाम लेते हैं और जब प्रियतम उस कन्दुकको उछालते हैं तो श्रीप्रिया अपने आँचलमें रोक लेती हैं। मैं उनके विलास और विनोदका उपकरण बना रहूँ।

श्रीकृष्णप्रेमजी भिखारी (अँगरेज महात्मा श्रीनिक्सन साहब) का आदर्श था धनुषसे छूटा हुआ तीर, जो बीचमें कहीं रुकता नहीं, ठहरता नहीं। बस, सर्व-प्रथम लक्ष्यतक पहुँचना है। लक्ष्य-प्राप्ति ही तीरकी तीव्र गतिकी सीमा है।

परम भक्त श्रीसूरदासजीका आदर्श था चकोर, निरन्तर चकोरवत् अपने प्राणाराध्यके मुख-चन्द्रकी सुन्दर सलोनी छविका दर्शन करना।

संत कबीरका आदर्श रहा है चितापर चढ़ी हुई सती। प्रज्वलित चिताकी ज्वालासे घिरे रहनेपर भी जिसके अधरोंपर आहकी कराह नहीं, लपटोंसे लिपटी देहके दग्ध होते रहनेपर भी देहकी ओर जिसका ध्यान नहीं, बस, उस सतीका है एक ही स्वर, एक ही चाह – 'कब देखौं मुख पीव, कबरु मिलहुगे राम'।

विभिन्न संतों-भक्तोंके भिन्न-भिन्न आदर्शोंको मैं कह ही रहा था

कि बाबा तुरन्त बोल उठे – भइया रे! मेरा आदर्श तो चातक है, जो निरन्तर 'पी-कहाँ', 'पी-कहाँ' रटता ही रहता है।

जिनकी राधाके जीवनमें क्रन्दन-ही-क्रन्दन है, उन बाबाके जीवनका आदर्श 'पी-कहाँ', 'पी-कहाँ' की सदा-सर्वदा रट लगानेवाला चातक हो तो क्या आश्चर्य? बाबाके समक्ष जब-जब चातक-निष्ठाकी चर्चा होती और चातकी-निष्ठा भी जहाँ फीकी पड़ जाये, उस राधा-हृदयस्थ-श्याम-निष्ठाकी, श्यामानुरागिणी राधाकी अचिन्त्य निष्ठाकी जब-जब चर्चा आती, तब-तब बाबाकी चेष्टाओंका रूप, उनकी मुखाकृतिका रंग, उनके स्वरोच्चारका ढंग कुछ और ही हो जाया करता था। न जाने कैसे बाबा इन सबको अपने भीतर सँजोये रहते थे और छिपाये रह पाते थे।

* * * * *

परमार्थ और प्रपंच

सन् १९८१ के फरवरी मासमें एक दिन भाई श्रीभीमसेनजी चोपड़ाका मन बहुत खिन्न हो गया। यह खिन्नता हुई बाबाके पास आनेवाले लोगोंकी जागतिकताको देखकर। बाबाके पास लोग आते हैं, शहरके लोग आते हैं, दूर-दूरसे लोग आते हैं और वे लोग अपनी जागतिक समस्याएँ बाबाके सामने रखते हैं। किसीको नौकरी चाहिये, किसीके परिवारमें झगड़ा है, किसीको चिकित्साके लिये सहायता चाहिये, कोई पढ़ाईकी फीसके लिये व्यवस्था चाहता है और विधवा बहिनोंका प्रश्न सबसे जटिल होता है। सभी लोगोंके मनमें अपनी-अपनी समस्याके लिये अत्यधिक महत्त्व है और उन-उन समस्याओंको समझनेमें और सलटानेमें बाबाका काफी समय निकल जाया करता है। भाई श्रीचोपड़ाजीके शब्दोंमें वह समय व्यर्थ ही जाता है। जितने लोग बाबाके पास आते हैं, उनमें लगभग अस्सी-नब्बे प्रतिशत लोग अपनी पारिवारिक- शारीरिक-सांसारिक समस्या लेकर ही आते हैं। बाबा यदि केवल भक्ति सम्बन्धी चर्चा करते तो न जाने कितने लोगोंको प्रेरणा मिलती, परन्तु इस सांसारिक चर्चामें बाबाका बहुत-सा समय खप जाता है। इसे देखकर श्रीचोपड़ाजीने बाबासे कहा – बाबा! व्रजभूमिके एक

संत हैं। वे जगतके प्रपंचसे सम्बन्धित बात न सुनते हैं और न करते हैं। उनसे कोई बात होती है तो केवल भगवद्विषयक। इसका परिणाम यह है कि उनके चारों ओरका वातावरण आध्यात्मिकताके सुवाससे सदा परिपूर्ण रहता है। उस आध्यात्मिक वातावरणके फलस्वरूप उनके पास आनेवाले हर व्यक्तिको लोकोत्तर सुख-शान्ति-शीतलताकी प्राप्ति होती है। क्या आप भी ऐसा नहीं कर सकते कि आपके पास आनेवाले आपके सामने एकमात्र आध्यात्मिक और साधनात्मक समस्या रखा करें।

बाबाने श्रीचोपड़ाजीसे कहा – आपने व्रजभूमिके जिन संतकी बात बतलायी, उनकी वह रहनी और करनी सब प्रकारसे अनुमोदनीय और अभिनन्दनीय है। क्या आप वही मुझसे भी चाह रहे हैं? अरे चोपड़ाजी! मेरी दृष्टि सर्वथा दूसरी है। यह पारमार्थिक है और वह प्रापंचिक है, यह भेद मेरे लिये नहीं रह गया है। पारमार्थिक और प्रांपचिक कहकर कोई वर्गीकरण करना चाहे तो भले कर ले। कोई वर्गीकरण करके मात्र पारमार्थिक और आध्यात्मिकको ग्राह्य तथा प्रापंचिक और सांसारिकको त्याज्य भले समझे और तदनुसार आचरण भले करे, परन्तु मेरा स्तर सर्वथा अलग है। मेरी दृष्टिमें तो क्या परमार्थ और क्या प्रपंच सर्वत्र और सदैव भगवल्लीलाका नित्य विलास है। मेरे लिये दिन और रात, यह और वह, यह सारा भेद समाप्त हो गया। 'जित देखूँ तित स्याममयी है'। भगवानके चिद्विलासके अतिरिक्त और है क्या? अतः मैं क्यों एकको वरेण्य और दूसरेको निन्दनीय मानूँ? मैं तो भगवद्भावकी रसमयी लहरोंपर लहराता रहता हूँ और जब जैसा सामने आता है, सबमें भगवद्दर्शन करते हुए तदनुसार कार्य करता रहता हूँ।

इस उत्तरसे श्रीचोपड़ाजीकी सारी खिन्नता दूर हो गयी। केवल खिन्नता दूर नहीं हुई, अपितु परम प्रसन्नता हुई। प्रसन्नता हुई इसलिये कि भगवत्प्राप्त संतकी भागवती दृष्टिका प्रकर्ष उदाहरण देखने-समझनेका अवसर मिला। 'सियराम मय सब जग जानी' अबतक पढ़ते थे, सुनते थे और कहते थे, परन्तु आज उसका प्रत्यक्ष जीवन्त रूप देखनेको मिला।

* * * * *

श्रीगिरिराज-परिक्रमा की एक झाँकी

सन् १९८१ के वर्ष श्रीराधाष्टमी-महोत्सव रविवार ६ सितम्बरको था। महाराजजी (पूज्य श्रीबालकृष्णदासजी महाराज) गीतावाटिका ३ सितम्बर, ८१ के दिन पधारे। साथमें श्रीठाकुरजी तथा अन्य लोग थे। बाबा प्रातःकालसे ही महाराजजीकी प्रतीक्षा कर रहे थे। ज्यों ही महाराजजीके आनेका संवाद मिला, बाबाने आगे बढ़कर महाराजजीका स्वागत किया। हाथ पकड़े-पकड़े महाराजजीको बाबा अपनी कुटियातक ले आये तथा विराजित होनेके लिये एक उच्चासन दिया। महाराजजी तो बाबासे मिलकर विह्वल हो रहे थे। नेत्र तो उनके बन्द थे, पर महाराजजी अपने नेत्रोंके प्रेमाश्रुओंको बार-बार पोंछ रहे थे। भावके शमित होनेपर महाराजजीको पुष्पमाला स्मरण हो आयी। श्रीबिहारीजीकी प्रसादी-माला महाराजजी अपने साथ वृन्दावनसे ले आये थे। ज्यों ही महाराजजीने अपने हाथमें पुष्पमाला ली और बाबाको पहनानी चाही, त्यों ही बाबाने वह पुष्पमाला अपने हाथमें ले ली और वह पुष्पमाला महाराजजीको ही पहना दी। ऐसा तो पहले कभी नहीं होता था। बाबाद्वारा माला पहनाये जानेके नवीन प्रसंगको देखकर सभी बड़े आनन्दित हुए। फिर महाराजजीने दूसरी माला बाबाको पहनायी। कुशल समाचार पूछनेके बाद बाबा कहने लगे — आपके शुभागमनसे ही इस वर्ष राधाष्टमी-महोत्सवका शुभारम्भ हो गया। आपकी उपस्थितिसे ही इस महोत्सवकी शोभा है। इतना ही नहीं, आपकी उपस्थितिमें ही महोत्सवकी सम्पन्नता निहित है।

जब महाराजजी बाबाके पाससे विश्राम करने तथा प्रातःकालीन स्नानादि नित्य-क्रियासे निवृत्त होनेके लिये चले गये, इसके बाद भी बाबाने वह माला नहीं उतारी। वह प्रसादी-माला महाराजजीके सांनिध्यका सुख प्रदान कर रही थी। महाराजजी अपनी शय्यापर किंचित् विश्राम करनेके लिये लेट चुके हैं, इस संवादके मिलनेके बाद ही बाबाने माला उतारी और उतारकर उसे अपने बिस्तरके सिरहाने रख ली।

दिनांक ५ सितम्बर अर्थात् सप्तमी तिथिको तो परिक्रमाके समय बड़ा ही सुन्दर दृश्य देखनेको मिला। बाबा तो अपने नित्य-नियमके अनुसार श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा कर रहे हैं, पर उनके साथमें श्रीप्रिया-प्रियतम भी हैं। कल अपराह्नकालमें वृन्दावनसे श्रीश्रीरामजी श्रीफतेहकृष्णजीकी रासमण्डली आ गयी थी। श्रीश्रीजी तथा श्रीठाकुरजी शृङ्गार धारण करके बाबाके साथ-साथ परिक्रमामें चल रहे हैं। बाबाका हाथ कभी श्रीश्रीजी अपने हाथमें ले लेती हैं और कभी श्रीप्रियतम अपने हाथमें। इधर तो श्रीहरिवल्लभजी और श्रीफतेहकृष्णजी सुन्दर-सुन्दर पद गा रहे थे और उधर श्रीप्रिया-प्रियतमसे हँसते-बतराते हुए बाबा मन्द गतिसे परिक्रमा लगा रहे थे। उस समयका दृश्य बड़ा चित्ताकर्षक था। श्रीप्रिया-प्रियतमके साथ बाबा परिक्रमा दे रहे थे कि रासमण्डलीके स्वामी श्रीफतेहकृष्णजीने रासके पदोंका गायन आरम्भ कर दिया। फिर क्या कहना था? परिक्रमा-पथमें श्रीप्रिया-प्रियतमने रास-नृत्य आरम्भ कर दिया। एक बार परिक्रमा करनेका क्रम ठहर गया। श्रीप्रिया-प्रियतमका नृत्य तो, बस, देखने योग्य ही था। बार-बार यही लग रहा था कि श्रीसूरदासजीकी पंक्तियाँ यहाँ यथार्थ रूपसे घटित हो रही हैं। 'नृत्यत स्याम स्यामा हेत'।

एक बड़ी विचित्र बात और। नृत्य करते-करते एक-दो बार ऐसा हुआ कि ज्यों ही नृत्यके बीच समकी ताल आयी, श्रीप्रियतमने बाबाके चिबुकका स्पर्श किया – श्रीप्रियतमका ऊपर उठा हुआ दाहिना हाथ बाबाके चिबुकका स्पर्श कर रहा है तथा बाँया हाथ पीछेकी ओर फैला हुआ है। इस छविको देखकर हम सभीको आनन्द तो हुआ ही, आनन्दसे अधिक आश्चर्य हुआ। कोई सोच ही नहीं सकता था कि अत्यधिक मर्यादावादी और अत्यधिक संगोपनप्रिय बाबाके प्रति ऐसी चेष्टा भरी सभाके बीच हो सके। बाबाकी अप्रसन्नताको मोल लेनेका साहस भला कौन करेगा? पर इस ठाकुरको तो न तनिक संकोच और न किंचित् संभ्रम! ऐसी उन्मुक्त चेष्टाको देखकर हम सभीको बड़ा ही आश्चर्य हुआ।

श्रीप्रियतमकी इस सर्वथा सहज चेष्टाके बारेमें महाराजजी तो बादमें

हमलोगोंसे स्पष्ट रूपसे कहने लगे कि इस ठाकुरस्वरूप पर बाबाके 'आन्तरिक भाव-स्वरूप'की छाया अवश्य पड़ी है। यदि बाबाके 'आन्तरिक भाव-स्वरूप'की स्फूर्ति इन ठाकुरजीके अन्दर नहीं हुई होती तो यह सम्भव ही नहीं था कि रास-नृत्य करते-करते ऐसा हो सके।

जिस पदको तो समाजी गा रहे थे, उसी पदको अपनी मौजमें श्रीप्रियतम नृत्य करते-करते, नृत्यमयी चालसे चलते-चलते दूर बैठे हुए बाबाके पास आये और बाबाके कानमें धीरेसे कहा – तुव मुख चंद चकोर मेरे नैना राधे!

मैं बाबाके पास, एकदम समीप बैठा हुआ था, अतः श्रीप्रियतमकी यह परम ऐकान्तिक उक्ति मुझे भी सुनायी पड़ गयी। इसे सुनकर बाबा श्रीप्रियतमकी ओर चकित दृष्टिसे देख रहे थे और हम एक-दो व्यक्ति बाबा और श्रीप्रियतमकी ओर अवाक् बने हुए देख रहे थे। सचमुच, महाराजजीने जो कहा था, वह सही कहा था। एक अन्य प्रसंगने तो महाराजजीके कथनकी और भी अधिक पुष्टि कर दी। जब श्रीप्रिया-प्रियतमके साथ बाबा परिक्रमा लगा रहे थे तो श्रीहरिवल्लभजीने एक-दो पदोंके गानेके बाद अगले पदका गायन आरम्भ किया –

'यह बन आप ही सौं सुहात'।

परिक्रमाके बीचमें ही बाबाके चिबुकका अँगुलियोंसे स्पर्श करके श्रीप्रियतम कहने लगे – हे किसोरीजू! हे राधेजू!! आपसौं ही या वनकी सोभा है।

* * *

निर्माणाधीन श्रीराधाकृष्णमन्दिरकी नींवकी खुदवायीके कामका आरम्भ षष्ठी तिथिको हो चुका था। नींवकी दीवालको खड़ी करनेका शुभ मुहूर्त राधाष्टमीको ही था। प्रातःकालीन प्रभातफेरीके बाद यह कार्य सम्पन्न हुआ। सन् १९७१ ई. में बाबूजी नित्य लीलामें लीन हुए थे। तबसे लेकर अबतक बाबाने किसी भी उत्सव-पण्डालमें प्रवेश नहीं किया था, पर आज बाबाकी प्रेमाधीनता देखने योग्य थी। नींव भरनेका कार्य आरम्भ हो, इसके पहले श्रीगणेशजी-श्रीवास्तुदेवता आदिके पूजनका कार्यक्रम एक छोटे-से पण्डालमें सम्पन्न होनेवाला था। सबके मनपर

यही संस्कार था कि बाबा तो पण्डालमें जायेंगे नहीं, अतः हम लोगोंने इतनेपर ही सन्तोष कर लिया था कि बाबा खुले आकाशके नीचे दूर बैठे हुए इस कार्यक्रमको देखते रहें। बाबाके बैठनेके लिये एक समुचित स्थान निश्चित भी कर लिया गया था।

शृङ्गार धारण किये हुए श्रीप्रिया-प्रियतम बाबासे अनुरोध करने लगे; अनुरोध नहीं, उन्होंने आग्रह करना आरम्भ कर दिया – बाबा! आप तो हमारे साथ-साथ चलें। बस, चले चलें।

और इस आग्रहका वह सुन्दर परिणाम देखनेको मिला, जो विगत दस वर्षोंमें नहीं हुआ था। श्रीप्रिया-प्रियतमके स्नेह-सने वचनोंको बाबा टाल नहीं सके। बाबाकी दृष्टिमें रासलीलाके ये स्वरूप वस्तुतः श्रीप्रिया-प्रियतम ही हैं। मेरा ऐसा अनुमान है कि बाबाको कुछ संकोच अवश्य हो रहा होगा, पर बाबा उनके अनुरोधको टाल नहीं पा रहे थे। श्रीप्रिया-प्रियतमके स्नेहानुरोधको सम्मान देते हुए और उनके हाथोंका सहारा लिये हुए बाबा पूजन-पण्डालमें आये। श्रीप्रिया-प्रियतम एक उच्च सिंहासनपर विराजित हुए और बाबाको अपने मध्यमें ही उसी सिंहासनपर विराजित कर लिया। पूजनके उपरान्त सर्वप्रथम महाराजजीने सिमेंट-कंकड़का गारा नींवमें डाला, इसके बाद पूज्या माँने डाला, तदुपरान्त बाईने और इस प्रकार नींवकी दीवालको खड़ा करनेके कार्यका शुभारम्भ हुआ।

इस बार रास-लीलाका रस ऐसा बहा कि बाबातक बहुत प्रभावित हुए। अन्योंकी क्या कही जाये, गीतावाटिकासे रासमण्डलीके चले जानेके बाद स्वयं बाबाने कहा कि वाटिका उदास लग रही है।

* * * * *

भगवद्रुचि और कार्यचुनाव

आदरणीया बहिन विमला देवी भारद्वाजका भतीजा प्रिय श्रीराकेश शर्मा २० मार्च १९८१ को गोरखपुर आया। वह लखनऊके मेडिकल कालेजमें पढ़ता था। होलीकी छुट्टियोंमें पूज्य बाबाका दर्शन करनेके लिये चला आया। उसकी चार वर्षकी पढ़ाई पूरी हो चुकनेमें, केवल एक वर्ष और रह गया था। जब वह प्रणाम करके पूज्य बाबाके पास बैठा हुआ

था, तब उससे पूज्य बाबाने पूछा – अध्ययन पूरा कर चुकनेके बाद क्या विचार है? नौकरी करोगे अथवा स्वतन्त्र रूपसे चिकित्सा-कार्य करोगे?

श्रीराकेशने बतलाया – बाबा! अभी मैंने कुछ सोचा नहीं है। एम.बी. बी.एस. की डिग्री मिलनेके बाद पिताजीसे पूछकर ही कोई निर्णय लूँगा।

पूज्य बाबाने प्रिय श्रीराकेशकी मातृ-पितृ-परायणताकी उन्मुक्त सराहना की। फिर उससे पूज्य बाबाने कहा – कार्यके चुनावके बारेमें यदि भगवानकी इच्छाकी जानकारी हो जाय तो और भी सुन्दर बात होगी। यदि भगवानकी रुचिके अनुसार कदम उठाया और बढ़ाया जाय तो फिर सारी जिम्मेदारी भगवानके ऊपर आ जाती है। अब प्रश्न यह उठता है कि भगवानकी रुचिकी जानकारी कैसे हो। जानकारी प्राप्त करनेकी जो सात्त्विक प्रक्रिया है, उसके बारेमें मैं तुमको कुछ बतलाऊँ, इसके पहले तुम यह बतलाओ कि तुम किनकी आराधना करते हो?

श्रीराकेश – भगवान शिवकी।

पूज्य बाबा – क्या तुमने यज्ञोपवीत ले रखा है?

श्रीराकेश – अभी नहीं। हमारे यहाँ आजकल ऐसी प्रथा हो गयी है कि जनेऊ विवाहके अवसरपर कुछ दिन पहले दिया जाता है।

पूज्य बाबा – कोई बात नहीं। क्या तुम तीन दिनतक केवल फल खाकर रह सकते हो?

श्रीराकेश – आसानीसे रह सकता हूँ।

पूज्य बाबा – तीन दिनतक अन्नका एक कण भी नहीं खाना है। अन्नसे स्पर्शित वस्तु भी नहीं लेनी है। जब तुम अध्ययन पूर्ण कर चुको और तुम्हारे सामने प्रश्न खड़ा हो कि मुझे द्रव्यार्जनके लिये कौन-सा मार्ग चुनना चाहिये, उस समय तुम एक काम करना। यह तो मेरा मात्र परामर्श है, किन्तु यदि इस परामर्शके अनुसार कार्य करोगे तो तुमको बहुत लाभ होगा। उस समय तुम तीन दिनतक केवल फलके आहारपर रहना। इस तीन दिनकी अवधिमें अधिक-से-अधिक 'नमः शिवाय' का जप करना। आवश्यक निद्रा अवश्य लेना। शौच-स्नान आदिसे निवृत्त होनेके बाद जपमें लग

जाना। भगवान शिवसे मार्ग-प्रदर्शनके लिये प्रार्थना करना। उनसे अनुनय करना कि मैं किस मार्गका अनुसरण करूँ। जो उचित हो, वह आप बतलानेकी कृपा करें। इस प्रकार यदि तुम यह प्रार्थना संयम-सदाचार पूर्ण रहते हुए ईमानदारीसे श्रद्धा-सहित तत्परतापूर्वक करोगे तो दो बातमेंसे एक बात अवश्य होगी। भगवान शिव स्वप्नमें पधारकर निर्देश दे देंगे कि क्या करना चाहिये। जो निर्देश होगा, वही उनकी रुचि माननी चाहिये। यह होगा अथवा दूसरी बात यह होगी कि भगवान शिव तुम्हारी बुद्धि ही बदल देंगे। तुम्हारी बुद्धि भगवान शिवकी कृपासे इतनी बदल जायेगी और ऐसी निर्मल हो जायेगी कि तुम उसी बातका निर्णय करोगे, जो भगवान शिवको अभीष्ट होगा। भगवानकी रुचिके अनुसार कार्य करनेपर सारी जिम्मेदारी भगवानपर आ जाती है।

यह सब सुनकर प्रिय श्रीराकेशको बड़ी प्रसन्नता हुई।

* * * * *

सरस कथा का आकस्मिक आयोजन

सर्वप्रथम मैं पूज्य श्रीकृपाशकंरजी महाराजको सादर प्रणाम करता हूँ। आप श्रीरामचरितमानसकी सुधा-वर्षिणी और भक्ति-पोषिणी कथा बड़ी रोचक रीतिसे कहा करते हैं। आपका मानस और भागवतपर समान रूपसे अधिकार है। आपका श्रीअयोध्याधाममें स्थायी रूपसे निवास है और आप प्रतिदिन श्रीमद्भागवत पुराणकी कथा कहा करते हैं। जब-जब आप कथा कहते हैं, तब-तब गीतावाटिकाकी दोनों विभूतियों अर्थात् बाबूजी एवं बाबाके सम्बन्धमें कोई-न-कोई चर्चा आपकी कथाके बीचमें प्रायः आ ही जाया करती है। आपका गीतावाटिकासे बहुत पुराना सम्बन्ध है। आपने यहाँ सबसे पहले सन् १९५२ में श्रीरामचरितमानसकी कथा कही थी और उस मानस कथाके प्रधान श्रोता थे पूज्य श्रीसेठजी, बाबूजी तथा बाबा। गीतावाटिकाके आध्यात्मिक वातावरण और इन युगल भाव-विभूतियोंसे आपको सदा प्रश्रय और पोषण मिलता रहा है। यह भी कहा जा सकता है कि वे यहाँसे प्रेरणा लेते रहे हैं और प्रेरणा देते भी

रहे हैं।

बाबाने कई बार कहा है कि मैंने मानस प्रवचन अनेक कथावाचकोंसे सुना है, किन्तु उल्लेखनीय तीन ही व्यक्ति हैं, जिनकी कथा सुनकर बहुत भावोद्दीपन होता है। एक थे श्रीदीनजी रामायणी, दूसरे हैं श्रीकृपाशंकरजी और तीसरे व्यक्तिका नाम बाबाने बतलाया था, पर मुझे इस समय याद नहीं आ रहा है।

सन् १९८१ के आस-पासकी बात होनी चाहिये। एक बार श्रीकृपाशंकरजी महाराज श्रीअयोध्यासे श्रीजनकपुर जा रहे थे और मार्गके बीचमें गोरखपुर पड़ता है, अतः आप यहाँ गीतावाटिकामें बाबाके दर्शनार्थ एक दिनके लिये ठहर गये। दूसरे दिन श्रीजनकपुरके लिये प्रस्थान करनेसे पूर्व बाबूजीकी समाधिके पास श्रीमहाराजजीकी कथाका कार्यक्रम रखा गया। 'रखा गया' के स्थानपर कहना यह चाहिये कि 'स्वान्तः सुखाय', आकस्मिक आयोजन हो गया। यह कोई प्रचारित या विज्ञापित आयोजन नहीं था। मुख्य श्रोता थे बाबा और थे गीतावाटिकाके बीस-तीस लोग।

बाबा जब अपने आसनपर आकर विराज गये, तब श्रीकृपाशंकरजी महाराजने भगवत्कथाका ललित स्वरसे शुभारम्भ किया। वन्दनाके श्लोक कह चुकनेके उपरान्त उन्होंने श्रीमद्भागवत महापुराणका एक श्लोक उठाया। वह श्लोक था –

अजातपक्षा इव मातरं खगाः
स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः।
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा
मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम्॥
(श्रीमद्भागवत – ६/११/२६)

अपने जीवनके अन्तिम क्षणोंमें वृत्रासुर भगवानसे प्रार्थना कर रहा है कि जैसे पक्षियोंके पंखहीन बच्चे चारेके लिये अपनी माँकी बाट जोहते रहते हैं, जैसे भूखे बछड़े अपनी माँका दूध पीनेके लिये आतुर रहते हैं और जैसे वियोगिनी पतिव्रता पत्नी अपने प्रवासी पतिसे मिलनेके लिये उत्कण्ठित रहती है, वैसे ही हे कमलनयन! मेरा मन आपके दर्शनके लिये छटपटा रहा है।

इस श्लोककी व्याख्या करते हुए और कतिपय भक्तोंके जीवनसे दृष्टान्त देते हुए श्रीकृपाशंकरजी महाराजने बतलाया कि जिस प्रकार नवजात पक्षीशावक, क्षुधार्त बछड़ा और वियोगिनी पत्नीके हृदयमें अपने-अपने अभीष्टके लिये जो आकुलता होती है, उससे सम्भवतः कई गुना अधिक आकुलता भक्तके हृदयमें अभीष्ट भगवद्दर्शनके लिये होती है। भगवान और भक्तके मध्य भक्त-हृदयका जो पक्ष है, वही इस श्लोकमें वर्णित है। इस श्लोकमें पक्षी-शावक, गै-वत्स और पतिव्रताकी भावनाका वर्णन तो है, परन्तु इस वर्णनके साथ दूसरे पक्षका अर्थात् पक्षी-गाय-प्रियतमकी भावनाका वर्णन उन्मुक्त रूपसे उभर नहीं पाया है और उसीको उभारते हुए उन्होंने भगवत्पक्षका वर्णन किया। भगवानके हृदयमें भक्तसे मिलनेके लिये जो ललक होती है, उसका वर्णन इतना मार्मिक था कि उसे सुनकर बाबाके नेत्रोंसे अश्रु झर-झर बहने लगे।

श्रीकृपाशंकरजी महाराजने कहा — यदि भगवद्दर्शनके लिये भक्तके हृदयमें अत्युत्सुकता है तो भक्त-मिलनके लिये भगवानके हृदयमें तीव्रोत्कण्ठा है और यह तीव्रोत्कण्ठा उस अत्युत्सुकतासे अनन्त गुना होती है। 'ईस्वर अंस जीव अबिनासी'। वस्तुतः जीव भगवानका अविनाशी अंश है और वे प्रतीक्षा करते रहते हैं कि मेरा अंश जीव, जो भवाटवीमें भटक रहा है, वह मुझसे कब मिलेगा। यदि सरिता सागरसे मिलनेके लिये अत्युत्सुक है तो सागर भी सरिताका स्वागत करनेके लिये तीव्रोत्कण्ठित है।

भक्तके हृदयमें होनेवाली भगवद्दर्शन-लालसाका वर्णन तो सुन्दर था ही, उसीके साथ-साथ भगवानके अन्तरमें जीवसे मिलन हेतु ललकका वर्णन इतना सरस था कि उस वर्णनका एक-एक वाक्य मानो एक-एक सोपान था और सोपान-प्रति-सोपान क्षण-प्रति-क्षण बाबा भाव-सागरमें गहरे-से-गहरे उतरते चले जा रहे थे। इस कथामें श्रोता बाबाके दोनों नयन निमीलित थे ही, वक्ता श्रीमहाराजजीके भी दोनों नयन निमीलित थे। वक्ता और श्रोता दोनोंके निमीलित नयनोंसे अश्रु-बिन्दु अविरल झर रहे थे; बस, अन्तर

इतना ही था कि यदि निमीलित नयन और संसिक्त कपोल बाबा मूर्तिवत् निस्स्पन्द बैठे थे तो भावभरित और प्रीतिविह्वल महाराजजीके अंगोंमें कभी-कभी कोई चेष्टा होती थी। उनके हाथोंमें और हाथोंकी अँगुलियोंमें प्रसंग-वर्णन करते समय भावाभिव्यक्तिके लिये कभी-कभी किसी चेष्टाका हो जाना स्वाभाविक था। सारे वातावरणमें एक मात्र व्याप्त थी श्रीमहाराजजीकी वाणी। इसके अतिरिक्त अन्य कुछ था ही नहीं। हाँ, कभी-कभी सुन पड़ता था पक्षियोंका कूजन। समाधि परिसरमें जो पेड़-पौधे हैं, उनपर बैठे हुए ये पक्षी भी शायद कथा सुननेके लिये आये होंगे और कूजनके मिस शायद कथाकी सराहना ही कर रहे होंगे। सराहना-परायण यह खगकुल-कलरव भी सुन पड़ता था केवल हम अन्य साधारण लोगोंको, पर उनको नहीं, जो कथाके विभोर वक्ता थे और निमग्न श्रोता थे।

यह कथा सम्भवतः एक घण्टा हुई होगी। कथाके पूर्ण होनेके बाद श्रीमहाराजजी अपने विश्राम कक्षमें चले आये और बाबा अपनी कुटियाकी चौकीपर गुम-सुम लेट गये। भगतजीने बाबाकी चौकीपर मच्छरदानी लगा दी, जिससे मक्खी-मच्छरकी बाधा न हो। बाबा दिनभर अपने बिस्तरपर लेटे रहे। मिलने और दर्शन करनेके लिये अनेक लोग दिनभर आते रहे, परन्तु सबको यही लगता था कि आज सम्भाषणकी सम्भावना है ही नहीं। सभी लोग बाड़ेके द्वारसे ही बाबाको प्रणाम करके चले जाया करते थे।

* * * * *

श्रीआनन्दमयी माँ

बाबाके प्रति वन्दनीया माँकी बड़ी महत्त्व-बुद्धि थी। केन्द्रीय सरकारके भूतपूर्व शिक्षा मन्त्री डा. श्रीत्रिगुण सेनके सामने एक बार माँने कहा था – 'राधा बाबा प्रेम, भक्ति और सत्यका प्रतीक। भक्ति मार्गका जीवन्त मूर्ति।'

एक बार और माँने अपने उद्‌गार व्यक्त किये थे 'एक स्थिति है, जहाँ ब्रह्म सिवाय और कुछ नहीं। द्वैत अद्वैत ज्ञान भक्ति सब एक ही है। वही है, जो स्थिति राधा बाबाकी है।'

एक बार माँके एक भक्तके हाथमें बाबाद्वारा लिखित 'जगज्जननी श्रीराधा' नामक पुस्तिका थी। वह पुस्तिका माँकी दृष्टि-पथपर आ

गयी। माँने वह पुस्तिका माँग ली और उनसे कहा – तुम अपने लिये और मँगवा लो।

* * *

माँ योग्य साधकको भी बाबाके पास भेज दिया करती थीं। सन् १९८१ के जूनके मध्यमें माँने एक बंगाली युवक साधकको बाबाके पास भेज दिया। उनका नाम था श्रीनिर्मल ब्रह्मचारी। श्रीनिर्मलजी उच्च घरानेके व्यक्ति थे। वे एक फर्ममें मैनेजर थे। भगवान श्रीकृष्णके दर्शनकी चाह मनमें जगते ही एक कम्बल ले करके तथा अपनी माँको प्रणाम करके घरसे बाहर निकल पड़े। कम्बलके अतिरिक्त उनके पास कुछ भी नहीं था। वे चले आये आनन्दमयी माँके पास। वन्दनीया माँने इनके वस्त्र तथा आवासकी व्यवस्था की। इनकी श्रीकृष्ण-भक्ति देख करके माँने यही उचित समझा कि श्रीनिर्मल ब्रह्मचारीको गीतावाटिकाके राधा बाबाके पास भेज दिया जाये। माँने अपने निजी व्यक्तिसे कहा – आप निर्मलको राधा बाबाके पास छोड़ आइये। फिर राधा बाबा जानें। जबतक राधा बाबा चाहें, अपने पास रखें और जबतक निर्मल चाहे, वहाँ रहे।

वे सज्जन अपने साथ श्रीनिर्मलजीको तो लाये ही थे, इसके अतिरिक्त माँ द्वारा प्रदत्त चन्दन-पुष्पमाला और पुष्कल प्रसाद लाये थे, जिसको बाबाने बड़े ही सम्मानके सहित स्वीकार किया। माँके द्वारा भेजे गये श्रीनिर्मलजीको बाबा एकान्त वार्ताके लिये अधिक-से-अधिक समय देते। श्रीनिर्मलजीके खान-पानके स्पर्शास्पर्श सम्बन्धी नियम बड़े ही कठोर थे। उन नियमोंके निर्वाहमें कभी भी तनिक बाधा उपस्थित न हो, एतदर्थ बाबाका अत्यधिक ध्यान रहता। श्रीनिर्मलजीके भोजनकी व्यवस्था बहिन विमलाको सौंपकर बाबा निश्चिन्त थे और बहिन विमलाने बाबाके उस विश्वासमें कभी भी खरोंच लगने ही नहीं दी। श्रीनिर्मलजी बहुत दिनोंतक गीतावाटिकामें रहे। फिर वन्दनीया माँके पास वापस चले गये।

* * *

एक विचित्र संयोगकी बात लिख रहा हूँ। बाबा तथा माँ दोनों ही लकवासे ग्रस्त हुए। दोनोंके शरीरपर २० तारीखको लकवाका झटका आया और दोनोंके शरीरके दक्षिण अंग लकवासे प्रभावित हुए। ज्यों ही माँको बाबाके लकवा-ग्रस्त होनेकी सूचना मिली, त्यों ही एकदम चैतन्य होकर

'हरी-हरी-हरी' उच्चारण करने लगीं। फिर माँने आदेश दिया कि आज ही गीतावाटिका पत्र लिख दो – बाबाका शरीर खराब हो गया है। यह माँको ठीक नहीं लगा।

राधा बाबा, राधा बाबा, राधा बाबा, नमो नारायण, नमो नारायण, नमो नारायण।

* * *

बाबा कई बार कहा करते थे कि माँ भारतकी परमोच्च कोटिकी आध्यात्मिक विभूति हैं। बाबाको माँके दर्शन तीन बार हुए। इसके बारेमें बाबाने बताया – जब-जब माँके दर्शन हुए, तब-तब यही अनुभव हुआ कि मेरे सम्मुख साक्षात् भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीजी विराजित होकर अपना पावन दर्शन दे रही हैं। तीनों बार एक ही जैसा दर्शन होना स्वयंमें एक बहुत बड़ी बात है। जिस दिव्य रूपमें दर्शन मिले, वह छवि आजतक हृदय-पटलपर ज्यों-की-त्यों अंकित है।

* * *

गीतावाटिकामें २६ अगस्त १९८२ को श्रीराधाष्टमी महोत्सव सोत्साह मनाया गया और २८ अगस्त १९८२ को शोक समाचार मिला कि पूज्या श्रीआनन्दमयी माँ नहीं रहीं। ज्यों ही माँके निधनका समाचार मिला, बाबा एकदम अवसन्न हो गये। राधाष्टमी-महोत्सवका उल्लास बड़ा संकुचित-स्तंभित हो गया। सबके मनमें खिन्नताने घर कर लिया। बाबाने जब जल ही ग्रहण नहीं किया, तब भिक्षाका तो प्रश्न ही नहीं। २८ अगस्तके सारे दिन सारी रात बाबा निर्जल-निराहार रहे। दूसरे दिन २९ अगस्तके प्रातःकाल गंगाजल तो स्वीकार किया, पर ४४ घंटा निराहार रहनेके उपरान्त बाबा भिक्षाके आसनपर तब ही बैठे, जब वन्दनीया माँके पार्थिव शरीरका अन्तिम संस्कार कनखलमें हो गया।

बाबा तो श्रीआनन्दमयी माँकी गरिमाका वर्णन करते थकते ही नहीं थे। बाबाने एक बात और कही। माँका निधन हुआ था २८ अगस्तको। निधनके बारह दिन बाद ९ सितम्बरको माँ अपने दिव्य स्वरूपसे बाबाके पास पधारीं तथा परस्परमें संलाप भी हुआ।

* * * * *

विरहिणी बहिन कुमुद

एक पंजाबी बहिनका इतिवृत्त सुनकर बाबा बड़े द्रवित हुए थे। इस बहिनका नाम था कुमुद। इसका जन्म पंजाबके मुलतान शहरमें हुआ था। जब इसके माता-पिता मुलतानमें रहते थे, तब तो पंजाबका दौरा करते समय पं.श्रीजवाहरलालजी नेहरू इनकी कोठीपर ठहरे थे। जब कुमुदकी आयु छोटी थी, तभी वह अपने माता-पिताके साथ बम्बई आ गयी थी। जब यह सात वर्षकी थी, तभी इसके पिताजीका देहान्त हो गया था। इसके एक भाई था, जो इससे दो वर्ष बड़ा था। भाईकी धार्मिक पुस्तकोंमें बड़ी रुचि थी। वह प्रायः गीताप्रेससे प्रकाशित पुस्तकोंको तथा धार्मिक पत्रिका 'कल्याण'के अंकोंको बड़े मनोयोगपूर्वक पढ़ा करता था। उन्हीं पुस्तकोंको तथा कल्याण-पत्रिकाको कुमुद भी चावपूर्वक पढ़ा करती थी। जब कुमुदकी आयु लगभग पन्द्रह वर्षकी थी, तब वृन्दावनसे श्रीहरगोविन्दजीकी रास-मण्डली बम्बई गयी हुई थी। उस रासलीलाको देखनेके लिये ये दोनों भाई-बहिन जाया करते थे। उस रासलीलाका कुमुदके कोमल मनपर बड़ा प्रभाव पड़ा। भगवान श्रीकृष्णकी भक्ति-भावनामें उसका मन बहने लगा। यह भाव-धारा और भी वेगवती हो गयी अपने भाईके वियोगसे। एक दिन समुद्र-स्नान करते समय समुद्रकी लहरें उसके भाईको बहा ले गयीं। भाईके आकस्मिक वियोगने कुमुदके अन्तरमें संसारके प्रति आत्यन्तिक विरक्ति भर दी। घोर उदासी और प्रबल निराशाकी स्थितिमें उसका स्वास्थ्य बहुत गिर गया। उसे कहीं कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। संसारकी असारताको देखकर वृन्दावनेश्वर श्रीकृष्णके श्रीचरणोंपर सर्व समर्पित कर देनेका लौल्य उसके मनमें जाग उठा। महावियोगिनी प्रेमयोगिनी मतवाली मीराके भावोंके अनुसार, बस, एक ही बात कुमुदके मनमें रह गयी थी –

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई।।

इस समय बहिन कुमुदकी आयु लगभग उन्नीस वर्षकी होगी। इन दिनों कुमुदके मनकी केवल एक ही पुकार थी कि मैं वृन्दावन कब पहुँचूँगी। एक दिन कुमुदने अपनी माँसे कहा – माँ! तू मुझे वृन्दावन ले चल।

माँके सामने अनेक सांसारिक विवशताएँ थीं। जब माँने अपनी कुछ पारिवारिक उलझनों तथा कुछ जागतिक रुकावटोंका बयान किया तो कुमुदने अति खिन्न मनसे अपनी माँसे कहा – क्या तू यही चाहती है कि मैं अपना जीवन समाप्त कर लूँ?

विवश होकर माँ कुमुदको लेकर वृन्दावन आयी। वृन्दावन आकर माँ-बेटी पहले एक धर्मशालामें ठहरीं। फिर एक पंजाबी सद्गृहस्थके घरमें कमरा किरायेपर लेकर रहने लग गयीं। किसी कारणसे माँको वापस बम्बई जाना पड़ा तो माँ कुमुदकी सँभालका भार उन सद्गृहस्थ पंजाबीजनपर छोड़ गयी।

उधर माँ तो बम्बई गयी और इधर श्रीकृष्ण-विरहसे व्यथिता भक्तिमती कुमुदकी दशा कुछ और ही थी। व्यथाके अतिरेकमें कुमुद क्या-क्या करती थी, यह तो कुमुद ही जाने, पर उसके परिचितोंने इतना अवश्य देखा कि वह एक बड़ी मटकी लेकर यमुना-स्नानके लिये जाती, स्नान करनेके बाद मटकीको यमुना-जलसे भरकर अपने सिरपर रख लेती और घरकी ओर वापस आते समय रास्तेभर यही कहती – क्या नन्दलाल! मेरी मटकी फोड़ने नहीं आओगे?

किसीको सुनानेके लिये नहीं, प्रबल भावोंका वेग जब सीमाका अतिक्रमण करने लगता था, तब वह गाने लगती थी –

जन्म जन्म के बिछड़े साथी साथ निभाओ।
जीवन के अँधियारे पथ पर दीप जलाओ।।
जैसे तैसे भूले भटके ही आ जाओ।
अंत समय है और मुझे अब मत तरसाओ।।

उसको भोजन करनेकी फुरसत भला कहाँ? कच्चे आटेको पानीमें घोलकर वह पी लेती। एक बार उस कमरेमें रहते समय कुमुद बहुत बीमार हो गयी तो एक दूसरी संतसेवी श्रद्धालु बहिन उसका उपचार करनेके लिये उसे अपने घरपर ले आयी। इन्हीं दिनों 'कल्याण' पत्रिकामें बाबा द्वारा लिखित 'श्रीकृष्ण- लीला-चिन्तन' क्रमशः धारावाहिक रूपसे प्रकाशित होता था। कल्याण-पत्रिकामें वह 'श्रीकृष्ण-लीला-चिन्तन'को पढ़ते-पढ़ते अघाती नहीं थी। इसके वाचनसे उसकी भक्ति-भावना अत्यन्त उद्दीप्त हो उठती थी। इसके अतिरिक्त बाबूजीके पत्रोंको पढ़नेमें उसकी रुचि थी। 'कामके पत्र' शीर्षक

स्तम्भके अन्तर्गत बाबूजीके पत्र 'कल्याण' पत्रिकामें प्रायः छपा करते थे। इससे उसको बड़ा अवलम्ब मिलता था। यह 'श्रीकृष्ण-लीला-चिन्तन' और ये पत्र कुमुदके प्राणोंकी निधि थे। दिनके समय कुमुद लाल स्याहीसे कॉपीमें 'राधा-राधा' लिखा करती थी। सन्ध्याके समय वह लहँगा पहिनकर अपने ठाकुरजीके सामने नाचा करती थी। वह नाच-नाच करके अपने ठाकुरको रिझाया करती थी। उसका कण्ठ बड़ा मधुर और ललित था। वह पदोंको गा-गा करके अपने ठाकुरको सुनाया करती, केवल अपने ठाकुरको। उसके जीवनका सारा माधुर्य और सारा लालित्य अब एक मात्र जीवनधन प्राण-प्रियतम श्यामसुन्दरके लिये था। अन्य अवसरपर वह कभी गीत गाती नहीं थी, मनुहार करनेपर भी वह मौन ही रहती। उसका व्रत था कि यदि सुनाना है तो केवल अपने ठाकुरको ही। जब वह भावभरे मनसे अपने ठाकुरजीको पद सुनाया करती थी तो उसके निकटवर्ती जन भी छिप-छिप करके उसके पदोंको सुना करते थे। उसका सबसे प्रिय पद था —

गोबरधनवासी साँमरे तुम बिन रह्यौ न जाय हो।
ब्रजराज लड़ैते लाड़िले।।
बंक चितै मुसिकाय के लाल सुंदर बदन दिखाय हो।
लोचन तलफें मीन ज्यों पल छिन कल्प बिहाय हो।।

श्रीचतुर्भुजदासजीद्वारा रचित इस पदमें छब्बीस पंक्तियाँ हैं और इस एक पदको वह तीन-चार घंटेमें पूरा कर पाती थी। कई बार मकानकी छतपर खड़ी होकर वह पगली कुमुद निर्लज्ज होकर पुकारने लगती थी — प्रियतम! तुम कब आओगे?

इस पागल पुकारकी कोई सीमा तो थी नहीं। मतवाली मीराके समान उसकी एक ही अकुलाहट थी, एक ही छटपटाहट थी, एक ही अनुरोध था, एक ही अभिलाषा थी —

प्यारे दरसन दीज्यो आय।
तुम बिन रह्यो न जाय।।
जल बिन कमल चंद बिन रजनी,
ऐसे तुम देख्याँ बिन सजनी,
आकुल ब्याकुल फिरूँ रैन दिन,

बिरह कलेजौ खाय।
प्यारे दरसन दीज्यो आय॥

प्रीतम बोलो कब आवोगे?
कब वीणाकी झंकारों पर बन अमर गीत छा जावोगे?

यह एक ऐसी आग है, जो बुझाये बुझती नहीं; एक ऐसा रोग है, जो मिटाये मिटता नहीं और उस रोगीको कितना ही समझाओ, वह समझाये समझता नहीं। उस विरहिणी कुमुदकी, बस, एक ही आह थी और एक ही आवाज थी –

कब होगा हमसे प्यार सखी।
मेरी वीणा है मूक पड़ी, सोये हैं इसके तार सखी,
पर कभी झनक ही उठती है, ले बजनेका अधिकार सखी,
मेरी इस नीरव वीणाकी, है यही मूक झंकार सखी।
कब होगा हमसे प्यार सखी॥

क्या शान्त कभी होगी मेरी, दुख दर्द भरी हुंकार सखी,
क्या शीतल फिर हो पायेंगे, मेरे मनके अंगार सखी,
क्या लुप्त शून्यमें ही होंगे, आकुल उरके उद्‌गार सखी।
कब होगा हमसे प्यार सखी॥

आ दीन दशा देखे मेरी, वह प्रीतम प्राणाधार सखी,
आ स्वयं आप वह कर जाये, इस पीड़ाका उपचार सखी,
दुखिया प्राणोंका सम्बल वह, है जीवनका शृंगार सखी।
कब होगा हमसे प्यार सखी॥

रोदन ही बहिन कुमुदका जीवन था, विकल अश्रुधारा ही उसकी सहेली थी और 'श्रीकृष्ण-लीला-चिन्तन' का सदा वाचन ही उसके लिये सान्त्वनाका स्रोत था। इन्हीं आँसुओंसे भीगे-भीगे उसके दिन कट रहे थे कि एक दिन उसकी माँ बम्बईसे आयी उसे बम्बई लिवा जानेके लिये। माँने कहींपर कुमुदके सम्बन्धकी बात तय कर ली थी। लड़की सयानी हो गयी है, अतः विवाह कर देना उचित है। कन्याके दायित्वसे मुक्त होनेके लिये ही वह कुमुदको अपने साथ बम्बई ले गयी। न चाहते हुए भी माँके अनुशासनपर कुमुदको बम्बई जाना पड़ा। बम्बई जानेसे पहले कुमुदने उस संतसेवी श्रद्धालु बहिनसे कहा – जिस तरह

तुमने मेरी इतनी सँभाल की, बस, वैसे ही तुम मेरा एक काम और कर देना। कल्याण-पत्रिकामें क्रमशः छपनेवाला यह 'श्रीकृष्ण-लीला-चिन्तन' जब कभी भी भविष्यमें पुस्तकाकार छपे, तब उसकी एक प्रति मेरे पास अवश्य भेज देना। अवश्य-अवश्य भेज देना।

कुमुदने जाते-जाते इस अनुरोधको दो बार या चार बार नहीं, आठ-दस बार नहीं, कम-से-कम बीच-पच्चीस बार दोहराया होगा। बम्बई पहुँचनेपर कुमुदकी चाहके विरुद्ध उसकी माँने उसका विवाह कर दिया। जिस नये घरमें कुमुदने बहूके रूपमें प्रवेश किया, वहाँका वातावरण सर्वथा अनुकूल नहीं था। उस प्रतिकूल वातावरणमें उसका दम अत्यधिक घुटने लगा और क्या ही दुर्भाग्यकी बात! उस विकट प्रतिकूलताकी भीषण ज्वालामें एक दिन अति विकला कुमुदका जीवन आहुति बन गया। विवाहके बाद वह ससुरालमें अधिक दिन नहीं जी पायी। थोड़े दिनोंके बाद ही वह संसारसे विदा हो गयी। इस दारुण शोक समाचारको सुनकर कुमुदकी माँ तो चीख मारकर रो पड़ी। माँके मनमें बड़ी कसक थी कि मैं उसको वृन्दावनसे वापस क्यों लायी? कुमुदके निधनके बाद उसकी माँ पागलिनीकी भाँति उस श्रद्धालु बहिनके पास वृन्दावन आयी और रो-रो करके कहने लगी – कुमुद गयी, कुमुद चली गयी, कुमुद सदाके लिये संसारसे चली गयी।

वह श्रद्धालु बहिन तो सुनकर अवाक् रह गयी। कुमुदके दिव्य भविष्यके बारेमें उसने कितनी सुहावनी कल्पनाएँ सजा रखी थीं, इसे सुनते ही वे सब-की-सब ढह गयीं। 'बिधि गति बड़ि बिपरीत बिचित्रा।' कुछ भी कहा नहीं जा सकता कि कब क्या हो जायेगा।

बहिन कुमुदके विदा हो जानेके कुछ वर्ष बाद 'श्रीकृष्ण-लीला-चिन्तन' जब पुस्तकाकार छपकर तैयार हुआ तो वह श्रद्धालु बहिन उस ग्रन्थको पढ़कर सुनाती और कुमुदकी दिवंगत आत्मासे कहती – तू जहाँ भी हो, इसे सुन ले।

उन श्रद्धालु संतसेवी बहिनसे वृन्दावनमें मैंने जब बहिन कुमुदका यह करुण वृत्त सुना तो सचमुच मेरा तन-मन सिहर उठा। मैं अपने भावोंका संवरण नहीं कर पाया और यह वृत्त मैंने बाबाको सुनाया। मैंने सन् १९८३ ई. के मई मासमें बाबाको सुनाया था। बहिन

कुमुदके संक्षिप्त परिचयको सुनते समय बाबाके नेत्र कई बार सजल हुए। वे कई बार पुलकित हुए। बाबाका मन रह-रह करके द्रवित हो रहा था। कुमुदकी भक्ति-भावनाको देखकर बाबाको आह्लाद हो रहा था, पर असमयमें ही उसके चले जानेसे बाबाको खिन्नता भी कम नहीं हो रही थी। बाबाके अन्तरमें हर्ष और विषाद, दोनों ही हो रहे थे। इस सारे वृत्तको सुनकर बहिन कुमुदके बारेमें बाबा कहने लगे – निश्चित ही वह भगवान् श्रीकृष्णमें विलीन हो गयी होगी। अब प्रश्न है यह कि उसकी इच्छाकी पूर्ति कैसे हो? अब उसको पुस्तक कैसे दी जाये?

मैं बाबाके भावोंको अपनी मूर्खताको कारण समझ नहीं पाया और एक अनाड़ीकी भाँति मैं बोल उठा – जब वह चली गयी, तब भला उसे कैसे दी जा सकती है?

फिर बाबाने कहा – उसके निमित्तसे किसीको मैं दे दूँ तो कैसी बात रहे?

मैंने तुरंत इसका अनुमोदन किया और तभी यह निश्चित हो गया कि आगामी १५ मईको अक्षय तीज है, इसी अक्षय तीजके दिन 'श्रीकृष्ण-लीला- चिन्तन'की एक प्रति विमला बहिनको दे दी जाये। बहिन विमला विप्र-कुलोद्भवा है और इसके अतिरिक्त परम भक्त-हृदया है।

अक्षय तीजके प्रातःकालकी बात है। परिक्रमा होनेमें अभी कुछ विलम्ब था। बाबाने भगतजीसे 'श्रीकृष्ण-लीला-चिन्तन' की एक प्रति मँगवायी। संयोगकी बात, यह वही प्रति थी, जो बाबाके उपयोगमें आया करती थी। बाबाने बहिन विमलाको बुलवाया। बहिन विमलाको तनिक भी पूर्व-जानकारी नहीं थी कि बाबा मुझे क्यों बुला रहे हैं। उस समय बाबाके पास कुल चार-पाँच व्यक्ति खड़े थे। बाबाने वह प्रति अपने हाथमें लेकर दिवंगत कुमुदका अत्यधिक संक्षिप्त परिचय दिया – एक बहिन थी। उसका मन श्रीकृष्ण-भक्तिसे परिपूर्ण था। उसकी इच्छा थी कि जब 'श्रीकृष्ण-लीला-चिन्तन' पुस्तकके रूपमें छप जाये तो उस पुस्तकको प्राप्त करूँ। पहले यह कल्याण-पत्रिकामें क्रमशः छपा करता था। इसके पुस्तकाकार छपनेके बहुत पहले ही वह बहिन कुमुद इस भूतलसे विदा हो गयी। उसीके निमित्तसे यह पुस्तक मैं तुमको दे रहा हूँ।

बहिन विमलाने अपना आँचल फैला दिया। अपने हाथसे बाबाने उसके आँचलमें दे दिया। देते समय बाबा बड़े विभोर हो रहे थे। बाबाने विभोर स्वरमें कहा – इस पुस्तकसे तेरा अशेष मंगल होगा और तेरे माध्यमसे उस बहिन कुमुदका भी अशेष मंगल होगा।

बाबाके नेत्र तो सजल थे ही, बहिन विमलाकी आँखें तो और भी अधिक भरी हुई थीं। उस पुस्तकको अपने आँचलमें सँभालते-समेटते हुए बहिन विमलाने याचना की – बाबा! आप आशीर्वाद दें कि भगवान् श्रीकृष्णमें अहैतुकी प्रीति हो।

ऐसा कहते-कहते बहिन विमला अत्यधिक विह्वल हो रही थी। जिसके निमित्तसे ग्रन्थ दिया जा रहा था, उसके कारण बाबा विभोर थे ही, निर्मल हृदया विमलाकी निश्छल विह्वलताने बाबाके भावोंको और भी उद्वेलित कर दिया। बाबाने प्रसन्न वाणीमें कहा – होगी, अवश्य होगी। बेटी! मुझको तुमपर गौरव है। तुम्हारा हृदय जैसा सुन्दर है और तुम्हारा जीवन जैसा सात्त्विक है, वह मेरे लिये गौरवकी वस्तु है।

जिस समय बाबाने पुस्तक प्रदान की, उस समय सारा वातावरण इतना गम्भीर, इतना भावपूर्ण, इतना संवेदनशील हो गया कि क्या कहा जाये? मैं तो वहीं था, खड़े-खड़े सब देख रहा था। देखते-ही-देखते वातावरणका रंग-ढंग कुछ लोकोत्तर हो गया था। उस भाव-भीने वातावरणमें बहिन विमलाने भूमिपर माथा टेककर बाबाको प्रणाम किया। सबने मन-ही-मन बहिन विमलाके भाग्यकी सराहना की कि इसे अक्षय तीजके दिन बाबाने ऐसा अमोघ आशीर्वाद दिया तथा अक्षय तीजके दिन बाबाके हाथसे 'श्रीकृष्ण-लीला-चिन्तन' पुस्तक मिली। 'एहि सम पुन्य पुंज कोउ नाहीं'।

* * * * *

मन्दिर की मूर्तियों का चयन

गीतावाटिकामें श्रीराधा-कृष्ण-मन्दिरके निर्माणका कार्य चल रहा था। हम सभी लोगोंकी चाह ऐसी रही कि सन् १९८४ ई.की श्रीराधाष्टमीके अवसरपर मन्दिरमें श्रीविग्रहोंकी प्रतिष्ठा हो जाये। अब प्रश्न था श्रेष्ठ और सुन्दर श्रीविग्रहोंके चयनका। मूर्तियोंकी शिल्पकलाकी दृष्टिसे जयपुरकी ख्याति बहुत अधिक है। बाबाकी ऐसी अभिलाषा थी कि मन्दिरमें जो श्रीविग्रह प्रतिष्ठित हों, वे कैशोर्य-लावण्यकी आभासे मण्डित हों और ऐसी मूर्तियोंके चयनके लिये यदि श्रीमहाराजजी वृन्दावनसे जयपुरकी यात्राका कष्ट उठा सकें तो अति सुन्दर हो।

बाबाने वृन्दावन पत्र भेजनेके स्थानपर मुझे ही वृन्दावन भेजा और श्रीमहाराजजीके लिये संदेश दिया – पत्रके रूपमें स्वयं बंकाजीको ही भेज रहा हूँ। यदि आप अस्वस्थ हों तब तो मुझे कुछ भी कहना ही नहीं है, पर यदि आपका स्वास्थ्य आपको अनुमति दे तो एक अनुरोध है। यदि आप जयपुर पधारनेका कष्ट कर सकें तो बड़ी कृपा होगी, जिससे श्रीराधाकृष्णकी किशोर आभायुक्त मूर्तिका सुन्दर चयन हो सके। मुझे आपकी 'आँखों' पर विश्वास है, इसीलिये ऐसा अनुरोध है। उनकी किशोर-कान्तिकी ओर संकेत करते हुए श्रीविल्वमंगलजीने श्रीकृष्णकर्णामृतमें कहा है –

तत्कैशोरं तच्च वक्त्रारविन्दं तत्कारुण्यं ते च लीलाकटाक्षाः।
तत्सौन्दर्यं सा च सान्द्रस्मितश्रीः सत्यं सत्यं दुर्लभं दैवतेऽपि॥

मूर्ति ऐसी हो, जिसमें इस प्रकारकी किशोर-कान्तिकी भावनाका प्राबल्य हो।

मैं ११ नवम्बरको वृन्दावन पहुँचा। प्रणाम करनेके पश्चात् महाराजजीके समक्ष बाबाका संदेश मैंने निवेदित कर दिया। एक ओर मैं संदेशका निवेदन कर रहा था, पर दूसरी ओर मैं संदेहसे ग्रस्त भी हो रहा था। महाराजजी सर्दी-ज्वरादिसे पीड़ित थे, अतः मेरे मनमें दुविधाका उत्पन्न होना स्वाभाविक था कि पता नहीं महाराजजी जयपुर जायेंगे अथवा नहीं। अगले दिन १२ नवम्बरको महाराजजीने जयपुर जानेके लिये अपनी सहमति प्रदान कर दी कि वे १५ नवम्बरको

चलेंगे। इसे सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।

महाराजजी १५ नवम्बरको जयपुर पधारे तथा श्रीराधाकृष्णकी किशोर-आभायुक्त मूर्तिके निर्माणके लिये आवश्यक निर्देश शिल्पकारको देकर १६ नवम्बरको वृन्दावन वापस आ गये। वृन्दावनसे लौटकर जब मैं गोरखपुर आया तो बाबाने सारा विवरण सुना। जब बाबाको यह ज्ञात हुआ कि महाराजजी अपनी अस्वस्थताके बाद भी यात्राका कष्ट उठाकर जयपुर गये तो बाबाका मन भर आया तथा उच्च स्वरसे पुकारते हुए उनका अभिनन्दन-अभिवन्दन करने लगे।

शिल्पकारको मूर्तिकी सम्यक् कल्पना प्रदान करनेके लिये महाराजजीने भगवान् श्रीकृष्णका एक चित्र स्वयं बनाया था। वे तो भगवती श्रीराधाका भी चित्र अङ्कित करना चाहते थे, परंतु समयाभावके कारण कर नहीं पाये। वह चित्र बाबाको दिखलानेके लिये मैं अपने साथ ले आया था।

महाराजजी द्वारा चित्रित भगवान् श्रीकृष्णकी छवि बाबाको दिखलानेके लिये मैं जब चित्रको खोलने लगा तो बाबाको आश्चर्य हुआ कि क्या महाराजजी चित्र बनाना भी जानते हैं। बाबाने उस चित्रको खोलनेसे पहले अपने मस्तकपर धारण किया। लगभग साढ़े-पाँच फीट लम्बे और तीन फीट चौड़े चित्रको खोलकर जब मैंने दिखलाया तो बाबा चित्रांकनकी सराहना करने लगे और उन्होंने उस छविको प्रणाम किया। बाबा बार-बार महाराजजीकी अँगुलियोंकी कलाकी सराहना कर रहे थे।

मैंने बाबासे कहा – आपका संदेश मिलनेके बाद महाराजजी मूर्तियोंकी मुद्राओंके बारेमें चिन्तन करने लगे। महाराजजी यही चाह रहे थे कि बाबाकी कोमल एवं कान्त भावनाओंके अनुरूप ही मूर्तियोंका निर्माण हो। महाराजजी तो यहाँतक सोचने लग गये कि मूर्तियोंकी मुद्राओंके बारेमें बाबासे विचार-विनिमय करनेके लिये मैं हवाईजहाजसे गोरखपुर चला जाऊँ और फिर तुरंत हवाईजहाजसे जयपुर पहुँच जाऊँ।

यह सुनकर विभोर वाणीमें बाबा कहने लगे – किसीकी रुचिके साँचेमें इस प्रकार स्वयंको ढाल देना, बस, महाराजजी जानते हैं। महाराजजी तो महाराजजी ही हैं। गीतावाटिकाके अन्दर जो मन्दिर बन रहा है, उस मन्दिरके इतिहासमें महाराजजीका यह भावात्मक योगदान

और जयपुर पधारकर प्रत्यक्ष योगदान, यह सभी कुछ अप्रतिम है। निर्मित होनेवाले मन्दिरका एवं गीतावाटिकाका यह सौभाग्य है कि महाराजजीका ऐसा सहयोग मिला।

मैंने बाबासे फिर निवेदन किया— चिन्तन एवं पारस्परिक विचार- विनिमयके बाद महाराजजीने यही निश्चित किया कि जिन बाबूजीकी गरिमामयी सिद्धस्थलीपर यह मन्दिर बन रहा है, उनकी रसमयी भावनाओंको ध्यानमें रखते हुए यही उचित होगा कि वंशीवादन-रत श्रीकृष्णके पार्श्वमें प्रसन्न-वदना महाभावमयी श्रीराधा विराजित रहें। यही छवि जयपुरके शिल्पकारको बतला दी गयी।

बाबा कहने लगे— श्रीमहाराजजीकी 'आँख' पर, उनके 'मापदण्ड'पर मेरा विश्वास है। मेरे प्रतिनिधिके रूपमें श्रीमहाराजजी जयपुर पधारे थे। उन्होंने जो निर्णय दिया है, वह मेरा ही है।

* * * * *

अस्वस्थता

श्रीहलधर षष्ठी, २९-८-१९८३ के बादसे ही बाबाके स्वास्थ्यकी स्थिति गिरने लगी थी। जुकाम बिगड़ गया और ज्वर रहने लगा। शरीरमें दुर्बलता तो थी ही, इस विषम परिस्थितिमें प्राकृतिक-चिकित्सकके परामर्शके अनुसार बाबाने कई दिनोंका उपवास कर डाला। दुर्बलतामें और भी दुर्बलता बढ़ गयी और स्थिति गम्भीरतर हो उठी। फेफड़ोंमें बहुत कफ जमा हुआ था, कफके साथ-साथ वात और पित्त भी प्रकुपित हो उठे। तीव्र उदर शूल तथा खाँसीसे एक क्षण चैन नहीं मिल पाता था। रात बैठे-बैठे निकलती थी, कभी बैठना और कभी लेटना।

बाबाने ऐसा स्पष्ट कहा भी कि यह कष्ट किसी अन्यका है, जो मैंने अपने ऊपर ले लिया है। भले ही लिया हुआ कष्ट हो, पर उनकी अति रुग्ण स्थितिको देखना भी तो सह्य नहीं होता। व्यथित हृदयसे एक सज्जनने एक बार बाबासे कुछ निवेदन करनेका साहस किया तो बाबा कहने लगे— मेरे लिये जीवन और मृत्युका भेद

समाप्त हो चुका है। मैं तो जानेके लिये प्रत्येक क्षण प्रस्तुत रहता हूँ। स्वास्थ्य और अस्वास्थ्य, ये दोनों मेरे लिये समान अर्थ रखते हैं। 'उनकी' रुचि ही मेरे लिये महत्त्वपूर्ण है।

ऐसी स्थितिमें भी प्रतिदिन श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा करनेके नियमका निर्वाह केवल इस रूपमें हो पाता था कि बाबाको कुर्सीपर बैठा करके कभी एक अथवा कभी तीन परिक्रमा करवा दी जाती। बहुत दिनोंसे ऐसा क्रम चल रहा था। इतना कष्ट होनेके बाद भी कुर्सीपर बैठे हुए बाबा जब परिक्रमामें आते थे तो पद-गायन-रत हरिवल्लभजीके साथ एक-दो बार आलापचारी करते ही थे। कई बार बाबा निर्देश भी करते थे कि अमुक लीला-पदका गायन करें। हरिवल्लभजी जब उस लीला-पदका गायन करते तो उस समय बाबाकी वह सरसता-सजलता-विवर्णता दर्शनीय होती।

इस भाव-दशाको देखकर महाराजजी तो विभोर हो उठते थे। एक ओर तो शरीरसे अतीत यह भाव-दशा और दूसरी ओर शरीरकी वह रुग्णावस्था, एक विचित्र विरोधाभास देखनेको मिलता। महाराजजी तो अनेक बार कहते – यदि कोई अन्य साधारण प्राणी होता तो वह रुग्णावस्थामें शय्यापरसे उठ ही नहीं पाता।

क्रमशः रुग्णताने और अधिक भीषण रूप धारण किया। अधिक ज्वर हो जानेसे दो-तीन दिन बेहोशी-सी रही। सन्निपातके भी लक्षण कुछ-कुछ दिखलायी देने लग गये। जब हृदय और नाड़ीकी गतिमें कुछ अधिक अनियमितता परिलक्षित होने लग गयी तो डाक्टरोंने निराशाभरे स्वरमें कह दिया कि किसी भी क्षण कुछ भी घटित हो सकता है।

इस वर्ष श्रीराधाष्टमी-महोत्सव १४ सितम्बरको था। सदाकी भाँति इस वर्ष भी श्रीराधाष्टमी-महोत्सव सानन्द सम्पन्न हो गया। उत्सवके समय भी बाबा एवं माँ, दोनों ही अस्वस्थ थे। बाबाकी अस्वस्थताने तो अति भीषण रूप उत्सवके बाद धारण किया। उनकी अस्वस्थतासे सारी गीतावाटिका विकल थी। महाराजजी, जो उत्सवके निमित्तसे यहाँ पधारे थे, वे भी आतुर मनसे क्षण-क्षणपर बाबाके बारेमें पूछते रहते थे।

एक श्रद्धालु बहिनने विकलताभरी वाणीमें बाबासे अवसर पाकर कहा – आप अपना यह कष्ट मुझको दे दीजिये।

बाबाने कहा – हर एकके बसकी बात यह नहीं होती। किसी दूसरेका कष्ट एक सिद्ध संत ही ले सकता है।

२१ सितम्बरकी शामको मेडिकल कालेजके डाक्टर गुप्ताजी बाबाको देखनेके लिये आये। प्रणाम करके गुप्ताजी बाबाके पास बैठ गये। पासमें और भी कई लोग बैठे हुए थे। डा. गुप्ताजीको देखकर बाबाने सच्चर्चा आरम्भ कर दी।

बाबाने कहा – जब जीव भगवानकी ओर उन्मुख होता है, उसी क्षण उसके दिव्य जीवनकी यात्राका शुभारम्भ होता है। यदि वह भगवद्भजनमें निष्ठापूर्वक लगा रहे तो वह निष्ठा उसके जीवनमें उतरने लगती है। इसके बाद उस भजन-निष्ठ जीवनमें भगवत्कृपाके ऐसे-ऐसे अद्भुत चमत्कार उपस्थित होने लगते हैं कि वे मात्र अनुभवकी वस्तु रह जाते हैं। जीवनकी संध्या आनेके पहले जीवको किसी प्रकार भगवानसे प्रगाढ़ परिचय कर लेना चाहिये। फिर तो इस जीवनमें और जीवनके उस पार भी मंगल-ही-मंगल है।

बाबा कुछ और कहना चाहते थे कि डा. श्रीगुप्ताजीने पूछा – आपकी तबीयत कैसी है?

बाबाने ओजस्वी वाणीमें कहा – मेरी तबीयत? मेरी तबीयतकी बात तो मेरे हाथमें है। मैं जिस साँचेमें उसे ढालना चाहूँगा, उसी साँचेमें मेरी इच्छाके अनुसार तबीयतको ढल जाना पड़ेगा। तबीयत तो मेरी इच्छाकी अनुगामिनी है।

यह सुनकर सभी आश्चर्यमें डूब गये। एक ओर शारीरिक स्थिति चिन्ताजनक है और दूसरी ओर शरीरसे अतीत मनका धरातल कुछ और ही है। यह तो ठीक है कि बाबाने किसीका कष्ट अपने ऊपर ले लिया है और वे शरीरसे परे हैं, पर हम साधारण प्राणी उस कष्टको देखकर व्यथित हो उठते थे।

बाबाका अखण्ड नियम था माँका प्रतिदिन दर्शन करनेका। अपनी अस्वस्थताके कारण माँके पास बाबा नहीं जा पाते तो माँ ही कुर्सीपर बैठकर बाबाके पास चली आतीं।

सन् १९८४ का श्रीराधाष्टमी महोत्सव

इस वर्ष श्रीराधाष्टमी ३ सितम्बरको थी। इस महोत्सवमें भाग लेनेके लिये पूज्य श्रीबालकृष्णदासजी महाराजका गीतावाटिकामें शुभागमन ३० अगस्त ८४ को हुआ। यद्यपि यह सूचना मिल चुकी थी कि महाराजजी अपराह्न कालमें पधारेंगे, इसके बाद भी बाबा तो प्रातःकालसे ही महाराजजीकी प्रतीक्षा करने लग गये। बाबाकी दृष्टि अनेक बार घड़ीपर गयी कि कब अढ़ाई बजेंगे। इतना ही नहीं, बाबाने अपने समीपस्थ लोगोंसे कई बार पूछा – महाराजजी आ गये क्या?

बाबाके निजी सेवक भगतजीने कहा – बाबा! अभी अढ़ाई कहाँ बजा है?

इस उत्सुकता-भरी प्रतीक्षाका एक विशेष हेतु था। इस बार दिल्लीमें महाराजजीके पेटमें पौरुष-ग्रन्थि (प्रोस्टेट ग्लैंड) का आपरेशन दिनांक २१ मई ८४ को हुआ था। आपरेशनकी तिथिकी जानकारी होते ही बाबाने अपने निजी परिकर चोपड़ाजीको अपने प्रतिनिधिके रूपमें दिल्ली भेजा था। इस आपरेशनमें महाराजजीको अपार कष्ट हुआ। उस आपरेशनके बाद महाराजजीका बाबासे यह प्रथम मिलन था, अतः प्रतीक्षामें इस प्रकारकी उत्कटताका होना स्वाभाविक था। अपराह्न कालमें महाराजजी गीतावाटिका पधारे। महाराजजी ज्यों ही बाबाकी कुटियाकी ओर बढ़ने लगे, बाबाने उनको देख लिया। बाबा अपने आसनसे उठे और आगे बढ़कर महाराजजीका स्वागत किया। महाराजजीका हाथ अपने हाथमें लेकर बाबा गाने लगे – 'चरन कमल बन्दौं हरि राई'।

बाबाने यह पूरा पद गाया। रिमझिम वर्षा हो रही थी, इसके बाद भी महाराजजीका हाथ अपने हाथमें लिये हुए बाबा वहीं खड़े रहे। वर्षाको देखकर महाराजजीने बाबासे विनम्र आग्रह किया कुटियामें आसनपर विराजनेके लिये। बाबा अपने आसनपर बैठे, परंतु महाराजजीको एक उच्चासनपर बैठा चुकनेके बाद। बैठते ही बाबाने कहा – बड़ी आतुरतापूर्वक मैं आपकी राह देख रहा हूँ। प्रातःकालसे अबतक न जाने कितनी बार मुझे आपकी मधुर स्मृति हो आयी। आप कह सकते हैं कि यह संन्यासी अतिशयोक्ति कर रहा है, पर आप सच मानें, आपका शुभागमन होते ही इस गीतावाटिकाकी शोभा कुछ और ही हो जाती है।

अल्पना स्थली के पूजन के लिए अग्रसर श्रीराधाबाबा एवं श्रीमहाराजजी

राधाष्टमी के अवसर पर शोभायात्रा की शोभा बढाते : श्रीराधाबाबा एवं श्रीमहाराजजी

बाबाने महाराजजीसे स्वास्थ्यका समाचार पूछा। ठाकुर श्रीघनश्यामजीने संक्षेपमें बतलाया। सुनकर बाबा कहने लगे – इस बार तो आपको एक प्रकारसे नवीन जीवन ही मिला है। आपके आपरेशनके निश्चय और तिथिका समाचार मिलते ही मैंने चोपड़ाजीको आपके पास दिल्ली भेज दिया था।

ठाकुरजीने कहा – चोपड़ाजी नहीं, चोपड़ाजीके आवरणमें आप ही पधारे थे।

बाबा कहने लगे – विगत डेढ़ माससे मेरा शरीर विशेष रूपसे अस्वस्थ चल रहा है। श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा भी केवल पाँच ही लगा पाता हूँ और वह भी कुर्सीपर बैठकर। इन दिनों आत्यन्तिक दुर्बलताकी अनुभूति होती रहती है, पर अब दुर्बलता कहाँ? आपके पधारते ही उल्लास और उत्साह लहराने लगा है।

बाबा तथा महाराजजीके बीच और भी बातें होती रहीं। बातचीतके बीचमें बाबाने कहा – जब कभी रातके एक-दो बजे मेरी नींद टूट जाती है और श्रीपोद्दार महाराजकी सामनेवाली समाधिको एकटक देखता हूँ तो उस समय विचित्र प्रकारकी अनुभूतियोंका द्वार खुल जाता है। उस समय निपट एकान्त होता है। मेरे पास कोई नहीं रहता, जिससे किसी प्रकारका व्यवधान उत्पन्न हो। उन एकान्त एवं शान्त क्षणोंमें समाधिका और उसके आस-पासके स्थानका जो दिव्य स्वरूप मेरे 'दृष्टिपथ' पर आता है, उसके बारेमें क्या बतलाऊँ? वह दृश्य जागतिक स्तरका होता ही नहीं। वह तो होता है सर्वथा दिव्य, सर्वथा अनुपम।

बातचीतके बाद बाबा स्वयं महाराजजीके साथ-साथ गये उस कुटियातक, जहाँ महाराजजीके निवासकी व्यवस्था है। वर्षाके कारण राहमें फिसलन बहुत ज्यादा थी, अतः बड़ा सँभल-सँभल कर चलना पड़ रहा था। कुटियामें पहुँचकर बाबाने उस पलंगको प्रणाम किया, जिसपर महाराजजी विश्राम करते थे। उस आसनपर महाराजजीको बैठा करके ही बाबा अपनी कुटियापर वापस आये।

३० अगस्तको चतुर्थी तिथिके दिन श्रीगणपति-पूजन, १ सितम्बरको षष्ठी तिथिके दिन श्रीललिता-जन्मोत्सव, ३ सितम्बरको अष्टमी तिथिके दिन श्रीराधा-जन्मोत्सव, ४ सितम्बरको नवमी तिथिके दिन

दधिकर्दमोत्सव, ५ सितम्बरको दशमी तिथिके दिन श्रीपोद्दारजी-भावार्चन-दिवस और ८ सितम्बरको त्रयोदशी तिथिके दिन षष्ठी-दिवसोत्सव यहाँ सोत्साह एवं सानन्द मनाया गया। वृन्दावनसे श्रीश्रीरामजी-श्रीफतेहकृष्णजीकी रासमण्डली ३० अगस्तको यहाँ आ गयी थी, अतः पंडालमें रासलीला ३१ अगस्तसे आरम्भ हो गयी थी।

इस वर्ष यहाँ जो श्रीराधा-जन्मोत्सव मनाया गया, उसकी सबसे विशेष एवं सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि बाबा इस वर्ष उत्सवके पंडालमें भी पधारे थे। बाबूजीने सन् १९७१ के मार्च मासमें महाप्रस्थान किया था। इसके पहले सन् १९७० ई. में बाबूजीके साथ-साथ बाबा श्रीराधाष्टमी-उत्सवके पंडालमें आये थे। सन् १९७० के बाद सन् १९८४ में यह पहला अवसर था, जब बाबा पंडालमें आये हों।

अष्टमी तिथिके प्रातःकाल सूर्योदयके समय रासमण्डलीके द्वारा श्रीनिमाई-निताई-मिलन लीला प्रस्तुत की जा रही थी। महाराजजीके साथ-साथ बाबा पंडालमें पधारे तथा जबतक लीला होती रही, वे लीलाका दर्शन करते रहे। लीला सम्पन्न हो जानेके बाद बाबाने 'प्रसूति-गृह'का दर्शन किया। यह वही प्रसूति-गृह है, जहाँ मध्याह्नके समय भगवती श्रीराधाके प्रादुर्भावके उपरान्त नीराजन-अर्चन-सम्बन्धी विस्तृत पूजन-कृत्य सम्पन्न होते हैं। तदुपरान्त बाबाने मंचपर सजायी गयी झाँकीका दर्शन किया। इसके बाद प्रभातफेरी प्रारम्भ हुई। प्रभातफेरीमें बाबा और महाराजजी साथ-साथ चल रहे थे। बाबाको अपने बीचमें देखकर प्रभातफेरीमें भाग लेनेवाले भक्तोंके हृदयमें इतना अधिक उल्लास था, 'जनु उमगत आनँद अनुरागा'। सभीके हृदयमें अनुराग और आनन्द इतना अधिक उमड़ रहा था कि 'भए मगन सब देखनिहारे'। इस समय प्रत्येक भक्त अपनी उल्लासमयताके कारण दूसरोंके लिये एक दृश्य बन रहा था और वही भक्त द्रष्टा भी बना हुआ था दूसरोंकी उल्लासमयी छविका दर्शन करनेके लिये। इस उमंगभरी प्रभातफेरीमें आज जन-जन द्रष्टा और दृश्य युगपत् बना हुआ था। बाबा और महाराजजीको साथ लिये-लिये प्रभातफेरी हो रही थी।

राधिकारमण अम्बुजनयन नन्दनन्दन नाथ हे!
गोपिकाप्राण मन्मथमथन विश्वरञ्जन कृष्ण हे!!

उपर्युक्त दो पंक्तियोंके कीर्तनका गगनव्यापी तुमुल नाद जन-जनके आनन्दको अधिकाधिक संवर्धित कर रहा था। प्रेम और प्रमोदसे परिपूर्ण नर-नारी समुदाय आज 'परमानंद हरष उर भरहीं'। पुष्पवर्षाकी सीमा नहीं थी। तुमुल नाद और अतुल मोदमें निमग्न इस प्रभातफेरीकी छटा अद्भुत थी।

'देखत बनइ न जाइ बखानी'।

प्रभातफेरीके बाद श्रीगिरिराज परिक्रमाका कार्यक्रम सम्पन्न हुआ और इसके बाद सम्पन्न हुए सम्पूर्ण दिवसके अन्य कार्यक्रम। इस बार जो भी कार्यक्रम हुए, वे सभी इतने भावोद्दीपक तथा प्रभावोत्पादक थे कि उसका वर्णन सम्भव नहीं। ऐसा लगता था मानो बीजमन्त्रसे अभिमन्त्रित करके सभी कार्यक्रमोंको 'जगा' दिया गया हो। भाव जगा देनेमें समर्थ इन चैतन्य कार्यक्रमोंका प्रभाव ऐसा था कि मन जागतिक धरातलसे सर्वथा दूर जाकर रस-सिन्धुकी लहरोंपर लहराने लगता था।

मध्याह्नके समय ११ बजकर ५६ मिनटपर भगवती श्रीराधाका आविर्भाव होते ही माँने नीराजन किया। माँके कर-पल्लवपर सुशोभित हो रहा था आरतीका थाल और उस आरतीके थालमें प्रज्वलित थीं ग्यारह वर्तिकाएँ। माँके पास खड़ी हुई बाई (सावित्रीबाई फोगला) पुष्पोंकी वर्षा कर रही थी। विपुल पुष्पवर्षा और उच्च घंटा-शंख-नादके मध्य 'आरति श्रीवृषभानुलली की' का मधुर गायन हो रहा था। नीराजनकी मनहारी छवि ऐसी न्यारी और इतनी प्यारी थी कि भक्तगण 'पाइ नयन फल होहिं सुखारी'। नीराजनके बाद महाराजजीने श्रीराधासुधानिधिके श्लोकोंसे स्तुति-गान किया। इसके बाद ठाकुर घनश्यामजीने गाया 'महारस पूरन प्रगट्यौ आनि'। इस पदके बाद दूसरा पद गाया 'चलो वृषभान गोप के द्वार'। पदके गायनमें साथ दे रहे थे श्रीहरिवल्लभजी, श्रीश्रीरामजी और श्रीफतेहकृष्णजी। इन दोनों पदोंके गायनमें सम्भवतः पौन घंटा लग गया होगा। इन पदोंका गायन करते समय ठाकुरजी, वे ठाकुरजी नहीं थे, जो प्रतिदिन हमलोगोंके साथ उठते-बैठते और हिलते-मिलते थे। उनके कलेवरमें कोई रंगभरी रसमयी प्रीतिपगी व्रजांगना समा गयी थी और वह व्रजांगना बड़े भावसे उमंगपूर्वक रसार्द्र स्वरमें गा रही थी उन मांगलिक पदोंको उनके कण्ठके माध्यमसे। वह उमंग सारे वातावरणपर छायी हुई थी। वातावरणका मादक प्रभाव ऐसा था कि सभी भावोन्मत्त हो रहे थे।

मेरे द्वारा एक अपराध घटित हो जायेगा, यदि मैं ऐसा कहूँ कि विगत कतिपय वर्षोंमें मनाये गये उत्सवोंकी अपेक्षा इस वर्षका उत्सव बहुत भव्य और बड़ा भावपूर्ण रहा। भगवदीय भावके राज्यमें तारतम्यकी स्थापना करना एक अपराध है और ऐसा अनुचित कार्य भला, मेरे द्वारा क्यों हो! बस, मैं इतना ही कह सकता हूँ कि इस वर्षका उत्सव रहा बड़ा सुन्दर, अतीव सुन्दर, सुन्दर-से-सुन्दर, सुन्दरातिसुन्दर!

* * * * *

बाबाके 'मिन्तर' श्रीठकुरीबाबू

सन् १९८४ में श्रीराधाष्टमी महोत्सव ३ सितम्बरको था। महोत्सवके कार्य कार्यक्रम सम्पन्न हो जानेके बाद महाराजजी गोरखपुरसे २४ सितम्बरको जाना चाहते थे, परंतु जा पाये २७ सितम्बरको। इसके पीछे भी एक अति सुन्दर एवं रोचक हेतु था। बाबूजीका जन्म-दिवसोत्सव २२ सितम्बरको था। जन्म-दिवसोत्सव मना लिये जानेके बाद महाराजजी चाहते थे २४ सितम्बरको वृन्दावनधामके लिये प्रस्थान करना। ठाकुर घनश्यामजीने इसके बारेमें बात चलायी १८ सितम्बरको। ठाकुरजीकी बात सुनकर बाबाने कहा— यदि तुम लोग नौ दिन और ठहर जाओ तो कैसा रहे? तुम लोग २४ सितम्बरको न जा करके २७ सितम्बरको वृन्दावनके लिये प्रस्थान करो। महाराजजीसे पूछ लो। यदि वे स्वीकार कर लें तो बड़ा अच्छा हो।

ठाकुरजीने बाबासे तुरंत कहा— तीन दिन और रुक जानेमें हमलोगोंको प्रसन्नता ही होगी। इससे आपका सांनिध्य तीन दिन और मिल जायेगा।

अब यह निश्चित हो गया कि महाराजजी २७ सितम्बरको वृन्दावनके लिये प्रस्थान करेंगे। २२ सितम्बरको बाबूजीका जन्म-दिवसोत्सव उत्साहपूर्वक मना लिया गया। इसके चार दिन बाद २६ सितम्बरको प्रातःकाल बाबाके पास नगरसे सूचना आयी कि भक्तहृदय वयोवृद्ध श्रीठकुरी बाबू जालानका देहान्त हो गया है।

श्रीठकुरी बाबूको बाबा प्यारकी भाषामें अपना लँगोटिया यार कहा करते थे। इतना ही नहीं, बहुत स्नेह उमड़नेपर अपना 'मिन्तर' (अर्थात् मित्र) कहा करते थे। वे रासलीलाके बड़े प्रेमी थे। सन् १९४९ के आस-पास जब श्रीघनश्यामजी रासमण्डलीमें ठाकुर स्वरूप बना करते थे, तब रासमण्डलीको श्रीठकुरी बाबूने अपने घरपर ठहराया था। उन्होंने रासमण्डलीको अपने यहाँ केवल ठहराया ही नहीं, अपितु बाबाकी इच्छाके अनुसार अपनी बगीचीमें रासलीला करवायी भी। श्रीठकुरी बाबूका ठाकुर घनश्यामजीके प्रति वात्सल्य-भाव था। वे ठाकुर घनश्यामजीको पुत्रवत् प्यार किया करते थे और लाड-चावमें उन्हें लाला कहा करते थे। जब-जब ठाकुरजी मिलते, तब-तब श्रीठकुरी बाबू उनसे कहा करते थे — लाला ! जब मेरा शरीर पूरा हो तो तुम भी उपस्थित रहना और कन्धा देना।

श्रीठकुरी बाबूकी ऐसी अभिलाषा और श्रीठाकुरजीसे ऐसा अनुरोध, यह भला कैसे सम्भव है ? श्रीठाकुरजीका निवास वृन्दावनमें और फिर स्थान-स्थानपर उनका आना-जाना होता रहता है। इस कठिनाईको सोचकर श्रीठाकुरजी अपने बचावके लिये श्रीठकुरी बाबूको उत्तर दिया करते थे— आपका कहना तो ठीक है, परन्तु इसके बारेमें आपके 'मिन्तरजी' (अर्थात पूज्य बाबा) जाने कि मैं उस समय आपके पास रह पाऊँगा या नहीं। वे चाहेंगे तो ऐसा होना भला कौन-सी बड़ी बात है ?

ज्यों ही श्रीठकुरी बाबूके निधनका समाचार गीतावाटिकामें आया, त्यों ही एक विचित्र-सी बात हम सभीके मनमें कौंध गयी कि क्या अपने लँगोटिया यार श्रीठकुरी बाबूकी उस चाहको पूर्ण करनेके लिये पूज्य बाबाने मन-ही-मन योजना बना ली थी और उस योजनाके अनुसार श्रीठाकुरजीको २७ सितम्बर तकके लिये रोक लिया, जिससे वे ठकुरी बाबूकी अर्थीको अपना कन्धा दे सकें। इस तथ्यपर जितना अधिक चिन्तन होता, उतना ही अधिक विस्मय होता उनकी समर्थ योजनापर।

श्रीठकुरी बाबूके शवका अग्नि-संस्कार अयोध्या धाममें श्रीसरयूजीके तटपर होनेवाला था। अयोध्या जानेके पूर्व उनके विमानको गीतावाटिका लाया गया और पूज्य बाबूजीके समाधिके पास रखा गया। रुग्ण होते हुए भी बाबा विमानके पास आये और उसका पुष्प एवं पुष्पमालासे शृंगार किया। शृंगारोपरान्त अभिमन्त्रित गंगाजलसे अभिषिक्त करके उन्होंने विमानकी तीन परिक्रमा लगायी। फिर बाबाने कन्धा दिया और कन्धा दिया श्रीठाकुरजीने भी। फिर अन्य लोगोंने वह अर्थी अपने कन्धेपर ले ली। वे लोग अर्थी लेकर पचास-साठ कदम बढ़े ही होंगे कि बाबाने ठहरनेके लिये कहा। बाबाने पुनः कन्धा दिया। बाबा कन्धा दिये-दिये गीतावाटिकाके

प्रवेश द्वारतक आये और फिर दूसरोंको अर्थी सँभला करके उन्होंने सभीके सामने पुकार करके कहा– मिन्तर ! वाटिकाके अन्तिम छोरपर खड़े होकर मैं तुम्हें अन्तिम विदाई दे रहा हूँ।

राष्ट्रकवि श्रीमैथिलीशरणजी गुप्तने अपने काव्यमें एक स्थानपर भगवान श्रीकृष्णके लिये लिखा है– 'करते सभी हो कार्य, पर कारण कभी बनते नहीं'।

बाबाने उस समय महाराजजी तथा ठाकुरजीको अकारण ही रोक लिया था, पर कंधा देनेका कार्य हो जानेके बाद लोगोंका चिन्तन सक्रिय होकर उस अकारणके प्रच्छन्न कारणका अनुमान लगाने लगा। कार्य सिद्ध हो गया और श्रीठकुरी बाबूकी इच्छा भी पूर्ण हो गयी, पर बाबाने आदिसे अन्ततक स्वयंको छिपाये रखा। स्वयंको सर्वथा अव्यक्त रखते हुए बाबाने दो स्नेही-जनोंके स्नेह-सम्बन्धका निर्वाह कितनी सुन्दर रीतिसे करवा दिया।

इन दिनों यह तथ्य हमलोगोंकी सरस चर्चाका विषय बना रहा। यदि मनमें धैर्य रहे तथा आँखें खुली रहें तो बहुतसे तथ्योंके रहस्य स्वतः सामने आ जाया करते हैं और तथ्योंका यह रहस्योद्घाटन हृदयको सद्भावसे परिपूरित कर दिया करता है। फिर महाराजजी, ठाकुरजी आदिने २७ सितम्बरको गोरखपुरसे प्रस्थान किया।

* * * * *

दो अष्टयाम-लीलाएँ

गीतावाटिकामें अष्टयाम लीला दो बार हुई, पहली लीला सन् १९८२ में और दूसरी लीला सन् १९८४ में हुई। प्रथम लीलाके दर्शनके लिये दिनांक १३ मार्च १९८२ को श्रीमहाराजजी गीतावाटिका पधारे। पूर्व-निश्चित योजनाके अनुसार गीतावाटिकामें १४ मार्चसे लेकर २१ मार्चतक अष्टयामलीला अभिनीत होनेवाली थी। इस अवसरपर पधारनेके लिये बाबाने आग्रहपूर्वक अनुरोध किया था, यही हेतु था महाराजजीके पधारनेका। महाराजजीके आनेपर बाबाने कहा था– आप मेरा अनुरोध स्वीकार कर लेते हैं, यह आपकी गरिमा है तथा इस वाटिकाका सौभाग्य है। अतिशयोक्तिपूर्वक नहीं, मैं वस्तुतः सत्य कह रहा हूँ कि आपका शुभागमन इस गीतावाटिकाको पवित्रता प्रदान करता है।

बाबाको सुख प्रदान करनेकी भावनासे ही यह अष्टयामलीला आयोजित हुई थी, किंतु कभी-कभी हमलोगोंके मनमें एक संदेह उठ जाया करता था कि बाबा इस लीलामें बैठ पायेंगे अथवा नहीं। उनके कठोर नियमोंके कारण ही यह संदेह उत्पन्न होता था, परंतु यह संदेह सर्वथा निराधार निकला। बाबा प्रतिदिन ठीक

समयसे पहुँचते। बाबा तो अपना संदेशवाहक भेजकर ठाकुरजीसे नित्य ही पुछवाया करते थे– ठाकुर! इस अष्टयामलीलाका एक दर्शक मैं भी हूँ। बताओ, आजकी लीला कितने बजे आरम्भ होगी?

बाबाका यह दैन्य ठाकुरजीको और भी विगलित कर दिया करता था। हम दर्शक लोग मंचपर निकुञ्ज-लीलाका दर्शन करते ही थे, इसके साथ ही देख लिया करते थे कभी-कभी आँखोंके कोनोंसे बाबाको, महाराजजीको और माँको। अस्वस्थ होते हुए भी माँ प्रतिदिन तीन-साढ़े-तीन घंटे बैठकर लीलाका दर्शन किया करती थीं।

माँने अपने आह्लादपर सघन गम्भीरताका आवरण डाल रखा था, अतः उनके आह्लादका परिज्ञान होता था लीला-दर्शनके समय नहीं, लीलाके उपरान्त, जब वे लीलाकी सुन्दरताकी चर्चा अपने कमरेमें समीपस्थ महिलाओंसे किया करती थीं।

महाराजजीकी भावमयताके दर्शन तो कई बार होते थे। नेत्रोंकी सजलताके कारण न जाने कितनी बार उन्हें अपनी श्वेत चादरका छोर अपने हाथोंमें लेना पड़ता था।

बाबा तो लीलामें बैठते थे एक आसनसे और आरम्भसे अन्ततक मौन रहते। जब भी मंचपर कोई भावपूर्ण दृश्य आता, उसे देखते ही बाबा ध्यानस्थ हो जाते। बहुत देरतक नेत्र बन्द किये हुए निस्स्पन्द बैठे रहते। लीलाके पूरी होनेके बाद भी बाबा बोलनेकी स्थितिमें नहीं रहते। ठाकुर घनश्यामजी, डॉ. एल.डी. सिंह, श्रीचोपड़ाजी आदि बाबाको सहारा देकर धीरे-धीरे ले जाते और उन्हें मच्छरदानीके अन्दर सुला देते। कभी-कभी तो बाबा इस भाव-निमग्नतामें घंटों पड़े रहते। इस समय किसीका भी बोलना, किसीके भी पद-चापका ध्वनित होना, किसी बर्तनका रंच मात्र टकराना, यह सब बाबाको तनिक भी सुहाता नहीं था। परिचर्या-रत परिकर-वर्ग इस दृष्टिसे सावधान भी रहता था।

अब मैं अपने विश्वासकी एक बात लिख रहा हूँ। इस अष्टयामलीलामें अभिनयकी सुन्दरता तो थी ही, परंतु लीलामें जो भावमयता थी, उसका प्रच्छन्न हेतु था माँ, बाबा तथा महाराजजीकी उपस्थिति और उनका भाव-राज्य। बाबाकी मान्यताके अनुसार बाबूजीके जीवनकी धर्मसंगिनी होनेके नाते पूज्या माँके रूपमें बाबूजी ही उपस्थित थे।

इन तीनों विभूतियोंकी भाव-गरिमा ही संक्रमित होकर पद-पदपर कण-कणको निकुञ्जकी भावमयतासे भावित कर रही थी। अष्टयामलीलाकी भावमयताके बारेमें मेरा जो विश्वास है, वह केवल मेरा ही नहीं, अपितु कई बहिनों और बन्धुओंका भी है। उन बहिनों एवं बन्धुओंके उद्‌गारोंने मेरी आस्थाकी परिपुष्टि की है।

अष्टयामलीलाके सम्पन्न हो जानेके बाद महाराजजीने एक बार स्वानुभव सुनाया। लीला-मंचके सामने बाबा तथा महाराजजीका आसन आस-पास लगा करता था। महाराजजीने बतलाया – लीलाके समय जबतक बाबा अपने आसनपर विराजे रहते, उनके गौर श्रीवपुसे तप्त कंचन-सी दिव्य आभा सतत विकीर्ण होती रहती। यह केवल एक दिन नहीं, आठों दिन ऐसा देखनेको मिला। लीलाके समय जिस परम दिव्य आभाके दर्शन हुआ करते थे, वह उनके किसी विलक्षण एवं विशिष्ट स्वरूपकी संकेतिका है।

यह सारी अष्टयामलीला स्वकीयाभावकी निकुञ्ज लीला थी। यथा-स्थान एवं यथा-अवसर कुछ अन्य पद एवं प्रसंग अवश्य ही इसमें समाविष्ट किये गये, किंतु निम्बार्काचार्य श्रीहरिव्यासदेवाचार्य द्वारा प्रणीत 'महावाणी' नामक ग्रन्थ ही आरम्भसे अन्ततक इस अष्टयामलीलाका आधार रहा। इस अष्टयामलीलाको प्रस्तुत करनेके लिये जिस प्रकारकी मंच-सुसज्जा होनी चाहिये थी, वैसी गीतावाटिकामें नहीं थी। इस न्यूनताके बाद भी गीतावाटिकाका वातावरण आठ दिनतक निकुञ्जमय बना रहा।

श्रीप्रिया-प्रियतमकी निकुञ्ज-लीला इतनी सुन्दर अभिनीत हुई कि गोरखपुरका उतना भूमि-खण्ड, जो गीतावाटिकाके नामसे विख्यात है, आठ दिनके लिये नित्य निकुञ्ज धाम बन गया था। इस सफलताका श्रेय रासमण्डलीकी अभिनय-कुशलताको तो था ही, इसके साथ ही ठाकुर श्रीघनश्यामजीका निर्देशन, श्रीश्रीरामजी तथा श्रीफतेहकृष्णजीका श्रम तथा रासमण्डलीके सदस्योंका परस्पर सहयोग, यह सब पद-पदपर श्लाघनीय है।

लीलाके बीचमें ऐसे मधुर प्रसंग सामने आते थे और ऐसी सुन्दर झाँकियाँ देखनेको मिलती थीं कि कई व्यक्तियोंको दिव्य अनुभूतियाँ हुई हैं।

भावुक साधकोंको तो एक संकेत प्राप्त हो रहा था कि किस प्रकारसे लीला-चिन्तन करना चाहिये। साधकोंके लिये तो यह अष्टयामलीला

जीवननिधिके समान थी ही, साधारण दर्शक-गण भी बड़े विमुग्ध थे। दर्शक-समुदायकी कौन कहे, स्वयं लीला करनेवाले पात्रोंपर तथा पद गानेवाले समाजियोंपर एक नशा-सा छाया हुआ था।

* * *

वर्ष १९८४ ई. में होलीके बाद गीतावाटिकामें दूसरी अष्टयाम लीलाका आयोजन पुनः हुआ। सन् १९८२ ई. में होलीके बाद ही अष्टयाम लीला हुई थी, इस बार भी होलीके बाद यह लीला हुई। उस बार श्रीश्रीरामजी श्रीफतेहकृष्णजीकी रासमण्डलीके द्वारा अष्टयाम लीला सम्पन्न हुई थी, इस बार भी उन्हींकी रासमण्डली थी। यह अष्टयाम लीला २१ मार्चसे २८ मार्चतक हुई।

श्रीमहाराजजीसे बाबाने विशेष रूपसे निवेदन किया था अष्टयाम लीलाके अवसरपर पधारनेके लिये। अतः १९ मार्चके दिन महाराजजी ठाकुर घनश्यामजी आदिके साथ वृन्दावनसे गीतावाटिका पधारे। महाराजजीके पधारनेसे गीतावाटिकामें एक विशेष प्रकारकी उमंग परिलक्षित हो रही थी। अष्टयाम लीलाके दर्शनके लिये बंगाल, बिहार, दिल्ली, राजस्थान, महाराष्ट्र, आन्ध्रप्रदेश तथा उत्तरप्रदेशके अनेक नगरोंसे लोग पधारे। इन अतिथियोंके आगमनसे गीतावाटिकामें चहल-पहल बहुत बढ़ गयी।

२१ मार्च १९८४ के प्रातःकाल, ब्राह्मवेलामें अष्टयामलीला आरम्भ हुई। निभृत निकुञ्जमें श्रीप्रिया-प्रियतमके जागरणके पूर्व शयनकी सात झाँकियाँ दिखलायी गयीं। मच्छरदानीके अन्तरालसे झिलमिल दिखलायी देनेवाली प्रत्येक झाँकीकी भाव-गरिमा अपने ही ढंगकी थी। फिर श्रीललिता आदि सखियाँ श्रीप्रिया-प्रियतमको जगाती हैं। सखियाँ श्रीप्रिया-प्रियतमकी मंगला आरती उतारती हैं और फिर कलेवा कराती हैं। कलेवा करनेके उपरान्त श्रीप्रिया-प्रियतम वन-विहारके लिये पुष्प-शय्याका परित्याग करते हैं। वन-विहारके उपरान्त सखियाँ श्रीप्रियाजीको उबटन लगाती हैं तथा स्नान कराती हैं। स्नान करके श्रीप्रियाजी निकुञ्जमें अपने केशोंका स्वयं ही विन्यास करती हैं। केश-विन्यास-रत श्रीप्रियाजीकी छवि बड़ी मनोहारिणी थी।

इससे आगेकी और भी कई लीलाएँ मंचपर प्रस्तुत की गयीं। यह

लीला प्रातः काल चार बजे आरम्भ हुई थी और सात बजेतक होती रही। पूज्या माँकी अस्वस्थताको देखकर हम सभीको संदेह था कि न जाने माँ आ पायेंगी अथवा नहीं, परंतु माँ आयीं और लगातार तीन घंटेतक बैठी रहीं। इससे हम सभीको आश्चर्य हो रहा था कि माँ इतनी देर कैसे बैठी रहीं, परंतु लीला-दर्शनकी उत्कण्ठा क्या नहीं करवा लेती? अष्टयाम-लीलाके दर्शनके लिये दिल्लीसे परम सम्मान्य श्रीचाचाजी (श्रीजयदयालजी डालमिया) भी पधारे थे। वे भी वृद्ध हैं तथा उनका शरीर रुग्ण हैं। उनके बारेमें भी यही शंका थी कि वे लगातार बैठ नहीं पायेंगे, पर उनकी भी लीला-दर्शनोत्कण्ठाने हम सभीकी शंकाको निराधार सिद्ध कर दिया।

लीला-दर्शनके लिये बाबा तथा महाराजजीका आसन मंचके सामने पास-पास लगाया गया था। लीलाके दर्शनसे बाबाकी वृत्तियोंने बाह्य जगतको छोड़ दिया। जब लीला सात बजे सम्पन्न हुई, उस समय बाबा अत्यधिक अन्तर्मुख थे। बाबाको सँभालकर आसनसे उठाया गया। बाबा बहुत धीरे-धीरे चल रहे थे। बाबा जब कुटियापर आये, तब उनको बिस्तरपर लिटा दिया गया और मच्छरदानी लगा दी गयी। लगभग एक बजे अर्थात् छः घंटेके बाद बाबा कुछ-कुछ प्रकृतिस्थ हुए। इसे पूर्ण प्रकृतिस्थ-स्थिति नहीं कहनी चाहिये। अन्तर्मुखताकी छाया अभी सभी चेष्टाओंको आच्छादित किये हुए थी। घंटा तो बज जाता है, पर बज जानेके बाद भी उसकी गूँज बहुत देरतक वातावरणमें व्याप्त रहती है। कुछ और अधिक प्रकृतिस्थ होनेपर बाबाने कहा — कई दिनके भूखेकी जो स्थिति अकस्मात् भोजन मिलनेपर होती है, वही बात यहाँ समझनी चाहिये। भोजन मिलनेपर तो उस भूखेकी भूख मिटती है, पर यह रासलीला तो लीला-दर्शनकी भूखको और बढ़ा देती है।

आठों दिन एक-से-एक सुन्दर प्रसंग मंचपर प्रस्तुत किये गये। इस अष्टयामलीलामें माधुर्य-वात्सल्य-सख्य-दास्य, सभी भावोंको समान स्थान प्रदान किया गया था और सभी भावोंकी भावभरी लीलाओंने दर्शकोंको आमोदित-आप्यायित किया। आठ दिवसोंकी लीलामें प्रभात-लीलाके अतिरिक्त कई लीलाएँ और कई झाँकियाँ अतीव सुन्दर थीं। तीसरे दिन माँ यशोदा द्वारा बुलाये जानेपर जब वृषभानुनन्दिनी श्रीराधा वृषभानुभवनसे नन्दालयके लिये पधारती हैं, उस समय उनके आगमनकी छविका वर्णन

किन शब्दोंमें किया जाये! पथपर गुलाबी पावड़े बिछे हुए हैं। एक सखीने वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाके शीशपर विशाल छत्र लगा रखा है। कोई सखी मोरछल और कोई सखी चँवर डुला रही है। इसी प्रकार अन्य सखियोंके हाथमें सेवाचर्याकी कोई-न-कोई वस्तु है। सब बड़ी मन्द-मन्थर गतिसे नन्दालयकी ओर अग्रसर हो रही हैं। इस दृश्यसे महाराजजीको बड़ा उद्दीपन हुआ। वे अन्तर्मुख हो गये। उनके नेत्रोंसे अश्रु झरने लगे, जिसे वे बार-बार अपने वस्त्रसे पोंछ रहे थे।

* * *

यहींपर रासलीलाके श्रीश्रीजीस्वरूपसे सम्बन्धित एक प्रसंगका उल्लेख कर रहा हूँ। २५ मार्चके दिन श्रीश्रीजीस्वरूप अपने सामान्य वेषके अन्दर अत्यधिक श्रद्धाभरे हृदयसे बाबाकी कुटियापर आये तब, जब बाबा अपनी कुटियापर नहीं थे। वे बाबाके बिस्तरपर एक पुड़िया रखकर चले गये। बाबा जब लौटकर आये तो यह बात बतलायी गयी। बाबाने कहा कि पुड़िया खोलो, देखो, क्या बात है? पुड़ियाको खोला गया। उसमें कुछ काजू-बादाम थे। मेरा अनुमान है कि वे प्रसादी मेवे होंगे।

बाबाने देखा कि जिस कागजमें मेवे रखे गये थे, उस कागजपर कुछ लिखा हुआ है। बाबाने पढ़नेके लिये कहा। चोपड़ाजीने पढ़कर सुनाया। वह इस प्रकार है —

श्रीराधा

बाबा मैं हूँ आपकी प्यारी लाड़भरी श्रीराधा।

इस वाक्यको सुनकर बाबाके नेत्र छलछला उठे।

* * *

अष्टयामलीलाकी सम्पन्नताके अगले दिन २९ मार्चके पूर्वाह्न कालमें बाबाकी कुटियापर ही रासमण्डलीके सभी व्यक्तियोंका भोजन था। बाबाके निर्देशके अनुसार रसोई परोसनेका कार्य वाटिकाकी माताओं-बहिनोंके द्वारा हुआ। बाबाका आसन ऐसे स्थानपर लगा हुआ था, जहाँसे वे सभीको देख सकें, पर श्रीप्रिया-प्रियतम तो बाबाके सामने बैठकर ही प्रसाद पा रहे थे।

श्रीप्रिया-प्रियतम जब भोजन कर चुके, तभी श्रीडालमियाजी (श्रीजयदयालजी डालमिया) ने उच्छिष्ट प्रसादकी कामनासे अपने दोनों

हाथ श्रीप्रिया-प्रियतमके समक्ष फैला दिये। जिसने अरबपति होनेके अहंकारकी चादरको उतारकर एक किनारे रख दी हो और जिसने आयुकी अधिकतासे उत्पन्न होनेवाली गरिमाको सर्वथा भुला दिया हो, ऐसे 'तृणादपि सुनीच' के मूर्तिमान स्वरूप बने हुए श्रीडालमियाजीके दैन्यको देखकर अनेकोंके नेत्र सजल हो उठे। श्रीप्रिया-प्रियतमने अपना उच्छिष्ट प्रसाद उनको दिया और उन्होंने उस प्रसादको वहीं ग्रहण कर लिया। यह दृश्य वस्तुतः बड़ा भावपूर्ण था। भोजनके बाद रासमण्डलीके सभी व्यक्ति माँके पास गये, सबने माँको प्रणाम किया और माँने सबको फल और विदाई दी। २९ मार्चकी दोपहरके समय रासमण्डलीको प्रस्थान करना था। बाबाके समीप दस दिनतक रहनेका अवसर मिला और बाबाके पाससे चले जानेकी व्यथा तो सभीको थी, पर सबसे अधिक पीड़ा थी श्रीश्रीजीस्वरूपको और श्रीप्रियतमस्वरूपको। उनके नेत्र बार-बार भर-भर आ रहे थे।

इस अष्टयामलीलाके व्यय-भारका वहन श्रीडालमियाजीके सुपुत्र श्रीविष्णुहरिजी डालमियाने किया। बाबाने विष्णुहरिजीकी सराहना करते हुए उनसे कहा – भैया, मैं तुमको कितना साधुवाद दूँ? मेरे कहनेपर तुमने न जाने कितनी कन्याओंके विवाहके लिये आर्थिक सहयोग दिया है। उस आर्थिक सहयोगसे न जाने कितनी अभावग्रस्त कन्याओंका विवाह हुआ है, उन कन्याओंके विवाहसे न जाने कितने अभिभावकों तथा माता-पिताओंको चिन्तासे विमुक्ति मिली है? उनकी कृतज्ञता-भावनाकी सीमा नहीं और तुम्हारे उपकार-परायणताकी सीमा नहीं, पर अब मेरी एक बातपर विचार करो। तुम्हारे द्वारा जो आर्थिक सहयोग कन्याओंके विवाहके लिये मिला, उस व्ययका अन्तिम रूप यही तो हुआ कि वे कन्याएँ गृहस्थ-जीवन स्वीकार करके सांसारिक बन गयीं। वे दम्पति 'सुत बित लोक ईषना तीनी' के वशीभूत होकर माया-जालमें फँस गये और कंचन-काम ही उनके जीवनका केन्द्र-बिन्दु बन गया, परंतु इस अष्टयामलीलाके आयोजनमें तुम्हारे द्वारा जो कुछ व्यय हुआ है, उसकी सार्थकताकी गरिमाकी सीमा नहीं। रासलीलाके दर्शनसे लोगोंमें भावका उद्दीपन हुआ है और लोगोंको श्रीराधा-माधवकी भक्ति-भावनाका दान मिला है, जो सांसारिक जंजालको उच्छिन्न करनेवाला है। जो व्यय दर्शकोंकी संसारासक्तिको मिटाकर उन्हें श्रीराधा-माधवकी भक्ति-भावनामें निमज्जित कर दे, उस व्ययकी जितनी भी सराहना की जाये, वह कम ही रहेगी। तुम्हारे द्वारा जो व्यय रासलीलापर हुआ है, वह सर्वथा साधुवादके योग्य है।

२५ मार्चके दिन बाबाकी गिरिराज-परिक्रमाका वातावरण अत्यन्त सुन्दर रहा। महाराजजी द्वारा रचित मधुराष्टकका गायन हुआ। गायनका आरम्भ तो किया था श्रीरामजीने, पर बादमें स्वयं महाराजजी ही गाने लगे। आगे-आगे महाराजजी गाते, पीछे-पीछे अन्य लोग। इससे वातावरण बड़ा भावमय हो गया। बाबा तो विभोर हो उठे। इस मधुर गानको सुनकर बाबाका मन तो थिरक ही रहा था, शरीर भी थिरकने लगा। मधुराष्टक गायनमें जब जैसा वर्णन आता, तदनुसार बाबा वैसी नृत्यमयी चेष्टा करने लगते। जब यमुनाजीका वर्णन आया तो बाबाकी अगुलियाँ इस प्रकार नृत्य करने लगीं, मानो जल-प्रवाहमें लहरियाँ उठ-गिर रही हों। जब नूपुरकी रुनझुनका वर्णन आया, तब बाबा अपने चरणोंको एक बार उसी प्रकारसे नचाने लगे, जिस प्रकारसे नृत्यके समय मंचपर श्रीप्रिया-प्रियतम नृत्य करते हैं। बाबा तो परिक्रमा करना ही भूल गये। बाबा बहुत देरतक महाराजजीके समक्ष ही खड़े रहे। एक बार परिक्रमा करनेकी बात ठाकुर घनश्यामजीने याद दिलायी, इसके बाद भी बाबा खड़े ही रहे।

वस्तुतः बाबाका मन रागाकुल हो रहा था। मधुराष्टकके गायनके बाद बाबाके संकेतपर 'चलो चलो री किसोरी वृन्दाबनमें' पद गाया गया। इस पदके गायनके समय श्रीरामजीने, हरिवल्लभजीने, फतेहकृष्णजीने, ठाकुर श्रीघनश्यामजीने तथा रासमण्डलीके अन्य व्यक्तियोंने जो आलापचारी की तथा जिस लालित्यके साथ पदका गायन किया, उससे सारा वातावरण रागसे रञ्जित और अनुरागसे आप्लावित हो उठा। इस पदकी समाप्तिके समय एक बड़ा ही भावपूर्ण दृश्य देखनेको मिला। रासमण्डलीके श्रीश्रीजीस्वरूप और श्रीठाकुरस्वरूप भी वहीं उपस्थित थे। पदके अन्तमें ज्यों ही यह पंक्ति गायी गयी कि 'मेरो जनम सुफल पग परसनमें', त्यों ही श्रीठाकुरस्वरूपजी अपने स्थानसे उठे और परिक्रमा-पथमें आकर बाबाके श्रीचरणोंमें अपना मस्तक रख दिया। यह दृश्य इतना भावपूर्ण था कि क्या कहा जाये? इसके बाद गाया गया 'आज बन्यो है प्यारो गिरवरधारी'। यह पद-गान भी बड़ा सुन्दर रहा। इन तीन पदोंके गायनमें लगभग डेढ घंटे लग गये। बाबा डेढ़ घंटेतक एक स्थानपर लगातार खड़े रहे। परिक्रमा करनेकी सुधि नहीं रही। महाराजजीने परिक्रमा आरम्भ होनेके समय जो पुष्पमाला बाबाको पहनायी थी, वह पुष्प-गजरा आजानुलम्बित नहीं, अपितु वह तो आ-चरण-लम्बित था। जिस समय बाबाका शरीर पदोंके भावोंके अनुरूप

हिलता-डुलता था, उस समय उस सुदीर्घ आ-चरण-लम्बित पुष्प-गजरेका हिलना-डुलना बड़ा ही सुन्दर लगता था। बाबाको खड़े-खड़े डेढ़ घंटे हो चुके थे और अभी परिक्रमा करना शेष था। यह देखकर रासमण्डलीके स्वामी श्रीरामजीका मन कुछ आशंकित हो उठा कि इससे तो अगले अष्टयामलीला-कार्यक्रमको आरम्भ करनेमें बड़ा विलम्ब हो जायेगा। बाबा तो अपने भावमें निमग्न थे। बाबाको तो कुछ सुध-बुध थी नहीं। भावी विलम्बकी आशंकासे चिन्तित होकर श्रीश्रीरामजीने तीसरा पद पूरा होते ही 'कृष्ण गोविन्द गोविन्द गोपाल नन्दलाल' संकीर्तन आरम्भ कर दिया, जो नियमतः सदा परिक्रमाके अन्तिम क्षणोंमें गाया जाता रहा है। इस संकीर्तनके आरम्भ होते ही बाबाको चेत हुआ। परिस्थितिकी सुधि हो आयी और फिर तो बाबाने लगभग दौड़ते हुए ही सारी परिक्रमा की। परिक्रमामें उपस्थित आज सभी लोग अत्यधिक उमंगमें थे, अतः आज संकीर्तन भी बहुत तुमुल स्वरमें हो रहा था। बाबाके आनन्दकी तो सीमा नहीं थी।

* * * * *

बउआ का महाप्रयाण

बाबाकी चरणाश्रित बहिनें सरोज और मुन्नीकी पूजनीया माताजीने ५ फरवरी, १९८४ रविवारको जिस भावमय स्थितिमें महाप्रयाण किया, उसे विस्मृत किया ही नहीं जा सकता। बहिन सरोज और मुन्नीकी पूजनीया माताजीका नाम तो था अम्बादेवीजी माथुर, परंतु वे हमलोगोंके मध्य 'बउआ' के नामसे जानी जाती थीं। कई माथुर जातीय परिवारोंमें माँको बउआ ही कहते हैं। लगभग नब्बे वर्षकी आयुवाली वृद्धा बउआ दस-बारह दिनोंसे रुग्ण चल रही थी। उसकी रुग्णताको देखकर कई लोग संदेह भी करते थे कि यह पका आम अब कहीं डालसे चू जानेवाला तो नहीं है। लोगोंका संदेह सत्य निकला, पर उसके अन्तिम तीन-चार दिनोंकी भावमयी स्थितिको देखकर सब आश्चर्य करने लगे! वैसे बउआने अपने जीवनमें साधना कम नहीं की है, फिर भी महाप्रयाणके समय भला किसकी ऐसी सुन्दर प्रेममयी स्थिति बन पाती है। गोस्वामी तुलसीदासजीने रामचरितमानसमें कहा भी है कि मुनि लोग जन्म-जन्मतक यत्नपूर्वक साधना करते हैं, फिर भी जीवनके अन्तिम क्षणमें मुखसे भगवानका नाम

'राम' उच्चरित नहीं हो पाता। 'जन्म जन्म मुनि जतनु कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं॥', पर बउआकी अद्भुत भाव-दशाने सभी उपस्थित लोगोंके मनमें यह विश्वास दृढ़ दिया कि भगवान हैं, भगवानका दर्शन होता है और भगवान प्रेमके अधीन हैं।

बहिन सरोज और मुन्नीके पूज्य पिता श्रीमाथुरजी एक कुशल चित्रकार थे। यह प्रायः देखा जाता है कि सच्चा कलाकार अपनी कला-प्रियताके अतिरेकमें न अपने शरीरकी भली प्रकार चिन्ता कर पाता है और न अपने जगतके व्यवहारको ठीक प्रकारसे निभा पाता है। यह बात श्रीमाथुरजीके सम्बन्धमें भी सच्ची थी। ऐसी परिस्थितिमें बउआपर घर-गृहस्थीकी सँभालका उत्तरदायित्व और अधिक आ गया और बउआने एक पतिव्रता नारीकी भाँति इसका सम्यक् प्रकारसे निर्वाह किया।

यह पूरा परिवार पूज्य श्रीनारायण स्वामीजीको गुरु मानता था। ये श्रीनारायण स्वामीजी वे ही हैं, जो केवल टाट धारण किया करते थे और जिनकी एक लघु पुस्तिका 'एक संतका अनुभव' गीताप्रेससे प्रकाशित है। अखण्ड मौन रहकर भगवन्नामका जप करनेसे टाटवाले श्रीनारायण स्वामीजी महाराजको भगवान नारायणके दर्शन हुए थे। इस पुस्तिकामें उन्होंने स्वयं लिखा है – 'परम दयालु नारायणने इस दासपर कृपा करके नर्मदाके किनारे चान्दोद नामक स्थानमें दर्शन दिये थे। पहले छम-छमकी आवाज आयी। फिर विमान आया, जिसको चार पार्षदोंने उठा रखा था। साधन करनेसे इस दासको तीन वर्ष छः मास चौबीस दिनमें भगवानके दर्शन हुए थे।'

टाटवाले श्रीनारायण स्वामीजी महाराज मौन एवं नामजपको अत्यधिक महत्त्व दिया करते थे। अपने गुरुदेवकी इस शिक्षाके अनुसार श्रीमाथुरजी प्रायः मध्य रात्रिके समय अपने आसनपर बैठकर नामजप और ध्यानकी साधना किया करते थे। बउआ प्रायः अपराह्न कालतक मौन रहा करती थी। उसे बच्चोंके लिये भोजन बनाना पड़ता था। जब बच्चे स्कूल चले जाते, तब उसके बाद बउआ अपने पूजा-पाठके नियमको पूरा करनेमें संलग्न होती और नित्य-नियमके पूरा होनेके बाद ही मौनका विसर्जन होता।

अयोध्याके एक संतके मुखसे बउआने सुन लिया कि

श्रीरामचरितमानसके १०८ नवाह्न पाठका नियम लेकर जो अखण्ड रूपसे पाठ करता है, उसे भगवानके दर्शन होते हैं। बउआने यह बात पकड़ ली और उसने मानसका नवाह्न पाठ आरम्भ कर दिया। तीन वर्षमें बउआने मानसके १०८ नवाह्न पाठ पूरे किये। उसी दिन मध्य रात्रिके समय भगवान श्रीसीतारामजी विमानसे पधारे। साथमें श्रीलखनलालजी भी थे। बउआके पूजा-पाठ-नैवेद्यादिकी तैयारी बहिन सरोज किया करती थी और उस दिन वह किसी कार्यसे रीवाँ नगर गयी हुई थी। विमानको देखते ही बउआ जोर-जोरसे पुकारने लगी – अरे, रामजी तो आ गये। विमान आ गया। सरोज तो है नहीं, कौन सारी तैयारी करेगा? भगवान तो आ गये। इनका स्वागत-सत्कार कैसे हो?

एक बार बउआने एक स्थानपर श्रीमद्‌भागवतकी कथा सुनी और कथा बड़ी प्यारी लगी। बस, उसने श्रीमद्भागवतका पाठ आरम्भ कर दिया। बउआ केवल अर्थ पढ़ा करती थी, उसे संस्कृत तो आती नहीं थी। उसके मनमें कोई संकल्प नहीं था कि इतने दिनकी अवधिमें पाठ पूर्ण करना है। उसकी पर भागवतजीका पाठ अच्छा लगता था। दिनमें सूर्यके प्रकाशमें और रातमें लालटेनकी रोशनीमें भागवत पढ़ती रहती थी। चाव-चावमें बउआ सारे भागवतका पाठ कर गयी। यह भी क्या संयोगकी बात है कि जब दिनोंकी गणना की गयी तो पता चला कि सम्पूर्ण भागवतका पाठ सात दिनमें पूरा हो गया है। अनजानेमें ही उसके द्वारा श्रीमद्भागवत- सप्ताहका एक पारायण हो गया।

बउआने एक बार मानसके सुन्दरकाण्डका पाठ आरम्भ किया। उसने सुन रखा था कि भगवान श्रीरामकी कथाको सुननेके लिये श्रीहनुमानजी महाराज पधारा करते हैं। इस सुनी हुई बातके आधारपर बउआने पाठ आरम्भ करनेके पहले एक लाल आसन श्रीहनुमानजीके विराजनेके लिये बिछाया और श्रीहनुमानजीका आह्वान करते हुए उसने कहा –

तुलसी कृत रामायण कथा कहूँ अनुसार।
आसन लीजै परम हित आइये पवनकुमार॥

श्रीहनुमानजीके आह्वानका यह दोहा ज्यों ही पूरा हुआ, त्यों ही विशालकाय श्रीहनुमानजी आकर उस आसनपर विराज गये। श्रीहनुमानजीको देखकर बउआ अत्यधिक भयभीत हो गयी और उसके मुखसे चीख निकल

गयी। इस पाठके बादसे फिर कभी बउआने श्रीहनुमानजीका आह्वान नहीं किया। श्रीहनुमानजीके आह्वानकी बात आनेपर बउआ कहा करती थी कि मुझे तो उनसे बड़ा डर लगता है।

बउआने श्रीप्रयागराजमें कई कल्पवास किये हैं। कल्पवास करनेवालेको सम्पूर्ण माघ मासभर प्रयागराजमें गंगाजीके किनारे रहना पड़ता है तथा प्रतिदिन त्रिवेणीपर संगम-स्नान करना पड़ता है। माघ मासके घोर शीतमें यह कल्पवास एक कठोर तप ही है। जब बउआ अन्य-अन्य नगरोंमें रहती थी, तब वह कल्पवासके लिये उस-उस नगरसे कई बार प्रयाग आयी और प्रयागमें रहते समय तो वह अपने घरसे माघ मासमें प्रतिदिन सपरिवार संगम-स्नानके लिये त्रिवेणीपर जाया करती थी। प्रतिदिन सपरिवार आनेमें बड़ी परेशानी हुआ करती थी। एक दिन जब परेशानी सीमाको पार करने लगी तो बउआ झुँझला उठी और उलहना देती हुई भगवती गंगासे बोली – इतनी परेशानी झेलनी मेरे बसकी बात नहीं है। गंगा परमेश्वरी! अब तू मेरी बात सुन ले। अब कलसे मैं नहीं आऊँगी।

इस उपालम्भके तुरंत थोड़ी देर बाद ही किसी विचित्र विधानसे संगमके एकदम निकट एक बहुत सुन्दर स्वच्छ और विशाल तम्बूमें सपरिवार रहनेकी बड़ी सुन्दर व्यवस्था अयाचित रूपसे हो गयी।

टाटवाले श्रीनारायण स्वामीजी महाराजके महाप्रयाणके बाद बउआके मनमें बड़ी व्यथा हुई कि कोई सच्चा संत मिलना चाहिये, जिसके आश्रयमें रहा जा सके। सच्चे संतका आश्रय किलेकी दीवालके समान है। सच्चे संतकी प्राप्तिके लिये बउआ भगवानसे प्रार्थना करने लगी। फिर भगवत्कृपासे श्रीजजसाहब (परमादरणीय श्रीरामप्रसादजी दीक्षित) के द्वारा बउआको गीतावाटिकाके बाबूजी तथा बाबाका परिचय मिला और क्रमशः सारा परिवार ही इन दो संतोंके अति निकट सम्पर्कमें आ गया। बाबूजीका परिचय तो बउआको पहलेसे ही था। सन् १९३६ ई. में जब परम पूज्य श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीकी देख-रेखमें एक वर्षका अखण्ड हरिनाम-संकीर्तन गीतावाटिकामें हुआ था, उस समय बउआ फैजाबादमें रहती थी। तब बउआके सहोदर भाई गोरखपुरमें डिप्टी कलक्टर थे। अपने सहोदर भाईसे अखण्ड हरिनाम संकीर्तनका समाचार पाकर बउआ फैजाबादसे गोरखपुर आयी थी और अपने भाईके पास ठहरी थी। बउआ प्रतिदिन अपने भाईके बँगलेसे पूर्वाह्न कालमें गीतावाटिका आती और अपराह्न कालमें लौट जाती। इस प्रकार बाबूजीके संत-जीवनकी जानकारी तो बउआको

थी ही, पर गीतावाटिकाके इन दोनों संतोंके प्रति श्रद्धा और समर्पणका भाव श्रीजजसाहबके माध्यमसे ही पुष्ट हुआ।

७ अप्रैल १९६७ को जब बाबाने मौन लिया था, तब बाबाके दर्शनार्थ बउआ सपरिवार प्रयागसे गोरखपुर आयी थी। उस दिन एक बड़ी अद्‌भुत और विशेष घटना घटित हुई। ७ अप्रैलको दोपहरके बाद जब बाबा श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा लगा रहे थे, उस समयकी बात है। परिक्रमाके समय बउआ भी उपस्थित थी। बउआको दिखलायी दिया कि बाबाने एक लहँगा पहन रखा है। उस लहँगेकी किनारी बड़ी चौड़ी और बहुत चमकीली है। उस चौड़ी-चमकीली किनारीसे दिव्य प्रकाशकी किरणें निकल रही हैं। प्रकाशकी किरणोंसे सारा परिक्रमा-पथ ज्योतित हो रहा है। लहँगेकी चमकीली किनारीसे निरन्तर निकलनेवाली सुनहरी किरणें चारों ओर फैली हुई हैं। वह लहँगा बड़ा लम्बा है। बउआको ऐसा लगा कि कहीं बाबा उलझकर गिर न जायें। बाबा तो अपने संन्यास धर्मके अनुसार सहज स्वाभाविक गैरिक वेषमें ही थे, पर किसी अचिन्त्य सौभाग्यके फलस्वरूप भावराज्यसे सम्बन्धित वास्तविकताकी किंचित् झाँकी सत्त्व-सम्पन्न-हृदयवाली बउआको हो गयी। जो भी हो, इस दिव्य लोकोत्तर अनुभूतिके कारण बउआने मन-ही-मन समाधान कर लिया कि ये बाबा लहँगा पहनते हैं, शायद इसीलिये लोग इन्हें राधा बाबा कहते हैं। राधा बाबा नामका रहस्य अपनी खुली आँखोंसे देखकर बउआका मन गहरी श्रद्धासे भर गया।

सन् १९७२ ई. में पतिदेव श्रीमाथुरजीके दिवंगत हो जानेके बाद बउआ गीतावाटिकामें रहने लगी। बाबाकी आज्ञा मिलनेके बाद सन् १९७२ ई. की अक्षयतीज तिथिके दिन बउआ गीतावाटिका आयी और अपने अन्तिम श्वासतक यहीं रही। सबसे छोटी सुपुत्री मुन्नी तो बहुत पहलेसे ही बाबाके चरणाश्रित होकर गीतावाटिकामें रह रही थी।

बउआका बाबापर बड़ा ही विश्वास था, इसे शुद्ध हृदयका सहज विश्वास कहना चाहिये। एक बार बउआके पैरके तलवेमें गोखरू (CORN) हो गया। गोखरूकी चुभनके कारण चलनेमें बड़ा कष्ट होता था। जब इसके बारेमें बउआने बाबाको बतलाया तो बाबाने विनोद करते हुए कहा कि मैं तुमको एक मन्त्र बतलाता हूँ। 'जन्तर मन्तर घोंघा सारी। बुढ़िया खइलस लोन सुपारी।।' बस, इस मन्त्रको तीन बार पढ़कर तीन अञ्जलि जल पी लिया करो। इसे सुनकर बउआ बड़ी प्रसन्न हुई। बाबाने तो विनोद किया था, परंतु बउआके मनने इसे एक सत्यके रूपमें स्वीकार कर लिया। अब बउआ

प्रतिदिन इस मन्त्रको पढ़कर जल पीने लगी और आश्चर्यकी बात है कि बउआके पैरका गोखरू कुछ दिन बाद समाप्त हो गया।

सबेरे उठते ही बउआका दैनिक लीला-चिन्तन-क्रम आरम्भ हो जाया करता था। लीला-चिन्तन निम्नलिखित पंक्तियोंसे आरम्भ होता था –

उठो मेरे लाल मदन गोपाल, आये तेरे ग्वाल बुलावन को।
चुटिया चुपड़ी दधि माखन सों, बंशी लो शंख बजावन को।
बृंदावन जाय आनंद करो, लकुटी ले गऊ चरावन को।

लीला-चिन्तनके कारण व्यस्त रहनेवाली बउआ कई बार मुन्नीसे कहा करती थी – अपने इन सब कामोंसे मुझे फुरसत कहाँ मिलती है?

बउआ ढोलक बजानेमें बड़ी माहिर थी। वह ढोलक ऐसा बजाती थी मानो तबलेपर ठेका दिया जा रहा हो। बउआको पान खानेका शौक था। वृन्दावनसे पूज्य महाराजजी जब गीतावाटिका पधारते थे, तब बउआ उनको पान बीड़ी अवश्य दिया करती थी। बाबाने भी बउआसे माँग करके पान बीड़ी कई बार आरोगी है। बउआ एक बड़ा सुन्दर तमोलिनवाला पद भावपूर्वक गाया करती थी। इस पदमें जनकपुरकी तमोलिन दूल्हा श्रीरामसे पान बीड़ी आरोगनेके लिये आग्रह कर रही है। इस पदको बाबा कई बार बउआसे परिक्रमाके समय सुना करते थे। बउआके मुखसे यह पद बड़ा अच्छा लगता था। तमोलिनवाला पद इस प्रकार है –

खाते जाना गिलोरी तमोलिन खड़ी।
पड़ा है केवड़ा कत्थेसे महक आती है,
गिलोरी मेरी* बड़ी दूर दूर जाती है।
तमोलिन हूँ मैं जनकपुर की नाम मोती है,
तुम्हारी जानकी मेरा ही पान खाती है।
पड़ी दोनों इलायची छोटी बड़ी।
खाते जाना गिलोरी तमोलिन खड़ी।।

नब्बे वर्षकी आयु हो जानेसे अति वृद्धावस्थाके कारण बउआका शरीर काफी कमजोर हो गया था और दुर्बल बउआ प्रायः खाटपर चुपचाप पड़ी रहती थी। जीवनके अन्तिम दिनोंमें वह कुल पन्द्रह-सोलह दिन बीमार रही होगी। बुधवार पहली फरवरीके दिनसे बउआकी स्थितिमें परिवर्तन आया। इस दिन शामको रुग्ण बउआ खाटपर लेटी-लेटी गाने लगी और उसके गायनके

द्वारा ही उसकी भाव-दशाका परिचय मिलने लगा। बउआने एक गीत गाया –

जसोदा का कुँवर मेरा दिल हो चुका है।
मेरा दिल हो चुका है, जिगर हो चुका है।।

गाते समय लय-तालमें चूक नहीं होती थी। धीरे-धीरे बात फैलने लगी कि बउआ इतनी बीमार है कि सम्भवतः उसके चले जानेकी सम्भावना है, इसके बाद भी वह मस्त होकर लय-ताल सहित पद गाती है। ज्यों-ज्यों यह बात फैलने लगी, त्यों-त्यों लोग अधिकाधिक संख्यामें मिलने-देखनेके लिये बउआके पास आने लगे। बउआने अपने पदमें दो पंक्तियाँ और जोड़ दी

जसोदा का कुँवर मेरा दिल हो चुका है।
मेरा दिल हो चुका है, जिगर हो चुका है।।
मेरा मन हो चुका है, मेरा तन हो चुका है।
मेरा प्राण हो चुका है प्राण का प्राण हो चुका है।।

शुक्रवार, ३ फरवरीकी शामको कई लोग बउआके पास बैठे-बैठे उसके गायनको सुन रहे थे और उसकी मस्तीको देख रहे थे। बउआ तो अपनी मस्तीमें गा रही थी, तभी एकने पूछा – क्यों बउआ! वह तुमको दिखलायी देता है क्या?

बउआने चट कहा – वह मेरे सामने खड़ा है न!

फिर पूछा गया –वह अकेला है या श्रीराधाजी भी उसके साथमें हैं?

बउआने कहा – नहीं, राधाजी नहीं हैं। वह अकेला ही है।

पुनः जिज्ञासा हुई – वह तुमसे बात करता है या नहीं?

बउआने बताया – नहीं, बात नहीं करता। वह बात करते शर्माता है। उसे लाज लगती है।

बउआको छेड़नेकी दृष्टिसे फिर कहा गया – बउआ! वह तुमसे बात नहीं करता तो तुम उसके कान पकड़ो।

इतना कहते ही अपना हाथ फैलाकर अँगुलियोंको मटकीले ढंगसे घुमाते हुए बउआने कहा – अरे, वह तो बड़ा प्यारा है, अति ही प्यारा है। वह बारह वर्षका इतना प्यारा लगता है कि क्या कहूँ?

बउआ यह सब इतने सहज ढंगसे मस्तीभरे स्वरमें कह रही थी कि सबका मन रीझता चला जा रहा था। तभी एकने अनुरोध किया अथवा यों कह लीजिये कि बउआसे प्यारभरा आग्रह किया – बउआ! हमको भी दर्शन करा दो।

बउआने झिड़कनकी पुट देते हुए कहा – क्या तुमको दिखलायी नहीं देता कि वह सामने खड़ा है? वह सामने ही तो है। तुम देख लो।

इतना बउआ द्वारा कहा जाना था कि वह 'जसोदाका कुँवर' बउआके सामनेसे तिरोहित हो गया। उसका तिरोहित होना था कि बउआ चिल्ला पड़ी और उच्च स्वरमें कहने लगी – अरे, वह तो चला गया। प्यारे! प्यारे! तुम कहाँ चले गये? प्यारे! जल्दी आना।

स्वरका तीखापन तथा निर्लज्ज पुकार वस्तुतः इस बातको प्रमाणित कर रही थी कि उसके तिरोहित हो जानेसे कितनी व्यथा बउआके हृदयमें हो रही थी। पुकारकी कातरताने बाध्य कर दिया 'जसोदाके कुँवर' को पुनः सामने आ जानेके लिये।

बउआके सुपुत्र माथुरसाहबने एक बार बउआसे पूछा – तुम इस समय क्या सोच रही हो?

बउआने तुरंत कहा – भगवानको।

माथुरसाहब इसे सुनकर प्रसन्नतामें हँस पड़े। इन दो-तीन दिनोंमें बउआने कई बार पूज्य श्रीमहाराजजी (टाटवाले श्रीनारायण स्वामीजी महाराज) को भी याद किया। बउआ जब-तब अपने पदको गाती ही रहती थी – 'जसोदा का कुँवर मेरा दिल हो चुका है।'

इसे सुनकर बहिन मुन्नीने बउआसे पूछा – यह भजन तो मैंने तुम्हारे मुँहसे कभी नहीं सुना। यह तुम्हारा पुराना भजन तो है नहीं। फिर यह भजन कहाँसे आया?

बउआने कहा – यह भजन मेरे दिलमेंसे निकला है, दिलके भीतरसे निकला है। वह मेरे दिलमें ही तो बैठा है। वह हर वक्त मेरे साथ ही रहता है और वही मेरी सँभाल हमेशा करता रहता है।

रविवार, ५ फरवरीके मध्याह्न कालमें बउआने महाप्रयाण किया। इसी दिन सबेरे चोपड़ाजी बउआको देखने और सँभालनेके लिये गये। बउआने अपने पदमें दो पंक्तियाँ और जोड़ दी थी और उसीको

गा रही थी –

जसोदा का कुँवर मुझे दरस दे गया है।
मुझे दरस दे गया है, मेरा दर्द ले गया है।
मेरा दर्द ले गया है, मेरा दुःख ले गया है।
जसोदा का कुँवर मुझे दरस दे गया है।

चोपड़ाजी बउआकी मस्तीपर बलिहारी जा रहे थे। तभी बउआने बड़े जोरसे पुकारा – राधा बाबा, राधा बाबा।

चोपड़ाजी इस विचित्र स्थितिको अवाक् हुए थोड़ी देरतक देखते रहे, फिर बउआसे पूछा – क्या बाबाको बुला लाऊँ?

बउआने कहा – जाओ। बाबासे कह देना कि बउआने बुलवाया है।

उधर चोपड़ाजी बाबाको बुलानेके लिये गये और इधर बउआने एक नया ही गीत गाना आरम्भ कर दिया–

मिलेगी जो रसिकोंकी जूठन प्रसादी
वही जीविका का सहारा करेंगे।

चोपड़ाजीसे सूचना पाकर बाबा बउआके पास आये। बाबाके पहुँचते ही बउआने कहा – बाबा! राम-राम, राम-राम, राम-राम।

बाबा बउआके सामने कुर्सीपर बैठ गये और बाबाके बैठते ही बउआने वही गीत गाना आरम्भ कर दिया, जो वह बाबाके आनेसे पहले गा रही थी –

सदा श्याम श्यामा पुकारा करेंगे
नवल रूप निश-दिन निहारा करेंगे।
मिलेगी जो रसिकों की जूठन प्रसादी
वही जीविका का सहारा करेंगे।।

अभीतक तीन-चार दिनसे बाबा तो दूसरोंके मुखसे बउआकी भाव-दशाके बारेमें विविध वृत्त सुना करते थे, पर अब वे स्वयं सुन रहे थे और इन पंक्तियोंको सुनते ही बाबाकी आँखें भर आयीं। फिर उन्मुक्त स्वरमें बाबाके मुखसे निकल गया – वाह! वाह! बउआ, तुम वस्तुतः दर्शनीय हो, वन्दनीय हो।

इसके बाद बाबाने बउआसे पूछा – बउआ! क्या हाल है?

बउआने कहा – बाबा! बड़ी कृपा है, बड़ी कृपा है, बहुत कृपा है।

बस, आनन्द ही आनन्द है। आनन्द बरस रहा है। अपार आनन्द है।

बाबाने फिर पूछा — क्यों बउआ! क्या कोई कष्ट है?

बउआने बताया — कोई कष्ट नहीं, कोई तकलीफ नहीं। तनिक भी कष्ट नहीं। बस, आनन्द ही आनन्द है।

तभी मुन्नीने बउआसे कहा — अपना पद बाबाको सुनाओगी क्या?

इतना कहते ही बउआ गाने लगी — 'जसोदा का कुँवर मेरा दिल हो चुका है।'

इन तीन-चार दिनोंमें उसने जितनी भी पंक्तियाँ जोड़ी थी, उन सबको गा-गाकर बउआने सुना दिया। बउआ अत्यधिक लय-ताल पूर्वक गा रही थी तथा अपने हाथके संचालन और भृकुटीके नर्तनद्वारा भाव भी बतलाती जा रही थी। वह हर पंक्ति बड़े ही लहजे और लटकके साथ गा रही थी। एक बार बउआने अपना हाथ ऐसा फैलाया मानो वह हाथ बाबाका स्पर्श कर लेगा। तुरंत बाबाने अपनी कुर्सी पीछे हटायी।

बाबाने पूछा — क्या ढोलक बजाओगी?

बउआने कहा — अब ढोलक बजानेमें क्या रखा है।

फिर बाबाने 'तमोलिन'वाले पदकी एक पंक्ति सुना दी। इसे सुनना था कि बउआने वह तमोलिनवाला पद गाना आरम्भ कर दिया।

बाबाने पूछा — क्या तुमको दर्शन हो रहे हैं?

बउआने कहा — हाँ, हाँ। वह मेरे सामने ही खड़ा है। बाबा वह इतना सुन्दर है, इतना सुन्दर है कि क्या बताऊँ? ऐसी सुन्दरता तो मैंने कहीं देखी ही नहीं। बड़ा ही सुन्दर है वह! और यह मौसम भी कितना सुहावना है?

इस समय तो सचमुच घोर शीत पड़ रहा था। बाबाने उपस्थित लोगोंको समझानेके लिये कहा — इस समय बउआ यहाँ तो है नहीं। इसे तो इस समय 'उसका' दर्शन, 'वहाँ'का दृश्य और 'वहाँ' का ही मौसम अनुभवमें आ रहा है।

बाबाको बैठे हुए लगभग एक घंटा हो गया था। बाबाने मुन्नीसे कहा — तुम बउआसे पूछो कि बाबा जायें क्या? बाबाको स्नानादिसे निवृत्त होना है।

मुन्नीके पूछते ही बउआने कहा – जाओ बाबा! जाओ। जरूर जाओ।

बाबाने मनुहारभरी वाणीमें कहा – तुम कहो तो मैं बैठा रहूँ। तुम मेरी माँ हो न!

बउआने प्यार सहित कहा – तुम जाओ। तुम थक जाओगे। तुम जरूर जाओ!

बाबा बउआके पाससे चले आये। आते-आते बहिन सरोज और मुन्नीसे कहा – बउआको कोई दवा मत देना। बउआको किसी प्रकारकी सांसारिक स्मृति भी मत दिलाना। अब बउआको सँभालनेकी आवश्यकता नहीं है। नन्दनन्दन स्वयं इसकी सँभाल कर रहे हैं।

बाबाके चले आनेके बाद बउआको सूजी तथा दूधका पतला आहार दिया गया। बउआने अच्छी प्रकारसे आहार ग्रहण किया। कुछ माताएँ-बहिनें बउआके पास बैठी थीं। बउआने उनसे हरिनाम संकीर्तन करवाया। इसके बाद फिर वह गाने लगी –

तुम्हें श्याम वंशी बजानी पड़ेगी।
लगी मेरे दिलकी बुझानी पड़ेगी।।

बउआके अधरोंका यह अन्तिम गीत था। उसी समय बउआके ऊर्ध्व श्वास चलने लगे। बाबाको तुरंत सूचना दी गयी। बाबा जल्दी-जल्दी आये। बउआको भूमिपर लिटा दिया गया था। बाबाके समक्ष अन्तिम बार हाथका कम्पन हुआ और बाबाके सामने ही बउआ अपने 'जसोदा के कुँवर'के पास चली गयी।

शव-यात्राके पूर्व कुछ बहिनें जब शवको भली प्रकारसे स्नान करा चुकीं तो अन्तमें बाबाने स्वयं स्नान करवाया। एक व्यक्ति शवको पकड़े रहा। बाबाने ऋषिकेशवाला गंगाजल शवके शीशपर डाला और अपने हाथसे मस्तक मला।

संन्यास लेनेके बाद बाबाके जीवनका यह दूसरा प्रसंग है, जब कि किसी स्त्रीके शवको उन्होंने स्वयं अपने हाथोंसे स्नान करवाया हो। प्रथम प्रसंग है कमली मैयाका, जब बाबाने अपने हाथसे उसके शवको स्नान करवाया था। उसके बाद यह द्वितीय प्रसंग है। स्नान कराते समय बैठे हुए शवको देखकर बाबाने कहा कि ऐसा लगता है मानो बउआ

समाधिस्थ हो। जब शवको अर्थीपर विराजित कर दिया गया तो बाबाने उसका फूलोंसे शृङ्गार किया, फिर अर्थीकी तीन परिक्रमा देकर अन्तिम प्रणाम किया और अन्तमें बाबाने अर्थीको कन्धा दिया।

बउआके निधनपर अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए बाबाने कहा – मृत्यु हो तो ऐसी हो। महाप्रस्थानके समय बउआ एक सिद्ध संतकी कोटिमें स्थित थी। उसने योगीन्द्र-मुनीन्द्रकी-सी गति पायी। वह सीधे श्रीकृष्णके धाम गयी। उसके लिये किसी प्रकारके श्राद्धादि कर्मकाण्डकी आवश्यकता है नहीं, फिर भी परम्पराके निर्वाहके लिये यह सब अवश्य करना चाहिये।

* * * * *

अटपटा उत्तर : अनोखी बात

गोरखपुरके भाई पुरुषोत्तमदासजी सिंहानियाका बाबूजीसे बड़ी निकटताका सम्बन्ध रहा है। पुरुषोत्तमजीके प्रति बाबूजीकी बड़ी आत्मीयता रही है। इनके सारे परिवारने बाबूजीको सदा गहरी श्रद्धाकी दृष्टिसे देखा है। इनके पूरे परिवारको एक साधु परिवार कहना चाहिये। श्रीपुरुषोत्तमजीके मनकी आन्तरिक माँग रही कि मुझे भगवद्दर्शन हो, एतदर्थ उनके भजन-परायण जीवनमें प्रायः जप-ध्यान पूजा-पाठका क्रम चलता ही रहता था। सत्संग और स्वाध्याय तो मानो इनका व्यसन था। मैंने न कभी देखा था और न कभी उन्होंने मुझसे बतलाया था, पर मैं ऐसा अनुमान करता हूँ कि एकान्तके क्षणोंमें भगवद्दर्शनके लिये इनके दो नेत्रोंसे गंगा-यमुनाकी धारा अवश्य बही होगी।

एक बार पुरुषोत्तमजी बाबाके पास बैठे हुए थे। भगवद्दर्शनोत्सुक भक्तके समर्पित जीवनका स्वरूप क्या हो, यही वार्तालापका विषय था। बात करते-करते पुरुषोत्तमजीने बड़ी उत्सुकता पूर्वक बाबासे एक प्रश्न पूछा – कभी तो आप भगवान श्रीकृष्णके लिये रोते ही होंगे?

उनका पूछना स्वाभाविक था। भगवद्दर्शनकी लालसा जिसके मनमें होती है, उसकी आँखोंसे आँसूकी बूँदें चूती ही रहती हैं। गिरधर गोपालके दर्शनकी तीव्राभिलाषामें पगली मीराबाईके अगणित पदोंकी अगणित पंक्तियाँ आँसुओंसे भीगी हुई हैं। इसी प्रकार आँसुओंसे भीगे हुए शब्दोंके माध्यमसे श्रीपुरुषोत्तमजीने यह जिज्ञासा बाबाके सामने रखी थी।

बाबाने ज्यों ही इस जिज्ञासाको सुना, त्यों ही उन्होंने उत्तर दिया – अरे, मैं उनके लिये नहीं रोता, बल्कि वे ही मेरे लिये रोते हैं।

यह तो बड़ा अटपटा उत्तर था। ऐसे उत्तरको सुननेके लिये पुरुषोत्तमजीका मन बिल्कुल तैयार नहीं था। ऐसे उत्तरकी वे कल्पना भी नहीं कर सकते थे। बाबासे प्राप्त उत्तरमें जो तथ्य व्यक्त था, वह पुरुषोत्तमजीके गले उतर नहीं पाया। उनके मनने इस उत्तरको स्वीकार नहीं किया, पर अपने संदेहके निवारणके लिये उन्होंने उलटकर फिर कोई अन्य प्रश्न भी नहीं किया। अधिक बोलना वाचालता होगी, यही सोचकर पुरुषोत्तमजी चुप ही रहे।

थोड़ी देर बाद बाबासे पारस्परिक चर्चाका जब विश्राम हो गया, तब पुरुषोत्तमजी मेरे पास कमरेमें आये और बाबासे हुए प्रश्नोत्तरका विवरण मुझे सुनाने लगे। बाबाके उत्तरको सुनकर मेरा मन झूम उठा। ऐसे भावपूर्ण उत्तरकी सराहनाके लिये मेरे पास कोई शब्द नहीं था।

बाबाने उस उत्तरमें अपने जीवनके अति गम्भीर रहस्यको अति सरल शब्दोंमें कह दिया था। सचमुच, संतकी वाणीकी गहराईको समझना बड़ा कठिन है। संत अपने जीवनके रहस्योंको कुछ खोलना चाहें, तभी दूसरोंको कुछ आभास मिल पाता है।

बहुत समय पहले एक बार ऐकान्तिक चर्चाके मध्य बाबाने बतलाया था कि नित्य-निकुञ्जेश्वरी परमाह्लादिनी कृष्णप्रिया श्रीराधाके दिव्य रसराज्यमें मेरा सर्वप्रथम प्रवेश विशाखा भावसे हुआ था। वृषभानुनन्दिनी श्रीराधारानीकी आठ सखियाँ हैं और इन अष्ट सखियोंके आठ भाव हैं। अष्ट सखियोंके मध्य श्रीविशाखाजी स्वाधीनभर्तृका भावकी मूर्तिमान स्वरूप हैं। जिस प्रियतमाके अधीन होकर प्रियतम निकुञ्जमें निवास करते हैं, उसे स्वाधीनभर्तृका प्रियतमा कहते हैं। जहाँ स्वाधीनभर्तृका भावका साबल्य हो, वहाँ प्रियतमाके प्रति प्रियतमके द्वारा होनेवाले अनुनय-विनयका आधिक्य रहता है। स्वाधीनभर्तृका भावका यही तथ्य तो एक वाक्यमें बाबा श्रीपुरुषोत्तमजीके समक्ष बोल गये थे। वे बोल अवश्य गये, पर उन्होंने अपने कथनका मर्मोद्घाटन नहीं किया और इसके फलस्वरूप उस समय वह गम्भीर तथ्य अव्यक्त ही रह गया।

इस समय एक प्रसंगकी स्मृति उभर रही है। इससे थोड़ा विषयान्तर

तो होगा, परन्तु यह प्रसंग मननीय है। श्रीरामचरितमानसके सुविख्यात कथा-वाचक पूज्य श्रीमोरारी बापूने यह बात अपने मानस-प्रवचनमें कही थी। पूज्य बापूने कहा कि विश्वके हर धर्मने एक-से-एक उत्तम साधु दिये हैं, पर संत एक मात्र हिन्दू धर्मने दिये हैं।

उनके इस कथनने सारे श्रोताओंको चौंका दिया कि पूज्य बापू कैसी अनोखी बात कह रहे हैं। पूज्य बापूने अपने कथनका स्पष्टीकरण करते हुए कहा कि भगवानके समक्ष जो अपने अभावके लिये रोये, जो अपने पापोंके लिये रोये, जो अपने अपराधोंको क्षमा करवानेके लिये रोये, जो अपने दैन्य-दुःखको दूर करनेके लिये रोये, इस या उस हेतुसे भगवानके सामने रोदन करनेवाले सच्चे साधु विश्वके प्रत्येक धर्ममें उत्पन्न हुए हैं और ऐसे सच्चे साधु हिन्दू धर्ममें भी हुए हैं, पर संत तो केवल हिन्दू धर्मने दिये हैं। 'श्रीहनुमान चालीसा' में आया है 'साधु संतके तुम रखवारे'। 'साधु संत' शब्दका प्रयोग करके गोस्वामी तुलसीदासजीने स्पष्ट संकेत दिया है कि इन दोनोंमें अन्तर है। यदि दोनों शब्द समानार्थक होते तो ऐसा प्रयोग गोस्वामीजी द्वारा नहीं होता। अब प्रश्न उठता है कि साधु और संतमें अन्तर क्या है। साधु है वह, जो भगवानके सामने रोये और संत है वह, जिसके लिये भगवान रोयें। जिसके लिये भगवान रोयें, ऐसा प्रेमी संत विश्व-वन्द्य होता है। श्रीरामचरितमानसमें आया है —

भरत सरिसको राम सनेही। जगु जप राम रामु जप जेही।।

सारा विश्व भगवान रामका जप करता है और भगवान राम श्रीभरतजीका जप करते हैं। लोग भगवान श्रीकृष्णकी चरणरज चाहते हैं और भगवान श्रीकृष्ण व्रज-गोपियोंकी चरणरज चाहते हैं।

बाबासे हुए प्रश्नोत्तरका विवरण सुनाकर श्रीपुरुषोत्तमजी कहने लगे कि बाबाकी बात समझमें नहीं आयी। भले उनकी समझमें बात न आयी हो, बाबा द्वारा कथित उत्तरको सुनकर मेरा मन बह पड़ा। बाबाने श्रीपुरुषोत्तमजीको उत्तर स्वरूप यही कहा था कि 'अरे, मैं उनके लिये नहीं रोता, बल्कि वे ही मेरे लिये रोते हैं'। बाबा द्वारा दिये गये इस उत्तरको सुनकर मुझे पूज्य श्रीबापूके द्वारा कथित इस प्रसंगकी स्मृति हो आयी।

* * * * *

श्रीडोंगरे महाराजजी की श्रीभागवत-कथा

गीतावाटिकामें लाखों रुपयोंकी लागतसे एक विशाल मन्दिरका निर्माण हुआ है। यह सारा निर्माण भारतके विख्यात मन्दिर-निर्माण-कला-विशेषज्ञ श्रीसोमपुराजीकी देख-रेखमें नागर शैलीके अनुसार हुआ है। मन्दिरमें प्रतिष्ठित किये जानेवाले भगवद्विग्रह जयपुरसे आये हैं। श्रीराधाकृष्ण, श्रीसीताराम, श्रीपार्वतीशंकर आदिके अनेक विग्रहोंकी प्रतिष्ठा इसी वर्ष मन्दिरमें होगी। प्राण-प्रतिष्ठाके अवसरपर भागवत-कथा जैसा कोई सुन्दर एवं भावपूर्ण आयोजन अवश्य होना चाहिये, ऐसी भावना होनेके बाद भी अपनी विविध सीमाओंको देखते हुए आयोजनको बहुत विशाल रूपमें करने-करवानेकी कल्पना हमलोगोंके मनमें नहीं थी। सीमित सामर्थ्यको देखते हुए हमलोगोंकी भावना थी उत्सवको संक्षिप्त रूपमें मनानेकी, किन्तु सर्व-समर्थ प्रभुकी प्रेरणासे सीमातीत रूपवाले अति विशाल उत्सवका आयोजन निश्चित हो गया। भगवानने कितना सुन्दर संयोग संघटित कर दिया कि प्राण-प्रतिष्ठाके अवसरपर श्रीमद्भागवत-कथा कहनेके लिये भारतके महान संत पूज्यपाद श्रीडोंगरेजी महाराजका गीतावाटिकामें शुभागमन हुआ।

८ फरवरी१९८५, शुक्रवारसे १७ फरवरी, रविवारतक श्रीडोंगरेजी महाराजने गीतावाटिकाके प्रांगणमें श्रीमद्भागवतकी कथा कही। प्रभुकी कृपासे, संतोंके आशीर्वादसे, स्वजनोंके उत्साहसे, प्रशासनके सहयोगसे एवं कार्यकर्ताओंकी तत्परतासे यह विशद आयोजन सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ।

कथाके आयोजनको पूर्व-निश्चित करनेमें बाधाएँ कम नहीं आयीं। कथा हेतु विशाल पंडालका निर्माण, आनेवाले अतिथियोंके आवास एवं भोजनका प्रबन्ध, व्यय-भारका आधिक्य आदि-आदि प्रश्नोंको लेकर हमलोग इधर सचिन्त हो उठते थे तो उधर श्रीडोंगरेजी महाराजकी विवशता थी प्रदत्त आश्वासनोंके कारण। कई मास पूर्व उनका कार्यक्रम निर्धारित हो चुका था कि कब-कब कहाँ-कहाँ भागवत-कथा होगी। जिन तिथियोंमें भागवत-कथा गीतावाटिकामें हुई, वे तिथियाँ गया-धामके लिये

निर्धारित की जा चुकी थीं। बाधाएँ जो भी हों, उन्हींके बीचमेंसे मार्ग निकला। प्रभु-कृपासे सारी बाधाएँ दूर हो गयीं और यह निश्चित हो गया कि गीतावाटिकामें भागवत-कथा ८ फरवरीसे १७ फरवरीतक होगी। सच पूछा जाये तो गीतावाटिकामें कथाके आयोजनको प्रमुखता प्रदान करनेका श्रेय श्रीडोंगरेजी महाराजको ही है।

श्रीडोंगरेजी महाराजके मनमें एक अभिलाषा थी, पर वह थी सुगुप्त। उनकी अभिलाषा थी एक बार गीतावाटिका पधारनेकी। जिन महान रस-सिद्ध संत श्रीपोद्दारजीकी निष्ठा एवं कर्मठताके फलस्वरूप वर्तमान युगकी घोर विषम परिस्थितिमें भगवद्भक्तिकी प्रबल प्रवाहिणी बह चली, भगवन्नामके जप एवं कीर्तनका चतुर्दिक् प्रचार हुआ और श्रेष्ठ भक्ति-साहित्यका विपुल प्रकाशन हुआ, उन परम भागवत श्रीपोद्दारजीकी सौम्य-स्वभावा जीवन-संगिनी, जो वत्सलताकी मूर्ति होनेके कारण पूज्या माँके रूपमें समादृत हैं तथा उनके नित्य सहचर बाबा, जो रसिकताके साक्षात् स्वरूप होनेके कारण राधा बाबाके रूपमें विख्यात हैं, ये दोनों विभूतियाँ गीतावाटिकामें अभी विराज रही हैं, क्यों न उनके दर्शनका लाभ प्राप्त किया जाये? बस, इसी भावनासे श्रीडोंगरेजी महाराजके मनमें एक प्रच्छन्न अभिलाषा थी गीतावाटिका पधारनेकी। पधारनेके लिये भागवत-कथाके आयोजनसे श्रेष्ठ निमित्त और क्या हो सकता था?

भागवत-कथाकी विशद व्यवस्थाके प्रश्नको लेकर हमलोग कुछ घबराये और कुछ हिचकिचाये भी। आयोजनकी विशालताको सोचकर हमलोग सफलताके बारेमें कुछ सशंकित हो रहे थे। व्यवस्थापकत्व और कर्तापनके अहंकारमें हमलोग भूल बैठे कि अपने जनका मन रखनेके लिये प्रभु क्या नहीं कर सकते! 'राम सदा सेवक रुचि राखी'। विविध प्रश्नोंको लेकर हमलोग प्रारम्भमें भले ही कुछ सशंकित संकुचित हो रहे हों, पर यह सब हमलोगोंकी अनास्था और अस्थिरताका ही परिचय देता है। हमलोगोंके अन्तरमें व्याप्त शंका और संकोच व्यर्थ ही दो संतोंके मिलनेमें बाधक तत्त्व बन रहा था। इस आयोजनके सारे सूत्र तो उन सर्व-सूत्रधार प्रभुने अपने परम समर्थ हाथोंमें सँभाल रखे थे और प्रभु-कृपासे असम्भव-सा लगनेवाला कार्य सर्वथा सम्भव हो गया।

सभी लोगोंने बड़ी सराहना की कि गीतावाटिकामें व्यवस्था बहुत

सुन्दर थी, पर उन प्रशंसकोंको क्या पता कि अपने जनकी अभिलाषाको पूर्ण करनेके लिये उन अखिल सूत्रधार सर्वसमर्थ प्रभुने परोक्ष रूपसे हम क्षुद्र जनोंको कितनी और कैसी क्षमता प्रदान कर दी। कार्य तो किया प्रभुने और मिल गया सफलताका श्रेय हम अल्प-मति-गतिवालोंको अनायास-अकारण ही।

जब कथाकी तिथियाँ पूर्णतः निश्चित हो गयीं, तब श्रीडोंगरेजी महाराजने श्रीजयदयालजी डालमियाको बातचीतके बीच बतलाया – बहुत दिनोंसे मेरी इच्छा थी कि बाबा और माँजीके दर्शन करूँ। कथा तो एक बहाना मात्र है। मैं उनको क्या कथा सुनाने लायक हूँ?

जब श्रीडालमियाजीका पत्र गीतावाटिका आया तो पत्रमें लिखित श्रीडोंगरेजी महाराजके ये उद्‌गार बाबाको सुनाये गये। श्रीडोंगरेजी महाराजके इस दैन्यपर बाबा रीझ उठे। इस दैन्यसे बाबाका सम्पूर्ण व्यक्तित्व अभिभूत हो उठा और वे कहने लगे – इस दैन्यका कणांश भी हमलोगोंको स्पर्श कर ले तो सारा जीवन शीतल हो उठे।

७ फरवरीको श्रीडोंगरेजी महाराज वायुयानसे गोरखपुर पधारे। गीतावाटिका पहुँचते-पहुँचते संध्या हो आयी थी।

श्रीगिरिराजजी तथा समाधिका दर्शन करते हुए श्रीडोंगरेजी महाराजने भूमिपर लेटकर साष्टांग प्रणाम किया। तदुपरान्त बाबाके श्रीचरणोंमें फल भेंट किया। बाबा तो हाथ जोड़े हुए खड़े थे। हाथ जोड़े-जोड़े बाबाने कहा – करुणानिधानको मैं एक अकिञ्चन संन्यासी भला कौन-सी वस्तु प्रदान करूँ? आपकी अपार एवं अनन्त कृपा है, जो आपने गीतावाटिका पधारनेका कष्ट स्वीकार किया। आपके पावन चरणोंका स्पर्श पाकर गीतावाटिकाकी यह भूमि पवित्र हो गयी।

बाबाके इन शब्दोंको सुनकर श्रीडोंगरेजी महाराजकी आँखें भर आयीं। श्रीडोंगरेजी महाराज बाबाके पास पाँच-सात मिनट बैठे होंगे। फिर स्नानादिसे निवृत्त होनेके लिये अपने निवास-कुटीरमें चले आये।

निवास-कुटीरमें श्रीडोंगरेजी महाराजके चले जानेके बाद बाबाने भाव-भीने स्वरमें कहा था – श्रीडोंगरेजी महाराजका शुभागमन महान्-महान् सुयश एवं सुमंगलका विधायक है।

फाल्गुन कृष्ण तीज, शुक्रवार, ८ फरवरीके दिन पूर्वाह्न वेलामें श्रीडोंगरेजी महाराजकी भागवत-कथा आरम्भ हुई। कथाके श्रोताओंसे पंडाल

भरा हुआ था, पर इस कथाके मुख्य श्रोता थे बाबा एवं पूज्या माँ। माँ समयसे पहले ही पंडालमें आ गयीं। माँका आसन तो मंचके नीचे स्त्री-श्रोताओंके साथ लगाया गया था, पर श्रीमद्भागवतपुराणकी आरती करनेके लिये माँ मंचपर पधारीं। मंचपर एक ओर व्यासासनके समीप ही बाबाके विराजनेके लिये एक उच्चासन लगाया गया था। बाबा अपने आसनपर विराज रहे थे। ज्यों ही श्रीडोंगरेजी महाराज मंचपर पधारे, बाबा एवं माँ उनके स्वागतमें खड़े हो गये। श्रीडोंगरेजी महाराजने भूमिपर माथा टेककर माँको प्रणाम किया। माँने भी श्रीडोंगरेजी महाराजको प्रणाम किया। तदुपरान्त श्रीडोंगरेजी महाराजने बाबूजीके चित्रात्मक श्रीविग्रहको माल्यार्पण किया और अंतमें बाबाको साष्टांग प्रणाम करके पुष्पहार पहनाया। बाबा तो हाथ जोड़े-जोड़े झुके-झुके खड़े थे। बाबाने भी श्रीडोंगरेजी महाराजको पुष्पहार समर्पित किया। परस्पर प्रणामका यह अद्भुत भावपूर्ण दृश्य दस दिनोंतक प्रतिदिन देखनेको मिलता रहा। कई लोग तो इस दृश्यको देखनेके लोभमें आगे बैठा करते थे।

एक दिन माँको आनेमें कुछ विलम्ब हो गया तो श्रीडोंगरेजी महाराज व्यासासनपर बैठे-बैठे माँकी प्रतीक्षा करते रहे। माँ आयीं और ज्यों ही मंचपर पधारीं, त्यों ही व्यासासनसे उठकर-उतरकर श्रीडोंगरेजी महाराजने बड़े भक्ति-भाव-पूर्वक माँको प्रणाम किया। श्रीडोंगरेजी महाराज प्रणाम कर रहे थे माँको और हमलोग प्रणाम कर रहे थे श्रीडोंगरेजी महाराजकी भक्ति-भावनाको। अहंता-शून्य श्रीडोंगरेजी महाराजकी श्रद्धा-भावनाकी वन्दना जितनी भी की जाये, वह कम ही रहेगी।

भागवत-कथाके तीन-चार दिन बीत जानेके बाद माँने अपने निजी परिकर कृष्णजीके द्वारा श्रीडोंगरेजी महाराजको कहलवाया – मैं सर्वथा अनपढ़ हूँ और एक अति साधारण वैश्य महिला हूँ। आप मुझे प्रणाम करते हैं, इससे मुझे बड़ा संकोच होता है। आप तो हर प्रकारसे वन्दनीय हैं।

श्रीडोंगरेजी महाराजने कृष्णजीको बड़े विनम्र स्वरमें उत्तर दिया – माँको मेरी ओरसे प्रणाम करना और फिर मेरी ओरसे निवेदन करना कि वे नहीं जानतीं कि वे वस्तुतः क्या हैं। उनकी महानताका थोड़ा आभास मुझे है। वे तो माँ हैं, जगदम्बा-स्वरूपा हैं, संकोच करनेके स्थानपर तो उन्हें मुझे आशीर्वाद देना चाहिये, मुझपर कृपा करनी चाहिये।

श्रीमद्भागवतपुराणका पूजन एवं नीराजन करनेके लिये जब माँ

मंचपर पधारतीं तो एक और भी सुन्दर दृश्य प्रायः देखनेको मिलता। जब माँ श्रीमद्भागवत पुराणपर पुष्प-वस्त्र-नैवेद्यादि चढ़ानेके लिये अपना हाथ पसारतीं तो कई बार ऐसा होता कि व्यासासनपर बैठे-बैठे ही श्रीडोंगरेजी महाराज अपना हाथ फैलाकर माँके हाथसे पुष्पादि ले लेते तथा श्रीमद्भागवतजीपर अर्पित कर देते। ऐसा इसलिये कि अति वृद्धा माँको अधिक झुकना न पड़े। यह सुन्दर दृश्य तो कई बार देखनेको मिलता और होता बड़ा ही भावपूर्ण। इस समय माँके अधरोंकी परम पावनी मुस्कानमें जादूका-सा प्रभाव रहा करता था। परस्पर प्रणाम करते समय, श्रीमद्भागवतकी पूजा करते समय तथा व्यासासनकी परिक्रमा लगाते समय माँके मुखकी मुस्कानसे प्रसन्नताके जो फूल झरते थे, उन फूलोंकी मधुरिमा मंचके सारे वातावरणपर छा जाया करती थी। मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि उस समयका दृश्य मैं कैसे प्रस्तुत कर दूँ! माँके मुखश्रीकी दिव्य आभासे सारा मंच उद्भासित हो उठता था। एक अवर्णनीय स्तरकी दिव्यता, सचमुच सर्वथा अनुभवगम्य भव्यतासे कण-कण ओत-प्रोत हो उठता था।

माँ और बाबा जैसे श्रोताओंकी उपस्थितिसे भागवत-कथाके मण्डपकी शोभा अत्यधिक बढ़ गयी थी। वे इस मण्डपकी एक आध्यात्मिक भावमयी शोभा थे। केवल शोभा ही नहीं बढ़ी, उनकी उपस्थितिसे कथाका रस और कथाका प्रभाव अनन्त गुना अधिक बढ़ गया। भागवत-कथाका यह आयोजन तो त्रिवेणी संगमका साकार रूप था। भागवतकी कथा कही जा रही थी गीतावाटिकाकी स्थलीमें। गीतावाटिकाकी यही पुण्यस्थली है, जहाँ बाबूजीद्वारा हिन्दू धर्मके संरक्षणका, हिन्दू शास्त्रोंके प्रकाशनका, भगवन्नामके वितरणका, भगवद्भक्तिके प्रचारका, मानवीय सद्गुणोंकी प्रतिष्ठाका और आर्त जनोंकी सेवाका महान कार्य आजीवन होता रहा और हुआ उनकी वाणीके द्वारा, लेखनीके द्वारा और सबसे अधिक जीवन-शैलीके द्वारा। इन सभी महान कार्योंसे अलग बाबूजीका जीवन एक अनुपम एवं आदर्श उदाहरण था भगवल्लीला-सिंधुमें नित्य-निरन्तर निमग्न रहनेवाले एक प्रच्छन्न महान रसिक संतका। ऐसे प्रच्छन्न महारसिक बाबूजीकी महाकार्यस्थली गीतावाटिकामें यह भागवत-कथा कही जा रही थी और कही जा रही थी कथा-रस-रसिक सिद्ध संत पूज्य श्रीडोंगरेजी महाराजद्वारा, जो आजके युगके साक्षात् शुकदेव-स्वरूप थे। फिर इस कथाके मुख्य श्रोता थे बाबा एवं माँ। प्रभु-कृपासे यह कैसा दुर्लभ संयोग घटित हो गया कि सिद्ध

संतकी महाकार्यस्थलीमें सिद्ध संतद्वारा सिद्ध संतोंके समक्ष कथा कही गयी। यह कथा-आयोजन एक त्रिवेणी संगम ही था और गीतावाटिकामें अवतरित इस प्रत्यक्ष त्रिवेणी संगममें अवगाहन करनेके लिये अवश्य आगमन हुआ होगा ऋषि-मुनियोंके मण्डलका। श्रीडोंगरेजी महाराजने स्वयं ही भागवत-कथाके मध्य एक बार कहा था – भागवतकी कथाको सुननेके लिये श्रीगंगामहारानी, श्रीयमुनामहारानी, पवर्तराज, तीर्थराज, ऋषि-महर्षि आदि भी पधारते हैं। यदि वक्ता विवेकपूर्वक सावधान होकर कथा नहीं कहे, तो वह अपराधका भागी होता है।

व्यासासनपर श्रीडोंगरेजी महाराजके विराज जानेके बाद हमलोगोंको यही अनुभव होता था कि हमलोग एक दिव्य लोकमें बैठे हुए एक महान संतके श्रीमुखसे श्रीमद्भागवतकी कथाका श्रवण कर रहे हैं। श्रीडोंगरेजी महाराजकी कृति और प्रकृतिकी पूर्ण छाप उनकी आकृतिपर परिलक्षित होती रही। श्रीडोंगरेजी महाराजके श्रीमुखसे निःसृत एक-एक शब्दके पीछे उनका तपोनिष्ठ जीवन था। यही हेतु था कि उनके शब्द श्रोताओंके हृदयमें प्रवेश कर जाते थे तथा श्रोताके सम्पूर्ण अस्तित्वको प्रभावित करते थे। पंडालमें बैठे हुए श्रोतागण दत्तचित्त होकर कथा सुनते थे। कथा सुननेवालोंमें स्त्री-श्रोताओंकी संख्या अधिक थी। ऐसा होनेके बाद भी पंडालमें पूर्ण शान्ति रही, यह श्रीडोंगरेजी महाराजके व्यक्तित्व एवं वक्तृत्वका ही चमत्कार रहा। पंडालमें इतनी शान्ति थी कि वृक्षपर बैठे हुए कौएके बोलनेकी आवाज साफ-साफ सुनायी देती थी। सौ गजकी दूरीपर झाड़ू लगानेसे उत्पन्न होनेवाली आवाज भी विघ्न समान लगती थी। सड़कपर आने-जानेवाली ट्रक-बस-कार-स्कूटरके हॉर्नकी आवाज कानोंको चुभती थी। सूर्यास्तके बाद कथाके समय कई बार बिजली चली जाती। पंडालमें अंधकार छा जाता, इसके बाद भी सब श्रोता चुपचाप कथा सुनते रहते। कथाके पंडालमें ऐसी शान्ति क्वचित् ही देखनेको मिलती है। इस पूर्ण शान्तिका, मेरी दृष्टिमें, एक मात्र हेतु रहा श्रीडोंगरेजी महाराजका परमोज्ज्वल संतत्व और प्रभावकारी वक्तृत्व। श्रीडोंगरेजी महाराज भागवत-कथामें वही बोलते थे, जो उनके जीवनका सत्य था। जिन सिद्धान्तोंको चिन्तन-मननके द्वारा उन्होंने अपने मनसे स्वीकार किया और जिन सिद्धान्तोंको सतत साधनाके द्वारा उन्होंने अपने आचरणमें उतार लिया, उन श्रेष्ठ सिद्धान्तोंका आचरणसे एकीकरण, इस तथ्यने ही उनके

जीवनमें अचिन्त्य परमोज्ज्वलता भर दी थी और इस परमोज्ज्वलताकी प्रभावोत्पादकता और भी अधिक बढ़ गयी थी प्रसंगोंको प्रस्तुत करनेकी रोचक शैलीके कारण। हिन्दी भाषामें गुजराती अथवा मराठी भाषाका पुट बड़ा प्यारा लगता था। व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवनमें आजकल जो अभद्रताएँ-अनैतिकताएँ-अनास्थाएँ प्रवेश कर गयी हैं, उनपर श्रीडोंगरेजी महाराज कभी-कभी तीखा व्यंग्य भी करनेसे नहीं चूकते थे। कथाके प्रवाहमें कभी-कभी विभिन्न संतोंके चरित्रोंको सुनानेके कारण श्रोताओंका आकर्षण बढ़ता ही जाता था और कथाके बीच-बीचमें वे कभी-कभी ऐसे सूत्र-वाक्य बोल जाया करते थे, जिनसे जीवनके संस्कारमें-शृंगारमें सहायता मिले। सबसे प्रधान बात यह थी कि श्रीडोंगरेजी महाराजके प्रवचनमें उनके आचरण-सिद्ध सिद्धान्तोंका ही प्रतिपादन होता था। इतना ही नहीं, हमलोगोंने भावपूर्ण प्रसंगोंका वर्णन करते समय उनको विह्वल होते देखा है, उनकी वाणीको अवरुद्ध होते देखा है, उनके हृदयको द्रवित होते देखा है, उनके नेत्रोंको सजल होते भी देखा है और अनेक बार उनके श्रीअंगोंमें दैवी आवेशको अवतरित होते भी देखा है। सचमुच, व्यासासनपर बैठनेके बाद श्रीडोंगरेजी महाराज नहीं बोलते थे, अपितु उनका वैष्णव हृदय बोलता था और उसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह था कि प्रत्येक श्रोताको वैष्णव जीवन अंगीकार करनेकी प्रेरणा मिलती थी। स्त्री-पुरुष, धनी-निर्धन, चतुर-मूर्ख, गृहस्थ-विरक्त, साधारण-असाधारण, चाहे कोई भी हो, कैसा भी श्रोता हो, उसको बाध्य होकर आत्म-निरीक्षण करना ही पड़ता था और इस निर्णयपर पहुँचना ही पड़ता था कि मानव जीवनकी सफलता श्रीकृष्ण-दर्शनमें ही है। श्रीडोंगरेजी महाराजकी स्पष्ट मान्यता थी और उन्होंने उच्च स्वरसे अपनी कथामें भी कहा – यदि श्रोता मन लगाकर कथा सुने तो कथा सुननेके बाद जीवनमें परिवर्तन आना ही चाहिये। भागवत-कथा सुननेके बाद राजर्षि परीक्षितको भगवान श्रीकृष्णकी प्राप्ति हुई थी। हमारे जीवनमें कम-से-कम इतना तो होना ही चाहिये कि भगवान श्रीकृष्णके दर्शनकी चाह जग जाये। भगवान श्रीकृष्णका साक्षात् दर्शन करनेके लिये ही मनुष्यका जन्म मिला है।

माँ जब कथा सुनकर आतीं तो भाव-भरे मनसे वे बस इतना ही कहतीं – आज तो महाराजजीने निहाल कर दिया।

कथा सुनकर जब बाबा अपनी कुटियापर आते तो हमलोगोंके समक्ष बोल उठते – यह भागवत-प्रवचन क्या है मानो उमड़ता हुआ भक्ति-सिन्धु है।

प्रीतिरसावतार महाभावनिमग्न

श्रीराधा बाबा

(द्वितीय भाग)

राधेश्याम बंका

बाहरसे आये हुए भक्तगण अपने विह्वल उद्‌गारोंको व्यक्त करनेमें अघाते नहीं थे। कलकत्तेके एक भक्तने कहा – श्रीडोंगरेजी महाराजकी मैं यह पाँचवीं अथवा छठवीं बार कथा सुन रहा हूँ, पर ऐसा आनन्द तो पहले कभी नहीं आया।

उनके उद्‌गारोंको सुनकर मुझसे कहे बिना नहीं रहा गया। मैं बोल पड़ा – क्या आप यह नहीं जान रहे हैं कि यहाँपर श्रीमहाराजजीके पधारनेकी प्रेरणा क्या है? अन्य स्थानोंपर कथा कहनेके लिये महाराजजीको आमंत्रित करना पड़ता है और यहाँ किसी सदभिलाषाके फलस्वरूप श्रीमहाराजजी स्वयं-प्रेरणासे पधारे हैं। इसके अतिरिक्त आप यह भी तो देखें कि उनके समक्ष श्रोताके रूपमें कौन बैठा है। क्या ये सब तथ्य वक्ताके भाव-राज्यको प्रभावित नहीं करते? गोस्वामी तुलसीदासजीने स्वयं लिखा है –

श्रोता सुमति सुसील सुचि कथा रसिक हरि दास।
पाइ उमा अति गोप्यमपि सज्जन करहिं प्रकास॥

कलकत्तेके जिन सज्जनने ये उद्‌गार व्यक्त किये थे, उन्हींकी तरह अन्य कई लोगोंके मुखसे इसी प्रकारके भाव सुननेको मिले। नासिकसे पधारे हुए एक अन्तरंग भक्त यहाँतक बोल गये – मुझे तो बड़ा विस्मय होता है कि जो व्यक्ति भक्तिमें इतना डूबा हुआ हो, वह कैसे कथा कह पा रहा है? यह हमारा महान सौभाग्य है कि हमलोग ऐसे संतको अपनी आँखोंसे देख रहे हैं। कभी-कभी मुझे अपनी आँखोंपर विश्वास नहीं होता।

१४ फरवरीके प्रातःकाल माँने अपने निजी परिकर कृष्णजीको पूज्य श्रीडोंगरेजी महाराजके पास भेजा और कहलवाया – श्रीमहाराजजीके दर्शन कथा-मण्डपमें ही केवल हो पाते हैं। कथासे तृप्ति नहीं हो पाती। क्या श्रीमहाराजजी अपनी व्यस्त दिनचर्यामेंसे कुछ क्षण निकालकर मिलनेके लिये अवसर दे सकते हैं? यदि महाराजजी आज्ञा प्रदान करें तो मैं वहाँ निवास कुटीरपर दर्शन करनेके लिये आ जाऊँ।

श्रीडोंगरेजी महाराजने कृष्णजीसे कहा – मैं स्वयं ही माँके पास आऊँगा।

कृष्णजीने निवेदन किया – आपके जानेसे तथा सीढ़ीपर चढ़नेसे आपको श्रम होगा। माँ तो कुर्सीपर बैठकर आती हैं, अतः उनके आनेमें

कोई कठिनाई नहीं होगी।

श्रीडोंगरेजी महाराजने कहा – तब तो वे कभी भी आ सकती हैं और इसके लिये पूछनेकी आवश्यकता ही क्या थी?

इसके बाद बातचीतका क्रम चल पड़ा। कृष्णजीने बाबूजीके बारेमें, गीतावाटिकाके बारेमें तथा नव-निर्मित मन्दिरके बारेमें कुछ बातें बतलायीं। बातचीतके इसी क्रममें कृष्णजीने जिज्ञासा व्यक्त की – आपका बाबासे परिचय कब हुआ?

श्रीडोंगरेजी महाराजने बतलाया – बाबाद्वारा रचित 'श्रीकृष्ण-लीला-चिन्तन' जब पढ़ा, तभीसे बाबाके दर्शनकी अभिलाषा थी। इधर कथा कहनेके निमित्तसे गोरखपुर आनेकी बात चली। बात चलते-चलते एक बार टूट गयी। इससे मन उदास हो गया। हरिकी जैसी इच्छा, ऐसा मानकर मनको समझा लिया, परंतु उसी हरि-इच्छासे कथाका आयोजन निश्चित हो गया। कथाको सुनाकर साधारण स्तरकी एक सेवा ही मेरेद्वारा सम्पन्न हो रही है। श्रीभाईजीके सम्बन्धमें क्या कहूँ? वे तो भगवद्धामसे आये थे और वहीं चले गये। श्रीभाईजीके प्रत्यक्ष दर्शन तो नहीं हुए, परंतु उनके द्वारा लिखित साहित्य पढ़ा है। हिन्दू धर्म एवं हिन्दू जातिके लिये वे जो कर गये हैं, उसके लिये वे सदा ही स्मरण किये जायेंगे।

श्रीडोंगरेजी महाराजके पाससे वापस आकर कृष्णजीने उनकी प्रसन्न अनुमतिकी सूचना माँको दे दी। १६ फरवरीको कथा आरम्भ होनेके पहले प्रातःकाल माँ श्रीडोंगरेजी महाराजके दर्शनार्थ उनके निवास-कुटीरपर पधारीं। श्रीमहाराजजीके समीप स्वतन्त्र आसनपर विराजनेके उपरान्त माँने ज्यों ही प्रणाम किया, त्यों ही श्रीमहाराजजीने भी प्रणाम करके कहा – आप मुझे आशीर्वाद दें कि मुझे प्रभु-चरणोंकी भक्ति मिले।

श्रीडोंगरेजी महाराजके ऐसा कहते ही माँने कहा – आपने तो मेरी बात कह दी। यही प्रार्थना करने तो मैं आयी थी। आप मुझे आशीर्वाद दें कि भगवानकी भक्ति मिले, उनके चरणोंमें प्रीति हो। आपके ठाकुर श्रीबालकृष्णलालजीसे यही प्रार्थना है।

इधर तो माँ इस प्रकारसे कह रही थीं, उधर श्रीमहाराजजी असहमति व्यक्त करते हुए अपना मस्तक हिला रहे थे। माँके कह चुकनेपर श्रीमहाराजजी कहने लगे – आप ही मुझे आशीर्वाद दें। आप तो जगदम्बा

हैं, आपको ही कृपा करनी चाहिये।

उभय पक्षका अपना-अपना दैन्य और फिर परस्परके प्रति प्रार्थना, यह सारा दृश्य और यह सारा संवाद इस लोक-स्तरका था ही नहीं। अद्भुत शील, अद्भुत संकोच, अद्भुत दैन्य, अद्भुत मनोरथ, अद्भुत विनती आदिकी एक बड़ी अद्भुत झाँकी देखनेको मिल रही थी। श्रीडोंगरेजी महाराजके सेव्य भगवान श्रीबालकृष्णलालजीके लिये माँ पोशाक-इत्र-फल-फूल-पुष्पहार आदि अपने साथ ले आयी थीं। वह सब माँने श्रीमहाराजजीको दिया अर्पित करनेके लिये। इन सबको महाराज श्रीडोंगरेजीने अपने समीप रखवा लिया। ठाकुर-सेवाकी सामग्रीको रखकर माँ पुनः हाथ जोड़े-जोड़े मन्द-मन्द स्वरमें निवेदन करने लगीं – आप तो सब प्रकारसे समर्थ हैं। मैं तो अनपढ़ साधारण महिला हूँ। आप अपने बालकृष्णलालसे प्रार्थना करें कि मुझे सच्ची भक्ति मिले।

उस समय कुटीरका वातावरण जैसा भावमय हो रहा था, श्रीडोंगरेजी महाराजकी मुखाकृति जितनी भावमय हो रही थी और माँकी मुख-छवि जितनी भावमय हो रही थी, उस सबका वर्णन भला कौन कर सकता है?

'बरनै छबि अस जग कबि को है'।

कुटीरमें गहरी निश्शब्दता व्याप्त हो रही थी। दोनों ही अपने-अपने भावोंमें निमग्न थे। थोड़ी देर बाद माँने बड़े मन्द स्वरमें रुक-रुककर कहना आरम्भ किया – भागवतकी कथा सुनाकर आपने निहाल कर दिया। बस, इसी प्रकार एक बार और कभी यहाँ पधारकर आप श्रीरामायणजीकी कथा सुना दें।

श्रीडोंगरेजी महाराजने भगवान श्रीबालकृष्णलालकी ओर इंगित करके कहा – यह तो इनकी इच्छापर निर्भर है।

माँ कथाके प्रारम्भ होनेके समय गयी थीं। कथारम्भका समय समीप होनेसे माँने अधिक बैठना उचित नहीं समझा और वे श्रीडोंगरेजी महाराजको प्रणाम करके कथा-मण्डपमें चली आयीं।

देखते-देखते भागवत-कथाके दस दिन व्यतीत हो गये और १७ फरवरीकी मध्याह्न वेलामें भागवत-कथा सम्पन्न हो गयी। इसी दिन अपराह्न कालमें श्रीडोंगरेजी महाराजको वायुयानसे दिल्ली प्रस्थान करना था।

गीतावाटिकासे प्रस्थान करनेके पूर्व श्रीडोंगरेजी महाराज बाबाकी कुटियापर पधारे। श्रीडोंगरेजी महाराजके आते ही बाबाने उनको कम्बलका आसन देना चाहा। श्रीडोंगरेजी महाराजने कहा— कम्बलकी क्या आवश्यकता है? यहाँका प्रत्येक रजकण परम पवित्र है।

श्रीडोंगरेजी महाराज एवं बाबा भूमिपर ही बैठ गये। श्रीमहाराजजीने बाबाको भूमिपर माथा टेककर प्रणाम किया। बाबाने अपने कर-कमलकी भावमयी चेष्टाद्वारा पुष्पार्पण किया और फिर वे कहने लगे— आपने कथा क्या सुनायी, भगवत्कृपा और भगवद्रसकी सरिता ही प्रवाहित कर दी। आप विश्वास करें, मैंने ऐसी कथा कभी नहीं सुनी। जीवनकी साध आपने पूरी कर दी। यहाँपर अच्छे-अच्छे कथावाचकोंका शुभागमन होता ही रहता है, परंतु आपकी कथामें आपका जीवन बोलता है। आपका अभिनन्दन करनेके लिये मेरे पास वाणी नहीं है। आपने अद्भुत-से-अद्भुत कथा सुनायी। आपके द्वारा भगवद्भावका जो उन्मुक्त वितरण हुआ है, यह कार्य सर्वथा अतुलनीय है, पूर्णतः निरुपमेय है। भगवद्भावका यह दान, दान नहीं, महादान है और यह महाद्भुत है।

श्रीडोंगरेजी महाराज तो दैन्यवशात् स्वयंमें सिमटे चले जा रहे थे। इस भावार्चनको सुनकर उन्होंने विनम्र स्वरमें कहा— मैं तो किसी लायक नहीं हूँ। मैं तो आपकी शरणमें हूँ।

बाबाने कहा— आपका दैन्य आपके ही योग्य है, अन्यथा ऐसी योग्यता, ऐसा संतत्व और ऐसी कथाका दर्शन भला कहाँ मिल पाता है? आपके शुभागमनसे गीतावाटिका धन्य हो गयी। इस स्थानकी महिमा बढ़ गयी।

बाबा बार-बार अपने तथा गीतावाटिकाके सौभाग्यका वर्णन करते रहे। हवाई-अड्डेपर जानेका समय देखकर बाबाने पुनः कहा— अब आप सहर्ष पधारें। मैं तो आपके परम मंगलकी सतत कामना करता हूँ।

श्रीडोंगरेजी महाराज आये और चले गये। पलक मारते-मारते दस दिन निकल गये। यह पता ही नहीं चला कि किस प्रकार दस दिन बीत गये। श्रीडोंगरेजी महाराजके आगमनसे यह गीतावाटिका 'भई सकल सोभा कै खानी'। इन दस दिनोंमें गीतावाटिकाका वातावरण कुछ और ही हो गया था। सभीपर एक आध्यात्मिक नशा छाया हुआ था, जिसकी खुमारी
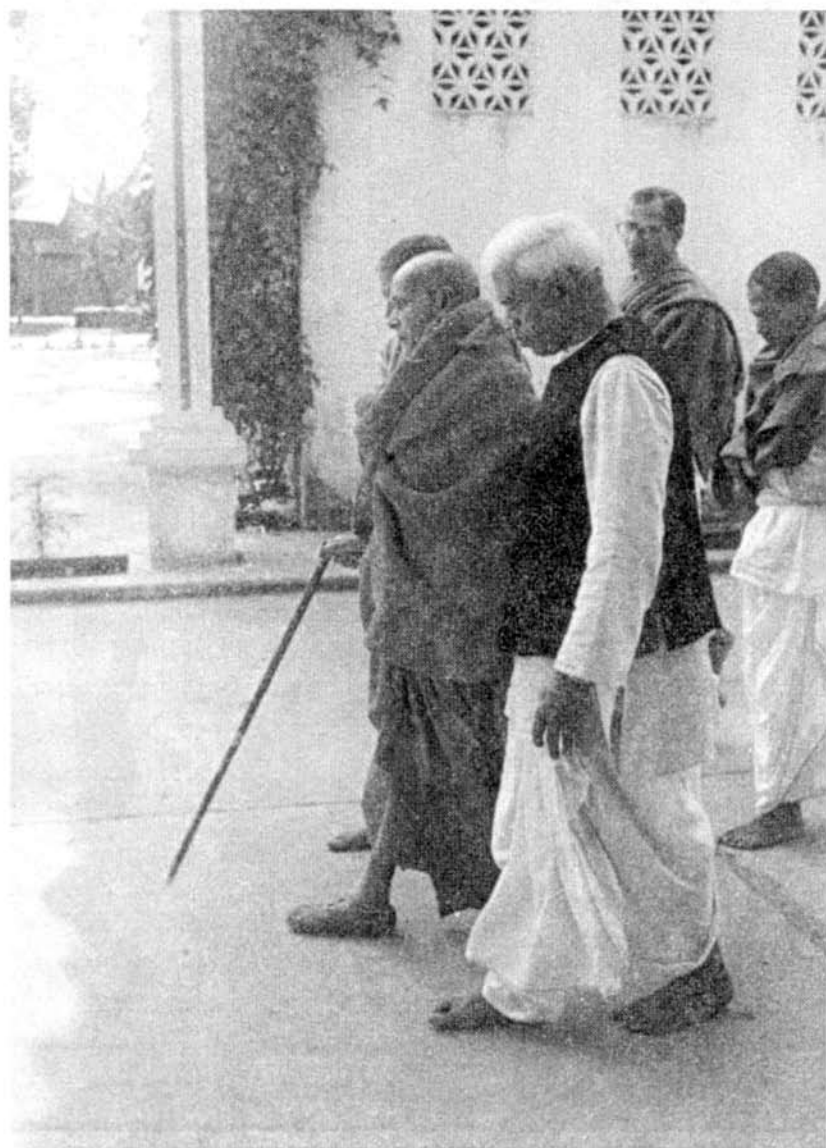
गीतावाटिका में विचरण करते हुए श्रीराधाबाबा

गीतावाटिका में श्रीभागवतजी के आयोजन के अवसर पर
पूज्य बाबा का अभिवादन करते हुए श्री डोंगरेजी महाराज

बहुत दिनोंतक चढ़ी रही। सभी जगते-जगते खुली आँखोंसे एक आध्यात्मिक सपना देख रहे थे। यह महदायोजन सभीके मनपर एक गहरी छाप छोड़ गया है। सभी मुक्त स्वरसे कहते थे – यह महदायोजन गीतावाटिकाकी सुख्यातिके अनुरूप ही हुआ।

* * * * *

भगन्दर रोगसे विमुक्ति

भाई श्रीसीतारामजी जालानको जिन्हें बाबा सदा पुत्रवत् प्यार करते रहे। श्रीसीतारामजीके प्रति बाबाका वात्सल्य सदा उमड़ता ही रहता था। एक बार श्रीसीतारामजी काफी अस्वस्थ हो गये। उनको दमा तो था ही, भगन्दर भी हो गया। भगन्दरको अँगरेजीमें फिस्चुला कहते हैं। यह बड़ा दुष्ट रोग है। चाँदसीके चिकित्सकोंने कहा कि इसके इलाजमें श्रीसीतारामजीको खाटपर लगभग अढ़ाई मास लेटे रहना पड़ेगा। डाक्टरोंकी राय थी कि यह रोग आपरेशन किये बिना ठीक होगा ही नहीं। घरवाले आपरेशन कराना तो चाहते थे, किन्तु दमेका रोग साथमें लगा हुआ था, अतः साहस नहीं हो पा रहा था। भगन्दर रोग भीषण रूपसे बढ़ा हुआ था। मलद्वारसे अधिक रक्त-स्राव होता था। दिन-प्रति-दिन शरीर छीज रहा था।

एक दिन श्रीसीतारामजी अपने परम प्रिय स्वजन श्रीबालाप्रसादजी तुलस्यानके साथ बाबाके पास आये। बात-ही-बातमें श्रीबालाबाबूने श्रीसीतारामजीकी भीषण रुग्णताकी बात चला दी। उस भगन्दर रोगकी भीषणता तो हमारे आपके लिये थी ही, थोड़ी देरके लिये बाबा भी चिन्तित हो उठे और चिन्ताकुल स्वरमें उन्होंने कहा – 'अच्छा त हमार छोटके बेटुआके फिस्चुला हो गइल बा'।

फिर रुककर बाबाने कहा – कोई बात नहीं। चिन्ताका प्रश्न नहीं। पहले मैं अपने डाक्टरोंको दिखवा लूँ। यदि हमारे डाक्टर भी निदान कर लेनेके बाद यही रोग बतलायेंगे तो मैं मान लूँगा। उसके बाद इस रोगकी चिकित्साके बारेमें सोचा जायेगा। पहले यह निर्णय हो कि भगन्दर है या नहीं।

उसी समय उन्होंने डा. श्रीएल. डी. सिंहजीको बुलवाया। जब डाक्टर साहब आ गये, तब बाबाने भाई श्रीसीतारामजीका छोटे पुत्रके रूपमें

परिचय देते हुए उनसे उस रोगका सही निदान करनेके लिये कहा। डाक्टर साहबके कथनानुसार श्रीसीतारामजीको अगले दिन अस्पतालमें आना आवश्यक था। इसे श्रीसीतारामजीने स्वीकार कर लिया। जब श्रीसीतारामजी श्रीबालाबाबूके साथ घर वापस लौट रहे थे तो अत्यन्त विश्वासके स्वरमें उन्होंने श्रीबालाबाबूसे कहा – कल अस्पतालमें जो विभिन्न जाँच और परीक्षण होगें, उनमें यह रोग नहीं मिलेगा। वे सारे परीक्षण सिद्ध कर ही नहीं पायेंगे कि मुझे भगन्दर रोग है।

उनकी बात सुनकर श्रीबालाबाबूको बड़ा विस्मय हो रहा था। उनकी आँखोंमें आश्चर्य भरी जिज्ञासा तैर रही थी। उन्होंने पूछ – यह तुम कैसे कह रहे हो?

श्रीसीतारामजीने कहा – इस प्रश्नका उत्तर सारे टेस्ट (अर्थात् जाँच-पड़ताल) हो जानेके बाद दूँगा।

दूसरे दिन श्रीसीतारामजीके विभिन्न टेस्ट हुए और अपनी रिपोर्टमें डाक्टर साहबने लिख दिया कि भगन्दरके कोई लक्षण नहीं हैं, हाँ बवासीरका आरम्भ है। यह रिपोर्ट बाबाको दिखलायी गयी। रिपोर्ट देखकर बाबाने कहा – तुमने तो मुझको डरा ही दिया था। तुमको भगन्दर है ही नहीं।

श्रीसीतारामजी अपने भावोंकी उर्मिलताके उभारका संवरण नहीं कर पाये और वे भरे-भरे हृदयसे कहने लगे – यह सब आपका खेल है। मैं तो उस खेलको देखकर भी नहीं देख पा रहा हूँ। आप तो भाग्यकी रेखाको बदल देनेमें भी समर्थ हैं।

बाबा प्यारमें न जाने क्या-क्या बोलते रहे और फिर कहा – जाओ। अब लाल मिर्च मत खाना।

इसके बाद श्रीसीतारामजीको कभी भगन्दर हुआ ही नहीं। श्रीबालाबाबूके मनमें जिज्ञासा अभीतक बनी हुई थी। वे भली प्रकार जानते थे कि श्रीसीतारामजी भगन्दरसे खूब पीड़ित हैं और अब यह बात कैसे बदल गयी। श्रीबालाबाबूकी जिज्ञासाका उत्तर देते हुए श्रीसीतारामजीने कहा – बाबाने कहा था कि मेरा डाक्टर निदानके बाद जो कहेगा, उसी बातको मैं मानूँगा। इन शब्दोंके कहते समय उनकी मुख-मुद्रा कुछ और ही प्रकारकी हो गयी थी। उनके मुखमण्डलपर एक अलौकिक स्तरकी कान्ति

झलक रही थी। उससे स्पष्ट लग रहा था कि जिस प्रारब्ध-भोगके फलस्वरूप यह रोग मेरे पास आया है, उस प्रारब्धको ही वे बदल देना चाहते हैं। जिस समय उनके सामने रोगकी बात चली थी, तब पूज्य बाबाको बतला दिया गया था कि सभी डाक्टरोंने एक स्वरसे इसे भगन्दर बतलाया है। सभी डाक्टरोंका अभिमत जाननेके बाद भी उनके द्वारा दृढ़ स्वरमें वैसा कहा जाना ही एक इशारा कर रहा था कि बाबा 'अपने ढंगसे सक्रिय' हो रहे हैं।

श्रीसीतारामजीके उत्तरको सुनकर श्रीबालाबाबूको बड़ा सन्तोष मिला, केवल सन्तोष ही नहीं, संताश्रय-भावनाको बड़ा बल मिला।

* * * * *

मन्दिर में प्राण-प्रतिष्ठा

पूज्य बाबूजीकी महाकार्य-स्थली रही है गीतावाटिका। आध्यात्मिकता और आस्तिकता, धार्मिकता और नैतिकता, वैधी भक्ति और रागानुगा भक्ति, सत्साहित्य और समाज-सेवा आदिके क्षेत्रमें जिस महान कार्यकी संसिद्धिके लिये उनका भूतलपर शुभागमन हुआ था, उस कार्यको उन्होंने सम्पन्न किया गीतावाटिकामें निवास करते हुए ही। उनकी महाकार्य-स्थली बननेका सौभाग्य मिला गीतावाटिकाको ही। इसी गीतावाटिकामें उन्हीं बाबूजीकी स्मृतिमें एक अति विशाल मन्दिरका निर्माण नागर शैलीके अनुसार हुआ है।

इस मन्दिरमें भगवद्विग्रहोंकी प्रतिष्ठा होनेके पूर्व भागवत-कथाका भव्य आयोजन हुआ। भागवत-कथा कहनेके लिये पधारे थे भारतके विख्यात संत पूज्य श्रीडोंगरेजी महाराज। गीतावाटिकामें ८ फरवरी १९८५ से १७ फरवरी १९८५ तक भागवत-कथा हुई थी। भागवत-कथाका यह विशद आयोजन प्राण-प्रतिष्ठा-समारोहका एक अंग ही था। भागवत-कथाके पूर्ण होते ही भगवद्विग्रहोंकी प्राण-प्रतिष्ठा फरवरी ८५ के अन्तमें होनेवाली थी, किंतु कतिपय बाधाओंके कारण यह कार्यक्रम बाध्य होकर स्थगित करना पड़ा। फिर यह सम्पन्न हो पाया जून मासके तृतीय सप्ताहमें।

प्राण-प्रतिष्ठाका पूजन-विधान १५ जून ८५ से आरम्भ होकर सात दिनतक चलता रहा। इसकी पूर्णाहुति हुई २१ जून ८५ को। पूजन- विधानके विस्तृत कर्म-काण्डको विधिवत् सम्पन्न करनेके लिये विभिन्न स्थानोंसे ग्यारह

निष्णात पण्डित पधारे थे। इनके साथ चार सहायक पण्डित सहयोगीके रूपमें कार्य कर रहे थे। हम सभी लोगोंकी आन्तरिक अभिलाषा थी कि सात दिनतक पूज्या माँके द्वारा सारा पूजन-कार्य हो, परंतु उनका स्वास्थ्य अत्यधिक शिथिल था। चलना-फिरना तो दूरकी बात रही, उनके लिये बैठ सकना भी सम्भव नहीं था। इस परिस्थितिमें पण्डित-मण्डलने एक मध्यम मार्गका आश्रय लिया। पण्डितोंने माँके द्वारा पूजनका संकल्प करवाया और फिर माँके प्रतिनिधिस्वरूप बाई (श्रीसावित्रीबाई फोगला) और श्रीपरमेश्वरप्रसादजी फोगलाने यजमानके रूपमें सात दिनतक पूजन-कार्य किया। फोगला दम्पतिको प्रतिदिन छः-सात घंटेतक अर्चकके आसनपर बैठना पड़ता था। भले माँ अर्चकके आसनपर नहीं विराजीं, परंतु वे प्रतिदिन पूजनमें अवश्य पधारती थीं। माँके पधारते ही वातावरणमें दिव्यता परिव्याप्त हो जाती थी।

प्राण-प्रतिष्ठा-समारोहके निमित्तसे वृन्दावनसे पूज्य श्रीमहाराजजी भी पधारे थे। महाराजजीके पधारते ही समारोहकी शोभा एवं गरिमा अनन्तगुनी हो गयी। महाराजजीके पधारनेपर बाबाने कहा था – आपका शुभागमन होते ही मेरे आह्लादकी सीमा नहीं रहती। मेरी दृष्टि सदा देखती रहती है आपकी नित्य प्रसन्न मुखाम्बुज-श्रीको।

इस अवसरपर वृन्दावनसे श्रीश्रीराम-श्रीफतेहकृष्णजीकी रासमण्डली एक सप्ताहके लिये गीतावाटिका आयी थी। भागलपुरसे मानस-कथावाचिका आदरणीया बहिन श्रीकृष्णादेवीजी मिश्रका भी शुभागमन हुआ था। रासलीला प्रातःकाल होती थी और मानस-कथा रात्रिमें। प्रातःकाल भगवान श्रीकृष्णकी विभिन्न लीलाओंका भावपूर्ण प्रस्तुतीकरण, पूर्वाह्न कालसे अपराह्न कालतक पूजन-विधानके समय वैदिक मंत्रों तथा पौराणिक स्तुतियोंका सस्वर घोष और रात्रिमें श्रीरामचरितमानसके पुष्पवाटिका- प्रसंगकी मधुमयी कथा, इन सबसे गीतावाटिकाका वातावरण बड़ा सरस बन गया था। इस अवसरपर बाहरसे आनेवालोंकी भीड़ तो नहीं थी, किंतु वे सभी लोग गीतावाटिका आ गये थे, जिनका माँसे, बाबूजीसे तथा बाबासे आन्तरिक लगाव है।

इस प्राण-प्रतिष्ठा-समारोहकी सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि बाबा लगभग सभी कार्यक्रमोंमें उपस्थित रहे। उनकी उपस्थितिसे कार्यक्रमका स्वरूप और प्रभाव कुछ और ही हो जाया करता था। कार्यक्रम ऐसे आकर्षक बन जाते थे कि उठनेवालोंको उठनेकी स्मृति नहीं रहती थी। प्रातःकाल

श्रीनिमाई -निताई के मध्य श्रीराधाबाबा (पार्श्व में श्रीराधाकृष्ण के श्रीविग्रह)

मंदिर में श्रीराधाबाबा

साथ में (बाएं से दाएं) डॉ. एल.डी. सिंह, श्रीचोपड़ाजी, श्रीबंकाजी तथा
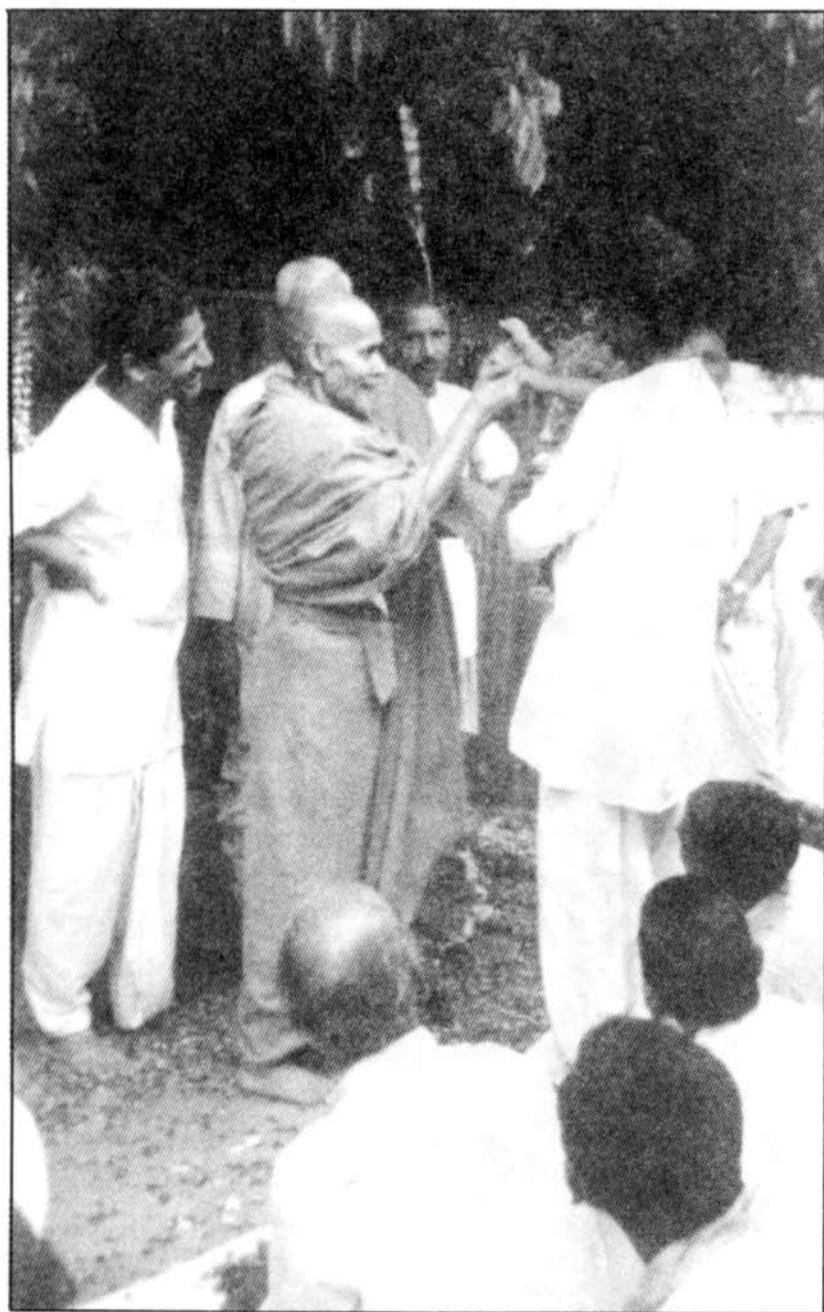
श्रीगिरीराज-परिक्रमा स्थली में श्रीराधाबाबा

रासलीलाका दर्शन करनेके लिये एवं रात्रिमें मानस-कथाका श्रवण करनेके लिये बाबा जाते ही थे, इसके अतिरिक्त दिनमें पूजनके समय भी बाबा आवश्यकतानुसार मन्दिरमें पधारते थे। इस बार सबसे नवीन बात यह हुई कि बाबाने पण्डितोंसे तिलक करवाया और उनसे आशीर्वाद-फल स्वीकार किया। मन्दिरके ऊपर ध्वजाको चढ़ाते समय, शोभा-यात्राके समय, यज्ञमें पूर्णाहुति देते समय, भगवद्विग्रहोंके नीराजनके समय, इस प्रकार भिन्न-भिन्न मुख्य अवसरोंपर बाबा मन्दिरमें उपस्थित रहे। बाबा और महाराजजीकी उपस्थितिसे लोगोंके हृदयका उत्साह और उल्लास हिलोरें लेने लगता था। शोभा-यात्राके समय जब सभी लोग बाबा और महाराजजीके साथ-साथ मन्दिरकी परिक्रमा दे रहे थे, तब ऐसा लगता था कि मानो 'जाहिं सनेह सुरा सब छाके'।

यह उत्साह और उल्लास तो भक्तोंके हृदय-राज्यकी दृष्टिसे है। इससे अलग एक विशेष दृष्टिकोण और भी है। चाहे कितनी सतर्कता और सावधानी रखी जाये, इसके बाद भी विस्तृत पूजन-विधानमें अनजाने-अनचाहे कुछ-न-कुछ च्युतियाँ हो ही जाया करती हैं। हमलोगोंका विश्वास है कि माँ, बाबा और महाराजजीकी उपस्थितिसे प्राण-प्रतिष्ठा-अनुष्ठानकी इन सभी छोटी-बड़ी च्युतियोंका, सभी प्रकारकी न्यूनताओंका और तीनों प्रकारके दोषोंका स्वतः ही परिहार हो गया। इतना ही नहीं, इन संत-चरणोंकी उपस्थितिने प्राण-प्रतिष्ठा-अनुष्ठानको वास्तविक पूर्णता प्रदान की है। इनकी अवस्थितिने गीतावाटिकाको तीर्थत्व प्रदान किया है और प्रदान किया है इनके दर्शकत्वने श्रीविग्रहोंको वस्तुतः दिव्यत्व और देवत्व। अनेक बार संतोंके श्रीमुखसे सुना है कि भक्तके रागभरे हृदयकी सबलता और भावभरी दृष्टिकी प्रबलतासे श्रीविग्रह जाग्रत हो उठते हैं और ऐसे ही समर्थ भक्तके द्वारा भगवानकी भगवत्ता-सत्ता-महत्ताका उद्घाटन एवं विख्यापन होता है। इस अवसरपर जगन्नाथपुरीके कलिपावनावतार श्रीचैतन्यमहाप्रभुजी, श्रीविल्लीपुत्तूरकी मधुरभावापन्ना श्रीगोदाम्बाजी, चित्तौड़की भक्तिमती श्रीमीराबाई, वृन्दावनके रसिकशेखर स्वामी श्रीहरिदासजी, कलकत्ता-दक्षिणेश्वरके परमहंस श्रीरामकृष्णजी आदि अनेक संतोंके प्रभावपूर्ण व्यक्तित्वकी स्मृति रह-रह करके उभर रही है, जिनकी अति-सबल, अति-प्रबल भक्ति-भावनाके फलस्वरूप अनेक लोकोत्तर प्रसंग सेव्य श्रीविग्रहोंके साथ जुड़ गये हैं। इसीके साथ रह-रह करके यह भी भाव मेरे मनमें उभर रहा है, मेरी इस धृष्ट मुखरताको आप सभी क्षमा प्रदान करें, मुझे

ऐसा लगता है कि उन पुरातन संतोंसे सम्बन्धित जो ऐतिहासिक लोकोत्तर प्रसंग है, उन प्रसंगोंमें परिव्याप्त मार्मिक सत्यकी पुनः आवृत्ति अब गीतावाटिकाके इस मन्दिरमें भी हो रही है।

२१ जूनको प्राण-प्रतिष्ठा-अनुष्ठानका अन्तिम अंग था भगवद्विग्रहोंका नीराजन। यह नीराजन सम्पन्न हुआ माँके कर-कमलोंसे। नीराजनके उपरान्त स्तुति-गायनके समयकी बात है। मन्दिरके मध्य गर्भ-गृहमें प्रतिष्ठित प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधवके श्रीविग्रहको बाबा लगभग २०-२५ मिनटतक निरन्तर देखते रहे। ऐसा नहीं कह करके, यह कहना चाहिये कि निरन्तर निहारते रहे। पलकके झपनेपर उस दिव्य छविसे अभिभूत बाबा कहने लगे — ठाकुरजी, ठाकुरजी हो गये। ये विग्रह यथार्थतः भगवद्विग्रह हैं। लावण्य-सौन्दर्य-माधुर्यसे भरपूर यह निराली छवि कितनी मनोहारिणी है!

'दाहिन दइउ होइ जब सबहीं', तभी इस प्रकारके और इस स्तरके दिव्य दृश्यको देखनेका और भावमय वचनको सुननेका सौभाग्य मिला करता है। अन्तरकी विभोरतासे बाबाका श्रीमुख भावित था। फिर हमलोगोंके अनुरोधपर बाबाने गर्भ-गृहमें प्रवेश किया और श्रीप्रिया-प्रियतमकी परिक्रमा लगाकर उनके श्रीचरणोंमें पुष्पार्चन किया एवं इत्र लगाया। बाबाके साथ महाराजजी भी थे। उन्होंने भी पुष्पार्चन किया। तदुपरान्त भगवान श्रीराम-चतुष्टय एवं भगवान श्रीपार्वती-शंकरके श्रीचरणोंका दर्शन किया। श्रीयुगल सरकारका नीराजन करके माँ गर्भ-गृहके प्रवेश-द्वारपर ही विराजी हुई थीं। अधिक देरतक खड़े रह सकना उनके लिये सम्भव नहीं था। सर्वान्तमें स्तुति एवं पुष्पाञ्जलि हो चुकनेपर मन्दिरके बाहरी द्वारपर प्रसादका वितरण होने लग गया और माँ, बाबा एवं महाराजजी विश्राम हेतु चले गये।

इस मन्दिरमें जिन भगवद्विग्रहोंकी प्राण-प्रतिष्ठा हुई है, उनकी नामावली इस प्रकार है। (१) श्रीसिद्धिदाता गणेशजी, (२) श्रीराधा-माधव (३) श्रीराम-चतुष्टय (४) श्रीपार्वती-शंकर, (५) श्रीलक्ष्मी-नारायण, (६) महाशक्ति श्रीदुर्गा, (७) भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरी, (८) भगवान श्रीसूर्यदेव और (९) संकटमोचन श्रीहनुमानजी। इनकी प्रतिष्ठा बाबूजी, माँ और बाबाकी भक्ति-भावनाके अनुरूप ही हुई है।

मन्दिरमें भगवान पार्वती-शंकरका भगवद्विग्रह प्रतिष्ठित है। भगवती पार्वतीजीने अपने वाम हस्तमें कमण्डलु धारण कर रखा है। इस कमण्डलुको देखकर बाबाके जीवनके एक प्रसंगकी स्मृति हो आती है। मैं निश्चयात्मक

रूपसे नहीं कह सकता कि यह प्रसंग किस वर्षका है।

एक बार बाबाने बतलाया था कि वाराणसीकी भूमिपर पैर रखते ही उनकी भावनाओंके स्वरूपमें विचित्र परिवर्तन तत्काल आ जाया करता था। बाबा बाहरसे दिखलायी देते थे संन्यासी-वेष-धारी पुरुष, परंतु हृदयकी भावनाके अनुसार उनका भीतरी स्वरूप सर्वथा विभिन्न होता। बाबाकी भावना यही होती थी – भगवती अन्नपूर्णा मेरी माँ हैं, भगवान विश्वनाथ मेरे पिता हैं और मैं उनकी लाडली पुत्री हूँ।

बाबाने यह भी बतलाया था कि जब-जब वे भगवान विश्वनाथके दर्शनार्थ मन्दिरमें गये हैं, तब-तब किसी विचित्र ईश्वरीय विधानसे ऐसा संयोग घटित हो जाया करता था कि कोई-न-कोई भगवान विश्वनाथका विधिवत् पूजन कर रहा है। उधर सविधि पूजन होता रहता और इधर एक कोनेमें किनारे खड़े रहकर बाबा अपनी भावमयी मानसिक अर्चना करते रहते। एक बारकी बात है। सुपुत्री-भाव-भावित बाबाने अपने पितृस्वरूप भगवान विश्वनाथको उपालम्भ देना आरम्भ कर दिया – हे पितृवर! मैं आपके यहाँ न जाने कितनी बार आयी, पर कभी भी आपने मेरा स्वागत, मेरा सम्मान नहीं किया। यदि ऐसी ही उपेक्षा आपकी ओरसे होती रही तो मैं कैसे समझूँ कि मैं अपने पिताके घर आयी हूँ।

इसी प्रकारके भाव बाबा एक किनारे खड़े-खड़े चुपचाप कहते रहे, पर कोई प्रत्यक्ष प्रतिफल सामने नहीं आया। भगवान विश्वनाथका दर्शन करके बाबा भगवती अन्नपूर्णाजीके मन्दिरमें दर्शनार्थ चले गये। माँ अन्नपूर्णासे भी बाबाने उसी रीतिसे सुपुत्री-भाव-भावित होकर उपालम्भ देना आरम्भ कर दिया – माँ! तुम तो कोमल हृदया हो। तेरा हृदय तो वात्सल्यसे परिपूर्ण है। पिताजीने मेरी बात अनसुनी कर दी, पर तुम तो अपनी पुत्रीकी बात सुन लो। मैं कैसे समझूँ कि मैं वस्तुतः अपनी माँके घरपर आयी हूँ। पिताजीने मेरा कोई स्वागत-सत्कार नहीं किया, पर क्या इसी प्रकारसे खिन्न मन होकर मैं तेरे द्वारसे भी चली जाऊँ?

भगवती अन्नपूर्णाके मन्दिरमें भी कोई प्रतिफल दृष्टिगत नहीं हुआ। अन्नपूर्णाजीके मन्दिरसे एकदम सटा हुआ एक मन्दिर है, जिसके कई कक्षोंमें अलग-अलग कई भगवद्विग्रह विराजमान हैं। पहले उस मन्दिरमें जानेका मार्ग अन्नपूर्णाजीके मन्दिरमेंसे ही था, अब इस मार्गका कपाट बन्द कर दिया गया है। बाबा दर्शन तो कर रहे थे, पर मनमें उथल-पुथल भी थी। वे

मन-ही-मन ऐसा सोच रहे थे – क्या मेरी निष्ठामें कोई न्यूनता है अथवा मेरे भावमें कोई च्युति है, जो माँ अन्नपूर्णाके द्वारपर भी मेरी भावनाका समादर नहीं हुआ?

बाबाके मनमें कुछ खिन्नता थी। मनमें खिन्नता लिये हुए बाबाने उस मन्दिरमें प्रवेश किया, जो भगवती श्रीअन्नपूर्णाजीके मन्दिरसे सटा हुआ है। उस मन्दिरमें वे खिन्न मनसे एक भगवद्विग्रहके दर्शनोपरान्त दूसरेका दर्शन करते हुए क्रमशः आगे बढ़ते जा रहे थे कि तभी उनके सामने एक महिला आयी। महिलाके मुख-मण्डलपर अत्यन्त तेज था। उनके काले-काले लम्बे-लम्बे केशोंकी राशि घुटनोंका स्पर्श कर रही थी और उनके हाथमें कमण्डलु था। उनके सामने आते ही बाबा एक किनारे हो गये, क्यों कि यदि नारी-स्पर्श हो जाता तो बाबाको एक दिनका उपवास करना पड़ता। किनारे होकर बाबाने ज्यों ही आगे बढ़नेका प्रयास किया, त्यों ही वे फिर समक्ष आ गयीं। बाबा जिस ओर हटते, उसी ओर वे बाबाके सामने आ जातीं। बाबाने दो-तीन बार बचावके लिये प्रयत्न किया। बचावका प्रयत्न करनेके बाद भी जब उनके द्वारा बार-बार सामने आनेकी चेष्टा होती रही तो बाबाकी आँखोंमें रोषकी रेखाएँ उभर आयीं। कुछ-कुछ तर्जनाके स्वरमें बाबा उनसे बोले – माताजी! आप यह क्या कर रही हैं? क्या आपके द्वारा ऐसी चेष्टा उचित है? आप ही सोचें, एक संन्यासीको यति-धर्मकी रक्षामें सहयोग देना चाहिये या बाधा पहुँचानी चाहिये? संन्यासीके लिये नारी-स्पर्श वर्जित है, यदि स्पर्श हो गया तो उपवास करना पड़ता है। क्या आप यही चाहती हैं कि मैं उपवास करूँ?

बाबा रोषभरी दृष्टिसे उन महिलाकी ओर देखने लगे, परंतु उन महिलाके नेत्रोंमें बड़ी शान्ति थी और उनके अधरोंपर बड़ी निर्मल मुस्कान थी। बाबा एकटक उनकी ओर देखने लगे। वे पूर्ववत् सामने स्थित थीं। रहस्य कुछ भी समझमें नहीं आ रहा था। उनके मुख-मण्डलसे तेजस्विता प्रस्फुटित हो रही थी। बाबा उनके अरूण अधरोंपर फैली हुई उस विचित्र मधुर मुस्कानको, अति निर्मल मुस्कानको निहार रहे थे। निहारते-निहारते लगभग एक-दो मिनट बीते होंगे कि वे सहसा तिरोहित हो गयीं। उनके तिरोहित होते ही बाबाके ध्यानमें आया कि ये तो भगवती ब्रह्मचारिणीजी थीं, जो अपनी लाड़ली पुत्रीपर वात्सल्यकी वर्षा करने आयी थीं। उसी क्षण बाबाके नेत्रोंसे अश्रुका प्रवाह झर-झर बह चला। बाबाका हृदय रह-रह करके कह रहा

था – माँ! तुम माँ हो। तुम परम वत्सला हो। अत्यन्त कोमल हृदया हो। तुम्हें नमन, शत-शत नमन, बार-बार नमन!

अपने कपोलोंको आँसुओंसे भिगोते हुए बाबा वहीं बैठ गये और जहाँ भगवती ब्रह्मचारिणीजी खड़ी थीं, उस स्थानकी धूलिको बार-बार लेकर अपने मस्तकपर लगाने लगे।

वाराणसीमें जब भगवती ब्रह्मचारिणीजीने बाबाको दर्शन दिया था, तब उनके हाथमें कमण्डलु था। अब गीतावाटिकाके इस मन्दिरमें भगवती पार्वतीजीने अपने हाथमें जो कमण्डलु धारण कर रखा है, यह दिव्य छवि वाराणसीके उस दिव्य प्रसंगकी स्मृति दिला रही है।

यहींपर इसीसे सम्बन्धित एक विशेष तथ्यकी ओर संकेत करना आवश्यक लग रहा है। भगवद्विग्रहोंके निर्माणकर्ता मूर्तिकारको यह निर्देश दिया ही नहीं गया था कि भगवती पार्वतीके कर-पल्लवमें कमण्डलु भी होगा। उसने सहज भावसे कर-पल्लवमें कमण्डलुका निर्माण कर दिया। वह मूर्तिकार कमण्डलुके स्थानपर वाम करमें कमलकी अथवा किसी आयुधकी रचना कर सकता था, किंतु वही हुआ जो होना चाहिये था। उस मूर्तिकारने किसी अज्ञात प्रेरणासे बाबा-बाबूजीकी महाकार्य-स्थली गीतावाटिकाके लिये निर्मित होनेवाले देवी-विग्रहके कर-पल्लवमें कमण्डलुकी रचना कर दी। साधारणतः लोग यही कहेंगे कि यह तो मात्र संयोग था, परंतु अपनी आस्था तो ऐसी है कि अन्तर्जगतके सूक्ष्म और समर्थ भाव-तन्तु इस सारे निर्माण-कार्यको प्रभावित और नियन्त्रित कर रहे थे, तभी तो भगवती पार्वतीके श्रीविग्रहकी रचनामें उस प्रकारकी आकृतिका निर्माण स्वतः ही हो गया, जिसका सम्बन्ध बाबाके जीवनमें घटित प्रसंगसे है।

मन्दिरमें भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीजीका श्रीविग्रह प्रतिष्ठित है। ये प्रेमकी अधिष्ठातृ देवी हैं और इन्हें भगवती ललिताम्बा भी कहते हैं। इनकी प्रतिष्ठाके पीछे भी बाबाके जीवनका विस्तृत प्रसंग है। संक्षेपमें इतना ही कहा जा सकता है कि भगवान श्रीकृष्णके आदेशके अनुसार बाबाने इनकी दीर्घ-काल-व्यापी अर्चनाकी थी। अर्चनाकी अवधिके पूर्ण होनेके बहुत पूर्व ही माँ ललिताम्बाने प्रसन्न होकर बाबाको अपना पावन दर्शन सन् १९५१ की अक्षय तृतीयाके दिन प्रदान किया था। अद्वैत तत्त्वके मूर्तिमानस्वरूप परमाचार्य पूज्यपाद श्रीआदि-शंकराचार्यजीने भी भगवती ललिताम्बाकी अर्चना की थी और जो सिद्धि उन्हें तब मिली, वही अब मिली बाबाको।

बाबाने तो ब्रह्मवैवर्त-पुराणोक्त विधिके अनुसार भगवान श्रीगणेशजीकी अर्चना की थी और अपने अनुभवके आधारपर बाबा कहा करते थे कि ब्रह्मवैवर्त-पुराणमें श्रीगणेश-अर्चनाकी जो फल-श्रुति वर्णित है, वह सर्वथा सत्य है। बाबा तो बचपनसे ही भगवान शंकरके कृपा-पात्र रहे हैं और उनकी कृपाके अनेक चमत्कार बाबाके जीवनमें घटित हुए हैं। बाबूजीके समान ही बाबा भी पञ्चदेवोपासक थे। यही कारण है कि बाबूजीकी समाधिपर जो शिखर बना है, उसपर पञ्चदेवोंके प्रतीकोंकी प्रतिष्ठा बाबाने करवायी है और प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधव तो बाबाके उज्ज्वलात्युज्ज्वल महाभावमय महारसमय जीवनके महाधार हैं ही।

मन्दिरमें जिन-जिन भगवद्विग्रहोंकी प्रतिष्ठा हुई है, उस प्रतिष्ठामें माँ, बाबूजी और बाबाकी, इन तीनों विभूतियोंकी साधना-सिद्धि- सिद्धान्तकी ही अभिव्यक्ति हुई है। यह प्रतिष्ठा इन तीनों विभूतियोंकी परमान्तरिक मान्यताओं और परमैकान्तिक उपलब्धियोंका व्यक्त रूप है। गीतावाटिकाकी महान विभूतियोंके भक्तिपूर्ण विचार और भावमय जीवनका मूर्त रूप है गीतावाटिकाका यह विशाल मन्दिर।

२१ जूनको प्राण-प्रतिष्ठाका पूजन-विधान बड़े प्रसन्न वातावरणमें सम्पन्न हो गया। २२ जूनकी रात्रिमें भगवद्विग्रहोंके समक्ष श्रीहरिनाम-संकीर्तन हुआ। इसका नेतृत्व कर रहे थे महाराजजी। माँ और बाबा भी इस संकीर्तनमें उपस्थित थे। नगरके लोग भी आ गये थे। रासमण्डलीके व्रजवासीगण थे ही। भक्तोंसे मन्दिरका प्रांगण लगभग भरा हुआ था। हरिनामके तुमुल संकीर्तनसे मन्दिरका वायुमण्डल गुंजायमान हो रहा था। बाबूजी कहा करते थे कि किसी भी अनुष्ठानके अन्तमें श्रीहरिनाम- संकीर्तन अवश्य करना चाहिये। भगवन्नाम-संकीर्तन सारे दोषोंका परिहार करके शुभकी प्रतिष्ठा तथा मंगलका विस्तार करता है। बाबूजीका वह कथन ही इस संकीर्तनके आयोजनका प्रेरक था।

* * * * *

बाबा-सन्निधि में भोजन

सन् १९८५ के वर्ष श्रीराधाष्टमी २२ सितम्बरको थी। १९ सितम्बरको पूज्य श्रीमहाराजजी मनकापुर नामक स्थानसे मोटरकार द्वारा मध्याह्नके समय चलनेवाले थे और कार्यक्रमके अनुसार उनकी कारको गीतावाटिका अपराह्ण कालमें पहुँच जाना चाहिये था, परंतु कुछ कारणोंसे उन्हें मनकापुरसे चलनेमें विलम्ब हो गया। जब महाराजजीकी कार गीतावाटिका पहुँची, उस समय सूर्यास्त हो रहा था और बाबा भिक्षाके आसनपर बैठ चुके थे। महाराजजी जान-बूझकर बाबाके पास नहीं गये। यदि जाते तो बाबा भिक्षाके आसनसे उठ जाते और फिर बाबाके लिये आंशिक उपवास हो ही जाता। अतः महाराजजी सीधे अपने निवास-कुटीरपर चले गये।

जब भिक्षा समाप्त होनेवाली थी, उसी समय ठाकुरजी बाबाके पास पहुँच गये। ठाकुरजीको देखते ही बाबाने पूछा — महाराजजी कहाँ हैं?

ठाकुरजीने कहा — बाबा! कारसे लम्बी यात्रा करके आये हैं, अतः विश्राम कर रहे हैं।

इस उत्तरसे बाबाको बड़ा सन्तोष हुआ। भिक्षा कर चुकनेके बाद जब बाबाने जलसे हाथ धो लिया, तब बाबाने ठाकुरजीसे कहा — ठाकुर! तुम मेरे साथ चलो। महाराजजी यहाँ न आयें। मैं ही उनके निवास-कुटीरपर मिलनेके लिये चलूँगा।

ठाकुरजीने कहा — बाबा! रात्रिका समय है। इस समय आप कहाँ जायेंगे? आपको चलनेमें कष्ट भी होता है। महाराजजीको यहाँ आनेमें कोई परेशानी नहीं होगी।

बाबाने कहा — ठाकुर! आज तुमको मेरी बात माननी पड़ेगी। महाराजजीको यहाँ बुलाना नहीं है। मैं ही उनके पास चलूँगा।

इस प्रकार बाबा बात कर ही रहे थे कि महाराजजी बाबाके पास पहुँच गये। महाराजजीको देखकर बाबाने कहा — आज आपकी जीत हो गयी और मैं हार गया, पर कोई बात नहीं। मैं आपको निवास-कुटीरतक

तो पहुँचानेके लिये चल ही सकता हूँ।

लोगोंने बाबाको रोकना चाहा, पर बाबाको स्वीकार्य ही नहीं हो रहा था। ठाकुरजीने बाबासे कहा — बाबा! अभी महाराजजीको शौच-स्नानादिसे निवृत्त होना है। आप जायेंगे तो और विलम्ब होगा। आप यहीं विश्राम करें।

बाबाने ठाकुरजीकी बात मान ली। महाराजजी बाबाके पाससे अपने निवास-कुटीरपर चले आये। विविध कार्योंसे निवृत्त होनेमें महाराजजीको कुछ समय लग गया। अब महाराजजी भोजन करनेके लिये बैठनेवाले ही थे, तभी बाबा अपने एक-दो परिकरोंके हाथका सहारा लिये-लिये अँधेरेमें धीरे-धीरे चलते हुए महाराजजीके निवास-कुटीरपर चले आये। सभीको बड़ा आश्चर्य हुआ। बाबाके अकृत्रिम स्नेहको देखकर महाराजजीकी आँखें बार-बार सजल हो रही थीं।

बाबाने ठाकुरजीसे पूछा — क्यों ठाकुर! महाराजजीने भोजन कर लिया क्या?

ठाकुरजीने कहा — बाबा! अब करनेवाले हैं।

बाबाने कहा — यदि महाराजजीका नियम सर्वथा एकान्तमें भोजन करनेका हो, तब तो मुझे कुछ कहना नहीं है और यदि ऐसा नियम नहीं हो तो मेरे सामने भोजन करनेमें उन्हें कोई आपत्ति होगी क्या?

ठाकुरजीने कहा — आपत्ति क्या होगी? यह तो और भी सुन्दर बात होगी, पर एक बात है। महाराजजीको बड़ा संकोच होगा।

बाबाने कहा — जबतक महाराजजी भोजन करेंगे, मैं एक शब्द भी नहीं बोलूँगा। बस, मौन बैठा रहूँगा और चुपचाप बैठा हुआ देखता रहूँगा।

महाराजजीने बाबाकी उपस्थितिमें भोजन किया। बाबाकी उपस्थितिसे महाराजजीको संकोच तो बहुत हो रहा था, पर इसीके साथ-साथ उनके सांनिध्यका सुख भी मिल रहा था। बाबाकी उपस्थितिके सम्बन्धमें अपना अनुभव बादमें बताते हुए महाराजजीने कहा था कि ऐसा निरन्तर भान हो रहा था मानो अनन्त माताओंका वात्सल्य बाबाके नेत्रोंसे निर्झरित हो रहा हो। जबतक महाराजजी भोजन करते रहे, तबतक बाबा चुपचाप बैठे रहे। चुपचाप बैठे रहनेके बाद भी बाबा बार-बार

नेहभरी दृष्टिसे देखते रहते थे कि थालमें सामग्रियाँ भली प्रकारसे परोसी जा रही हैं अथवा नहीं। महाराजजीके भोजन कर लेनेके उपरान्त बाबाने कहा – ठाकुर! आज महाराजजीको भोजन करते देखकर मुझे जो सुख मिला, उसे बतला सकना मेरे लिये कठिन है। आज पहली बार मैंने महाराजजीको भोजन करते हुए देखा है। आज मेरे आनन्दकी सीमा नहीं।

ठाकुरजीने कहा – बाबा! महाराजजी आपके साथ दो-तीन बार भोजन कर चुके हैं। उस समय बाई परोस रही थी और आप दोनों साथ-साथ प्रसाद पा रहे थे।

बाबाने कहा – ठाकुर! तुम सर्वथा सत्य कह रहे होगे, पर मुझे तनिक भी स्मरण नहीं है। मुझे तो यही लग रहा है कि मैंने आज पहली बार महाराजजीको भोजन करते हुए देखा है। थोड़ी देर रुक करके बाबाने महाराजजीसे कहा – प्रीतिके राज्यमें इस विस्मृतिका भी एक स्वारस्य है। इस स्वारस्यके महत्त्वको केवल आप समझ सकते हैं। विस्मृतिके कारण प्रेमास्पदकी प्रत्येक दिवसकी प्रत्येक उक्ति और प्रत्येक चेष्टा पूर्णतः नवीन और पूर्णतः प्रथम प्रतीत होती है। इस सच्ची प्रतीतिके फलस्वरूप ही प्रत्येक दिवस नित्य नवीन सुखका विधायक बन जाता है।

बाबाके उद्‌गारोंको सुनकर महाराजजी अत्यन्त विभोर हो रहे थे। महाराजजीके विश्रामका समय जानकर बाबा अपनी कुटियापर चले आये।

* * * * *

आस्तिक भावका प्रभाव

आदरणीया बहिन श्रीचन्दाबाई ढाढनियाने भागलपुरसे पूज्य बाबाके पास भेंट स्वरूप कुछ चीजें भेजी और एक पत्र दिया। वस्तुओंको प्राप्त करके और पत्रको सुन करके बाबाने जो उत्तर लिखवाया, वह नीचे दिया जा रहा है। उत्तर स्वरूप भेजे गये पत्रकी पंक्तियोंको पढ़कर मनमें आस्था जमती है कि जीवनमें आस्तिक भाव होनेसे सब कुछ सम्भव है। यह पत्र १३ अप्रैल १९८७ को भेजा गया था।

।। श्रीहरिः ।।

आदरणीया चन्दा बहिन,

तुम्हारा भेजा हुआ सामान चिउड़ा, फल, इलायची, फूल माला और तुम्हारा पत्र प्राप्त हो गया है, पर तुम्हारे स्वास्थ्यका समाचार सुनकर मनमें चिन्ता हो गयी। कई सौ मील दूर तुमको क्या भेज सकता हूँ? सोचनेपर मनमें यही स्फुरणा जागृत हुई कि मन-ही-मन तुम्हारा चिन्तन करके भगवानके चरणोंमें निवेदन कर दूँ कि प्रभु, चन्दा मेरी धर्मकी बहिन है, उसके कष्टके रूपमें आप ही उसकी परीक्षा ले रहे हैं, लेकिन मन घबड़ा उठना स्वाभाविक है। इसलिये मैंने यही उचित समझा कि सबसे अच्छा है भगवानके चरणोंमें तुम्हें समर्पित करके मैं उन्हींको कह दूँ कि हे प्रभो, हमारी धर्मकी चन्दा बहिनको सर्वथा सर्वांशमें निश्चिन्त बना दें। सबसे बढ़िया उपाय मेरे पास यही था। उसीका आश्रय लेकर सुन्दर-से-सुन्दर जो उपाय था, वही मैं कर गया हूँ। मन इतना शान्त हो गया है कि पत्र लिखाते समय भी याद नहीं रहता कि क्या बोल गया हूँ, क्या लिखा गया हूँ। यद्यपि मुझे किसी प्रकारका दुख नहीं है, किंतु मन सर्वथा शान्त हो जानेके कारण ऊहापोहकी गन्ध भी नहीं रह गयी है। पत्रके माध्यमसे बहिन! यही कहना है कि अनुकूल परिस्थितिका अनुभव होनेपर तो सभी आनन्दसे भर जाते हैं, पर हमारे ही कर्मफलके रूपमें जब कोई दुःख आकर पीड़ित करने लगता है, तब हाय-तौबा मचाने लगते हैं। ऐसा न होकर यदि हम भगवानके चरणोंमें कह बैठते कि हे प्रभो! आपकी मंगलमयी इच्छा पूर्ण हो तो उस समय ठीक-ठीक अनुभव भगवानकी कृपा करा देती कि भगवान जो करते हैं, मंगल ही करते हैं।

एक बारकी बात है। प्रयागके संगमपर मैं स्नान कर रहा था। अचानक धाराने मुझे गहरे पानीमें खींच लिया। मैं तैरनेमें बड़ा सुपटु हूँ, अतएव धारापर ही तैरने लगा, किन्तु धारा इतनी तेज थी कि हमें निकलने नहीं दे रही थी। लगभग आधा घंटा प्रयास करनेपर भी और अपनी सारी शक्ति लगा देनेपर भी धारासे छूट न सका। उस समय मनमें यह बात आयी कि सम्भवतः मेरे महाप्रयाणका समय हो रहा है। ऐसा विचार आते ही मैंने अपनेको धारापर छोड़ दिया, दोनों हाथ पैर

फैलाकर जैसे बिस्तरपर लेटते हैं, लेट गया और मन-ही-मन कह उठा कि हे प्राण बन्धो! आपकी मंगलमयी इच्छा पूर्ण हो। यह विचार आते ही जैसे कोई अपने दोनों हाथोंपर मुझे उठा ले, ऐसा अनुभव होकर लगभग बीस गज मेरे बायें हाथकी ओर जैसे कोई उठा लाया और कण्ठभर पानीमें मैं तैर रहा था। एक सेकेण्ड भी इसमें नहीं लगा। यही ठीक-ठीक मुझे अनुभव हुआ। जहाँ पानी बिल्कुल शान्त था, वहाँ मैं तैर रहा था। मन-ही-मन आश्चर्यमें डूब गया। आजसे लगभग बाइस वर्ष पहलेका अनुभव है। ऐसे ही न जाने कितनी बार भगवानने मुझको कहाँ-कहाँ कैसे-कैसे बचाया है। यदि लिखवाने बैठ जाऊँ तो एक पोथा बन जायगा। इसलिये इस प्रसंगको यहीं छोड़कर यही कह रहा हूँ कि बिल्कुल घबड़ाना मत बहिनी! सम्पूर्ण साहसको बटोरकर हँसते-हँसते इस कष्टको सह लेना। बस, तुमको अनुभव हो जायेगा कि मेरा कहना कितना अधिक मूल्यवान है। जीवनभर मैंने यही अनुभव किया है। सदा यही अनुभव मुझे हुआ कि भगवानके मंगलमय विधानपर अपनेको छोड़ देनेके पश्चात् कुछ भी बाकी नहीं रहेगा। सब कर्तव्य पूर्ण हो जायेंगे और हँसते-खेलते मृत्युकी शान्तिमय गोदीमें चिरकालतक विश्राम करने लगोगी। हो सके तो इस ओर ही चेष्टा करना।

राधा राधा राधा राधा

* * * * *

श्रीमहाराजजी का अचानक आगमन

दिनांक २७-४-८६ को दिल्लीसे टेलीफोन आया कि आगामी प्रातःकाल श्रीमहाराजजी गोरखपुर पधार रहे हैं। इसे अचानक सूचना कहना चाहिये। इससे हम सभीको बड़ी प्रसन्नता हुई। विगत श्रीराधाष्टमी महोत्सवके बाद जब महाराजजी वृन्दावनके लिये प्रस्थान करने लगे तो माँने उनसे शीघ्र पधारनेके लिये अनुरोध किया था। ऐसा लगता है कि माँके अनुरोधको महाराजजीने आदेशवत् शिरोधार्य कर लिया।

२८-४-८६ के प्रातःकाल महाराजजीका शुभागमन हुआ। उनके पधारनेसे बाबा तथा माँको अपार आनन्द हुआ। वस्तुतः गीतावाटिकाके वातावरणमें उल्लास परिव्याप्त हो गया। वृन्दावन धामकी, धामके

ठाकुरकी, ठाकुरके भक्तोंकी और भक्तोंकी रहनीकी सरस चर्चाने एक बार पुनः सबको संसिक्त करना प्रारम्भ कर दिया।

महाराजजीके शुभागमनका एक हेतु और भी था। माँके अनुरोधकी स्मृति तो महाराजजीको सदा बनी ही रहती थी, इसके बाद भी एक विशेष कार्य था। महाराजजी द्वारा लिखित कृतियोंका एक संग्रह उन दिनों प्रकाशित हुआ था। श्रीप्रिया-प्रियतमके लीला-राज्यका रस-रहस्य एवं विलास-माधुर्य ही इन कृतियोंमें शब्द-बद्ध हुआ है। इसे मधुर-रस-प्रधान ग्रन्थ कहना उपयुक्त रहेगा। महाराजजीको अपनी कृतियोंका प्रकाशन तनिक भी अभिप्रेत नहीं था, किन्तु निकटवर्ती निज जनोंके आग्रहभरे बार-बार अनुरोधको देखकर उन्हें अपनी सहमति विवशतः प्रदान करनी पड़ी। इस ग्रन्थका नाम है 'अद्भुत श्याम तमाल'। १२०० पृष्ठोंवाले इस विशाल ग्रन्थमें महाराजजीके चार लेख हैं। उनके नाम हैं – १-श्याम तमाल सुषमा कमनीय वेलि, २-सर्वस्वसार प्रिय सखी, ३-पूर्णता या पूर्णानुभव और ४-निज स्वरूप वैशिष्ट्य। सन् १९६१ से लेकर सन् १९८० तककी अवधिमें लिखित चार विस्तृत कृतियाँ इस ग्रन्थमें गुम्फित हैं। ग्रन्थके अक्षर महीन हैं, किन्तु इसकी सुसज्जा बड़ी ही आकर्षक है। ग्रन्थमें दिये गये चार चित्रोंमें से तो एक चित्र स्वयं महाराजजी द्वारा चित्रांकित है।

महाराजजीका निश्चय था कि इस ग्रन्थके प्रकाशित होते ही पहली प्रति सर्वप्रथम बाबाको भेंट करनी है और इस निश्चयको क्रियान्वित करना भी गोरखपुर-यात्राका एक हेतु था। २८-४-८६ के अपराह्न कालमें ठाकुरजीने बाबाके कर-पल्लवमें यह ग्रन्थ अर्पित किया। बाबाके नेत्र आह्लादसे परिपूर्ण हो उठे। बाबाने ग्रन्थको अपने मस्तकसे लगाया तथा इसके प्रकाशनके लिये विविध भाँतिसे साधुवाद दिया। फिर ग्रन्थका आरम्भिक अंश पढ़कर बाबाको सुनाया गया। बाबा ग्रन्थकी एवं महाराजजीकी भूरि-भूरि सराहना रह-रह करके कर रहे थे। २९-४-८६ को ग्रन्थकी दूसरी प्रति माँको भेंट-स्वरूप प्रदान की गयी। महाराजजीकी इस आत्मीयतासे माँका मुख-मण्डल मुस्कुराहटसे खिल उठा। माँने दीनता भरी वाणीमें धीरे-धीरे मन्द स्वरमें महाराजजीसे कहा – मैं भला इसे क्या समझूँगी? पर आप यहाँ पधारे, यह आपकी महान कृपा है।

पूज्य महाराजजी, ठाकुरजी आदि जब-जब गीतावाटिका आते थे, तब-तब सरसताकी वर्षा होती ही थी। इनके चरणोंमें बार-बार वन्दन! महाराजजीने यहाँसे ७-५-८६ को मध्याह्नके समय वृन्दावनके लिये प्रस्थान किया। महाराजजीके प्रस्थान कर चुकनेके बाद बाबाने कहा – महाराजजीकी उपस्थिति तो उत्सवस्वरूप ही होती है।

* * *

इसबार वाली यात्रामें ठाकुरजीके मुखसे बाबाके बारेमें कई मधुर बातें सुननेको मिलीं। ठाकुरजी बड़ी पुरानी बातें सुना रहे थे। बात सम्भवतः ३२, ३३ वर्ष पहलेकी होगी। उन दिनों बाबा कोठीके भीतर जाकर भिक्षा किया करते थे। पूजाघरके बाहरवाले बरामदेमें भिक्षा हुआ करती थी। बाबाकी पत्तलमें स्वयं माँ परोसा करती थीं।

एक दिन जब बाबा भिक्षा कर रहे थे, तब गोस्वामीजी वहीं पासमें बैठे हुए थे। भिक्षाके समय भी व्रज-भावकी रसीली सुन्दर चर्चा होती रहती थी। उस दिन भीड़ नहीं थी। गोस्वामीजी थे, ठाकुरजी थे और एक-दो व्यक्ति और रहे होंगे। वे सभी अन्तरंग जन ही थे। भिक्षा करते-करते उस रसीली चर्चाके मध्य बाबाके मनमें कोई मधुर भाव उदित हुआ। बाबाने गोस्वामीजीसे कहा – गोस्वामीपाद! वह कौन-सा पद है?

बाबाने यह कहा हाथमें कौर लिये-लिये। इस जिज्ञासाको व्यक्त करते समय बाबाके नेत्र कुछ-कुछ मुँद गये थे। उनके कौर वाला दाहिना हाथ कुछ ऊपरकी ओर उठ गया था। गोस्वामीजीको बाबाके संकेतोंकी और उनके भावकी जानकारी थी। जो रसीली चर्चा चल रही थी, उससे गोस्वामीजीको उस पदका अनुमान हो गया था। बाबाके द्वारा वैसा कहते ही गोस्वामीजीने उस अभिलषित पदका गायन आरम्भ कर दिया। जैसा भावमय पद था, वैसा ही भावपूर्ण गायन था। उस शान्त वातावरणमें पदका भाव-माधुर्य और गायनका स्वर-लालित्य लहराने लगा। बाबाकी जो आँखें कुछ-कुछ मुँदी हुई थीं, अब पूर्णतः मुँद गयीं। कौर वाला दाहिना हाथ जो ऊपर उठा हुआ था, वह धीरे-धीरे नीचे आकर स्थिर हो गया। बाबाके नेत्रोंसे अश्रु-बिन्दु टपकने लगे। अब केवल उनके कपोल ही नहीं भीग रहे थे, अपितु उनके आस-पासका सारा वातावरण भावसे भीग उठा। बाबाके दाहिने हाथसे कौर कब गिर गया, उनको पता ही नहीं चला। भिक्षा करना

स्थगित हो गया।

उस समय वहाँ जितने भी चार-पाँच लोग उपस्थित थे, सभी बाबाकी भावमयी स्थिति देखकर बड़े विभोर हो रहे थे, केवल एकको छोड़कर और वह एक थीं माँ। सभी उपस्थित जन आनन्दानुभवमें निमग्न हो रहे थे, पर माँका मन बड़ा खिन्न था कि बाबा ठीकसे भिक्षा नहीं कर पाये। बाबाकी भावविह्वल स्थितिकी स्मृतिसे ठाकुरजी बड़े ही पुलकित हो रहे थे।

मैंने ठाकुरजीसे पूछा – गोस्वामीजीने कौन-सा पद गाया था?

ठाकुरजीने कहा – इस समय तनिक भी स्मरण नहीं कि वह पद कौन-सा था, पर उस पदका प्रभाव और उस समयका सारा दृश्य मेरी आँखोंके सामने नाच रहा है।

ठाकुरजीके मुखसे इन भावपूर्ण प्रसंगोंको सुनकर हम सभी जनोंको कितना सुख मिलता था, क्या बतलायें... ...!

* * * * *

मन्दिरकी सीढ़ियोंपर

श्रीराधा कृष्ण साधना मन्दिरमें जगज्जननी भगवती श्रीसीताजीका जन्मोत्सव सोत्साह मनाया गया। अनुमानतः यह प्रसंग सन् १९८६ या १९८७ का होना चाहिये। मन्दिरके बड़े पुजारीजीने बाबासे उत्सवमें पधारनेके लिये अनुरोध किया और बाबा डा. श्री एल.डी. सिंहजीके हाथका सहारा लिये हुए मन्दिरमें आये। बाबाकी उपस्थितिसे उत्सवमें रंग आ गया। पूज्या माँ तो बाबासे पहले ही मन्दिरमें आ गयी थीं। पूज्या माँने अपने कर-कमलोंसे नीराजन किया। प्राकट्यकी आरतीके पश्चात् जब गर्भगृहमें षोडशोपचारसे सविधि पूजन-अर्चन हो रहा था, तब बाहर कीर्तन तथा पदगानका क्रम चल रहा था। श्रीजोशीजीने गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी द्वारा विरचित पद गाया 'कबहुक अंब अवसर पाइ'। इस पदको सुनकर बाबाकी भावनाएँ बड़ी उर्मिल हो उठीं। पदमें आत्म-निवेदन है ही ऐसा, जिससे भावोंको सूद्दीपन मिले। उत्सवके सम्पन्न होनेपर जब बाबा अपने आसनसे उठकर चलने लगे, उस समय भी भगवती श्रीसीताजीके कोमल

और सहज वात्सल्यकी सरस चर्चा कर रहे थे।

मातृ-हृदयका सहज वात्सल्य कैसा अद्भुत होता है, इसीका बखान करते-करते बाबा मन्दिरसे बाहर आ करके सीढ़ियोंसे नीचे उतर रहे थे। दोपहरके लगभग एक बज रहे थे। तीखी धूपके कारण सीढ़ियोंके पत्थर बहुत गर्म हो गये थे। पत्थरोंकी तपन पैरोंके तलवोंके लिये असह्य हो रही थी। वात्सल्यकी चर्चा करते-करते बाबाके श्रीमुखसे ऐसा निकल गया– इन गर्म पत्थरोंसे तो पैरोंमें बड़ी जलन हो रही है।

बाबाका इतना कहना था कि मैंने विनम्रतापूर्वक निवेदन किया– बाबा! आपके इस कथनको सुनकर मुझे एक श्लोक याद आ रहा है।

नीतं यदि नवनीतं नीतं नीतं किमेतेन।
आतप-तापित-भूमौ माधव! मा धाव मा धाव॥

(ग्रीष्म ऋतुमें मध्याह्नके समय मक्खनकी चोरी करते हुए श्रीकृष्णको गोपीने अपने घरके नवनीत-कक्षमें देख लिया। अब गोपीके द्वारा पकड़ लिये जानेके भयसे श्रीकृष्ण नंगे पैर सूर्य-तापसे तपते हुए पथपर भाग चले। पथकी तप्त धूलिसे श्रीकृष्णके कमलोपम कोमल पदोंमें भीषण जलन हो रही होगी, इस दृश्यसे संतप्त गोपी पुकार उठती है– हे माधव! यदि नवनीत ले लिया तो ले लिया, इससे क्या हुआ, परन्तु धूपसे तप्त भूमिपर तुम मत भागो, मत भागो।)

बाबाके लिये यह कोई नवीन श्लोक नहीं था। इसे बाबा कई बार सुन चुके थे तथा बोल भी चुके थे। सीढ़ियोंकी तपनसे संतप्त बाबाने ज्यों ही इस श्लोकको सुना, वे देहातीत हो गये। इसे सुनते ही बाबाने उल्लासित स्वरमें इस श्लोककी आवृत्ति की और फिर........... फिर गम्भीर मौन ——— और फिर नितान्त अन्तर्मुख। उस संतप्त हृदया गोपीके भाव-वैकल्यकी गहनताने बाबाको गहरे रूपसे अन्तर्मुख बना दिया। भाव-निमग्न बाबाको उस अत्याकुला गोपीके विकलान्तरने पूर्ण रूपसे विभावित कर लिया। बाबा डा.एल.डी.सिंहका सहारा लिये धीरे-धीरे सीढ़ियोंसे उतर रहे हैं, पर अब उन तपती सीढ़ियों की तपनसे होनेवाली जलनका भान नहीं। बाबा चुपचाप अपने 'नेह निकुञ्ज' में चले आये और लेट गये गैरिक बिस्तरपर। बहुत देरतक निस्स्पन्द पड़े रहे।

* * * * *

प्राकृतिक वातावरण में श्रीयोगिनी-लीला

प्रतिवर्षकी भाँति सन् १९८७ ई.में भी श्रीराधाष्टमी महोत्सव सोत्साह मनाया गया। महोत्सवके कई दिन पहले श्रीमहाराजजी वृन्दावनसे यहाँ गीतावाटिकामें पधार गये थे। महाराजजीका शुभागमन सदैव ही बाबाको परमाह्लाद प्रदान करता था। यह बात सत्य है कि महाराजजीकी उपस्थितिसे वाटिकामें मंगलका विस्तार होता था और वाटिकाके वातावरणमें सरसता व्याप्त हो जाती थी। जबतक महाराजजी यहाँ रहे, वे प्रतिदिन बाबाके पास प्रातःकाल जाया करते थे और लगभग एक घंटा बाबाके पास बैठा करते थे। इन क्षणोंमें बाबाके एवं महाराजजीके आह्लादकी छवि दर्शनीय हुआ करती थी।

सप्तमी तिथिको ही मध्याह्नके बाद अपराह्न कालमें श्रीयोगिनी लीला देवर्षि नारद मन्दिरके समक्ष हुई। देवर्षि नारद मन्दिर गीतावाटिकाके पिछले भागमें है। यदि वर्तमान गीतावाटिकाके सामनेवाले भागमें हनुमानप्रसाद पोद्दार-स्मारक-समितिका कार्यालय, बाबूजीका निवास-भवन, श्रीराधाकृष्ण मन्दिर, समाधि आदि हैं तो उसके पिछले भागको एक लघु वनस्थली कह सकते हैं; जिसमें पेड़-पौधों, फूलों-लताओंकी बहुलता है और साधु-संतों-साधकोंके रहनेके लिये तीन-चार एकान्त कुटीर हैं। इसी एकान्त वातावरणमें देवर्षि नारदका एक छोटा-सा मन्दिर है। यह मन्दिर उसी स्थानपर निर्मित है, जहाँ देवर्षि नारद तथा महर्षि अंगिराने आकर बाबूजीको दर्शन दिया था। इसी स्थानपर बाबूजीको देवर्षि नारदसे उस दिव्य प्रेमोपदेशकी प्राप्ति हुई थी, जिसका पल्लवित स्वरूप है 'श्रीराधा-माधव-चिन्तन', 'पद-रत्नाकर' एवं अनेक ग्रन्थ।

इसी मन्दिरके सामने श्रीयोगिनी-लीला हुई। इस लीलाकी न तो घोषणा की गयी थी और न इसके लिये मंचकी तैयारी की गयी थी। एक चौकीपर एक बड़ी कुर्सी रख दी गयी। वही श्रीप्रिया-प्रियतमका सिंहासन था और चौकीके सामने एक दरी बिछा दी गयी थी। यह दरी ही लीलाकी रासस्थली थी। जो थोड़े-बहुत दर्शक थे, वे भूमिपर ही बैठे थे। अधिकांश लोग बैठे-बैठे और कुछ लोग खड़े-खड़े लीलाका दर्शन कर रहे थे। हाँ, कोई-कोई पेड़ोंपर चढ़कर और डालपर बैठकर देख रहे थे। दर्शकगणका यह

दृश्य भी अपने ही ढंगका था। अवश्य ही बाबा एवं महाराजजीके लिये एक आसन बिछा दिया गया था।

ऊँची-ऊँची हरी-हरी वृक्षावली, विविध फूलोंके सघन पौधोंकी पंक्तियाँ, वहींपर तुलसीजीका एक छोटा-सा वन, सँकरी-सँकरी यत्र-तत्र पगडंडियाँ, इस प्रकारके सुरम्य प्राकृतिक वातावरणमें यह रासलीला हुई। प्रकृतिकी मनोरम दृश्यावलीने सहज ही स्वाभाविक रंगमंच प्रस्तुत कर दिया। क्या लीलाके पात्र और क्या लीलाके दर्शक, सभीको प्राकृतिक रंगमंचने बड़ा उद्दीपन प्रदान किया। एक बात और, यदि एक ओर प्रकृतिका ऐसा सहज और शान्त वातावरण था तो दूसरी ओर प्रकृतिके धरातलसे सर्वथा उठे हुए दो संत-दर्शक, बाबा और महाराजजी वहाँ विराज रहे थे। इन सभी बातोंसे श्रीयोगिनी लीलाका रंग कुछ अनोखा ही रहा। साधारण दर्शकोंको भी भान नहीं कि गर्मीमें हम पसीनेसे भीग रहे हैं अथवा हम सब भूमिपर ही बैठे हुए हैं। सभीका मन लीलामें निमग्न था।

तभी एक आश्चर्य घटित हुआ। लीला लगभग दो-अढ़ाई घंटेतक हुई। लीलाके उत्तरार्धमें सूर्य भगवान इतना ढल आये कि वृक्षोंकी छाया हट गयी और बाबा तथा महाराजजीपर भगवान सूर्यकी किरणें सीधी पड़ रही थीं। उन तीव्र किरणोंसे बचाव करनेके लिये लीलाके मध्य न तो छाता ही लगाया जा सकता था और न स्थानान्तरण ही किया जा सकता था। भावनाएँ बड़ी विकल हो रही थीं, पर कोई उपाय भी नहीं था। तभी न जाने कहाँसे पूर्ण स्वच्छ आकाशमें बादलका एक टुकड़ा आ गया और तबतक छाता बनकर नभमें ठहरा रहा, जबतक लीला होती रही।

कहनेके लिये तो यह एक नगण्य घटना है, पर इससे विस्मय बहुत हुआ।

* * * * *

बाबूजीकी जयन्ती के अवसर पर श्रीरामकथा

सन् १९८७ के १९ सितम्बरको पूज्य बाबूजीका जन्म-दिवस था। बाबूजीकी जयन्तीके अवसरपर श्रीरामचरितमानसकी कथा कहनेके लिये चित्रकूटसे तुलसीपीठाधीश्वर प्रज्ञाचक्षु पूज्य आचार्य श्रीरामभद्रदासजी महाराज राघवीय यहाँ गीतावाटिका पधारे थे। श्रीरामचरितमानसके आधारपर श्रीलक्ष्मण-चरित्रपर आपका प्रवचन लगभग एक सप्ताह पर्यन्त प्रतिरात्रि डेढ़-दो घंटेतक होता। आपकी स्मरण शक्ति अद्भुत है। मानस, भागवत, उपनिषद् आदि अनेकानेक ग्रन्थ पूर्णतः कण्ठस्थ हैं। श्रीआचार्यचरणजीकी कथामें विद्वत्ता और भावुकता, दोनोंका अद्भुत समन्वय है। गोरखपुरके श्रोतागण आपके शास्त्र-पाण्डित्य और भाव-लालित्यसे बहुत प्रभावित रहे।

कौशल्यानन्दवर्धन दशरथकुमार श्रीरामललाजी ही आपके सेव्य हैं, जिन्हें आप मुन्ना सरकार कहते हैं। लड्डू गोपाल जैसे श्रीविग्रहकी बड़े भावसे सेवा-पूजा होती है। मुन्ना सरकारके प्रति आपका गुरुदेव वशिष्ठ भावसे अमित वात्सल्य है।

एक दिन श्रीआचार्यचरण बाबाके पास गये तो कहने लगे – बाबा! राघव पढ़ता नहीं है, आप इसे समझाइये कि पढ़ा करे।

उनके भावभरे शब्दोंको सुनकर बाबाका हृदय रीझ उठा।

* * *

एक बार बाबा श्रीआचार्यचरणके कमरेमें गये तो उन्होंने अपने मुन्ना सरकारको बाबाके युगल चरणोंमें रखते हुए श्रीरामललासे कहा – 'राघव! देखो, श्रीराधा बाबा आये हैं, इन्हें प्रणाम करो' और फिर बाबासे कहा – बाबा! आप इसे आशीर्वाद दें, जिससे इसका मन पढ़नेमें लगे।

बाबा तो इस वात्सल्य भावकी छविको देखकर अति विमुग्ध थे।

* * *

श्रीआचार्यचरण प्रायः प्रातःकाल बाबाके पास चले जाया करते थे। वहाँ एक बार उन्होंने बाबासे कहा – आपके श्रीमुखसे नित्य निकुञ्जेश्वरी भगवती श्रीराधाजीके सम्बन्धमें कुछ सुननेकी इच्छा होती है।

इस निवेदनके बाद भी बाबा कुछ अन्य ही चर्चा करते रहे, परंतु श्रीआचार्यचरण तो अपनी अभीष्ट वस्तु चाहते थे। श्रीआचार्यचरणने पुनः निवेदन किया – बाबा! विषयान्तर हो रहा है।

तब बाबाने कहा – श्रीराधा-महिमापर नन्दनन्दन श्रीकृष्ण ही कुछ कह सकनेमें जब स्वयंको असमर्थ पाते हैं, तब फिर भला मेरी कहाँ गिनती है? हाँ, कुछ लोग ऐसे हैं, जो विद्याकी धुरीको धारण करनेके कारण अपने आपको धुरन्धर विद्वान समझते हैं। विद्वत्ताके अहंकारमें वे विद्वान भले थोड़ी देर बोल लें, परंतु एक बात है। किसी अचिन्त्य कृपाके फलस्वरूप यदि किसी ऐसे विद्वानको श्रीराधारानीकी नख-कान्तिका किंचित् दर्शन वस्तुतः लवार्ध मात्रके लिये हो जाय तो यह सर्वथा सत्य है कि उनकी सम्पूर्ण वाचालता सर्वांशमें पूर्णतः कुण्ठित हो जायेगी।

बस, बस, यही उत्तर तो श्रीआचार्यचरण सुननेके लिये उत्सुक थे। इतना सुनते ही वे बार-बार साधु-साधु कहने लगे। उस समय श्रीआचार्यचरणका भावोल्लास दर्शनीय था।

* * *

गुरुवार १७ सितम्बरका प्रसंग तो बड़ा मधुर है। प्रातःकाल श्रीआचार्यचरण अपने दो बाल-शिष्योंके साथ बाबाके पास गये। वहाँ लगभग आधा घंटा बैठे रहे तथा विविध प्रकारकी चर्चा होती रही। जब श्रीआचार्यचरण चलने लगे तो बाबाने कहा – चलिये, कुछ दूरतक पहुँचा आऊँ।

आस-पास उपस्थित भक्तोंने यही सोचा कि बाबा अपने बाड़ेके द्वारतक जायेंगे। बाबा तथा श्रीआचार्यचरण साथ-साथ चलते रहे। बाड़ेसे बाहर आ जानेके बाद भी बाबा साथ-साथ चलते रहे। श्रीआचार्यचरणने वापस लौटनेके लिये एक-दो बार अनुरोध किया, इसके बाद भी बाबा साथ-साथ चलते रहे। कई बार अनुरोध करनेके बाद भी बाबा जब वापस नहीं लौटे तो श्रीआचार्यचरणने कहा – ऐसा लगता है कि आज राघवकी इच्छासे आप उसके पास चल रहे हैं।

मार्गमें एक स्थानपर किसीने पान खाकर थूक दिया था। उसे देखकर बाबाने कहा – किसी ताम्बूलप्रेमीने यहाँ थूककर गन्दगी फैला रखी है।

इसपर श्रीआचार्यचरणने कहा – किसी सामाजिकता-ज्ञान-शून्य असभ्यने ही ऐसा किया होगा।

बाबाने तुरंत कहा और बड़े प्रसन्न स्वरमें कहा – नहीं महाप्रभु! यह नटखट चपल चञ्चल नन्दपुत्र ही विभिन्न रूपोंमें इस प्रकारकी लीला करता रहता है।

इस उत्तरको सुनकर श्रीआचार्यचरण एकदम खिल उठे। बाबाके कथनका और उनकी भागवती दृष्टिका वे बार-बार अनुमोदन करने लगे। 'सीय राम मय सब जग जानी'के भावसे आद्यन्त एवं पूर्णतः भावित उनकी भागवती दृष्टिपर श्रीआचार्यचरण बलिहार जा रहे थे।

कमरेमें प्रवेश करते ही बाबा मुन्ना सरकार श्रीराघवकी ओर अग्रसर हुए। सिंहासनके समीप पहुँचते ही श्रीआचार्यचरणजीके शिष्य श्रीदयाशंकरजीने श्रीराघवको उठाकर बाबाके हाथमें दे दिया।

बाबाने तुरन्त अपने मस्तकपर धारण किया। जब मुन्ना सरकार श्रीराघवको बाबाके हाथमें दिया तो श्रीआचार्यचरणने कहा – बाबा! यह पढ़ता नहीं है।

तुरन्त ही बाबाने कहा – ऐसा लगता है कि यह बहुत नटखट हो गया है।

इसपर श्रीआचार्यचरण तथा उपस्थित भक्तगण खुलकर विहसने लगे। बाबाने श्रीविग्रहको सिंहासनपर पधरा देनेके लिये श्रीदयाशंकरजीको दे दिया। सिंहासनपर झुंझुनिया, घोड़ा, मोर, चिड़िया, झारी, झूला, लुटिया, इस प्रकारके अनेक खिलौने रखे हुए थे। बाबाकी रुचि देखकर श्रीदयाशंकरजी क्रमशः एक-एक खिलौना देखनेके लिये बाबाको देने लगे तथा उस-उस खिलौनेका परिचय तथा उसकी उपयोगिता बतलाने लगे। एक बार श्रीदयाशंकरजीने बाँये हाथसे एक खिलौना दे दिया तो बाबाने तुरन्त कहा – भगवानके खिलौने भगवानके पार्षद हैं। इनको दाहिने हाथसे देना और लेना चाहिये। भगवत्परिकरका पूर्ण सम्मान करना चाहिये।

श्रीदयाशंकरजीने अपनी भूल स्वीकार की और फिर वे दाहिने हाथसे देने लग गये। सच्ची बात तो यह है कि उल्लास और उत्साहके आधिक्यमें यह भूल उनसे अनजाने ही हो गयी थी। बाबा प्रत्येक खिलौनेको लेते, प्यार भरी निगाहोंसे उसे देखते और फिर अपने मस्तकसे लगाते। प्रत्येक खिलौनेका दर्शन करना, परिचय जानना और वन्दन करना, इसमें बहुत

समय लग गया। इसपर टिप्पणी करते हुए श्रीआचार्यचरणजीने कहा – बहुतसे लोग मेरे मुन्ना सरकार श्रीराघवका दर्शन करने आये, परंतु आजतक किसीने भी इस प्रकारसे दर्शन नहीं किया।

सिंहासनपर ही एक चाँदीकी डिबिया थी। उसकी ओर संकेत करके बाबाने पूछा – इसमें क्या है?

श्रीदयाशंकरजीने वह डिबिया खोलकर श्रीआचार्यचरणजीके हाथमें दे दी। उसमें मुन्ना सरकारका काजू-किशमिश प्रसाद था। श्रीआचार्यचरणजीने वह प्रसाद अपने कर-पल्लवमें लिया तथा अपने कर-पल्लवसे बाबाको खिलाया। फिर उसका अवशेष बाबाके कर-पल्लवमें देकर श्रीआचार्यचरणजीने बाबाके कर-पल्लवसे अपने मुखमें प्रसाद पाया। इस पर दोनों संत खूब हँसे। श्रीआचार्यचरणजी तो बहुत ही अधिक हँसे।

इसके बाद बाबा और श्रीआचार्यचरणजी, दोनों बिछी हुई चौकीपर एक साथ बैठ गये। उस समय बाबाको अपनी चौकीपर अपने समीप बैठे हुए देखकर बड़ी ही भाव-विह्वल वाणीमें श्रीआचार्यचरणजी बोल उठे –

'हमहि तुम्हहि सरिबरि कसि नाथा। कहहु न कहाँ चरन कहँ माथा।।'

अति भाव-विभोर स्वरसे इतना कहते-कहते उनके नेत्रोंमें आँसू छलक उठे। श्रीआचार्यचरणजीने अनेक बार प्रयास किया कि बाबाके श्रीचरणोंका स्पर्श प्राप्त हो, पर यह भला बाबाको कैसे स्वीकार हो पाता? प्रत्येक बार बाबाने उसका निवारण ही किया।

थोड़ी देर बाद बाबा अपनी कुटियापर वापस चले आये, परंतु बाबाके मनपर श्रीआचार्यचरणजीके कोमल वात्सल्य-भावकी अद्भुत छाप थी। मुन्ना सरकार श्रीराघवके प्रति उनके अनोखे वात्सल्य-भावकी बाबाने बड़ी भावभीनी भाषामें कई बार सराहना की।

* * * * *

पूज्य पंडितजी की भिक्षा

सन् १९८८ ई. की श्रीराधाजन्माष्टमीके चार-पाँच दिनों बाद बाबाकी भाव-विभोरताकी एक निराली छविके दर्शनका सौभाग्य मिला। मध्याह्न कालमें बाबा परिक्रमाके बाद माँके दर्शन करनेके लिये उनके कमरेमें गये। मैं उस कमरेमें पाँच मिनट पहले ही पहुँच गया, जिससे कि बाबाके विराजनेके लिये आसन बिछा दूँ। आसन बिछाते-बिछाते मैंने माँसे कहा – माँ! मैं परसों वृन्दावन जा रहा हूँ। कोई कार्य हो तो बतलाओ।

माँ ने कहा – वहाँ जा रहे हो तो पूज्य पण्डितजी महाराज (परम पूज्य पं. श्रीगयाप्रसादजी)के श्रीचरणोंमें मेरा प्रणाम कहना तथा मेरी ओरसे भिक्षा करवा देना।

माँके इतना कहते-कहते बाबा आ गये। बाबाने पूछा – माँ क्या कह रही है?

मैंने बाबासे कहा – माँ कह रही है कि वृन्दावन जा रहे हो तो पूज्य पण्डितजी महाराजको मेरी ओरसे भिक्षा करवा देना।

इतना सुनते ही माँसे बाबा कहने लगे – मैया! उनकी भिक्षा करा, अवश्य करवा। वे भिक्षा स्वीकार कर लेते हैं, यह बड़े सौभाग्यकी बात है। उन जैसा भाव-भरित संत व्रजमण्डलमें भला कहाँ है?

मैंने बाबासे निवेदन किया – बाबा! जब-जब मैं वृन्दावन जाता हूँ, माँ भिक्षाके लिये कहा ही करती हैं और इस अनुरोधको पूज्य पण्डितजी स्वीकार कर ही लिया करते हैं।

बाबाने कहा – यह उनकी महान कृपा है।

इसके बाद मैंने बाबासे पूछा – पूज्य पण्डितजी आपके बारेमें कुछ पूछेंगे तो मैं क्या कहूँगा?

मेरा इतना कहना था कि बाबाके नेत्र गीले हो उठे। उन्होंने अपने दोनों हाथ जोड़ लिये और मुझसे कहने लगे – आप कह दीजियेगा कि बाबाने हाथ जोड़े-जोड़े कहा है कि आपके मानस पटलपर मेरी स्मृति उभर आती है, यह मेरा परम सौभाग्य है।

इतना कहते-कहते बाबाके नेत्र और अधिक भर आये। बाबा जो

बोल रहे थे, उनके अधरोंका एक-एक शब्द प्यारमें भीगा हुआ था, शब्दके एक-एक अक्षरसे प्यार चू रहा था। कुछ क्षण रुककर हाथ जोड़े-जोड़े बाबाने पुनः कहा — आज व्रजमण्डलमें उन जैसा कोई नहीं। उनकी महिमाका आदि-अन्त नहीं। उनके श्रीचरणमें बार-बार वन्दन!

फिर बाबा बोल नहीं पाये। मैं तो कुछ क्षण चुपचाप बाबाके भाव-विभोर मुखकी ओर देखता रहा। इसके थोड़ी देर बाद फिर बाबा माँसे बात करने लगे।

* * * * *

बाबा का जन्मोत्सव

१६ जनवरी १९८९ के दिन बाबाका जन्म-दिवस था। यह सर्व-प्रथम अवसर था, जब कि बाबाके जन्म-दिवसपर श्रीमहाराजजी गीतावाटिकामें विराज रहे हों। बाबा जब अत्यन्त रुग्ण हो गये थे, तब महाराजजी यहाँ पधारे थे। उन दिनों बाबाके स्वास्थ्यने भयावह मोड़ ले लिया था। सभी भयान्वित हो उठे थे। क्रमशः तबीयतमें पर्याप्त सुधार हुआ। यह तो प्रभुकी अहैतुकी कृपा एवं महाराजजीकी शुभ संनिधिका मंगलमय परिणाम था।

इस वर्ष यह एक अच्छा संयोग घटित हो गया कि बाबाके जन्म-दिवसकी जो विक्रम-तिथि तथा जो अंग्रेजी तारीख तब आविर्भावके समय थी, वही अब इस दिन भी थी। तब भी पौष शुक्ल नौमी तथा १६ जनवरी थी और इस वर्ष भी यही तिथि और यही तारीख रही। प्रातःकाल सूर्योदयसे बहुत पूर्व प्रभात-फेरी निकली और निकली श्रीराधाकृष्ण मन्दिरसे। यद्यपि घोर शीत पड़ रही थी, इसके बाद भी वाटिकाके-मोहल्लेके-नगरके अनेक भाई-बहिन मंगला-आरतीके समय मन्दिरमें स्नानादिसे निवृत्त होकर उपस्थित हो गये। प्रबल शीतके कारण बार-बार ऐसी आशंका हो रही थी कि मंगला-आरतीमें सम्भवतः बहुत कम लोग आ पायें, पर यह स्पष्ट दीख रहा था कि लोगोंके उत्साहके आधिक्यको शीतकी प्रबलता स्पर्श नहीं कर पा रही है।

मन्दिरमें मंगला-दर्शनके उपरान्त ठाकुरजीने बड़ा भाव-पूर्ण कीर्तन करवाया। जन्म-दिवसका मंगल अवसर, मन्दिरकी पावन स्थली,

प्रातःकालका शान्त वातावरण, भक्तोंकी विभोर श्रद्धा, ठाकुरजीका भावपूर्ण गायन, इन सबके कारण प्रातःकालीन पद-कीर्तन एवं नाम-कीर्तनका रंग कुछ अद्भुत ही था। उससे सभीके अन्तरमें भक्ति-भावना मधुर हिलोरे लेने लगी। उस हिलोरमें लहराते हुए श्रीराधाकृष्ण मन्दिरसे प्रभातफेरी निकली। अनेक बहिनोंके हाथोंमें फल, फूल एवं मेवोंसे भरे हुए सजे हुए थाल थाल अतीव सुशोभित हो रहे थे। प्रभात-फेरी करते-करते सभी गिरिराजजीके पास आये।

बाबा अपनी कुटियामें गैरिक आसनपर विराजे हुए श्रीमद्भगवद्गीता तथा श्रीरामचरितमानसका पाठ सुन रहे थे। बाबा नित्य प्रातःकाल इनके पावन पाठको सुना करते थे। सभीने जाकर बाबाको प्रणाम किया। फिर श्रीगिरिराज भगवानके पूजनका कार्यक्रम था। सभी भक्त वहाँ परिसरमें बैठ गये। आज प्रातःकाल श्रीगिरिराजजीका सविधि विस्तृत पूजन स्वयं महाराजजीने किया। पूजनके बाद महाराजजीने प्रसादका वितरण किया। सभीको महाराजजी अपने हाथसे फल तथा मेवे दे रहे थे। सभीका मन बड़ा भावमय हो रहा था। प्रातःकालका सभक्ति आराधन एवं सोल्लास कीर्तन सभीके भावोंको पल-प्रति-पल अधिकाधिक सत्त्व सम्पन्न बना रहा था।

अधिकांश व्यक्तियोंके दैनिक नित्य नियम अभी शेष थे। नित्यके दैनिक अर्चन-वन्दन और पूजा-पाठसे निवृत्त होकर सभी भक्तगण पुनः दस बजे श्रीराधाकृष्ण मन्दिरमें एकत्रित हुए। दस बजे मन्दिरसे श्रीप्रिया-प्रियतमके सचल भगवद्विग्रहकी शोभा-यात्रा निकली।

इस शोभा-यात्रामें मन्दिरके भगवद्विग्रहके अतिरिक्त श्रीराधाकृष्णके, श्रीशिवपञ्चायतनके, श्रीहनुमानजी महाराजके तथा श्रीलड्डूगोपालजीके नवीन श्रीविग्रह भी थे। ये सभी नवीन श्रीविग्रह प्रतिष्ठित होनेवाले हैं उस मन्दिरमें, जो बाबाके जन्मस्थानपर अभी-अभी बना है। बाबाकी जन्मभूमि कहलानेका गौरव फखरपुर ग्रामको है, जो बिहारके गया जिलेमें पड़ता है। फखरपुर ग्रामके मन्दिरमें पधरानेके पूर्व परम पूज्य बाबाकी सिद्ध दृष्टि इन श्रीविग्रहोंपर पड़ जाय, इसीलिये ये श्रीविग्रह गीतावाटिका लाये गये थे। आगामी वसंत पंचमीके दिन वहाँ उस नवनिर्मित मन्दिरमें ये श्रीविग्रह प्रतिष्ठित किये जायेंगे।

गीतावाटिकाकी परिक्रमा लगाते हुए यह शोभा यात्रा बाबूजीके

पावन-कक्षके बाहर खुली जगहमें थोड़ी देरके लिये ठहर गयी। वहाँ माँने श्रीप्रिया-प्रियतमके भगवद्‌विग्रहका तथा इन सभी नवीन श्रीविग्रहोंका बड़ी भक्ति-भावना सहित पूजन-वन्दन किया। माँको विस्तार पूर्वक इन नवीन श्रीविग्रहोंका परिचय दिया गया। फिर सभी लोग समाधि एवं श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा देते हुए बाबाके पास वहाँ आये, जहाँ वे खुले स्थानमें विराजे हुए धूप-सेवन कर रहे थे। वहीं सारे श्रीविग्रहोंको सुसज्जित सिंहासनपर पधरा दिया गया। महाराजजी भी बाबाके समीप अपने उच्चासनपर विराजित हो गये। सभी भक्त-गण बाबा और महाराजजीको घेरकर श्रीविग्रहोंके समक्ष बैठ गये।

कार्यक्रमका शुभारम्भ हुआ महाराजजीके पद-गायन द्वारा। महाराजजीने श्रीप्रबोधानन्दजी सरस्वतीद्वारा संस्कृत भाषामें विरचित एक अष्टपदीका गायन किया, जिसकी पहली पंक्ति है –

'स्मरतु मनो मम निरवधि राधाम्'।।

इस अष्टपदीकी २२ पंक्तियोंमें नित्य निकुञ्जेश्वरी श्रीराधाजीके नख-शिख शोभाका बड़ा ही सुन्दर वर्णन है। महाराजजी अष्टपदीकी पंक्तियोंकी पद-पदपर आवृत्ति करते हुए बड़ी मस्तीके साथ गायन कर रहे थे और प्रत्येक आवृत्तिपर बाबाकी मस्ती भी मात्र अवलोकनीय ही नहीं, अपितु पल-पलपर अधिकाधिक आस्वादनीय थी। अनेक बार बाबाके श्रीमुखसे सराहनाके शब्दोच्छवास प्रस्फुटित हुए। बाबाका आनन्दोल्लास महाराजजीके मधुर भावोंको और अधिक आन्दोलित कर देता था। दो संतोंके आनन्दोल्लासका यह संगम सारे समुदायको मधुरानन्दोदधिकी लहरियोंपर बहाये ले जा रहा था। महाराजजी आनन्दातिरेकमें अपनी बाहुओंको बार-बार उठाते हुए गायन कर रहे थे। एक बार तो बड़ा विचित्र भावमय दृश्य देखनेको मिला। महाराजजीने ज्यों ही निम्नलिखित पंक्तियाँ गायीं –

रसिक सरस्वति गीत महाद्‌भुतराधारूपरहस्यम्।
वृन्दावनरसलालसमनसामिदमुपगेयमवश्यम् ।।

और फिर उन्होंने गाते-गाते 'राधारूपरहस्यम्' की आवृत्ति की, उसी समय बाबाका वाम-कर-पल्लव हृदयस्थ आह्लादकी विवशाभिव्यक्तिवशात् भावमयी-नृत्यमयी मुद्रामें लहराने लगा। बस-बस, तभी-तभी, उसी समय

उस लहराते हुए वाम-कर-पल्लवको महाराजजीने अपने लहराते हुए दक्षिण-कर-पल्लवसे धीरेसे थाम लिया। कर-पल्लवका कर-पल्लवसे यह स्पर्श, मात्र संस्पर्श नहीं था, अपितु था रसावेशका रसाविष्टद्वारा रसावराधन-रसानुमोदन-रसाभिनन्दन। उस रसमय छविको देखकर भावुक भक्तोंके खिले हुए रसार्द्र युगल नेत्र खुले-के-खुले रह गये। उस समय इन दो संतोंके हृदयकी जो स्नेहिलता-उर्मिलता थी और भावोंकी जो मृदुलता-विपुलता थी, उसका वर्णन मैं कर नहीं पा रहा हूँ। उस प्रसंगकी कल्पनातीत सुन्दरता-मधुरता एवं प्रसंगके प्रभावकी वर्णनातीत विशदता-अतिशयता तो मात्र अनुभवगम्य है। इस अद्भुत छविका मादक प्रभाव महाद्भुत था। इसकी स्मृति मात्र आनन्द-विभोर बना रही है।

महाराजजीके गायनके उपरान्त बाईने बाबा द्वारा रचित 'जय जय प्रियतम' काव्य का वह अंश गाकर सुनाया, जिसमें वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाके प्राकट्यका वर्णन है। यह वर्णन लगभग २४, २५ छन्दोंमें है। बाईके स्वरमें स्वर मिलाते हुए अन्य कई बहिनें साथ-साथ गायन कर रही थीं। इसके बाद ठाकुरजीने भी 'जय जय प्रियतम' काव्यका वह अंश सुनाया, जिसमें कालिन्दी-कूलपर विराजित कृष्णप्रिया श्रीराधाके चरणकमलसे चिपकी हुई तट-रेणुकाका वर्णन है। चरणार्पिता रेणुकाके समर्पण-भावकी गरिमाका, समर्पिता रेणुकाको प्रदत्त आश्वासनका और प्रियतम श्रीकृष्ण द्वारा आश्वासन-निर्वाहका यह भावपूर्ण वर्णन भी अपने ही ढंगका है।

वे छः छन्द इस प्रकार हैं –

प्रक्षालित किये तरंगोंने फिर पद हम दोनोंके, प्रियतम!
व्याकुल होकर आ चिपट गयी रेणुका किंतु अमला, प्रियतम!
'क्यों छोड़ चले तुम मुझे यहीं, दम्पति हे!' थी कहती, प्रियतम!
उज्ज्वल वितान था तान रहा ऊपर हिमकर करसे, प्रियतम॥

मनमें मैं व्यथित हुई-सी थी कह गयी – 'न छोड़ूँगी' प्रियतम!
'कोई भी हो, कैसी भी हो, जो जुड़ी तनिक-सी है', प्रियतम!
आशा उसकी मैं क्यों तोड़ूँ, साँवर तो हैं मेरे, प्रियतम!
दूँगी कह जो, कर लेंगे, फिर यह तो है पद थामें प्रियतम॥

अपने ही खयालों में

शीत-ऋतु में धूप सेवन
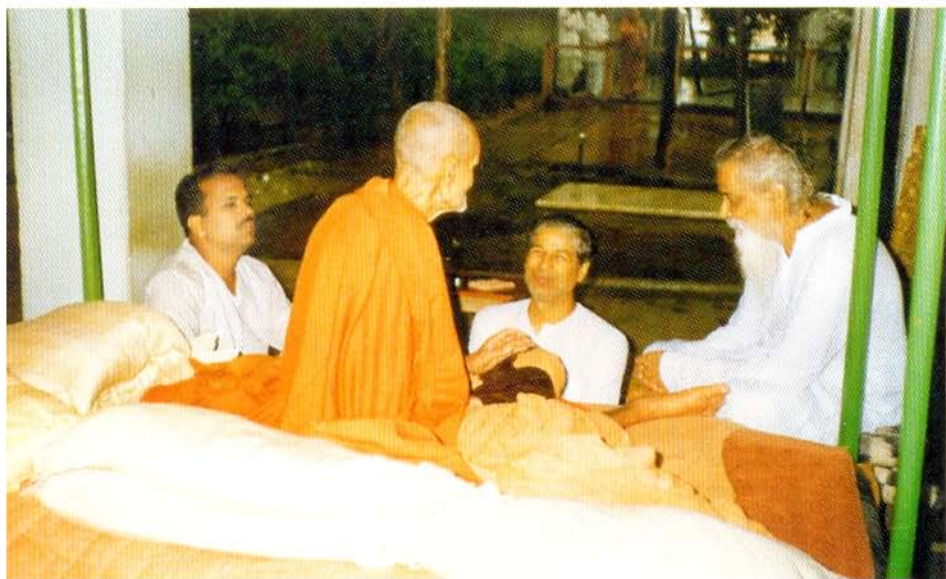
मधुर चर्चा

स्वजनों के मध्य

कितनी मृदुला कितनी हलकी, कितनी उजली यह है! प्रियतम!
जड़ बनी अपनपौ खोकर है मेरे ही लिये पड़ी, प्रियतम!
साँवरकी यह दासी इसकी निष्ठा कैसे भूले, प्रियतम!
'हे धूलि! परम मंगल हो, ये स्वीकार करें तुमको' प्रियतम।।

हे प्राणनाथ! हो गयी देर अब चलो कुञ्जमें हे प्रियतम!
हे श्यामचन्द्र! किरणोंका हूँ स्वागत करती कहती, प्रियतम!
देते रहना शीतलता ही अविराम यहाँ सबको, प्रियतम!
फिर रास दिखाऊँगी तुमको, कह चली, चले तुम भी प्रियतम।।

कुछ बात बताकर तुम हँसते, बन जाती 'फूल' हँसी, प्रियतम!
मेरे आगे बन जाता था सुन्दर पथ सुमनोंका, प्रियतम!
रखते पर पद तुम रजमें थे कुसुमोंको बचा-बचा प्रियतम!
था हेतु बताया – 'प्यारी! हैं प्राणोपम रजकणिका, प्रियतम।।

जब दयामयी तुमने इच्छा कर ली ये साथ चलें, प्रियतम!
त्यागूँ कैसे फिर मैं इनको, हूँ जहाँ रहेंगी ये, प्रियतम!
मेरे प्राणोंकी रानीके पदमें जो चिपक गयीं, प्रियतम!
उनको क्या दे सकता हूँ मैं, ऋणिया हूँ नित्य बना', प्रियतम।।

ठाकुरजीने इन छः छन्दोंको शिवरञ्जनी रागमें गाया था और सारा वातावरण छन्द-प्रति-छन्द गायनसे अधिकाधिक भावमय होता जा रहा था।

'जय जय प्रियतम' काव्यके इस सरस प्रसंगका एक अति विशेष महत्त्व है और इस महत्त्वकी ओर संकेत स्वयं बाबाने बहुत पहले एक बार किया था। सन् १९५६ की शरद पूर्णिमाको बाबाने काष्ठ मौन व्रत लिया था। यह ऐसा अवसर था, जब बाबा रसोदधिमें गहनावगाहन हेतु अवतरण करनेवाले थे। उस अवसरपर मौन व्रत लेनेके कुछ ही देर पूर्व कुटियाके पूर्णैकान्तमें बाबा और बाबूजीके मध्य थोड़ी देर पारस्परिक मधुर संलाप हुआ था। बाबाने यह तो बतलाया नहीं कि संलाप क्या हुआ था, पर इतना अवश्य संकेत रूपमें कहा था कि इस यमुना-तट-लीलामें जिन भावोंकी प्रधानता है, लगभग ऐसी ही भावधारा उभर-उभर करके उस एकान्त संलापके समय हम दोनोंके अन्तरको अत्यन्त विह्वल बना रही थी। इस सरस लीलाके और उस मधुर संलापके भाव-प्रवाहमें अनुमानातीत साम्य है।

अब इस प्रसंगसे यह तथ्य स्पष्ट ध्वनित होता है कि बाबासे जो-जो

व्यक्ति जुड़े हुए हैं, चाहे वे कैसे भी हों, उन-उनका पूर्ण दायित्व बाबूजीने स्वीकार कर लिया है और यह प्रसंग चरणाश्रित जनोंके लिये कितनी अधिक प्रेरणा और कितने अधिक आश्वासनकी वस्तु है। मैं औरोंकी बात तो कहता नहीं, पर मैं अपनी कह सकता हूँ कि बाबाकी इस वाणीकी स्मृति होते ही अन्तर परम धन्यता और परम सौभाग्यके भावोंसे आप्लावित हो उठता है।

ठाकुरजीके गायनके बाद हरिवल्लभजीने हरिनाम कीर्तन करवाया और उसके बाद भगवद्विग्रहोंका नीराजन एवं प्रसाद-वितरण हुआ। आज बाबा बड़ी ही प्रसन्न मुद्रामें आद्यन्त रहे।

इस कार्यक्रमके बाद श्रीराधाकृष्णके दो चित्रोंका उन्मुक्त वितरण हुआ। बाबाके हाथसे चित्र पाकर सभी बड़े आनन्दित हो रहे थे। मेरा अनुमान है कि जिन-जिनने बाबाके हाथसे चित्र प्राप्त किये हैं, वे लोग उसे अपने पूजाघरमें पधरा दिये होंगे।

अपराह्न कालमें श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा हुई। परिक्रमामें हरिवल्लभजीने गाया – 'कालिन्दी ! धीरे बहो, मेरे प्रियतम उतरेंगे पार'। यह बाबाकी रचना है। कालिन्दी-कूलपर बैठी हुई कृष्णप्रिया श्रीराधाजी यमुनाजीसे अनुरोध कर रही हैं मन्द-मन्द बहनेके लिये। जब हरिवल्लभजी पीलू रागमें गा रहे थे तो एक-दो बार बाबाने आलापचारी भी की। इस आलापचारीको सुनकर सभी उत्फुल्ल हो उठे। बहुत दिनोंके बाद बाबाके मुखसे आलापचारी सुननेको मिली थी।

इसी पंक्तिके भावोंको लेकर गोरखपुर विश्वविद्यालयके प्राध्यापक श्रीविश्वम्भरशरणजी पाठकने संस्कृत भाषामें एक गीत लिखा है। वह संस्कृत गीत भी परिक्रमामें गाया गया और बाबा अर्थानुसंधानपूर्वक उस संस्कृत रचनाका आस्वादन ले रहे थे। गीतमें ज्यों ही कोमल भावोंकी ललित अभिव्यक्तिका स्थल आता था, बाबा ग्रीवा डुला-डुलाकर सराहना करते थे। परिक्रमाका वातावरण भी बड़ा आह्लादपूर्ण रहा।

सूर्यास्तके समय भगवान श्रीगिरिराजजीका पुनः विशद रूपसे पूजन हुआ। इस समय भी पूजन महाराजजीने किया। सूर्योदयके समय तो केवल फलों तथा मेवोंका नैवेद्य अर्पित किया गया था, पर इस समय अन्नकूटका निवेदन बृहद् रूपमें था। सभीको भरपूर प्रसाद मिला। बाबाकी भिक्षाके उपरान्त रात्रिमें आठ बजेसे दस बजेतक श्रीराधाकृष्ण मन्दिरमें भजन-कीर्तनका कार्यक्रम था।

यद्यपि दिनभरकी व्यस्तताके कारण महाराजजी पर्याप्त श्रमित हो गये थे, इसके बाद भी महाराजजीने मन्दिरके कार्यक्रममें पधारनेकी कृपा की। महाराजजीकी उपस्थितिसे बात कुछ और ही प्रकारकी बन गयी।

* * * * *

विभिन्न भाव दशाएँ

श्रीराधेश्यामजी मिश्र बाबाको प्रतिदिन प्रातःकाल सूर्योदयसे पहले ही एक अध्याय गीता और श्रीविष्णु सहस्रनाम सुनाया करते थे। इसके अतिरिक्त श्रीचैतन्य चरितावली, भक्तमाल आदि-आदि न जाने कितने ग्रन्थ और चरित उन्होंने बाबाको सुनाये होंगे। मिश्रजीके मनमें यह भाव स्फुरित हुआ कि यदि बाबा श्रीरामचरितमानस भी प्रतिदिन सुनते तो कितना अच्छा रहता। मनमें श्रीरामचरितमानस सुनानेका चाव बहुत अधिक था, परन्तु उन्होंने कभी भी यह इच्छा व्यक्त नहीं की। थोड़े ही दिन बीते होंगे कि बाबाने कहा – हे मिसिर! गीताकी तरह रोज रामायण भी सुना दिया करो, श्रीरामचरितमानसका एक मासिक विश्राम प्रतिदिन।

यह तो मिश्रजीके मनकी चाही हुई बात थी ही। मिश्रजीका मन आनन्दसे भर गया। अब वे बाबाको श्रीरामचरितमानस प्रतिदिन प्रातःकाल सुनाने लगे। श्रीरामचरितमानसको सुनते समय बाबाकी जो भावदशा बनती, वह देखने योग्य ही होती। बाबाकी उन भावदशाओंका चित्रण सहज नहीं है। श्रीरामचरितमानसके आरम्भमें श्रीशिवचरितका वर्णन है। श्रीशिवचरितको सुनते समय बाबा भगवान शंकरके भावमें निमग्न रहते। शंकरभावमें निमग्न बाबाको ऐसा लगता कि गोस्वामीजी मेरी ही कथाका वर्णन कर रहे हैं। जब दशरथ चरित आता, तब बाबा दशरथ-भावमें निमग्न हो जाते और बाबा ऐसा अनुभव करते कि मैं अपने वत्स श्रीरामभद्रका विवाह करानेके लिये बारात लेकर अयोध्यासे जनकपुर जा रहा हूँ। जब विवाहका प्रसंग आता तो ऐसा लगता कि बाबा मिथिलाके श्रीजनकराज हैं और दूल्हा रामका पैर पूज रहे हैं। विवाह हो जानेके बाद बाबा श्रीराम भावमें प्रतिष्ठित हो जाते और कहने लगते – श्रीजनकजी मेरे श्वसुर हैं।

ऐसा नहीं सोचना चाहिये कि उन-उन भाव-दशाओंमें निमग्न बाबाके श्रीमुखसे जो उद्‌गार फूट पड़ते थे, उन-उन उद्‌गारोंके व्यक्त हो जानेके बाद

उनकी भावदशा बदल जाया करती थी। कभी-कभी उसी भावमें बाबा कई घण्टेतक डूबे रहते। मिथिलामें विवाह प्रसंग चल रहा था। बाबा दूल्हा रामके भावमें निमग्न थे। बाबाकी भाव-निमग्नताको देख-देख करके मिश्रजी भी बड़े विभोर हो रहे थे। भाव विभोर मिश्रजीने बाबासे कहा – आज आपका विवाह हुआ है आप सबको मिठाई खिलाइये।

बाबा पूर्ण उल्लासके स्वरमें कहने लगे – हाँ, हाँ, सब लोग खाओ। खूब खाओ। आज विवाह हुआ है। देखो, देखो, जनकपुरमें कैसी खुशियाँ छायी हुई हैं। जीमनवारमें जो मिठाई खायी, उसका स्वाद अभीतक बना हुआ है।

अयोध्याकाण्डमें जब श्रीदशरथजीके निधनका प्रसंग आता तो बाबाके आँखोंके आँसू सूखते ही नहीं थे। क्या-क्या बतलाया और क्या-क्या लिखा जाय? श्रीरामचरितमानसके पाठके समय कथा-प्रवाहमें जब जैसा प्रसंग आता, बाबाको यह लगता कि यह मेरा ही वर्णन हो रहा है। कभी केवट-भावमें, कभी भारद्वाज-भावमें, कभी वाल्मीकि-भावमें बाबा डूबे रहते। जब श्रीसुमन्त्रजी रिक्त रथ लेकर अयोध्या लौटते तो उस समय ऐसा लगता कि बाबा ही लौट रहे हैं और श्रीसुमन्त्रजीके आ जानेके बाद श्रीराम विरहमें श्रीदशरथजी जब अपने प्राणोंका परित्याग करते और इसका करुण प्रसंग सुनते, तब बाबाकी दशा कल्पनातीत रूपसे बड़ी विचित्र हो जाती। उस समय ऐसा लगता मानो चौकीपर विराजे हुए बाबा अपने आसनपरसे नीचे भूमिपर गिर पड़ेंगे। बाबाकी जैसी दारुण दशा होती, उसको देखकर श्रीरामचरितमानसका पाठ सुना पाना बन नहीं पाता और मिश्रजीको विवश होकर पाठको वहींपर विश्राम दे देना पड़ता। यह बात केवल एक बारकी नहीं है। बाबाको मिश्रजीने श्रीरामचरितमानस आरम्भसे अन्ततक कई बार सुनाया है और जब-जब पाठके मध्य श्रीदशरथ निधनका प्रसंग आता, तब-तब भावाधिक्यके कारण बाबाकी विकल स्थिति बहुत विचित्र हो जाती। हम और आप अनुमान नहीं लगा सकते कि वह स्थिति कितनी विकट और विशिष्ट हो जाया करती थी।

श्रीभरतचरित तो बाबाका प्राण था। श्रीभरतचरितके आरम्भ होते ही वे अत्यन्त भाव विभोर हो जाते। 'पुलक सरीर बिलोचन बारी' और 'मगन सनेहँ देह सुधि नाहीं' का प्रत्यक्ष उदाहरण मिश्रजीके सामने मूर्तिमान रहता। श्रीरामचरितमानसमें आया है – 'भरत दसा तेहि अवसर कैसी। जल प्रवाह जल अलि गति जैसी।।' और बाबाकी सहज भावदशाको देखकर कुछ-कुछ अनुमान

लगाया जा सकता है कि त्रेतायुगमें भाई भरतकी भावमयता कैसी रही होगी! मानसके अयोध्याकाण्डका पाठ होते समय कभी दशरथ-भावमें, कभी भरत-भावमें, कभी राम-भावमें, कभी जनक-भावमें उनकी लोकोत्तर दशा देखते ही बनती थी। 'बनइ न कहत प्रीति अधिकाई।'

जब अरण्यकाण्डमें श्रीसुतीक्ष्ण प्रसंग आता, तब बाबा ऐसे थिरकते रहते मानो भगवान श्रीरामके दर्शनके लिये भागे चले जा रहे हों और बार-बार कह रहे हों – 'रामचन्द्र चन्द्र तू चकोर मोहि कीजिये'। माँ शबरीका प्रसंग आते ही बाबा मिश्रजीसे पूछते –नवधा भक्तिमें पाँचवाँ भजन मन्त्र-जप बतलाया गया है। अब बतलाओ, श्रीरघुनाथजीने माँ शबरीको जप करनेके लिये कौन-सा मन्त्र बतलाया था।

मिश्रजीको ऐसे रसमय अवसरोंपर मौन रहना ही प्रिय लगता था। पूछे जानेपर मिश्रजी चुपचाप और एकटक बाबाकी ओर देखने लगते। फिर बाबा स्वयं ही बोल पड़ते – राम राम राम राम। हे मिसिर! यही मन्त्र है। इसी मन्त्रका जप करनेके लिये श्रीरघुनाथजीने कहा था।

माँ शबरीके प्रसंगके तुरन्त बाद श्रीनारद प्रसंग आता है और देवर्षि नारदने इसी वरदानकी याचना की है।

'राम सकल नामन्ह ते अधिका। होउ नाथ अघ खग गन बधिका।।'

पाठके समय इस चौपाईके आते ही बाबा बोल पड़ते – देखो मिसिर! देखो, श्रीरामनाम ही महामंत्र है और इसकी पुष्टि देवर्षि नारदके इस प्रसंग द्वारा भी हो रही है।

सुन्दरकाण्डको बाबा हनुमानकाण्ड कहा करते थे। बाबाकी मान्यता सदैव यही रही है कि इस काण्डमें रामभक्त श्रीहनुमानजी महाराजके पावन और यशस्वी चरित्रका अति सुन्दर रूपमें वर्णन हुआ है और इसीलिये मानस रचयिता गोस्वामी तुलसीदासजीने इसका नाम सुन्दरकाण्ड रखा है। श्रीहनुमानजी महाराज तो अत्यन्त विनम्र और निरभिमानी थे, अतः गोस्वामीजीको 'पवनसुतकाण्ड' नाम नहीं रखने दिया।

अब प्रसंगानुसार एक दृश्यकी ओर इंगित करना आवश्यक तो नहीं है, परन्तु अनावश्यक भी नहीं लग रहा है। लंका दहनके उपरान्त वहाँसे वापस आकर श्रीहनुमानजीने भगवान श्रीरामको अशोक वाटिकाकी वन्दिनी एवं विरह-व्यथासे पीड़ित भगवती सीताका संदेश दिया और प्रेमाकुल-हर्षाकुल हनुमानजी

प्रभु श्रीरामके युगल चरणकमलोंपर गिर पड़े। सलिलित नयन और पुलकित वदन श्रीहनुमानजीका वर्णन करते हुए गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं –

बार बार प्रभु चहइ उठावा।
प्रेम मगन तेहि उठब न भावा।।
प्रभु कर पंकज कपि के सीसा।
सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा।।

यह प्रसंग आते ही मिश्रजी अपने मनमें स्वयं ही स्वयंसे कहते – अरे नराधम! इस समय तू बन जा थोड़ी देरके लिये हनुमान। हाँ, बनावटी हनुमान बन जा और पकड़ ले इन बाबाके समर्थ युगल चरण, जो नर रूपमें भगवान श्रीरामचन्द्रजी ही हैं।

इधर तो मिश्रजीके मनमें यह मधुर भावकुता उभरी और उधर तुरन्त उन्होंने अपना मस्तक चौकीपर बैठे हुए बाबाके श्रीचरणकमलोंपर रख दिया। मिश्रजीके सौभाग्यकी सीमा नहीं। बाबा उनके मस्तकपर अपना दक्षिण करकमल फेरने लगे। क्या ही भावपूर्ण वह दृश्य रहा होगा!

लंकाकाण्डमें जब भगवान श्रीरामचन्द्रजीने भोले बाबा भगवान श्रीरामेश्वरजीकी स्थापना की, तब ऐसा लगता मानो वह स्थापना बाबाके द्वारा हो रही है। मेघनादकी वीरघातिनी शक्तिसे आहत भाई श्रीलक्ष्मणका वर्णन आते ही बाबाको ऐसा लगता कि वह शक्ति मेरे हृदयमें शूलके समान भीषण रूपसे चुभ रही है। जब उत्तरकाण्डका पाठ चलता, तब प्रतीक्षा व्याकुल श्रीभरतजीका विगलित-विकलित अन्तर बाबाको पंक्ति-प्रति-पंक्ति गलाता-बहाता-रुलाता रहता और इस रोदनका विराम होता तब, जब श्रीराम-भरत-मिलनका प्रसंग आता। उत्तरकाण्डका उत्तरांश आते ही बाबा नितान्त गम्भीर हो जाते।

इस उत्तरांशमें भक्त शिरोमणि काकभुशुण्डिजीके श्रीमुखसे श्रीरामभक्तिकी श्रेष्ठताका जैसा प्रतिपादन हुआ है, वह वर्णन वस्तुतः बाबाकी निजी मान्यता ही है। भक्ति-ज्ञान- कर्म-त्याग-सदाचार आदि-आदिके सम्बन्धमें जिन तत्त्व-रहस्य-प्रभाव-महिमा आदि-आदिका विवेचन और उद्घाटन किया गया है, वे यथार्थतः बाबाके जीवनके निर्णीत और अनुभूत सत्य हैं। ऐसे अवसरपर बाबाका गम्भीर होकर अन्तर्मुखी हो जाना नितान्त स्वाभाविक है।

* * * * *

एक प्रेरणाप्रद पत्र

एक स्वजनने बाबाके नाम पत्र भेजा और बड़ी भावभरी रीतिसे निवेदन किया कि जीवनके निर्माणके लिये कुछ बतलानेकी कृपा करें। इसके उत्तरमें बाबाने जो लिखवाया, उसको नीचे उद्धृत किया जा रहा है —

''भगवत्कृपा प्राणी मात्रके ऊपर निरन्तर बरस रही है। जीवका इस विश्वमें एक मात्र कर्तव्य यह है कि वह उस कृपाका आदर करके अपने जीवनको इस अजस्र धारामें निमज्जित कर दे। पूर्व-जन्मके कर्मोंसे निर्मित प्रारब्ध तो संसार-चक्रको चलाता ही रहता है, भविष्यमें चलाता भी रहेगा। उसकी ओर आसक्ति तथा उसके लिये चिन्ता करना तो अपने अमूल्य जीवनको व्यर्थ करना ही है।

भगवानकी कृपासे जो मानव-जीवन मिला है, उसको व्यर्थ करनेवाला तो आत्म-हन्ता ही है। चकोरके समान प्रियका एकान्त दर्शन करना, भ्रमरके समान उनके प्रीति-रसका निरन्तर पान करना और जलसे बाहर निकली हुई मछलीके समान प्रियके वियोगमें असीम व्यथाका अनुभव करना, यह इस जीवनका परम आदर्श है।

मेरी मंगल कामना है कि आपका चित्त निरन्तर भगवानका वासस्थल बन जाय, आपकी जिह्वा सदा उनका नाम संकीर्तन करती रहे, आपके मनमें प्यारेकी छवि निरन्तर अंकित रहे और आपकी आँखोंमें सदा बसे रहें दोउ चंद।''

* * * * *

भाव-देहकी साधना

व्रजभावके कुछ पदोंका मैंने संग्रह कर रखा था। बाबा उन पदोंको आदरणीय श्रीहरिवल्लभजी कीर्तनियासे गवाया करते थे। गवा-गवा करके उनपर रागका नाम लिखवाया करते थे। जब एक राग पसन्द नहीं आती तो उसी पदको किसी अन्य रागमें गानेके लिये वे उनको कहा करते थे। हरिवल्लभजी दूसरी रागमें गाने लगते थे। फिर वह राग पसन्द आती तो

रागका नाम पदके ऊपर बाबाके निर्देशानुसार मैं लिख लिया करता था। जिज्ञासावशात् मैं बाबासे पूछ बैठा – आप यह कैसे निश्चित करते हैं कि इस पदको अमुक रागमें गाना चाहिये?

बाबाने बड़े प्यार पूर्वक समझाया – यह तो बड़ी सीधी सी बात है। जिस रागसे मनमें भाव उद्दीप्त हो उठे, वह राग उस पदके लिये उपयुक्त है। जब एक रागसे मन 'भीतर' प्रवेश नहीं करता तो मैं किसी अन्य रागमें गानेके लिये इनसे कहता हूँ। मुख्य उद्देश्य है मनका श्रीप्रिया-प्रियतमके लीला-सिन्धुमें निमग्न हो जाना। यही कारण है भिन्न-भिन्न कालमें और भिन्न-भिन्न भावोंके लिये शास्त्रमें भिन्न-भिन्न रागोंका विधान है।

बाबाके इस उत्तरसे बड़ा समाधान मिला। बाबाको अति प्रसन्न देखकर उनसे एक और जिज्ञासा व्यक्त करनेका साहस कर बैठा। एक ओर कुटियाका नितान्त एकान्त और दूसरी ओर उनकी परम वत्सलताने ही यह साहस प्रदान किया। मैंने बड़े विनीत भावसे पूछा – बाबा! भाव-साधना किस प्रकार की जाती है?

बाबा प्यारपूर्वक बतलाने लगे – भाव-साधना भाव-देहसे की जाती है। स्वयं यह भावना करे, कल्पनाके आधारपर यह भावना करे कि मैं चौदह-पन्द्रह वर्षकी एक किशोरी बालिका हूँ। अगोंपर सुन्दर परिधान है। आभूषण भी यथास्थान सुशोभित हैं। इस प्रकार अपने भाव-देहकी भावना करके प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधवकी सेवामें स्वयंको नियुक्त करे। भिन्न-भिन्न समयपर विविध प्रकारकी सेवा करे, मानसिक सेवा। यह भाव-साधना सतत चलती रहे। यदि साधना निरन्तर चलती रही तो समय पाकर यह भाव-देह सिद्ध हो जाती है।

बाबाने सावधान करनेके लिये यह भी बतलाया – श्रीप्रिया-प्रियतमकी यह भावमयी लीला परम दिव्य है और सर्वथा लोकोत्तर है। यह लीला सांसारिक मानवी-मानवकी नहीं है, अपितु है साक्षात् भगवती श्रीराधा और भगवान श्रीकृष्णकी। श्रीराधामाधव समग्र ऐश्वर्य, समग्र धर्म, समग्र श्री, समग्र ज्ञान, समग्र वैराग्य एवं समग्र यशके साक्षात्स्वरूप हैं। उनका दिव्य वपु सच्चिदानन्दमय हैं। उनकी दिव्य देह नित्य रहनेवाली नित्य चेतन एवं नित्य आनन्दस्वरूप है। सघन

प्रेम-पदार्थसे निर्मित उनके सच्चिदानन्दमय देहमें देही, देहका भेद नहीं है। उनका दिव्य वपु अस्थि-चर्म, रक्त-माँस, मल-मूत्र, रज-वीर्य, प्रारब्ध-फलभोग आदि-आदिसे सर्वथा रहित है। वे सर्वत्र सर्वदा सर्वांशमें तत्सुख-सुखिता भावसे भावित रहते हैं। इसी प्रकार भगवल्लीलामें जो देश है, काल है और सखी-मञ्जरी आदि परिकर हैं, वे सभी सच्चिदानन्दमय होते हैं।

बाबाने जो बतलाया, उसीको संक्षेपमें लिखा गया हैं। यहाँ एक बातका उल्लेख करना आवश्यक लग रहा है। ये सारी बातें एक ही बार एक ही बैठकमें नहीं हुई। किसी दिन कुछ बात हुई और किसी दिन कुछ बात हुई। विषयसे सम्बन्धित होनेके कारण भिन्न-भिन्न अवसरोंपर हुई इन बातोंको अब एक साथ लिख लिया गया है। बाबाने यह सब चर्चा की, यह मुझ साधारण व्यक्तिका सौभाग्य था। फिर तो एक दिन एक सुन्दर लीला भी प्राप्त हो गयी कि किस प्रकार भाव-देहकी भावना और लीलाका चिन्तन करना चाहिये। उस लीलाका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है।

मैं तेरह वर्षसे कुछ बड़ी एक मंजरी हूँ। सहसा मेरी आँखें खुल गयी हैं और ऐसा अनुभव मैं कर रही हूँ कि आज ब्राह्म मुहूर्तके बाद भी मैं कुछ अधिक देरतक सो गयी थी। अतएव शीघ्र-से-शीघ्र मैं उठते ही स्नान करनेके लिये श्रीयमुना-तटपर आयी हूँ अथवा श्रीराधाकुण्डके कगारपर खड़ी हूँ। भगवती पौर्णमासी देवीने मुझे किसी दिन कहा था कि देख! तू कुछ दिनोंतक वेणीकी रचना मत करना, अतएव अधिकांश समय मैं उन्मुक्त केशी ही रहती हूँ। मैं नहीं जानती, मेरे केशोंमेंसे एक अत्यधिक अप्रतिम सौरभ क्यों निःसृत होता रहता है। मैं ऐसा कोई तेल भी नहीं लगाती, तब भी इतने सुचिक्कण मेरे केश क्यों बने रहते हैं। जो हो, मैं स्नान कर रही हूँ और मेरे केश श्रीराधाकुण्डके जलपर अथवा यमुनाके जल-प्रवाहपर संतरण कर रहे हैं और मेरे केशोंसे उस समय भी एक अद्भुत सौरभ निकल रहा है, जो कि कमलके फूले हुए सुमनोंके सौरभको फीका कर रहा है।

स्नान करके मैं ऊपर तटपर चली आयी हूँ। वहाँ एक बड़ा सुन्दर नीले रंगका घाघरा पड़ा है, उसको मैं पहन लेती हूँ, किंतु उसके पहले

ही गीले वस्त्रको छोड़कर मैं एक नीले रंगका जाँघिया (कच्छा) पहन चुकी होती हूँ। उस कच्छेमें भी किसी अनुपम इत्रका सौरभ अनुभूत हो रहा है। वक्षःस्थलकी उत्तुंगताका आरम्भ तो हो गया है, परन्तु स्पष्ट परिलक्षित सबके द्वारा वह हो ही जाय, ऐसा नहीं है, परन्तु सबके लिये समान यह नियम भी नहीं है। मैं एक अरुण वर्णकी कंचुकी धारण कर लेती हूँ। स्नान करते समयके अपने गीले वस्त्रोंको निचोड़कर, अब मैं अपने केशोंको एक कँगही लेकर केवल तीन बार केशोंपर फेरती हूँ और इतनेमें ही वे सब सुलझ जाते हैं। कस्तूरी कुंकुम एवं केशर मिश्रित विलेपनसे एक गोल विन्दुका तिलक भ्रू-मध्यमें लगा लेती हूँ। मेरे अधरोंमें अरुणिमा तो सहज व्यक्त है ही, परन्तु फिर भी अर्चनाके प्रसाद रूपमें अथवा कृपा-प्रसादके रूपमें प्राप्त ताम्बूल भी मैं प्रायः प्रतिदिन प्रातःकाल ही सेवन कर लेती हूँ।

झड़का करके नीली ओढ़नीकी सलवट दूर कर अब मैं उसे ओढ़ लेती हूँ। कलाईमें दोनों ओर दो स्वर्ण निर्मित वलय नित्य धारण किये रहती हूँ और उनके मध्यमें पतली-पतली अरुणाभ चूड़ियाँ हैं। कभी-कभी मेरी चूड़ियाँ झनक भी उठती हैं।

राधा बहिनने मुझे सुरभित विलेपन प्रस्तुत करनेकी आज्ञा दी थी। अब मैं केशर कस्तूरी एवं कुंकुम इन तीनोंको चन्दनकी बटियासे एक बड़ी सिलपर, अपने शृंगार धारण करनेवाले कक्षसे बाहर आकर अलिन्दमें बैठकर पीस रही हूँ।

अचानक प्रियतम श्रीकृष्ण आ जाते हैं। उनके मुखपर उनके सिरका काला कुञ्चित केश जाल मोर मुकुटके द्वारा संयत रहनेपर भी भहरा-भहरा करके आ ही जाता है, जिसे वे गर्दन हिला-हिला करके संयतकी मुद्रा दे देते हैं। अधरोंपर मन्द मुस्कान है। कुटिल भृकुटि है। कटिमें पीत वसन है। झलमलाता हुआ पीताम्बर कंधोंपर शोभायमान है। दोनों कानोंमें कुण्डल लटक रहे हैं, उनकी आभासे गोल-गोल कपोल दमक रहे हैं। विशाल नेत्र हैं। वे तिरछी चितवनसे मेरी ओर देख रहे हैं। किशोर वय है। किशोरीकी अपेक्षा प्रियतम श्रीकृष्णकी ऊँचाई चार-छः अंगुल अधिक है। माथेपर मृगमदका तिलक है। नाकमें बुलाक पहने हैं। हाथमें मुरली है। गलेमें वनमाला सुशोभित है। दोनों कलाइयोंमें कंकण हैं।

विशाल भुजाओंमें बाजूबन्द हैं। कटिमें करधनी है। वक्षःस्थलमें कौस्तुभ मणि सुशोभित है। अधर और ओष्ठ अरुण हैं। चरणोंमें नुपूर हैं। मन्द मन्थर गतिसे चलकर आते हुए उनको देखकर मैं संयत होकर बैठ जाती हूँ। विलेपन प्रस्तुत करना भी स्थगित कर देती हूँ। वे मुस्कुरा करके पूछ रहे हैं – तुमने विलेपन पीसना क्यों छोड़ दिया?

मै केवल मुस्कुरा देती हूँ। प्रियतम श्रीकृष्ण फिर पूछते हैं – मैं घिस दूँ क्या?

मैं उत्तर देती हूँ – तुम्हारा स्वभाव बड़ा चंचल है। तुम घिस सकोगे नहीं और मुझे जल्दी-से-जल्दी घिसकर राधा बहिनके समक्ष प्रस्तुत होना है।

प्रियतम श्रीकृष्णके मेरे सामने बैठ जाते हैं और कहते हैं – इतना अधिक विलेपन क्या होगा?

मैं उत्तर देती हूँ – इसका उत्तर तो तुम्हें राधा बहिन ही देंगी।

अविलम्ब बहिन राधा किशोरी भी उसी स्थलपर उपस्थित हो जाती हैं। उसका नीला घाघरा है। उसके नीचे नीला कच्छा है। कमरसे ऊपर उदर-देशको निरावरण रखते हुए लाल रंगकी कंचुकी है, जिसमें हर समय विभिन्न रंगोंका प्रकाश होता रहता है। कहनेके लिये उसे अरुण वर्णकी कंचुकी कही जा सकती है, किन्तु वही कंचुकी लीलाके अनुरूप नारंग वर्ण, पीत वर्ण, हरित वर्ण, आसमानी वर्ण, नील वर्ण, वैगनी वर्ण, इतनी आभाएँ बदलती रहती है। गलेमें पाँच तरहके हार रहते ही हैं – सोनेका, हीरेका, नीलमका, मोतीका और सुमनका हार। नाकमें बुलाक हरदम रहती है, किसी-किसी दिन नथ भी अवश्य रहती है। नथमें एक डोरी लगी रहती है, वह नीलाभ झाँई लिये होती है और कर्ण-कुण्डलोंको छूती रहती है। कानोंमें एक विचित्र तरहका झूमका है, जो कि क्षण-क्षणमें बड़ा-छोटा होता रहता है। चंद्रिका किसी समय रहती है और किसी समय अन्तर्धान हो जाती है। हाथोंकी दसों अँगुलियोंमें अँगूठी हैं। पैरोंमें भी दसों अँगुलियोंमें बिछिया और अँगूठियाँ हैं, नूपुर भी है। स्वर्णके पीताभ वर्ण वलय दोनों हाथोंमें दो-दो रहते हैं। उनके बीचमें चूड़ियाँ हैं अरुणाभ वर्णकी। बाजूबन्द भुजाओंमें हैं। कटिदेशवाली किंकणी कंकण और नूपुर झनक रहे हैं। मधुर मुस्कान समन्वित लाल-लाल अधर और

ओष्ठ हैं। वे आते ही प्रियतम श्रीकृष्णसे कहती हैं — तुम्हारी आदत बहुत बुरी है। तुम कोई भी काम किसीको ठीकसे करने देते ही नहीं।

मैं राधा बहिनकी ओर देखकर बोल उठती हूँ — देखो बहिन! ये विलेपन नहीं दे रहे हैं। मैं क्या करूँ?

उत्तर देती हैं राधा बहिन ही — देख! ये ऐसे मानेंगे नहीं। इनके लिये कोई नैवेद्य सामग्री लेकर आ। साथ ही अन्य सहचारियोंको भी बुला ला।

क्षण बीतते-न-बीतते दस-बारह सहचरियाँ हाथोंमें विभिन्न प्रकारकी नैवेद्य सामग्री लिये हुए उपस्थित हो जाती हैं। नैवेद्य सामग्री है पायस, अत्यन्त सुरभित मोदक (लड्डू), कुछ नमकीन दाल-मोठ आदि भी हैं। गुलाबजामुन, चन्द्रकला, इमरती आदि भी हैं। सुहाली, भुजिया, दहीबड़ा, कचौड़ी आदि भी है। उसे मैं प्रत्येकसे लेकर एक बड़े सोनेके थालमें सजा देती हूँ, परन्तु विचित्र बात, जिसे स्वयं मैं भी नहीं समझ पाती हूँ कि ऐसा कैसे हो जाता है, प्रत्येक वस्तु एक साथ ही दोनोंके समक्ष आ जाती है। ग्रास लेनेके लिये वस्तुकी ओर हाथ बढ़ानेकी आवश्यकता उन्हें नहीं होती । मात्र उठाना भर ही पड़ता है। दोनों परस्पर एक दूसरेके मुखमें ग्रास दे रहे हैं और साथ ही चल रहा है पवित्र एवं मधुर विनोद। बीचमें कटोरी लेकर कभी-कभी अमृतके समान निर्मल एवं सुमिष्ट जलकी घूँट भी परस्पर पिलाते हैं।

अब बहिन राधाका संकेत पाकर मैं थाल हटा लेती हूँ और हाथ पोंछकर ताम्बूल सामने रख देती हूँ। दोनों एक-एक ताम्बूल उठाकर और दाँतोंसे तनिक-सा तोड़कर खाने लगते हैं। सहसा नित्य निकुञ्जेश्वर प्राणप्रियतम श्रीकृष्ण अपने मुखका अर्ध चर्वित ताम्बूल मेरे मुखमें डाल देते हैं और किशोरीके अधरामृत-सिक्त ताम्बूलको छीनकर स्वयं खाने लगते हैं।

राधा राधा राधा राधा

* * * * *

चरण-पादुकाका वन्दन

बाबूजीका जन्म-शताब्दी उत्सव अपने देश भारतके विभिन्न भागोंमें ५ अक्टूबर १९९१ से २३ सितम्बर १९९२ तक वर्षभर मनाया गया। भारतकी विभिन्न दिशाओंमें स्थान-स्थानपर एक वर्षतक उत्सवोंकी मालाका उल्लास छाया रहा। शताब्दी उत्सवका कभी यह अथवा कभी वह कार्यक्रम होता रहा कभी इस शहरमें तो कभी उस गाँवमें। अन्यत्र किसी एक ग्राम अथवा नगरमें तो एक वर्षकी अवधिके भीतर एक या दो बार ही कोई कार्यक्रम आयोजित हुआ, परन्तु यहाँ गीतावाटिकामें उत्सवानन्दका उल्लासपूर्ण प्रवाह निरन्तर ही बहता रहा। यहाँ कोई-न-कोई आयोजन किसी-न-किसी रूपमें वर्षभर होता रहा और वर्ष पर्यन्त चलनेवाले इन विभिन्न कार्यक्रमोंका शुभारम्भ हुआ श्रीमद्भागवत महापुराणकी परम पावनी सप्ताह-कथासे। इसीके साथ यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि सांवत्सरिक उत्सवका शुभारम्भ यदि श्रीमद्भागवतकी सप्ताह कथासे हुआ तो इसकी सम्पन्नता श्रीरामचरितमानसकी नवाह्न कथासे हुई।

इसमें भी एक अति महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इन दोनों कथाओंके अवसरपर व्यासपीठको सुशोभित किया रामानन्दाचार्य प्रज्ञाचक्षु परम पूज्य श्रीरामभद्राचार्यजी महाराजने। प्रज्ञाचक्षु पूज्य श्रीमहाराजजीने एक बार कहा था – पूज्य भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके सम्पूर्ण शताब्दी उत्सवको श्रीकृष्ण-कथा और श्रीराम-कथाके जिस आयोजन द्वारा सम्पुटित किया गया, यह सर्वथा श्रीभाईजीके व्यक्तित्वके अनुरूप हुआ है। श्रीभाईजीके जीवनमें भगवान श्रीकृष्ण और भगवान श्रीरामका अद्‌भुत समन्वय है। श्रीभाईजीके विचारमें यदि भगवान श्रीकृष्णका दर्शन है तो उनके आचारमें भगवान श्रीरामका वर्तन है। भाव-समाधिकी स्थितिमें यन्त्र-यन्त्री-भावापन्न होकर स्वयंको यन्त्र मानते हुए जहाँ उन्होंने अपने आपको भगवान श्रीकृष्णके चरणोंपर अर्पित कर दिया है, वहीं उन्होंने लोक कल्याणकी भावनासे भावित होकर भगवान श्रीरामके गुणोद्‌घाटक श्रीरामचरितमानसकी सुन्दर टीकाके लेखन द्वारा जग-हित-निरत हृदयका परिचय दिया है। माधव और राघवके यथार्थ तत्त्वका व्यावहारिक रूप श्रीभाईजीके जीवनमें देखनेको मिलता है।

शताब्दी उत्सवके शुभारम्भके समय श्रीमद्भागवत महापुराणकी

जब कथा हुई थी, उस अवधिकी एक विशिष्ट घटनाका यहाँ उल्लेख करना है। यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि इस भावपूर्ण कथाको कहनेके लिये प्रज्ञाचक्षु पूज्य श्रीरामभद्राचार्यजी महाराजका शुभागमन हुआ था। श्रीमहाराजजीने मन-ही-मन निश्चय कर रखा था कि कथा-मण्डपमें जानेसे पूर्व मुझे श्रीराधा बाबाका दर्शन करना है। बाबाकी कुटियापर जाते समय उन्होंने पहले बाबूजीकी समाधिको प्रणाम किया। इसके बाद उन्होंने श्रीगिरिराजजीको प्रणाम किया। प्रणाम करके उन्होंने श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा लगायी, जिसकी परिक्रमा बाबा नित्य लगाया करते थे।

जब महाराजजी परिक्रमा लगा रहे थे, परिक्रमा लगानेका वह दृश्य बड़ा हृदयस्पर्शी था। परिक्रमा लगाते समय श्रीमहाराजजी श्रीमद्भागवतके निम्नलिखित श्लोकको गा-गा करके बोल रहे थे —

हन्तायमद्रिरबला हरिदासवर्यो
यद् रामकृष्णचरणस्पर्शप्रमोदः।
मानं तनोति सहगोगणयोस्तयोर्यत्
पानीयसूयवसकन्दरकन्दमूलैः॥
(श्रीमद्भागवत — १०/२१/१८)

[अर्थात् अरी गोपियों! यह गिरिराज गोवर्धन तो भगवानके भक्तोंमें बहुत ही श्रेष्ठ है। धन्य हैं इसके भाग्य! देखती नहीं हो, हमारे प्राणवल्लभ श्रीकृष्ण और नयनाभिराम बलरामके चरणकमलोंका स्पर्श प्राप्त करके यह इतना आनन्दित रहता है! इसके भाग्यकी सराहना कौन करे! यह तो उन दोनोंका, ग्वालबालों और गौओंका बड़ा ही सत्कार करता है। स्नान-पानके लिये झरनोंका जल देता है। गौओंके लिये सुन्दर हरी-हरी घास प्रस्तुत करता है। विश्राम करनेके लिये कन्दराएँ और खानेके लिये कन्द-मूल-फल देता है। वास्तवमें यह धन्य है।]

इस भावपूर्ण श्लोकको भावपूर्ण रीतिसे गायन करते हुए श्रीमहाराजजी द्वारा परिक्रमाका लगाया जाना बड़ा ही प्रिय लग रहा था। श्लोकको सुस्वर ढंगसे गाते-गाते बीचमें ही उन्होंने बड़े उच्च स्वरसे बोलकर कहा — यह गीतावाटिका तो वस्तुतः वृन्दाकानन ही है।

श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा लगा करके श्रीमहाराजजी बाबाकी कुटियाकी ओर अग्रसर हुए। बाबाने देखा कि मेरी ओर श्रीमहाराजजी चले आ रहे हैं।

अपने गैरिक बिस्तरसे उठकर और करबद्ध खड़े होकर उन्होंने श्रीमहाराजजीका भावभरा स्वागत किया। दो संतोंकी पारस्परिक प्रणतिका वह सरस दृश्य अध्यात्म-राज्यका एक स्मरणीय भाव-चित्र है। आज भी उसकी स्मृतिसे भावोद्दीपन हो उठता है। बाबाको वन्दन करके महाराजजी कथा-मण्डपमें पधारे। अब तो यह नित्यका क्रम बन गया कि कथा-मण्डपमें जानेके पूर्व श्रीमहाराजजी प्रतिदिन बाबाकी कुटियापर आया करते थे और वे आया करते थे एक मात्र अपना भावभरा वन्दन निवेदित करनेके लिये। ज्यों ही श्रीमहाराजजी वन्दन करते, त्यों ही बाबाके श्रीमुखसे स्नेह-भरे सम्मान-सने भावोद्गार झरने लगते थे। श्रीमहाराजजीको वन्दन-विनीत देखकर बाबाने वन्दन करते हुए कहा – जै जै सरकारकी, जै जै कृपानिधानकी।

स्वयं श्रीराधाभावमें निमग्न रहते हुए भी बाबाने प्रति-वन्दन करते हुए एक दिन कहा कि मेरे प्राणोंके मालिककी जय हो। फिर दूसरे दिन बाबाने प्रति-वन्दन करते हुए कहा कि जै जै श्रीसीताराम। फिर अगले दिन उन्होंने कहा कि भावोंके सन्धिपर प्राणोंका अनुसरण करनेवाले महामहिमकी जय हो।

इन भावभरे उद्गारोंको सुनकर श्रीमहाराजजीका मञ्जुल-मञ्जुल हृदय सदैव और सतत मूक अभिनन्दन किया करता था। एक दिन श्रीमहाराजजीने बाबासे कहा – आज सायंकाल मेरे मुन्ना सरकार राघव आपके साथ खेलना चाहते हैं।

इस वाक्यको सुनकर बाबाके आह्लादकी सीमा नहीं थी। बाबाने विहसते-विहसते ललित और मधुर स्वरमें कहा – मैं आऊँगा, अवश्य आऊँगा। फिर क्या कहना ? बस, आपकी चरण धूलि मिल जाय, फिर हमें क्या कहना है ! मैं कभी न तो कुछ था और न हूँ, पर आपकी कृपासे कुछ हो जाऊँगा जरूर !

बाबाके इन भक्तिपूर्ण उद्गारोंको सुनकर श्रीमहाराजजीने कुछ अन्तरंग व्यक्तियोंके मध्य एकान्तके क्षणोंमें जो अभिमत व्यक्त किया, उसका एक विशेष महत्त्व है। आजकल होता यह था कि बातचीत करते-करते बाबा कभी-कभी ऐसा असम्बद्ध संभाषण करने लगते थे मानो पिछली बातकी अगली बातसे कोई सम्बद्धता न हो। पूर्वापर-सम्बन्ध-रहित असम्बद्ध चर्चाके आधारपर कई लोग बाबापर हल्की टिप्पणी कर दिया करते थे। ऐसे लोगोंकी आलोचना करते हुए श्रीमहाराजजीने कहा – जो लोग बाबाके असम्बद्ध संभाषणके आधारपर यह कहते हैं कि उनकी स्मृति-शक्ति क्षीण या विलुप्त हो गयी है, वे लोग अपनी

मूर्खता और अपने अज्ञानका परिचय दे रहे हैं। क्या स्मृति-विलुप्त व्यक्ति ऐसे सुन्दर और भावपूर्ण उद्‌गार व्यक्त कर सकता है? सच बात यह है कि उन्होंने अपने आपको जगतसे छिपाये रखनेके लिये स्वयंपर एक आवरण डाल रखा है। बाबा तो जगतसे उपराम हैं, जगदीशसे नहीं।

* * *

एक दिन तो विचित्र घटना घटित हो गयी। श्रीरामान्द-सम्प्रदाय-पीठाधिपति होनेके कारण पूज्य श्रीरामभद्राचार्यजी महाराजके साथ आद्य-सम्प्रदायाचार्य नित्य-वन्द्य श्रीरामानन्दजी महाराजकी परम पावन युगल चरण पादुका चला करती थीं। ये चरण-पादुकाएँ एक सुन्दर सिंहासनपर विराजित रहती थीं और एक भक्त उनको अपने शीशपर रखकर साथ-साथ चला करता था। जब श्रीमहाराजजी कथा-मण्डपमें आकर विराजते, तब व्यास-पीठके समक्ष इन चरण-पादुकाओंको भी विराजित कर दिया जाता था। मर्यादा यह है कि कथाके आरम्भ होनेके पूर्व जब व्यास-पूजन होता है, तभी इन चरण-पादुकाओंका भी अत्यधिक सम्मानपूर्वक पूजन होना चाहिये। गीतावाटिकामें कथारम्भके पूर्व चरण-पादुकाओंका पूजन तो होता था, पर वह साधारण स्तरका था और यह एक प्रमाद हम लोगोंके द्वारा घटित हो रहा था। प्रतिदिन जो भूल प्रमादवशात् घटित हो रही थी, वह श्रीमहाराजजीके ध्यानमें आ गयी, पर शीलवशात् उन्होंने भूलकी ओर संकेत नहीं किया और इस प्रमादके आवर्तमें तीन-चार दिन निकल गये। सम्भवतः घटना पाँचवें दिनकी है। श्रीमहाराजजी कथा-मण्डपमें पधारनेके पूर्व बाबाके समक्ष वन्दन निवेदित करनेके लिये गये तो बाबाने उनका बड़ा भावभरा स्वागत किया। श्रीमहाराजजीको आते हुए देखकर वे तुरन्त उठकर खड़े हो गये और उनके समीप आते ही बाबाने उल्लसित स्वरमें कहा – श्रीगुरुदेव भगवानकी जय हो जय हो जय हो। श्रीकरुणावरुणालयकी जय हो जय हो जय हो। आज आपका स्पर्श प्राप्त करके मैं भी पवित्र हो गया।

बाबाका वह उल्लसित स्वर सुनते ही बनता था और देखते ही बनता था उनका प्रफुल्लित मुख। सारे वातावरणमें प्रफुल्लता परिव्याप्त हो रही थी। श्रीमहाराजजीके साथ वन्दनीया बूआजी भी थीं। बूआजी श्रीमहाराजजीकी सहोदरा बहिन हैं। बूआजीने नमन करते हुए बाबासे विनयपूर्वक पूछा – बाबा! क्या मुझे श्रीराधारानीका दर्शन होगा?

बाबाने उसी प्रफुल्ल स्वरमें कहा – होगा, अवश्य होगा!

इस परम मंगलमय शुभाशीर्वादको सुनकर जब हम साधारण श्रोताओंका मन आह्लादसे भर गया, तब जिन बूआजीके प्रति यह मंगलवाणी कही गयी थी, उनके असीम आनन्दका मात्र कुछ अनुमान लगाया जा सकता है।

इस प्रकार सुख-विभोर श्रीमहाराजजी बाबाके पाससे ज्यों ही जाने लगे, बाबाके दृष्टिपथपर आ गयीं वे चरण-पादुकाएँ। बाबाने देखा कि एक व्यक्तिके शीशपर एक सिंहासन है और उसमें कोई महत्त्वपूर्ण वस्तु पुष्पमालाके मध्य सुशोभित है। बाबाने पूछा – उस व्यक्तिके शीशपर जो सिंहासन है, उसमें क्या है?

एक सहचरने कहा – चरण-पादुका।

बाबाने फिर पूछा – किनकी?

सहचरको उन चरण-पादुकाओंका पूर्ण परिचय नहीं था। यह संक्षिप्त बातचीत श्रीमहाराजजीके कानोंमें पड़ गयी। इस चर्चाको सुनकर श्रीमहाराजजी लौट पड़े और उन्होंने बाबाको चरण-पादुकाका परिचय दिया।

बाबाको ज्यों ही पता चला कि ये पावन-चरण-पादुकाएँ अनन्त-श्रीविभूषित आद्यसम्प्रदायाचार्य श्रीरामानन्दजी महाराजकी हैं, वे उन चरण पादुकाओंको बार-बार प्रणाम करने लगे, उनका दर्शन पाकर अपने सौभाग्यकी सराहना करने लगे और उन चरण-पादुकाओंके शुभागमनसे गीतावाटिकाकी भूमिको धन्य-धन्य कहने लगे।

बाबाके भावमय व्यक्तित्वकी यह मधुर झाँकी देखकर श्रीमहाराजजीके आश्चर्य और आनन्दकी सीमा नहीं थी। श्रीमहाराजजी मन-ही-मन कह रहे थे – अपने महज्जनकी अभ्यर्चना कैसी होनी चाहिये और उनके स्मृति-चिह्नोंका समादर कैसा होना चाहिये, इसे एक मात्र संत ही जानता है। ये सांसारिक लोग इस बातको भला क्या जानें और क्या समझें? बाबाके दैन्यको, सद्भावको, प्रणतिको, मान-दानको देख-देख करके श्रीमहाराजजी आनन्द-विभोर हो रहे थे और बार-बार बलिहार जा रहे थे।

जब श्रीमहाराजजी कथा-मण्डपमें पधारे और व्यासासनपर विराजित हुए, तब उनकी वह भावविभोरता हृदयके भीतर सीमित न रह सकी और शाब्दिक अभ्यर्चनाके रूपमें अभिनन्दन करनेके लिये अधरोंसे बह पड़ी। जिस रीतिसे बाबाने उन चरण-पादुकाओंको प्रणाम किया था, वह सारा प्रसंग

श्रीमहाराजजीने उपस्थित श्रोताओंको सुनाते हुए कहा — कथा कहनेके पूर्व आज एक विशेष बात मैं निवेदन करना चाहता हूँ। भगवान श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराज भारतकी ऐसी महान विभूति हैं, जिन्होंने मानव मात्रकी हितकामनासे प्रेरित होकर भवसागर-संतरणार्थ साकेतविहारी श्रीसीतारामजीकी सर्वसुखदायिनी परम मंगलकारिणी सरल भक्ति-भावनाका प्रचार किया। ये युगल चरण-पादुकाएँ उन्हीं महान आद्य आचार्यजीकी हैं। मैं इन चरण-पादुकाओंकी प्रतिदिन षोडशोपचारसे सविधि पूजन किया करता हूँ, परन्तु इन चरण-पादुकाओंको यहाँ गीतावाटिकामें जितना सम्मान मिलना चाहिये था, वैसा नहीं देखकर मेरे मनमें अपार खिन्नता थी। मैं अपनी व्यथाको व्यक्त नहीं करता था।

अब आजका प्रसंग सुनें। यह प्रसंग अभी-अभीका है और कथा मण्डपमें आनेके पूर्वका है। मेरा यह नियम है कि कथा कहनेसे पहले मैं बाबा सरकारके दर्शनके लिये जरूर जाता हूँ। मैं कितना ही बड़ा आचार्य क्यों न होऊँ, इससे भला क्या? मैं उनके दर्शनार्थ अवश्य जाया करता हूँ। आज बाबा सरकारके दर्शनके लिये हमलोग गये थे। साथमें श्रीराम और श्रीलक्ष्मण भी थे। हमलोगोंको आते हुए देखकर वे खड़े हो गये। फिर बाबा सरकारके श्रीमुखसे मंगलाशीर्वादके रूपमें जो सुमंगलवाणी सुननेको मिली, वह आप उन कुछ लोगोंसे पूछ लीजियेगा, जो मेरे साथ थे। जब हम विदा होकर चलने लगे, तब हो यह गया कि उनकी दृष्टि इन चरण-पादुकाओंपर पड़ गयी। फिर उन्होंने इशारा किया कि पादुकाओंको इधर ले आओ। उन्होंने इन पादुकाओंको लेकर कम-से-कम तीन बार प्रणाम किया ही। बाबा सरकार जैसे मूर्धन्य विद्वान और परमहंस परिव्राजकाचार्य भी इन पादुकाओंको प्रणाम करते हैं, इस भावमयी अर्चनाको देखकर मेरे आनन्दकी सीमा नहीं थी। मेरे भीतरका सारा खेद और कष्ट दूर हो गया।

इसी घटनासे सम्बन्धित मुझे एक बात और कहनी है। इसे आपलोग मेरा एक सुखद संदेश समझें। संत लोग वस्तुतः कभी उपराम नहीं होते। हाँ, संसारवालोंको भ्रममें डाल देनेके लिये उपरामताका आवरण ओढ़ लेते हैं। संत लोग सांसारिकोंको ठगनेके लिये उपराम होते हैं। संत कभी उपराम नहीं होते और कभी अपना विवेक नहीं खोते। यदि बाबा सरकारका विवेक खो गया होता तो वे पादुकाजीको प्रणाम करनेके लिये भला क्यों बुला लेते? बाबा सरकारने

पादुकाओंकी जो समर्चना की, उसको देखकर मेरा हृदय प्रफुल्लित हो गया, आनन्दातिरेकसे भर गया। मैं तो उन पादुकाओंका आदर करता ही हूँ, पर बाबा सरकार जैसे वयोवृद्ध- ज्ञानवृद्ध-तपोवृद्ध-लीलावृद्ध संतके द्वारा इतना अधिक आदर दिया जाना, यह देखकर परम आश्चर्य हुआ।

आप जरा बाबा सरकारकी वर्तमान स्थितिपर किञ्चित् विचार करें। जिनकी अस्वस्थताको देखकर विगत दो वर्षोंमें स्नानके नामपर गीले कपड़ेसे शरीर केवल पोंछ दिया जाता है और जिनको भिक्षा करानेके लिये आहारको छोटी-छोटी गोली बनाकर चम्मचसे अधरोंके भीतर रख दिया जाता है, मानो किसी शिशुको दुलराकर खिलाया जा रहा हो, जिनका शारीरिक रंग-ढंग ऐसी दशातक बदल गया हो, उन बाबा सरकारका विवेक पूरी तरह सजग है और वे आद्य आचार्यकी पावन चरण-पादुकाओंको अत्यधिक सम्मान देते हैं। यह सब देखकर मुझे परमानन्द हुआ। मैंने उनसे कहा कि ये आद्य रामानन्दाचार्यजीकी पादुकाएँ हैं तो बाबा सरकारने कहा कि मैं किसी लायक नहीं हूँ, पर अब वन्दन करके इनको आदर करने लायक शायद बन जाऊँगा। उनका स्वयंका ऐसा अमानीपन और पादुकाओंका ऐसा समादर देखकर आज श्रीकृष्ण-कथा कहनेकी और सप्ताह-कथा सुनानेकी पूरी दक्षिणा मुझे पूर्ण रूपसे मिल गयी है। अब मुझे किसी अन्यसे सम्मानकी अपेक्षा नहीं रह गयी। आज मेरे मनमें किसी भी प्रकारकी कोई व्यथा या खिन्नता नहीं रह गयी। बाबा सरकार द्वारा की गयी मंगलमयी अर्चना देखकर मैं सदाके लिये उनका ऋणी हो गया।

सारे श्रोता श्रीमहाराजजीके भाव-प्रवाहमें बहे जा रहे थे। सब बह रहे थे, पर कुछ इने-गिने-श्रोताओंको छोड़कर। हनुमानप्रसाद पोद्दार स्मारक समितिके जो प्रमुख पदाधिकारी थे, उन श्रोताओंको मन-ही-मन अपने प्रमादपर बड़ा खेद हो रहा था। उन्होंने अपनी भूलके लिये श्रीमहाराजजीसे क्षमा याचना की। संत-जीवन श्रीमहाराजजी तो क्षमा स्वरूप ही हैं। उनके मनमें भूलकी स्मृति तो पानीपरकी रेखाके समान है।

अब कथारम्भके पूर्व व्यास-पूजनके साथ-साथ भगवान श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराजकी पावन चरण-पादुकाओंका पूजन अत्यधिक आदर पूर्वक प्रतिदिन होने लगा।

* * * * *

पूज्या माँका महाप्रयाण

चिता-समाधिके अत्यन्त समीप टिनशेडके नीचे नित्य निवास करते हुए बाबा अपने महाभाव-सिन्धुकी ललित लहरोंपर कभी लहराते रहते और कभी उस सिन्धुकी गम्भीर गहराईमें निमग्न रहते। महाभावमय बाबाके जीवनमें कई बार शारीरिक कष्ट भीषण रूपमें आये और तब-तब संदेह होने लगता था कि क्या बाबा अब 'विदाई' लेनेवाले हैं?

वे भला विदाई कैसे लेते? बाबूजी अपने महाप्रयाणके पूर्व उन्हें एक कार्य सौंप गये थे और वह कार्य था पूज्या माँकी सँभालका। अपने परम प्रेमास्पद द्वारा सौंपे गये कार्यको उन्होंने हृदयसे स्वीकार किया था। माँका भी स्वास्थ्य बड़ा शिथिल चल रहा था और बार-बार आशंका होती थी कि पता नहीं कब वे अपनी आँखें सदाके लिये बन्द कर लें।

गहरा आश्चर्य होता है बाबाकी सुव्यवस्थित योजनापर और सुदूर दृष्टिपर। ५ अक्टूबर १९९१ से लेकर २३ सितम्बर १९९२ तक बाबूजीका जन्मशताब्दी उत्सव संवत्सर पर्यन्त सारे देशमें मनाया जा रहा था। इस अवधिमें माँकी रुग्णताने खतरनाक मोड़ ले लिया। बाबा सोच रहे थे कि इस संवत्सरकी अवधिमें यदि माँ 'जाती' है तो अपने परमप्रेमास्पदके शताब्दी उत्सवमें बड़ी बाधा आयेगी। १९ सितम्बर १९९२ को माँने बाबासे कहा था – इस रुग्ण शरीरमें भीषण कष्ट हो रहा है। यह कष्ट अब सहा नहीं जाता। अब कन्हैयाके पास भेज दो।

माँके इन पीड़ा-पूर्ण शब्दोंको सुनकर बाबाने सान्त्वना देते हुए उत्तर दिया – तुम चिन्ता मत करो। तुम अपने कन्हैयाके पास जावोगी और मैं तुम्हें 'भेज' करके ही 'जाऊँगा'।

बाबाने यह सान्त्वना तो दे दी, परन्तु उनके चिन्तनमें यह भी समाया हुआ था कि संवत्सर पर्यन्त चलनेवाले शताब्दी महोत्सवकी सम्पन्नता भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। यह महोत्सव २३ सितम्बर १९९२ को सम्पन्न हुआ।

२४ सितम्बर १९९२ को माँकी तबीयतमें गम्भीर रूपसे गिरावट आयी और २६ सितम्बर १९९२ के प्रातःकाल माँ अपने जीवनसर्वस्व 'कन्हैया' के पास चली गयीं। इस करुण समाचारके फैलते ही देशके कोने-कोनेसे श्रद्धालु भक्तजन आये और २७ सितम्बर १९९२ के दिन गीतावाटिकामें बाबूजीकी समाधिके पास ही अपराह्नकालमें पूज्या माँकी चिता प्रज्वलित हुई।

* * * * *

जीवन-लीलाका संवरण

९ अक्टूबर १९९२ के दिन पूज्या माँका श्राद्ध-कार्य पूर्ण रूपसे भली प्रकार सम्पन्न हुआ। श्राद्ध-कार्यकी कर्म-काण्ड-प्रक्रियाके सम्पन्न होते ही ९ अक्टूबर १९९२ के दिन रात्रिके समय ही बाबाके स्वास्थ्यमें गिरावट आयी। स्वास्थ्यकी स्थितिके बिगड़ते ही कैंसर अस्पतालके डाक्टर सम्मान्य श्री एम.एन.शर्मा एवं डा.एल.डी.सिंह आवश्यक चिकित्सामें तुरन्त संलग्न हो गये। बाबाके यति-धर्मको ध्यानमें रखते हुए चिकित्साके रूपमें सेवा-कार्य हो रहा था। हमारी सेवा-तत्परता चाहे जितनी उत्कृष्ट हो, उसको सफलताका श्रेय तभी मिल पाता, जब बाबा उसको सफल बनाना चाहते। तत्परता पूर्वक चिकित्सा-सेवा चल रही थी और चल रही थी देवराधना भी कि बाबा शीघ्र स्वास्थ्य-लाभ करें, परन्तु बाबाको तो अब कुछ अन्य ही अभीष्ट था। ज्यों-ज्यों स्वास्थ्यमें गिरावट आती चली गयी, त्यों-त्यों बात फैलती गयी और नगरके श्रद्धालु एवं स्नेहीजन अधिकाधिक संख्यामें गीतावाटिका आने लगे बाबाके स्वास्थ्यका समाचार जाननेके लिये। सभी आत्मीयजनोंकी आन्तरिक चाह थी कि बाबा शीघ्र स्वस्थ हो जायँ, परन्तु यह सारी शुभ भावना, यह सारी सेवा-चर्या और यह सारी देवाराधना तभी सफल होती, जब बाबा हमारे बीच ठहरना चाहते, परन्तु उन्होंने तो 'जाने' का संकल्प कर लिया था और हम सभी लोगोंके मध्यसे उन्होंने सदाके लिये विदाई ले ली १३ अक्टूबर १९९२ के प्रातःकाल लगभग साढ़े आठ बजे।

उनकी 'विदाई' ने सारे वातावरणको बुरी तरहसे झकझोर दिया। करुण क्रन्दनका भीषण स्वर फूट पड़ा। एक तथ्यको देखकर बार-बार आश्चर्य होता है। ९ अक्टूबरके दिन पूज्या माँके श्राद्ध-कार्यके पूर्ण होते ही इसके चार दिन बाद ही १३ अक्टूबरके प्रातःकाल साढ़े आठ बजे पूज्य बाबा सदाके लिये 'अन्तर्हित' हो

गये। पट-परिवर्तन इतना शीघ्र हो जायेगा, इसकी कल्पना किसीको नहीं थी। घटनाओंका चक्र बड़ी तेजीसे घूम रहा था। घटनाओंका विकास जिस प्रकारसे हुआ और उस विकासका जो परिणाम सामने आया, उससे एक बात भली प्रकारसे स्पष्ट हो गयी कि बाबूजीके कथनानुसार बाबाने माँकी सँभालका जो दायित्व स्वीकार किया था, उस दायित्वके निर्वाहके लिये ही वे 'ठहरे' हुए थे और उस दायित्वका पूर्ण निर्वाह होते ही उन्होंने 'चले जाने' का निर्णय कर लिया।

अपने प्रेमास्पद पूज्य बाबूजीके शताब्दी-उत्सवको भली प्रकारसे सम्पन्न होने देना, सम्पन्नता तक माँको 'रोके' रखना और माँके जाते ही स्वयं तुरन्त अन्तर्हित हो जाना, बाबाकी इस व्यवस्थित योजनाको सोच-सोच करके चिन्तन हर बार विस्मयकी गहराईमें खो जाता है और फिर विस्मयको भी विस्मय होने लगता है यह देखकर कि उन परमप्रेमी बाबाने अपने प्रेमास्पदकी चिता-स्थलीपर निवास करते हुए और नयनोंके नीरको प्रतिपल पोंछते हुए अपना सारा जीवन बिता दिया।

प्रीतिकी टेकका ऐसा उदाहरण –

भयउ न अहइ न अब होनिहारा।

प्रीतिकी रीतिका यह निर्वाह जैसा अनोखा है –

सो मुख लाख जाइ नहिं बरनी।।

प्रेमके राज्यमें प्रीतिकी वेदीपर ऐसी निजात्माहुतिको नित्य-निरन्तर वन्दन!

१३ अक्टूबर १९९२ के प्रातःकाल बाबाने विदाई ली। सारा वातावरण बुरी तरहसे शोकाकुल हो रहा था। कुछ बहिनें बुरी तरहसे रो ही थीं। जो सभीके दुख-दर्दको सुन लिया करते थे और सभीकी परेशानीको अपनी परेशानी मान लिया करते थे, वस्तुतः मनसे मान लिया करते थे, वे अब हमारे बीच नहीं रहे। सिद्ध संतोंसे गम्भीर सच्चर्चा करने वाले, साधकोंको उपयोगी परामर्श देने वाले, ब्राह्मणोंकी समस्याको हल कर देने वाले, जन-जनको आन्तरिक प्यारसे नहला देने वाले, बहिनों-माताओंके संतापको हर लेने वाले, गोमाताकी रक्षाके लिये विकल रहने वाले, गरीबोंकी क्षण-प्रति-क्षण सँभाल करने वाले, गुणीजनोंकी प्रतिभाको आदर देने वाले और सबसे बड़ी बात यह कि लोकोपकारके विभिन्न कार्योंको करते हुए भी लोकोत्तर दिव्य रस-सिन्धुमें सतत निमग्न रहनेके अद्वितीय आदर्शको प्रस्तुत करने वाले बाबा अब हमारे मध्य नहीं रहे।

गीतावाटिकाका सारा वातावरण विशेष रूपसे करुणाप्लावित हो उठा। समझमें नहीं आ रहा था कि सान्त्वना दी जाय या ली जाय। वाटिकाकी दिशा-दिशामें शोकका सागर उमड़ रहा था। शोक-सागरके भीषण ज्वारने सारी गीतावाटिकाको आत्मसात कर रखा था।

बाबाकी विदाईका प्रसंग तो कालका एक क्रूर प्रहार था। प्रहारसे आहत हम सभी व्याकुल थे। हम चाहे कितने ही व्याकुल क्यों न हों, परन्तु अन्तिम कई कार्योंको किसी प्रकारसे सम्पन्न करना शेष था ही। हमलोगोंको यह पता नहीं था कि संन्यासीके 'शान्त कलेवर'की अन्तिम क्रिया किस प्रकारसे पूर्ण की जाती है। गोरखपुरका गोरखनाथ मन्दिर 'नाथ पंथी' साधुओंका एक महान केन्द्र है। गोरखनाथ मंदिरके महन्त पूज्य श्रीअवेद्यनाथजी महाराजसे सम्पर्क किया गया और उन्होंने कुछ बतलाया। संयोगसे इस समय जम्मू-काश्मीरके स्वामी श्रीकृष्णानन्दजी महाराज गीतावाटिकामें विद्यमान थे। गोरखनाथके पूज्य श्रीमहन्तजी एवं स्वामी श्रीकृष्णानन्दजीके परामर्शके अनुसार अन्तिम क्रियासे सम्बन्धित तैयारी होने लग गयी।

गीतावाटिकामें जहाँ श्रीगिरिराज भगवान प्रतिष्ठित हैं, वहाँ काठकी एक चौकी रखकर उसपर दूसरी चौकी रखी गयी। इस चौकी रूपी वेदीके चारों ओर गैरिक वस्त्रोंसे एक विशाल मण्डप बनाया गया। बाबाके शान्त-कलेवरको कुटियासे लाकर इस चौकी रूपी वेदीपर पद्मासनके रूपमें पधरा दिया गया, जिससे सभी भक्तजन दर्शन कर सकें। शहरसे लोग दर्शनार्थ उमड़ पड़े। बाबाके अन्तर्हित होनेका समाचार टेलीफोन द्वारा देशके कोने-कोनेमें फैलने लगा। वृन्दावन, कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली, पटना, वाराणसी, बीकानेर इस प्रकार दूर-दूर स्थित अनेक स्थानोंसे फोन द्वारा यह जिज्ञासा होने लग गयी कि भूमि-समाधि कब दी जायेगी, जिससे अन्तिम दर्शनके लिये समयसे पूर्व गीतावाटिका पहुँचा जा सके।

सभीको यही बतलाया जा रहा था कि १४ अक्टूबरके दिन भूमि-समाधिकी क्रिया सम्पन्न होगी। विभिन्न स्थानोंसे लोग कोई वायुयान द्वारा, कोई ट्रेन द्वारा और कोई कार द्वारा गीतावाटिकाकी ओर चल पड़े। चल पड़े नहीं, अपितु यह कहना चाहिये कि भाग चले। गया जिलाके फखरपुर ग्रामसे बाबाके बड़े भाई पूज्य पंडित श्रीतारादत्तजी मिश्र भी आये। उनके साथ परिवारके अन्य कई लोगोंका भी गीतावाटिकामें आगमन हो गया।

गृहस्थकी शव-यात्राके लिये जो विमान बनता है, उसको अर्थी कहते हैं

और संन्यासीके लिये प्रयुक्त होनेवाले विमानको 'वैकुण्ठी' कहते हैं। स्वामी श्रीकृष्णनन्दजी महाराजके निर्देशानुसार वैकुण्ठीके निर्माण-कार्यमें बढ़ई संलग्न हो गये। प्रयास यह था कि वैकुण्ठीके आगे और पीछे दण्ड पर्याप्त लम्बे रहें, जिससे सभीको कन्धा देनेका अवसर मिल सके। यहाँ एक तथ्यकी ओर संकेत कर देना उचित रहेगा। यदि तत्परता पूर्वक कार्य किया जाता तो वैकुण्ठी १४ अक्टूबरके प्रातःकाल ही तैयार हो जाती, किन्तु जान-बूझ करके विलम्ब किया जा रहा था। बढ़ईसे कहा जा रहा था कि कार्य धीरे-धीरे करो, जिससे बम्बई आदि दूर स्थानोंसे स्वजन १४ अक्टूबरकी दोपहरतक आकर अंतिम दर्शन कर ले सकें। दोपहरके बाद निर्मित वैकुण्ठीको फूलोंसे खूब सजाया गया तथा उसे गिरिराज परिसरमें लाया गया।

बाबाके अन्तर्हित होनेका समाचार ज्यों ही वृन्दावन पहुँचा, पूज्य श्रीमहाराजजी (श्रद्धेय श्रीबालकृष्णदासजी महाराज) अत्यधिक मर्माहत हो उठे। उनको अपार व्यथा हो रही थी कि साधकोंकी, चरणाश्रित जनोंकी, समर्पित भक्तोंकी सँभाल अब कौन करेगा। अन्तर चाहे कितना ही व्यथित हो, उस व्यथासे विकलित हृदय लिये-लिये श्रीमहाराजजी वृन्दावनसे गीतावाटिका आये। आकर चौकीकी वेदीपर विराजित बाबाके गौर वपुको अपलक नयनसे बहुत देरतक एकटक निहारते रहे, निहारते रहे। निहारते हुए अपनी मूक भाषामें बाबासे उन्होंने मन-ही-मन क्या कहा, यह तो वे ही जाने, परन्तु एक अद्भुत बात घटित हो गयी। बाबाके 'शान्त कलेवर' ने अपनी पलकोंके स्पन्दनसे श्रीमहाराजजीको सान्त्वना प्रदान की।

चौकीकी वेदीके समीप मिट्टीके अनेक नये घड़ोंमें गंगाजल भरा था। जलमें केशर चन्दन आदि कई सुगन्धित वस्तुएँ सम्मिश्रित की गयी थीं। इस पावन गंगाजलसे महाराजजीने 'शान्त कलेवर'को सजल नेत्रों सहित स्नान कराया। भाव-परिवारके निज जनोंने तथा अनेक भक्तजनोंने स्नान करवाया। इसके बाद कलवेरके गैरिक वस्त्रको हटा करके नवीन गैरिक वस्त्र धारण करवाया गया। फिर कलेवरको वैकुण्ठीपर पद्मासनकी मुद्रामेंसे विराजित किया गया। चन्दन चर्चित कलेवरपर जन-जनके विकल हृदय एवं सजल नयन लटके-अटके हुए थे।

सर्व प्रथम कन्धा बड़े भाई पूज्य पण्डित श्रीतारादत्तजी मिश्रने दिया। साथ ही कन्धा दिया अनेक भक्तजनोंने। राधा नामकी तुमुल जय-ध्वनिके साथ कन्धेपर वैकुण्ठीको लिये-लिये अन्तिम यात्राका शुभारम्भ हुआ।

प्यार प्यार सत्य है।
राधा नाम सत्य है।।
नन्दनन्दन सत्य है।
प्यार प्यार सत्य है।।

इन चार पंक्तियोंके उच्च घोषसे सारा वातावरण प्रबल रूपसे गूँज रहा था। श्रीगिरिराज भगवानकी परिक्रमा लगा करके फिर श्रीराधाकृष्ण साधना मन्दिरकी परिक्रमा देते हुए वैकुण्ठीको श्रीराधाष्टमी महोत्सवके प्राचीन पण्डालमें पधराया गया। वहाँ श्रद्धा पूरित हृदयसे बाबाके प्रति रह-रह करके पुष्पाञ्जलि समर्पित की जा रही थी। इसके बाद गीतावाटिकाकी परिक्रमा लगाते हुए वैकुण्ठीको वहाँ लाया गया, जहाँ बाबाकी कुटिया थी।

बाबाने पहले ही यह कह रखा था कि मेरे शान्त कलेवरको यहीं भूमि-समाधि देनी है, जहाँ यह कुटिया है। बाबाके शान्त कलेवरको जब कुटियासे चौकीवाली वेदीपर लाया गया था, उसी समयसे कुटियाकी भूमि की खुदाईके कार्यका शुभारम्भ हो गया था। भूमिको खोदनेका कार्य मजदूरोंने नहीं, भक्तजनोंने किया। इस भूमि-गह्वरका १४ अक्टूबरके प्रातःकाल शास्त्रीय नियमानुमोदित विधिसे पूजन किया गया। १४ अक्टूबरके अपराह्णकालमें वैकुण्ठी भूमि-गहवरके पास लायी गयी।

शान्त कलवेरको भूमि-गह्वरमें पूर्ण सम्मान सहित पधरा दिया गया। फिर पूज्य श्रीमहाराजजीने तथा गोरखनाथके महन्त पूज्य श्रीअवेद्यनाथजी महाराजने अपने अञ्जलिसे शुद्ध मिट्टी अर्पित की। फिर तो सभी भक्तोंने क्रम-क्रमसे अपनी-अपनी कराञ्जलिसे मिट्टी समर्पित की। भूमि-गह्वर मिट्टीसे भर गया। १४ अक्टूबर १९९२ के दिन सूर्यास्तसे पहले-पहले बाबाके शान्त कलेवरको भूमि-समाधि प्रदान कर दी गयी। अब शोकाकुल जन-समुदाय भूमिस्थ बाबाकी पावन समाधिकी समतल भूमिको विकल नेत्रोंसे निहार रहा था।

* * * * *

वृन्दावन से श्रीमहाराजजी का पत्रात्मक उद्‌बोधन

गीतावाटिकामें कुछ दिन निवास करके श्रीमहाराजजी श्रीधाम वृन्दावन चले गये। वृन्दावनसे श्रीमहाराजजीका जो भावभरा पत्रात्मक उद्‌बोधन आया, वह मननीय है। वह आगे प्रस्तुत किया जा रहा है —

श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

श्रीधाम वृन्दावन
५-११-१९९२

अन्तर्हिते भगवति सहसैव व्रजाङ्गनाः।
अतप्यंस्तमचक्षाणाः करिण्य इव यूथपम्॥

श्रीकृष्ण सहसा अन्तर्धान हो गये। उन्हें न देखकर व्रजगोपियोंकी जैसे गजराजके बिना हथनियोंकी दशा हो गयी। हृदय विरहाग्निसे जलने लगा। श्रीनन्दनन्दन मदनमोहनकी मत्त गजराजकी-सी गति, मधुर-मन्द-मादक मुसकान विलास भरी चितवन, मनोन्मादकारी प्रेमालाप, नव-नव लीलाओं एवं माधुर्य रसभरी भावमयी मुद्राओंने उनके चित्तको हरण कर लिया था। श्रीकृष्णमयी कृष्णकी अनेक चेष्टाओंका अनुकरण करने लगीं मतवाली गोपियाँ।

चतुर किशोरकी चाल-हास्य-विलास-चितवन-भाषण आदिमें उनके समान ही हो गईं। उनके तनुमें वही गति मानसिक स्थिति भाव भंगिमा सृष्टित हो गई। श्रीकृष्णस्वरूपा, तन्मया देहसे बेभान उन्हींकी लीलानुकरण करने लगीं।

वे सभी ऊँचे स्वरसे उनके अनन्त गुणोंका गायन करती हुई वन-वनमें सघन लताच्छन्न प्रदेशोंमें ढूँढने लगीं।

श्रीराधाबाबा अन्तर्हित हो गये, तत्क्षण आप सभी व्याकुल हो गये हैं। वे श्रीकृष्णके कमनीय भुज-दण्ड-परिमण्डित होकर मन्द गमन कर चुके।

वे चले नहीं गये (लीला संवरण नहीं किया) अन्तर्हित हुए हैं। जैसे श्रीपरीक्षितसे श्रीशुकदेवजीने कहा — श्रीकृष्ण कहीं दूर नहीं गये थे। वे तो समस्त जड चेतनमें उनके बाहर भी आकाशके समान एक रस स्थित हैं। वे वहीं थे, उन्हींमें थे, परन्तु उन्हें न पाकर गोपियाँ वनसे तरुओंसे पता पूछने लगीं।

श्रीबाबा वहींपर हैं, दूर कहीं नहीं गये, समस्त वृन्दावाटिकाके वृक्ष लता

पताओंमें एक रस स्थित हैं।

गिरिराज-प्रदक्षिणामें जैसे गमन करते हाव-भाव भंगिमामें आलापचारीमें दीखते थे, अवश्य ही दीख रहे हैं।

निरन्तर स्मरणीय विषय यह है कि सर्वदा निज स्वरूपमें राधा भावमें भावित माधुर्य रस-घन-रसिक शिरोमणि श्रीराधा बाबा अपने समीप समक्ष सतत वर्तमान हैं।

भाव नित्य, भाव भावित नित्य, भावमयी लीलायें नित्य एवं लीला स्थली नित्य। हाँ, रहेंगे, किन्तु कहेंगे नहीं 'थे'।

हृदय-मूल, भाव वर्तमान है भाव-हीनका जन्म हुआ ही नहीं। महापुरुषोंके चरित्र श्रवणसे भाव हृद्-मूलसे जागृत होता है। मधुर लीलाओंसे रसिक महानुभावोंके जीवनसे, शरीर-वाणी-मनसे पूर्णानुगत होकर ही भावानुभव कर सकते हैं।

मैंने पूछा था महापुरुष लीला संवरणके पश्चात् भी दर्शन कैसे देते हैं? मिलते क्यों?

श्रीश्रीबाबाने कहा – महाप्रलय पर्यन्त महापुरुष अपने कृपा पात्रोंको पथ-प्रदर्शन हेतु करुणया मिला करते हैं। उनका पूर्वीय स्वरूप भी नित्य है।

इस महामधुर वाक्यसे यही सुदृढ़ निश्चय विश्वास पूर्वक होता है कि श्रीश्रीबाबा व्याकुल साधकोंका पथ-प्रदर्शन करते रहेंगे। अकारण करुणा करते रहेंगे। निकटतम होकर दर्शन भी देते रहेंगे।

हमें उनकी वाणीसे अभिप्रेरित होकर कथित नियमोंका पालन करते हुए अखण्डतया गीतावाटिकामें ही (अनन्यतया) निवास करना चाहिये।

शेष श्रीबाबाकी अहैतुकी कृपा।

आप सभीका शुभ चिन्तक
बालकृष्णदास
(श्रीवृन्दावन)

* * * * *

आन्तरिक निवेदन

पूज्य बाबा 'चले' गये। चले नहीं गये, अपितु उन्होंने स्वयंको छिपा लिया। उनके प्रत्यक्ष दर्शनका अभाव हो गया। उनके 'अन्तर्हित' हो जानेसे विचित्र करुणाप्लावित परिस्थितिका मेरे भीतर-बाहर उद्भव हो गया। मन बार-बार यही कहता था कि कमरेमें चुपचाप पड़े रहो। अब कहाँ जाना और कहाँ आना? न किसीसे मिलनेकी इच्छा थी और न कहीं जानेकी चाह। उनका दर्शन, उनकी संनिधि, उनसे संलाप अब भला कहाँ प्राप्य है? सजलतासे आर्द्र एक ऐसी विचलित मनस्थिति थी, जिसमें कमरेका एकान्त काटने दौड़ता था, पर बाहरका कोलाहल चुभता रहता था। विवशतामें घुटती हुई एक ऐसी विह्वलता थी, जिसमें आँखके आँसू न बाहर आ पाते थे और न भीतर छिप पाते थे। क्या सुबह, क्या शाम, उनके अविरल-निर्मल प्यारकी याद न हँसने देती थी और न रोने देती थी। इन दिनों भावनाओंके प्रवाहमें विरोधाभास कम नहीं रहा है। कभी लगता मानो उनसे सतत संयुक्त हूँ और कभी लगता कि अब नित्य वियुक्त हूँ।

कोई माने या न माने, पर यह सत्य है कि मैं व्रज-भावकी बातोंको सुननेके लिये पूर्णतः अनधिकारी था। सचमुच मैं अपात्र था, इसके बाद भी उन्होंने श्रीप्रिया-प्रियतमके परम प्रेमकी पावन चर्चा कभी-कभी छेड़ी ही है, उन पावन क्षणोंकी स्मृति क्या उठते क्या बैठते, भावनाओंको मथती रहती थीं। वे व्यथित भावनाएँ रह-रह करके उनका वन्दन करती थीं, उनका अर्चन करती थीं, उनकी 'जय-जय' कहती थीं। वह एक ऐसा संवेदनशील क्षण था, जिसमें उर्मिल मनकी भावुकता, भावकुतामें व्याप्त कोमलता उनका स्तवन करनेके लिये अकुला रही थी।

ऐसी आकुलताके चञ्चल क्षणोंमें श्रीमहाराजजीका भावभरा पत्रात्मक उद्बोधन मिला। इस पत्रात्मक उद्बोधनने आलोलित अन्तरको और अधिक आन्दोलित कर दिया। अब वृन्दावन उत्तरस्वरूप लिखकर भेजनेके लिये मेरे पास कुछ भी नहीं था। मेरे सामने प्रश्न था कि पूज्य श्रीमहाराजजीको अब क्या लिख करके भेजूँ। उन संवेदनशील करुणार्द्र क्षणोंमें विगलित अन्तरके तरलित भाव सलिलित होकर लेखनीके सहारे जिस रूपमें अवतरित हो उठे, उसी साक्षर सलिलाञ्जलिको बड़े संकोचके साथ समर्पित कर सकनेका साहस कर पाया श्रीमहाराजजीके श्रीचरणोंपर। पता नहीं, मेरी भावकुताकी कोमलताको उन्होंने

किस रूपमें स्वीकार किया।

वही सलिलाञ्जलि यहाँ भी प्रस्तुत है इस संकलनके अन्तिम निवेदनके रूपमें —

तेरे आँचलकी जय हो,

जो स्नेहके कोमल तारोंसे निर्मित है,
जो स्नेहके भव्य भावोंसे भावित है,
जो स्नेहकी ललित लीलाओंसे लसित है।

तेरे आँचलकी बार-बार जय हो,

जिसकी किनारीका किनारा नहीं,
जिसकी सुन्दरताकी सीमा नहीं,
जिसकी मधुरताका पार नहीं।

तेरे आँचलकी सतत जय-जयकार हो,

जो प्रेमका निधान है,
जो नग्नका परिधान है,
जो स्वयंमें महान है।

तेरे आँचलकी करुणा अपार है,

जो ग्लानिसे गलते हुए जनकी व्यथा हर लेती है,
जो कलुषसे कलपते हुए जनकी कालिमा पोंछ लेती है,
जो हृदयसे समर्पित हुए जनको सुषमित बना देती है।

तेरे आँचलकी महिमा शब्दातीत है,

जिसका दर्शन श्रान्त पथिकके लिये एक आन्तरिक आश्वासन है,
जिसका आश्रय क्लान्त पथिकके लिये एक लोकोत्तर अवलम्बन है,
जिसका वन्दन भ्रान्त पथिकके लिये एक आध्यात्मिक नवजीवन है।

तेरे आँचलकी निरपेक्षता अकल्पनीय है,

जो आश्रितोंसे कृतज्ञताकी अभिलाषा नहीं करती,
जो गुणज्ञोंसे आदरकी आशा नहीं करती,
जो स्वजनोंसे सराहनाकी अपेक्षा नहीं करती।

तेरे आँचलकी सदाशयता सदा प्रणम्य है,

जिसकी छायामें आलोचक-प्रशंसक समान रूपसे स्थान पाते हैं,
जिसकी छायामें परिचित-अपरिचित समान रूपसे सम्मानित होते हैं,
जिसकी छायामें साधु-असाधु समान रूपसे समादृत होते हैं।

तेरे आँचलके तन्तु-तन्तुकी बलिहारी है,

जिसके तार-तारमें प्रेमके प्रदर्शनकी भावना नहीं,
जिसके तार-तारमें प्रीतिके प्रतिदानकी कामना नहीं,
जिसके तार-तारमें प्यारके प्रचारकी कल्पना नहीं।

तेरे आँचलकी निकुञ्ज-भावना नित्य वन्दनीय है,

जिसका अवतार प्रियतमके प्यारकी जयकार है,
जिसका अभिसार प्रियतमके हृदयकी मनुहार है,
जिसका विस्तार प्रियतमके विहारकी झंकार है।

तेरे आँचलको — जी करता है — चूम लूँ,

जिसकी अरुणिमा स्नेहमें मूक बलिदानका पाठ है,
जिसकी फहरान स्नेहमें मूक उपासनाका गीत है,
जिसकी गाथा स्नेहमें मूक सेवाकी सीख है।

तेरे आँचलकी जय-जय क्यों न मनाऊँ,

जो अकल्पनीय महान है, पर जिसे अपनी महानताका अभिमान नहीं,
जो अतुलनीय सुन्दर है, पर जिसे अपनी सुन्दरताका अभिज्ञान नहीं,
जो अद्वितीय मधुर है, पर जिसे अपनी मधुरताका अनुमान नहीं।

वही आँचल मेरे लिये एक मात्र उपास्य है,
वही आँचल मेरे लिये एक मात्र वरेण्य है,
वही आँचल मेरे लिये एक मात्र आश्रय है।

वही आश्रय दे,
वही छाया दे,
वही स्नेह दे।

विनीत
राधेश्याम बंका

* * * * *

परिशिष्ट

समर्पणमूर्ति श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी

पूज्य बाबूजी (रस-सिद्ध-संत परम पूज्य श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) के नित्य-लीलामें लीन हो जानेके बाद 'कल्याण'के सम्पादनका भार जिनके ऊपर आया, उन समर्पण-मूर्ति पूज्य श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीके व्यक्तित्वकी गरिमाकी झलक प्रस्तुत कर सकना मेरी क्षमताके बाहर है। गोस्वामीजीके समर्पण-भावका जैसा स्वरूप और जो स्तर था, वह जब मन और बुद्धिके लिये ही अगम्य है, तब भला वाणी उसका वर्णन कैसे कर सकती है? उनके मनको, मस्तिष्कको और जीवनको क्षुद्रता अथवा अभद्रता कभी छलसे भी स्पर्श न कर सकी। 'मति अकुंठ हरि भगति अखंडा'के साकार रूप थे गोस्वामीजी।

श्रद्धेय श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी

पूज्य श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी एम.ए., शास्त्री, का जन्म सं.१९५७ वि. आषाढ़ कृष्ण ९ गुरुवार, २१ जून १९०० ई. को बीकानेरमें तैलंग ब्राह्मण कुलमें हुआ था। कई पीढ़ी पहले इनके पूर्वज दक्षिण भारतके तेलंगाना प्रदेशसे आकर राजस्थानके बीकानेर नगरमें बस गये थे। राजाश्रय मिलनेके कारण ही इनके पूर्वज बीकानेर आये थे। अब

तो तैलंग गोस्वामी-गणके अनेक परिवार बीकानेरमें बसे हुए हैं। भक्तिमती श्रीचन्द्रकलादेवी तथा श्रीव्रजलालजी गोस्वामीको इनके माता-पिता कहलानेका गौरव प्राप्त हुआ। सन् १९१६ में हाईस्कूलकी परीक्षा उत्तीर्ण करके आप वाराणसी चले आये और क्वीन्स कालेजमें अँगरेजी, दर्शन शास्त्र तथा संस्कृतका अध्ययन करने लगे। यहाँ पढ़ते समय महामहोपाध्याय पं.श्रीगोपीनाथजी कविराजका विशेष सामीप्य और संरक्षण मिला। क्वीन्स कालेजका अध्ययन पूर्ण करके आपने काशी हिन्दू विश्वविद्यालयसे सन् १९२२ में संस्कृतकी एम.ए. परीक्षा प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण की। तदुपरान्त कुछ समयके लिये आपने महामना पं.श्रीमदनमोहनजी मालवीयके निजी सचिवके रूपमें कार्य किया। वाराणसीसे बीकानेर वापस आनेके बाद चार वर्षतक प्रधानाध्यापकके रूपमें कार्य करते रहे। फिर छः वर्षोंतक बीकानेर राज्यके राजनैतिक विभागमें कार्य किया और राज्यके प्रधान दीवान आदरणीय श्रीमन्नूभाई शाहके निजी सचिव रहे।

सन १९२८ ई. के प्रारम्भमें गोस्वामीजीकी सर्व प्रथम भेंट पूज्य बाबूजीसे हुई। बाबूजीके भक्तिपूर्ण संत जीवनका परिचय देकर उनसे गोस्वामीजीकी भेंट करानेका श्रेय आदरणीय श्रीगम्भीरचन्दजी दुजारीको है। भगवन्नामके प्रचार तथा सत्संगके उद्देश्यसे विभिन्न स्थानोंमें भ्रमण करते हुए बाबूजी १३ जनवरी, १९२८ को बीकानेर पधारे थे। वहाँ बाबूजीके नेतृत्वमें नगर-संकीर्तनका आयोजन हुआ और उनका प्रवचन हुआ। गोस्वामीजीने यह प्रवचन सुना और उनका मन बड़ा प्रभावित हुआ। गोस्वामीजीका अध्ययन और ज्ञान विशद था। इस प्रवचनको सुनकर उन्हें लगा कि बाबूजी द्वारा जो कुछ भी कहा गया है, उसका आधार अनुभव है। मात्र पढ़ी-पढ़ायी अथवा सुनी-सुनायी बातोंके आधारपर ऐसा प्रवचन अथवा प्रतिपादन किया ही नहीं जा सकता।

इस प्रवचनको सुननेके बाद गोस्वामीजीका मन बाबूजीके प्रति आकृष्ट होने लगा। बाबूजी बीकानेरमें दो दिन तक रहे। इन दो दिनोंमें गोस्वामीजी बाबूजीके पास घंटों बैठे रहते तथा उनके साथ भगवद्विषयक चर्चा करते रहते। गोस्वामीजीके मनपर इस प्रथम समागमकी गहरी छाप पड़ी। इस छापके फलस्वरूप गोस्वामीजी लालसान्वित हो उठे कि बाबूजीके निकट सम्पर्कमें कुछ दिन रहना चाहिये। यह इच्छा बढ़ती ही चली गयी।

निकट सम्पर्ककी लालसा बहुत बढ़ जानेपर गोस्वामीजी सन् १९२९ ई. के ग्रीष्म कालमें बीकानेरसे गोरखपुर आये और बाबूजीके पास लगभग डेढ़ मास रहे। इस डेढ़ मासकी अवधिमें बाबूजीकी दिनचर्या और उनके जीवनको अति निकटसे देखनेका और उनके विचारोंको सतत सुननेका अवसर मिला। एक कहावत है– 'ज्यों-ज्यों कसे, त्यों-त्यों बसे'। गोस्वामीजी बाबूजीको जितना- जितना ही कसौटीपर कसते चले गये, उतना-उतना ही बाबूजी गोस्वामीजीके मनमें बसते चले गये। गोस्वामीजीको लगा कि बाबूजीका जीवन साधारण नहीं है। बाबूजीके भगवद्विषयक विचार, भगवत्सम्बन्धी अनुभव एवं भगवन्मय जीवन उनके असाधारण एवं लोकोत्तर व्यक्तित्वके परिचायक हैं। बाबूजीके लोकोत्तर व्यक्तित्वका प्रभाव गोस्वामीजीपर ऐसा पड़ा कि उन्होंने दस-पन्द्रह दिनके अन्दर ही एक महान् निर्णय ले लिया। वह निर्णय था सब कुछ छोड़कर बाबूजीके चरणोंके समीप रहनेका तथा शेष जीवन इन्हींकी छत्र-छायामें व्यतीत करनेका। यह जीवनका महत्त्वपूर्ण मोड़ था। अपने जीवनके सम्बन्धमें इस महत्त्वपूर्ण निर्णयको क्रियान्वित कर लेना सहज कार्य नहीं था। घरपर पूज्या माताजी और पूज्य पिताजी थे। उनकी आज्ञा अपेक्षित थी। डेढ़ मासके बाद गोस्वामीजी गोरखपुरसे बीकानेर वापस आ गये। बाबूजीके पास रहनेका जो निर्णय गोस्वामीजीने लिया था, तदनुसार कार्य करनेमें बड़ी कठिनाइयाँ आयीं, पर अध्यात्म-पथके सच्चे पथिकको भला कौन निश्चयसे विरत कर पाता है? सारी कठिनाईयोंको हल करते हुए सन् १९३३ ई. में गोस्वामीजी अपने संकल्पको पूर्ण कर पाये।

गोस्वामीजीके कोई सन्तान नहीं थी। वे अपनी धर्मपत्नीके सहित सन् १९३३ ई. में बीकानेरसे गोरखपुर चले आये स्थायी रूपसे रहनेके लिये। गोस्वामीजीका सहयोग पाकर बाबूजीको बहुत अधिक प्रसन्नता हुई। समाजमें भगवद्भक्ति एवं भगवन्नामका प्रचार करनेके लिये तथा जन-जीवनमें आध्यात्मिकता एवं नैतिकताकी प्रतिष्ठाके लिये बाबूजी सतत प्रयत्नशील थे और इस लक्ष्यकी ओर आगे बढ़नेके लिये अन्य अनेक साधनोंके साथ-साथ सबसे सशक्त सहायिका थी 'कल्याण' मासिक पत्रिका। 'कल्याण' मासिक पत्रिका केवल हिन्दीमें निकलती थी। गोस्वामीजीके शुभागमनसे अब अँगरेजी भाषामें भी एक मासिक पत्रिका

निकलने लगी। इसका नाम था 'कल्याण-कल्पतरु'। 'कल्याण-कल्पतरु'का भी उद्देश्य वही था, जो 'कल्याण'का था, बस, अन्तर केवल भाषाका था। गोस्वामीजी हिन्दी, संस्कृत एवं अँगरेजीके प्रकाण्ड पण्डित थे। इन तीनों भाषाओंके व्याकरणपर गोस्वामीजीका असाधारण अधिकार था।

गोस्वामीजीके सम्पादकत्वमें 'कल्याण-कल्पतरु'के निम्नलिखित विशेषांक प्रकाशित हुए।

१- The God Number (ईश्वरांक)
२- The Gita Number (गीतांक)
३- The Vedant Number (वेदांतांक)
४- The Krishna Number (श्रीकृष्णांक)
५- The Divine Name Number (भगवन्नामांक)
६- The Dharma Tattva Number (धर्म-तत्त्वांक)
७- The Yoga Number (योगांक)
८- The Bhakta Number (भक्तांक)
९- The Krishna Leela Number (श्रीकृष्णलीलांक)
१०- The Cow Number (गो-अंक)

उपरोक्त विशेषांक तो प्रकाशित हुए ही, इनके अतिरिक्त 'कल्याण-कल्पतरु'के विशेषांकके रूपमें श्रीगीता-तत्त्व-विवेचनी, श्रीरामचरितमानस, श्रीमद्भागवतमहापुराण तथा वाल्मीकि रामायणके अँगरेजी अनुवाद क्रमशः प्रकाशित होते रहे। खेदके साथ लिखना पड़ रहा है कि वाल्मीकि रामायणका अनुवाद पूर्ण करनेके पहले ही गोस्वामीजी हमारे बीचसे चले गये। वाल्मीकि रामायणके युद्ध काण्डका अँगेरजी अनुवाद कर चुकनेके बाद उन्होंने उत्तर काण्डका अनुवाद-कार्य अपने हाथमें लिया। उत्तर काण्डके लगभग एक-तिहाई अंशका अनुवाद वे कर पाये थे कि रुग्णताने उनको घेर लिया। यह अस्वस्थता उनके जीवनके लिये विघातक सिद्ध हुई। फिर तो उत्तर काण्डके शेष भागका अनुवाद हो ही नहीं पाया।

'कल्याण-कल्पतरु'का प्रकाशन सन् १९३४ ई. से प्रारम्भ हुआ था। गोस्वामीजी 'कल्याण-कल्पतरु' के प्रधान सम्पादक तो थे ही, 'कल्याण' हिन्दी मासिक पत्रिकामें भी बाबूजीको सहयोग देने लगे और

सन् १९३९ ई. से 'कल्याण'के सहायक सम्पादकके रूपमें उनका नाम छपने लगा। बाबूजीके नित्यलीलामें लीन हो जानेके उपरान्त 'कल्याण'के सम्पादनका कार्य-भार गोस्वामीजीपर ही आ गया। अब 'कल्याण' और 'कल्याण-कल्पतरु', दोनों पत्रिकाओंका कार्य गोस्वामीजीको सँभालना पड़ता था। गोस्वामीजीके सम्पादकत्वमें 'कल्याण' के तीन विशेषांक प्रकाशित हुए– श्रीरामांक, श्रीविष्णु-अंक और श्रीगणेशांक। सामग्री और सुसज्जा की दृष्टिसे ये तीनों विशेषांक ठीक वैसे ही थे, जैसे बाबूजीके सम्पादकत्वमें अनेक विशेषांक प्रकाशित होते रहे हैं। गोस्वामीजीके सम्पादकत्वमें भी 'कल्याण' की गौरवमयी परम्परा और आध्यात्मिक गरिमा अक्षुण्ण रही।

बाबूजीके महाप्रस्थानके उपरान्त 'कल्याण'के सम्पादनका भार सँभालनेपर उन्होंने जो निवेदन लिखा, उसमें उनके हृदयका एक अत्यन्त उज्ज्वल रूप देखनेको मिलता है। निवेदनमें उन्होंने लिखा था– "परम भागवत श्रीपोद्दारजीके पार्थिव देह त्यागकर नित्यलीलालीन हो जानेसे 'कल्याण'के सम्पादनका भार मेरे दुर्बल कंधोंपर आ पड़ा है, जिसे वहन करनेमें मैं अपनेको सर्वथा अक्षम अनुभव करता हूँ। अबतक तो 'कल्याण' का सारा भार श्रीपोद्दारजी अकेले ही वहन करते थे। मेरा नाम तो उन्होंने शीलवश मुझे प्रोत्साहन देने और मेरी सम्मानकी वासनाको पूर्ण करनेके लिये ही अपने गौरवशाली नामके साथ जोड़ दिया था। मेरे अन्दर न तो साधनाका बल है, न आध्यात्मिक अनुभव है, न त्याग है, न तप है, न दैवी सम्पदा है, न प्रौढ़ विचार है, न वैसा शास्त्रोंका अध्ययन एवं मनन है और न मेरी लेखनीमें ही शक्ति है। ऐसी दशामें 'कल्याण' जैसे पत्रके सम्पादकमें जैसी और जितनी योग्यता होनी चाहिये, उसका मैं अपने अन्दर सर्वथा अभाव देखता हूँ। 'कल्याण'की सेवाका मैं अपनेको सर्वथा अनधिकारी मानता हूँ। पर परम श्रद्धेय श्रीभाईजी जैसे परम स्वजनके प्रति अपने कर्तव्य-निर्वाहकी भावनासे 'कल्याण'के कार्यको किसी रूपमें सँभाल रहा हूँ। वास्तवमें 'कल्याण'के कार्यको मैं श्रीभाईजी द्वारा ही किया हुआ अनुभव करता हूँ। पद-पदपर वे अपने चिन्मय रूपसे इसकी सँभाल करते हैं, अन्यथा मुझ जैसे अयोग्य, अल्पज्ञ, साधनहीन तुच्छ व्यक्तिद्वारा यह महान कार्य सम्पन्न होना सर्वथा असम्भव है। मैं स्वयं आश्चर्यचकित हूँ कि कैसे क्या कार्य

हो जाता है। उनकी पद-पदपर सँभालको देखते हुए मनको विश्वास नहीं होता कि श्रीभाईजी 'कल्याण'से पृथक् हो गये हैं। मैं तो यह मानता हूँ कि 'कल्याण' उनका है और वे 'कल्याण' के हैं, या यों कहें कि वे 'कल्याण' स्वरूप ही हो गये हैं। हमारा विश्वास ही नहीं, अनुभव है कि श्रीभाईजी परोक्ष रूपमें आज भी 'कल्याण' को सँभाल रहे हैं और इसी कारण इसका कार्य सुचारु रूपसे चल रहा है।''

'कल्याण' पत्रिकाके सम्पादन-कार्यको सँभालते समय भी गोस्वामीजीकी यही मान्यता थी कि पत्रिका-सम्पादनका कार्य सम्पन्न हो रहा है मेरे द्वारा नहीं, अपितु उनके (अर्थात् बाबूजीके) द्वारा, भले ही यह सम्पन्नता परोक्ष रूपसे ही रही हो। समर्पणका जैसा आदर्श गोस्वामीजी महाराजने उपस्थित किया, वह सर्वथा अनुपम है।

'कल्याण-कल्पतरु' और 'कल्याण' पत्रिकाओंके कार्यसे अलग गोस्वामीजीने भक्तकवि सूरदासजीके भ्रमर-गीतके कई सौ पदोंका हिन्दीमें अर्थ लिखा। २७० श्लोकोंवाली 'श्रीराधा-सुधा-निधि' ग्रन्थके पदच्छेद-अन्वय-अर्थसहित टीकाके सम्पादनका कार्य भी गोस्वामीजीद्वारा सम्पन्न हुआ। गीताप्रेससे संस्कृत एवं अँगरेजी भाषाका जितना साहित्य, चाहे पत्रिकाके रूपमें अथवा पुस्तकके रूपमें छपता, उसकी शुद्धि एवं प्रामाणिकताका अधिकांश श्रेय गोस्वामीजीके परिश्रमको है।

श्रीरामचरितमानसके बारेमें अब तो यह बात प्रायः कही-सुनी जाती है कि यदि इस ग्रन्थकी रचनाका श्रेय गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीको है तो इस ग्रन्थको नगर-नगर, ग्राम-ग्राम पहुँचानेका श्रेय गीताप्रेसके माध्यमसे बाबूजीको है। गीताप्रेससे श्रीरामचरितमानसको प्रकाशित करनेके पहले बाबूजीने मानस पाठका संशोधन गोस्वामीजीसे करवाया। गोस्वामीजीको इस संशोधन-कार्यमें महत्त्वपूर्ण सहयोग मिला हिन्दीके विद्वान श्रीनन्ददुलारेजी वाजपेयीसे। फिर स्वयं बाबूजीने मानसका हिन्दीमें अर्थ लिखा। मलिहाबाद स्थित मानसकी प्रति, राजपुर स्थित अयोध्या काण्डकी प्रति, दुलही ग्राम स्थित सुन्दर काण्डकी प्रति, श्रावण कुञ्ज (अयोध्या) स्थित बालकाण्डकी प्रति, गोलाघाट (अयोध्या) स्थित मानसकी प्रति तथा और भी कुछ प्रतियाँ, इन सभी प्रतियोंका तुलनात्मक अध्ययन करके ही गोस्वामीजीने मानसका पाठ संशुद्ध किया था। आज गीताप्रेससे मानसका जो पाठ प्रकाशित हो रहा है, उसे प्रस्तुत किया गोस्वामीजीके

अध्ययनशील व्यक्तित्वने ही।

गोस्वामीजी अनुवाद एवं सम्पादनके कार्यमें अधिक व्यस्त रहा करते थे, अतः कई-कई दिनतक वे बाबूजीसे मिल नहीं पाते थे। बाबूजीके सेवा-परायण नित्य परिकर भाई श्रीकृष्णचन्द्रजी अग्रवालको यह प्रिय नहीं लगा। एक दिन भाई श्रीकृष्णचन्द्रजीने गोस्वामीजीसे कहा— आपको दिनमें कम-से-कम एक बार बाबूजीके पास जाना चाहिये। न जाने कितने लोग दूर-दूरके स्थानोंसे मिलनेके लिये आते हैं और आप यहाँ रह करके भी बाबूजीसे नहीं मिलते?

गोस्वामीजीने मधुर स्वरमें उत्तर दिया— यदि मैं मिलने जाता हूँ तो कम-से-कम आधा घंटा समय लग ही जायेगा। इस आधे घंटेका उपयोग यदि मैं उनके बतलाये हुए कार्यको करनेमें लगाऊँ तो कितना सुन्दर हो? उनके द्वारा निर्दिष्ट कार्य पहले ही पूरा नहीं हो पाता। यदि मैं प्रतिदिन उनके पास जाने लगूँ तो जानेसे उनके कार्यकी ही हानि होगी। मैं अपने मनकी बात कैसे समझाऊँ? उनका दर्शन और उनका सामीप्य कौन नहीं चाहता? उनके दर्शन और संभाषणसे मुझे बड़ा सुख मिलेगा, परंतु इस सुखसे अधिक सुखप्रद है उनकी आज्ञाका पालन। मेरी आन्तरिक चाह है कि उनका कार्य पूर्ण हो।

गोस्वामीजीके उत्तरको सुनकर भाई श्रीकृष्णचन्द्रजी मौन हो गये। क्रमशः गोस्वामीजीपर कार्य-भार अधिकाधिक बढ़ता ही चला जा रहा था। उनके कार्यमें कुछ सहारा दे देनेकी भावनासे एक बार श्रीमद्भागवतमहापुराणके कुछ अध्यायोंका अँगरेजीमें अनुवाद एक विख्यात विद्वानसे करवाया गया। उस अँगरेजी अनुवादमें गोस्वामीजीको कई न्यूनताएँ दिखलायी दीं। श्लोकके मध्यमें जहाँ 'च', 'तत्', 'ह', 'हि', 'एव', 'वा', 'बत', 'अपि', 'इव', 'अथ', 'इति' आदि शब्द आते हैं, इन शब्दोंके प्रयोगके बारेमें अच्छे-अच्छे विद्वानोंकी कुछ-कुछ ऐसी धारणा है कि कई बार तो इन शब्दोंको काव्य-रचना पूर्ण करनेके लिये श्लोकोंमें भर दिया गया है। गोस्वामीजीकी अति सुदृढ़ मान्यता यह थी कि इन शब्दोंको पाद-पूरणार्थ-प्रयोगके रूपमें सोचना अपनी अल्पज्ञताका परिचय देना है। इतना ही नहीं, इससे

यह भी ध्वनित होता है कि ऐसे टिप्पणीकर्ता विद्वान्, जो इन शब्दोंका प्रयोग पाद-पूर्तिके रूपमें देखते हैं, वे पुराणों-जैसे विशाल वाङ्मयके रचयिता वेदव्यासजीको ऋषि-दृष्टि-सम्पन्न द्रष्टा-कवि नहीं मानकर मात्र एक श्रेष्ठ कवि मानते हैं। वास्तविकता यह है कि श्रीमद्भागवतमहापुराणके एक-एक शब्दमें अर्थ-गाम्भीर्य है और उस अर्थ-गाम्भीर्यकी गहराईतक पहुँच न होनेके कारण ही इस प्रकारके हलके अभिमत भागवतकारके प्रति व्यक्त कर दिये जाते हैं। ऐसी भ्रान्त धारणाओंके फलस्वरूप जो अर्थ-दोष उस अनुवादमें थे, उन सबको गोस्वामीजीने बाबाको दिखलाया। बाबाका भी मत वही था, जो गोस्वामीजीका था। बाबा तो श्रीमद्भागवतमहापुराणके एक-एक शब्दको महत्त्वपूर्ण मानते हैं और उन्हें देर नहीं लगी गोस्वामीजीके कथनको समझनेमें। उस अँगरेजी अनुवादमें व्याप्त अर्थ-दोषवाली बात बाबाके भी ध्यानमें भली प्रकारसे आ गयी। फिर उन विख्यात विद्वान द्वारा कृत अँगरेजी अनुवादको आलमारीमें सुरक्षित रख देनेके लिये कहकर बाबाने गोस्वामीजीसे निवेदन किया— गोस्वामीपाद! आपपर कार्य-भार अवश्य ही अधिक है, किंतु जगतके समक्ष प्रामाणिक अनुवाद रखनेके लिये यह अनुवाद-कार्य आप ही पूर्ण करें।

और यह अनुवाद-कार्य गोस्वामीजीद्वारा सम्पन्न हुआ। बाबा गौरवमयी वाणीमें कई बार कहा करते हैं कि अपने आर्ष ग्रन्थोंका ऐसा प्रामाणिक और आधिकारिक अँगरेजी अनुवाद अभीतक मेरे देखनेमें नहीं आया। गोस्वामीजीके अनुवाद-कौशलकी गरिमाको देश-विदेशके अच्छे-अच्छे विद्वानोंने उन्मुक्त मनसे स्वीकार किया है।

प्राच्य पुरातन विद्या विशारद डा. श्रीविश्वम्भरशरणजी पाठकके विचारानुसार गोस्वामीजीने भारतीय धर्म-ग्रन्थोंके अँगरेजी अनुवादके कार्यमें महान आदर्शकी प्रतिष्ठा की है। हिन्दू धर्म-ग्रन्थोंका अँगरेजीमें अनुवाद करनेवाले आजतक जितने भी विद्वान हुए हैं, चाहे वे किसी काल अथवा देशके हों, उन सबको गोस्वामीजीने पीछे छोड़ दिया है। वेदोंके महापण्डित कहलानेवाले श्रीमैक्समूलर महोदय, इसी प्रकार अनुवाद-कार्यके क्षेत्रमें अमेरिकी विद्वान मारिस ब्लूमफील्ड, जर्मन विद्वान गेल्डनर, भारतीय विद्वान आनन्दकुमार स्वामी, कोई भी गोस्वामीजीकी गरिमाका स्पर्श करनेमें वस्तुतः समर्थ नहीं है।

गोस्वामीजीकी मान्यता रही है कि साहित्य-क्षेत्रके काव्यों और धर्म-क्षेत्रके काव्योंके अनुवादकी शैलीमें अन्तर होना चाहिये और इस अन्तरका हेतु यही है कि धर्म-काव्योंमें प्रत्येक शब्दकी प्रयोग-पद्धति और प्रत्येक वाक्यकी रचना-शैलीके पीछे एक विशेष प्रयोजन है। अध्यात्म-साधना और शब्द-साधना, इन दोनों साधनाओंसे गोस्वामीजीका जीवन परिपूर्ण था, इसीके फलस्वरूप उन्हें इस विशेष प्रयोजनकी जानकारी हो सकी। हिन्दू धर्मके आर्ष वाङ्मयका अँगरेजी भाषामें प्रामाणिक अनुवाद किस पद्धतिसे होना चाहिये, इसपर गोस्वामीजीने गम्भीरतापूर्वक विचार किया और उस चिन्तन-नवनीतको उन्होंने कार्य-रूपमें प्रतिफलित भी कर दिखलाया।

एक बार बाबाने बाबूजीकी एक कृतिका एक श्रेष्ठ विद्वानसे संस्कृतमें अनुवाद करवाया। वह अनुवाद ठीक लगनेके बाद भी बाबाने उस संस्कृत अनुवादको देखनेके लिये गोस्वामीजीके पास भेज दिया। उस संस्कृत अनुवादमें एक प्रयोगके सामने प्रश्नवाचक चिह्न लगाकर गोस्वामीजी बाबाके पास आये। गोस्वामीजीने वह प्रयोग दिखलाते हुए बाबासे कहा— मेरी अल्प समझके अनुसार यह प्रयोग सही नहीं लग रहा है।

बाबाको वह प्रयोग सही लग रहा था। बाबा द्वारा पूछे जानेपर गोस्वामीजीने अपने पक्षमें कुछ कारण बतलाये। जब कुछ निर्णीत नहीं हो सका तो यह तय हुआ कि किन्हीं प्रौढ संस्कृत वैयाकरणको बुलाकर इस प्रयोगके विषयमें निर्णय लिया जाये। गोरखपुरकी एक संस्कृत पाठशालाके व्याकरणाचार्यको बुलवाया गया। उनको सब बात समझानेमें ही आधा घंटा लग गया। सब समझ करके भी वे अपना निर्णय नहीं दे पाये। फिर गीताप्रेसमें कार्य करनेवाले एक पण्डितजीको बुलवाया गया, जो व्याकरणके विशेषज्ञ माने जाते थे। वे व्याकरण- विशेषज्ञ दोनों पक्षोंकी बातको सुनकर भी कोई समाधान नहीं दे पाये। फिर यह सोचा गया कि वाराणसीसे किसी व्याकरण-मर्मज्ञको बुलवाकर निर्णय करवाया जाये। जब बात बढ़ते-बढ़ते यहाँतक आ गयी तो गोस्वामीजीने कहा— क्यों किसीको बुलवाया जाये ? हमलोग परस्परमें विचार करके स्वयं निर्णय कर लें।

बाबा और गोस्वामीजीके मध्य यह विचार-विनिमय तीन दिनतक चलता रहा। यह एक प्रकारका मधुर शास्त्रार्थ था। दोनों पक्ष उस प्रयोगके औचित्य-अनौचित्यपर अपने-अपने तर्क प्रस्तुत कर रहे थे। फिर यह तय हुआ कि श्रीभट्टोजी दीक्षित द्वारा प्रणीत व्याकरण-ग्रन्थको देखना चाहिये। उस

व्याकरण-ग्रन्थमें दोनों ही बातें दी गयी थीं और दोनों प्रकारके प्रयोगोंको सही ठहराया गया था। अब तो कोई प्रश्न ही शेष नहीं था। इस व्याकरणग्रन्थने दोनों पक्षोंको पूर्ण सन्तुष्ट कर दिया। दोनों पक्षोंका समाधान होते ही बाबाने तत्काल गोस्वामीजीकी मान्यताको आदर दिया और उस संस्कृत अनुवादमें गोस्वामीजीके कथनानुसार प्रयोगको ठीक कर दिया।

इस प्रसंगको सुना करके बाबा कई बार गोस्वामीजीके बारेमें कहा करते हैं कि व्याकरणकी गहराईमें उनकी पैठ और स्व-पक्षको प्रतिपादित करनेकी उनकी योग्यता अनोखी थी। इधर तो बाबा इस प्रकार कहा करते थे और उधर यदि कोई शब्द-प्रयोग गोस्वामीजीके लिये कदाचित् विचारणीय बन जाता था तो वे उस सम्बन्धमें विचार एवं विवेचन करनेके लिये बाबाके पास आया करते थे।

इतने महान विद्वान होकर भी गोस्वामीजी स्वयं अमानी रहकर दूसरोंको सम्मान देनेमें सदैव तत्पर रहा करते थे। एक बार इसका बड़ा सुन्दर प्रसंग देखनेको मिला। घटना सम्भवतः सन् १९६३ ई. की है। बर्तन माँजनेवाले, फूल- पौधोंकी सँभाल करनेवाले, इस स्तरके जितने भी सेवक गीतावाटिकामें थे, उन सभीके भोजनका विशद आयोजन बाबाकी प्रेरणासे हुआ। सेवकोंमें बाबाका भगवद्भाव था और इसी भावसे यह कार्यक्रम आयोजित हुआ था। सभी सेवकोंको पहननेके लिये नवीन वस्त्र दिया गया और सभीको वाटिकाके बड़े-बड़े लोगोंने परोस-परोस करके भोजन करवाया। सेवकोंके भोजन कर लेनेके बाद ही घरवालोंने प्रसाद-भावसे भोजन किया। इस कार्यक्रममें बाबाने यह निर्धारित किया था कि सभी सेवकोंके चरण भोजनके पूर्व धोये जायँ और पाद-प्रक्षालनका यह कार्य गोस्वामीजीके द्वारा सम्पन्न हो। ज्यों ही यह बात बाबाने गोस्वामीजीसे कही, त्यों ही गोस्वामीजीने इसे अपना परम सौभाग्य माना। यह भावना उनके मनमें स्फुरित ही नहीं हुई कि मैं विद्वान सम्पादक हूँ, अथवा मैं आचार-निष्ठ भक्त हूँ, अथवा मैं गोस्वामि-कुलोद्भूत ब्राह्मण हूँ, अथवा मैं एक प्रौढ़ व्यक्ति हूँ, अपितु पाद-प्रक्षालनके कार्यके लिये स्वयंका चयन होना बाबाके अमाप्य प्यारका परिचायक माना। जब सेवकोंका यह बात ज्ञात हुई तो उन्होंने बाबासे प्रार्थना की— बाबा! ऐसा कार्य नहीं होना चाहिये, जो हमलोगोंको बहुत भारी पड़े। गोस्वामीजी महाराज हमलोगोंके लिये पूज्य हैं और प्रणम्य हैं, फिर क्या हमलोगोंके लिये सह्य होगा कि वे हमारे पैरोंका स्पर्श करें?

सभी सेवकोंद्वारा ऐसा कहे जानेपर पाद-प्रक्षालनका कार्य

गोस्वामीजीद्वारा नहीं हो पाया, परंतु वे तो पूर्णरूपेण प्रसन्न मनसे प्रस्तुत थे।

सन् १९५९ ई. के आस-पास एकबार बाबाने गोस्वामीजीके पास एक संदेश भिजवाया। इस संदेशको सूचना कहना चाहिये। सूचना यह थी कि बीकानेरनरेश महाराजाा श्रीगंगासिंहजीका लीला-प्रवेश हो गया है। जब गोस्वामीजी बीकानेरके प्रशासन-विभागमें कार्य करते थे तो उनका महाराजा श्रीगंगासिंहजीसे निकट सम्पर्क रह चुका था। इस सूचनाको पाकर गोस्वामीजीको आनन्द हुआ, परंतु आनन्दसे अधिक आश्चर्य हुआ। आश्चर्य हुआ यह सोचकर कि उनका निधन तो कई वर्ष पहले हो चुका था और श्रीराधाकृष्णके लीला-राज्यमें उनका प्रवेश अब हुआ और यह हुआ तो किस पुण्य अथवा साधना अथवा कृपाके फलस्वरूप हुआ? गोस्वामीजीको ज्ञात था कि महाराजा श्रीगंगासिंहजी तो राजसी ठाट-बाटके मध्य जीवन व्यतीत करनेवाले मात्र एक श्रेष्ठ हिन्दू नरेश थे। गोस्वामीजीने अपने आश्चर्यको व्यक्त किया तो बाबाने बतलाया कि महाराजा श्रीगंगासिंहजीको अपनी किसी साधनाके फलस्वरूप यह स्थिति प्राप्त नहीं हुई, अपितु यह तो वस्तुतःश्रीपोद्दार महाराजसे होनेवाले सम्पर्क एवं सम्बन्धका सुन्दर परिणाम था। इस तथ्यको सुनकर गोस्वामीजीकी बाबूजीके प्रति आन्तरिक श्रद्धा-भावना कितनी पुष्ट और प्रफुल्ल हुई होगी, यह कल्पनासे परेकी बात है।

गोस्वामीजी गीताप्रेससे प्रकाशित होनेवाले 'कल्याण' और 'कल्याण-कल्पतरु'के सम्पादकीय विभागमें कार्य करते थे केवल सेवा-भावसे भावित होकर। द्रव्यार्जनका उद्देश्य तो रंचमात्र भी नहीं था। इसके बाद भी गीताप्रेसकी ओरसे जीवन-निर्वाहके लिये यत्किंचित् मिलता ही था। जो मिलता था, वह वस्तुतः यत्किंचित् ही था और इससे पूज्या चाचीजी (पूज्य गोस्वामीजी धर्मपत्नी) को गृहस्थ-जीवनकी व्यवस्थामें कठिनाई झेलनी पड़ती थी। चाचीजीके स्वभावमें व्यावहारिकता अधिक थी और वैसा माधुर्य नहीं था, जैसा गोस्वामीजीके व्यक्तित्वमें था। चाचीजीके रुक्ष व्यवहारसे गोस्वामीजीका मन कभी-कभी खिन्न हो जाया करता था। बाबा चाचीजीको अपनी माँके समान आदर एवं स्थान दिया करते थे। एक बार बाबाने गोस्वामीजीसे कहा— गोस्वामीपाद! आपसे एक निवेदन है। आपकी धर्मपत्नीके प्रति मेरे मनमें मातृ-भाव है। वह बाबाकी माँ है, ऐसा मानकर उसपर शासन नहीं करना चाहिये। उसकी कोई चेष्टा आपको अप्रिय लगती हो तो उसे सहन कर लेना

चाहिये।

बाबाद्वारा ऐसा कह दिये जानेके बाद गोस्वामीजीने फिर कभी चाचीजीपर शासन किया ही नहीं। सचमुच, गोस्वामीजी जैसा समर्पण-भाव होना कठिन ही है।

गोस्वामीजीका आचार-विचारपर बड़ा ध्यान रहा करता था। एक बार गोस्वामीजी गीताप्रेस गये। गीताप्रेसके मैनेजर श्रीदुर्गाप्रसादजी गुप्त अपने कार्यालयमें कुर्सीपर बैठ हुए थे। श्रीदुर्गा बाबूसे गोस्वामीजीको मिलना था। कमरेमें प्रवेश करनेके पूर्व गोस्वामीजी अपने पैरोंमेंसे कपड़ेवाला जूता निकालने लगे। श्रीदुर्गा बाबूने कहा— आप जूता क्यों निकाल रहे हैं? मेरे इस कमरेमें तो सभी लोग जूता पहने हुए ही आते हैं।

गोस्वामीजीने कहा— मुझे यह अच्छा नहीं लगता कि जहाँ लिखने-पढ़ानेका सात्त्विक कार्य हो रहा हो, वहाँ जूता पहने रहा जाये अथवा जूता पहने हुए ही उस कमरेमें प्रवेश किया जाये। भले ही लोग जूता पहने हुए आपके कमरेमें जाते हों, परंतु मुझे यह रुचिकर नहीं।

श्रीदुर्गा बाबूके द्वारा निवारण किये जानेके बाद भी गोस्वामीजी जूता निकाल कर ही उनके कमरेमें गये।

वंशानुवंश-परम्परासे गोस्वामीजीके परिवारमें श्रीवल्लभ-सम्प्रदायका ही आनुगत्य रहा है। वल्लभ-कुलीय होनेके कारण गोस्वामीजीके जीवनमें शौचाचार एवं स्पर्शास्पर्शका बड़ा स्थान था। गोस्वामीजी सदा अपने घरपर ही भोजन किया करते थे। कहीं अन्यत्र भोजन करनेका प्रश्न ही नहीं था। बस, एक अपवाद था। वह था बाबूजीके घरका प्रसाद। बाबूजीके घरकी प्रत्येक वस्तु गोस्वामीजीको ग्राह्य थी। शौचाचारसे सम्बन्धित एक सरस प्रसंग उस समयका है, जब तीर्थ-यात्रा-ट्रेन मथुरा स्टेशनपर ठहरी हुई थी। बाबाके निर्देशके अनुसार ठाकुर श्रीघनश्यामजी बरसानेके एक प्रच्छन्न प्रेमी भक्तके घरसे भिक्षा-प्रसाद ले आये और बाबाको दे दिया। बाबाने कण-मात्र स्वीकार करके वह भिक्षा-प्रसाद पा लेनेके लिये गोस्वामीजीको दे दिया। गोस्वामीजीका नित्य-नियम अभी सम्पन्न नहीं हुआ था और इतना ही नहीं, स्पर्शास्पर्श-निष्ठाकी प्रबलताके कारण हर वस्तु ग्राह्य भी नहीं थी। इन दोनों बातोंके होते हुए भी गोस्वामीजीने बिना विचार किये हुए भिक्षा- प्रसादको पा लिया, केवल इसीलिये कि बाबाने पा लेनेके लिये कह दिया है। ऐसा

समर्पण-भाव था गोस्वामीजीका बाबा तथा बाबूजीके प्रति।

अपने समर्पित जीवनके कारण गोस्वामीजी बाबूजीके परिवारके एक ऐसे अभिन्न अंग बन गये थे कि परमादरणीया बाई (श्रीसावित्रीबाई फोगला) उनको चाचाजी कहती थी और बाईकी चारों सन्तानें उनको नानाजी कहती थीं। बाईके प्रति तथा बाईके बालकोंके प्रति गोस्वामीजीके मनमें अत्यधिक दुलार था। बाबूजीके चले जानेके बाद गोस्वामीजीका वात्सल्य इन बालकोंके प्रति और भी अधिक उमड़ पड़ा था।

ग्रीष्मकालमें बाबा तथा बाबूजी स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश) जाया ही करते थे। उस समय गोस्वामीजी गीतावाटिकामें रहा करते थे। पीछे एक वरिष्ठ व्यक्तिको रहना ही चाहिये गीतावाटिकाकी सँभालके लिये। केवल सँभाल ही नहीं, 'कल्याण-कल्पतरु' के सम्पादन-कार्यको पूरा करनेके लिये। बस, गोस्वामीजीको गीतावाटिकाका दायित्व सँभलाकर बाबूजी बाबाके साथ स्वर्गाश्रम चले जाया करते थे। एक बार कोई ऐसा आवश्यक कार्य आ गया कि गोस्वामीजीको स्वर्गाश्रम जाना पड़ गया। गोस्वामीजी प्रातःकाल आठ-नौ बजे बाबूजीके पास डालमिया कोठी पहुँचे। पहुँचनेपर शौच-स्नानके उपरान्त बाबूजीसे आवश्यक बातचीत हुई। इसके बाद बाबूजीने कहा— आप आज ही अपराह्नकालमें गोरखपुर वापस चले जायें।

भोजनके बाद गोस्वामीजी गोरखपुर वापस जानेकी तैयारीमें लग गये। ज्यों ही बाईको पता चला कि चाचाजी तो वापसी यात्राकी तैयारीमें लगे हैं, उसे बड़ा बुरा लगा। कितने वर्षोंके बाद तो गोस्वामीजीका आना हुआ और न जाने कितने मिलनेवाले, दर्शन करनेवाले लोग होंगे? फिर यह भाग-दौड़ भी क्या कोई भली बात है कि आये और तुरंत चल दिये? बेटी होनेके नाते पिताजीसे हठ करनेका अधिकार बाईको सदा था, सदा है और यह प्रीति-कलह भी कैसा मधुर है कि बेटीके बाल-हठके सामने बाबूजीको झुकना पड़ा। बाबूजीने गोस्वामीजीको रोक लिया। फिर गोस्वामीजी कई दिन स्वर्गाश्रममें रहे, पर अपनी ओरसे कोई इच्छा नहीं। बाबूजीने वापस जानेके लिये कहा तो मनसे पूर्णतः तैयार और ठहर जानेके लिये कहा तो उसके लिये भी भीतरसे वैसी ही तैयारी। गोस्वामीजीका न चले जानेसे प्रयोजन था और न ठहर जानेसे प्रयोजन। बस, प्रयोजन है तो इतना ही है कि तुम संचालन करो और तुम्हारे संकेतपर यह जीवन परिचालित रहे। गोस्वामीजीका जीवन-सूत्र था— ''वंशीवत् जीवनको खाली कर देना ही समर्पणकी सीमा है। अपना स्वर

अपने राग अपनी चाह कुछ नहीं, प्यारेकी जैसी इच्छा''।

गोस्वामीजीका कण्ठ बड़ा सुरीला था। वृद्धावस्थामें भी उनके गायनका लालित्य बना रहा। गीतावाटिकामें प्रायः प्रतिदिन ही बाबूजीका प्रवचन एक घंटे प्रातःकाल हुआ करता था। बादके वर्षोंमें तो गोस्वामीजीको समय कम मिला करता था, परंतु गीतावाटिकाके आरम्भिक वर्षोंमें इस प्रवचनके पूर्व गोस्वामीजी एक भक्ति-पदका गायन किया करते थे। जब तीर्थ-यात्रा-ट्रेन गयी थी, तब उस ट्रेनमें बाबूजीके साथ गोस्वामीजी भी गये थे। जहाँ-जहाँ ट्रेन पहुँचती थी, वहाँ- वहाँ बाबूजीका स्वागत होता था और उपस्थित भक्तोंके मध्य बाबूजीको प्रवचन भी देना पड़ता था। वहाँ भी गोस्वामीजी प्रवचनके पूर्व पद गाया करते थे।

एकान्तवास और स्वास्थ्य-लाभकी दृष्टिसे बाबूजी सन् १९३९ से १९४५ तक रतनगढ़में रहे थे। वहींपर 'कल्याण' और 'कल्याण-कल्पतरु' का सम्पादकीय विभाग भी था। बाबा भी बाबूजीके साथ थे और उनका मौन व्रत चल रहा था। इन्हीं दिनोंकी बात है। बाबा तथा बाबूजी और कुछ निकटवर्ती जन बैठे हुए थे। उसी समय गोस्वामीजीने अपने सुललित कण्ठसे श्रीरासपञ्चाध्यायीका गोपीगीत 'जयति तेऽधिकम्' गाया। गायनका माधुर्य अपनी सीमापर था। सम्पादकीय विभागके एक सदस्य आदरणीय श्रीमधुरजी साथ-साथ वीणा बजा रहे थे। उनकी मयूर वीणाकी झंकृतिने उस माधुर्यको महामाधुर्यमय बना दिया। उस माधुर्यका बाबूजी और बाबापर ऐसा प्रभाव पड़ा कि दोनों अत्यधिक विभोर हो उठे। बाबूजीकी विभोरता गम्भीर थी और वे बहुत अधिक अन्तर्मुख हो गये। बाबाकी विभोरता उच्छलित थी और वे भाव-विभोर होकर व्यथापूर्ण हृदयसे सकरुण वाणीमें 'राधा-राधा' बोलने लगे, अपितु पुकारने लगे। एक विचित्र प्रकारके भावसे पूर्ण हो उठा था उस स्थानका वातावरण। रतनगढ़के वे लोग सौभाग्यशाली थे, जो उस अवसरपर उपस्थित थे और इस प्रकार सौभाग्यशाली बननेका अवसर अन्तरंग जनोंको कई बार मिल जाया करता था। बाबाकी रुचि देखकर इस प्रकारके एकान्त गायनका आयोजन रतनगढ़की हवेलीके एकान्त क्षणोंमें कई बार हुआ है।

बाबाने सन् १९५६ ई. में कठोर मौन व्रत लिया था। मौन लेनेके पहले बाबाने गोस्वामीजीसे कहा था— रात्रिमें जब भी आपको अवकाश मिले, आप मुझे व्रज भावके पद सुना दिया करें। भले आप एक ही पद

सुनायें, पर प्रति-रात्रि मेरी कुटियाकी दक्षिण दिशामें स्थित पगडंडीपर टहलते हुए सुनाया करें।

गोस्वामीजी द्वारा पद सुनानेका क्रम अखण्ड रूपसे चलता रहा। इसमें विराम आया तब, जब सवा मास बाद बाबा-बाबूजी गोरखपुरसे रतनगढ़ चले गये।

सम्भवतः सन् १९५९ ई. की बात होगी। गीतावाटिकामें बाबूजीका प्रवचन नित्यप्रतिके नियमके अनुसार प्रातःकाल होनेवाला था। उस दिन गोस्वामीजी भी प्रवचनमें आये थे। इन दिनों गोस्वामीजी प्रायः प्रवचन- कार्यक्रममें नहीं आ पाते थे। कार्यकी अधिकताके कारण अवकाश कम मिल पाता था, परंतु कभी-कभी तो आते ही थे। ज्यों ही बाबूजीने श्रोताओंके सामने आसन ग्रहण किया, गोस्वामीजीसे पद गानेके लिये अनुरोध किया गया। गोस्वामीजीने बाबूजी द्वारा रचित पद गाना आरम्भ किया।

मेरी इस विनीत विनतीको सुन लो, हे व्रजराजकुमार!
युग-युग, जन्म-जन्ममें मेरे तुम ही बनो जीवनाधार।।
पद-पंकज-परागकी मैं नित अलिनी बनी रहूँ, नँदलाल!
लिपटी रहूँ सदा तुमसे मैं, कनकलता ज्यों तरुण तमाल।।
दासी मैं हो चुकी सदाको, अर्पणकर चरणोंमें प्राण।

इस पाँचवी पंक्तिको गाते-गाते गोस्वामीजीकी स्थिति कुछ दूसरी ही हो गयी। अन्तरकी विह्वलताने कण्ठको अवरुद्ध कर दिया। स्वर-भंगको सँभालनेकी चेष्टा उन्होंने की, पर वह असफल प्रयास था। अश्रु-प्रवाहने पूर्ण स्वरावरोध उत्पन्न कर दिया था। क्या बाबूजी और क्या श्रोतागण, सभी उपस्थित लोग गोस्वामीजीकी उस विह्वलताके प्रवाहमें डूब-उतरा रहे थे। वह पद क्या था, उस पदमें गोस्वामाजीके समर्पित जीवनकी भावनाएँ मुखरित थीं। बाबूजी मौन, श्रोतागण मौन और गोस्वामीजी भी मौन; सारे वातावरणमें मौन परिव्याप्त हो रहा था। उस नीरवताको अपने गायनसे पुनः गुञ्जित करनेका एक अल्प प्रयास किया गोस्वामीजीने। उन्होंने गानेके लिये वह पाँचवीं पंक्ति पुनः उठायी, पर पुनः वे गा न सके। पुनः वातावरणमें नीरवता परिव्याप्त हो गयी। चौदह पंक्तिवाले इस पदकी केवल चार पंक्तियाँ ही गायी जा सकीं, शेष अन-गायी ही रह गयीं। तब बाबूजीने अपना प्रवचन आरम्भ किया और आज उस प्रवचनका विषय था– वृषभानुनन्दिनी कृष्णप्रिया श्रीराधाका मूक समर्पण।

गोस्वामीजीकी भाव-विभोरताका एक और उल्लेखनीय सरस प्रसंग

स्मृति- पथपर उभर रहा है। 'कल्याण'के भावी विशेषांक श्रीरामांकके लिये आये हुए लेखोंका सम्पादन-कार्य चल रहा था। एक लेख भगवती श्रीसीतापर था। वह लेख पढ़कर गोस्वामीजीको सुनाया जा रहा था। लेखको सुनते-सुनते गोस्वामीजी इतने अधिक भाव-भरित हो उठे कि उनके नेत्रोंके अश्रु झर-झर करके कपोलोंपर प्रवाहित होने लग गये। उन्हें विस्मृत हो गया कि मैं सम्पादकीय-विभागके कमरेमें बैठा हुआ हूँ। तुरंत लेखका सुनाना बन्द कर दिया गया और उन्हें कमरेके एकान्तमें छोड़कर धीरेसे दोनों कपाट सटा दिये गये।

सन् १९६१ ई. के ग्रीष्म ऋतुकी बात होगी। बाबूजी रातको गोस्वामीजीसेश्रीराधाकृष्णकी लीलाके पद सुना करते थे। अधिकांश बार ये पद बाबूजीके स्वरचित हुआ करते थे। इन पद-गोष्ठियोंमें कीर्तनिया श्रीहरिवल्लभजी और ठाकुर श्रीघनश्यामजी, यदि वे लोग गीतावाटिकामें हैं तो अवश्य उपस्थित रहा करते थे। इन पद-गोष्ठियोंमें केवल अन्तरंग व्यक्ति ही रहा करते थे। यह पूर्णतः अन्तरंग कार्यक्रम प्रायः रातके नौ-साढे-नौ बजे आरम्भ होता था और लगभग एक-दो घंटे चला करता था। यदि कभी रंग गहरा हो जाता था तो यह कार्यक्रम रातके एक-दो बजेतक भी चलता रहता था। एक बार ऐसा हुआ कि अर्ध रात्रितक जागरण करनेका क्रम कई दिनतक चलता रहा। इससे चाचीजी (गोस्वामीजीकी धर्मपत्नी) को बड़ी चिन्ता हुई। गोस्वामीजी ब्राह्म मुहूर्तमें उठ जाया करते थे तथा नित्यके दैनन्दिन पूजन-अर्चनसे निवृत्त होकर दिन भर सम्पादन-कार्यमें जुटे रहते थे। इस जागरणसे तो गोस्वामीजीका स्वास्थ्य गिर जायेगा, बस, यही चिन्ता चाचीजीको पीड़ा पहुँचा रही थी। उन्होंने एक-दो बार गोस्वामीजीसे अनुरोध भी किया कि आपको रातमें इतनी देरतक नहीं जगना चाहिये। गोस्वामीजीने चाचीजीको कोई उत्तर नहीं दिया। समर्पित-जीवन गोस्वामीजीकी आन्तरिक भावना यही थी कि यदि बाबूजी मुझको जगाना चाहते हैं तो वैसा ही हो। इसके अतिरिक्त यह ऐकान्तिक कार्यक्रम ही तो जीवनको वास्तविक जीवन प्रदान किया करता था। पद-गानके निमित्तसे जो रस-धारा बहने लगती थी, उसीसे जीवनको वास्तविक तुष्टि और पुष्टि प्राप्त होती थी। अस्तु, गोस्वामीजीके प्रति किया गया अनुरोध जब सफल नहीं हुआ तो चाचीजीने अपना संदेश और अपनी चिन्ता बाबूजीके पास कहला भिजवाया। उस

संदेश-वाहकके द्वारा प्रत्युत्तरस्वरूप बाबूजीने कहलावया— उनका कहना सही है कि रातको जागरण करनेसे स्वास्थ्यपर कुप्रभाव पड़ता है, पर यह कुप्रभाव पड़ता है तब, जब लौकिक कार्योंके लिये जगना पड़े अथवा पारमार्थिक कार्योंमेंभी उत्साह-शून्य और भाव-शून्य होकर जगना पड़े। पद-गान तो स्फूर्ति, दिव्यता, प्रेरणा आदि ही प्रदान करता है।

बाबूजीके उत्तरसे चाचीजीका समाधान हो गया।

एक बार चाचीजी बीकानेर गयी हुई थीं। दुर्भाग्यसे वहाँ उनके पैरकी हड्डी टूट गयी। यह कष्टपूर्ण समाचार बीकानेरसे गोरखपुर आया, पर गोस्वामीजीने किसीके भी सामने यह बात उठायी ही नहीं कि मुझे बीकानेर जाना है। पहले अपने मनके भीतर बात उठे, तब न दूसरे लोगोंके बीच बात चलायी-उठायी जाये! उनके मनमें किसी प्रकारके संकल्प-विकल्पका उद्भव हुआ ही नहीं। इस समाचारको सुन करके भी वे ऐसे निर्लिप्त रहे, मानो यह समाचार बीकानेरसे आया ही नहीं। सच पूछा जाये तो उनके परिवारवाले अब कहने मात्रके लिये पारिवारिक रह गये थे। अब उनकी समस्त ममताके केन्द्र थे बाबूजी और बाबूजी ही थे उनकी पारिवारिकताकी परिधि।

तन-धन-जन का बन्धन टूटा, छूटा भोग-मोक्ष का रोग।
धन्य हुई मैं प्रियतम! पाकर, एक तुम्हारा प्रिय संयोग।।

ये पंक्तियाँ गोस्वामीजीके जीवनमें मूर्तिमान थीं। वस्तुतः गोस्वामीजीकी 'प्रीति प्रतीति जाइ नहिं तरकी'। गोस्वामीजीके इस समर्पण-भावपर बाबा मुग्ध हो गये। गोस्वामीजी तो बीकानेर गये नहीं। फिर बाबूजीने ही अपने व्यक्तियोंद्वारा उनकी चिकित्सा तथा प्लास्टरकी व्यवस्था करवायी।

गोस्वामीजीके भावमय जीवनके अनेक मधुर प्रसंग हैं। सन् १९४९ ई. में वृन्दावनसे गोरखपुर शहरमें रासमण्डली आयी। तब उस रासमण्डलीमें श्रीघनश्यामजी ठाकुरस्वरूप धारण किया करते थे। बाबाके साथ गोस्वामीजी रासलीला देखनेके लिये गये। लीला बड़ी सुन्दर हुई। लीलाका रंग गोस्वामीजीके मनपर चढ़ा हुआ था। लीला-दर्शनके एक-दो दिन बादकी बात है। गोस्वामीजी अपने घरके कमरेमें भूमिपर लेटे हुए थे। कमरेके एकान्तमें उनका मन उस दृष्ट लीलाके भाव-प्रवाहमें बहा जा रहा

था। उस प्रवाहकी छलक कभी-कभी नेत्रोंके कगारोंको छू लेती थी। तब वे उन भाव-विन्दुओंको धीरेसे पोंछ लेते थे। गोस्वामीजी चाहते तो यह थे कि कभी मेरे घर श्रीठाकुरस्वरूपजी पधारें, परंतु अपने संकोची स्वभावके कारण श्रीठाकुरजीको कहें तो कैसे कहें? इसी प्रकारके भावोंमें चुपचाप लेटे हुए गोस्वामीजीका मन निमग्न था कि तभी किसीने चरणोंका स्पर्श किया। नेत्र खोलकर देखा तो ठाकुरस्वरूप श्रीघनश्यामजी ही प्रणाम कर रहे हैं। अनेक सूत्रोंसे गोस्वामीजीकी गुण-गाथाको सुन करके उनके प्रति ठाकुरस्वरूप श्रीघनश्यामजीका पितृ-भाव हो गया था। उन्हें प्रणाम करते देखकर गोस्वामीजी विस्मय-पूरित हो गये। मन अनेक प्रकारके भावोंसे भर गया। ''यह असम्भव आज कैसे सम्भव हो गया? आज यह अकल्पनीय कृपा कैसे हो गयी? आज यह घर किस पुण्यके फलस्वरूप पवित्र हो गया?'' इन सब भावोंका वेग इतना प्रबल था कि गोस्वामीजी बहुत देरतक जडवत् पड़े रहे। अपनी जड़िमा स्थितिके कारण गोस्वामीजी ठाकुर श्रीघनश्यामजीका पर्याप्त समयतक प्राथमिक स्वागतोपचार नहीं कर पाये। ठाकुर श्रीघनश्यामजीको किसी प्रकारके स्वागत- सत्कारकी अपेक्षा नहीं थी, फिर भी उन्हें यह बड़ा अटपटा लगा कि गोस्वामीजी कुछ बोल क्यों नहीं रहे हैं। भावके शमित होनेमें कुछ समय तो लग ही गया। जब गोस्वामीजी कुछ प्रकृतिस्थ हुए, तब तो गोस्वामी दम्पतिने उनका जो स्वागत किया, जो लाड-चाव किया, उसकी कोई सीमा नहीं थी। गोस्वामीजीके उस स्वागतोल्लासको स्मरण करके ठाकुर श्रीघनश्यामजी आज भी पुलकित हो उठते हैं। तबसे यह एक परम्परा-सी ही बन गयी कि जब भी ठाकुर श्रीघनश्यामजी गोरखपुर आयें, उनको गोस्वामीजीके यहाँ एक बार भोजन करना ही है। यह क्रम गोस्वामीजीके जीवन भर अखण्ड रूपसे चला।

गोस्वामीजीके सामने प्रलोभन कम नहीं आये। सबसे बड़ा प्रलोभन था शंकराचार्य-पदका। श्रीजगन्नाथपुरी स्थित श्रीगोवर्धनपीठके पीठाधिपति अनन्त श्रीविभूषित शंकराचार्य पूज्य स्वामी श्रीभारतीकृष्णतीर्थजी महाराजने गोस्वामीजीकी साधुता और विद्वत्तासे प्रभावित होकर उन्हें अपना उत्तराधिकारी मनोनीत करनेकी अभिलाषा व्यक्त की। परम पूज्य शंकराचार्य श्रीभारतीकृष्णतीर्थजी महाराज अद्‌भुत प्रतिभा-सम्पन्न उद्भट विद्वान थे। जब आप सोलह वर्षके किशोर थे, उस समय आपकी

धारावाहिक एवं श्रेष्ठ संस्कृत बोलनेकी क्षमताको देखकर दक्षिण भारतकी पण्डित सभाने आपको 'सरस्वती पुत्र' की उपाधिसे विभूषित किया था। सन् १९०४ ई. में आपने बीस वर्षकी आयुमें बम्बईमें एक ही वर्षमें एक साथ सात विषयों (संस्कृत, अँग्रेजी, दर्शन, गणित, इतिहास, विज्ञान तथा एक और विषय) में एम.ए. की परीक्षा दी और आप सातों विषयोंमें प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण हुए। केवल भारत ही नहीं, विश्वके किसी भी देशका कोई भी युवक इस प्रकारकी योग्यताका उदाहरण आजतक प्रस्तुत नहीं कर पाया है। जिस प्रकार पाणिनी व्याकरणके चौदह माहेश्वर सूत्रोंके आधारपर सारी संस्कृत व्याकरण पढ़ायी जाती है, उसी प्रकार आपने वेदोंका मन्थन करके ऐसे सोलह सूत्र छाँटकर निकाले हैं, जिनकेआधार पर आधुनिक कालकी गणितकी ऊँची-से-ऊँची शिक्षा दी जा सकती है। पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराजद्वारा आविष्कृत ये सोलह वैदिक सूत्र और आपके द्वारा अँग्रेजीमें लिखित 'वैदिक मैथेमेटिक्स' आज देश और विदेशके गणितज्ञोंके लिये आश्चर्य और आकर्षणके विषय बने हुए हैं। सन् १९६० ई. में पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराज ब्रह्मलीन हुए थे। अपने महाप्रयाणके पूर्व उन प्रखर प्रतिभाशाली महापण्डित विश्व-विश्रुत पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराजने गोस्वामीजीको अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहा था।

शंकराचार्य-पदका प्रस्ताव ज्यों ही सामने आया, त्यों ही गोस्वामीजीके अन्तरमें धर्म-संकटकी विषम स्थिति उत्पन्न हो गयी। पूज्य श्रीशंकराचार्यजी अपने धर्माचार्य हैं, वे नित्य परम वन्दनीय हैं, ऐसे गौरवपूर्ण शंकराचार्य-पदके लिये चयन उनका कृपा-प्रसाद ही है, उनका संकेत मात्र ही आदेशके समकक्ष है और उनकी रुचि देखकर इस प्रस्तावको तुरंत स्वीकार कर लेना चाहिये था, परंतु गोस्वामीजीका हृदय बाबूजीसे विलग होनेके लिये प्रस्तुत नहीं था। फिर बड़े विनम्र शब्दोंमें अत्यधिक संकोचके साथ गोस्वामीजीने इस प्रस्तावको स्वीकार करनेमें अपनी विवशता व्यक्त कर दी।

गोस्वामीजीने शंकराचार्य-पदके प्रस्तावको स्वीकार नहीं किया, अस्वीकृतिके हेतुको समझनेके लिये गोस्वामीजीकी मान्यताओंके सम्बन्धमें कुछ उल्लेख करना आवश्यक-सा प्रतीत हो रहा है। गोस्वामीजीकी सुदृढ़ धारणा थी कि शंकराचार्य- पदके मूलमें जो आदि-विभूति हैं, उन आदि-शंकराचार्यजी द्वारा धर्म-संस्थापनका जो महान कार्य उस समय हुआ था, वही महान कार्य इस समय अब बाबूजीके द्वारा हो रहा है। धर्मकी ग्लानिको दूर करनेके लिये एवं

सामाजिक प्रश्नोंपर व्यवस्था देनेके लिये जैसा पावन कार्य बाबूजी द्वारा हो रहा है; इतना ही नहीं उनके द्वारा जैसे विशाल श्रेष्ठ साहित्यकी सृष्टि हुई है तथा उनकी जैसी महाभावमयी भागवती स्थिति है, उन सबको देखकर यही लगता है कि शंकराचार्य-रामानुजाचार्य जैसे धर्म-संस्थापक आचार्योंकी, मनु-याज्ञवल्क्य जैसे स्मृतिकार मुनियोंकी, तुलसीदास-सूरदास जैसे महाभक्त कवियोंकी एवं चैतन्यमहाप्रभु-वल्लभाचार्य जैसे रसज्ञ महान विभूतियोंकी परम्परामें बाबूजी भी परिगण्य हैं।

गोस्वामीजी भली भाँति जानते थे कि विशाल सत्साहित्यकी रचनाके द्वारा, शास्त्रीय ग्रन्थों एवं पत्रिकाके प्रकाशनके द्वारा, वैयक्तिक पत्र एवं ऐकान्तिक परामर्शके द्वारा, विभिन्न स्थानों एवं पवित्र तीर्थोंकी यात्राके द्वारा, सत्संग-सत्र एवं उत्सवोंके आयोजनके द्वारा और सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात, अपनी करनी एवं रहनीके द्वारा बाबूजी समाजमें आध्यात्मिकता-धार्मिकता-आस्तिकता-नैतिकता- सात्त्विकताके संस्थापनका ही कार्य कर रहे हैं। बाबूजीद्वारा यदि एक ओर धर्म-संस्थापन एवं समाजोन्नयनका कार्य हो रहा है तो दूसरी ओर सरल भाषामें भक्ति-राज्यके रस-सिद्धान्तोंका निरूपण भी हो रहा है। और केवल निरुपण ही नहीं, उनका जीवन उस रस-सिन्धुमें सर्वथा आशिख निमग्न है। गोस्वामीजीने स्वयं देखा है कि उस निमग्नतामें प्रगाढता आनेपर बाबूजीको अपने शरीरका भान नहीं रहता था। इस प्रकारकी नितान्त शरीर-भान-रहित भाव-समाधिकी स्थितिमें उनके कई-कई घंटे निकल जाया करते थे। इसके अतिरिक्त, जब शरीरका भान रहता था, उस समय भी उनका मानस, भावके बहुत ऊँचे स्तरपर प्रतिष्ठित रहा करता था। सच्ची बात यह है कि बाबूजीके व्यक्तित्वका सम्पूर्ण अस्तित्व भक्ति-रसमें सर्वथा निमग्न है और इसीके फलस्वरूप उनके द्वारा धर्म-संस्थापन एवं समाजोन्नयनका अद्‌भुत महान् कार्य हो पा रहा है। ऐसा व्यक्तित्व भला कहाँ देखने-सुननेको मिलता है? गोस्वामीजीकी परम सुदृढ़ आस्था थी कि बाबूजी इस युगकी महान् विभूति हैं। भारतीय संत-परम्परामें उनका स्थान बहुत ऊँचा है। वे 'ज्ञानोत्तर भाव-राज्य'में नित्य प्रतिष्ठित हैं। जिस 'पराभक्ति' की प्राप्ति श्रीगीताजीमें ब्रह्मभूत होनेके बाद बतलायी गयी है और जिस भक्तिके द्वारा मनुष्य भगवानको जानकर उसमें प्रविष्ट हो जाता है, उनके साथ घुल-मिलकर उनकी लीलाका एक अंग हो जाता है, उनका प्रतिरूप बन जाता है, वह तथ्य बाबूजीके व्यक्तित्वके अन्दर अक्षरशः मूर्त है। यही नहीं, श्रीकृष्ण-प्रेमकी उच्चतम भूमिकामें वे स्थित हैं।

उनकी मन-बुद्धि-वाणी सब कुछ श्रीकृष्णमय हो गये हैं। विशुद्ध प्रेमभक्तिका आदर्श एवं भगवन्नामकी महिमाको प्रतिष्ठित करनेके लिये ही जगतमें बाबूजीका आविर्भाव हुआ है। 'महिमा जासु जाइ नहिं बरनी' ऐसे बाबूजीके आन्तरिक और वास्तविक रूपको मनकी आँखोंसे देख-देख करके गोस्वामीजीके हृदयमें 'नित नव चरन उपज अनुरागा'। बाबूजीद्वारा जो महान कार्य हो रहा है तथा बाबूजीका जैसा अनुपम व्यक्तित्व है, उसके सम्बन्धमें गोस्वामीजीको कोई भ्रान्ति नहीं थी। बाबूजीके प्रति इस प्रकारकी निर्भ्रान्त आस्था इतनी अधिक सुदृढ़ थी और बाबूजीके पास रहनेकी भावना इतनी अधिक प्रबल थी कि शंकराचार्य-पदका सामाजिक सम्मान एवं आध्यात्मिक गौरव गोस्वामीजीको अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर सका। बाबूजीकी संनिधिसे दूर जाना उनको अभीष्ट था ही नहीं। गोस्वामीजी नित्य बाबूजीके सांनिध्यमें रहे और जीवनके अन्तिम क्षण तक गीतावाटिकामें उनका निवास रहा। गोस्वामीजीकी निष्ठा सदा ही बाबाकी वाणी द्वारा चर्चा एवं सराहनाका विषय बनी रही।

बाबा गोस्वामीजीकी आस्थाओंकी बड़ी सराहना किया करते थे, इस सम्बन्धमें एक बड़ा सरस प्रसंग षोडश गीतको लेकर है। षोडशगीतके दसवें पदकी छठवीं पंक्तिमें नित्य-निकुञ्जेश्वरी श्रीराधाकी उक्ति है—

आठों पहर बसे रहते तुम मम मन-मन्दिरमें भगवान।

बाबाके मनमें ऐसा भाव स्फुरित हुआ कि इस पंक्तिमें 'भगवान' शब्दके स्थानपर कोई अन्य शब्द अर्थात् ऐश्वर्य-भावसे रहित प्रेमिल शब्द होता तो पदकी भावमयता और भी सरसीली हो जाती। बाबाकी तथा बाबूजी, दोनोंकी ही स्पष्ट मान्यता है कि नित्य-निकुञ्जेश्वरी श्रीराधा एवं नित्य-निकुञ्जेश्वर श्रीकृष्ण साक्षात् भगवती-भगवान हैं, परंतु परम प्रेमके मधुर राज्यमें उनकी यह भगवत्ता प्रसुप्त रहती है। इन परस्पर नित्य परम प्रेमी-प्रेमास्पद युगलका जो परम मधुर प्रेम-सिन्धु है, उस सिन्धुके अतल-तलमें उनकी भगवत्ता छिपी रहती है। उस भगवत्ताकी अभिव्यक्ति क्वचित् ही होती है और होती है तभी, जब कभी किसी लीलाको सम्पन्न करा देनेमें उस भगवत्ताकी आवश्यकता हो। कभी-कभी लीलाको सम्पन्न करा देनेके लिये ही उस ऐश्वर्य शक्ति भगवत्ताको किंचित् सेवा करनेका अवसर मिल जाता है, अन्यथा वह भगवत्ता सर्वथा-सर्वथा प्रसुप्त-प्रच्छन्न रहती है। षोडश गीत सच्चिन्मय प्रेम-राज्यकी परम सरस वस्तु है, अतः बाबाने अपनी भावनाको समझाते हुए बाबूजीसे कहा— इस पंक्तिमें 'भगवान' शब्दके स्थानपर यदि कोई अन्य सरस शब्द प्रयुक्त हो तो इस पदकी सरसता और भी अधिक

समृद्ध हो जायेगी।

बाबूजीने कहा— आप जैसा कहें, जो भी कहें, मैं वैसा ही कर दूँगा।

बाबाके मनमें उस समय जो पंक्ति स्फुरित हुई, वही पंक्ति बाबाने बाबूजीको बता दी— 'आठों पहर सरसते रहते तुम मन सरवरमें रसवान'।

बाबूजीने बाबाके सुझावकी बड़ी सराहना की और यह पंक्ति ज्यों-की-त्यों स्वीकार कर ली। पदमें पुरानी पंक्तिके स्थानपर इस नवीन पंक्तिको रख दिया। बाबूजी इस परिवर्तनसे प्रसन्न थे।

फिर यह बात बाबाने गोस्वामीजीको बतलायी। गोस्वामीजीने विनम्र शब्दोंमें कहा— बाबा ! क्या यह परिवर्तन आवश्यक है ?

बाबाने गोस्वामीजीको अपनी भावना बतलायी, जिस प्रकार उन्होंने बाबूजीको बतलाया था। यह बात नहीं कि गोस्वामीजी इस भाव-गरिमाको समझ नहीं रहे हों। ऐसी समझ होनेके बाद भी अत्यधिक दैन्यके साथ गोस्वामीजी अपने मनकी बात कहने लगे— बाबा ! मैं आपकी मान्यताको सर्वांशमें स्वीकार करता हूँ, पर मेरे मनमें भी एक छोटी-सी बात है। अपनी आस्थाके अनुसार मैं षोडश गीतको और उसकी शब्दावलीको साधारण स्तरकी वस्तु नहीं समझता। ये पद मात्र काव्य-रचना नहीं है। श्रीभाईजीको भाव-समाधिकी स्थितिमें जैसी लीला और जैसे उद्‌गार उनके दृष्टि-पथपर एवं श्रुति-पथपर आविर्भूत हुए, वे ही किसी अचिन्त्य कृपासे इन पदोंकी शब्दावलीकी सीमामें सिमट आये हैं। षोडश गीतका सम्बन्ध उस भाव-समाधिकी स्थितिसे होनेके कारण इनमें किसी प्रकारका संशोधन-परिवर्तन मुझे जँच नहीं रहा है। मेरे विचारसे मूल पंक्तिको ज्यों-का-त्यों रहने देना चाहिये।

बाबाको गोस्वामीजीके विचार बड़े प्रिय लगे और इन विचारोंको बाबाने हृदयसे सम्मान दिया। तदुपरान्त उस दसवें पदमें किसी भी प्रकारके परिवर्तनकी बात समाप्त हो गयी। हाँ, बाबूजीने इतना अवश्य कर दिया कि बाबाद्वारा बतलायी गयी पंक्तिको 'एक दूसरा पाठ' के रूपमें स्वीकार कर लिया। यह दूसरा पाठ भी षोडश गीतके दसवें पदके अन्तमें छपा रहता है।

जिस तरह वृषभानुनन्दिनी श्रीराधा और नन्दनन्दन श्रीकृष्ण दिखलायी देनेमें दो हैं, इसके बाद भी दोनों वस्तुतः एक ही हैं, ठीक उसी स्तरकी मान्यता थी गोस्वामीजीकी बाबा और बाबूजीकी प्रति। 'एक तत्त्व दो तनु धरैं' बाबा और बाबूजीमें उन्होंने कभी भेद माना ही नहीं। इसका प्रमाण है गोस्वामीजीका

पादुका-पूजन। 'प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्हीं। सादर भरत सीस धरि लीन्हीं॥' बाबाकी कुटियाका अति एकान्त स्थल, उस स्थलके किन्हीं परम पुण्यमय पावन क्षणोंमें बाबासे उनकी चरण-पादुका गोस्वामीजीको प्राप्त हुई और गोस्वामीजीने उनको अपने मस्तकपर धारण कर लिया। बाबाकी उस चरण-पादुकाकी अर्चना गोस्वामीजी आजीवन करते रहे और अब उन्हीं चरण-पादुकाकी अर्चना किसी अचिन्त्य सौभाग्यसे बहिन विमलाको प्राप्त है। बाबाकी यह चरण-पादुका आज भी बहिन विमलाके पूजाघरमें विराज रही है, जहाँ उनकी नित्य अर्चना होती है।

अपने जीवनकी अन्तिम अवधिमें गोस्वामीजी सात-आठ मास बहुत अधिक अस्वस्थ रहे। गीतावाटिकाके अति समीप एक मकानमें गोस्वामीजी रहा करते थे। उनकी व्याधि और पीड़ाको देखकर बाबा उन्हें गीतावाटिका ले आये। गीतावाटिकाके जिस भवनमें बाबूजी रहा करते थे, उसी भवनके एक कमरेमें गोस्वामीजीको रखा गया। गोस्वामीजीकी चिकित्सा एवं सँभाल पूर्ण तत्परताके साथ होने लग गयी। रुग्ण शय्यापर पड़े हुए गोस्वामीजीका शरीर अत्यधिक कष्टसे पीड़ित था। रुग्ण गोस्वामीजीकी चिकित्सा और परिचर्यामें जितना समय और जैसा ध्यान बाबाने दिया, उसको देखकर विस्मय होता है। इस कष्टकी स्थितिमें भी गोस्वामीजीके अधरोंपर एक ही वाक्य था— नाथ! तुम्हारी ही इच्छा पूर्ण हो।

गोस्वामीजीकी भीषण रुग्णताको देखकर बाबाने कहना आरम्भ कर दिया था कि अब चलाचलीका मेला है और गोस्वामीजी अधिक नहीं रह पायेंगे। एक बार परिचर्या-रत व्यक्तियोंको ऐसा लगा कि गोस्वामीजी सम्भवतः करवट बदलना चाहते हैं अथवा बोलकर कुछ कहना चाहते हैं। उन व्यक्तियोंने पूछा— आप क्या चाहते हैं?

उनसे गोस्वामीजीने कहा— मैं कुछ नहीं चाहूँ, बस, यही चाहता हूँ।

असह्य वेदनाके होते हुए भी गोस्वामीजीने यह नहीं कहा कि उन्हें औषधि अथवा उपचारकी आवश्यकता है। कष्टकी अधिकताको देखकर यदि कोई सहानुभूति दिखलाता तो गोस्वामीजी यही कहा करते थे— प्रभुका प्रत्येक विधान मंगलमय है। इस रुग्णतामें भी प्रभुका मंगल स्पर्श क्रियाशील है और उसीका अनुभव होता रहता है।

इस कष्टकी स्थितिमें भी गोरखपुर विश्वविद्यालयके संस्कृत विभागके

प्राध्यापक आदरणीय श्रीहेमचन्द्रजी जोशी जब गोस्वामीजीको भावपूर्ण पद सुनाया करते थे अथवा जब कभी गीतावाटिकाकी श्रद्धाभिभूत बहिनें लीला-पद सुनाया करती थीं तो गोस्वामीजीके कपोल अश्रु-सिक्त हो उठते थे। शरीर भोग रहा था कष्ट, पर मन डूब रहा था भाव-सिन्धुमें।

'तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात्' सूत्रके द्वारा देवर्षि नारदने यह प्रतिपादित किया है कि भगवान और भक्तमें भेदका अभाव है। पूज्य श्रीसेठजी (पूज्य श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ने लिखा है कि 'भगवानके भक्त भगवत्स्वरूप होते हैं। भगवानकी तरह महापुरुषोंके ध्यानसे भी कल्याण हो सकता है।' बाबूजीने लिखा है कि 'जो भक्तोंका सेवन करते हैं, वे भगवानका ही सेवन करते हैं।' ये सब सिद्धान्त-वाक्य हैं, जो किसी व्यक्ति-विशेषको लक्ष्य करके नहीं लिखे गये। सिद्धान्तका विवेचन और निरूपण करते-करते इन महाभागवतोंके द्वारा यह सनातन सत्य स्वतः अभिव्यक्त हो उठा और इस महान सत्यके साकार स्वरूप थे गोस्वामीजी। ऐसा लगता है कि श्रीरामचरितमानसकी अर्धाली 'राम ते अधिक राम कर दासा' को ही गोस्वामीजीने अपने जीवनका आधार बना लिया हो। जीवनका अवसान समीप देखकर एक स्वजनने बाबूजीका चित्र गोस्वामीजीके सामने दीवालपर लगा दिया, जिसे वे देखते रह सकें। इसके कुछ दिन बाद एक अन्य स्वजनने गोस्वामीजीसे पूछा– यदि आप आज्ञा दें तो आपके सामने दीवालपर श्रीराधाकृष्णका चित्र लगा दूँ।

गोस्वामीजीने प्यारभरे स्वरमें कहा– मेरे लिये श्रीभाईजीमें और श्रीराधाकृष्णमें कोई अन्तर नहीं है।

फिर बाबूजीका चित्र ही सदा गोस्वामीजीके समक्ष विराजित रहा।

गोस्वामीजीने एक स्थानपर स्वयं लिखा है– मेरा श्रीभाईजीके साथ चालीस वर्षसे ऊपरका सम्पर्क मेरे जीवनकी एक अमूल्य निधि है, जो मुझे अपने जन्मार्जित सुकृतोंके फलस्वरूप उन्हींकी अहैतुकी कृपासे अनायास प्राप्त हुई थी। इस अवधिमें उन्होंने जैसा अद्भुत स्नेह दिया और जिस प्रकार मेरा लाड रखा, उसे शब्दोंद्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। उनके इस ऋणसे मैं जन्म-जन्मान्तरमें भी उऋण नहीं हो सकता और न होना ही चाहता हूँ। भव-सरिताकी प्रबल धारामें बहते हुए मुझ पामरको उन्होंने अपनी सहज कृपासे उबार लिया और भगवत्कृपाका अधिकारी बना दिया। मेरी त्रुटियोंकी ओर उन्होंने कभी ध्यान नहीं दिया और मेरे द्वारा उन्हींकी प्रेरणासे हुए तनिक-से भी

अनुकूल आचरणकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। वे मेरे बड़े भाई, सखा एवं स्वामी ही नहीं, मेरे पथ-प्रदर्शक जीवन-सर्वस्व थे और हैं। उनकी स्मृति मात्रसे हृदय भर आता है। बस, शेष जीवन श्रीभाईजी और उनके अपने श्रीराधामाधवकी स्मृतिमें बीत जायँ, यही अभिलाषा है।

गोस्वामीजी रुग्ण शय्यापर पड़े-पड़े ही कमरेकी खिड़कीसे जब-तब बाबूजीकी पावन समाधिका दर्शन कर लिया करते थे। यह समाधि इत्र-मिश्रित-पीत-मिट्टीसे पुती रहती है। महाप्रस्थान करनेके कुछ दिनों पूर्व गोस्वामीजीने समीपस्थ स्वजनोंके समक्ष अपनी अन्तिम अभिलाषा व्यक्ति करते हुए कहा— मेरे जीवनधन श्रीभाईजीकी पावन समाधिपर जो पीली मिट्टी पुती हुई है, वह मेरे प्रियतम श्रीकृष्णके पीत दुकूलका प्रतीक है तथा मेरे प्राणवल्लभकी पावन स्मृतिको सतत सजीव बनाये रहती है। मेरे शवका अन्तिम स्नान उस पवित्र मिट्टीको धोकर एकत्रित किये गये जलसे ही करवाया जाये।

परम्परा ऐसी है कि शवका अन्तिम स्नान गंगा-जलसे करवाया जाना चाहिये, परतु इन अनोखे समर्पितात्माकी अभिलाषा थी कि गंगा-जलसे स्नान कराये जानेके उपरान्त भी एक और स्नान अपने जीवनधनकी पावन समाधिके प्रसादी जलसे करवाया जाये। गोस्वामीजीने सारे जीवन वैष्णव सदाचार, धर्म- मर्यादा, साम्प्रदायिक नैष्ठिकता, कुल-परम्पराको महत्त्व प्रदान किया था, परंतु आज वे सब एक किनारे हो गये और सर्वोपरि स्थान मिला प्रीतिकी निराली रीतिको।

विदाईको समीप देखकर गोस्वामीजीने जाने-अनजाने हुई भूलोंके लिये और इच्छा-अनिच्छापूर्वक किये गये कटु व्यवहारोंके लिये सभीसे क्षमा याचना की। जिन स्वजनोंने अन्तिम रुग्णावस्थाके समय परिचर्या की थी, उनकी सेवा-भावनाको देखकर गोस्वामीजीका हृदय भर-भर आ रहा था। उन्होंने सजल नेत्रोंसे और उन्मुक्त हृदयसे सभीको आशीर्वाद दिया तथा कहा— मैं तो सर्वथा अकिञ्चन हूँ। मेरे पास इस सेवाके बदलेमें दे सकने योग्य कुछ भी नहीं है, परंतु मेरे आराध्य इस एक-एक सेवाका अनन्त गुणा पुरस्कार तुम सबको अवश्य देंगे, यह मेरे अन्तरकी अन्तिम आशीष है।

बाबा और बाबूजीमें सर्वथा अभेद माननेके कारण गोस्वामीजीने बाबाके समक्ष एक बार अपनी एक अन्तरंग अभिलाषा व्यक्त की—

जीवनके अन्तिम श्वासके समय यह शरीर आपसे संपृक्त रहे।

इस अभिलाषाको सुनकर बाबाने एक मधुर मुस्कान बिखेर दी। बाबाने कुछ भी उत्तर नहीं दिया, परंतु गोस्वामीजीके इस मनोरथको अपने हृदयके कोनेमें छिपाकर रख लिया। हृदयकी गुहामें छिपाकर रखे गये इस तथ्यकी जानकारी भला किसी अन्यको कैसे हो सकती थी? अत्यधिक रुग्ण गोस्वामीजीकी स्थिति ज्यों ही गम्भीर होने लगी और ऐसा लगने लगा कि गोस्वामीजी अब जानेवाले हैं, त्यों ही दौड़कर बाबाको सूचना दी गयी। बाबा तुरंत आये। गोस्वामीजीको भूमिपर नीचे उतार लिया गया। अब कुछ ही श्वास शेष थे।

बाबाने अपने दाहिने चरणके अंगुष्ठको गोस्वामीजीके पैरोंके तलवेके निम्न भागमें एड़ीके पास भली प्रकार सटा दिया और बाबासे संपृक्तावस्थामें ही गोस्वामीजीने अन्तिम श्वास ली। भावातिरेककी गम्भीर दशामें बाबाके नयन भी अपने आप मुँद गये।

सं. २०३१ वि. वैशाख मासके शुक्ल पक्षकी नृसिंह चतुर्दशी तिथि (५ मई १९७४) के दिन गोस्वामीजीके जीवनका पटाक्षेप हो गया। गोस्वामीजी इस भूतलपर लगभग ७४ वर्ष रहे। गोस्वामीजीने जो अपनी अन्तिम अभिलाषा व्यक्त की थी, उसको पूर्ण करनेके लिये बाबूजीकी पावन समाधिको प्रक्षालित करके प्रसादी जलसे उनके शवको स्नान कराकर वह स्मरणीय-वन्दनीय पाञ्चभौतिक कलेवर चिताकी पावन अग्निको अर्पित कर दिया गया।

महाप्रस्थानके कुछ समय बाद गोस्वामीजी अपने दिव्य स्वरूपसे बाबाको दिखलायी दिये थे। बाबा बतला रहे थे कि उनके उस दिव्य देहकी कान्ति अनुपम थी और उनके नेत्रोंमें अतीव प्रसन्नता नृत्य कर रही थी। गोस्वामीजीके दिव्य स्वरूपको देखकर बाबाको बड़ा आह्लाद हुआ। बाबाने एक और अन्तरंग बात बतलायी। निकुञ्जलीलामें नित्य निकुञ्जेश्वरी श्रीप्रियाजीकी रसमयी सेवामें श्यामला मञ्जरी सतत संलग्न रहती हैं और गोस्वामीजीकी अन्तिम परिणति उन श्यामला मञ्जरीके रूपमें ही हुई है। इस रहस्योद्घाटनने सभी स्वजनोंको परम मोद प्रदान किया। श्रीप्रिया-प्रियतमकी निकुञ्ज-लीलामें लीन पूज्य श्रीगोस्वामीजीकी जय, बार-बार जय।

* * * * *

प्रीतिरसावतार महाभावनिमग्न श्रीराधा बाबा की जीवन-झाँकी

१. १६ जनवरी १९१३ (वि.सं. १९६९ पौष शु.९)	आविर्भाव
२. सन् १९२८-३१	राजनैतिक जीवन एवं जेल यात्रा
३. सन् १९३२	कलकत्तेमें विद्यालयी शिक्षाका पुनः शुभारम्भ
४. १-१-१९३४ से १४-१०-१९३५	भगवानके नाम पत्र लिखना
५. १२ अक्टूबर १९३५ (वि.सं. १९९२ आश्विनी पूर्णिमा)	संन्यास-ग्रहण
६. अप्रैल १९३६	संन्यासी वेषमें इण्टरमीडिएटकी परीक्षा देकर विद्यालयी शिक्षासे विमुखता
७. १९३६ अप्रैल से सितम्बर तक	अज्ञात वास, घोर एकान्त साधना एवं अद्वैत तत्त्वकी दृष्टिसे परम सिद्धि, कोढ़ियोंके मध्य बैठना, स्वामी श्रीरामसुखदासजी से मिलन एवं सत्संग
८. अक्टूबर १९३६	श्रीसेठजीसे मिलन तथा उनके द्वारा बाबूजीसे मिलनेकी प्रेरणा
९. २७ अक्टूबर १९३६ (वि.सं.१९९३ आश्विन शु.१२)	गीतावाटिकामें सर्वप्रथम आगमन तथा बाबूजीसे प्रथम मिलन, बाबूजी द्वारा चरण-स्पर्श एवं चरण-स्पर्शके माध्यमसे साकारोपासनाका बीजारोपण

१०. ३० अक्टूबर १९३६; (वि. सं. १९९३ आश्विनी पूर्णिमा)	गीतावाटिकामें इमली वृक्षके नीचे दिव्यानुभूति
११. नवम्बर १९३६; (वि. सं. १९९३ कार्तिक मास)	गोरखपुरमें राप्ती नदीके किनारे श्रीहनुमानगढ़ीमें वास करते हुए भगवान श्रीकृष्णके दर्शन
१२. नवम्बर या दिसम्बर १९३६	श्रीसेठजीके साथ रहना तथा लगभग अढ़ाई वर्षोंतक निरन्तर साथ रहकर श्रीमद्भगवद्गीताकी टीकाके लेखन-कार्यमें सहयोग देना
१३. सन् १९३७	गीताप्रेसके कमरेमें गोपी-वपुका अवतरण एवं तिरोभाव
१४. २६ या २७ या २८ अप्रैल १९३९, (वि. सं. १९९६ वैशाख मास)	बाँकुड़ानगरमें क्षेत्र संन्यासका संकल्प एवं भगवान श्रीकृष्ण द्वारा क्षेत्र-संन्यासका नवीन अर्थ बतलाया जाना, फिर पूज्य बाबूजीके वपुको सचल वृन्दावन बतलाना
१५. मई १९३९	फखरपुर ग्राममें श्रीमातृ-चरणके अन्तिम दर्शन
१६. ११ मई १९३९; (वि. सं. १९९६)	बाबूजीके साथ नित्य रहनेका संकल्प
१७. जून या जुलाई या अगस्त १९३९	पूज्य बाबूजीका सूक्ष्म देहसे पधारकर बाबाको 'दीक्षा' देना
१८. सन् १९३९ या ४० में	श्रीमञ्जुलीला-भावकी 'भाव-दीक्षा' (यह प्रथम भाव दीक्षा)

१९. २३ अगस्त १९४१, (वि.सं. १९९८ भाद्र शुक्ल ८)	दिल्लीमें प्रथम बार श्रीराधाष्टमी पर्व अति सूक्ष्म रूपसे मनाना
२०. सम्भवतः सन् १९४१-४२ में	पूज्य बाबूजीके संकेतपर प्रवचनका विसर्जन और वाणीका मौन
२१. सन् १९४२-४३	'केलिकुञ्ज' की लीलाओंका तथा 'प्रेम-सत्संग सुधा माला' का लेखन
२२. सन् १९४३-४४ में	श्रीमञ्जुश्यामा भावकी 'भाव दीक्षा' (यह द्वितीय भाव दीक्षा)
२३. सन् १९४४-४५ में	'राधा' नामके जपसे लगाव
२४. १९ सितम्बर १९४५, (वि.सं. २००२ भाद्र शु.८)	गीतावाटिकामें प्रथम श्रीराधाष्टमी उत्सव; श्रीराधाष्टमीके दिन 'श्रीकाम-गायत्री मंत्र'से अर्चना
२५. सन् १९४६ से कई वर्षोंतक	'श्रीकृष्णलीला चिन्तन' 'जगज्जननी श्रीराधा' आदि-आदि अनेक भावपूर्ण कृतियोंका प्रणयन
२६. सन् १९४९-५०	पूज्य बाबूजीकी आयु-वृद्धिके लिये देवाराधन
२७. २६ सितम्बर १९५० (शरद् पूर्णिमा)	'देवर्षि पर श्रीवृषभानुनन्दिनीकी कृपा' नामक नाटिकाका अभिनय
२८. सम्भवतः सन् १९५० में	भगवान श्रीकृष्ण द्वारा भगवती श्रीत्रिपुरसुन्दरीकी अर्चना करनेके लिये निर्देश
२९. २० जनवरी १९५१	गलेकी हड्डी टूटनेसे भगवतीकी अर्चनामें विघ्न
३०. ९ मई १९५१; (वि.सं. २००८ वैशाख शु. ३) (अक्षय तृतीया)	भगवती त्रिपुरसुन्दरी द्वारा निज मंत्रका दान, (यह तीसरी भाव दीक्षा)
३१. सन् १९५१-५४	अठारह पुराणोंका श्रवण

३२. २७ जनवरी १९५६ से २६ अप्रैल १९५६ तक	तीर्थयात्रा ट्रेन द्वारा तीन धामोंकी पावन यात्रा
३३. १९ अक्टूबर १९५६, (वि. सं. २०१३ शरद् पूर्णिमा)	गीतावाटिकामें प्रथम काष्ठमौनव्रत
३४. ८-९ अप्रैल १९५७, (वि. सं. २०१४ चैत्र शुक्ल अष्टमी नवमीकी संधि वेला)	'राधा भाव' में प्रतिष्ठा, (यह चौथी भावदीक्षा)
३५. १ सितम्बर १९५७; (वि. सं. २०१४ भाद्र शु. ८ रविवार)	रतनगढ़में विशिष्ट श्रीराधाष्टमी, त्रिमासीय रविवार, 'रसोपासना'के दिव्य मंत्रोंका अलौकिक रीतिसे अवतरण
३६. जनवरी १९५८	मथुरा स्थित बिड़ला धर्मशालामें 'जय जय प्रियतम' काव्यके लेखनकी प्रेरणा तथा काष्ठ मौनावधिमें प्रणयन
३७. सन् १९६३-६४ में	रासलीला द्वारा 'षोडश गीत'में प्राण प्रतिष्ठा
३८. १९ जनवरी १९६४ (वसन्त पंचमी)	भगवती श्रीविष्णुप्रियाजीका जन्मोत्सव मनाना
३९. २२ सितम्बर १९६५	गीतावाटिकामें स्थापित श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमाका शुभारम्भ
४०. ७ अप्रैल १९६७	द्वितीय काष्ठमौन व्रत
४१. २२ मार्च १९७१	पूज्य बाबूजीका महाप्रयाण तथा पुरानी कुटियाका परित्याग
४२. १६ फरवरी १९७५	बाबाकी प्रेरणासे कैंसर अस्पतालकी स्थापनाका संकल्प
४३. २६ अगस्त १९७६, (वि. सं. २०३३ भाद्र शुक्ल १)	बाबूजीकी समाधिपर बन रहे स्मारकके निर्माण कार्यकी पूर्णतापर हर्षोल्लास

४४.	२० अगस्त १९७७	लकवाका झटका
४५.	७ दिसम्बर १९७८	तृतीय काष्ठ मौन व्रत
४६.	सन् १९८२ एवं ८४	दो अष्टयाम लीलाओंका आयोजन
४७.	८ फरवरी १९८५ से १७ फरवरी १९८५ तक	पूज्य श्रीडोंगरेजी महाराजकी श्रीमद्भागवत कथाका श्रवण
४८.	२१ जून १९८५	श्रीराधाकृष्ण साधना मन्दिरमें प्राण-प्रतिष्ठाका विशद आयोजन
४९.	५ अक्टूबर १९९१ से २३ सितम्बर १९९२ तक	पूज्य बाबूजीका जन्म शताब्दी उत्सव सारे देशमें वर्षभर यत्र-तत्र मनाया जाना
५०.	२६ सितम्बर १९९२	पूज्या मैयाका महाप्रयाण
५१.	१३ अक्टूबर १९९२	पूज्या मैयाके महाप्रयाणके उपरान्त श्राद्ध-कर्मकाण्डकी प्रक्रियाके सम्पन्न होते ही पूज्य बाबाकी महाप्रयाण लीला

* * * * *

पुस्तक प्राप्ति स्थान

: गोरखपुर :
साहित्य मन्दिर
श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार स्मारक समिति,
पो. गीतावाटिका,
गोरखपुर - २७३००६.

मनमोहन जाजोदिया
अजय सलेक्शन, बैंक रोड,
गोरखपुर - २७३ ००१

:वाराणसी:
श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार स्मृति सेवा ट्रस्ट,
दुर्गाकुण्ड रोड,
वाराणसी

:उदयपुर:
दिनेश कुमार अग्रवाल
आर ५/३१, जयश्री कालोनी,
तिलक स्कूल रोड, धूलकोट,
उदयपुर - ३१३ ००१

: मुम्बई :
भारतीय ग्रामोद्योग वस्त्र भण्डार
सिंहानिया वाडी,
१८७, दादी सेठ अग्यारी लेन,
मुम्बई - ४००००२

:वृन्दावन:
खण्डेलवाल एण्ड सन्स
अठखम्बा बाजार,
वृन्दावन - २८११२१

:जयपूर:
धार्मिक साहित्य सदन
बुलियन बिल्डींग के अन्दर,
हल्दियोंका रास्ता,
जौहरी बाजार,
जयपुर (राज.) ३०२००३

: स्वर्गाश्रम:
विष्णु पुस्तक भण्डार
पो. स्वर्गाश्रम,
(ऋषिकेश) - २४९३०४,
जि. पौढ़ी गढ़वाल

: अयोध्या:
श्रीस्वामीशरण उपाध्याय
श्रीसीताराम भवन,
गोलाघाट चौराह,
अयोध्या (उ.प्र.)

: पटना:
श्रीनागा बाबा
ठाकुरवाडी,
मथुरा प्रसाद सिन्हा रोड,
कदम कुँआ, पटना (बिहार)

॥ श्रीहरिः ॥

गीतावाटिका प्रकाशन

पो. - गीतावाटिका, गोरखपुर - २७३ ००६

द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

1.	श्रीभाईजी - एक अलौकिक विभूति	श्रीभाईजी एवं श्रीसेठजीकी संक्षिप्त जीवनी	60.00
2.	भाईजी चरितामृत	भाईजीके शब्दोंमें उनके जीवन प्रसंग	50.00
3.	सरस पत्र	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	30.00
4.	व्रजभावकी उपासना	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	25.00
5.	परमार्थकी पगडंडियाँ	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	30.00
6.	सत्संगवाटिकाके बिखरे सुमन	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	30.00
7.	वेणुगीत	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	35.00
8.	समाज किस ओर जा रहा है	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	30.00
9.	प्रभुको आत्मसमर्पण	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	30.00
10.	भगवत्कृपा	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	5.00
11.	श्रीराधाष्टमी जन्म-व्रत महोत्सव	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	5.00
12.	शान्तिकी सरिता	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	20.00
13.	रासपञ्चाध्यायी	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	35.00
14.	पारमार्थिक और लौकिक सफलताके सरल उपाय	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	25.00
15.	क्या, क्यों और कैसे ?	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	30.00
16.	साधकोंके पत्र	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	30.00
17.	रोगोंके सरल उपचार	सम्पादक : भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	35.00
18.	भगवन्नाम और प्रार्थनाके चमत्कार	सम्पादक : भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	30.00
19.	मेरी अतुल सम्पति	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	10.00
20.	श्रीशिव - चिन्तन	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	25.00
21.	अन्तरंग वार्तालाप	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	30.00
22.	आस्तिकताकी आधार-शिलाएँ	श्रीराधा बाबा	35.00
23.	महाभागा व्रजदेवियाँ	श्रीराधा बाबा	30.00
24.	केलि - कुञ्ज	श्रीराधा बाबा	70.00
25.	परमार्थके सरगम	श्रीराधा बाबा	30.00
26.	पद-रत्नाकर - एक अध्ययन	श्रीश्यामसुन्दर दुजारी	30.00
27.	दिव्य हस्तलिखित संकेत		50.00

नाम-संकीर्तन की मस्ती में : श्रीबाबा एवं श्रीमहाराजजी

श्रीगिरीराजजी की परिक्रमा

परिक्रमा के मध्य रस का ज्वार

महज्जनों के भावोद्गार

श्रीराधा बाबा मणि हैं, प्रकाश हैं, शोभा हैं। श्रीराधा बाबा मेरी आत्मा हैं।

श्रीश्रीयोगीराज ब्रह्मर्षि देवराहा बाबा

राधा बाबा को अगर कोई एक-एक लक्षणपर परखे तो उनको सौ टंच खरा पाएगा। मुझे अगर एक विशेषणसे ही राधा बाबा को परिभाषित करना हो तो मैं उनको कहूँगा- 'विशुद्ध संत'। तुलसीदासने भी संतके लिये यह विशिष्ट विशेषण शायद एक ही बार प्रयुक्त किया है-

संत विशुद्ध मिलहिं परि तेहि।
राम कृपा करि चितवहिं जेहि।।

राम ने अगर कृपाकर मेरी ओर देखा तो उसका एक मात्र सबूत मेरे लिये यही है कि राधा बाबा मुझे मिले।

कविवर डा. हरिवंश राय 'बच्चन'